मद्रासकी सार्वजनिक सभामें, एस० सत्यमूर्ति और एस० श्रीनिवास आयंगरके साथ

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२६

(जनवरी – अप्रैल १९२५)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

अप्रैल १९६८ (वैशाख १८९०)

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली – ६ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमें १६ जनवरीसे लेकर ३० अप्रैलतक साढ़े तीन महीनेका समय आता है। इस अवधिमें गांधीजीका अधिकांश समय दौरेमें व्यतीत हुआ। खण्डका आरम्भ गुजरातमें हुई कई परिषदोंमें दिये गये भाषणोंसे होता है। फरवरीके आरम्भमें गांधीजीने रावलपिंडी जाकर कोहाटके हिन्दुओं और वहाँकी मुस्लिम आबादीके बीच मेलजोल करानेकी कोशिश की, किन्तु व्यर्थ। वहाँसे लौटकर उन्होंने दक्षिण गुजरात और सौराष्ट्रका दौरा किया और तत्पश्चात् उन्होंने एक माह दक्षिणमें, ज्यादातर त्रावणकोरमें, व्यतीत किया। वहाँ वाइकोममें एक विशेष रूपसे अपमानजनक ढंगकी अस्पृश्यताके विरुद्ध पिछले एक वर्षसे सत्याग्रह चल रहा था। अप्रैलके आरम्भमें उन्होंने सौराष्ट्रका दौरा पूरा किया और अप्रैलके मध्यमें दक्षिण गुजरातका दौरा पूरा किया। २५ अप्रैलको उन्होंने सी० एफ० एन्ड्रयूजको एक पत्रमें लिखा: 'मैं एक जगहसे दूसरी जगहका दौरा ही करता रहता हूँ और साँसतक नहीं ले पाया हूँ। बंगालकी आगामी कठिन परीक्षाकी तैयारीके खयालसे मैं चार दिन तिथिलमें रहकर कुछ शक्ति संचित कर रहा हूँ" (पृष्ठ ५३७)। १ मईको वे कलकत्तामें थे।

कांग्रेस-अध्यक्षकी हैसियतसे गांधीजीने १९२५ के लिए अपना कार्यक्रम निर्धारित कर लिया था। १६ अप्रैलको 'यंग इंडिया' में लिखते हुए उन्होंने कहा: "मुझे तो अपने-आपको ऐसे कार्यकर्त्ताओंको तैयार करनेमें लगाना है जो कार्यदक्ष हों, अहिंसापरायण हों, आत्म-त्यागी हों, जो चरखे और खादीमें, हिन्दू-मुस्लिम एकतामें, और यदि वे हिन्दू हों तो अस्पृश्यता-निवारणमें भी जीवन्त विश्वास रखते हों। कमसे-कम इस सालके लिए तो राष्ट्रका यही कार्यक्रम है, दूसरा नहीं" (पृष्ठ ५०५)। गांधीजीका पक्का विश्वास था कि इस तीन-सूत्री कार्यक्रमका सफल कार्यान्वयन ही ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करनेका एकमात्र साधन था जिसके बिना विधान परिषदोंमें स्वराज्यवादी दलका काम निष्प्रभावी होगा। किन्तु वह अच्छी तरह समझते थे कि यह एक दुष्कर कार्य है। लोग उनकी सभाओंमें बड़ी संख्यामें उपस्थित होते थे, किन्तु कताई और खादीके प्रति गांधीजीके आग्रहका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कलकत्ता जाते हुए नागपुर स्टेशनपर उन्हें इस सत्यका प्रत्यक्ष और कटु अनुभव हुआ। प्लेटफार्मपर बहुत बड़ी भीड़ उनके दर्शनोंके लिए इकट्ठी हो गई थी। "वे मेरे दर्शन हर्षविह्वल होकर कर रहे थे। परन्तु उनका यह हर्ष मेरे लिए व्यथा ही था। जबानपर तो मेरा नाम और सिरपर काली टोपी। कैसा भीषण विरोध? कितना असत्य? इस भीड़को साथ लेकर मैं स्वराज्यकी लड़ाई नहीं लड सकता" (पृष्ठ ५७२)। इस अनुभवने उन्हें उदास कर दिया, लेकिन हतोत्साह नहीं किया। "यह खादीके प्रति विद्रोह नहीं तो उदासीनता अवश्य है। इसे देखकर खादीके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ जाती है" (पृष्ठ ५७१)। गांधीजीकी रायमें खादी कुछ हदतक बेरोजगारी कम करनेके एक साधनके रूपमें महत्त्व रखती थी, किन्तु इसके अलावा उनकी रायमें खादी

कार्यक्रमका राजनीतिक महत्त्व भी था जिसे उन्होंने एक अंग्रेज मित्रको इस प्रकार समझानेकी कोशिश की : "स्वराज्य शान्तिपूर्ण उपायोंसे तभी मिल सकता है जब, किसी बहुत थोड़ी ही अवधिके लिए और बहुत सामान्य कामके लिए ही क्यों न हो, हिन्दुस्तान-की सारी जनता एक मनसे कोई रचनात्मक और उपयोगी काम करे। ऐसा प्रयत्न राष्ट्रके पूरी तरह जागरूक हो चुकनेकी अपेक्षा तो रखता ही है। यह उद्देश्य केवल चरखेके द्वारा ही साध्य हो सकता है" (पृष्ठ ४७)। तथापि अपने सार्वजनिक भाषणोंमें वह खादीके आर्थिक और मानवके लिए कल्याणकारी फलितार्थोंकी ही चर्चा करते थे।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या इतनी जटिल हो गई थी कि गांधीजीने फिलहाल उसके सम्बन्धमें कुछ न करनेमें ही बुद्धिमानी मानी। अपने धर्मसंकटको ७ मार्चको मद्रासकी एक सार्वजनिक सभामें स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा : "फिलहाल मैंने इस समस्याको ताकपर रख दिया है, किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि मुझे इसके सुलझनेकी कोई आशा नहीं रही है। जबतक मुझे इसका कोई हल नहीं मिलता तबतक मेरा मस्तिष्क इस समस्यापर विचार करता ही रहेगा। किन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मैं कोई ऐसा व्यवहार्य हल, जिसकी आप आशा करते हैं, फिलहाल प्रस्तुत नहीं कर सकता" (पृष्ठ २३९)। उन्होंने 'मेरी स्थिति' (१६-४-१९२५) शीर्षक लेखमें अपनी लाचारी पुनः स्वीकार की : "मैं हिन्दू मुस्लिम एकतामें जान नहीं डाल सकता। सो उसके लिए मुझे कोई प्रत्यक्ष कार्यवाही करनेकी जरूरत नहीं। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं उन तमाम मुसलमानोंकी सेवा करूँगा जो मुझे करने देंगे। जो मेरी सलाह चाहेंगे मैं उन लोगोंको सलाह दूंगा। उन दूसरोंकी मैं चिन्ता करना छोड़ देता हूँ जिनके लिए मैं कुछ नहीं कर सकता। लेकिन मुझे अपने मनमें पूर्ण विश्वास है कि एकता जरूर होगी, चाहे वह कुछ घमासान लड़ाइयोंके बाद ही क्यों न हो; किन्तु होगी जरूर" (पृष्ठ ५०६)।

ऐसे पारस्परिक अविश्वासके वातावरणमें गांधीजीने दो सवालोंपर अपने-आपको एक ऐसी स्थितिमें पाया जिसे आसानीसे गलत समझा जा सकता था। गत सितम्बरमें कोहाटके दंगोंके कारणोंकी जाँच करने और दोनों सम्प्रदायोंके बीच मेलजोल स्थापित करनेका काम शौकत अली और गांधीजीने संयुक्त रूपसे करनेका बीड़ा उठाया था। इस जाँच-कार्यमें स्थानीय मुसलमानोंने उनकी मदद करनेसे इनकार कर दिया, और जो भी साक्ष्य उपलब्ध था उसके आधारपर गांधीजी और मौलाना अलग-अलग निर्णयोंपर पहुँचे। इस आपसी मतभेदको सार्वजनिक रूपसे स्वीकार करनेमें यह खतरा था कि उसे गलत रूपमें पेश किया जायेगा और साम्प्रदायिक तत्त्व उसका नाजायज लाभ उठायेंगे। १९२०-२१ में खिलाफत आन्दोलन आरम्भ होनेके समयसे ही गांधीजी और मौलाना शौकत अलीने मिलजुलकर काम किया था और गांधीजीने जनसाधारण मुसलमानकी सद्भावना जीत ली थी। एक साम्प्रदायिक प्रश्नपर इन दोनों नेताओंके मतभेदका उनके निजी सम्बन्धोंपर असर पड़ता या न पड़ता, लेकिन उसका देशके सामान्य वातावरण-पर बुरा असर पड़ना निश्चित था। गांधीजीने मामलेको बड़ी सावधानीके साथ और सम्यक् रूपसे मौलाना और सामान्य जनताके सामने प्रस्तुत किया। अपने आपसी

मतभेदको सार्वजनिक रूपसे स्वीकार करनेके सम्भावित परिणामोंसे वह अवगत थे। "मैं आपका वक्तव्य प्रकाशित करनेके विचारतक से काँप उठता हूँ। उसके प्रकाशनसे कटुतापूर्ण विवाद छिड़ जायेगा" (पृष्ठ १८५)। लेकिन सत्यकी शक्तिमें उनकी निष्ठा पूर्ण थी और उन्हें लगा कि खतरा अवश्य उठाया जाना चाहिए। "लेकिन यदि एक ही निष्कर्षपर पहुँचनेके हमारे सभी उपाय विफल हो जायें तो हमें जनताके समक्ष अपने मतभेद प्रस्तुत करने और उसपर यह बात जाहिर कर देनेका साहस अवश्य करना होगा कि इन मतभेदोके बावजूद हम दोनोंके बीच प्रेम बना रहेगा, और हम साथ-साथ काम करते रहेंगे" (पृष्ठ १८५)। हकीम अजमलखाँने सुझाव दिया, और पंडित मोतीलाल नेहरू उनसे सहमत थे, कि वक्तव्योंको प्रकाशित नहीं करना चाहिये। लेकिन गांधीजीने १९ मार्चको दोनों वक्तव्य इस स्पष्टीकरणके साथ अखबारोंको, दे दिये: "लेकिन हम, कमसे-कम मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जनताको, जो मुझे और अली भाइयोंको कुछ सार्वजनिक प्रश्नोंपर हमेशा एक मानती थी, यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ प्रश्नोंपर हममें भी मतभेद हो सकता है। इस मतभेदके बावजूद हमारे मनमें यह शंका नही आई कि हममें से किसीने जानबूझकर पक्षपात किया है या सत्य प्रमाणोंको तोड़-मरोड़कर उससे अपना मतलब निकाला है और न इससे हमारे आपसी प्रेममें कोई फर्क ही आया है। हम यदि खुले तौर से अपने मतभेदोंको स्वीकार कर लेंगे तो वह जनताके लिए आपसी सहनशीलताका एक पदार्थपाठ बन सकेगा" (पृष्ठ ३३३)।

दूसरा प्रश्न जिसपर गाधीजीके रुखसे विवाद उत्पन्न हुआ, वह भी बहुत नाजुक था। एक समाचारके अनुसार अफगानिस्तानमें अहमदिया सम्प्रदायके दो सदस्योंको धर्मत्यागके दण्ड-स्वरूप पत्थर फेंक-फेंककर मार डाला गया था। इस समाचारपर 'यंग इंडिया' में टिप्पणी करते हुए गांधीजीने लिखा था: "मुझे मालूम हुआ है कि 'कुरान' में केवल कुछ अवस्थाओंमें ही संगसारीकी हिदायत दी गई है, किन्तु जिन मामलोंपर हम विचार कर रहे है उनपर ये अवस्थाएँ लागू नही होती। मैं मनुष्य हूँ और ईश्वरसे डरता हूँ। इस रूपमें किन्ही भी स्थितियोंमें ऐसे तरीकोंकी नैतिकतापर मुझे शंका करनी चाहिए। . . . प्रत्येक धर्मके प्रत्येक नियमको विवेकके इस युगमें पहले विवेक और व्यापक न्यायकी अचूक कसौटीपर कसना होगा। तभी उसपर संसारकी स्वीकृति माँगी जा सकती है। किसी भूलका समर्थन संसारके समस्त धर्मग्रन्थोंमें भी किया गया हो तो भी वह इस नियमसे मुक्त नही हो सकती" (पृष्ठ १९५-९६)। कट्टरपन्थियोंके लिए यह रवैया बहुत ही क्रान्तिकारी था और इसपर कुछ आक्रोशपूर्ण आपत्तियाँ की गईं। पंजाब खिलाफत समितिके अध्यक्षने लिखा "आपने . . . अपने लाखों मुसलमान प्रशंसकोंके दिलमें यह भावना पैदा कर दी है कि आप उनकी रहनुमाई करने लायक नही है" (पृष्ठ २२०)। गांधीजीने स्पष्ट किया कि उन्होंने 'कुरान' की नहीं, केवल उसके व्याख्याकारोंकी आलोचना की है। लेकिन ऐसा कतई नहीं था कि वह अपने बचावपर आ गये हों। उन्होंने बहुत स्पष्ट रूपसे घोषणा की कि "खुद 'कुरान' की शिक्षाएँ भी आलोचनासे मुक्त नहीं रह सकती" (पृष्ठ २२१)। उन्होंने अपनी स्थिति और स्पष्ट करते हुए

लिखा : "इस्लामके सम्बन्धमें लिखते समय मैं उसकी इज्जतका खयाल उतना ही रखता हूँ, जितना हिन्दू धर्मकी इज्जतका। इस्लामकी व्याख्या करनेके लिए मैं वही पद्धति अपनाता हूँ जो हिन्दू धर्मके लिए। मैं हिन्दू धर्मग्रंथोंके किसी भी आदेशका समर्थन केवल इस आधारपर नहीं करता कि वह शास्त्रकी आज्ञा है। इसी तरह मैं 'कुरान' की किसी बातको भी केवल इसलिए नहीं मान सकता कि वह 'कुरान' में लिखी है। प्रत्येक बात विवेककी कसौटीपर कसी जानी चाहिए। लोगोंकी विवेक-बुद्धिको इस्लाम जँचता है, तभी वह उन्हें पसन्द आता है" (पृष्ठ ४१०)।

धर्मके मामलेमें रूढ़ि और शास्त्रोंके बारेमें गांधीजीका जो आलोचनात्मक रवैया था वह अस्पृश्यताके विरुद्ध उनके अनवरत अभियानसे बहुत सशक्त रूपसे प्रकट होता है। गुजरात और दक्षिण भारत, दोनों जगहोंपर उन्होंने लोगोंकी विवेक बुद्धिको स्पर्श करनेकी कोशिश की। मद्रासकी एक सार्वजनिक सभामें उन्होंने कहा : "यदि कोई मुझसे कहे कि शास्त्रोंमें किसी ऐसी बुराईका समर्थन है तो मुझे ऐसे शास्त्रोंकी जरूरत नहीं, लेकिन जिस प्रकार सभामें हमारी उपस्थिति की बात निश्चित है उसी प्रकार मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि शास्त्रोंमें ऐसी किसी पैशाचिकताका प्रतिपादन या आदेश नहीं है। यह कहना कि जन्मके कारण कोई भी मनुष्य अस्पृश्य, अनुपगम्य या अदर्शनीय हो जाता है, ईश्वरकी सत्ता माननेसे इनकार करना है" (पृष्ठ ३६८)। उन्होंने इस बुराईको उसके सबसे खराब रूपमें त्रावणकोर राज्यमें देखा था। "धर्मान्ध लोग, कुछ लोगोंको देखनातक पाप समझते हैं। नयाडी लोगोंके लिए तो यह आवश्यक होता है कि वे सवर्णोंकी नजरके सामने भी न आयें। मैंने त्रिचूरमें इस जातिके दो मनुष्य देखे थे जिनकी देह तो मनुष्यकी थी पर फिर भी वे मनुष्य नहीं थे। (हँसी) भाइयो, यह हँसनेकी बात नहीं, खूनके आँसू बहानेकी बात है" (पृष्ठ३६८)। इस यात्रामें गांधीजीका मुख्य उद्देश्य था कि वे इन अभागी जातियोंके लिए एक सार्वजनिक सड़कको खुलवानेके लिए वाइकोम-में चल रहे सत्याग्रहके पक्षमें जनमत तैयार करें। इस उद्देश्यसे वे राज्यके अधिकारियोंसे तथा कट्टरपन्थियोंके प्रतिनिधियोंसे भी मिले। उन्होंने इन प्रतिनिधियोंके सम्मुख तीन वैकल्पिक प्रस्ताव रखे, जो तीनों ठुकरा दिये गये। इसपर भी गांधीजीने सत्याग्रहियोंको सलाह दी कि वे सुधारके विरोधियोंके प्रति सद्भाव रखें और उन्हें अपने उद्देश्यकी सचाईका श्रेय दें। "मैंने पाया है कि जहाँ पूर्वग्रह युगों पुराने हों और तथा-कथित धार्मिक प्रमाणोंपर आधारित हों, वहाँ केवल तर्कद्वारा समझानेकी कोशिश बेकार जाती है। तर्कको कष्ट-सहन द्वारा मजबूत करना होगा और कष्टसहन विवेकको जगा देता है। इसलिए हमारे कार्योंमें जबरदस्ती लेश-मात्र भी नहीं होनी चाहिए" (पृष्ठ २६५)।

अपने अस्पृश्यता-विरोधी अभियानके दौरान गांधीजीसे जाति प्रथा तथा अंतर्जातीय भोज और विवाहोंपर लगे प्रतिबन्धोंके बारेमें उनके विचार पूछे जाते थे। उन्होंने कहा : "मैं अस्पृश्यता और वर्ण या जातिमें बहुत बड़ा अन्तर मानता हूँ। अस्पृश्यताका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। . . . मेरी रायमें वर्ण-व्यवस्थाका आधार वैज्ञानिक

है" (पृष्ठ २८५)। एक अन्य सन्दर्भमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि वर्ण-व्यवस्था 'जन्मके आधारपर किया गया स्वस्थ कार्य-विभाजन' है (पृष्ठ ५३२)। लेकिन उन्होंने तुरन्त ही यह भी कहा कि जातियों-सम्बन्धी वर्तमान विचार मूल व्यवस्थाके विकृत रूप हैं। गांधीजी अंतर्जातीय भोज या विवाहपर लगे प्रतिबन्धोंको हटानेको आवश्यक सुधार भी नहीं मानते थे। "स्वयं लगाये गये प्रतिबन्धोंका स्वच्छता तथा आध्यात्मिकताकी दृष्टिसे अपना मूल्य है। किन्तु इनका पालन न करनेसे आदमी न तो नरकमें चला जाता है और न इनका पालन करनेसे स्वर्गमें पहुँच जाता है" (पृष्ठ ५६५)। पारम्परिक ब्राह्मण संस्कृतिमें जो चीज गांधीजी बहुत मूल्यवान् मानते थे, वह इन प्रतिबन्धोंमें निहित आत्मसंयमका सिद्धान्त था। "मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणोंको बरबाद करके अब्राह्मण ऊँचे उठें। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि वे उस ऊँचाईको पहुँच जायें जहाँ अबतक ब्राह्मण पहुँचे हुए थे" (पृष्ठ ३२७)।

अपने तीन लेखोंमें (शीर्षक ६२, २६७ और ३२०) एक क्रान्तिकारीको मुखातिब करते हुए गांधीजीने स्पष्ट रूपसे और धीरजके साथ उस जीवन-दर्शनका प्रतिपादन किया जिसका वे उपदेश कर रहे थे और स्वयं अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे थे। "किसी शैतानी व्यवस्थाके मुकाबलेमें सशस्त्र षड्यंत्र रचना मानो शैतानके मुकाबले शैतान खड़ा करना है। पर चूँकि एक ही शैतान मेरे लिए बहुतसे शैतानोंके बराबर है, इसलिए मैं उसकी संख्या न बढ़ने दूँगा। मेरी प्रवृत्ति उद्योगहीन है या वह उद्योगमय है, यह तो आगे चलकर मालूम होगा। यदि तबतक उसके फलस्वरूप एक गज की जगह दो गज सूत कते तो उससे उतना हित तो होगा ही। भीरुता चाहे दार्शनिक हो, चाहे किसी दूसरी तरहकी, मैं उससे घृणा करता हूँ" (पृष्ठ ४८१-८२)। और उन्होंने मर्त्य लोगोंके धर्ममें तथा अवतारी पुरुषोंके रहस्योंमें बहुत बड़ा अन्तर बताया। "श्रीकृष्ण-के नामको बीचमें घसीटना फिजूल है। यदि हम उन्हें मानते हों तो हम उन्हें साक्षात् ईश्वर मानें अथवा फिर बिलकुल न मानें; यदि मानते हैं तो फिर हम उनमें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता होना मानते हैं। ऐसी शक्ति अवश्य-संहार कर सकती है। पर हम तो ठहरे पामर मर्त्य। हम हमेशा भूलें करते रहते हैं और अपने विचार और रायें बदलते रहते हैं। यदि हम 'गीता' के गायक कृष्णकी नकल करेंगे तो हम घोर विपत्तिमें पड़ेंगे" (पृष्ठ ५६३)।

गांधीजी पारम्परिक हिन्दू भावनासे पूरी तरह आप्लावित थे और उसे उन्होंने जिस प्रकार व्यावहारिक और रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करनेकी कोशिश की उसे गोरक्षा सम्बन्धी उनके रुखसे देखा जा सकता है। उन्होंने गायके वधको रोकनेके लिए अन्य सम्प्रदायोंके लोगोंसे लड़नेकी अपेक्षा अपने हिन्दू भाइयोंसे कहा कि वे आदर्श गोशालाएँ और दुग्धशालाएँ स्थापित करें जिनमें कमजोर और अपंग गायोंको भी प्रश्रय दिया जाये। उन्होंने अन्य कार्यकर्त्ताओंके साथ मिलकर अखिल भारतीय गोरक्षा मंडल स्थापित किया और उसका संविधान तैयार किया। उन्होंने जवाहरलाल नेहरूको एक पत्र-लिखकर गायके प्रति अपने प्रेमको युक्तियुक्त ढंगसे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया। "गाय तो प्राणि-मात्रका सिर्फ प्रतीक है। गोरक्षाका अर्थ है दुर्बलों, असहायों, गूंगों और बहरोंकी

रक्षा। फिर तो मनुष्य सारी सृष्टिका प्रभु और स्वामी न रहकर सेवक बन जाता है। मेरी रायमें गाय दयाका जीता-जागता उपदेश है।" (पृष्ठ ५३९)।

तर्क और भावनाका यह मेल गांधीजीके धार्मिक दृष्टिकोणका सार था। एक मित्रको, जिन्होंने कांग्रेसकी शपथमें ईश्वरके नामके उल्लेखपर आपत्ति उठाई थी, उन्होंने पत्रमें लिखा: "मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भयता ईश्वर है। . . . ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह तो नास्तिकोंकी नास्तिकता भी है" (पृष्ठ २१८)। लेकिन स्वयं गांधीजीके लिए ईश्वर एक कोरा सिद्धान्त या अनुमान नहीं था। उसकी उपस्थितिको वे बड़ी गहराईके साथ अनुभव करते थे। "हम कुछ नहीं हैं; सिर्फ वही है; और अगर हम हों तो हमें सदा उसके गुणोंका गान करना चाहिए और उसकी इच्छानुसार चलना चाहिए। आइए, उसकी बंसीकी धुनपर हम नाचें। सब अच्छा ही होगा" (पृष्ठ २१९)। गोरक्षा मंडलकी अध्यक्षता स्वीकार करते हुए उनके मनकी जो अवस्था थी उससे उनकी धार्मिक भावनाकी शक्ति प्रकट होती है: "लिखते हुए मेरे हाथ काँप रहे हैं। आँखोंमें आँसू हैं। . . . जिस प्रकार किसी बालकको खूब खानेकी इच्छा तो हो पर खानेकी शक्ति न होनेके कारण वह फूट-फूट कर रोता है, मेरी स्थिति भी कुछ वैसी है। मैं लोभी हूँ। मैं धर्मकी विजय देखने और उसे संसारके सामने रखनेके लिए बड़ा आतुर हूँ। . . . तूफानी समुद्रमें मेरी अभिलाषा-रूपी नैया डोल रही है" (पृष्ठ ३१४-१५)। और भावनाका यह आवेग उनके मनमें एक दिन पहले कन्याकुमारीकी यात्राकी स्मृतिके कारण उमड़ा था। "कन्याकुमारीके दर्शन" शीर्षक लेखमें उन्होंने लिखा: "समुद्रकी लहरोंका मंद और मधुर संगीत तो समाधिमें सहायक होता है। . . . 'गीता'कारका मन-ही-मन स्मरण करके मै शान्त बैठा रहा" (पृष्ठ ४२०)।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम, साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि संग्रहालय, नई दिल्ली; प्रोफेसर जॉर्ज मॉर्गेस्टर्न, ओस्लो; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री डाह्याभाई एम० पटेल, धोलका; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; श्रीमती वसुमती पण्डित, सूरत; श्रीमती शारदाबहन शाह, बढवान; 'एपिक ऑफ त्रावणकोर' तथा 'बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'बापुनी प्रसादी' और 'महादेव भाईनी डायरी', पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'आनन्द बाजार पत्रिका', 'नवजीवन', 'न्यू इंडिया', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'स्वदेशमित्रन्', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान एवं सन्दर्भ विभाग तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली; और कागजात की फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका फोटोविभाग, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों-की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है, जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध परिशिष्ट तथा अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सोजित्रा
१६ जनवरी, १९२५

प्रिय चार्ली,

मैं नहीं जानता कि तुम मुझसे श्री एलेक्जेंडरको[1] किस आशयका तार भिजवाना चाहते हो। क्योंकि पहले जो अधिकारपत्र भेजा जा चुका है वह पर्याप्त रूपसे व्यापक है। फिर भी यदि तुम मुझसे दूसरा अधिकारपत्र भिजवाना चाहते हो तो मुझे मसविदा और पता भेज दो। मैं बहुत थका हुआ हूँ, अधिक नहीं लिखूँगा।

सस्नेह।

तुम्हारा,
मोहन

[पुनश्च :]

मुस्लिम लीगके बारेमें मत सोचो। इस मामलेमें कांग्रेस सबका प्रतिनिधित्व करती है।

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० २६१९) की फोटो-नकलसे।

२. भाषण : महिला परिषद्, सोजित्रामें[2]

१६ जनवरी, १९२५

मैं बहनोंके सामने राम-राज्यकी बात करता हूँ। राम-राज्य स्वराज्यसे भी अधिक है। इसलिए वह कैसा होता है, मैं इसीके बारेमें बताऊँगा, स्वराज्यके बारेमें नहीं। राम-राज्य वहीं हो सकता है, जहाँ सीताका होना सम्भव हो। हम हिन्दू बहुतेरे श्लोकों-का पाठ करते हैं। उनमें एक श्लोक स्त्रियोंके विषयमें है। इसमें प्रातःस्मरणीय स्त्रियोंके नाम लिए गये हैं। कौन हैं ये स्त्रियाँ?[3] जिनके नाम लेनेसे पुरुष और स्त्रियाँ सभी पुनीत हो जाते हैं। सती स्त्रियोंमें सीताका नाम तो सदा ही लिया जाता है। हम "राम-सीता" नहीं कहते, "सीता-राम" कहते हैं और इसी प्रकार "कृष्ण-राधा" न

१. होरेस एलेक्जेंडर; जेनेवामें होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय अफीम सम्मेलनमें 'सोसाइटी ऑफ फ्रेंड्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' के प्रतिनिधि। देखिए खण्ड २५, पृष्ठ २३६।

२. गुजरातके पेटलाद जिलेमें।

३. तारा, कुंती, अहिल्या, मंदोदरी, द्रौपदी।

कहकर "राधा-कृष्ण" कहते हैं। सुग्गेको भी यही पढ़ाया जाता है। हम सीताका नाम पहले लेते हैं, इसका कारण यह है कि पवित्र स्त्रियाँ न हों, तो पवित्र पुरुषोंका होना असम्भव है। बालक माता जैसे ही बनेंगे, पिता जैसे नहीं। माताके हाथमें बालककी बागडोर होती है। पिताका कार्यक्षेत्र बाहर है, इसीलिए मैं सदा कहता आया हूँ कि जबतक सार्वजनिक जीवनमें भारतकी स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं, तबतक हिन्दुस्तानका उद्धार नहीं हो सकता। सार्वजनिक जीवनमें वही भाग ले सकेंगी जो तन और मनसे पवित्र हैं। जिनके तन और मन एक ही दिशामें — पवित्र दिशामें चलते जा रहे हों, जबतक एसी स्त्रियाँ हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनको पवित्र न करें, तबतक राम-राज्य अथवा स्वराज्य असम्भव है। अथवा स्वराज्य सम्भव हो, तो वह ऐसा स्वराज्य होगा, जिसमें स्त्रियोंका पूरा-पूरा भाग नहीं रहेगा। और जिस स्वराज्यमें स्त्रियोंका पूरा-पूरा भाग न हो, वह मेरे लेखे निकम्मा स्वराज्य है। पवित्र मन और हृदय रखनेवाली स्त्री सदा साष्टांग नमस्कार करने योग्य है। मैं चाहता हूँ कि ऐसी स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवनमें भाग लें।

हम किसे ऐसी स्त्री कहें? कहा जाता है कि सतीका तेज चेहरेसे प्रकट हो जाता है। कोई कह सकता है कि भारतमें जितनी वेश्याएँ हैं, क्या उन सबको भी सती मानें, क्योंकि वे तो चेहरेको तेजवन्त रखनेका व्यवसाय ही करती हैं। नहीं, बात ऐसी नहीं है। मुख्य बात तो हृदयकी पवित्रता है। जिसका मन और हृदय पवित्र है, वह सती सदैव पूज्य है। हम जैसे भीतर होते हैं, बाहर भी वैसे ही प्रकट होते हैं। यही प्रकृतिका नियम है। यदि हम भीतरसे मलिन हों, तो बाहर भी वैसे ही दिखाई देंगे। दृष्टि और वाणी, ये बाह्य चिह्न हैं किन्तु जाननेवाला गुण-अवगुणकी पहचान इन बाह्य चिह्नोंसे भी कर लेता है।

तब फिर पवित्रताका क्या अर्थ है? इसका क्या लक्षण है? मैं खादीको पवित्रता-की निशानी समझता हूँ, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि जो खादी पहनता है, वह पवित्र हो जाता है, तो इसे मानना ठीक नहीं हो सकता।

मैं कहता हूँ कि सार्वजनिक जीवनमें हाथ बटाओ। इसका भी क्या अर्थ है? सार्वजनिक जीवनमें भाग लेनेका अर्थ सभा-मण्डलोंमें जाकर उपस्थित हो जाना नहीं है, बल्कि यह है कि लोग पवित्रताके चिह्नस्वरूप खादी पहनकर हिन्दुस्तानके स्त्री-पुरुषोंकी सेवा करें। यदि हम राजा-महाराजाओंकी सेवा करें, तो उससे क्या होगा? यदि हम वहाँ जायें, तो सम्भव है कि दरबान ही महाराजा साहबके पास न जाने दे। किसी धनिक व्यक्तिकी सेवा करनेकी इच्छाका भी ऐसा ही फल हो सकता है। हिन्दुस्तान-की सेवाका अर्थ है गरीबोंकी सेवा। ईश्वर अदृश्य है, इसलिए यदि हम दृश्यकी सेवा करें तो पर्याप्त है। दृश्य ईश्वरकी सेवाका अर्थ है गरीबोंकी सेवा और यही हमारे सार्वजनिक जीवनका अर्थ है। यदि हमें जनताकी सेवा करनी हो तो भगवानका नाम लेकर हमें गरीबोंके बीचमें जाकर चरखा चलाना चाहिए।

सार्वजनिक जीवनमें हाथ बँटानेका अर्थ गरीब बहनोंकी सेवा करना है। इन बहनोंकी हालत बहुत दयनीय है। गंगाके उस तीरपर जहाँ जनक राजा हुए और सीताजी हुईं, अपनी पत्नीके साथ मेरी इनसे मुलाकात हुई। बड़ी ही दयाजनक

स्थिति मैंने इनकी देखी। शरीरपर पूरे कपड़े नहीं थे। किन्तु उस समय मैं इन्हें कपड़े नहीं दे सका, क्योंकि तबतक चरखा मेरे हाथ नहीं लगा था। हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंको कपड़ा मिलता है, फिर भी वे नग्न हैं। क्योंकि जबतक देशमें एक भी बहनको बिना कपड़ेके रहना पड़ता हो, तबतक यही माना जायेगा कि देशकी सारी स्त्रियोंके पास कपड़े नहीं हैं। इसी प्रकार अगर कोई स्त्री सोलह सिंगार किये हुए हो और उसका हृदय अपवित्र हो, तो उसे भी विवस्त्र ही माना जायेगा। हमें विचार करना है कि कैसे इन सबसे चरखा चलवायें ताकि वस्त्रहीनताका यह अभिशाप दूर हो।

आज तो जब सेवा करनेवाले लोग गाँवमें जाते हैं तो वहाँके लोगोंको ऐसा लगता है कि कोई चौथ वसूल करनेवाला आ गया। उन्हें ऐसा आभास क्यों होता है? आप लोगोंको यह समझ लेना चाहिए कि आप गाँवोंमें देनेके लिए जाते हैं, लेनेके लिए नहीं।

हमारी माताएँ सूत कातती थीं। क्या वे मूर्ख थीं? मैं जब आप लोगोंको कातनेको कहता हूँ तो मैं आपको मूर्ख लग सकता हूँ। किन्तु पागल गांधी नहीं है, आप खुद पागल हैं। आपके मनमें गरीबोंके लिए दया नहीं है। और इसके बाद भी आप अपने मनको धीरज देना चाहते हैं कि देश सम्पन्न हो गया है। और फिर आप लोग सम्पन्नताके गीत गाते हैं। यदि आप सार्वजनिक जीवनमें पाँव रखना चाहती हैं। तो जनताकी सेवा कीजिए, चरखा कातिए, खादी पहनिये। यदि आपका तन और मन शुद्ध हो गया, तो आप सच्ची देशभक्त बनेंगी। भगवानका नाम लेकर सूत कातिए। भगवानका नाम लेकर सूत कातनेका अर्थ है, गरीब बहनोंके लिए कातना। दरिद्रको दिया गया दान ईश्वरको पूजा चढ़ाने जैसा है। दान तो वही है जो दरिद्रको सुख पहुँचाये। आप चाहे जिसको पैसा लुटायें, तो उसका तो यही अर्थ होगा कि आप अपनी सनक पूरी करती हैं। जिसे ईश्वरने दो हाथ, दो पाँव और स्वास्थ्य दिया है, यदि आप उसे दान देती हैं, तो कहना पड़ेगा कि आप उसे कंगाल बनानेपर तुली हुई हैं। कोई ब्राह्मण है, केवल इसीलिए उसे भिक्षा न दी जाये। उससे चरखा चलवाइए और फिर एक मुट्ठी ज्वार या चावल दे दीजिए। गरीबोंमें जाकर खादीका प्रचार करना मनकी पवित्रताका पहला लक्षण है।

दूसरा लक्षण है अन्त्यजकी सेवा करना। आजकलके ब्राह्मण और गुरुगण आदि अन्त्यजको छूनेमें पाप मानते हैं। मैं कहता हूँ कि यह पाप नहीं है, धर्म है। मैं इनके साथ खाने-पीनेकी बात नहीं कहता। मैं तो उनकी सेवाके लिए, उनके बीच जानेके लिए कहता हूँ। अन्त्यजके जो बच्चे बीमार हैं, उनकी सेवा करना धर्म है। अन्त्यज खाते हैं, पीते हैं, खड़े होते हैं और बैठते हैं। हम सब भी यही करते हैं। इन सब क्रियाओंमें न कोई धर्म है, न कोई पवित्रता। निश्चित अवधिमें मेरी माता भी अस्पृश्य हो जाती थी और उस समय वह अपनेको छूने नहीं देती थी। मेरी पत्नी भी इसी तरह अस्पृश्य हो जाती थी। कह सकते हैं कि उस समय वह अन्त्यज हो जाती थी। जब हमारे भंगी मैला फेंकनेका काम करते हैं, तब वे अस्पृश्य होते हैं। जबतक वे नहा-धो न लें, तबतक उनको न छूनेकी बात समझमें आ सकती है। किन्तु नहा-धोकर साफ सुथरे बन चुकनेके बाद भी यदि हम उन्हें नहीं छूते, तो फिर उनके

नहाने-धोनेका अर्थ ही क्या है। उनका तो कोई ईश्वर भी नहीं है। वे सोचते ह कि दूसरोंके भी मेरे जैसे आँख, नाक इत्यादि हैं, फिर भी ये लोग हमारा तिरस्कार करते है ऐसी अवस्थामें हम क्या करें? जरा इस परिस्थितिपर विचार कीजिए। क्या रामचन्द्रने अन्त्यजोंका तिरस्कार किया था? उन्होंने शबरीके जूठे बेर खाये थे; उन्होंने निषादराजको गले लगाया था। और शबरी तथा निषादराज दोनों ही अस्पृश्य थे। इसपरसे आपको यह बात समझ लेनी चाहिए कि हिन्दू धर्मके अन्तर्गत अस्पृश्यता है ही नहीं।

पवित्रताका तीसरा लक्षण है मुसलमानोंके प्रति मित्रभावका विकास। "यह तो मियाँ ठहरा", "मियाँ और महादेव साथ-साथ कैसे बैठ सकते हैं" यदि कोई ऐसा कहे, तो उसे बताइए कि आप मुसलमानोंके प्रति वैरभाव नहीं रख सकते।

यदि आप ये तीन बातें करें, तो कहा जा सकता है कि आपने सार्वजनिक जीवनमें पूरा भाग लिया है। इस तरहके आचरणसे आप प्रातः स्मरणीय बन जायेंगी और ऐसा माना जायेगा कि आपने हिन्दुस्तानको तारनेका काम किया। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप ऐसी बनें।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी: खण्ड ७

३. भाषण: बारिया क्षत्रिय परिषद्, सोजित्रामें

१६ जनवरी, १९२५

भाइयो, मुझे दुःख है कि इस परिषद्का काम समाप्त करनेके लिए हमारे पास केवल १० मिनट बच रहे हैं, क्योंकि ४ बजे अन्त्यज भाइयोंको बुलाया गया है। आपने तीन प्रस्ताव पास किये। ये तीनों अत्यन्त उपयोगी ह। आपने शराब न पीनेका प्रस्ताव किया, यह अच्छी बात है। यह ठीक है कि शराब न पीनेकी जरूरत केवल आप ही की जातिको नहीं है। और भी दूसरी कौमें पीती हैं। आपने यह प्रस्ताव भी किया कि पैसा लेकर लड़की न दी जाये और स्त्रियोंका अपहरण न किया जाये। ये भी अच्छी बातें हैं। आप लोग क्षत्रिय है, और मानते हैं कि आपमें क्षत्रियोंके गुण हैं। यदि आप शास्त्रोंके पन्ने उलटेंगे, तो आपको मालूम हो जायेगा कि सच्चा क्षत्रिय कदम बढ़ाकर फिर उसे पीछे नहीं रखता। इसके सिवा वह दूसरोंका रक्षक होता है। मेरे लिए कहे बिना भी आप इस बातको समझते हैं कि ऐसा आचरण क्षत्रियका धर्म है। इस सिद्धान्तको मान लेनेके बाद आप पीछे नहीं हटेंगे। प्रतिज्ञा करनेका अर्थ है, वचन देना। किसी कामको करनेकी शपथ ईश्वरको साक्षी रखकर ही ली जानी चाहिए। आपने शराब न पीने, बेटी न बेचने और स्त्रियोंका हरण न करनेकी प्रतिज्ञा ली है। यदि आप अपने इन वचनोंका पालन नहीं करेंगे, तो समझना चाहिए कि आपने सारे संसारके प्रति गुनाह किया है। चारों वर्णोंको अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चलना चाहिए।

वचन-भंग करनेका अर्थ है पीछे हटना। इसलिए यदि आप प्रतिज्ञा लेते समय अपना हाथ ऊँचा करें और बादमें उसे भूल जायें, तो आप क्षत्रिय नहीं रहेंगे। वह आपके लिए लज्जाकी बात होगी, इतना ही नहीं, मेरे लिए भी लज्जाकी बात होगी। मेरे मनपर उसका बड़ा बोझ रहेगा। आपके बीचमें रविशंकर[1] काम कर रहे हैं। यदि आप उन्हें वचन दे दें कि चोरी नहीं करेंगे और फिर चोरी करें, तो रविशंकर क्या कर सकता है। सरकार आपको जेल भेज सकती है, किन्तु रविशंकर तो उपवास करेगा और खुद भूखों मरेगा। उसके ऐसा करनेका अभिप्राय यह होगा कि आप लोगों द्वारा वचन-भंग किये जानेकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि आप मुझे मार डालें। रविशंकरके सामने आपने वचन लिया है, इसलिए आपके वचन तोड़नेका अर्थ होगा उसके लिए उपवासका अवसर उपस्थित करना। मै भी रविशंकरकी जातिका आदमी हूँ और उसके कदमसे कदम मिलाकर चलना चाहता हूँ। मै मारना तो नही जानता, किन्तु मरना जानता हूँ। आप समझ लीजिए कि रविशंकर कोई अकेला आदमी नही है — एक पूरी पलटन उसके साथ है। आपको इस तरह सावधान कर देनेके बाद मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आपको अपनी प्रतिज्ञा कबूल है? यह कोई नाटक नहीं है। मुझे नाटक करना पसन्द नही है। कोई भी जाति नाटक करके ऊँचा नहीं उठ सकती। हम पढ़े-लिखे लोगोंने आपके सामने नाटक कर-करके आप लोगोंको बिगाड़ दिया है। इसलिए इस बार पूरी तरह सोच-विचार करके आप अपने हाथ उठायें। वह समय चला गया कि जब हाथ ऊँचा करनेका मतलब ही प्रतिज्ञाका पालन मान लिया जाता था। इतना मैंने प्रतिज्ञाके विषयमें कहा।

अब दूसरी दो बातें कहता हूँ। एक बात यह है कि आप लोगोंको खादी पहननी चाहिए। आप लोगोंको यह नहीं मानना चाहिए कि केवल नर्मदा और साबरमतीके बीच बसा हुआ भाग ही आपका देश है। आपका देश एक बहुत बड़ा देश है। १९०० मील लम्बा और १५०० मील चौड़ा। यदि आप पैदल इसके आर-पार जाना चाहें, तो १९० दिन लगेंगे। इस बड़े देशमें रहनेवाले सभी व्यक्ति आपके भाई-बहन हैं। इसके लिए आपको सूत कातना चाहिए। कता हुआ सूत कांग्रेसके पास भेजना चाहिए। खादीको सस्ता करनेका और कोई उपाय नहीं है। आप रोज आधा घंटा कातें। यदि करोड़ों लोग आधा घंटा रोज कातें, तो खादी मुफ्त मिलने लगे।

दूसरी बात है अन्त्यजोंको अपनानेकी। क्षत्रियका अर्थ है गो-ब्राह्मण प्रतिपालक। गोका अर्थ दो सींगोंवाला प्राणी ही नहीं है। गायका अर्थ है कोई भी दुःखी प्राणी। अन्त्यज एक दुःखी जाति है। जिस क्षत्रियने अन्त्यजको भुला दिया वह क्षत्रिय ही नहीं रहा। अपनेको क्षत्रिय जातिका माननेवाला यदि अन्त्यजको त्याग दे, तो वह क्षत्रिय ही नहीं कहा जा सकता।

मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह प्रतिज्ञा पालन करनेमें आपकी सहायता करे। यदि आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके इच्छुक हों, तो मुझ गरीबकी बात मानिए। जिसे भी व्रत पालना हो, वह सवेरे उठकर रामका नाम ले, सोनेके पहले

१. रविशंकर महाराज; गुजरातके एक सार्वजनिक कार्यकर्ता।

रामका नाम ले और प्रार्थना करे कि हे राम, मेरे सहायक बनो, मुझे प्रतिज्ञा पूरी करनेमें सहायता दो। यदि आप ऐसा करेंगे तो शराब देखकर आपका मन विचलित नहीं होगा, किसी बहनको देखकर मनमें विकार उत्पन्न न होगा। लड़की बेचारी तो गाय है। उसे बेचते हुए स्वयं आपके मनमें अपने प्रति तिरस्कार पैदा होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

४. भाषण: अन्त्यज परिषद्, सोजित्रामें

१६ जनवरी, १९२५

हमें अपने दुर्गुण न तो छिपाने चाहिए और न उनके कारण शरमाना चाहिए। बहनोंको हुक्का पीते देखकर मुझे कष्ट होता है। उनके मुँहसे दुर्गंध आती है। जिन्हें शराबकी लत है उनका भी यही हाल है। शराब पीनेवालोंकी क्या दशा होती है, मुझे इसका अनुभव है। भाँग पीनेवालोंका भी मुझे अनुभव है। शराब और भाँग एक-सी चीजें हैं। मैं तो यही चाहता हूँ कि आप इन सब व्यसनोंका त्याग करें और यदि आप मेरी बात सुनें तो माँस खाना भी बिलकुल छोड़ दें।

अन्त्यजोंका स्पर्श न करनेवाले सज्जन अनेक आपत्तियाँ खड़ी करते हैं; जब मैं उन लोगोंसे बहस करता हूँ, तब वे कहते हैं कि अन्त्यज बहुत गन्दे रहते हैं, शराब पीते हैं और माँस खाते हैं। मैं जवाब देता हूँ कि ब्राह्मणों, वैश्यों और दूसरी जातियोंमें भी ऐसे लोग होते हैं, फिर भी उनके बच्चे शालाओंमें जाते हैं, मन्दिरोंमें जा सकते हैं, यह उलटा न्याय किस लिए? तथापि आपसे तो मैं यही कहूँगा कि आपके खिलाफ जो-जो बातें कही जाती हैं उनसे आप अपनेको बरी रखें, जिससे फिर उन्हें भी कुछ कहनेकी गुंजाइश न रहे। अपना काम करनेके बाद आपको रोज नहाना जरूर चाहिए। भंगीका काम मैंने बहुत किया है। मेरे लड़कोंने भी यह काम बहुत किया है। आपके रावजीभाईने[1] भी किया है। इसमें शर्मकी कोई बात है ही नहीं; यह तो एक पवित्र काम है। जो शख्स गन्दगी हटाता है वह पवित्र काम करता है। आप यदि खाल उतारें या साफ करें तो उसके बाद नहायें। भले आदमी हमेशा दातून करते हैं, दाँत साफ करते हैं, और नहा धोकर शरीर भी साफ रखते हैं। आप इतना सब करें और हाथमें माला लेकर रामनाम जपें। माला न हो तो उँगलियोंपर रामनाम जपें। इस रामनामके लेनेसे आपके व्यसन छूट जायेंगे, आप स्वच्छ हो जायेंगे और सब आपको मान देंगे। सुबह उठकर रामनाम लेनेसे और सोते समय रामनाम लेनेसे दिन अच्छी तरह बीतेगा। और रातको बुरे सपने भी नहीं आयेंगे। स्वच्छ रहनेके लिए यह भी जरूरी है कि किसीकी जूठन या किसीका दिया हुआ बासी भोजन न लिया जाये। मेवा-मिठाई भी यदि जूठी दी जाये तो स्वीकार न करें और खुद हाथसे

१. रावजी भाई पटेल; विगत कुछ वर्षोंसे वे जिलेके अन्त्यजोंमें काम कर रहे थे।

बनाकर खायें। आपका जन्म जूठन खानेके लिए नहीं हुआ है। आपके भी आँख हैं, नाक है, कान हैं। आप पूरे मनुष्य हैं, इसलिए आप मनुष्यत्वकी रक्षा करना सीखें।

ऐसे भी बहुतसे लोग हैं जो आपसे आकर कहेंगे कि तुम्हारा हिन्दू धर्म किसी कामका नहीं है। वह तुम्हें मदरसे या मन्दिर जानेकी इजाजत नहीं देता। तो उनसे कहना कि हम अपने हिन्दू भाइयोंसे स्वयं निपट लेंगे, भाई-भाई या बाप-बेटे यदि लड़ें तो जिस तरह कोई उनके बीच नहीं पड़ता उसी तरह आप भी हमारे बीच न पड़िए — आप उन्हें यह जवाब दें और अपने धर्मपर आरूढ़ रहें। मैं खुद जात-बाहर हूँ, मेरे जैसे कितने ही लोग जात-बाहर हैं, तो क्या इससे मैं अपना धर्म छोड़ दूं? कितने ईसाई मित्र मुझसे कहते हैं कि तुम ईसाई हो जाओ। मैं उनसे कहता हूँ मुझे अपने धर्ममें कोई कमी नहीं मालूम होती, मैं क्यों उसे छोड़ूँ? मैं भले ही जात-बाहर रहूँ, पर यदि मैं पवित्र हूँ, स्वच्छ हूँ तो मुझे किस बातका दुःख हो सकता है? यदि कोई हिन्दू इसलिए मुझे सताये कि मैं अन्त्यजोंको गले लगाता हूँ, तो क्या मैं हिन्दू धर्म छोड़ दूंगा? हिन्दूपन मेरे अपने लिए है, मेरी आत्माके लिए है। ईसाई और मुसलमान दोनोंसे आप यह बात कहें और हिन्दू धर्ममें दृढ़ रहें। अन्त्यज लोग शतरंजके मोहरे या बाजी नहीं हैं कि जो चाहे उनसे खेल करें। मैं आपको भाई-बहन कहता हूँ, आपके पास आता हूँ, सो अपनी गरजसे। इसमें मेरा यह स्वार्थ है कि मेरे पूर्वजोंने आपके साथ जो पाप किया है, मैं उसे धो डालूं। पर आपके प्रति यदि कोई कुछ पाप करता है तो पापका भागी वह होता है, आप नहीं। इसलिए आप धर्मका त्याग क्यों करें? प्रायश्चित्त तो हमें करना है। आप रामनाम क्यों छोड़ें? रामका यह न्याय है कि जो रामका सेवक है, रामका दास है, उसे वह दुःख दिया ही करता है और इस तरह उसकी आजमाइश करता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस आजमाइशमें पूरे उतरें।

आखिरमें मुझे आपसे यह कहना है कि मनमें दया रखें क्योंकि दुनियाके हम सब प्राणी परस्पर प्रेमके बलपर जीते हैं। और अन्तमें यह कहना चाहूँगा कि आप सब चरखा चलायें, खादी बुनें और खादी ही पहनें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

५. भाषण : बारडोलीमें

१७ जनवरी, १९२५

यह नारियल, सूत और पैसा आदि लेकर मुझे सुख नहीं होता। मैं इसे ले लेता हूँ, बस इतना ही समझिए। किन्तु मैं तो सच्चे आदमीकी खोजमें हूँ। मैंने वराडमें एक बड़ी अच्छी पाठशाला देखी। वहाँ बहुतसे अच्छे-अच्छे शिक्षक हैं। किन्तु विद्यापीठके इस प्रस्तावके बाद कि अन्त्यज बालकोंको शालामें प्रवेश दिया जाना चाहिए, उस राष्ट्रीय शालामें से बहुतसे अभिभावकोंने अपने बालक हटा लिये हैं। मैं आपको यह भी कह देना चाहता हूँ कि बादमें राष्ट्रीय शाला और गाँवकी शालाको एक करनेका प्रस्ताव भी पास हुआ है। किन्तु पहले अपने कर्त्तव्यको भूल जाना और फिर उसे याद करना इसमें क्या सार है? क्या हम सन् १९२१ में नाटक कर रहे थे?[१] उन दिनों हमारा विश्वास था कि अस्पृश्यता-निवारणके बिना यदि स्वराज्य मिलता है, तो भी वह निकम्मा है; खादीके बिना स्वराज्य मिलता है तो वह निकम्मा है। किन्तु आज देखता हूँ कि बारडोलीमें श्रद्धा नहीं बची है, हिम्मत नहीं बची। सच्ची हिम्मत तो वही है कि सबके हार मान लेनेके बाद जो पाँच-पच्चीस आदमी बच रहें वे अन्ततक उठाये गये कामको पूरा करें। बारडोलीने न खादीका कार्यक्रम पूरा किया और न अस्पृश्यताका। और दुबलोंका भी बुरा हाल किया। मैं तो चाहता हूँ कि जो भूल हो गई है, बारडोली आज भी उसे सुधार ले। मैं बारडोलीके प्रति अपनी आशाका त्याग करनेवाला नहीं हूँ। बहनोंकी आँखोंमें जो प्रेम और चमक दिखाई देती थी, वह आज भी जैसी की तैसी है। वे सूत, पैसा आदि जो-कुछ लेकर आई हैं, अपने-आप लेकर आई हैं, किसीके कहे बिना लाई हैं, ऐसा मैंने सुना है। शक्ति तो पुरुष ही गँवा बैठे हैं। भाई रायचुराको[२] यह कहनेके बजाय कि गुजरातने पंजाब, बंगाल इत्यादिकी लाज रख ली, कहना यह चाहिए कि गुजरातने लाज छोड़ दी। गुजरातके लिए आज भी मौका है। मैं आज जेलमें जानेके लिए नहीं कहता। आज तो मैं इतना ही कहता हूँ कि जो हमारा स्वाभाविक धर्म है और जिसे पालना अत्यन्त आवश्यक है, हम उसका पालन करें। मुझे यहाँ आनेकी धुन नहीं लगी थी। मैं जो यहाँ आया हूँ, सो अपना धर्म समझकर आया हूँ। मैं निराश नहीं हूँ, किन्तु उदास जरूर हुआ हूँ। कारण यह है कि आप आज भी आत्मविश्वासको खोकर बैठे हुए हैं। किन्तु समय चला नहीं गया है। बहिष्कारकी बात तो एक क्षणिक बात थी। उसे जाने दीजिये। जो बातें केवल स्वराज्य-प्राप्तिके लिए साधन-मात्र थीं, उन्हें मैंने फिलहाल त्याग दिया है। फिर भी आपको उन सब बातोंका पालन तो करना ही चाहिए जो आत्मशुद्धिके साधन हैं — अर्थात् खादी, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम एकता। आप इनका

१. संकेत असहयोग आन्दोलनकी ओर है।

२. स्थानीय कवि; कदाचित् उन्होंने उस दिन सभामें इस आशयकी कविता पढ़ी थी।

आचरण कीजिए। स्वराज्य मिलता है या नहीं, इसकी चिन्ता किये बिना इन सबका धर्म मानकर पालन कीजिए; नहीं तो सर्वनाश हुए विना नही रहेगा। अस्पृश्यता-निवारणके बिना हिन्दू धर्मका नाश हो जायेगा और यदि खादीको व्यापक नही बनाया गया, तो देशमें ऐसी भुखमरी फैलेगी कि हम कंकाल-मात्र बच रहेंगे और हमारा मांस कौए-कुत्ते खा जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२५

६. काठियावाड़के संस्मरण

प्रेम-सागरमें

मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ सभी जगह मुझे असाधारण प्रेम दिखाई देता है। इसलिए अब मुझे उसमें कुछ अनोखापन नहीं लगता। मैं तो जहाँ जाता हूँ, वहाँ काठियावाड़के ही दर्शन करता हूँ। फिर भी काठियावाड़के प्रेमका प्रभाव कुछ जुदा ही पड़ता है। या तो मुझे काठियावाड़में प्रेमकी आवश्यकता ही महसूस नहीं होती अथवा मुझे काठियावाड़की ओरसे प्रेमके प्रदर्शनकी इच्छा ही नहीं होती। मेरी भावना क्या है, मैं इसे समझ ही नही सकता। काठियावाड़में प्रेमका प्रदर्शन किस लिए? जो "प्रेम-पूर्तिके लिए विनय" की अपेक्षा करता है, वह कैसा स्नेह?

अतिरिक्त आशा

शायद ऐसा भी हो सकता है कि मैं काठियावाड़में कुछ अधिक आशा रखता हूँ और शायद इसलिए मुझे उसके बाह्य प्रेमसे सन्तोष ही नहीं होता। कहीं ऐसा तो नही है कि मैं प्रेमके इस प्रदर्शनसे मन ही मन असन्तुष्ट हो रहा हूँ। यदि कोई माँ विधिका पालन करनेकी धुनमें बच्चेको रोटी परोसना भूल जाये और उसके लिए चौका लगाने बैठ जाये, तो जिस तरह बच्चेको उपेक्षाका भान ही होगा, कहीं मुझे भी तो वैसा नहीं लग रहा है? क्या मैं अपने व्यवहारसे इस बातको स्पष्ट नही कर रहा हूँ कि प्रेम-प्रदर्शन छोड़कर यदि आप लोग मुझे वह वस्तु दे देंगे, जिसे माँगनेके लिए मैं लाज-शर्म छोड़कर आ गया हूँ, तो मुझे अधिक सन्तोष होगा। बात ऐसी ही है।

वात ऐसी हो या न हो, मैं भावनगरमें[1] इस भावसे आकर बैठ गया कि यह मेरे पिताकी भूमि है और हवाई-महल बनाने लगा। मेरा भी सपना निष्फल नही हुआ। स्वागत समितिने तमाम प्रस्ताव पेश करनेकी तैयारी कर रखी थी। मैंने तो उन्हें लगभग अमान्य ही कर दिया। मैंने सुझाव दिया कि इन प्रस्तावोंको वापस ले लिया जाना चाहिए। किन्तु यह बात सभीके गले नही उतरी, फिर भी समितिने मेरी वह सलाह स्वीकार कर ली।

१. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के लिए। परिषद् ८ और ९ जनवरी, १९२५ को गांधीजीकी अध्यक्षतामें हुई थी। देखिए खण्ड २५।

चरखा

मैं भावनगर ऐसा सोचकर नहीं गया था कि वहाँ चरखेको मताधिकारकी एक शर्तके रूपमें स्वीकार कर लिया जायेगा। इसलिए चरखेके बारेमें प्रस्ताव देखकर मैं तो प्रसन्न ही हुआ था। किन्तु उस प्रस्तावमें कुछ बातें जरूरतसे ज्यादा थीं। उसमें कहा गया था कि प्रतिवर्ष हरएक सदस्यको ५० रुपये मूल्यकी खादी बेचनी चाहिए और कार्यकारिणी समितिके सदस्योंको ५०० रुपये तककी। मैंने इस बातको वापस लेनेका सुझाव दिया। यदि सदस्यगण इस हदतक उत्तरदायित्व स्वीकार करनेके लिए तैयार हो जायें, तब तो हम अविलम्ब विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकते हैं। किन्तु मताधिकार पानेके लिए ऐसी कोई शर्त लगा देना, जो दूसरोंके सहयोगके बिना पूरी नहीं हो सकती, मताधिकारके मूल तत्त्वपर ही आघात कर देना है।

यद्यपि यह शर्त मताधिकारकी हदतक हटा ली गई है, फिर भी जो लोग खादीका प्रचार कर सकते हैं, वे लोग तो करेंगे ही। विषय-समितिमें जो चर्चा हुई वह मुझे अतिशय प्रिय लगी। सबने अपनी-अपनी बात निडर होकर कही। मैंने देखा कि कातनेके विरोधमें मत-प्रदर्शित करनेवाले लोग भी काफी थे। किन्तु उनका तर्क अधिकतर लोगोंको पसन्द नहीं आया। यहाँ अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादियों जैसे कोई वर्ग कदापि नहीं थे, इसलिए चर्चा कातनेके गुण दोषोंको लेकर ही होती रही। इस सम्बन्धमें दो परस्पर विरोधी मत थे। एक कातनेके पक्षमें और दूसरा कातनेकी शर्तको मताधिकारके साथ जोड़नेके विरोधमें।

जिन लोगोंने कातनेके पक्षमें मत दिया है, उनका कर्त्तव्य बिलकुल स्पष्ट है। उन्हें अपनी अविचल निष्ठा स्वयं कातकर और अन्य प्रकारसे खादीका प्रचार करके सिद्ध करनी है। यदि वे इस प्रकार खादीके पक्षमें मत देनेके बाद नियमसे नहीं कातते तो वे काठियावाड़ और मुझे, दोनोंको, दगा दे रहे हैं, ऐसा कहा जायेगा। और यदि वे निरन्तर कातते रहे, तो वर्षके अन्तमें देखेंगे कि जो कातनेवाले नहीं हैं, वे भी कातन लगे हैं।

खादी पहनो

जो बात कातनेके विषयमें है, वही खादी पहननेके विषयमें भी है। खादी पहननेकी बातका तो लगभग कोई विरोध ही नहीं था। खादी पहननेके पक्षमें इतने मत आनेके बाद भी काठियावाड़में खादी पहननेवालोंकी संख्या इतनी कम है, यह देखकर दु:ख होता है। इसे बड़े दु:खकी बात कहना चाहिए कि काठियावाड़की खादी बाहर जाती है और उसकी स्थानीय बिक्री बहुत ही थोड़ी होती है। किन्तु अब चूँकि खादीके पक्षमें इतने मत आये हैं, आशा की जा सकती है कि उसकी बिक्री काठियावाड़में काफी बढ़ जायेगी।

आजन्म सदस्य

काठियावाड़ राजनीतिक समितिके लगभग ३६ आजन्म सदस्य हैं, क्योंकि उन्होंने उसका शुल्क पाँच रुपया एक ही बारमें दे दिया है। इन सदस्योंमें से एकने आजन्म

सदस्योंके अधिकारके विषयमें प्रश्न उठाया और मुझसे अध्यक्ष होनेके नाते निर्णयकी माँग की। कताईसे सम्बन्धित प्रस्ताव अपनी विरोधी धाराओंको रद्द कर देता है और इसलिए प्रश्न उठता है कि आजन्म सदस्योंका हक रहा या गया? अर्थात् प्रस्तावके अनुसार यदि वे नही कातते है और दूसरोंसे भी नहीं कतवाते हैं, तो क्या शुल्क देकर आजन्म सदस्य होनेके उनके हक समाप्त हो जाते हैं — प्रस्तावके अनुसार हो जाने चाहिए। प्रश्न अटपटा था, किन्तु कोई निर्णय दिये बिना छुटकारा नहीं था। मैंने निर्णय दिया कि आजन्म सदस्य चाहे कातें चाहे न कातें, वे आजन्म सदस्य तो बने ही रह सकते हैं। कायदेके मुताबिक समिति ऐसे अधिकार रद्द करनेमें सक्षम है या नहीं, मैंने इस विषयमें कोई निर्णय नही दिया। मुझ इतना ही तय करके बताना था कि समितिका प्रस्ताव आजन्म सदस्योंके अधिकारोंको प्रभावित करता है या नहीं और मैंने इस प्रश्नके उत्तरमें आजन्म सदस्योंक पक्षमें अपना निर्णय दिया।

उनसे प्रार्थना

फिर भी मैं उनसे यह प्रार्थना करूँगा कि वे अपने अधिकारसे लाभ न उठायें, बल्कि परिषद्के मन्त्रीको पत्र लिखकर सूचित करें कि उन्होंने स्वेच्छासे परिषद्का प्रस्ताव स्वीकार करके अपना हक छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि अधिकांश सदस्य ऐसा कोई प्रश्न उठाना भी नहीं चाहते थे। उनमें से बहुतसे लोग कातनेके लिए तैयार भी हैं। इसलिए जब परिषद्ने कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं, तब मेरी नम्र सम्मतिमें उसके आजन्म सदस्योंका अपने अधिकारपर जोर देकर प्रस्तावका सम्मान न करना अनुचित है।

सर प्रभाशंकर पट्टणी

सर प्रभाशंकर पट्टणीका कातनेकी प्रतिज्ञा लेना, मेरी समझमें परिषद्का एक बड़ा काम है। उन्होंने जिन शब्दोंमें शपथकी घोषणा की, वे अतिशय गम्भीर थे। सदस्योंपर उसका प्रभाव भी गहरा हुआ। प्रतिज्ञाका मूल कारण इस प्रकार था: बेलगाँव कांग्रेसके[1] समाप्त होनेके बाद अनेक सज्जनोंने यह निश्चय किया था कि वे पहली मार्चके पहले-पहले अमुक संख्यामें कातनेवाले सदस्य बनायेंगे। मैंने स्वयं ऐसे १०० सदस्य बनानेका उत्तरदायित्व लिया था और साथ ही यह भी कहा था कि मैं ऐसे दो व्यक्तियोंको भी कातनेवाले सदस्य बनाऊँगा जो कातनेका विरोध करनेवाले माने जाते हैं। मुझे काठियावाड़में तो आना ही था, इसलिए मैंने सोचा था कि ये दो नाम मैं काठियावाड़में ही खोज निकालूँगा। कातनेके विरोधी सदस्योंमें मैंने पट्टणी साहबका नाम सोचा था। जब कातनेसे सम्बन्धित प्रस्ताव विषय-समितिने स्वीकार किया, तब मैंने १०० नामोंवाली बात कही और यह वचन भी दिया कि मैं पट्टणी साहबको कातने पर राजी करूँगा। मेरा यह कहना था कि पट्टणी साहब खड़े हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि तबीयतके अच्छे रहते हुए वे भोजनसे पहले हमेशा नियमके साथ कमसे-कम आधा घंटा अवश्य कातेंगे। उन्होंने एक शर्त यह अवश्य रखी कि मैं उन्हें कातना

१. दिसम्बर, १९२४ में।

सिखाऊँगा। यह तो मेरे मनकी बात हुई। परिषद् समाप्त होनेके बाद मुझे उनका मेहमान रहना था। परिषद्के दूसरे ही दिन मैंने उन्हें आधा घंटा कातना सिखाया। उस आधे घंटेमें ही उन्होंने पूनीमें से तार निकालना सीख लिया। दूसरे दिन उन्होंने दो घंटेमें ८ नंबरका ४८ गज खासा अच्छा सूत काता और तीसरे दिन एक घंटेमें २७ गज काता। इन दोनों दिनों नहाकर सूत कात लेनेके बाद ही उन्होंने भोजन किया। यदि अन्य प्रतिष्ठित अधिकारी और राजवंशी-गण इसी प्रकार सूत कातकर उदाहरण उपस्थित करें, तो देशके गरीब लोगोंके ऊपर बड़ी अच्छी छाप पड़ेगी और वे उद्यमी बन जायेंगे। मुझे आशा है कि पट्टणी साहबकी प्रतिज्ञा सर्वांशमें सफल होगी।

मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे कांग्रेस या काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के सदस्य नहीं बनेंगे। वे बनें, यह मेरी माँग भी नहीं थी और न इच्छा ही थी। मेरी दृष्टिसे कातनेका राजनीतिसे सम्बन्ध है। किन्तु उस सम्बन्धकी बात सोचे बिना भी काता जा सकता है। कातनेमें गरीबके प्रति जो दयाकी भावना है, जो धार्मिक भावना है और उसके पीछे जो आर्थिक दृष्टि है वह तो सभीको स्वीकार्य होने योग्य वस्तु है। मैं तो चाहता हूँ कि लॉर्ड रीडिंग भी कातें। यदि राजनीतिका खयाल किये बिना राजा और प्रजा दोनों सूत कातनें और खादी पहनने लग जायें, तो मैं भलीभाँति जानता हूँ कि हिन्दुस्तानका उद्धार अपने आप हो जायेगा। यह ऐसा काम है कि जिसमें सभी निस्संकोच भाग ले सकते हैं और हिन्दुस्तानकी थोड़ी-बहुत सेवा भी कर सकते हैं।

कपासकी उगाही

परिषद् जैसे ही समाप्त हुई, वैसे ही भाई देवचन्द पारेख, भाई मणिलाल कोठारी, भाई बरजोरजी, भरूचा वगैरा इस विचारसे कपास उगाहनेके लिए निकल पड़े कि गरीबोंको कपास देकर उनसे उनके आधे घंटेका श्रम प्राप्त किया जा सके। भावनगर छोड़नेके पहले ही उन्होंने लगभग २७५ मन कपास इकट्ठी कर ली। उम्मीद है कि केवल काठियावाड़के ही दानसे लगभग २,००० मन कपास मिल जायेगी। मैं आशा करता हूँ कि कपास इकट्ठा करनेका यह काम उत्साहपूर्वक किया जायेगा और जो कपास देनेकी स्थितिमें हैं, वे उसे देनेमें बिलकुल आगा-पीछा नहीं करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-१-१९२५

७. भाषण : भुवासणमें

१८ जनवरी, १९२५

आदमी सोचता क्या है और करता क्या है? मैं मेरे और आपके दुःखकी बात नहीं सोचना चाहता। हमने बारडोलीकी मारफत हिन्दुस्तानका बहुत-सा काम करनेकी बात सोची थी।[1] किन्तु आदमी कितना विचार करता है और भगवान उसमें से कितना पूरा करता है, इसे कोई नही जानता। हम तो उसके हाथकी कठपुतलियाँ है।

मैं दो-चार मोटी-मोटी बातें कहूँगा। आप लोग खूब कातते थे और बुननेमें दिलचस्पी लेते थे। आपके बीच शंकरलाल बैंकर रहते थे। अभी भोजन करते-करते मैं उनसे पूछ रहा था कि जब तुम यहाँ रहते थे, तब तुम्हारी यहाँ क्या स्थिति थी। उन्होंने कहा कि आप सब लोग उनसे कहा करतें थे कि "और कुछ भी क्यों न हो जायें, किन्तु खादीका मन्त्र हम समझ गये हैं। हम अच्छेसे-अच्छे बीज बोकर कपास पैदा करते हैं। हमें उसकी जानकारी है और हमारे पास समय भी है। तब फिर हम अपना कपड़ा स्वयं क्यों न तैयार करें?"

यह अच्छी बात है। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि बारडोली ताल्लुका जिस तरह अन्नके सम्बन्धमें स्वावलम्बी है, उस तरह वह वस्त्रके सम्बन्धमें भी स्वावलम्बी बन जाये और बारडोलीके बच्चे, स्त्री और पुरुष आलसी होनेके बदले उद्यमी बनें। ऐसा नहीं है कि जो लोग ईश्वरकी कृपासे पैसेवाले हो जाते हैं। उन्हींको उद्यमी होनेकी जरूरत है। जो बिलकुल कमजोर हैं. यदि उनके पास भी कोई छोटा-मोटा उद्यम हो तो यह एक अच्छी बात है। यह कहावत बिलकुल सच है कि "नवरो बेठो नख्खोद वाळ"[2]। कातने, बुननेका काम करके हम अपनी स्थिति सुधार सकते हैं और भुखमरी-की हालतको समाप्त कर सकते हैं। सम्भव है, आप जैसे लोगोंको भूख किस चिड़ियाका नाम है, सो मालूम न हो, किन्तु कालीपरजों या दुबलोंके लिए यह एक वस्तुस्थिति है। उनकी हालत लगभग पशुओं जैसी है। जिनके पास जमीन है, उनकी स्थिति शायद अच्छी हो, किन्तु इनमेंसे जो लोग सफेदपोशोंकी चाकरी बजाकर अपना पेट भरते हैं, अगर आप उनकी आँखोंको गौरसे देखें तो लगेगा कि उनकी हालत अच्छी नहीं है। मैंने एक गाँवमें ऐसे बहुतसे-दुबलोंको देखा।

मैं किसीसे यह नहीं कहता कि फिलहाल तुम्हें जेल जाना है। केवल दयालजी[3], वल्लभभाई और मुझे जेल जाना पड़ सकता है; और सो भी आज नहीं। इसका सबब यह है कि सन् १९२१ में जो नीति निश्चित हुई थी, उसके अनुसार हरएकको

१. १९२२ में सरकारकी खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य सम्बन्धी नीतिसे विरोध प्रकट करनेके लिए यहाँ सबसे पहले सामूहिक सविनय अवज्ञा करनेका फैसला किया गया था।

२. निठल्ला अपनी जड़ खोदता है।

३. दयाळजी देसाई; सूरतके एक सार्वजनिक कार्यकर्ता।

अपनी इच्छासे जेल जाना था। किन्तु आज जेल जानेका समय नहीं है। आज जेल जानेके लिए दूसरी ही शर्तें लागू होंगी। भारतके सर्वसाधारण लोगोंने अभी उन गुणोंका अर्जन नहीं किया है जो जेल जानेके लिए आवश्यक होते हैं। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि इने-गिने लोग ही इस कामके लिए काफी होंगे। ये इने-गिने लोग आप लोगोंमें से चुने जा सकें, यह मेरी महत्त्वाकांक्षा है। किन्तु वह एक अलग बात है। इस समय मेरी अपेक्षा कुछ और ही है।

आप एक अच्छा काम करते थे। सब लोगोंको आशा थी कि हम बारडोलीमें चाहे और कुछ भी न कर सकें, किन्तु खादीका उत्पादन अवश्य कर सकेंगे। आप समझ गये थे कि यह करनेमें ही आपकी शोभा है। किन्तु इस समय आप यह सब भूल गये हैं। आपकी श्रद्धा कहाँ चली गई? मेरे जैसा कोई आदमी यदि आप लोगोंके बीचमें आये और उतावलीमें एकाध काम शुरू कर दे, ऐसा काम जो आप लोगोंको पसन्द नहीं है, तो क्या आप उसकी बातोंमें आकर अपने हाथका अच्छा काम भी छोड़ देंगे।

किन्तु आपने तो यही किया। आपने आश्रमकी स्थापना की थी। आश्रमके लिए एक पारसी भाईने पैसा दिया था। यह पारसी भाई हातमताई-जैसा उदार व्यक्ति था। उस जैसे उदार आदमी कम ही होंगे। वह राजा बलिके समान दानी था। इसका नाम था रुस्तमजी।[1] सरभोणकी बस्ती जबतक रहेगी, तबतक इसका नाम भी अमर रहेगा। उसका आप लोगोंसे कोई ताल्लुक नहीं था। आपका और उसका धर्म भी एक नहीं था। किन्तु उसने इन सब बातोंको नहीं सोचा। जब उसने सुना कि बारडोलीके लोग बहादुर हैं और आत्मत्यागी हैं, तो उसने पैसा भेज दिया और उस पैसेसे आपने जो दो आश्रम बनाये उनके कार्यकर्त्ताओंको जीवन-वेतन दिया जा रहा है।

इन आश्रमोंमें गुजरातके उत्तमसे-उत्तम सेवक भी आये। नरहरि[2] भी उनमें से एक थे। किन्तु उसने तो आपका गुनाह किया। अगर मैं अपने लड़केको अपनी जगह बिठा दूँ और वह गलती करे तो वह गलती मेरी मानी जायेगी — अगर वह बिगड़ा हुआ लड़का हो तो बात दूसरी है। नरहरिको मैंने अपनी जगह बैठाया। आश्रममें यह मेरे साथ काम करनेवाला आदमी है और मेरा उसपर विश्वास है। हमने बाहरसे पैसा लाकर बारडोलीमें उँडेला। सारी दुनियामें हमने बारडोलीका नाम उजागर किया। सारे देशमें बारडोलीके गीत गाये गये। लोगोंने यह सोचकर वहाँ कार्यकर्त्ता भेजे कि अगर बारडोलीकी बदनामी हुई तो यह बहुत बुरी बात होगी। नरहरि भी इन्हींमें से एक था। उसने आपका जो अपराध किया, वह यह था कि उसने दुबलोंको पढ़ाना और उनकी सेवा करनी शुरू की। मैं आपसे कह देना चाहता हूँ कि यह तो एक करने लायक अपराध था।

हिन्दू धर्म सिखाता है कि गरीबसे-गरीबकी सेवा करके ही हम अपने मुँहमें कौर डालें। हमारा धर्म हमसे कमजोर पशुओंका रक्षण करनेके लिए भी कहता है।

१. पारसी रुस्तमजी; द० आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी।

२. नरहरि द्वारकादास परीख।

उनकी हड्डी-हड्डी दिखती हो, तो भी वह उन्हें अवध्य कहता है। हमें चींटियोंको भी चून डालना चाहिए, प्राणि-मात्रपर ममता रखनी चाहिए। ऐसा शिक्षण देनेवाला धर्म हमसे यह अपेक्षा नहीं रखता कि हम मनुष्योंके साथ पशुओंसे भी खराब व्यवहार करें। वह तो हमें गरीब आदमीपर दया रखना ही सिखाता है। हमें उनके साथ सगे-सम्बन्धियों जैसा व्यवहार करना चाहिए। बहुत-से पुराने कुटुम्बोंमें नौकर, नौकरकी तरह नहीं, मालिककी तरह होता है। हम उनके बच्चोंको जो हमारे ही बच्चोंकी तरह हैं, बिना खिलाये कैसे रह सकते है?

मैं कौन हूँ और नरहरि कौन है? किसीके साथ जबरदस्ती तो नहीं की जा सकती। नरहरि, जुगतराम[1] और अन्य लोग आपके ऊपर जबरदस्ती करनेके लिए नहीं आये थे। किन्तु अगर उन्हें दुःखका अनुभव होता है, तो वे क्या करें? अगर आदमी निर्दयी बन जाये और अपनी पत्नीको मारे तो पत्नी क्या कर सकती है? वह रोयेगी और अन्न छोड़ देगी। आदमी गुस्सा करता है तो इसमें दोष आदमीका है कि ईश्वर का? मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ। मैं विवाहित हूँ और मुझे गृहस्थीका अनुभव है। पति और पत्नीके बीचमें यदि झगड़ा हो जाये, तो औरत या तो कटुशब्द कहेगी या रोयेगी, नरहरिने ऐसा ही किया, जैसा स्त्री करती है। उसने खाना बन्द कर दिया और आप लोगोंने माना कि उसने आपके ऊपर अत्याचार किया है। किन्तु बात एसी नहीं थी। यह व्यक्ति सत्याग्रह कर चुका है। सरकारके विरोधमें सत्याग्रह करनेवाले व्यक्तिने आपके विरोधमें भी सत्याग्रह किया। सरकारके विरोधमें किये जानेवाले सत्याग्रहमें उपवासका स्थान ही नहीं है। आपने देखा है कि मैं खुद भी ऐसा नहीं करता। मैंने बम्बईमें उपवास[2] किया था, किन्तु वह अपने ही लोगोंके विरोधमें था — कांग्रेस और खिलाफतके लोगोंके विरोधमें। किन्तु आप लोगोंने जो काम किया है, उसे तो मेरी मौत ही समझिए। किसीको कष्ट देना, जैसा चौरी-चौराके लोगोंने किया, वैसा काम करना सरकारके विरोधमें किया गया सत्याग्रह नहीं कहला सकता। सरकारके विरोधमें किये जानेवाले सत्याग्रहमे जेल जाना शामिल था; किन्तु उसमें भूखे मरकर ममता उत्पन्न करनेकी बात शामिल नहीं थी। सरकारका हमारी तरफ वैरभाव था, किन्तु नरहरिका तो आपके साथ सेवाभाव और प्रेमभाव था, मित्रताका दावा था। उसका मन तड़प उठा, किन्तु आप क्रोधसे भर गये। अगर आप उसे मार डालते, तो कोई बात नहीं होती। किन्तु आप स्वयं अपने ऊपर क्रोधित क्यों हुए? आपने खादी क्यों छोड़ी? आपने समझा कि नरहरि आपसे झगड़ना चाहता है। आप यह भी कह सकते थे कि आप दुबलोंके लिए कुछ नहीं करना चाहते। किन्तु धुनना, कातना और खादी पहनना छोड़नेका क्या अर्थ है? यह कितना बड़ा जुल्म, कितना बड़ा अनर्थ है?

इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप लोग उसे फिर अंगीकार करें और अपने कियेका पश्चात्ताप करें। और वह इस रूपमें कि मिलके कपड़ेका व्यव-

१. जुगतराम दवे; लेखक और शिक्षाविद्, पिछड़ी हुई जातियोंकी सेवामें रत रचनात्मक कार्यकर्ता।
२. नवम्बर १९२१ में।

हार छोड़ना आप अपना धर्म मानें और सूत कातने लगें। नरहरिने मुझसे पूछा कि क्या हम लोग सरभोण छोड़ दें। मैंने कहा कि नहीं, यह तो कायरका काम है। यदि ऐसा करोगे तो लोग चिढ़ जायेंगे। तुम उन लोगोंको छोड़कर भाग नहीं सकते, अपने स्थानसे भ्रष्ट नहीं हो सकते। तुम्हें तो वहाँ रहकर ही यह बतलाना चाहिए कि तुम उनका बुरा नहीं करना चाहते; यह बात सेवा करके ही बताई जा सकेगी, भाग कर नहीं। किन्तु काम डटकर बैठनेसे होगा। अगर कोई तुम्हारी सेवा स्वीकार न करे, तो तुम अपने स्थानपर ही रहकर कातो, बुनो और धुनो। मैंने ऐसा ही उससे कहा। इससे उसकी आत्माको शान्ति मिली या नहीं, सो मैं नहीं जानता। उसे आपका बरताव सहन न हो, तो बात अलग है। किन्तु उसका धर्म है कि वह दुबलों और अन्त्यजोंको पढ़ाये। वह आपके साथ झगड़ा नहीं करना चाहता; इस ओरसे मैं आपको निर्भय करता हूँ।

मैं आपसे भी अभय माँगना चाहता हूँ। अगर आपका एक हाथ रूठ जाये तो दूसरेको उसकी छूत न लगने दें। एक पक्षके क्रोधित होनेपर दूसरे पक्षको क्रोधित होने देनेमें न न्याय है, न बुद्धि, न विवेक और न दूरंदेशी। यह तो 'पच्छिम बुद्धि' कहलाती है। जो सवाल पूछे जा रहे थे उन्हें मैं सुन रहा था। आप लोगोंको -- सरभोणके आसपासके भाइयोंके लिए धुनना और कातना मुश्किल नहीं है। फिर भी वे अगर २,००० गज सूत नहीं दे सकते, तो कितनी शर्मकी बात है। जो बारडोली बहादुरोंकी तरह बात करती थी, अब वह इतना करनेसे डरती है। वराडकी राष्ट्रीय शालामें सभी विद्यार्थी सूत कातते हैं। पढ़ाई भी अच्छी तरह चल रही है। सुणावमें भी सभी कातते हैं। वराडके एक शिक्षकने २० दिनोंतक १५ घंटे रोज काम करके ७०,००० गज सूत काता। यह स्थान भी तो बारडोली तहसीलमें ही है।

क्या आप सब लोग हम लोगोंके प्रति शंकित हैं? क्या हम आपको किसी खाईमें ढकेलना चाहते हैं? अगर आपके मनमें ऐसा कोई भय हो, तो उसे निकाल दीजिए। क्या एक भी ऐसा प्रसंग है, जब किसीने आपको धोखा दिया हो? मैं आपसे और क्या कहूँ?

बहनो, आप मुझे नारियल, सूत और पैसा देती हैं, इससे मुझे खुशी नहीं होती। मैं बारडोलीकी बहनोंसे बड़ी आशा रखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप विदेशी कपड़े को बिलकुल ही काममें न लायें। अगर आप अपने हाथकते सूतकी साड़ी बुनवाकर पहनें तो कितना अच्छा हो। मैं आपकी मारफत रामराज्य लाना चाहता हूँ। आप लोग सीता जैसी हो जायें तो कितना अच्छा हो। आपके बच्चोंको धर्म और कर्म दोनों सीखने चाहिए। आपमें से कुछ लोग दक्षिण आफ्रिकासे नाजायज तौरसे पैसे कमाकर भेजते हैं। लेकिन एक जुलाहा ४० रुपये महीना कमा लेता है। अगर आपके बच्चे यह काम सीख लें तो वे सुखी रहेंगे। आप लोग अन्त्यजोंके प्रति स्नेह रखें। यदि कोई स्त्री अन्त्यजका बुरा चाहती है, तो वह अपने सती-धर्मका पालन नहीं करती। यदि आपके यहाँ कोई दुबला चाकर हो, तो उसपर स्नेह-दृष्टि रखें। उसे घी लगाकर रोटी दें। जिस घरमें नौकरके साथ अच्छा बरताव होता है, उस घरमें बरकत होती है। जो छल-कपटसे पैसा कमाता है, उसका क्या हाल होता है?

करोड़पति निर्वंशी होते देखे गये हैं। भगवान आपको ऐसा निर्मल हृदय और निर्मल आत्मा दे कि आपने जो प्रार्थना अभी यहाँ सुनी, आप उसका अनर्थ न करें और सच्चा अर्थ स्वीकार करें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

८. भाषण : कालीपरज परिषद्, वेडछीमें

१८ जनवरी, १९२५

भाई जीवनभाई, कालीपरज तथा अन्य जातियोंके भाइयो और बहनो,

मैंने अपने जीवनमें बहुत-सी परिषदें देखी हैं। पचास लोग इकट्ठे हों तो उसे कांग्रेस कहते हैं और पाँच इकट्ठे हों तो उसे परिषद्। मैंने कुछ परिषदें ऐसी भी देखी हैं जो नीची कही जानेवाली जातियोंके लोगोंकी ही थीं। मैंने आज-जैसी सादी परिषदें भी बहुत देखी है। भारतमें ही नहीं, बल्कि आफ्रिका और यूरोपमें भी। किन्तु ऐसा सुन्दर और मनोरम सम्मेलन तो मैंने यह पहला ही देखा है। इसके लिए स्वागत-समिति और स्वयंसेवक दोनों धन्यवादके पात्र हैं। इसमें कमसे-कम रुपया खर्च किया गया है, यह ठीक ही है, क्योंकि एक गरीब मुल्कको यही छाजता है। आपने सम्मेलनके साथ सुन्दर और आदर्श प्रदर्शनी भी रखी है। यदि कोई हिन्दुस्तानी नेता इस प्रदर्शनीको देखकर भी चरखेके सम्बन्धमें अश्रद्धालु बना रहे तो मैं उसकी स्थिति दयनीय ही समझूंगा। इसे देखनेके बाद कोई भी खयाल नहीं कर पायेगा कि कातना और धुनना आवश्यक नहीं है। यदि हम देशकी दरिद्रताको दूर करना चाहते हैं तो सबको इन्हें आवश्यक ही मानना चाहिए।

मुहम्मद अली नहीं आ सके हैं। इसके लिए उन्होंने तार भेजा है और क्षमा माँगी है। आप शायद यह जानते हैं कि वे किसी समय बहुत बड़े पदपर थे। बादमें जो-कुछ हुआ वह भी आपको मालूम होगा। उन्होंने उस समय[1] कालीपरजके भाइयों और बहनोंके सुख-दुःखमें भाग लेनेका प्रयत्न किया था। अब वे फिर आपसे मिलकर जान-पहचानको ताजा करना चाहते थे, किन्तु वे बीमार हो गये। इसके अतिरिक्त उन्हें दो पत्र[2] निकालने पड़ते हैं। उन्होंने मुझे तार दिया है कि वे नहीं आ सकते, इसके लिए क्षमा चाहते हैं।

यह परिषद् तीन वर्षसे होती आ रही है। और प्रतिवर्ष ऐसी प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की जा रही हैं। पिछली सभी परिषदोंके प्रस्ताव मैं देख गया हूँ; इस बार प्रस्ताव तैयार नहीं किये गये हैं। किन्तु कुछ मिनट बातचीत करनेसे पता चला है कि कुछ प्रस्ताव पास तो किये जाने हैं।

१. असहयोगके दिनोंमें।
२. कॉमरेड और हमदर्द।

कालीपरज या काली प्रजाका अर्थ यह नहीं है कि इस वर्गके लोगोंका वर्ण काला होता है। कालीका अर्थ है निम्न श्रेणीकी वे जातियाँ जिन्हें मेहनत-मजूरी करके अपनी गुजर करनी पड़ती है। इन लोगोंको परिषद् करनेकी जरूरत नहीं है। आज जमाना मजदूरोंका है। जो मनुष्य श्रमको श्रेष्ठ या प्रतिष्ठित नहीं मानेगा वह स्वयं भी प्रतिष्ठित नहीं रहेगा। भविष्यमें ऊँची जाति, नीची जाति, ऐसा कोई वर्गीकरण रहेगा ही नहीं।

आज तो पैसा परमेश्वर मान लिया गया है। किन्तु क्या संसारमें इसका स्थान सदा ऐसा ही बना रहेगा? क्या शैतानकी जगह हमेशा ऊँची बनी रहती है? जो ईश्वरसे डरते हैं, उन्होंने तो ऐसा नहीं माना है। पैसा और शैतान परस्पर पूरक हैं। कुछ धर्मग्रंथ यह भी कहते हैं कि पैसेके अनेक शत्रु। मैं यह नहीं कहता कि आपको पैसेकी जरूरत ही नहीं है। पैसेकी जरूरत आपको भी है। किन्तु हर चीजकी अपनी जगह होती है और वह वहीं शोभा देती है। जो मनुष्य कोई चीज पैदा नहीं करता उसकी समाजमें कोई जगह नहीं होती। हम पैसेको अनावश्यक महत्त्व देकर अपना महत्त्व भूल बैठते हैं। स्थानभ्रष्ट होकर और पैसेको अनुचित स्थान देकर अपने कर्त्तव्य-पथसे च्युत हो जाते हैं। पैसेको अनुचित स्थानपर आसीन करके हम दुःख भोगते हैं।

मैंने पैसेके सम्बन्धमें इतना कहा, इससे कोई यह न समझ ले कि मैं धनिकों-की अवगणना या निन्दा करता हूँ या उनका बुरा चेतता हूँ। धनी लोग भी हमारे भाई ही हैं। मैं इनसे भी काम लेना चाहता हूँ। यदि ये लोग अपना स्थान समझकर तदनुसार चलें तो हम उसे सुव्यवस्था ही मानेंगे। आप मजदूर हैं, इसलिए आप पूज्य हैं। जिस देशमें मजदूरोंका आदर नहीं है, जिस देशमें इनकी निन्दा होती है — इनका निरादर होता है — उसका अधःपतन हो जाता है। यहाँ भी उनका निरादर होता है।

किन्तु यह तो संक्रमण काल है। अब बहुतसे लोग समझ गये हैं कि मजदूरों-को ठीक स्थान मिलना चाहिए। मजदूरोंके बिना हिन्दुस्तानका काम नहीं चल सकता। इसलिए उनको कालीपरज या मजदूर कहकर गिराना ठीक नहीं है। उनको ऊँचा उठाना चाहिए। कुछ लोगोंने मजदूरोंका शोषण करके स्वार्थ सिद्ध करना अपना धन्धा बना लिया है। ऐसे लोगोंसे मजदूरोंका कोई भला नहीं हुआ। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो स्वयं श्रम करते हैं और उसमें रस लेते हैं। वे सुख उठाते हैं। आप ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें आते रहते हैं। मैं यह मानता हूँ कि कोई भी मनुष्य कोई त्रुटि या अपराध किये बिना नीचे नहीं गिरता। इसलिए जब हम अपना दोष न देखकर दूसरोंकी निन्दा करते हैं, तब हम और भी नीचे गिरते हैं। मुझे लगता है कि आप लोग कुछ ऐसा ही कर रहे हैं। आप यह मानते हैं कि आप अपनी स्थितिके लिए उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि आप दूसरोंको उत्तरदायी मानते हैं। सच तो यह है कि इसका दायित्व किसी दूसरेपर नहीं है। मैं जबसे यहाँ आया हूँ तबसे सबको समझा रहा हूँ कि दोष हमें नीचे गिराते हैं और सत्कर्म, पुण्यकर्म हमें ऊँचा उठाते हैं। प्रश्न यह नहीं है कि रोटी कैसे मिले? मजदूरके सामने यह प्रश्न कभी उपस्थित ही

नहीं हो सकता। जिस मनुष्यको दो हाथ और दो पैर हैं, वह तो स्वतन्त्र है; उसे दुःखी कौन कर सकता है?

आपके दुःखके दो कारण हैं। आप दारू और ताड़ी पीते हैं। दारूके व्यसनसे कितने दुःख आते हैं, आप इसका एक उदाहरण हैं। कालीपरजके भाइयो और बहनो, अब तो एक नया समुदाय बन गया है[1] जो कहता है कि दारू न पीना पाप है। इस समुदाय-के लोग कहते फिरते हैं कि दारू न पियेंगे तो व्यसन न रहेगा और इससे व्यापार नष्ट हो जायेगा। आप लोग इनके जालमें न फँसें। मैं आपको यह याद दिला दूँ कि आप सभी लोगोंने दो वर्ष पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि आप दारू नहीं पियेंगे। आप इसपर दृढ़ रहें। यदि कोई वैद्य आपसे यह कहे कि आप दारू नहीं पियेंगे तो मर जायेंगे, तो आप उसकी बात भी कदापि न सुनें। शरीर तो कभी-न-कभी नष्ट होना ही है। किन्तु प्रतिज्ञा तो अमर है। मैं मानता हूँ कि दारू न पीनेसे शरीर क्षीण हो जा सकता है। फिर भी आप एक बार दारू छोड़नेके बाद अपनी प्रतिज्ञा न तोड़ें। असंख्य लोग विभिन्न लालचोंमें पड़कर अनेक पाप करते हैं। यदि हम इससे मुक्त होना चाहते हैं तो हम जीवनको उज्ज्वल बनानेके लिए जिन बातोंको सूत्ररूप मानते हैं उनके पालनमें तनिक भी त्रुटि न करें। जैसे यदि हम दीवारमें कोई छेद रहने दें तो उसमें होकर जीव-जन्तु, चोर आदि घरमें घुस आते हैं उसी तरह हमने आत्माको सुरक्षित रखनेके लिए व्रतोंकी जो दीवार बनाई है उसमें यदि कोई छेद रहने देंगे तो उससे होकर पापका प्रवाह भीतर आ जायेगा और पीछे हम पछतायेंगे। इसलिए आप दारूसे दूर रहें। आपका कल्याण उससे बचनेमें ही है।

आपके अज्ञानका कारण आपकी निरक्षरता नहीं है। आप लिखना और पढ़ना जानते हैं या नहीं, यह बात महत्त्वकी नहीं है। आपमें से बहुत से पढ़ना नहीं जानते; किन्तु उनको अनुभवजन्य ज्ञान है। आप भोले हैं, इसलिए भटक जाते हैं। भोला होना तो अच्छा है। सरलता और भोलापन दिव्य गुण हैं। किन्तु एक बार सच्ची बात कह लेनेपर भोला मनुष्य उससे डिगता नहीं है। आप भोलेपनके कारण भूतों और प्रेतोंको भी मानते हैं। आप मेरी भी मानता मानते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यह एक भूल है। मेरी मानता माननेसे किसीको कुछ न मिलेगा। मेरी पूजा करनेसे भी आपको कोई लाभ न होगा। कल आपको कोई दूसरा भरमा लेगा और कहेगा कि अब आप अमुककी पूजा करें। कोई कहेगा कि आप दारू पियें। कोई आपसे मेरे नामपर चरखा चलाना बन्द करनेके लिए भी कह सकता है। तब आपकी क्या हालत होगी? आप अपने-आप शपथ लें कि आपको दारू छोड़नी ही है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि मुझे अन्धविश्वासोंका आश्रय लेकर आप लोगोंको दारू छोड़नेके लिए उत्साहित करना चाहिए। किन्तु इस अन्ध-विश्वासोंसे भरे हिन्दुस्तानमें मुझे एक भी नया अन्धविश्वास नहीं बढ़ाना है। यदि आपमें कोई नया अन्धविश्वास उत्पन्न किये बिना आपका दारू पीना बन्द न हो सके तो कोई बात नहीं। मेरा कहना तो यह है कि आप जबतक सोच-समझकर दारू

१. कालीपरजोंका एक नया दल; देखिए "टिप्पणियाँ", २५-१-१९२५ का उपशीर्षक "मद्यपान"।

नहीं छोड़ते तबतक दारू छोड़ना फलदायी न होगा। मैं तो चाहता हूँ कि आप दारू पीना छोड़ें और आपके पास पड़ोसमें जो लोग रहते हों वे भी मांस-दारू इत्यादि छोड़ें। इन चीजोंको सारा संसार छोड़े; किन्तु झूठे अन्धविश्वाससे नहीं। क्योंकि इस प्रकार किया गया संकल्प ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। हम एक पापको दूसरे पापसे निवृत्त नहीं कर सकते। मैं चाहता था कि मैं आपके इस अन्धविश्वासको दूर करूँ और आपको यह बात समझाऊँ कि आप दारू मेरे नामपर न छोड़ें, बल्कि यह समझ कर छोड़ें कि दारू छोड़ना अच्छा है। आपको कोई भी धोखा दे जाता है, इसका कारण तो आपका अज्ञान है। मैंने आपके स्वयंसेवकोंसे कहा है कि वे आपको इस अज्ञानमें से धैर्यपूर्वक मुक्त करें। मैं आज भी उनको यही सलाह देता हूँ। आप अच्छी तरह सोच-समझकर कदम उठायें और दूसरोंको भी ऐसा ही करनेके लिए कहें।

आपने इसमें अपने पारसी भाइयोंका दोष बताया है। मैं तो पारसी जातिपर मुग्ध हूँ। यह जाति छोटीसी है; किन्तु इसने बड़ा नाम कमाया है। इसमें बहुत गुण हैं, किन्तु इसमें दुर्गुण भी हैं। किन्तु आज तो बहुतसे पारसी भाई और बहन दारू छोड़ रहे हैं। इसमें शक नहीं है कि उनमें से बहुत-से दारू पीते भी हैं। पारसी दारू बेचनेका व्यवसाय करते हैं। वे इसके लिए पाप करते हैं और अत्याचार भी करते हैं। किन्तु मैं उनसे क्या कहूँ? वे आपको लालच देते है, इनाम देते हैं और घूस भी देते हैं। मैं उनसे क्या कहूँ? यदि यह धन्धा मेरा हो तो मैं भी यही करूँ। पेटके लिए लोग सब-कुछ करते हैं। 'पेट ढुलाये भार, पेट बाजा बजवाये' इसीलिए मैं यह भाषण दे रहा हूँ, लेख लिख रहा हूँ और फिर मुझे इसका सम्पादन भी करना होगा। मैं चाहता हूँ कि जैसे भी हो, आपमें जीवनका संचार हो।

आप जैसी शिकायत पारसियोंके विरुद्ध करते हैं वैसी ही मेरी शिकायत आप लोगोंके विरुद्ध भी है। आपका एक समुदाय है जो यह कहता है कि जो दारू नहीं पीता वह पाप करता है। आप इससे लड़कर नहीं, बल्कि अपनी शपथ और प्रतिज्ञापर दृढ़ रहकर बच सकते हैं। आप पारसियोंसे कह दें, हमने दारू छोड़ दी है और अब आप भी यह धन्धा न करें। कई पारसी मेरे मित्र हैं। उनमें इंजीनियर, डाक्टर, वकील और व्यापारी भी हैं। इनमें एक बुद्धिशाली और उदार व्यापारी था। उसने बहुत पैसा दिया था और एक आश्रम भी बनवाया था। मान लें कि मैं पारसी जातिको समझानेमें समर्थ हो जाता हूँ। किन्तु कल कोई दूसरा आयेगा। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, हिन्दू — कोई भी आ सकता है और आपसे कह सकता है कि आप दारू पियें, तब मैं इन सबको कैसे समझाऊँगा? इसलिए इसका सच्चा उपाय तो यह है कि मैं आपको ही समझाऊँ और आप स्वयं भी समझें।

मैं गायकवाड़ और बांसदा सरकारसे निवेदन करता हूँ कि वे अपने राज्योंकी सीमाओंमें शराबकी दूकानें बन्द कर दें। किन्तु राजाओंको समझाना बहुत कठिन काम है। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा। किन्तु वे भी पारसियों-जैसे ही हैं, इसलिए उनको समझानेमें सफल होना कठिन है। यह उनका भी धन्धा है और इससे उन्हें बहुत राजस्व मिलता है। किन्तु आप तो उनकी प्रजा अथवा उनके पुत्र कहे जाते हैं। मेरा

अनुभव यह है कि पुत्रोंको समझाना सरल होता है। माँ-बापोंको समझाना कठिन होता है। इसलिए मेरा विश्वास तो आपपर ही है।

शराब छोड़नेमें किन-किन चीजोंसे सहायता मिल सकती है? इनमें चरखा मुख्य है। मैंने इसमें अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है। यदि हिन्दुस्तानका उद्धार होना है तो वह चरखेसे ही होगा। छोटे-छोटे बालकोंको सूत कातते देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है और मेरा विश्वास चरखेमें और भी दृढ़ हो गया है। मेरा यह विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। आपकी आजीविकाका साधन खेती है; किन्तु आप गरीब हैं और आपको खानेके भी लाले पड़े रहते हैं। इस स्थितिमें चरखा आपका अवलम्ब है और उससे आपको शान्ति मिलेगी। आपको जब दारू पीनेकी इच्छा हो तो आप चरखेपर बैठ जायें। आप उसे ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे चलायेंगे त्यों-त्यों आपकी दारूकी चाह कम होती जायेगी। आप मेरा कहना मानकर इतना ही करें। यदि वर्षा नहीं होती तो फसल सूख जाती है, किन्तु चरखा तो सतत फलदायी है। यदि आप चरखेकी पर्याप्त सेवा करेंगे तो यह अन्नपूर्णा बन जायेगा।

यहाँ जो प्रस्ताव पास किये जायेंगे मैं उनमें आपसे प्रतिज्ञा कराना चाहता हूँ। यदि आप दारू छोड़ना अभीष्ट मानते हों तो आप यह प्रतिज्ञा करें "हम ईश्वरको साक्षी मानकर प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दारू और ताड़ी नहीं पियेंगे। और अपने दूसरे भाइयों और बहनोंसे भी दारू न पीनेका अनुरोध करेंगे।"

अब मैं दूसरी बात लेता हूँ। मैं आपको सब बातें समझानेके बाद ही आपसे हाथ उठवाना चाहता हूँ। यदि आप सब भाई और बहन बुनाईकी बात समझ गये हों तो ऐसी प्रतिज्ञा करें कि हम अबसे हाथकते सूतकी और हाथबुनी खादी ही पहनेंगे। विदेशी कपड़ा पहनना भयानक है। यदि आपमें से ज्यादातर लोग यहाँसे जानेके बाद विदेशी कपड़े पहनते रहें तो यह उनके लिए डूब मरनेकी बात होगी जिनके देखते आप यह प्रतिज्ञा ले रहे हैं।

भाइयो और बहनो, मैंने आपसे ये दो प्रतिज्ञाएँ कराईं। आपने इनमें ईश्वरको साक्षी रखा है। मैं चाहता हूँ कि आपकी ये प्रतिज्ञाएँ पूरी हों। प्रतिज्ञा-पालन करना सरल नहीं है। किन्तु आपको मैं इनके पालन करनेका उपाय बताता हूँ। यह उपाय दुखियोंका सहारा है। इसकी सहायतासे बहुतसे तर गये हैं। मैंने यह उपाय सोजित्रामें अन्त्यजों और धारालाओंको बताया था।[1] आप प्रातः बहुत जल्दी उठें, मुँह-हाथ धोयें, आँखें साफ कर लें और तब रामनाम लें। रामका अर्थ है ईश्वर। राम-राम अर्थात् सब-कुछ। उसीसे यह प्रार्थना करनी चाहिए, "हे राम, तू मुझे पवित्र रख और वेडछीमें मैंने जो प्रतिज्ञा ली है उसके पालनमें सहायक बन" आप थके हों और आपको नींद आ रही हो तो भी आप क्षण भर रामका स्मरण करें और रामसे कहें, "तूने प्रतिज्ञा-के पालनमें मेरी बहुत सहायता की है। इसके लिए मैं तेरा उपकार मानता हूँ। मुझे दारूकी गन्धतक न आये और स्वप्नमें भी उसकी याद न आये। विदेशी कपड़ेकी

१. देखिए "भाषण: बारिया क्षत्रिय परिषद्, सोजित्रामें", १६-१-१९२५ और "भाषण: अन्त्यज परिषद्, सोजित्रामें", १६-१-१९२५।

भी नहीं।" बस, फिर आपको भूतों और प्रेतोंसे भी डरनेकी कोई जरूरत नहीं बचेगी। राम आपसे नारियल नहीं माँगता। वह तो आपके भावका भूखा है। वह सभीके हृदयोंमें बैठा है। आप उसे पहचानें। यह घड़ी टिक-टिक कर रही है। किन्तु राम कोई भी शब्द नहीं करता। राम आप सबका कल्याण करे।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

सरभोण

पौष वदी ९ [१९ जनवरी, १९२५][1]

मैं ब्रह्मचर्य पालनके सम्बन्धमें किसीपर भी दबाव नहीं डालता, बल्कि तटस्थ रहता हूँ। यह बात मेरे गले नहीं उतरती कि बालक जब युवावस्थाको प्राप्त कर लें तब उनके विवाहकी व्यवस्था करना माता-पिताका कर्त्तव्य होता है। मैं यह अवश्य मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें माता-पिताको उनकी सहायता करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१० टिप्पणियाँ

पच्चीस हजार नहीं

मौलाना जफर अली खाँ[2] ने नीचे लिखा तार भेजा है:

> लाहौर वापस पहुँचनेपर मैंने यहाँके अखबारोंमें 'यंग इंडिया' के आधार पर यह खबर पढ़ी कि मैंने आपसे इस सालके भीतर २५,००० सूत कातनेवाले मुसलमान कांग्रेस कार्यकर्त्ता देनेका वादा किया है। मुझे अन्देशा है कि इसमें कोई गलतफहमी हुई है। शायद मेरे शब्द भावको ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सके। मैंने तो सिर्फ इतना ही वादा किया था कि मैं आपकी पदावधि समाप्त होनेतक १०,००० मुस्लिम स्वयंसेवक आपकी खिदमतमें पेश करनेकी पूरी कोशिश करूँगा, और मैं इस वादेपर कायम हूँ।

इस तारको मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। जहाँतक मेरा ताल्लुक है किसी किस्मकी गलतफहमी नहीं हुई। मौलाना साहबके वादेपर मुझे इतना ताज्जुब हुआ था कि मैंने मौलाना साहबको अति आशावादी न बननेके लिए चेताया भी था। पर वे अपनी बातपर दृढ़ रहे और यह वादा था भी ऐसा कि जो सर्वसाधारणसे छिपाकर नहीं रखा जा सकता था। यह वादा तो एक बिन माँगा मोती था। और फिर कोई

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. पंजाब खिलाफत समितिके अध्यक्ष।

भी दूरंदेश आदमी दानकी बछियाके दाँत नहीं देखता। बहरहाल, १०,००० स्वयंसेवक भी खासी हौसला बढ़ानेवाली तादाद है। पर मैं मौलाना साहबको याद दिला दूँ कि स्वयंसेवक वही हो सकता है जो सूत कातता हो। यह प्रस्ताव दिल्लीका पुराना प्रस्ताव है — जिसकी पुष्टि १९२१ में अहमदाबादकी कांग्रेसमें हो चुकी है। इसलिए मैं ऐसे १०,००० मुसलमान स्वयंसेवकोंसे ही सब्र कर लूँगा, जो घड़ीके कांटेकी तरह नियमके साथ हर महीने दो हजार गज अच्छा सूत कातते हों। अगर मौलाना साहब १०,००० स्वयंसेवक जमा कर पाये तो मुझे कोई शक नहीं कि उन्हें २५,००० मिलनेमें भी कोई दिक्कत न होगी। क्योंकि एक बार जहाँ चरखेका आन्दोलन पैर जमा पाया कि फिर उसे गति पकड़नेमें देर नहीं लगेगी।

कुछ परिषदें[1]

पिछले सप्ताह मुझे कितनी ही परिषदोंमें शरीक होनेका सौभाग्य मिला। उनके विषयमें यहाँ कुछ विस्तारसे लिखना जरूरी समझता हूँ। उनके नाम हैं सोजित्रा में डा० सुमन्त मेहताकी[2] अध्यक्षतामें होनेवाली पेटलाद जिला किसान परिषद्, धाराला परिषद् अर्थात् बारिया क्षत्रिय परिषद् और वहींपर हुई महिला परिषद् और अन्त्यज परिषद्। बारडोलीके नजदीक वेडछीमें कालीपरज परिषद् भी हुई थी। इन तमाम परिषदोंमें खादी काफी दिखाई पड़ी। किसान परिषद्की एक विशेषता थी, डाक्टर सुमन्त मेहताका यह ऐलान कि यदि एक सालके लिए अपना पूरा समय देनेवाले ४० स्वयंसेवक मुझे मिल जायें तो मैं एक सालतक पेटलाद जिलेसे बाहर जाऊँगा ही नहीं। उनके कहने-की देर थी कि ४५ से भी अधिक स्वयंसेवक पूरे साल-भर उनके साथ काम करनेके लिए तैयार हो गये। इस परिषद्में दर्शक चार दर्जोंमें विभक्त थे। एक दर्जेमें थे वे दर्शक जिन्हें एक निश्चित तादादमें हाथ कता सूत देनेपर ही प्रवेश मिल सकता था। स्वागत-समितिको परिषद्का बहुत कम खर्च उठाना पड़ा। सभा-मंडप विशाल और आडम्बर रहित था; कुर्सियोंके होनेका तो सवाल ही नहीं उठता। लकड़ी और कपड़ा, खास कर पुरानी खादी मंगनी मिल गई थी। मेहनत लोगोंने स्वेच्छासे मुफ्त कर दी थी। गाँवके एक सज्जनने बाहरी यात्रियोंके खान-पानका इन्तजाम कर दिया था। एक दूसरे महाशयने मेहमानोंका और तीसरे साहबने प्रतिनिधियोंके भोजनका भार अपने ऊपर ले लिया था। यह इन्तजाम सोलहों आने सन्तोषदायक साबित हुआ। प्रोफेसर माणिकरावकी बड़ौदा स्थित व्यायामशालासे आये हुए स्वयंसेवकोंके प्रबन्धने सभामें पूरी शान्ति रखी। सभाकी कार्रवाई मुख्तसिर थी और उसमें कामकी ही बातें हुईं। स्वागत-समितिके अध्यक्षका भाषण सिर्फ १५ मिनटका था। उन्होंने अपने छपे हुए भाषणके महत्त्वपूर्ण अंशोंको पढ़कर सुनाया। सभापतिने ३० मिनटसे ज्यादा अपने भाषणके लिए नहीं लिये। सभामें एक भी फिजूल लफ्ज नहीं बोला गया। सभाके पदाधिकारीगण नेता होनेके बजाय सेवक ही अधिक प्रतीत होते थे। प्रस्ताव महज उन्हीं बातोंके सम्बन्धमें थे जो लोगोंको खुद करनी थीं।

१. यहाँसे आगेकी सभी टिप्पणियाँ २५-२-१९२५ के नवजीवनमें प्रकारान्तरसे दी गई हैं।

२. गुजरातके एक राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता।

धाराला

गुजरातमें धाराला एक खूंखार लड़ाका कौम है। उसका मुख्य पेशा खेती है। लेकिन रुपये-पैसेकी तंगीके कारण उन्होंने लूट मारको भी अपना पेशा बना लिया है। खून करना उनके लिए कोई असाधारण बात नहीं। १९२१ में आत्मशुद्धिकी जो लहर भारतमें उठी थी, उसका उनपर भी असर हुए बिना न रहा। इस बीच जो कार्यकर्त्ता तैयार हुए हैं वे उनके अन्दर इसी इरादेसे काम कर रहे हैं कि उनका भीतरी सुधार हो। १९२३ में श्री वल्लभभाईने जिस शानदार सत्याग्रह संग्रामको शुरू किया था और जिसका उन्होंने बहुत सफलतापूर्वक नेतृत्व भी किया था, उसने उन लोगोंके अन्दर एक जबरदस्त जागृति पैदा कर दी है। सोजित्राकी यह परिषद् इसी सुधारका एक फल थी। वे हजारोंकी तादादमें एकत्र हुए थे। उन्होंने सभामें होनेवाले भाषणोंको पूरी शान्तिके साथ सुना। जो प्रस्ताव पास हुए उनका सम्बन्ध शराब और नशीली चीजोंका सेवन न करने, अपनी लड़कियोंको पैसा लेकर न बेचने तथा लड़कियोंका अपहरण न करनेसे था। उनमें यह बुराई बहुत फैली हुई है।

अन्त्यज

उसी सभा-मण्डपमें सोजित्रा तथा आसपासके अन्त्यज भी एकत्र हुए थे। और उनके नेता मंचपर बैठाये गये थे। सवर्ण और अस्पृश्य आपसमें निस्संकोच होकर मिलते थे। शराब न पीने और खादी पहननेके प्रस्ताव पास हुए। सभाके संचालकोंने अपना सभा-मण्डप अन्त्यजोंको देकर साहसका परिचय दिया। क्योंकि मैंने देखा कि पेटलाद जिला छुआछूतके भावसे मुक्त नहीं है।

महिला परिषद्

इस परिषद्का दृश्य तो एक बड़ा ही प्रेरणादायक दृश्य था। पाटीदार[1] महिलायें थोड़ा-बहुत पर्दा करती हैं। सोजित्राकी जनसंख्या सात हजारसे ज्यादा नहीं है। पर सभामें कोई १० हजार महिलायें जरूर रही होंगी। मेरी जानकारीमें तो बड़े-बड़े शहरोंमें भी महिलाओंकी इतनी बड़ी सभा नहीं हुई। महिलाओंने भाषणोंको ध्यान-पूर्वक और बिना शोरगुलके सुना। मैंने अक्सर देखा है कि महिलाओंकी सभामें शान्ति रखना बड़ा कठिन होता है। सो इस सभाका हाल देखकर सबको — व्यवस्थापकोंको भी — बड़ा आनन्द और ताज्जुब हुआ। इस परिषद्में कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया। व्याख्यान खास तौरपर खादी और चरखेपर ही हुए।

किसानोंकी परिषद् दो दिनतक कुल मिलाकर पाँच घंटे चली। दूसरी परिषदें एक-एक घंटेमें समाप्त हो गईं।

कालीपरज

सोजित्राका सारा प्रबन्ध सादा और व्यवस्थित था ही, पर बेडछीने तो कमाल कर दिया। मेरे मुँहसे हठात् निकल पड़ा कि सादगी, स्वाभाविकता और रुचिकी

१. जमींदार।

दृष्टिसे वेढछी परिषद्-जैसी भव्य परिषद् मैंने कहीं नहीं देखी। जिसने उस जगहको तजवीज किया और सारी व्यवस्थाकी रूपरेखा बनाई वह जरूर ही कोई कलाविद और कुदरतकी गोदमें पला हुआ व्यक्ति होगा। परिषद्का स्थान एक नदीके किनारे चुना गया था। नदी पेड़ों और पौधोंसे ढके छोटे-छोटे टीलोंकी कतारके बीचमें बहती थी। नदीका पाट रेतीला था, मटीला नहीं। मुख्य सभामंच नदीके बहते पानीपर खड़ा किया गया था। और वह कोई ८ फीट ऊँचा था। रेतसे भरा हुआ एक बोरा सीढ़ीका काम देता था। सभास्थल मंचके सामने ही था। लोग सामनेकी टेकड़ियोंपर भी बैठे हुए थे। सारा मंडप बाँस और हरे पत्तोंसे सजाया गया था। चित्र बिलकुल नहीं लगाये गये थे। सजावटमें कागजका एक भी टुकड़ा या सूतका एक भी धागा काममें नहीं लिया गया था। ऐसी सजावटमें सूतका कोई काम नहीं है और उसके दाम देखते हुए यह फिजूलखर्ची ही है। वितान बाँसों और हरी पत्तियोंका बना था और बड़ा सुहावना लगता था। मंडपके मध्य-मार्गके दोनों ओर कोई १२,००० से ऊपर स्त्री-पुरुष शान्तिके साथ बैठे हुए थे। कोई प्रवेश-शुल्क नहीं था। सभी प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियों और दर्शकोंमें कोई अन्तर नहीं था। (मैं अनुकरण करनेके लिए यह बात नहीं कह रहा हूँ। यहाँ ऐसा अन्तर रखना एक तरहकी निष्ठुरता होती। संगठित संस्थाओंमें ऐसा अन्तर रखना अनिवार्य है)। सभा-स्थानसे कुछ ही दूर टीलोंकी कतारकी तरफ एक किनारेपर एक लंबी पट्टी चरखा प्रदर्शनीके लिए थी। बूढ़े पुरुष, बूढ़ी स्त्रियाँ और ५ से १० साल तकके छोटे-छोटे बच्चे चरखे चला रहे थे। बूढ़े स्त्री-पुरुषों और छोटे बालकोंको ही उसमें लगानेका एक विशेष हेतु था। कात सकनेवाले अधेड़ लोग स्वयंसेवक बनकर सेवा कर रहे थे। वे सब कालीपरज जातिके ही लोग थे। चरखोंकी कतारके पास ही गुजरातमें बनी खादीका भंडार था। आन्ध्रकी बढ़िया खादी वहाँ होनेका सवाल ही न था। खादी पहननेवाले कालीपरज लोग मोटी ही खादी पहनते थे। एक बहुत छोटे हिस्सेमें देशके नेताओंके चुने हुए चित्र और कुछ साहित्य रखा गया था। इसमें खर्च एक कौड़ीका भी नहीं हुआ था। बाँस और लता-पत्र तो लोगोंके ही थे। वे सारी चीजें ले आये और व्यवस्थापक जैसा बताते गये वैसा बिना कुछ लिये संजोते चले गये। जो हजारों आदमी आये थे उनके खान-पान आदिके लिए किसी इन्तजामकी जरूरत न थी; क्योंकि वे या तो पैदल आये थे या बैलगाड़ियोंमें; और सबसे नजदीकी रेलवे स्टेशन सभा-स्थानसे कोई १२ मील था। लोग घरसे अपने लिए पका खाना या सूखा अनाज बाँध लाये थे। मैदानमें ही, जहाँ जी चाहा, उन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया। हर काम बिना शोरगुलके शान्तिपूर्वक हुआ।

सारी कार्रवाई बड़ी स्वाभाविक और अत्यन्त सादगीसे भरी हुई थी। लोगोंके सामने ऐसी कोई बात पेश नहीं की गई जो उनकी जरूरतको पूरा करनेवाली न हो।

उनकी दो प्रतिज्ञाएँ

उनकी यह तीसरी वार्षिक परिषद् थी। सभी परिषदोंमें इने-गिने ही प्रस्ताव स्वीकृत किये गये थे। एक प्रस्ताव शराब न पीनेके बारेमें — इनके बीच शराबखोरी बहुत

ज्यादा है; दूसरा खादी पहननेके बारेमें और तीसरा औरतोंको पत्थरके गहने न पहनानेके विषयमें था। शराब न पीने और खादी पहननेके लिए जो प्रस्ताव हुए वे प्रतिज्ञाके रूपमें थे। लोगोंने बड़ी संजीदगीके साथ खुद शराब न पीने और नम्रताके साथ अपने पड़ोसियोंको भी ऐसा समझानेका उत्तरदायित्व स्वीकार किया। दूसरी प्रतिज्ञा खुद सूत कातने तथा हाथकती खादीके अलावा सभी किस्मके कपड़ेसे विमुख रहने एवं औरोंको भी ऐसा ही करनेके लिए समझानेकी ली गई। मैंने खास तौरपर कोशिश की कि वे उन तमाम बातोंका मतलब समझ लें जो उनसे कही जा रही थीं और जिनकी प्रतिज्ञा उनसे कराई जा रही थी। सभाके छोरोंपर बैठे हुए लोगोंके बीच स्वयंसेवक भेजकर यह दिलजमई करा ली जाती थी कि वे लोग सभाकी कार्रवाईको समझ रहे हैं या नहीं। हवाका रुख अनुकूल था। इससे आवाज उनतक बखूबी और आसानीसे पहुँच जाती थी। क्या स्त्री और क्या पुरुष दोनोंने ईश्वरको साक्षी रखकर शपथ ली। पाठक इस बातको जान लें कि वे दो वर्षोंसे ऐसे प्रस्ताव पास करते आ रहे हैं और लगभग सभी लोगोंके बदनपर कुछ-न-कुछ खादी अवश्य थी। उन्होंने तत्परतासे और समझ-बूझकर उसे अंगीकार किया है। सैकड़ों लोगोंने कातना सीख लिया है। कुछ युवकोंने तो बारडोली आश्रममें रहकर धुनना, कातना और बुनना सीखा है। इनमेंसे कुछ कपड़ा बुनकर अपनी रोजी भी कमा रहे हैं। उपस्थित श्रोतागण खादी और चरखेकी प्रतिज्ञाके लिए वास्तवमें उसी तरह तैयार थे जिस तरह नशीली चीजोंको छोड़नेकी प्रतिज्ञाके लिए।

मैंने ६० सालके एक बूढ़ेसे अच्छी तरह बातचीत की और यह जानना चाहा कि दिनभर खेतमें कड़ी मेहनत करनेके बाद वह चरखा क्यों चलाता है। वह रोज ४–५ घंटे सूत कातता है। वह सोता बहुत कम है इसलिए रातको भी कातता है और तड़के ही उठकर फिर चरखा लेकर बैठ जाता है। मैंने सोचा था कि वह मुझसे कहेगा कि मैं मन-बहलावके लिए या परिवारवालोंके लिए कातता हूँ। पर उसने मुझे उसका कारण आँकड़े पेश करते हुए बताया, जिससे मुझे आनन्द और आश्चर्य दोनों हुए। उसने कहा कि मैं अपना सूत खुद कातता हूँ। अपने लिए कपास भी बो लेता हूँ और अब मैं अपना कपड़ा भी घरमें ही बुन लेता हूँ। और इस तरह फी व्यक्ति दस रुपये साल बच जाते है। इन लोगोंको अपने लिए कपासकी तमाम विधियोंकी व्यवस्था करते देखकर हाथकताई और खादीकी जरूरतमें घोर अविश्वास करनेवाले लोगोंको भी उसका कायल हो जाना चाहिए। यहाँ निपट अपढ़ और अनजान देहातियोंमें, सच्चेसे-सच्चे नमूनेका ग्राम-संगठन खामोशीके साथ चल रहा है। वह उनके जीवनके हर क्षेत्रमें क्रांति ला रहा है। वे अपनी ही विचारशक्तिसे काम लेना सीख रहे हैं।

परिषद्के बाद

परिषद्के बाद मैंने समाजके बड़े लोगोंकी सभा बुलाई। तीससे ऊपरके लोगोंने अपने नाम बतौर कार्यकर्त्ता लिखाये। उनमें औरतें भी थीं। उन्होंने स्वयं भी कातने, खादी पहनने और शराब कतई न पीनेकी प्रतिज्ञा की। और उन्होंने पाँच हफ्तोंके भीतर पाँच-पाँच ऐसे ही कार्यकर्त्ता तैयार करनेका वचन दिया और पाँच सप्ताह

बीत जानेके बाद इस बातपर विचार करनेके लिए वे पुनः एकत्र होंगे कि अब यह सुधार-कार्य किस तरह आगे बढ़ाया जाये।

रामनाम

जोशमें प्रतिज्ञा कर लेना काफी आसान है। पर उसपर कायम रहना और खासकर प्रलोभनोंके बीच; मुश्किल होता है। ऐसी परिस्थितिमें ईश्वर ही मददगार होता है। इसीलिए मैंने सभाको रामनामका सहारा लेनेकी सलाह दी। राम, अल्लाह, गॉड, सब मेरे नजदीक एकार्थक शब्द हैं। मैंने देखा कि भोले-भाले लोगोंके दिलोंमें जाने कैसे यह खयाल बैठ गया है कि उनके संकटकी घड़ीमें मैं कोई अवतार आ खड़ा हुआ हूँ। मैं उनके इस अन्धविश्वासको दूर कर देना चाहता था। मैं जानता हूँ कि मैं अवतरित नहीं हुआ हूँ। एक निर्बल व्यक्तिके प्रति उनका ऐसा भरोसा केवल भ्रम ही है। इसलिए मैंने उनके सामने एक सादा और आजमूदा नुस्खा पेश किया जो आजतक कभी व्यर्थ सिद्ध नहीं हुआ है अर्थात् हर रोज सूर्योदयसे पूर्व और शामको सोने जानेके पहले अपनी प्रतिज्ञाएँ पूरी करनेके लिए ईश्वरकी सहायता माँगना। करोड़ों हिन्दू उसे रामके नामसे पहचानते हैं। बचपनके दिनोंमें मैं जब कभी डरता तब मुझसे रामनाम लेनेको कहा जाता था। मेरे कितने ही साथी ऐसे हैं जिन्हें संकटके अवसर पर रामनामसे बड़ी सान्त्वना मिली है। मैंने धाराला और अछूतोंको रामनामका नुस्खा बताया। मैं अपने उन पाठकोंके सामने भी इसे पेश करता हूँ जिनकी श्रद्धा और दृष्टि पोथी पढ़-पढ़कर मंद न पड़ गई हो। विद्वत्ता हमें जीवनकी भूलभुलैयामें अनेक स्थानोंसे निकाल कर ले जाती है; पर संकट और प्रलोभनकी घड़ीमें वह हमें कोई सहारा नहीं दे पाती। उस हालतमें श्रद्धा ही हमें उबारती है। रामनाम उन लोगोंके लिए नहीं है, जो ईश्वरको जैसे-तैसे रिझानेकी इच्छा रखते हैं और हमेशा इसी आशामें रहा करते हैं कि वह हमें बचा लेगा। यह उन लोगोंके ही लिए है जो ईश्वरसे डर कर चलते हैं, जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं; किन्तु लाख प्रयत्न करनेपर भी उसका पालन नहीं कर पाते।

आदर्श पाठशालाएँ

राष्ट्रीय पाठशाला और विद्यालयकी कांग्रेसकी व्याख्या सुनकर घबड़ानेवाले शिक्षकों और विद्यार्थियोंकी हिम्मत बढ़ानेके लिए मैं दो ऐसी पाठशालाओंका जिक्र करना चाहता हूँ जिनके शिक्षकों और विद्यार्थियोंसे मैं इन परिषदोंके दौरान मिला था। एक सुणाव नामक ग्राम है जो आणंद तहसीलमें है। और दूसरा वराड नामक ग्राम है जो बारडोली तहसीलमें है। इन दोनों पाठशालाओंमें सभी विद्यार्थी बड़े उत्साहसे कताई करते हैं। वराडमें लड़के अपने लिए रुई खुद ही धुन लेते हैं और अपनी पूनियाँ बना लेते हैं। अ० भा० खादी मण्डलको वे नियमपूर्वक हर मास कुछ सूत भेजते रहते हैं। मैंने सुणाव ग्रामके लड़कोंसे बहुत देरतक बातचीत की। वे मुझे असाधारण रूपसे बुद्धिमान मालूम हुए। वे जानते थे कि वे सूत क्यों कात रहे हैं। उन्होंने कहा हम कांग्रेसको जो सूत देते हैं वह गरीबोंके लिए देते हैं और उसके अलावा जो सूत कातते हैं वह अपने कपड़ोंके बारेमें स्वावलम्बी बननेके लिए। जिन्हें जिज्ञासा

हों मैं उन्हें इन मदरसोंमें जाने और इस बातका पता खुद लगानेको आमंत्रित करता हूँ कि वे बालक किस प्रकार कार्य कर रहे हैं। जब गुजरात विद्यापीठने शालाओंमें अछूत लड़कोंको भरती करनेका आग्रह किया तब इनकी हालत बहुत विषम हो गई थी। पर शिक्षकोंने तूफानका सामना हिम्मतके साथ किया। कुछ लड़के वहाँसे चले भी गये; किन्तु मदरसे बहुत अच्छी तरह चल रहे हैं। वराडमें जिन माता-पिताओंने अछूतोंके लड़कोंके भरती हो जानेके कारण अपने लड़के हटा लिये थे, उन्होंने अब फिर उनको राष्ट्रीय पाठशालाओंमें भेजना अंगीकार किया है। यदि राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षक और व्यवस्थापकगण नम्रता, मृदुता और सहिष्णुताका अवलम्बन करते हुए दृढ़तासे काम लें तो कांग्रेसकी व्याख्याके कारण राष्ट्रीय संस्थाओंको क्षति पहुँचनेकी आशंका न रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१-१९२५

११. एक अपील

पाठक साप्ताहिक टिप्पणियोंके स्तम्भमें भी कालीपरजके बारेमें कुछ पढ़ेंगे। गुजरातके बाहर बहुतेरे लोग शायद नहीं जानते कि कालीपरजके माने क्या हैं। 'कालीपरज' का अर्थ है 'काले लोग'। यह नाम गुजरातके कुछ लोगोंको उन लोगों द्वारा दिया गया है जो अपनेको उनसे ऊँचा और श्रेष्ठ मानते हैं। रंगकी हदतक कालीपरज जातिके लोग दूसरे लोगोंसे ज्यादा काले या अलग नहीं हैं। पर आज वे दलित, असहाय, अन्धविश्वासी और कायर हैं। शराब पीनेकी उन्हें भीषण लत लगी हुई है। बड़ौदा राज्यमें उनकी आबादी बहुत ज्यादा है।

तीन वर्ष पहले इन्हीं लोगोंमें जबरदस्त जागृति हुई। हजारों लोगोंने शराब पीना और मांस खाना भी छोड़ दिया था। शराबके दूकानदारोंको यह बात बड़ी खली। दूकानदारोंमें ज्यादातर लोग पारसी थे। कहते हैं कि इन लोगोंने उन्हें फिरसे शराब पीनेकी ओर प्रवृत्त करनेमें कुछ उठा नहीं रखा, और बहुत हदतक उन्हें सफलता भी मिली। कहते हैं कि सरकारी अधिकारी भी सुधारकोंके खिलाफ इस साजिशमें शामिल हुए। और अब चाहे इन कोशिशोंके फलस्वरूप हो, चाहे किसी कारणसे, इन लोगोंमें एक ऐसा दल पैदा हो गया है, जो उन्हें उपदेश देता है कि शराब न पीना पाप है और जातिसे बाहर करके तथा दूसरे तरीकोंसे वे उन लोगोंकी हिम्मत और उमंगको तोड़ रहे हैं, जो अपने-आपसे और इस बुरी आदतके खिलाफ लड़नेमें लगे हैं जो पीढ़ियोंसे उनके बीच घर किये हुए है।

कालीपरजकी सभाका जिक्र[1] मैंने अन्यत्र सविस्तार किया ही है। उसमें एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ है कि बड़ौदा, धरमपुर और बांसदाकी रियासतों तथा अंग्रेज

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २२-१-१९२५ का उपशीर्षक 'कालीपरज'।

सरकारसे भी शराबकी दूकानें बन्द कर देनेका अनुरोध किया जाये। शायद कोई कहे कि यह तो बड़ा जबरदस्त हुक्म दे दिया है; यह भी कहा जा सकता है कि शराबखोरी बन्द करनेकी सारे राष्ट्रकी ओरसे की गई कोशिश बुरी तरह असफल हो चुकी है, ऐसी हालतमें मुट्ठीभर असहाय लोगोंकी बेकार प्रार्थनासे क्या होगा? इसमें शक नहीं कि यह दलील काफी जोरदार है। लेकिन इन दोनों कोशिशोंका रूप जुदा-जुदा है। १९२१ की कोशिश असहयोगियों की थी और वह ब्रिटिश सरकारके खिलाफ थी। असहयोगी उसके हाथसे अधिकार छीन लेनेपर तुले हुए थे। फिर वह उन लोगोंकी ओरसे की गई कोशिश थी जो खुद शराबकी दूकानोके शिकार नहीं थे। पर अब यह प्रार्थना उन लोगोकी तरफसे की जा रही है जो खुद ही इस लतके चंगुलमें फँसे हुए हैं। यह निर्बल लोगोंकी सत्ताधारियोंसे प्रार्थना है। यह केवल ब्रिटिश सरकारसे ही नही बल्कि उससे सम्बन्ध रखनेवाली तमाम सरकारोंसे की गई है। वे लोग असहयोगी नहीं है। वे सहयोग या असहयोगका फर्क नही जानते। वे बेमनसे लगभग अनजाने ही और कभी-कभी तो जोरो-जुल्मके डरसे औरोके लिए काम कर-करके मरते हैं। वे नहीं जानते कि स्वराज्य क्या चीज है? उनके लिए तो स्वराज्य है—शराबखोरी छोड़ देना और उनके बीचसे शराबकी दूकानोंके रूपमें शराब पीनेका प्रलोभन हटा दिया जाना। इसीलिए उनकी यह प्रार्थना दया-धर्मपर आधारित है और इसलिए उसे न मानना मुश्किल होगा।

अध्यक्षके नाते मैं उनके उस प्रस्तावको, जो भिन्न-भिन्न सरकारोंके नाम पास किया गया है, कार्यान्वित करनेके लिए बाध्य हूँ। ब्रिटिश सरकारसे यह प्रार्थना धारासभाके सदस्योंकी मार्फत ही की जा सकती है। धारासभाके सदस्य शराबकी आमदनीको ठोकर मार सकते है, फिर उन्हें शिक्षा विभागके लिए धन न जुटा पानेकी जोखिम ही क्यों न उठानी पड़े। मै उन्हें दावत देता हूँ कि वे आकर अपनी आँखों देखें कि एक समूची जाति इस लतके बदौलत किस तरह बरबाद हो रही है। अगर वे अपने इन देश-भाइयोंका उद्धार करना चाहते हों, तो उन्हें इतना साहस तो प्रदर्शित करना ही होगा।

पर बड़ौदा, धरमपुर और बांसदा राज्योंकी बात दूसरी है। यदि वे चाहें तो सहज ही शराबकी दूकानें बन्द करके अपने प्रजाजनोंको तथा खुद अपनेको विनाशसे बचा सकते हैं। 'खुद अपनेको'—इस सर्वनामका प्रयोग मैंने जानबूझकर किया है; क्योंकि छोटी रियासतोंमें लोगोंका बड़ी तादादमें तहस-नहस हो जाना खुद रियासतोंका तहस-नहस हो जाना है। क्या वे उन लोगोंकी प्रार्थनापर ध्यान न देंगे जो खुद अपनी लतसे अपनी रक्षा करनेके लिए सहायताकी याचना कर रहे हों?

और अब शराबके पारसी दूकानदारोंके विषयमें। मैं जानता हूँ कि उनके लिए यह रोटीका सवाल है। लेकिन उनकी जाति दुनियाकी एक बड़ी उद्योगशील जाति है। वे बुद्धिमान और उद्यमी हैं। वे बड़ी आसानीसे अपने निर्वाहका दूसरा अच्छा पेशा खोज ले सकते हैं। अबतक कई लोगोंने बुरे पेशोंको छोड़कर अपने समाजकी नैतिक उन्नतिके अनुकूल पेशा और काम अख्तियार किया है। मैं पारसियोंसे यह बात कहनेका हक रखता हूँ, क्योंकि मैं उन्हें जानता हूँ और उन्हें चाहता हूँ। मेरे कुछ अच्छे-

अच्छे साथी पारसी रहे हैं और अब भी हैं। उन्होंने भारतके लिए बहुत-कुछ किया है। उन्होंने देशको दादाभाई और फीरोजशाह मेहता दिये हैं। और फिर जो ज्यादा देते हैं उन्हींसे तो और पानेकी उम्मीद की जाती है। शराबके पारसी दूकानदारोंको सुधार आन्दोलनमें दखल देकर खलल डालनेके बजाय (यदि उनपर लगाये इल्जामको सही मानें तो) खुद आगे आकर इस सुधार कार्यका श्रीगणेश करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१-१९२५

१२. पत्र : फूलचन्द शाहको

दिल्ली जाते हुए
पौष वदी १३ [२२ जनवरी, १९२५][1]

भाई फूलचन्द,[2]

तुम्हारा पत्र मिला। इस बार वढवानमें कुछ घंटे तो अवश्य ठहरूँगा ही।

तुमने पट्टणी साहबके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है, यदि वह सत्य हो तो दुःख-जनक बात है। मैंने तो उनके सम्बन्धमें इस आशयका आक्षेप सबसे पहले भावनगरमें सुना था, किन्तु मैंने उसपर ध्यान नहीं दिया था। किन्तु मैं तुम्हारे लिखेको उस तरह दरगुजर नहीं कर सकता। किन्तु मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम्हारी इस बातकी जानकारीका आधार कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है? यदि तुमने यह बात स्वयं नहीं देखी तो फिर किस प्रकार जानी? यह व्यभिचार किस प्रकारका है; मैं यह जाननेकी जरूरत इसलिए मानता हूँ कि श्री पट्टणीके सम्बन्धमें मेरा विचार बहुत अच्छा रहा है और मुझपर उनकी छाप बहुत अच्छी पड़ी है।

व्यभिचारी अधिकारी या राजाके यहाँ न ठहरना चाहिए, तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। हम संसार-भरके काजी कैसे बन सकते हैं? तुम जानते हो कि जिन लोगोंके यहाँ ठहरना होता है, उनपर अनेक प्रकारके आक्षेप सुननेमें आते हैं। इनमेंसे कुछ लोगोंपर किये हुए आक्षेप सच्चे होते हैं, मैं यह भी जानता हूँ। इन्हीं कारणोंसे लोग निर्जन वनमें जा बसते हैं। किन्तु हमें जबतक समाजमें रहना है तबतक जैसा तुम चाहते हो वैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता।

मैं यह बात व्यावहारिक दृष्टिसे नहीं कहता, बल्कि पारमार्थिक दृष्टिसे कहता हूँ। जो हमें ठहराये, हमें उसके यहाँ ठहरना चाहिए, यही धर्म है। किन्तु यदि हम यह देखें कि कोई हमें ठहराकर उससे अपनी अपवित्रताके लिए समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है तो हमें ऐसे लोगोंके यहाँ नहीं ठहरना चाहिए।

१. यह पत्र जनवरी १९२५ में गांधीजीने अपने काठियावाड़के दौरेके तुरन्त बाद लिखा था।
२. सत्याग्रहाश्रमके सदस्य। काठियावाड़के एक राजनीतिक और रचनात्मक कार्यकर्ता।

किन्तु यह तो अपवाद हुआ। तुम या मैं मानसिक व्यभिचार करनेपर एक दूसरेके यहाँ ठहरते हैं या नहीं?

इस पापमय संसारमें ऐसा निष्पाप कौन है जो ऊँचे आसनपर बैठकर दूसरोंको देख-देखकर हँसता रहे? जैसा तुम्हारा खयाल है वैसा प्रमाणपत्र मैं किसीको भी नहीं देता। यदि कोई प्रसिद्ध वेश्या चरखा चलाये तो मैं उस हदतक उसकी भी सराहना अवश्य करूँगा। इससे कोई यह न मानेगा कि मैंने उसे पवित्रताका प्रमाण-पत्र दे दिया है।

"जड़-चेतन, गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥"

हमारा धर्म तो गुणको देखना और सराहना है। क्या संसार ऐसा है कि प्रमाण-पत्रोंसे धोखा खा जाये? मैंने पट्टणी साहबको पवित्रताका प्रमाणपत्र तो कभी नहीं दिया। किन्तु मेरा मन उनको ऐसा प्रमाणपत्र देनेका हुआ था। त्रापजमें[1] मुझे उनकी सरलता, उनका गम्भीर ज्ञान और दृढ़ता आदि गुणोंको देखकर हर्ष और आश्चर्य हुआ था। किन्तु यदि वे फिर भी अपवित्र हों तो उनकी पवित्रताके सम्बन्धमें मेरी जो धारणा बनी है, मुझे वह बदलनी होगी। तुम्हारा पत्र मेरे लिए भविष्यमें उपयोगी होगा। जो-कुछ हुआ है उसे तो ठीक ही हुआ मानता हूँ। पट्टणी साहब व्यभिचारी हैं, यदि मैं इस बातपर विश्वास भी करने लगूँ तो भी मैं जब सार्वजनिक कार्यसे भावनगर जाऊँ और वे मुझे राज्यकी अतिथिशालामें ठहरायें तो मैं वहाँ ठहरूँगा। अपने घर ठहरायें तो वहाँ भी। गोंडल नरेश अपवित्र हैं इस बातपर मेरा एक हद तक विश्वास है। किन्तु यदि वे मुझे अपने यहाँ ठहरायें तो मैं वहाँ अवश्य ठहरूँ और फिर भी मैं यह नहीं समझूँगा कि मैं कोई पाप कर रहा हूँ। मेरा असहयोग पापसे है, पापीसे नहीं। डायरशाहीसे है, डायरसे नहीं।

मुझे लगता है कि मैं तुमको जो बात समझाना चाहता था शायद अब भी पूरी तरह नहीं समझा सका हूँ। किन्तु इतना समझनेका प्रयत्न करना। दूसरी बात यहाँ आकर पूछ जाना। यदि पत्र लिखकर पूछना चाहो तो पत्र लिखना। अहिंसा धर्म बहुत कठिन है। वह खांडेकी धारसे भी तीक्ष्ण है। उसपर आचरण करनेके लिए करुणाकी आवश्यकता है। तुलसीदासजीने भी अपने आपको परम पापी माना था। भक्त सूरदासने भी कहा है, "मो सम कौन कुटिल खल कामी।"

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२६) से।
सौजन्य: शारदाबहन शाह

१. भावनगरसे १७ या १८ मील दूरका एक गाँव।

१३. पत्र : रेवाशंकर झवेरीको

पौष वदी १३ [२२ जनवरी, १९२५][1]

आदरणीय रेवाशंकरभाई,[2]

जैसा आपसे कहा था, मैंने प्रभाशंकरको[3] पत्र न लिखकर कल ही तार दिया है। मैंने उनका पत्र पढ़नेके बाद भाई नानालालसे मिलना ठीक समझा था। वे बारडोलीमें आनेवाले थे, किन्तु नहीं आये। फिर भी वे कल आकर मिल गये; इसलिए प्रभाशंकरको और डाक्टरको[4] भी तार दिया है। मैंने उनको यह लिख दिया है कि चि० चम्पाके नाम एक खासी रकम जमा करा दी जायेगी। मैंने प्रभाशंकरको पत्र भी लिखा है।

तुलसी मेहर[5] कहता था कि रुई धुननेमें [शुरूमें] कुछ परिश्रम पड़ता है। किन्तु हाथ बैठ जानेपर तो बिलकुल नहीं पड़ता। धुनकी हल्की भी बनाई जा सकती है। अगर तुम आन्ध्रकी स्त्रियोंकी तरह धुनो तो तनिक भी कठिनाई न होगी।

मोहनदासके प्रणाम

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० १२६३) की फोटो-नकलसे।

१४. भाषण : सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी बैठकमें[6]

२३ जनवरी, १९२५

श्री गांधीने कहा कि श्रीमती बेसेंटको जैसा डर[7] है मेरा समिति-सम्बन्धी प्रस्ताव उस हदतक नहीं जाता। यह सुझाव तो यह स्पष्ट करनेके लिए दिया गया

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

२. बम्बईके एक व्यवसायी और डा० प्राणजीवन मेहताके भाई।

३. इनकी बेटी चम्पाका विवाह डा० मेहताके बेटे रतिलालसे होनेवाला था।

४. डा० प्राणजीवन मेहता।

५. साबरमतीके सत्याग्रहाश्रमके एक सदस्य।

६. नवम्बर १९२४ में बम्बईमें हुई बातचीतके फलस्वरूप आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी बैठक २२ जनवरी शुक्रवारकी शामको वेस्टर्न होस्टल, दिल्लीमें हुई थी। गांधीजीने इसकी अध्यक्षता की थी। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों तथा सभी राजनीतिक दलोंके बीच समझौतेकी रूपरेखाके बारेमें सुझाव देने और स्वराज्यकी योजना बनानेके लिए एक उप-समिति नियुक्त करनेके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव रखा था। विभिन्न सम्प्रदायों तथा दलोंके प्रतिनिधियों द्वारा भाषण देकर इस सम्बन्धमें अपनी-अपनी स्थिति स्पष्ट करनेके बाद सम्मेलन शनिवारके दोपहर तकके लिए स्थगित कर दिया गया था।

७. श्रीमती बेसेंटने प्रस्तावपर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि सम्मेलनका सहसा नये निश्चय करना अनुपयुक्त तो है ही; इससे बड़ी अव्यवस्था भी फैल जायेगी। क्योंकि ये निश्चय बेलगाँव कांग्रेसमें पास किये गये प्रस्तावोंके विपरीत भी जा सकते हैं और इसके फलस्वरूप श्री गांधीको अध्यक्ष पद छोड़ना पड़ सकता है।

है कि कांग्रेसजन नये मताधिकार या कांग्रेसके सिद्धान्तके सिवा और किसी बातको माननेके लिए मजबूर नहीं हैं। इस मताधिकार सम्बन्धी निर्णय या कांग्रेसके सिद्धान्त केवल प्रस्तावित समितिके कुछ सम्भाव्य निर्णयोंके कारण परिवर्तित नहीं किये जा सकते। कांग्रेसजन अपने हेतुको भली-भाँति समझते हैं; वे अपने कार्यक्रमको पूरा करेंगे। किन्तु यदि गैर-कांग्रेसी कांग्रेसमें शामिल हो जायें और कांग्रेसजनोंको यह विश्वास करा दें कि उनके तरीके गलत हैं तथा मताधिकारमें या कांग्रेस सिद्धान्तमें परिवर्तन करना उचित है तो कांग्रेसका विशेष अधिवेशन बुलानेका वचन दिया जा सकता है। किन्तु वैयक्तिक रूपसे मैं किसी परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं देखता।

श्री गांधीने श्री दालवीकी प्रार्थनापर उदारदलीय संघका यह प्रस्ताव पढ़ा, "उदारदल कांग्रेसमें पुनः तभी प्रविष्ट हो सकता है जब (१) कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्यके अपने घोषित लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए संवैधानिक तरीकोंको अपनाये। (२) जब वह असहयोग तथा सविनय अवज्ञा एवं साथ ही मताधिकारके लिए सूतकी शर्तको भी निश्चित रूपसे दे तथा (३) जब वह विधान-सभाओंमें केवल स्वराज्य दलको ही अपने मान्य प्रतिनिधिके रूपमें स्वीकार न करे।"

श्री गांधीने यह भी कहा है कि दूसरे राजनीतिक दलोंके सुझाव भी करीब-करीब इसी तरहके हैं।...

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-१-१९२५

१५. अ० भा० गोरक्षा मंडलके संविधानका मसविदा[1]

[२४ जनवरी, १९२५][2]

अ० भा० गोरक्षा मंडल

उद्देश्य

गोरक्षा हिन्दू जातिका धर्म है फिर भी चूँकि अब हिन्दू समाज गोरक्षाधर्मके पालनकी उपेक्षा कर रहा है, और चूँकि हिन्दुस्तानमें गोवंशका दिन-प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है, इसलिए गोरक्षा धर्मके समुचित पालनके लिए इस अखिल भारतीय गोरक्षा मंडलकी स्थापना की जाती है।

मंडलका उद्देश्य सभी नैतिक उपायों द्वारा गाय और उसकी सन्ततिकी रक्षा करना है।

१. गांधीजी द्वारा हिन्दीमें तैयार किया गया मूल मसविदा उपलब्ध नहीं है। देखिए नवजीवन, ८-२-१९२५ में "महादेव देसाईका दिल्लीसे पत्र"।

२. देखिए "अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल", १६-३-१९२५ और "गोरक्षा", ९-४-१९२५।

'गोरक्षा' का अर्थ गाय और उसके वंशकी निर्दय व्यवहार और वधसे रक्षा करना है। जिन कौमोंमें गोवध अधर्म नहीं माना जाता या गोवध जरूरी माना जाता है, उनपर किसी भी तरहकी जबरदस्ती करना इस मंडलकी मूल नीतिके खिलाफ माना जायेगा।

साधन

यह मंडल नीचे लिखे साधनोंके जरिये अपना कार्य करनेकी कोशिश करेगा:

१. गाय,. बैल आदिके. प्रति निर्दय व्यवहार करनेवालोंको विनयपूर्वक समझाना। इस विषयमें लेखों, पुस्तिकाओं और व्याख्यानों द्वारा प्रचार करना।

२. जहाँ गाय-बैल बीमार या अशक्त हो जायें और उनके मालिक उनके पालनमें असमर्थ हों, वहाँ ऐसे लोगोंसे इन पशुओंको ले लेना।

३. वर्तमान पिंजरापोलों और गोशालाओंकी व्यवस्थाका निरीक्षण करना, उनके प्रबन्धको अधिक अच्छा बनानेकी दिशामें व्यवस्थापकोंको मदद पहुँचाना और नये पिंजरापोल तथा गोशालाएँ कायम करना।

४. गोशालाओं, पिंजरापोलों या दूसरे साधनों द्वारा आदर्श पशु-संवर्धन करना और सुसंचालित दुग्ध केन्द्रों द्वारा सस्ता और अच्छा दूध सुलभ करना।

५. मरे हुए जानवरोंके चमड़े वगैरहके लिए चर्मालय खोलना और इस प्रकार कमजोर ढोरोंके निर्यातको रोकना या कम करना।

६. चरित्रवान गो-सेवकोंको छात्रवृत्तियाँ देकर गो-सेवाके कामकी तालीम दिलवाना।

७. गोचर-भूमि आदिका जो नाश होता जा रहा है, उसके कारणोंपर विचार करना और उससे होनेवाले हानि-लाभकी जाँच करना।

८. बैलको बधिया करनेकी क्रिया निर्दय क्रिया है; इसलिए पता लगाना कि इसकी आवश्यकता है या नहीं। और बधिया करना जरूरी और उपयोगी मालूम पड़े, तो इस क्रियाके करनेका कोई निर्दोष तरीका खोज निकालना अथवा वर्तमान पद्धतिमें उचित संशोधन करना।

९. मंडलके कामोंके लिए रुपया इकट्ठा करना; और

१०. गोरक्षाके लिए जो अन्य साधन आवश्यक या उचित मालूम पड़ें उनकी योजना करना।

सदस्य

अठारह वर्षसे अधिक उम्रके जो स्त्री-पुरुष इस मंडलका उद्देश्य स्वीकार करें और

(१) जो सालाना पाँच रुपया चन्दा दें, या

(२) जो हर माह इतना समय चरखा चलानेमें दें जिसके फलस्वरूप २,००० गज अच्छा सूत हर महीने इस मंडलको भेज सकें, या

(३) जो इस मंडलके लिए प्रतिदिन एक घंटा मंडल द्वारा निर्धारित किया हुआ काम करें, वे इस मंडलके सदस्य हो सकेंगे।

टिप्पणी: जो सदस्य २,००० गज सूत कातकर देनेका जिम्मा लेंगे, उन्हें पूनियाँ मंडलकी तरफसे दी जायेंगी।

प्रशासन

मंडलके सदस्य जिसे बहुमतसे चुनेंगे, वही इस मंडलका अध्यक्ष होगा। अध्यक्षका चुनाव प्रति वर्ष होगा। इस मंडलके मन्त्री और खजानचीका चुनाव अध्यक्ष करेगा।

सदस्योंकी साधारण बैठकमें कमसे-कम पाँच सदस्योंकी एक कार्यकारिणी समिति प्रतिवर्ष चुनी जायेगी। इस साधारण सभाको प्रतिवर्ष कमसे-कम एक बार बुलाना अध्यक्षका काम होगा।

खजानची मंडलके पैसेके हिसाव-किताबके लिए जिम्मेदार रहेगा। एक हजार रुपयसे ऊपर सारी रकम खजानची द्वारा स्वीकृत बैंकमें रखी जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-३-१९२५

१६. भाषण : सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी बैठकमें

दिल्ली
२४ जनवरी, १९२५

सर्वदलीय सम्मेलनकी बैठक शामको प्रारम्भ हुई। श्री जिन्ना, लाला लाजपतराय तथा एनी बेसेंट जैसे प्रतिनिधि प्रवक्ताओंके महत्त्वपूर्ण भाषण समाप्त होनेपर सब दलोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली उप-समितिकी[1] नियुक्ति की गई जिसमें लगभग ५० सदस्य हैं. . .।

गांधीजीने बैठककी अध्यक्षता की। उनका खयाल था कि यदि हम इस बैठकमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या, ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या और अन्य प्रश्नोंका कोई सन्तोषप्रद, वास्तविक तथा सम्मानजनक हल निकाल सकें तो हम स्वराज्यकी दिशामें बहुत प्रगति कर लेंगे। यदि बैठकमें कोई ऐसी योजना ढूँढ़ निकाली गई जो कि सभी दलोंके लिए स्वीकार्य हो तो वह स्वराज्यकी दिशामें बहुत बड़ा कदम होगा। यदि बैठकमें उपस्थित प्रतिनिधि [इन] मुख्य प्रश्नोंपर एकमत हो सकेंगे तो कांग्रेसके मंचपर दलों-को एक होनेमें तथा राष्ट्रके नामपर एक सर्वसम्मत माँग करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। श्री जिन्नाने कहा कि मैं जल्दी निर्णय करनेपर जोर देता हूँ। मेरा अनुमान

१. उप-समितिका कार्य था "(क) वे शर्तें सुझाना जिनके आधारपर सभी दल कांग्रेसमें शामिल हो सकें (ख) ऐसी योजना तैयार करना जिससे स्वराज्यके अन्तर्गत बनाई जानेवाली विधान-सभाओं तथा अन्य निर्वाचित संस्थाओंमें सभी जातियों, प्रजातियों तथा उप-जातियोंको प्रतिनिधित्व मिल सके तथा ऐसे अच्छेसे-अच्छे तरीके सुझाना, जिससे योग्यताका उचित ध्यान रखते हुए सभी जातियोंको सेवाओंमें न्याय-युक्त और उचित हिस्सा दिया जा सके (ग) स्वराज्यकी ऐसी योजना तैयार करना जिससे देशकी वर्तमान आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।" समितिको हिदायतें दी गई थीं कि वह अपनी रिपोर्ट १५ फरवरीको या उससे पहले दे दे। (बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-१-१९२५)

है कि सरकार शायद फरवरीमें सुधार जाँच समितिकी रिपोर्टको विधानसभामें विचारके लिए पेश करेगी। चूंकि इस समितिके कार्यके सम्बन्धमें हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोंको बड़ा तूल दिया गया है, इसलिए जब रिपोर्टपर विचार करनेका समय आयेगा तब मैं सरकारसे कहना चाहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमानोंके सब मतभेद समाप्त हो गये हैं और अब वे अपनी माँगपर एकमत हैं।

महात्मा गांधीने उत्तर दिया कि उप-समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेसे श्री जिन्नाका मतलब हल हो जायेगा। उप-समिति जल्दी ही बैठक बुलायेगी और वह प्रतिदिन कार्य करेगी तथा उसे तबतक जारी रखेगी जबतक उसका कार्य सम्पन्न नहीं हो जाता और वह अपनी रिपोर्ट तैयार नहीं कर लेती। . . .

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २७-१-१९२५

१७. टिप्पणियाँ

काठियावाड़

भाई भरूचा[1] जो फिलहाल काठियावाड़में काम कर रहे हैं, लिखते हैं कि वे देवचन्द भाईके साथ लोगोंमें घूम-घूमकर विभिन्न स्थानोंसे कपास इकट्ठी कर रहे हैं। १८६ कातनेवाले सभासद भी बना लिये गये हैं; और भी बनते जा रहे हैं। यदि इस उत्साहका पूरा लाभ उठाया जा सके, तो बहुत अच्छे कामके होनेकी सम्भावना है। जहाँ आवश्यक हो वहाँ पूनियों और चरखोंके भेजने तथा जिन लोगोंको कातना न आता हो, उन्हें कातना सिखानेका ठीक-ठीक प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

मैं काठियावाड़के कार्यकर्त्ताओंको सावधान करना चाहता हूँ कि तारीख १५ फरवरीको मैं फिर काठियावाड़में पहुँच रहा हूँ। उस समयतक मैं काफी काम हो चुकनेकी आशा रखूंगा। मेरे मनमें अभीसे यह विचार आता रहता है कि जब मैं राजकोट पहुँचूंगा, तब वहाँका क्या दृश्य होगा। राजकोटमें खादीकी कमीके विषयमें एक कच्छी भाईने शिकायत की थी। इस सम्बन्धमें मैं कुछ महीने पहले 'नवजीवन' में लिख चुका हूँ।[2] क्या १५ फरवरीको मुझे वहाँ वैसा ही अभाव दिखाई देगा?

ठीक हिसाब

हम पैसेकी जगह कपास इकट्ठी कर रहे हैं, इसलिए हिसाब रखनेकी पद्धतिमें अन्तर तो होगा ही। यदि शुरूसे ही सोच-समझकर हिसाब रखा जाये, तो भविष्यमें उससे बड़ी सुविधा होगी। कपास इकट्ठी करना, फिर उसे ठीक तरहसे रखना और उसके बाद जिन विभिन्न क्रियाओंको करना आवश्यक हो जाता है, उनपर खर्च होने-

१. बरजोरजी भरूचा।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", २७-४-१९२४के अन्तर्गत उपशीर्षक "काठियावाड़की खादी"।

वाली रकम आदिका प्रबन्ध करके रखना आवश्यक होगा। इसके सिवाय कुछ ऐसे भी लोग होंगे, जो अपनी ही कपाससे सूत कातेंगे और कुछ ऐसे होंगे जो समिति द्वारा दी हुई कपाससे सूत कातेंगे। इसलिए इन दोनोंका हिसाब अलग-अलग तरहसे रखना जरूरी होगा। इसके सिवाय जो कपास कातनेके काममें आ चुकेगी, उसका हिसाव भी अलग रखना होगा। इस तरह हिसाबकी अधिक बहियाँ रखना जरूरी हो सकता है और इसलिए यह काम धीरज, सोच-विचार और समझके बिना नहीं हो सकेगा।

१०० रुपयेके चरखे

एक सज्जनने प्रश्न किया है कि जिन जिलोंने दूसरोंके द्वारा २,००० गज सूत कतवाकर भेजनेकी इजाजत दे रखी है, क्या वे भी उक्त इनामके हकदार हो सकते हैं। उक्त वात जिस ढंगसे कही गई है उसकी भाषा भले स्पष्ट न रही हो, फिर भी यह इनाम तो उसीके लिए है जो स्वयं कातेगा। 'खादी प्रेमी' सज्जनका इरादा उस जिलेको यह पुरस्कार देनेका नहीं है, जो दूसरोंके द्वारा सूत कतवाकर भेजनेवाले सदस्योंकी संख्यामें सबसे बढ़कर हो। मैं आशा करता हूँ कि इस पुरस्कारके लिए जिलोंमें खासी प्रतिस्पर्धा होगी। १०० रुपयेकी कीमतकी बात नहीं सोचनी है। महत्त्व पुरस्कारका है, उसके मूल्यका नहीं। यदि बोरसद ही यह तय कर ले, तो पूरी शक्ति लगाकर ५,००० (सूत कातनेवाले) सदस्य बना ले सकता है।

किसान परिषद्[1]

सोजित्राके कार्यकर्त्ताओंने पाटीदारोंकी परिषद् उपर्युक्त नाम देकर बुलाई थी और इसलिए मैं पाटीदारोंकी जगह किसान शब्दका उपयोग करनेका साहस कर रहा हूँ। पुराने नामोंको छोड़कर नये नामोंके पीछे घूमना और पुरानी बातोंको हलका माननेका रिवाज अनुकरणीय नहीं है। पाटीदार कहलानेमें कुछ भी विशेष बात नहीं है; किसान शब्द बहुत मीठा और प्यारा है। कहा जा सकता है, सोजित्राके पाटीदार कमसे-कम दो दिनोंके लिए किसान बन गये थे और यह इसलिए कि उन्होंने परिषद्के लिए आवश्यक मददका बोझ अपने ऊपर ले लिया था। किसान तो हमेशा मजदूर है। शरीर-श्रममें ही उसका बड़प्पन है। सोजित्राकी इस परिषद्में छोटे-बड़े सभी पाटीदार सेवा कर रहे थे और इससे उनकी शोभा हो रही थी। परिषद्का मण्डप स्वयंसेवकोंने अपने हाथों तैयार किया था। यह भी स्पष्ट था कि खर्च यथासम्भव कम किया गया है। जो अतिथि प्रतिनिधि इत्यादि आये थे, उन्हें भी परिषद्के कुछ सदस्योंने व्यक्तिगत तौरपर अपने-अपने यहाँ ठहरा लिया था और इसलिए व्यवस्था भी अच्छी हो गई और स्वागत समितिपर भोजन आदिके खर्चका बोझ भी नहीं पड़ा। बड़ौदा सरकारकी ओरसे परिषद्को आवश्यक सुविधाएँ दे दी गई थीं, इसलिए काम सरल हो गया था।

१. इस शीर्षकमें यह और इसके आगेकी टिप्पणियाँ प्रकारान्तरसे २२-१-१९२५ के यंग इंडियामें भी दी गई थीं।

अध्यक्ष

डा० सुमन्त मेहता भी किसान ही नजर आते थे। जहाँ देखिए, वहाँ काम और सेवाके अतिरिक्त कोई दूसरा दृश्य दिखाई नहीं देता था। स्वागताध्यक्ष, और परिषद्के अध्यक्ष श्री डा० सुमन्त मेहता, दोनोंके भाषण छोटे ही थे और वे भी उन्होंने पूरे पढ़कर नहीं सुनाये, केवल कुछ अंश पढ़कर सुनाये और परिषद्का समय बचाया।

धाराला

पाटीदारोंकी इस परिषद्के साथ ही साथ तीन परिषदें और भी आयोजित की गई थीं — धारालाओंकी, स्त्रियोंकी और अन्त्यजोंकी। ये परिषदें चूँकि एकके बाद एक हुई थीं, इसलिए सभी परिषदोंमें लोगोंको उपस्थित रहनेकी सुविधा हो गई थी। धाराला जाति अपनेको बारिया क्षत्रिय मानने लगी है। किन्तु यदि मैं उन्हें सलाह देनेवाला कोई होता हूँ, तो मैं यही सलाह दूँगा कि वे अपने धाराला नामको ही अंगीकार किये रहें और उसे पवित्र बनायें। नाम बदलनेसे काम नहीं हो जाता। नाम बदलनेसे दरजा भी ऊँचा नहीं होता। वह तो क्षत्रियोंको शोभने योग्य काम करनेसे ही प्राप्त होगा। इतनी आलोचना करनेके बाद परिषद्के विषयमें तो मुझे प्रशंसाके शब्द ही कहने हैं। मण्डप धारालाओंसे खचाखच भरा हुआ था। संख्यामें इतने अधिक होनेके बाद भी वहाँ सम्पूर्ण शान्ति रही। प्रस्ताव भी अपने समाजके अन्तर्गत सुधार करनेकी हदतक सीमित था। इन लोगोंमें मद्यपान, स्त्री-हरण और कन्याविक्रयके दोष बहुत दिनोंसे चलते आ रहे हैं। परिषद्में आये हुए भाइयोंने इन तीनों बुराइयोंको छोड़नेका प्रस्ताव पास किया।

अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहना भी क्षत्रियका धर्म है। भय बाहरसे आये या भीतरसे पैदा हो, उसकी चिन्ता न करना और किये हुए निश्चयपर दृढ़ रहना यह ऊँचे दरजेका 'अपलायनं'[1] है। वीरत्व तलवार चलानेमें नहीं, दृढ़तामें है।

महिला परिषद्

सोजित्रा महिला परिषद्में इतनी महिलाएँ आ गई थीं कि जिसकी किसीने कल्पना नहीं की थी। ज्यादातर पाटीदार बहनें परदा करती हैं। इसके बावजूद परिषद्का मण्डप बहनोंसे भर गया था। इतनी बहनोंका इकट्ठा होना परिषद्की सार्थकताका द्योतक था। उसमें कोई प्रस्ताव पास करनेकी आवश्यकता दिखाई नहीं दी। उन्होंने चरखेकी बात ध्यानपूर्वक सुनी, इसे सन्तोषजनक माना जाना चाहिए। यदि प्रस्ताव तैयार किया जाता और प्रस्तुत किया जाता, तो उसके समर्थनमें हाथ भी अवश्य उठ जाते। किन्तु उससे कोई बड़ा अर्थ सिद्ध न होता।

अन्त्यज

अन्त्यज परिषद् भी इसी मण्डपमें हुई। कार्यकर्त्ताओंने साहसपूर्वक मण्डपमें ही इस परिषद्को आयोजित होने दिया, इसलिए वे धन्यवादके पात्र हैं। पाटीदारोंमें से

१. न दैन्यं न पलायनम्।

अभीतक अस्पृश्यताके रोगका उन्मूलन नहीं हुआ है। फिर भी उन्होंने इस परिषद्को अपने मण्डपमें आयोजित होने दिया, यह एक शुभ लक्षण है। परिषद्में बहुतसे अन्त्यजेतर भाई-बहन भी थे। अन्त्यज परिषद्में शराब न पीने, चरखा चलाने और खादी पहननेकी प्रतिज्ञा ली गई। प्रतिज्ञाका एक-एक शब्द भाई-बहनोंको समझा दिया गया था। अन्त्यज बहनें भी काफी बड़ी संख्यामें आई थीं। वे अपने साथ धूप ले कर आई थीं। धुआँ देखकर मैं कुछ गलतफहमीमें पड़ गया था। मैंने समझा कि वे बीड़ियाँ पी रही हैं। किन्तु मुझे बताया गया कि वह धुआँ धूपका है। पण्डालमें उपस्थित इन स्त्रियों और पुरुषोंके चेहरोंपर प्रसन्नता छाई हुई थी।

कालीपरज

यों तो सोजित्रामें आयोजित सभी सम्मेलन अपनी-अपनी जगह अच्छे थे, किन्तु कालीपरज परिषद्ने मेरे मनपर ज्यादा गहरा असर छोड़ा। पहले जिन परिषदोंका उल्लेख हो गया है, उनके पीछे व्यवहार-बुद्धि, सादगी, मितव्ययिता तथा फुरती दृष्टिगोचर होती थी, किन्तु कालीपरजकी परिषद्में इस सबके साथ-साथ कला भी दिखाई दी। मैं सहज ही कह उठा कि मैंने बहुत-सी परिषदें देखी हैं, किन्तु स्वाभाविक सौन्दर्यकी दृष्टिसे ऐसी परिषद् मैंने कदाचित् दूसरी नहीं देखी। अपने इस उद्गारमें मुझे अतिशयोक्ति नहीं जान पड़ती। ऐसा लगा मानो अदृश्य रूपसे स्वयं प्रकृतिने आकर वहाँ सजावट की है। कुदरतसे सीख लेना और उसे किसी प्रकारका आघात न पहुँचाना मेरी समझमें यही सच्ची कला है। जिस वेडछी ग्राममें यह परिषद् आयोजित हुई थी, वहाँ कुछ घर और झोपड़ियाँ थीं। किन्तु कालीपरज जातिके लोग न गाँवोंमें रहते हैं, न घरोंमें। वे मैदानोंमें घास-फूसकी झोपड़ियाँ डाल कर रहते हैं। वेडछीकी आबादी तीन-चारसौसे ज्यादा नहीं होगी। किन्तु इस छोटी-सी बस्तीकी झोपड़ियाँ कालीपरज लोगोंकी झोपड़ियोंसे अच्छी ही कही जायेंगी। शायद यही सोचकर परिषद् वेडछीमें रखी गई। साधारणतः परिषदें मैदानोंमें रखी जाती हैं। हमारे कलाकारोंने आसपास घूमकर देखा और प्राकृतिक सौन्दर्यसे सम्पन्न एक टुकड़ा परिषद्के ध्यानसे चुना। गाँवके पास ही वाल्मीकि नामकी नदी बहती है। वृक्षोंसे सुशोभित टेकरियोंकी मालाके बीचसे होकर यह नदी नाचती हुई बहती चली जाती है। परिषद्के आयोजनकर्त्ताओंने इसी स्थानको पसन्द किया। मुख्य मंच बहते हुए पानीके ऊपर निर्मित किया गया और जिस तरह किसी वृक्षसे डाली फूट निकलती है, इसी प्रकार इस मंचको आगेतक बढ़ाकर उसे प्रतिनिधियोंके बैठनेकी जगहमें बदल दिया। सर्दियोंके दिन थे और पानी ठंडा था। इसलिए हमारे कला-प्रवीणोंने यह विचार किया कि प्रतिनिधियोंको छायाकी जरूरत नहीं है। इतना ही नहीं दोपहरके बाद धूप भी उन्हें पसन्द ही आयेगी, इसलिए स्वर्णिम आकाश-मण्डपका चँदोवा और नदीकी रेत लोगोंके लिए आसन बन गई। चूँकि नदी टेकड़ीके एक तरफ बहती है, इसलिए सामनेकी टेकड़ीसे नदीके इस किनारेतक नदीका सूखा किनारा है। नदीमें कीचड़ नहीं है, रेत है। इसलिए किसी भी प्रकारकी कृत्रिम सजावट, दरी-जाजम आदिकी जरूरत नहीं पड़ी। मुख्य मंचके ऊपर बाँसों और हरे पत्तोंका मण्डप या वितान

बनाया गया था और वहाँतक जानेके लिए एक चौड़ा रास्ता छोड़ दिया गया था। इस चौड़े रास्तेके दोनों ओर भी बाँस लगा दिये गये थे और उनपर बाँस लगाकर हरे पत्ते और लताएँ बाँध दी गई थीं। मंचपर चढ़नेके लिए एक बोरेमें रेत भरकर रख दी गई थी और वह रेतसे भरा हुआ बोरा सीढ़ीका काम देता था। तसवीरें भी नहीं थीं और सजावटमें एक इंच भी सूतका उपयोग नहीं किया गया था। यह कहनेकी आवश्यकता भी नहीं है कि ऐसी जगह सूतकी सजावट भी शायद ही शोभा दे। सूत मनुष्यकी कृति है और उसकी शोभा मनुष्यके घरमें है। जहाँ आकाशका वितान हो और रेतका आसन, वहाँ तो वृक्ष-पात ही शोभा दे सकते हैं। इसके सिवा सूतके प्रेमियोंको सूतका दुरुपयोग भी नहीं करना चाहिए। उसे तो चुटकी-चुटकी रुई और इंच-इंच सूत भी सँभालकर रखना चाहिए।

प्रदर्शनी

परिषद्से थोड़ी ही दूरी पर, किन्तु नदीके ही तटपर और टेकड़ियोंकी मालाके चरणमें चरखा-प्रदर्शनी आयोजित की गई थी। वहाँ लगभग ५० चरखे थे और उन्हें वृद्ध स्त्री-पुरुष और छः-सात से लेकर १० वर्ष तकके बालक-बालिकाएँ चला रही थीं। इस व्यवस्थामें भी एक सूझ थी। जातिके तरुण लोग स्वयंसेवकोंकी तरह काम कर रहे थे। प्रदर्शित खादीमें से कुछ तो स्वयं कालीपरजके लोगों द्वारा काती, बुनी और रँगी गई खादी थी। बाकीकी मोटी खादी गुजराती खादी भण्डारकी ओरसे रखी गई थी। प्रदर्शनीके स्थानपर कालीपरजोंका विशेष बाँसुरी-वादन हो रहा था। वहाँ कुछ विशिष्ट नेताओंके चित्र और थोड़ा-बहुत साहित्य भी प्रदर्शित था। इस सारे आयोजनमें कहा जा सकता है कि खर्च तो कुछ भी नहीं हुआ। लाल, पीले पतले विदेशी कागजकी बनी हुई झंडियाँ जो साधारणतया मण्डपोंमें नजर आती रहती हैं, वहाँ ढूंढ़े भी नहीं मिल सकती थीं। इन कागजोंकी सजावट न बुद्धि जाहिर करती है, न सुरुचि। यह तो मानो नींद बेचकर अनिद्रा रोग मोल लेने जैसी बात है। जहाँ-कहीं मैं कागजकी सजावट देखता हूँ, कलाकी इस हत्यापर मुझे क्रोध आता है। सोजित्रा भी इस दोषसे नहीं बच पाया था।

सूत्र-बद्ध

कालीपरज जाति भली-भाँति सूत्र-बद्ध है। वह स्वयं कपास पैदा करती है। यह जाति गरीब और सरल है। ये लोग विदेशी कपड़े पहनते हैं — उन्हें अभी इसका शौक नहीं लगा है, इतनी बात जरूर है। यदि कम दामपर खादी उपलब्ध होने लगें, तो वे उसे अवश्य पहनेंगे। बहनें छोटी साड़ी पहनती हैं और इसलिए उन साड़ियों-का वजन कम होता है। इसी कारण चरखा और खादी प्रचार इन लोगोंमें फैलता जान पड़ता है। एक साठ सालका बूढ़ा किसान अपने खेतकी देखभाल करते हुए भी हमेशा रातको और सवेरे कातता है। उसके कपड़े अपने काते हुए सूतमें से बने हुए थे और उसीमें से वह अपने बच्चोंको देनेका इरादा भी रखता है। इस तरह उद्देश्य यह है कि एकके बाद एक कुटुम्ब अपने लिए सूत कातने और बुनने लगें। जब मैंने इस आदमीसे सूत कातनेका कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि इससे पैसा

बचता है। साल-भरमें मुझे अपने कपड़ोंपर १० रुपये खर्च करने पड़ते थे — सो बच जाते हैं।

मद्यपान

१ कालीपरज अर्थात् काले लोग। किन्तु ऐसा नहीं है कि अन्य लोगोंसे अधिक काले होनेके कारण वे कालीपरज कहलाते हों। उनके कालीपरज कहलानेका कारण यह है कि ऊँचे कहलानेवाले लोग यह कहकर उनकी अवगणना करते हैं। इस समय उनकी स्थिति बहुत ही दयनीय है। भीरुता, अन्धविश्वास और मद्यपानका व्यसन उन्हें खोखला किये दे रहा है। बावजूद इस बातके कि वे लोग जंगलोंमें रहते हैं, वे हरएकसे और हरएक चीजसे डरते हैं। उनका सबसे बड़ा दोष मद्यपान है। ताड़ी और शराबसे यह जाति मिट्टीमें मिली जा रही है। सन् १९२१की जागृतिके समय वे भी आन्दोलनमें आये और इसलिए उनमें भी कुछ सुधार हुए। किन्तु अभी बहुत-कुछ होना बाकी है। शराब उनके बीचमें इस तरह घर करके बैठ गई है कि वे शराब पीनेको गुण मानने लगे हैं। जब मद्य-निषेध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उनके एक दलने इस आन्दोलनको समाप्त करनेका इरादा किया और जो शराब पीनेकी बुराई करते थे, उन्हें तंग करना प्रारम्भ कर दिया। कहा जाता है कि शराब बेचनेवाले पारसी दूकानदारोंका इसमें हाथ था। उन्हें भय था कि यदि कालीपरज शराब छोड़ देंगे, तो उनका धन्धा लगभग बैठ जायेगा और शराबका ठेका लेनेवालोंको नुकसान होगा। इस दृष्टिसे विचार करें, तो ठेकेदारोंको दोष देना व्यर्थ है। फिर भी मैं मानता हूँ कि उनसे भी दो शब्द कहनेका मुझे अधिकार है। पारसी जातिपर मैं मुग्ध हूँ। बहुत-से पारसियोंसे मेरा घनिष्ठ परिचय है। इस जातिके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर है। इसलिए शराबके पारसी ठेकेदार मेरी इस बातका उलटा अर्थ नहीं निकालेंगे। संसारमें ऐसे बहुत-से लोग हुए हैं जिन्होंने दूसरोंको नुकसान पहुँचानेवाले धन्धे छोड़ दिये। ये लोग भी साहसी हैं और होशियार हैं। यदि ये शराबका व्यापार छोड़ दें, तो इन्हें दूसरा व्यापार मिल ही नहीं सकता, ऐसी बात नहीं है। इतना वे करते हैं या नहीं करते, किन्तु मैं यह आशा अवश्य करता हूँ कि वे अपने धन्धेको चालू रखनेकी दृष्टिसे दारू-प्रचारक-मण्डलका साथ नहीं देंगे।

प्रतिज्ञा

अच्छी तरह सोच-विचार करनेके बाद इस परिषद्ने दो प्रतिज्ञाएँ ली। एक शराब छोड़नेकी तथा दूसरी खादी पहनने और सूत कातनेकी। प्रतिज्ञाएँ ईश्वरको साक्षी रखकर की गई हैं। फिर भी प्रतिज्ञाएँ सफल तभी होंगी जब स्वयंसेवक निरन्तर काम करते ही रहेंगे।

रामनाम

इस सबके बाद भी जब मनुष्यके प्रयत्नसे कोई बात नहीं बनती, तब ईश्वरकी कृपा काम आती है। इसीलिए मैंने धारालाओं, अन्त्यजों और कालीपरजोंको रामनाम-का जप करनेकी सलाह दी है। सुबह सूर्योदयसे पहले उठकर मुँह-हाथ धोकर ईश्वरसे

प्रार्थना करें कि वह उन्हें प्रतिज्ञा-पालनमें सहायता पहुँचाये। रामनामका जप करें और इसी तरह सोते समय भी। रामनामपर मेरी आस्था तो बहुत वर्षोंसे है। अनेक मित्रोंके लिए रामनाम रामबाणकी तरह सिद्ध हुआ है। वे अनेक आन्तरिक द्वन्द्वोंसे मुक्त हो गये हैं। जो लोग ठीक उच्चारण नहीं कर सकते, द्वादश-मन्त्र भी जिन्हें याद नहीं हो सकता और जिन लोगोंके लिए ईश्वर शब्दका उच्चारण कठिन है, उनके लिए भी 'राम'का उच्चारण सहल होगा। जो श्रद्धापूर्वक 'रामनाम'का जाप करते हैं, मैं मानता हूँ कि वे सदा सुरक्षित हैं। मेरी कामना है कि रामनाम इन भाई-बहनोंको भी फले।

बारडोलीका कर्त्तव्य

मैं बारडोली जिलेमें होकर लौट आया। वहाँ मुझे पुरानी घटनाओं और पुरानी प्रतिज्ञाओंकी याद आई। मैं दुःखी हुआ। किन्तु आशावादी होनेके कारण मैं निराश तो बेशक नहीं हुआ। इसलिए मैं बारडोलीसे आशा लेकर ही वापस आया हूँ।

बारडोली मनमें धार ले तो बहुत-कुछ कर सकती है। वहाँके पाटीदार दूरंदेश हैं। उनमें से बहुतसे लोग दक्षिण आफ्रिका गये हैं और उन्होंने कष्ट उठाये हैं। यह जिला पैसेकी दृष्टिसे सुखी है। वहाँ उत्तम कपास उत्पन्न होती है। इस जिलेके लिए बहुत मेहनत की गई है। गुजरातके दूसरे जिलोंसे जा-जा कर कार्यकर्त्ता वहाँ बसे हैं। वहाँ आश्रम बनाये गये हैं और उनमें स्वर्गीय वीर पारसी रुस्तमजीभाई की दी हुई रकम लगी है। बारडोली हिन्दुस्तान-भरमें नाम पा चुकी है।

बारडोलीके ऐसे पाटीदार क्या करेंगे? वे निश्चय कर लें, तो घर-घर चरखा दाखिल करके, स्वयं सूत कातकर, उसीका बुना हुआ कपड़ा पहनकर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकते हैं। यह सब काम बारडोलीके लिए एक साधारण बात है।

भाई कुँवरजी तथा भाई लक्ष्मीदासने काम शुरू कर दिया है। उन दोनोंके बीचमें तय हुआ है कि लोगोंकी जरूरत-भर कपास उपलब्ध करेंगे और दूसरोंका कता हुआ सूत बुनवायेंगे। उन्होंने इस तरह कामका बँटवारा कर लिया है। भाई कुँवरजीने २,००० मन कपास इकट्ठी करनेका बीड़ा उठाया है और भाई लक्ष्मीदासने उसे कतवा देनेका। यदि ऐसा हो, तो बारडोली थोड़े ही समयमें कपड़ोंके मामलेमें स्वावलम्बी हो जायेगी। ईश्वर बारडोलीको सफल करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-१-१९२५

१८. पत्र : एक जर्मनको

२५ जनवरी, १९२५

शान्ति एवं स्वतंत्रताके लिए संघर्षकी एक शर्त है, आत्मसंयम प्राप्त करना। उसके लिए संसारके सब सुखोंका त्याग कर देना आवश्यक है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१९. मौन-दिवसकी टिप्पणी[1]

२६ जनवरी, १९२५

गुजरातमें कुछ हदतक तो गोरक्षा होती है; किन्तु काठियावाड़ अपवाद है। लेकिन वहाँ भी बहुतसे लोग दुष्कालमें पशुओंको निकाल देते हैं। हमारा पशुओंके प्रति जो व्यवहार है उससे मुझे कदाचित् ही किसी जगह सन्तोष हुआ हो। इसके विपरीत यूरोपमें उनके प्रति व्यवहार शायद ही कहीं असन्तोषजनक दिखाई देगा। अरबमें घोड़ा लगभग पूजा जाता है। वहाँ उसकी सार-सँभाल भी ऐसी ही की जाती है। हम हिन्दुस्तानके लोग गायके प्रति मालूम नहीं इतने निर्दय क्यों हैं। यूरोपमें तो पशु ऐसे होते हैं कि हम देखते रह जायें।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. गोरक्षा परिषद्में गांधीजी द्वारा दिये गये भाषणकी महादेव देसाईने जो आलोचना की थी, यह टिप्पणी उसके उत्तरमें लिखी गई थी।

२०. पत्र : मगनलाल गांधीको

दिल्ली
माघ सुदी ३ [२७ जनवरी, १९२५][1]

चि. मगनलाल,

इस पत्रमें जो माँग की गई है वह किसी न किसीको पूरी करनी ही चाहिए। जो रुई दे वह सूत ले, यह उचित ही है। इसका मुनासिब बन्दोबस्त कर देना। रुई उस जिलेसे ही मिल सके, पहले तो यही प्रयत्न किया जाना चाहिए।

चि. राधाके साथ बातचीत तो सन्तोषजनक हुई है। वह तो अपने निश्चयपर दृढ़ है। फिर भी उचित यही है कि हम चारों ओर निगाह रखें।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अभी दिल्लीमें दो-तीन दिन लगेंगे।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०९२)से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

२१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[दिल्ली
माघ सुदी ३ [२७ जनवरी, १९२५][2]

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र कई दिनोंके बाद मीला।

मेरा किसीपर अत्यंत विश्वास नहिं है। परंतु मनुष्य मात्रका विश्वास रखना हमारा कर्तव्य है। हम भी तो दूसरेके विश्वासकी आशा रखते हैं। जब दोनों पक्ष गलती करते हैं तब न्यूनाधिकताका प्रमाण खींचना बहोत मुश्केल हो जाता है। इसलीये मैंने तो एक हि मार्ग सोच लीया है — दुर्जनके साथ भी सज्जनतासे बर्ताव रखना।

१. माघ सुदी ३, १९२५ में २७ जनवरीको पड़ी थी। गांधीजी उस दिन सर्वदलीय सम्मेलनकी बैठकके सम्बन्धमें दिल्लीमें मौजूद थे।

२. देखिए पाद-टिप्पणी १।

मेरा दो तीन दिन और दिल्लीमें ठहरना होगा। जो कुछ हो रहा है इससे व्यवहारदृष्टिसे मुझे संतोष नहिं है। पारमार्थिक दृष्टिसे तो मेरे कर्तव्य-पालनमें हि मेरा संतोष है।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

डा० अनसारीकी बेगम बीमार होनेके कारण मैं सुलता[न] सिंगजीके यहां रहता हुं।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०२)से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२२. भेंट : समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंसे

दिल्ली
२७ जनवरी, १९२५[1]

निकट भविष्यमें विधानसभामें बंगाल अध्यादेशपर[2] होनेवाली बहसको ध्यानमें रखते हुए हमारे प्रतिनिधिने महात्मा गांधीसे पूछा — बंगाल परिषद्में लॉर्ड लिटनके भाषण[3] तथा विधानसभामें वाइसरायके भाषणको[4] देखते हुए क्या आपके विचारमें

१. बॉम्बे क्रॉनिकल तथा सर्चलाइटमें प्रकाशित रिपोर्टोंकी तिथिके अनुसार।

२. यह सरकारको किसी भी व्यक्तिको गिरफ्तार करके मुकदमा चलाये बिना जेलमें रखनेका अधिकार देनेके लिए जारी किया गया था।

३. बंगाल विधान परिषद्में ७ जनवरीको बंगाल अध्यादेशपर भाषण देते हुए बंगालके गवर्नर लॉर्ड लिटनने कहा था : "इस प्रकारके विधेयकको उचित ठहरानेका यही एक कारण है कि सारे राज्यका हित खतरेमें पड़ गया है और वह खतरा किसी अन्य प्रकारसे दूर नहीं किया जा सकता।..." "जब आपकी स्वराज्य सरकार आयेगी तब जो लोग स्वराज्य सरकारको नापसन्द करनेके कारण उसके संस्थापकोंकी हत्याकी धमकी देंगे, यदि आप उन लोगोंके अधिकारको स्वीकार करेंगे तो आपकी सरकार कदापि सफल नहीं हो सकेगी . . . यदि आप इन लोगोंको इस बातके लिए तैयार कर सकें कि वे अपने हथियार हुगलीमें डाल दें और राजनीतिक प्रणालीके रूपमें आतंकवादको सदैवके लिए छोड़ दें तो हम आपको वचन देते हैं कि हम उनको दूसरे ज्यादा अच्छे ढंगसे देशकी सेवा करनेके प्रयत्नमें हार्दिक सहयोग देंगे।" देखिए **इंडियन क्वार्टरली रजिस्टर**, १९२५, खण्ड १, जनवरी-जून।

४. लॉर्ड रीडिंगने विधान सभामें २० जनवरीको बंगाल अध्यादेश संशोधन विधेयकपर बोलते हुए कहा था, "बंगालमें आतंकवादी आन्दोलनको रोकने तथा व्यापक रूपसे फैली गुप्त संस्थाओंके खतरेको दूर करनेके लिए अध्यादेश जारी करना उचित है। इस आन्दोलनके व्यापक होनेका अर्थ अधिकारियों तथा निर्दोष नागरिकोंका अधिकाधिक मारा जाना है। विनियम–३ के अन्तर्गत लागू करनेपर भी सामान्य कानून इन अपराधोंको रोकनेमें प्रभावहीन सिद्ध हुआ है।" देखिए **इंडियन क्वार्टरली रजिस्टर**, १९२५ खण्ड १; जनवरी-जून।

कोई परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधीने उत्तर दिया कि मैंने ऐसी कोई बात नहीं देखी जिससे मेरा विचार बदलता।

उन्होंने कहा कि इसके विपरीत मेरी मान्यता यह है कि दोनों ही भाषणोंका राष्ट्रके सम्मुख उपस्थित समस्यासे कोई सरोकार नहीं है; क्योंकि मेरी रायमें अध्या-देशके अन्तर्गत जो अधिकार ग्रहण किये गये हैं वे असाधारण अवसरपर ही ग्रहण किये जाने चाहिए और जनताके नियमपूर्वक निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी स्वीकृतिके बिना तो कदापि ग्रहण नहीं किये जाने चाहिए। ऐसे मामलोंमें जहाँ जीवन-मरणका प्रश्न हो — और जिनका प्रजाकी स्वतन्त्रतासे सम्बन्ध हो वहाँ अधिकारियोंकी राय किसी कामकी नहीं होती, फिर चाहे वे अधिकारी कितने ही बड़े क्यों न हों।

वस्तुतः महात्मा गांधी इससे भी आगे गये। उन्होंने कहा :

भारतके लिए इस प्रकारकी आग्रहपूर्ण घोषणाएँ नई नहीं हैं। क्या सर माइकेल ओ'डायरने[1] और लॉर्ड चेम्सफोर्डने[2] भी लगभग पूरी संजीदगीके साथ यह नहीं कहा था कि पंजाबमें राजद्रोह तथा षड्यंत्र व्यापक रूपसे फैले हैं? क्या सर माइकेल ओ'डायरने यह दावा नहीं किया था कि पंजाबमें आम विद्रोहकी स्थिति है। क्या इसे वे सिद्ध कर सकते हैं? अब हम जान गये हैं कि इन वक्तव्योंके समर्थनके योग्य प्रमाण लगभग नहीं थ।

महात्मा गांधीने इसलिए इस बातपर प्रसन्नता व्यक्त की है कि जहाँतक अध्या-देशका सम्बन्ध है भारतीय एकमतसे उसकी निन्दा करते हैं और उनको आशा है कि उसके विरुद्ध आन्दोलन दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ेगा और इस हदतक जा पहुँचेगा कि वह एक दिन दुर्निवार हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २८-१-१९२५

२३. कुछ प्रश्नोंके उत्तर

पिछले महीने एक अंग्रेज सज्जनके साथ खुल कर मेरी बातें हुईं। उक्त सज्जनको हिन्दुस्तानकी समस्याओंमें बहुत दिलचस्पी है और वे भरसक उसकी सेवा करनेके इच्छुक हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या इस बातचीतका सार छापा जा सकेगा। मैं इसके लिए तुरन्त सहमत हो गया और उन्होंने इस चर्चामें जो प्रश्न उठाये थे मैंने उन्हें लिखकर दे देनेको कहा। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रश्न लिखकर दे दिये। मैं उनका नाम प्रकट नहीं कर रहा हूँ क्योंकि महत्त्व नामका नहीं है। ज्यादा महत्त्व विचारका है, क्योंकि इन दिनों लोगोंमें उन विचारोंके प्रति कुछ दिलचस्पी दिखाई दे रही है। यदि मैं जैसा कि मेरा दावा है, अंग्रेजोंका मित्र हूँ, तो मुझे जरूर उनके

१. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर, १९१३-१९१९।

२. भारतके वाइसराय, १९१६-१९२१।

मनमें उठनेवाली तमाम शंका-कुशंकाओंका उत्तर धीरजके साथ देना चाहिए। प्रश्नकर्त्ता मित्रने ये तमाम सवाल अपनी ही तरफसे नहीं किये थे, बल्कि ज्यादातर तो उन अंग्रेजोंकी तरफसे किये थे जिन्होंने ये सवाल असलमें उनसे किये थे।

सवाल और जवाब नीचे दिये जा रहे हैं:

खादी कार्यक्रमको स्वराज्यका साधन माननेके आपके आग्रहका वास्तविक हेतु क्या है?

मैं स्वराज्य सिर्फ अहिंसा और सत्यके द्वारा प्राप्त करना चाहता हूँ। यह तभी मुमकिन हो सकता है जब खादी-कार्यक्रमको सफल बनानेके लिए उसपर अध्यवसाय-पूर्वक अमल किया जाये। स्वराज्य शान्तिपूर्ण उपायोंसे तभी मिल सकता है जब, किसी बहुत थोड़ी ही अवधिके लिए और बहुत सामान्य कामके लिए ही क्यों न हो, हिन्दुस्तानकी सारी जनता एक मनसे कोई रचनात्मक और उपयोगी काम करे। ऐसा प्रयत्न राष्ट्रके पूरी तरह जागरूक हो चुकनेकी अपेक्षा तो रखता ही है। यह उद्देश्य केवल चरखेके द्वारा ही साध्य हो सकता है। कोई व्यक्ति इसके जरिये ज्यादा नहीं कमा सकता; इसलिए जो अपनी ही सोचता है केवल ऐसे व्यक्तिको इसके प्रति कोई आकर्षण नहीं होगा। फिर भी इसके द्वारा समूचे राष्ट्रकी सम्पन्नतामें फौरन ही अच्छी खासी वृद्धि हो सकती है। प्रति वर्ष प्रत्येक आदमी यदि १) ज्यादा कमाने लगे तो हो सकता है इससे उस आदमीको कुछ सुविधा न हो परन्तु ५,००० आबादीवाले गाँवमें ५,०००) की सालाना आमदनीसे लगान और दूसरे कर अदा किये जा सकते हैं। इस तरह चरखेका अर्थ है राष्ट्रीय जागृति और देशके प्रत्येक व्यक्तिका एक निश्चित राष्ट्रीय रचनात्मक काममें योग। यदि भारत अपने आप प्रयत्न करके कार्य साधनेकी अपनी ऐसी क्षमताका परिचय दे दे तो फिर उसे राजनीतिक स्वराज्यके लिए तैयार मानना चाहिए। राष्ट्रकी ओरसे ऐसे संकल्पके साथ अन्य कोई माँग पेश किये जानेपर कौन उसकी अवहेलना कर सकेगा? मैंने अभीतक चरखे तथा उससे उत्पन्न होनेवाली खादीकी जबरदस्त आर्थिक संभावनाका जिक्र तो किया ही नहीं है। क्योंकि वह स्पष्ट है। भारतकी आर्थिक समृद्धिका असर अप्रत्यक्ष रूपसे उसके राजनीतिक इतिहासकी गतिपर पड़े बिना भी नहीं रहेगा। हम राजनीतिक शब्दका प्रयोग संकुचित अर्थमें करें तो भी। और अंतिम बात यह है कि जब चरखे द्वारा देश अपना कपड़ा तैयार करने योग्य हो जायेगा तो उसके फलस्वरूप लंकाशायर द्वारा भारतका यह आर्थिक शोषण बन्द हो जायेगा। विदेशी कपड़े और लंकाशायरके कपड़ेका भी भारतमें आना बन्द हो जायेगा, तो भारतको हर उपायसे गुलामीके बन्धनमें बांधे रखनेकी इंग्लैंडकी व्याकुलता भी समाप्त हो जायेगी।

इसका तो मतलब है सारे राष्ट्रकी रुचिमें ही क्रान्ति पैदा कर देना। क्या आप उम्मीद करते हैं कि आपके देशवासी आपके अनुरोधपर विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल छोड़ देंगे?

जरूर। क्योंकि मैं देशसे बहुत छोटीसी चीज माँग रहा हूँ। लाखों लोगोंको इस बातका ध्यान भी नहीं है कि वे कौन-सा कपड़ा पहनते हैं, सिर्फ दाम कम होना

चाहिए। केवल मध्यम श्रेणीके लोगोंकी ही रुचि बदलनेकी जरूरत है। मैं नहीं मानता कि उनके लिए विदेशी कपड़ेके स्थानपर खादीको अंगीकार करना असम्भव है। फिर यह बात भी याद रखनी चाहिए कि आजकल खादी बहुतसे लोगोंकी रुचिके अनुकूल बनने लगी है और दिन-प्रतिदिन खादी बढ़िया होती जा रही है। इसलिए मेरी राय है कि यदि कोई भी रचनात्मक काम सफल हो सकता है तो वह यही खादीका कार्यक्रम है।

'स्वराज्य' से आपका क्या अभिप्राय है और उसकी क्या कोई मर्यादाएँ हैं, यदि हैं तो कौन-सी?

स्वराज्यसे मेरा अभिप्राय है जनताकी इच्छाके अनुसार भारतका वह शासन जिसका निश्चय देशके ज्यादासे-ज्यादा बालिग लोग मत देकर करेंगे, चाहें वे स्त्री हों या पुरुष, इसी देशके हों या इस देशमें आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रमके रूपमें राज्यकी कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओंकी सूचीमें अपना नाम लिखवा लिया हो। इस सरकारका ब्रिटिश राज्यसे सम्बन्ध रह सकता है किन्तु पूर्णतया सम्मानयुक्त और बराबरीकी शर्तोंपर। मुझे तो अभीतक इस बातकी उम्मीद है कि मौजूदा गुलामीकी जगह हमारा सम्बन्ध बराबरीके हिस्सेदार या सहयोगीका हो सकता है। पर अगर जरूरत आ पड़े अर्थात् यदि इस सम्बन्धके कारण भारतवर्षकी सर्वांगीण उन्नतिमें रुकावट पड़ती हो तो मैं पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेदका समर्थन करने या उसके लिए स्वयं प्रयत्न करनेमें जरा भी नहीं हिचकूंगा।

आपने किस हदतक स्वराज्य दलके कार्यक्रम या कार्य-पद्धतिको कुबूल किया है?

मैं खुद स्वराज्य दलके कार्यक्रम अथवा उसकी कार्यप्रणालीके प्रति किसी भी प्रकार वचनबद्ध नहीं हूँ। एक कांग्रेसीकी हैसियतसे मैं यह मानता हूँ कि देशपर उसका निश्चय ही प्रभाव है और इसलिए उसे कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करनेका हक है। यह हक जो उसे इस समय आपसी समझौतेके द्वारा प्राप्त है, उसे वह अपने दलके पक्षमें प्राप्त होनेवाले मतोंकी संख्याके आधारपर भी प्राप्त कर सकता था।

आपके और उस दलके नेताओंके सम्बन्ध कैसे हैं?

अत्यन्त मैत्रीपूर्ण। हम देशभक्ति और त्याग भावनाका जितना दावा अपने लिये कर सकते हैं उनका उतना ही श्रेय मैं उन्हें भी देता हूँ।

कहा जाता है कि आप श्री दासके सामने झुक गये?

एक अर्थमें यह बात सच है। मैं नहीं चाहता था कि कांग्रेसी आपसमें झगड़ें परन्तु अगर इसका यह मतलब हो कि मैं अपने सिद्धान्तसे रत्ती-भर भी पीछे हटा हूँ तो यह सच नहीं है।

साहावाले प्रस्तावके[1] प्रति आपका जो रुख था, क्या वह अब बदल नहीं गया है?

जरा भी नहीं। साहावाले प्रस्तावके समय मैं अपने ही लोगों द्वारा की गई भूलका विरोध कर रहा था। इस समय मैं गलत अनुमानोंके आधारपर किये जानेवाले

१. गोपीनाथ साहासे सम्बन्धित प्रस्ताव; देखिए खण्ड २४, "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

बाहरी दमनकी कार्रवाईका प्रतिरोध कर रहा हूँ। इसके सिवा उस समय म यह चाह रहा था कि कांग्रेस कार्यकारिणीके सभी पद एक ही दलके हाथमें रहें। इस सम्बन्धमें मेरे प्रयत्नोंको और साहा-प्रस्ताव सम्बन्धी मेरी कार्रवाईको एक समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिए। ये दोनों बातें बिलकुल जुदा-जुदा हैं यहाँतक कि उनका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है। ज्यों-ही मैंने देखा कि एक ही दलके हाथमें नियन्त्रण रखनेकी कोशिशसे आपसमें कटुता फैल रही है, मैंने कदम वापस ले लिया और पूरी तरह स्वराज्य दलकी बात मान लेनेकी घोषणा कर दी।

कहते हैं कि इस तरह झुक जानेसे आपकी नैतिक सत्ता समाप्त हो गई है?

चिपके रहनेसे नैतिक सत्ता सहेज कर नहीं रखी जा सकती। वह बिना माँगे मिलती है और बिना प्रयासके बनी रहती है। मुझे ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि मेरी नैतिक सत्ता जाती रही है, क्योंकि अपनी जानकारीमें मैंने कोई भी ऐसा काम नहीं किया है कि मुझे अपने नैतिक सिद्धान्तोंके अनुसार न चलनेका दोषी ठहराया जा सके। मेरे बताये हुए स्वराज्य-प्राप्तिके साधनों, जैसे चरखेके प्रचारमें इन बहुतसे व्यक्तियोंका जो बौद्धिक सहयोग मुझे प्राप्त था उसे मैंने अवश्य खो दिया है।

असहयोगके हरएक कार्यक्रमके विफल हो जानेके बाद भी आप असहयोगपर क्यों आग्रह रखे हुए हैं? उसे स्थगित करनेकी बातके पीछे आपका क्या हेतु है?

आज मैं उसपर जोर नहीं दे रहा हूँ। पर मैं इस बातको कबूल नहीं करता कि उस कार्यक्रमका प्रत्येक अंग असफल हो गया है। बल्कि एक हदतक असहयोगका हरएक अंग सफल हुआ है। मैं उसे स्थगित करनेकी बात सिर्फ इसलिए करता हूँ कि मेरे लिए असहयोग जीवनका एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और मुझे लगता है कि उसके द्वारा हिन्दुस्तानको ही नहीं, कहना चाहें तो सारी दुनियाको लाभ पहुँचा है, जिसका कि अभी हमको पर्याप्त अनुभव नहीं है। और इसलिए भी कि यदि फिर कभी मुझे देशके लोगोंमें व्यापक अहिंसा और परस्पर सच्चे सहयोगकी भावनाका वातावरण दिखाई दे और तबतक भी अगर हमें अपना ध्येय प्राप्त नहीं हो चुका होगा तो मैं राष्ट्रको फिरसे सत्याग्रहके मार्गपर जानेकी सलाह देनेमें आगा-पीछा नहीं करूँगा।

हिन्दू-मुस्लिम समस्याको आप किस तरह हल करना चाहते हैं?

दोनों जातियोंके सामने लगातार इस बातपर जोर देकर कि वे आपसमें आदरभाव और विश्वास पैदा करें, और हिन्दुओंसे इस बातका आग्रह करके कि चूँकि वे ज्यादा बलशाली हैं इसलिए हर लौकिक व्यवहारमें मुसलमानोंकी बात मानें और यह स्पष्ट कर दें कि जो लोग अपनेको राष्ट्रवादी मानते हैं और जिनकी संख्या दूसरोंसे बहुत ज्यादा है वे विधान सभाओं या सरकारी पदोंकी भद्दी प्रतिस्पर्धामें भाग नहीं लेंगे। मैं यह दिखला कर भी इस उद्देश्यको सिद्ध करनेकी आशा करता हूँ कि सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों द्वारा सत्ता छीन लेनेसे नहीं, बल्कि सत्ताका दुरुपयोग होने पर जब कि सब लोगोंमें उसका प्रतिरोध करनेकी क्षमता आ जायगी तभी प्राप्त होगा। दूसरे शब्दोंमें स्वराज्य जनताको इस बातका बोध करा देनेसे प्राप्त किया जा सकता है कि उनमें शासन-सत्ताको नियमित और नियन्त्रित करनेकी क्षमता है?

अंग्रेजोंके प्रति आपका सच्चा रुख क्या है? और इंग्लैंडसे आप क्या आशा रखते हैं?

अंग्रेजोंके प्रति मेरे मनमें पूर्ण मित्रता और आदरके भाव हैं। मैं उनका मित्र होनेका दावा करता हूँ। क्योंकि यह मेरी प्रकृतिके विरुद्ध है कि मैं एक भी मानवको अविश्वासकी दृष्टिसे देखूँ या यह मानूँ कि दोषमोचनकी दृष्टिसे संसारकी कोई भी कौम असाध्य है। मेरे मनमें अंग्रेजोंके प्रति आदर है, क्योंकि मैं उनकी बहादुरीका, वे जिस बातको अपने लिए अच्छा समझते हैं उसके लिए कुरबानी करनेका, उनकी एक बने रहनेकी वृत्तिका तथा व्यापक संगठन कर सकनेकी उनकी शक्तिका कायल हूँ। उनसे मुझे यह आशा है कि वे थोड़े ही समयमें पीछे हट जायेंगे और अव्यवस्थित तथा अनुशासनहीन जातियोंके शोषणकी अपनी नीतिको छोड़ देंगे, एवं इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण देंगे कि भावी ब्रिटिश राष्ट्रसंघमें भारत एक बराबरीका मित्र और सहयोगी बनकर रह सकेगा। ऐसा कभी होगा अथवा नहीं इस बातकी सम्भावना मुख्यतः हमारे अपने कामपर निर्भर है। अर्थात् इंग्लैंडसे मेरी आशाका कारण यह है कि मैं भारतसे आशा करता हूँ। हम सदा अव्यस्थित और नकलची तो नहीं रहेंगे। वर्तमान अव्यवस्था, नैतिक पतन और नये काम उठानेकी शक्तिके अभावके पीछे मुझे व्यवस्था, नैतिक बल और कार्यारम्भकी शक्ति अपने आप संगठित होती हुई दिखाई देती है। वह जमाना आ रहा है जब इंग्लैंड हिन्दुस्तानकी मित्रता पाकर खुश होगा और हिन्दुस्तान भी मित्र भावसे इंग्लैंडके बढ़ाये गये हाथको महज इस खयालसे अस्वीकार नहीं कर देगा कि कभी वह उसका शोषक रह चुका है। यों मुझे मालूम है कि इस आशाके लिए कोई प्रमाण मेरे पास नहीं है, इसका आधार केवल मेरी अविचल श्रद्धा ही है। जो श्रद्धा तथाकथित प्रमाणोंपर ही आधारित हो वह सच्ची श्रद्धा नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २९-१-१९२५

२४. टिप्पणियाँ

उलटा रास्ता

जमीयत-उल-तबलीग इस्लामने हालकी अपनी बैठकमें पास किये गये प्रस्तावका [अंग्रेजी] अनुवाद मुझे भेजनेकी कृपा की है। प्रस्ताव इस प्रकार है:

> यह निश्चय किया गया कि हाल ही कोहाटमें हुए दंगोंके समय[1] जो शर्मनाक घटनाएँ हुई हैं और जिनके फलस्वरूप वहाँ लोगोंके जानोमालको जो काफी नुकसान पहुँचा है, उन सबकी जिम्मेवारी उन लोगोंपर है जिन्होंने कोहाटमें ऐसा परचा शाया किया जो जोश और गुस्सा दिलानेवाला था और जिसमें इस्लामपर बड़े ही गन्दे आक्षेप किये गये थे तथा जिसमें मुसलमानोंके

१. सितम्बर १९२४ में।

> **जजबातको गहरी चोट पहुँचाई गई थी। जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलाईं और मुसलमानोंकी जानें लीं, वे भी बादकी हालतको और नाजुक बना देनेके जिम्मेदार हैं। यह जमीयत कोहाटके उन तमाम बाशिन्दोंके साथ, बिना जात-पाँतके भेद-भावके, हमदर्दी जाहिर करती है, जिनके जानोमाल इन दंगोंके दरम्यान जाया हुए हैं। एक मजहबी जमातकी हैसियतसे यह जमीयत महात्मा गांधीको तथा दूसरे राजनीतिक नेताओंको यह बताना अपना फर्ज समझती है कि जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्त्तकों तथा मजहबी हलचलोंके नेताओंपर व्याख्यान और लेखोंके द्वारा किये जानेवाले आक्षेप पूरी तरह बन्द नहीं किये जायेंगे तबतक हिन्दुस्तानमें हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी स्थापना और उसे बनाये रखना कभी सम्भव नहीं होगा।**

मैं जमीयतको इस प्रस्तावपर बधाई देनेमें असमर्थ हूँ। अभीतक कोहाटकी घटनाओं-की कोई निष्पक्ष जाँच नहीं हुई है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि दोनों पक्षके लोगोंने मुख्य तथ्योंपर अपनी राय स्थिर कर ली है। क्या यह बात साबित हो चुकी है कि कोहाटकी तमाम शर्मनाक घटनाओंकी जिम्मेदारी उस व्यक्ति या व्यक्तियोंपर ही है जिन्होंने कोहाटमें उक्त जोश और गुस्सा पैदा करनेवाले परचे छापे थे? क्या यह बात भी साबित हो चुकी है कि 'जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलाईं और मुसलमानोंकी जानें लीं, वे भी उसके बादकी हालतको और भी नाजुक बना देनेके लिए जिम्मेदार हैं?' यदि पूर्वोक्त दोनों बातें असन्दिग्ध रूपसे साबित हो गई हों तो कमसे-कम वहाँके हिन्दू तो अपनी जानोमालकी हानिके लिए जमीयतकी ओरसे प्रदर्शित की गई किसी तरहकी हमदर्दीके मुस्तहक नहीं हैं; क्योंकि यह तो उनकी ही करनीका फल उन्हें मिला है। ऐसी अवस्थामें जमीयतका हिन्दुओंके साथ हमदर्दी जाहिर करना असंगत है। फिर मुझे और दूसरे राजनीतिक नेताओंको यह दिखानेमें जमीयतका मन्शा क्या है कि 'जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्तकों तथा मजहबी हलचलोंके नेताओंपर व्याख्यान या लेखोंके द्वारा किये जानेवाले हमले बिलकुल बन्द न किये जायेंगे तब तक हिन्दुस्तानमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी स्थापना और उसे बनाये रखना कभी सम्भव नहीं होगा।' जमीयतका यह खयाल अगर सही है तो क्या एकताकी असम्भाव्यता ऐसी बात नहीं जिसपर राजनीतिक नेताओंके साथ-साथ खुद उसका भी ध्यान जाना चाहिए? और क्या इसीलिए कि कुछ व्यक्ति मजहबपर हमला करते हैं, हिन्दू-मुस्लिम एकताको जरूर ही असम्भव हो जाना चाहिए? जमीयतके कथनानुसार तो एक ही अविचारी हिन्दू या अविचारी मुसलमान हिन्दू-मुस्लिम एकताको असम्भव बना देनेके लिए काफी है। सौभाग्यसे हिन्दू-मुस्लिम एकताका अन्तिम आधार धार्मिक और राजनीतिक नेताओंपर निर्भर नहीं है। उसका आधार है दोनों जातियोंकी जनताका प्रबुद्ध निहित स्वार्थ। उन्हें कोई हमेशाके लिए गुमराह नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूँ कि जमीयतका मूल प्रस्ताव इतना खराब न होगा जितना कि वह अनुवादमें मालूम पड़ता है।

मियाँ फजल-ए-हुसैन[1]

अभी मैं जब लाहौर गया था, मेरी मुलाकात मियाँ फजल-ए-हुसैनके साथ हुई थी। एक सज्जन लिखते हैं कि उसकी जो छाप मुझपर पड़ी मैं उसके विषयमें लिखूँ। मैं यहाँ तदनुसार लिख रहा हूँ। बातचीतका समय आनन्दसे गुजरा। उनका व्यवहार मनोहारी था। उनकी बातचीत औचित्यपूर्ण और तर्कसंगत थी। हिन्दुओंकी तरफसे लगाये गये पक्षपातके आक्षेपका उन्होंने विरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं मुसलमानोंके प्रति पूरा न्याय नहीं कर रहा हूँ और थोड़ा बहुत कर भी रहा हूँ वह तत्परताके साथ नहीं। सभी मुझसे आकर मिल सकते हैं और जो भी व्यक्ति इस प्रश्नको बारीकीसे समझना चाहता हैं उसे मैं अपनी स्थिति समझानेके लिए उत्सुक रहता हूँ।" इससे अधिककी आशा रखनेका किसीको अधिकार नहीं है। मैं यह नहीं जानता कि मियाँ साहबकी नीतिके खिलाफ सचमुच कुछ कहा जा सकता है या नहीं। मैंने इस प्रश्नपर दोनों पहलुओंसे विचार नहीं किया है। जब मैं यह कर लूँगा तब मैं मियाँ साहबके इस दावेपर कि उन्होंने मुसलमानोंके साथ पूरा-पूरा न्याय नहीं किया है, अपनी राय बड़ी खुशीसे जाहिर करूँगा। तबतक तो मेरे लिए इतना ही कहना काफी है कि मियाँ फजल-ए-हुसैन शान्त, गंभीर, और प्रतिष्ठित सज्जन हैं तथा गलत बातपर अड़नेवाले आदमी नहीं हैं।

हमारी लाचारी

साबरमती आश्रममें चरखों, तकुओं, पूनियों इत्यादिकी जगह-जगहसे माँग आ रही है। यदि हम अच्छी तरह संगठित हो गये होते तो हमारी ऐसी असहाय अवस्था न होती। एक समय था कि हरएक देहाती बढ़ई चरखा बना लेता था। आज तो शहरका बढ़ई भी नहीं जानता कि चरखा क्या है और नमूना देनेपर भी उसे तैयार करनेसे इनकार कर देता है। इसी प्रकार पहले हरएक धुनिया पूनियाँ बनाना जानता था। लेकिन आज तो उसका नाम सुनते ही वे मुँह बनाते हैं, या बड़े पैसे माँगते हैं। पर हाथ-कताईकी सफलताका आधार हमारी सूझबूझ और हिन्दुस्तानके कारीगरोंका सहयोग है। चरखा और उससे सम्बद्ध चीजोंकी बढ़ती हुई माँगकी पूर्ति कोई भी एक संस्था नहीं कर सकती। सौभाग्यसे अब हालत सुधरती जा रही है, लेकिन उतनी जल्दी नहीं जितनी कि चाहिए। जिन्हें जरूरत है उन्हें आश्रमसे चीजें मँगानेके पहले अपने शहरमें या जिलेमें उन्हें बनवा लेनेका पूरा प्रयत्न कर लेना चाहिए। बेशक, उसके लिए अनिश्चित समयतक राह देखनेसे तो आश्रमसे मँगा लेना ही बेहतर है। जहाँतक पूनियोंका सम्बन्ध है मेरा श्री सन्तानम्की रायसे इत्तिफाक है, जिन्होंने अपने उत्तम निबन्धमें दिखाया है कि हरएक कातनेवालेको खुद अपने लिए पूनियाँ बनाना चाहिए। छोटी ताँतपर धुनना इतना सीधा और आसान काम है कि किसीको विश्वास ही नहीं होगा। कताईकी अपेक्षा धुनाई बहुत जल्दी सीखी जा सकती है। अच्छा धुनना आ जानेपर अधिक गतिसे कातने और एकसा

१. एक मुसलमान नेता; वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य।

सूत निकालनेमें मदद मिलती है। जो लोग मजदूरीकी दृष्टिसे कातते हैं, वे यदि धुन भी लें तो इससे उनकी आमदनी बढ़ जायेगी। देश-भरमें ऐसे धुननेवाले मौजूद हैं जो धुनाईसे ही अपनी पूरी जीविका कमा लेते है। अच्छा धुननेवाला दिनमें बारह आने कमा सकता है। अच्छा कातनेवाला इतना नहीं कमा सकता है। हर सुसंचालित कांग्रेस कमेटीके अन्तर्गत चरखे और उससे सम्बद्ध दूसरी चीजें बनाने और देनेके लिए एक भण्डार होना चाहिए।

गबन होनेपर

आन्ध्र देशसे एक सज्जन लिखते हैं:

> बहुतसे लोग यह समझकर कि कांग्रेसवाले अदालतोंमें नालिश तो करते ही नहीं, कांग्रेस कमेटियों और खादी-बोर्डोंका बकाया रुपया नहीं देते। यह और कुछ नहीं तो गबन और धोखेबाजी अवश्य है। आप गबनके बारेमें लिख चुके हैं; और अब अदालतोंमें जानेके बारेमें प्रतिबन्ध भी नहीं रहा; इसलिए मुझे यकीन है कि कांग्रेस कमेटियाँ ऐसी हालतमें अदालतोंमें दावे दायर कर सकती हैं।

मैं ऐसे मामलोंके बारेमें अपनी राय पहले ही दे चुका हूँ। मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि उन दिनोंमें भी जब कि अदालतोंका बहिष्कार चालू था कांग्रेसवालोंका कर्त्तव्य था कि वे दगाबाजों और पावना देनेसे इनकार करनेवालोंपर दावे करें। बहिष्कार इसलिए नही शुरू किया गया था कि कांग्रेस अपना सर्वनाश कर ले। उसके मूलमें यह भाव गृहीत ही था कि कांग्रेससे लेन-देन करनेवाले लोग ईमानदारी बरतेंगे।

अ० भा० खादीबोर्डके प्रस्ताव

कांग्रेस मताधिकार योजनाको कार्यान्वित करनेके बारेमें अ० भा० खादी बोर्डके नीचे दिये हुए प्रस्तावोंकी ओर मैं सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ:

> कांग्रेसने हाथ-कताईको मताधिकारका अंग मान लिया है, इसलिए और इस मामलेमें प्रान्तीय समितियोंको सुविधा पहुँचानेकी दृष्टिसे अ० भा० खादी बोर्ड प्रस्ताव करता है कि वह प्रान्तीय खादी बोर्डके जरिए, या सीधे ही, नीचे लिखी सहायता करनेको तैयार है।
>
> (१) किसी भी प्रान्तको जहाँ आसानीसे कपास नहीं मिल सकती, कपास देनेके लिए बोर्ड तैयार है।
>
> (२) उधार माँगनेके लिए जो अर्जियाँ आयेंगी उनपर विचार करनेके लिए बोर्ड तैयार रहेगा। इसकी शर्तें उसी वक्त तय की जायेंगी।
>
> (३) यह बोर्ड प्रान्तीय खादी-बोर्डोंको यह सलाह देता है कि वे सदस्योंको अच्छे चरखे और धुनकी और सम्बन्धित सामग्रीके नमूने प्राप्त

करनेमें हर तरहसे मदद करें और जबतक सदस्य अपनी पूनियाँ बनानेकी व्यवस्था स्वयं न कर लें तबतक तैयार पूनी प्राप्त करनेमें भी उन्हें सहायता पहुँचायें।

(४) जहाँतक मुमकिन होगा बोर्ड धुनना, कातना इत्यादि कामोंमें शिक्षा देनेके लिए विशेषज्ञोंका इन्तजाम करेगा। इसके लिए बोर्डके साथ व्यवस्था करनी होगी।

(५) बोर्ड किसी भी प्रान्तीय समितिसे बाजार भावपर सूत खरीदनेके लिए तैयार रहेगा या समितियोंकी तरफसे उसे बुनवा देगा।

(६) यदि जरूरत लगे तो बोर्ड उचित दरपर मताधिकारके लिए आवश्यक हाथ-कता सूत देनेके लिए तैयार है।

(७) बोर्ड व्यक्तियोंको और समितियोंको आगाह करता है कि वे मताधिकारके लिए बाजारसे हाथ-कता सूत न खरीदें, क्योंकि मुमकिन है बाजारका सूत मिलका सूत हो या मिलकी पूनीका कता हो और एक-सा तथा बटदार भी न हो। (केवल कुशल कातनेवाले ही हाथ-कते और मिलके कते सूतका फर्क समझ सकते हैं और बता सकते हैं कि सूत अच्छा कता है या बुरा। जब मिलकी पूनीका सूत हाथसे काता गया हो, तो कुशल कातनेवाले भी उसे नहीं पहचान सकते)।

(८) अन्तमें, बोर्ड व्यक्तियोंको और समितियोंको जो-कुछ भी जानकारी और मदद दरकार हो, यदि बोर्डके वशकी बात हुई तो, वह सब देनेके लिए तैयार रहेगा।

समय बहुत कम रह गया है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि नये मताधिकारके अनुसार प्रान्तीय समितियाँ अपनी व्यवस्था कर रही होंगी। यदि ठीक-ठीक काम किया गया तो बड़े अच्छे नतीजे निकल सकते हैं। लेकिन इसके लिए छोटी-छोटी बातोंपर ही ध्यान देना होगा। एक मर्तबा कार्य करने योग्य संगठन बन जानेपर वह दिन दूनी, रात चौगुनी गतिसे बढ़े बिना न रहेगा; और इससे कांग्रेस स्वावलम्बी और धनोत्पादन करनेवाली संस्था बन जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१-१९२५

२५. पत्र : कृष्णदासको

दिल्ली
२९ जनवरी, १९२५

प्रिय कृष्णदास,[1]

संलग्न पत्र प्यारेलालके[2] लिए है। आशा है तुम मेरे लिए चिन्तित नहीं होओगे। मेरी जितनी सार-संभाल जरूरी है सो सब की जा रही है। महादेवपर कामका भार ज्यादा नहीं है। दीनदयाल मेरे पास फिर आ गया है। उसने मेरी व्यक्तिगत सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया है और खुद महादेवको प्रायः सारा समय व्यक्तिगत पत्र-व्यवहारमें[3] लगानेके लिए मुक्त कर दिया है। हिन्दू-मुस्लिम समस्याको हल करनेके लिए निजी तौरपर बातचीत चल रही है। नतीजेके बारेमें अभी कुछ कहना बहुत कठिन है। हम यहाँ कमसे-कम ३१ तारीखतक तो है ही। आशा है तुम दिन-प्रतिदिन शक्ति लाभ कर रहे हो। यहाँ बहुत ठंड है इसलिए तुम्हारे यहाँ न होनेकी मुझे खुशी है। श्री एन्ड्रयूज यहीं है और अभी दो दिन रहेंगे। कीकीबहनसे कहें कि मैं इस बातसे खुश हूँ कि वह आश्रममें नियमित रूपसे सिलाई सिखा रही है। इससे उसका ध्यान बँटेगा और यदि वह शक्तिसे अधिक काम न करेगी तो इससे उसको लाभ होगा।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५५९८) की फोटो-नकलसे।

२६. तार : डा० प्राणजीवन मेहताको

३१ जनवरी, १९२५

डा० मेहता
गोल्डगॉड
रंगून

आठ मार्च मेरा मौन-दिवस होगा। मैं उस सप्ताह काठियावाड़में रहूँगा। क्या २६ फरवरी ठीक रहेगी? २२ फरवरीतक लगभग अनुपस्थित रहूँगा।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६)से।

१. गांधीजीके सचिव; सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधीके लेखक।
२. प्यारेलाल नैयर।
३. साधन-सूत्रमें 'व्यक्तिगत सेवा' है।

२७. एक अनर्थ

एक सज्जन टांगानीकासे लिखते हैं:[१]

इस वर्णनके बिलकुल सच होनेकी सम्भावना है। पुर्तगाली राज्यमें, अर्थात् डेलागोआ बेमें, ऐसा मैंने स्वयं देखा है। वहाँ मुसलमानोंने अपने बच्चोंके लिए एक यतीमखाना खोल रखा है। हिन्दू अपनी सन्ततिको मुसलमानोंके हाथ सौंप देते हैं और फिर इनका लालन-पालन मुसलमानोंकी तरह होता है। एक रास्ता तो यह है; किन्तु मैं इसे पसन्द नहीं कर सकता। मेरी दृष्टिमें दोनों निन्दनीय हैं। पहले तो ऐसे सम्बन्धको शादी मानना ही गलत है। मैं इसे महज विषय-लालसाकी तृप्ति कहता हूँ। विदेशमें बहुतेरे नीति-बन्धन शिथिल हो जाते हैं; क्योंकि वहाँ लोक-लाज नहीं रहती। किन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंके दोषोंमें थोड़ा अन्तर तो है ही। मुसलमान ऐसे विषय-भोगसे उत्पन्न सन्ततिका पालन करते हैं और उनकी अपने धर्ममें परवरिश करते हैं। यदि मुसलमानों द्वारा दी जानेवाली सुविधा न हो तो हिन्दुओंकी सन्तति भूखों मर जायेगी। यह सन्तति केवल विषय-भोगके परिणामस्वरूप है। इससे हिन्दू-पिताको तो उसके धर्मकी कोई चिन्ता ही नहीं होती। मेरी दृष्टिमें तो ऐसा विषयान्ध पुरुष धर्मका त्याग कर ही चुका होता है। नीति और सदाचारके नियमोंका बिलकुल पालन न करनेवालेको धार्मिक मानना मेरे लिए तो मुश्किल बात है। अमुक धर्ममें जन्म पानेवालेको, संख्याकी खातिर भले ही उस धर्मका अनुयायी मान लें, पर सच पूछिए तो वह धर्मच्युत ही है। आचरणसे भिन्न ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे धर्म कह सकें। वह वेद-धर्मी नहीं जो गायत्री जपता हो या 'वेद' पढ़ता हो; बल्कि वेद-धर्मी वह है जो वेदवाक्यके अनुसार व्यवहार करता है। कितने ही ईसाई वेदादिका बहुत गहरा अध्ययन कर लेते हैं किन्तु इससे वे वेद-धर्मी नहीं हो जाते। और न वही शख्स वेद-धर्मी है जो ढोंग या वहमके वशीभूत होकर गायत्री आदिका पाठ करता है। उसका उस धर्मके अनुयायी होनेका दावा उसी अवस्थामें मान्य किया जा सकता है जब उसे उस धर्मके आदेशोंका बोध हो और वह यथाशक्ति उनका पालन करता हो। इस दृष्टिसे कह सकते हैं कि टांगानीकाके हिन्दुओंने हिन्दु धर्मको छोड़ दिया है।

यह तो एक स्वतंत्र बात हुई। व्यवहारमें ऐसे हिन्दू या मुसलमान पिता हिन्दू या मुसलमान ही माने जायेंगे। इसलिए हमें व्यवहार-दृष्टिसे इसका कुछ निराकरण करना चाहिए। हिन्दू-पिताको चाहिए कि वह ऐसे सम्बन्धको विवाहका रूप दे दे और बच्चोंका प्रेमपूवक लालन-पालन करे तथा उनके लिए पढ़ाने आदिकी तमाम सुविधाओंकी व्यवस्था करे। यह उपाय तो हुआ उन बच्चोंके लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं। भविष्यके

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें पत्र-लेखकने टांगानीकाके हिन्दुओं द्वारा हब्शी स्त्रियोंके साथ छिपकर किये गये विवाहों और बादमें छोड़ दी गई इन अभागी औरतोंके बच्चोंकी दयनीय दशाका वर्णन किया था।

लिए तो हरएक विदेशगमन करनेवालेको अपने बाल-बच्चोंको साथ ले जाना चाहिए। जहाँ बाप बिलकुल ही हृदयहीन हों, वहाँ अनाथालय खोले बिना दूसरी गति नहीं। इन अनाथालयोंको उन देशोंमें खोलना ही उचित होगा। यह मान सकते हैं कि अनाथालयोंमें माँ अपने बच्चों समेत रहेगी। माता अपनी आजीविकाके लिए पुरुषका शिकार बनती है। वह विषय-भोगकी दृष्टिसे सम्बन्ध नहीं बनाती। हब्शियोंमें शादीका रिवाज तो है। फिर भी औरतें पैसेके लिए अपना शरीर पुरुषोंको बेचती हैं और इसमें नीतिभंग नहीं माना जाता। फिर भी मातृप्रेम तो रहता ही है। इस प्रेमका पोषण करके माताओंसे उनके धर्मका पालन कराना उचित है। ऐसी दु:खद घटनाओंमें बालकोंकी मातृभाषा और पितृ-भाषा जुदी-जुदी होती है। फिर बालकोंको कौनसी भाषा पढ़ाई जाये? साधारण तौरपर बापको इस तरह उत्पन्न हुई सन्ततिके साथ प्रेम कम ही होता है। इसलिए बालक माताकी ही भाषा सीखता है। इसलिए अनाथालयोंके संचालकोंको चाहिए कि वे ऐसे बालकोंको उनकी मातृभाषा ही सिखावें। अगर दोनों भाषाएँ सिखाई जायें तो बालकोंको भविष्यमें रोजी कमानेका एक अतिरिक्त साधन मिल जायेगा।

धर्मका सवाल बहुत गूढ़ है। मुसलमान बापके विषयमें तो हम देख ही चुके हैं कि कोई सवाल नहीं उठता। हिन्दू-पितासे उत्पन्न सन्तति हिन्दू मानी जाये, यह नियम है। इसलिए हिन्दू-पिताके बालकोंको हिन्दू धर्मकी शिक्षा दी जानी चाहिए, इस विषयमें मुझे जरा भी शक नहीं है। बालक बेचारा लाचार है। जिस अनाथालयमें वह रखा जायेगा वहींके वायुमण्डलको वह ग्रहण करेगा। यदि उसका कारोबार धर्मप्रेमी संचालकोंके हाथमें होगा तो बालकोंमें धर्म-भावना उपजेगी।

मैं आशा करता हूँ कि टांगानीका तथा उसके जैसे देशोंमें रहनेवाले हिन्दू अपने कर्त्तव्यका विचार करके उसका पालन करेंगे। विषय-वृत्तिको छोड़ना प्रथम धर्म है। किन्तु यह तो भविष्यकी बात हुई। उत्पन्न सन्ततिका पालन करना, उसके लिए धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध करना और उससे हर तरहसे पिताके धर्मका आचरण कराना, ये नियम हर स्थितिमें लागू होते हैं। जो ले जा सकते हों वे अपनी पत्नीको साथ ले जायें। पुरुषोंकी तरह स्त्रीकी भी स्थिति समझनी चाहिए। पुरुष जिस प्रकार बहुत कालतक वियोग सहन नहीं कर सकता उसी तरह स्त्रियोंके बारेमें भी समझना चाहिए। उचित उम्रमें शादी होनेके बाद स्त्री-पुरुषको अधिक समयतक जुदा नहीं रहना चाहिए। यह बात स्वयंसिद्ध है। इसीसे दोनोंके चरित्रकी रक्षा हो सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-२-१९२५

२८. टिप्पणियाँ

अनुकरणीय

पालितानाके एक भाईने मुझे पत्र लिखा है। मैं उसका एक आवश्यक अंश यहाँ देता हूँ:[1]

यदि अन्य कर्मचारी भी एसा ही करें तो कितना बड़ा सुधार किया जा सकता है। इसमें राजा और प्रजा दोनोंकी सेवा आ जाती है और साथ ही अपना लाभ भी होता है। ये दम्पती धीरे-धीरे इतना सूत और ऊन स्वयं कातने लगेंगे कि उसके बुने कपड़ेसे उनका काम चल जाये। हम जान चुके हैं कि कालीपरज जातिमें प्रति व्यक्ति कपड़ेका खर्च दस रुपये वार्षिक आता है। उक्त भाईके कुटुम्बमें तो खर्च इससे अधिक ही होना चाहिए। इसलिए वे अधिक बचा लेंगे और साथ-ही-साथ एक हुनर भी सीख लेंगे। वे गरीबकी असीस लेंगे और रुई और ऊनकी किस्में जान लेंगे और उनमें सुधार कैसे किया जाये यह भी समझ जायेंगे। इस समय काठियावाड़में सूत कातने आदिकी प्रवृत्ति अच्छी चल रही है। ऐसे समय मैं चाहता हूँ कि छोटे और बड़े सभी राज्य अधिकारी, जिन्हें लोगोंसे बहुत काम रहता है, उक्त भाईकी तरह लोगोंको चरखा चलानेकी शिक्षा दें। यह भाई ऐसा चरखा चाहता है जो यात्रामें घोड़ेपर लाया और ले जाया जा सके। ऐसी इच्छा दूसरोंकी भी होनी सम्भव है। किन्तु ठीक उपाय तो यही है कि अधिकारी हर गाँवमें चरखा रखें। काठियावाड़में अथवा अन्यत्र अब ऐसे गाँव नहीं बचे होंगे जिनमें चरखा बिलकुल मिले ही नहीं। किन्तु यदि कहीं न भी पहुँचा हो तो वहाँ उसे पहुँचा दिया जाना चाहिए। तब अधिकारीगण लोगोंसे चरखा माँगकर सूत कात ले सकते है। यदि इस प्रवृत्तिको सभी लोग अपना लें तो हर गाँवकी चौपालमें दो या तीन चरखे रखे जा सकते हैं जिनका उपयोग गाँवकी गरीब-अमीर प्रजा और जब गाँवमें अधिकारी आयें तब वे भी करें। किन्तु जबतक ऐसा सम्भव न हो तबतक ऐसा छोटा चरखा, जो घोड़ेपर भी लाया और ले जाया जा सके, रखनेका विचार सुन्दर ही है।

खादी-भण्डार

गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी जिस खादी भण्डारको चलाती है उसे बन्द करनेके विरुद्ध मेरे पास प्रायः पत्र आते रहते हैं। ऐसा एक पत्र इस समय मेरे सम्मुख रखा है। इससे पता चलता है कि इस सम्बन्धमें लोगोंमें कुछ भ्रम है। प्रान्तीय कांग्रेस खादी भण्डार न चलाये, यह सलाह मैंने नहीं दी है। किन्तु मेरी सलाह यह

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रका प्रेषक पालिताना राज्यका एक कर्मचारी था। उसने लिखा था कि मैं अपना बचा हुआ समय रुई और ऊन कातनेमें लगाता हूँ और राज्यके अधिकारी मेरे कार्यपर आपत्ति करना तो दूर, मुझे प्रोत्साहन देते हैं।

है कि जिस खादी भण्डारमें बहुत घाटा रहता हो अथवा जिसमें घाटा कम होनेके बजाय बढ़ता ही जा रहा हो उसे बन्द कर दिया जाये। इसके अतिरिक्त गुजरातमें बाहरसे खादी लाना भी बन्द किया जाये। इस सलाहका कारण अर्थशास्त्रीय ही है। मैं हिन्दुस्तानके अन्य प्रान्तोंकी हानि करके गुजरातका भला चाहूँ यह बात तो हो ही नहीं सकती। किन्तु स्वदेशीका सिद्धान्त ही यह है कि हमें अपने पड़ोसीकी सेवा पहले करनी चाहिए। गुजरातका गेहूँ छोड़कर दक्षिणका गेहूँ खाना पसन्द करना स्वदेशीकी नीतिका भंग करना है। उससे गुजरात, दक्षिण और समस्त हिन्दुस्तानकी हानि होती है। खादीकी भावना इसी सिद्धान्तसे उत्पन्न है।

अब हम खादीका उद्देश्य देखें। खादीका एक उद्देश्य तो यह है कि खादीके द्वारा हिन्दुस्तानके गाँवोंमें जीवन-संचार किया जाये। यह बात तो तभी सम्भव है जब प्रत्येक गाँवके लोग अपनी खादी स्वयं तैयार करने लगें और यह काम तभी हो सकता है जब प्रत्येक प्रान्त अपनी खादी स्वयं बनाये; और जैसी बनाये वैसी पहने।

खादीका दूसरा उद्देश्य यह है कि खादी-प्रचारके द्वारा विदेशी कपड़ेका बहिष्कार किया जाये। यह बहिष्कार तभी सम्भव है जब हिन्दुस्तानमें जितना कपड़ा चाहिए उतना यहीं बने। अब यदि हिन्दुस्तानको विलायतके जैसा ही कपड़ा चाहिए तो वह वैसी खादी तो पूरी-पूरी नहीं बना सकता। इसीलिए हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तान-में जैसा कपड़ा मिले वैसा प्रेमपूर्वक पहननेकी आदत डालनी चाहिए। यदि सभीको आन्ध्रकी खादीकी ही आदत पड़ेगी तो आन्ध्र इतनी खादी न दे सकेगा और विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कभी न होगा। इसलिए प्रत्येक प्रान्तको बारीक खादी बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। इस कारण भी प्रत्येक प्रान्तको अपनी-अपनी ही खादी तैयार करनी चाहिए। सामान्य नियम यह दिखाई देता है कि जबतक किसी वस्तु विशेषकी आवश्यकता नहीं होती तबतक उसको उत्पन्न करनेका प्रयत्न भी नहीं होता।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि कोई आन्ध्रकी खादी पहने ही नहीं या मँगाये ही नहीं। मेरा मतलब तो इतना ही है कि कमसे-कम कांग्रेसको तो उत्तम प्रकारका प्रयत्न ही करना चाहिए। इस सम्बन्धमें मध्यम प्रकारका प्रयत्न लोग करेंगे। यदि उत्तम प्रकारके प्रयत्नको कठिन होनेके कारण कांग्रेस भी न करेगी तो सम्भव है कि उसे कोई भी न करे और इस प्रकारके प्रयत्नके बिना सफलता असम्भव होती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-२-१९२५

२९. टिप्पणियाँ

चरखोंकी कमी

इन दिनों चरखेका प्रचार बढ़ गया है; इस कारण आश्रममें चरखोंकी माँगसे सम्बन्धित पत्र बहुत आने लगे हैं। चरखोंकी जितनी माँग की जा रही है उसे पूरा करनेमें आश्रम बिलकुल असमर्थ है। इस तरहसे प्रचार-कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। प्रत्येक प्रान्तमें, प्रत्येक जिलेमें, प्रत्येक ताल्लुकेमें और प्रत्येक ग्राममें चरखा बना सकनेवाले कारीगर होने चाहिए। चमरखें तो अब नारियलकी सुतली या मूँजकी बनाई जाती हैं। चरखेकी प्रवृत्ति चरखा चलानेवालोंको ही लाभ पहुँचाती हो सो बात नहीं; यह प्रवृत्ति बढ़इयों और लुहारोंके लिए भी उत्साहवर्धिनी है। उसके लाभोंसे समाजका कोई भी वर्ग वंचित नहीं रह सकता।

स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता

महागुजरातमें खादीका काम तेजीसे चलाया जा रहा है; इसलिए वहाँ बड़ी संख्यामें स्वयंसेवकोंकी जरूरत महसूस होना एक स्वाभाविक बात है। अपना पूरा समय देनेवाले स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता है, साथ ही थोड़ा समय दे सकनेवाले स्वयंसेवक भी चाहिए। प्रत्येक स्वयंसेवकको कातना आना चाहिए और तत्सम्बन्धी सभी बातोंकी पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिए। स्वयंसेवकोंकी हैसियतसे सेवा करनेके इच्छुक व्यक्ति अपने नाम मेरे पास भेज दें। ताकि जरूरी मालूम होनेपर उनकी सेवाका उपयोग किया जा सके। जो स्वयंसेवक कहीं काम कर ही रहे हैं वे अपने नाम न भेजें। शक्ति और इच्छाके रहते हुए भी जिन्हें सेवाका अवसर प्राप्त नहीं हो पाया है, नाम भेजनेका निवेदन उन्हींके प्रति है। नाम भेजनेवालोंको चाहिए कि वे अपनी अर्जीमें अपनी उम्र, योग्यता, इत्यादिका भी उल्लेख करें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १-२-१९२५

३०. तार : गोकलदास ठाकरको

१ फरवरी, १९२५

ठाकर गोकलदास
मोरवी

पहलेकी कोई और तारीख दें। जिससे जोशी और अमृतलालको रुकना न पड़े।

मोहनदास

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

३१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

दिल्ली
माघ सुदी ८ [रविवार १ फरवरी, १९२५][1]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। मैं आपको अच्छा चरखा भेजनेकी कोशीष कर रहा हुं। चरखेके साथ साथ रामनाम खूब चल सकता है। दो ऐसे विद्वान सखस हैं जिन्होंने चरखेके साथ रामनाम जपा और दीवानपनमें से बचे। आखरमें तो जैसी जिसकी भावना वैसा तिसको होय।

आपका,
मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०३) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३२. कुछ उचित प्रश्न

कुछ दिन हुए मैंने अस्पृश्यताके बारेमें बंगालसे प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र[2] छापा था। उसके लेखक आज भी उस विषयमें बड़ी लगनसे खोज कर रहे हैं। अब मद्रासमे भी एक सज्जनने वैसी ही जानकारी प्राप्त करनेके लिए कुछ प्रश्न पूछे हैं। इस जटिल प्रश्नका हल निकालनेके लिए कट्टर हिन्दू लोग भी प्रवृत्त हुए हैं। यह बड़ा शुभ चिह्न है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रश्न पूछनेवालेको सच्ची उत्कंठा है। प्रश्न वैसे ही हैं जैसे कि इस सिलसिलेमें आमतौरपर लोग पूछते हैं; इतनी बड़ी सूचीमें एक भी प्रश्न ऐसा नही है जो देशके मेरे विभिन्न दौरोंके समय मुझसे पूछा न गया हो। इन सज्जनके प्रश्नोंको हल करनेका प्रयत्न इसी आशासे करता हूँ कि मेरे जवाबसे पत्र लिखनेवाले सज्जनको, जो एक कार्यकर्त्ता और सच्चे शोधक होनेका दावा करते हैं, और दूसरे कार्यकर्त्ताओं और शोधकोंको रास्ता दिखाई देने लगे।

१. छुआछूतको दूर करनेके लिए क्या-क्या अमली उपाय करने चाहिए?

(क) अस्पृश्योंके लिए भी सार्वजनिक शालाएँ, मन्दिर, रास्ते, — जो अब्राह्मणोंके लिए खुले हैं और जो किसी खास जातिके लिए नहीं होते — खोल दिये जायें।

१. चरखेके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२५ में ही लिखा गया होगा। देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", २८-२-१९२५। गांधीजी १ फरवरी, १९२५ को दिल्लीमें थे।

२. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ४२३-२४।

(ख) ऊँची जातिवाले हिन्दुओंको चाहिए कि उनके बच्चोंके लिए मदरसे खोलें, जहाँ जरूरत हो वहाँ उनके लिए कुँआ खोदें और उन्हें सब प्रकार आवश्यक मदद पहुँचायें — जैसे उनकी नशेकी आदत छुड़ाने और उनमें सफाईके नियम पालन करनेका रिवाज डालना और उन्हें दवाई आदिकी मदद पहुँचाना।

२. जब छुआछूत बिलकुल दूर हो जायेगी तब अछूतोंका धार्मिक दर्जा क्या होगा?

उनकी धार्मिक स्थिति वैसी ही मानी जायेगी जैसी कि उच्च हिन्दुओंकी मानी जाती है। और इसलिए वे शूद्र कहे जायेंगे अतिशूद्र नहीं।

३. जब छुआछूत दूर कर दी जायेगी तब अछूतों और ऊँचे दर्जेके कट्टर ब्राह्मणोंका क्या सम्बन्ध रहेगा?

जैसा कि उनका अब्राह्मण हिन्दुओंके साथ है।

४. क्या आप अन्तर्जातीय सम्बन्धोंका प्रतिपादन करते हैं?

मैं सब जातियोंको खतम करके सिर्फ चार ही वर्ण रखना चाहूँगा।

५. अछूत लोग मौजूदा देव-मन्दिरोंमें हस्तक्षेप न करके अपने लिए नये मन्दिर क्यों न बना लें?

'ऊँची' कहलानेवाली जातियोंने ऐसे साहसके लिए उनमें अधिक शक्ति ही नहीं रहने दी है। यह कहना कि वे हमारे मन्दिरोंमें दखल देते हैं, इस सवाल-पर गलत तौरपर विचार करना है। हम कथित ऊँची जातिवालोंको हिन्दुओंके सर्व-साधारण मन्दिरोंमें उन्हें आने देना चाहिए और इस तरह अपने इस कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए।

६. क्या आप जातिगत प्रतिनिधित्वके पक्षपाती हैं, और क्या आपका यह भी मत है कि अछूतोंको तमाम शासन-तन्त्रमें प्रतिनिधि भेजनेका हक होना चाहिए?

नहीं, मैं यह नहीं कहता। लेकिन यदि प्रभावशाली जातियोंकी तरफसे जानबूझ-कर अस्पृश्योंको अलग रखा जाये, तो इस तरह उन्हें अलग रखना अनुचित होगा और इससे स्वराज्यके रास्तेमें रुकावट पड़ेगी। अलग-अलग जातियोंके प्रतिनिधित्वको मैं स्वीकार नहीं करता। इसका मतलब यह नहीं है कि किसी एक जातिको प्रतिनिधित्व न मिले, लेकिन इससे तो उलटा प्रतिनिधित्व रखनेवाली जातियोंपर यह भार डाला जाता है कि वे उन जातियोंके प्रतिनिधित्वकी ठीक-ठीक रक्षा करें, जिनके प्रतिनिधि न हों या जिनके प्रतिनिधि अपर्याप्त हों।

७. क्या आप वर्णाश्रम-धर्मकी उपयोगिताको मानते हैं?

हाँ; लेकिन आज तो वर्णोंका स्वाँग-भर बच गया है, आश्रमोंका ठिकाना नहीं रहा और धर्म विपर्यय हो रहा है। सारी ही व्यवस्थाका पुनर्गठन होना चाहिए और धर्मके सम्बन्धमें हुई नई-नई खोजोंके साथ उसका सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए।

८. क्या आप यह नहीं मानते कि भारत कर्म-भूमि है और इसमें जन्म लेनेवाले हर शख्सको अपने भले-बुरे पूर्वकर्मानुसार ही विद्या-बुद्धि, धन और प्रतिष्ठा प्राप्त है?

पत्र-लेखक जिस अर्थमें मानते है, उस अर्थमें नही। क्योंकि यों तो जो बोओ सो काटो। किन्तु खास करके भारतवर्ष भोगभूमि न होकर कर्म-भूमि है, कर्त्तव्यभूमि है।

९. छुआछूतके दूर करनेकी बात करनेके पहले क्या अछूतोंमें शिक्षा-प्रचार और सुधार होना एक लाजिमी शर्त नहीं है?

अस्पृश्यता दूर किये बिना अस्पृश्योंमें सुधार या प्रचार नहीं हो सकता।

१०. क्या यह बात स्वाभाविक नहीं है, होनी तो चाहिए कि शराब न पीनेवाले शराब पीनेवालेसे और शाकाहारी मांसाहारीसे परहेज रखें?

यह आवश्यक नहीं है। शराब न पीनेवाला अपने शराब पीनेवाले भाईको उस बुरी आदतसे बचानेके लिए उसके पास जाकर अपना कर्त्तव्य करेगा। और इसी प्रकार शाकाहारी भी इसी उद्देश्यसे मांसाहारी भाईके पास जायेगा।

११. क्या यह सच नहीं है कि एक शुद्ध आदमी (इस अर्थमें कि वह मद्यप नहीं है और शाकाहारी है) आसानीसे अशुद्ध हो जाता है (इस अर्थमें कि वह शराब पीने लगता है और मांसाहार करने लगता है) जब वह उन लोगोंसे मिलता-जुलता है जो शराब पीते हैं, पशुओंको मारते हैं और मांस खाते हैं?

बुराईको बुराई न माननेवाला व्यक्ति यदि मद्यपान करे या मांस खाये तो वह अनिवार्यतः अशुद्ध या अपवित्र नहीं होता लेकिन मैं यह समझ सकता हूँ कि भ्रष्ट आदमीकी संगत करनेसे बुराईमें पड़ जाना सम्भव है। इस मामलेमें तो किसीको अस्पृश्योंकी संगतके लिए बाध्य करनेकी कोई बात नहीं कही गई है।

१२. कुछ कट्टर ब्राह्मण जो दूसरी जातियोंसे (जिनमें अछूत भी शामिल हैं) नहीं मिलते-जुलते और अपनी एक अलहदा जाति बनाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते रहते हैं, उसका कारण क्या उपरोक्त नहीं है?

वह आध्यात्मिक स्थिति जिसकी रक्षाके लिए चारों तरफसे अपनेको बन्द करके रखना पड़े, बड़ी दुर्बल होती होगी। और इसके अलावा वे दिन भी गये जब मनुष्य सदा एकान्तमें रहकर अपने गुणोंकी रक्षा करता था।

१३. छुआछूतको दूर करनेका प्रतिपादन करके क्या आप भारतके धर्म और वर्ण-व्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म)में दखल नहीं देते — फिर वह धर्म और व्यवस्था अच्छी चीज हो या बुरी?

एक सुधारकी हिमायत करना ही किसी चीज या संस्थामें दखल देना नहीं कहला सकता? दखल देना तो तभी कहा जाता जबकि मैं, जो लोग अस्पृश्यतापर कायम रहते हैं, उनपर जोरो-जुल्म करके अस्पृश्यता-निवारणके प्रश्नकी हिमायत करता।

१४. कट्टर ब्राह्मणोंको इसका विश्वास कराये बिना ही उनके धर्ममें दखल देनेसे क्या आप उनके प्रति हिंसाके दोषी न होंगे?

मैं कट्टर ब्राह्मणोंके प्रति हिंसाका दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं उनमें बिना विश्वास उत्पन्न किये उनके धर्ममें कोई दखल नहीं देता।

१५. ब्राह्मण लोग जो अछूतोंके अलावा और दूसरी जातियोंको भी स्पर्श नहीं करते, उनके साथ खाना नहीं खाते, शादी नहीं करते, अस्पृश्यता दोषके दोषी हैं या नहीं?

दूसरी जातिके लोगोंको 'स्पर्श' करनेसे यदि वे इनकार करते हैं, तो वे अवश्य दोषी हैं।

१६. मनुष्यत्वके हकका अमल करनेके लिए अस्पृश्य लोग ब्राह्मणोंके खास मार्गोंपर आयें-जायें तो इससे क्या उनकी लालसा पूरी हो जायेगी?

मनुष्य सिर्फ रोटी खाकर ही नहीं जीता। बहुतसे लोग भोजन छोड़ सकते हैं, लेकिन आत्मसम्मानको नहीं छोड़ सकते।

१७. अस्पृश्य लोग इतने शिक्षित नहीं हैं कि वे अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तको पूरी तरह समझ सकें। ब्राह्मण लोग राजनीतिकी बनिस्बत धर्मकी ज्यादा चिन्ता करते हैं, इसलिए क्या इस विषयमें सत्याग्रह करनेसे हिंसा नहीं भड़क उठेगी?

यदि इसमें वाइकोमके प्रति इशारा हो तो अनुभवसे यह बात मालूम हो चुकी है कि 'अस्पृश्यों' ने आश्चर्यजनक आत्मसंयम दिखाया है। सवालका बादवाला भाग यह सूचित करता है कि ब्राह्मण लोग, जिनका इससे सम्बन्ध है, सम्भव है हिंसा कर बैठें। यदि वे ऐसा करें, तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। मेरी रायमें तो तब वे धर्मके प्रति सम्मान प्रकट करनेके बदले धर्मका अज्ञान और उसके प्रति नफरत ही जाहिर करेंगे।

१८. क्या आपका कहना यह है कि जात-पाँत, धर्म और विश्वासके किसी प्रकारके भेदभावके बिना सबको समान हो जाना चाहिए?

जिस तरह जात-पाँत, वर्ण और धर्मका लिहाज रखे बिना हम लोगोंमें भूख-प्यास इत्यादि सर्वसामान्य हैं उसी प्रकार मनुष्यत्वके प्राथमिक हकोंके बारेमें कानूनकी नजरोंमें तो सबको समान ही होना चाहिए।

१९. केवल महान् आत्माएँ ही, जिनके कर्म निःशेष हो चुके हैं, इस सर्वोच्च दार्शनिक सिद्धान्तको पहचान सकी हैं, और उसका पालन कर सकी हैं; मामूली गृहस्थ नहीं। मामूली गृहस्थ तो ऋषियोंके बताये गये मार्गका अनुसरण करते हैं और ऐसा करते-करते जन्म-मरणके फेरसे छुटकारा पा जाते हैं। ऐसी दशामें क्या इस सिद्धान्तका अनुसरण एक मामूली गृहस्थके लिए किसी भी प्रकार उपयोगी हो सकता है?

इस सीधे-सादे सत्यको माननेमें कि केवल जन्मके कारण कोई मनुष्य अछूत नहीं माना जा सकता, किसी भी उच्च दार्शनिक सिद्धान्तकी दरकार नहीं। यह इतनी सीधी बात है कि केवल कट्टर हिन्दुओंको छोड़कर सारी दुनिया उसकी कायल है। और मैंने इस कथनपर शंका उठायी है कि हम जैसी अस्पृश्यताका पालन करते हैं, वैसी अस्पृश्यताका सिद्धान्त ऋषियोंने बताया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-२-१९२५

३३. दूसरेकी जमीनपर

एक महाशय कहते हैं:

> आप हर बार हमसे कहते हैं, मुसलमानोंके सामने झुक जाओ। आप कहते हैं, उनके खिलाफ अदालतोंमें भी कदापि न जाओ। आपने कभी इस बातपर भी पूरी तौरसे विचार किया है कि आप जो-कुछ कहते हैं उसका नतीजा क्या होगा? आपने मानव-स्वभावका भी कोई ख्याल रखा है? अच्छा, बताइए, जब हमारी जमीनपर कोई हमसे बिना पूछे मस्जिद खड़ी करने लगे तो हम क्या करें? यदि बेईमान लोग हमपर रुपये लेनेका झूठा दावा करें और हमारी मिल्कियत जबरदस्ती हमसे छीनें, तो हम क्या करें? अपना जवाब देते समय आपको हम गरीबोंका भी ध्यान रखना चाहिए। आप यह तो कभी नहीं कह सकते कि आप हमारी हालतको नहीं जानते। अगर फिर भी आप हमारा कुछ भी खयाल न रखते हुए अपना फतवा दें और फिर हम आपके सदुपदेशोंकी अवहेलना करें तो आप हमें दोष न दें। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप कई बार अन्धेर कर जाते हैं।

जो सज्जन मुझसे इस लहजेमें बातचीत करते हैं मुझे उनसे हमदर्दी है। मनुष्य-स्वभावकी कमजोरियोंको तसलीम करनेके लिए मैं तैयार हूँ और इसका सीधा-सा कारण यही है कि मैं अपनी कमजोरियाँ भी जानता हूँ। लेकिन ठीक जिस तरह मैं अपनी सीमाका कायल हूँ, इसी तरह "मुझे क्या करना चाहिए और मैं क्या नहीं कर पाता हूँ," इसके भेदको भुलाकर मैं अपने आपको धोखा भी नहीं देता। इसी तरह यदि मैं इस भेदको भुलाकर दूसरोंसे यह कहूँ कि आप जो-कुछ कहना चाहते हैं वह केवल ठीक ही नहीं शायद उचित भी है, तो यह उन्हें धोखा देना होगा — और मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। कितनी ही चीजें असम्भव होती हैं, पर फिर भी वही ठीक होती हैं। सुधारकका तो क़ाम ही यह है कि वह असम्भवको अपने आचरणके द्वारा प्रत्यक्ष करके सम्भव बना दे। एडिसनके आविष्कारके पहले सैकड़ों मीलपर बैठे हुए बातें करनेको कौन सम्भव मानता? मारकोनी और एक कदम आगे बढ़ा और उसने बेतारको सम्भव बना दिया। हम रोज ही इस चमत्कारको देख रहे हैं कि कल जो चीज असम्भव थी आज वही सम्भव हो गई है। जो बात भौतिक-शास्त्रमें चरितार्थ होती है वही मानस-शास्त्रपर भी घटित होती है।

अब व्यावहारिक सवालोंको लीजिए। दूसरेकी जमीनमें बिना इजाजतके मस्जिद खड़ी करनेका सवाल हलके लिहाज़से निहायत ही आसान सवाल है। अगर 'अ' का कब्जा अपनी जमीनपर है और कोई शख्स उसपर कोई इमारत बनाता है, चाहे वह मस्जिद ही हो, तो 'अ' को यह अख्तियार है कि वह उसे गिरा दे। मस्जिदकी शकलमें खड़ी की गई हरएक इमारत मस्जिद नहीं हो सकती। वह मस्जिद तभी कही

जायेगी जब उसके मस्जिद होनेका धर्म-संस्कार कर लिया जाये। बिना पूछे किसीकी जमीनपर इमारत खड़ी करना सरासर डाकेजनी है। डाकेजनी पवित्र नहीं हो सकती। अगर उस इमारतको जिसका नाम झूठ-मूठ मस्जिद रख दिया गया हो, उखाड़ डालनेकी इच्छा या ताकत 'अ' में न हो, तो उसे यह हक बराबर है कि वह अदालतमें जाये और उसे अदालत द्वारा गिरवा दे। अदालतोंमें जाना उन असहयोगियोंके लिए मना है जो उसके कायल हो चुके हैं, उन लोगोंके लिए नहीं जो कायल नहीं है। फिर पूरा असहयोग तो हम अभी अमलमें लाये ही नहीं हैं। यदि किसी सिद्धान्तके अनुसार अमल करना केवल असुविधाजनक ही नहीं बल्कि हमारे असली उद्देश्यपर ही स्पष्टतया आघात करनेवाला बन जाय तो ऐसा हरएक सिद्धान्त दूषित कहलायेगा। जबतक मेरे कब्जेमें कोई मिल्कियत है तबतक मुझे उसकी हिफाजत जरूर करनी होगी — वह चाहे अदालतके बल द्वारा हो या अपने भुजबल द्वारा। असलमें बात एक ही है।

सारे राष्ट्रकी तरफसे किया गया असहयोग एक प्रणालीके खिलाफ है या था। उसके मूलमें यह बात गृहीत कर ली गई थी कि आम तौरपर हमारे अन्दर एक-दूसरेमें सहयोग रहेगा। पर जब हम आपसमें ही एक दूसरेसे असहयोग करने लगे हैं तब राष्ट्रकी तरफसे असहयोग करना एक धोखेकी टट्टी हो जाता है। व्यक्तिगत असहयोग तभी मुमकिन है जब हमारे पास एक टुकड़ा भी जमीन न हो; और यह बात सिर्फ संन्यासीके लिए ही मुमकिन है। इसीलिए धार्मिकताकी पराकाष्ठापर पहुँचनेके लिए हर तरहकी सम्पत्तिका त्याग आवश्यक माना जाता है। इस प्रकार अपने जीवन धर्मका निश्चय हो जानेपर अब हमें अपनी शक्ति-भर उसका पालन करना चाहिए; उससे अधिक नहीं। यह मध्यम-मार्ग है। यदि कोई डाकू 'अ' की मिल्कियत छीनने आये तो वह उसे तभी सब-कुछ देगा जब वह उसे अपना सगा भाई मानता हो। अगर ऐसा भाव उसके दिलमें पैदा न हो पाया हो, अगर वह उससे डरता हो और चाहता हो कि कोई आकर इसे मार-भगाये तो अच्छा है तो उसे चाहिए कि वह स्वयं उसको पछाड़ देनेकी कोशिश करे और उसका नतीजा भोगनेके लिए तैयार रहे। अगर वह डाकूसे लड़ना तो चाहता हो पर ताकत न हो, तो उसे डाकूको अपना काम करने देना चाहिए और फिर अदालतमें जाकर अपनी मिल्कियतको पानेकी कोशिश करना चाहिए। दोनों हालतोंमें उसके चले जाने और मिल जानेकी पूरी-पूरी सम्भावना है। अगर वह मेरी तरह विचारशील पुरुष हो, तो वह मेरी तरह इसी नतीजेपर पहुँचेगा कि यदि हम दरअसल सुखी रहना चाहें तो किसी किस्मकी मिल्कियत न रखें, या तभी तक रखें जबतक हमारे पड़ोसी उसे रखने दें। इस आखिरी स्थितिमें हम अपने शरीरबलके द्वारा नहीं बल्कि कष्ट-सहन द्वारा अपना अस्तित्व रख पाते हैं। इसीलिए हद दरजेतक नम्रता और ईश्वरपर भरोसा रखनेकी जरूरत है। इसीको कहते हैं आत्मबलपर निर्भर रहना। यही श्रेष्ठतम आत्माभिव्यक्ति है।

आइए, हम इस सिद्धान्तको अपने हृदयमें स्थान दें — यह समझ कर नहीं कि कागजपर लिख रखनेकी दृष्टिसे यह एक अच्छा बौद्धिक और चित्ताकर्षक मन्तव्य है, बल्कि यह समझकर कि यह हमारे जीवनका एक नियम है, जीवन-धर्म है और हमें

निरन्तर इसकी प्रतीति रखना है। और आइए, हम इस धर्मके अनुसार और इस आदर्शतक पहुँचनेके उद्देश्यसे अपनी शक्ति-भर इसका पालन करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-२-१९२५

३४. शाबाश

कारवारकी हलियाल ताल्लुका कांग्रेस कमेटीके मंत्री लिखते हैं:

> हमारी नगरपालिकामें कांग्रेसका बहुमत है। इसलिए हम उसकी मार्फत कांग्रेसके कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। नगरपालिकाके स्कूलोंमें सूत कातना अनिवार्य कर दिया गया है। नगरपालिकाके कर्मचारियोंको खादीकी पोशाकें दी गई हैं। दलित वर्गोंके बच्चोंके लिए शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य कर दी गई है। उनके बच्चे अन्य वर्गोंके बच्चोंके साथ-साथ बैठते हैं। वे सार्वजनिक तालाबका उपयोग कर सकते हैं। हमारे यहाँ हिन्दू-मुस्लिम या ब्राह्मण-अब्राह्मणका कोई भेदभाव नहीं है। हम मद्य-निषेध आन्दोलन भी शुरू कर रहे हैं।

यह सारा काम बड़ा अच्छा और ठोस है। मैं हलियाल ताल्लुका कांग्रेस कमेटीको इस ठोस रचनात्मक कार्यके लिए बधाई देता हूँ और चाहता हूँ कि दूसरी नगरपालिकाएँ भी ऐसा ही करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-२-१९२५

३५. टिप्पणियाँ

एकताकी ओर

सर्वदलीय सम्मेलनके द्वारा सौंपे गये प्रश्नोंपर[1] विचार करनेके लिए समितिकी बैठक हुई। एकताके प्रश्नपर विचार करनेके लिए समितिने कोई ५० लोगोंकी एक उप-समिति नियुक्त की। उप-समितिने एक और छोटी समिति बनाई और उसके जिम्मे यह काम सौंपा गया कि वह स्वराज्यकी जितनी योजनाएँ हो सकती हैं उन सबपर विचार करे और अपने निर्णयोंको उक्त उप-समितिके सामने पेश करे। डा० बेसेंट इस छोटी समितिमें सदाकी तरह ऐसी तत्परता और स्फूर्तिके साथ काम कर रही हैं, जिसे देखकर युवकों और युवतियोंको शर्म आ जाये। परन्तु बातचीत ज्यादातर हिन्दू-मुस्लिम सवालपर ही हुई। और यही स्वाभाविक था। इसलिए

1. देखिए "भाषण: सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी बैठकमें", २४-१-१९२५ की पादटिप्पणी १।

नहीं कि वह मुझ-जैसे व्यक्तियोंके नजदीक अपने-आपमें ज्यादा महत्त्वपूर्ण है; बल्कि इसलिए कि उसकी वजहसे स्वराज्यका रास्ता ही बन्द हो गया है। इस समितिमें औपचारिकताकी ओर इतना ध्यान दे दिया गया कि काम पूरा होना कठिन हो गया। जरूरत इस बातकी थी कि समितिके इस प्रकारके पचड़ेमें पड़नेके बजाय बिलकुल अनौपचारिक रूपसे बात हो और इस समितिका आकार घटा दिया जाये। ऐसा ही किया गया। हकीम साहबके मकानमें हर सम्प्रदायके कुछ सज्जन मिले। जो नतीजा निकला सो पण्डित मोतीलालजी नेहरूने संक्षेपमें प्रकाशित किया ही है। मैं भी मानता हूँ कि चिन्ता या निराशाका कोई कारण नहीं है, क्योंकि सब लोग इस सवालको हल करनेके इच्छुक हैं। कुछ लोग आज ही इसका फैसला कर लेना चाहते हैं। कुछ कहते हैं अभी वक्त नहीं आया है। कुछ तो इसे हल करनेके लिए सब कुछ छोड़ देनेको तैयार हैं। कुछ होशियारीसे कदम रखना चाहते हैं और जबतक उन्हें उनकी कमसे-कम और अपरिहार्य बातें न मंजूर हो जायें तबतक इन्तजार करना चाहते हैं। पर इस बातपर सभी लोग सहमत हैं कि इसका हल हो जाना स्वराज्यके लिए परम आवश्यक है। और स्वराज्य तो सभीको दरकार है, इसीलिए जो व्यक्ति इसका उपाय खोजनेमें लगे हैं यह बात उनके वशके बाहरकी नहीं होनी चाहिए। जिस दिन हम लोग २८ फरवरीको इकट्ठा होनेका निश्चय करके विदा हुए, उस दिन इस एकताकी सम्भावना जितनी थी, उतनी पहले कभी नहीं थी। अब इस बीच सभी लोगोंको समझौतेके नये सूत्रोंकी खोज करनी है।

जातिगत प्रतिनिधित्वके विषयमें लोग मेरा मत जानना चाहेंगे। मैं इसके बिलकुल खिलाफ हूँ। परन्तु मैं ऐसी किसी भी बातको मान लेनेके लिए तैयार हूँ जिससे शान्ति बने रहनेका भरोसा हो जाये और जो दोनों जातियोंके लिए सम्मानपूर्ण हो। पर अगर दोनों जातियोंकी ओरसे पेश की हुई तजवीजपर समझौता न हो तो मेरा सुझाया गया उपाय काम दे सकता है। पर अभी मुझे उसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि दोनों जातियोंके जिम्मेवार लोग चाहे खानगी तौरपर बातें करके अथवा सर्वसाधारणमें अपनी रायें जाहिर करके एकताको साधनेकी दिशामें कोई बात उठा न रखेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूँ कि अखबारवाले भी ऐसी कोई बात नहीं लिखेंगे जिससे दल-विशेषको नाराजी हो; वे जहाँ ठीक समर्थन न कर पायें वहाँ समझदारीके साथ चुप रहें।

दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके शिष्टमण्डलको जो उत्तर वाइसरायने दिया है उसमें सहानुभूति तो है परन्तु उसमें उन्होंने किसी बातका वादा नहीं किया है। उससे प्रकट होता है कि उन्होंने संघ सरकारकी कठिनाइयोंका जरूरतसे ज्यादा खयाल रखा है। एक सरकारका दूसरी सरकारकी कठिनाइयोंका खयाल रखना ठीक ही है, परन्तु यह खयाल रखना सहज ही जरूरतसे ज्यादा हो जा सकता है। जब संघ सरकारके सामने ऐसा मौका था तब उसने कोई खयाल न किया। भारत सरकारके सामने ऐसे अनेक अवसर आये, पर एक दफाको छोड़कर, हर बार वह संघ सरकारके सामने

झुक गई। सिर्फ लॉर्ड हार्डिंग[1] इसमें अपवाद रहे। उन्होंने द० आफ्रिकाकी सरकारकी बात नहीं मानी और द० आफ्रिकावासी भारतीयोंका पक्ष लिया। इसके कारण थे। भारतवासी एक सीधा संघर्ष शुरू कर चुके थे। तरीका नया था। उन्होंने प्रतिकार और कष्टसहनकी अपनी क्षमताको सिद्ध कर दिखाया था। तिसपर भी वे पूर्णतया और प्रत्यक्ष रूपसे अहिंसात्मक बने रहे। पर इस समय द० आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी नेता-विहीन हैं। सोराबजी,[2] काछलिया,[3] पी० के० नायडू और अब पारसी रुस्तमजीकी मृत्यु हो जानेके कारण उनकी समझमें नहीं आ रहा है कि क्या करना चाहिए और क्या किया जा सकता है। अहिंसात्मक संघर्षके लिए तो काफी गुंजाइश है, परन्तु इसके लिए खूब विचार करने और विचारके अनुसार डट कर कार्य करनेकी आवश्यकता है। लेकिन फिलहाल यह शायद ही मुमकिन हो। फिर भी मुझे एक-दो नवयुवकोंसे, जो कि द० आफ्रिकामें रहते हैं, बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। इनमें से एक सोराबजी हैं। सोराबजी बहादुर पारसी रुस्तमजीके बहादुर बेटे हैं। युवक सोराबजी खुद सत्याग्रहके मँजे हुए सिपाही हैं। वे जेल जा चुके हैं। सरोजिनी देवीका[4] जो भारी स्वागत नेटालमें किया गया, उसका प्रबन्ध उन्होंने ही किया था। द० आफ्रिकाके हमारे देशभाइयोंको जान लेना चाहिए कि उन्हें अपनी मुक्तिकी कोशिश खुद ही करनी होगी। ईश्वर भी उन्हींकी मदद करता है जो खुद अपनी मदद करते हैं। अगर उन्होंने अपनी उसी दृढ़ता, जोश और त्यागका परिचय दिया, तो वे देखेंगे कि भारतके लोग और भारत सरकार भी, उनकी मदद करेंगे और उनकी तरफसे लड़ेंगे।

वाइसरायके भाषणमें एक अंश ऐसा है जिसके बारेमें कुछ पूर्ति करनेकी आवश्यकता है। वाइसरायने कहा है:

> आपके प्रार्थनापत्रमें यह कहा गया है कि नेटाल सरकारने १८९६में जब भारतवासी संसदके मताधिकारसे वंचित रखे गये, तब उन्हें संजीदगीके साथ यह आश्वासन दिया था कि उनका नगरपालिका-मताधिकार सुरक्षित रहेगा। परन्तु आपने इस आश्वासनके स्वरूप या उसके ठीक-ठीक सूत्रका दिग्दर्शन नहीं किया। मेरी सरकार हकीकत जाननेके लिए पूछताछ कर रही है।

शिष्ट-मण्डलने जो बात पेश की है, वह मोटे तौरपर ठीक है, पर यह आश्वासन १८९६ में नहीं, शायद १८९४ में दिया गया था। मैं यह याददाश्तसे लिख रहा हूँ। तथ्य इस प्रकार है: १८९४ में नेटाल विधानसभामें मताधिकार छीन लेनेवाला पहला विधेयक पास हुआ था। जिन दिनों वह उस विधानसभामें पेश था हिन्दुस्तानियोंकी तरफसे एक दरख्वास्त[5] दी गई थी जिसमें कहा गया था कि हिन्दुस्तानियोंको भारतमें नगरपालिका-मताधिकार और अप्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिक मताधिकार भी प्राप्त हैं। और उसमें यह अंदेशा भी प्रकट किया गया था कि राजनीतिक मताधिकारका

१. भारतके वाइसराय, १९१०-१६।
२. सोराबजी शापुरजी अडाजानिया।
३. अहमद मुहम्मद काछलिया।
४. सरोजिनी नायडू।
५. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७९-१८१।

छीना जाना कहीं नगरपालिका-मताधिकारके छीने जानेकी भूमिका न हो। इस दरख्वास्तके जवाबमें नेटालके प्रधान मन्त्री स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनने या महान्यायवादी स्व० श्री एस्कम्बने यह आश्वासन दिया था कि इससे आगे बढ़नेका हमारा कोई इरादा नहीं है और भविष्यमें नगरपालिका-मताधिकार हिन्दुस्तानियोंसे नहीं छीना जायेगा। वह मताधिकारको छीन लेनेवाला विधेयक तो बड़ी सरकार द्वारा नामंजूर कर दिया गया; पर उसकी जगह एक दूसरा विधेयक पास किया गया जो कि जातिगत भेदभावसे रहित था। पूर्वोक्त आश्वासन श्री एस्कम्ब द्वारा बार-बार दुहराया गया था। विधेयकोंका सभी काम उनके ही अधीन था और वे वस्तुतः जबतक पदारूढ़ रहे नेटालकी राजनीतिके एकमात्र सूत्रधार बने रहे।

क्या स्वराज्यवादी कांग्रेसी हैं?

मेरे सामने एक अजीब-सा खत पड़ा हुआ है, जिसमें लेखक लिखते हैं कि सिंधमें स्वराज्यवादियों और कांग्रेसियोंको एक दूसरेसे जुदा माना जा रहा है और यह भी कि कांग्रेसी स्वराज्यवादियोंके काममें बाधा डाल रहे हैं। मैंने तो यह आशा की थी कि बेलगाँव कांग्रेस अधिवेशनके बाद, जिसने कि स्वराज्य दलको कांग्रेसका एक अभिन्न अंग मान लिया है और असहयोग कार्यक्रमको मुल्तवी कर दिया है, ऐसी बातें नामुमकिन हो जायेंगी। हर स्वराज्यवादी जिसने कांग्रेसके ध्येय-पत्रपर दस्तखत किये हैं और जो नये मताधिकारको मानता है उतना ही कांग्रेसी है जितना कि वह व्यक्ति जो स्वराज्यवादी नहीं है और जो विधानसभा-प्रवेशको ठीक नहीं मानता। और यह बात भी याद रखनी चाहिए कि स्वराज्यवादी दलने अपना विधान बदल कर हरएक सदस्यके लिए नये मताधिकारको मानना लाजिमी कर दिया है। ऐसी अवस्थामें हम परस्पर एक दूसरेका विरोध न करें, केवल यह नहीं बल्कि जहाँ-जहाँ मुमकिन हो और जहाँ अन्तरात्माके विरुद्ध न बैठता हो वहाँ-वहाँ एक दूसरेको मदद भी पहुँचायें।

वाइकोमसे

वाइकोमके सत्याग्रह आश्रमसे प्राप्त पत्रका निम्न उद्धृत अंश निश्चय ही सबको दिलचस्प लगेगा:

> मुझे आशा है कि कताईकी प्रतियोगितावाला हमारा तार आपको मिल गया होगा। दो स्वयंसेवकोंने ८ नम्बरका — एकने ५७८ गज, दूसरेने ५०८ गज सूत — काता था। हमारा बुनाईका काम अभी जैसा चाहिए वैसा नहीं हो रहा है, क्योंकि कुछ लड़के जो बुनाईका काम जानते थे छुट्टीपर चले गये हैं। विनोबाजीकी[1] हिदायतके अनुसार हम लोगोंने अपनी संख्या घटाकर सिर्फ ५० कर ली है। लेकिन इससे बड़ी तकलीफ होती है क्योंकि आबहवा खराब है और इसलिए यहाँ रहनेवाले स्वयंसेवकोंमें से बहुतेरे ६ घंटेतक लगातार सत्याग्रह करनेके लायक नहीं रह जाते। इसलिए हमें दस या पन्द्रह स्वयंसेवक

१. विनोबा भावे।

और रखना जरूरी हो गया है। अतः सब मिला कर हमें ६० स्वयंसेवक स्थायी रूपसे रखने पड़ रहे हैं। मुझे आशा है आप इसकी आवश्यकता स्वीकार करेंगे।

२४ घंटेमें ८ घंटे सोनेमें; ६ घंटे सत्याग्रहमें, २ घंटे कातनेमें, एक घंटा हिन्दीके लिए, २ घंटे आश्रमके काममें (झाड़ना, बुहारना इत्यादि), २ घंटे अपने नहाने-धोने, खाने-पीने इत्यादिमें, एक घंटा वाचनालयमें और २ घंटे दैनिक प्रार्थना तथा सभामें व्यतीत होते हैं। इन सभाओंमें आमतौरपर व्याख्यानोंके लिए अच्छे-अच्छे विषय रखे जाते हैं। भाषण या तो मैं देता हूँ या विशिष्ट मेहमान लोग देते हैं। मेहमान आश्रममें प्रायः आते रहते हैं।

नारायण गुरुके[1] आदेशानुसार हमारे कोषाध्यक्ष सत्याग्रह आन्दोलनके स्मारकके रूपमें एक शाला बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। हम सब आपके पधारने-की बाट उत्सुकतासे जोह रहे हैं। हममें से ज्यादातर लोगोंको मानों धुन ही लगी हुई है कि आपको किस तरह जल्दीसे-जल्दी बुलाया जा सकता है। मैं कामना करता हूँ कि ईश्वर आपको यहाँ जल्दी ही आने योग्य समय और स्वास्थ्य प्रदान करे।

वाइकोमके सत्याग्रही जिस जागरूकताके साथ आन्दोलनका संचालन कर रहे हैं उससे पूरा-पूरा यकीन हो जाता है कि वह सफल अवश्य होगा। इसमें समय अधिक लगनेका आभास हो सकता है, किन्तु मैंने अच्छी तरह जान लिया है कि जल्दीसे-जल्दी पहुँचनेका रास्ता यही है। एकमात्र सच्चा रास्ता भी यही है। छुआछूतके खिलाफ लड़ाई एक धार्मिक युद्ध है। इसका उद्देश्य मानव-प्रतिष्ठाको स्वीकार कराना है। यह युद्ध हिन्दूधर्ममें एक बड़ा सुधार लानेके लिए है। यह धर्मान्ध लोगोंके मज-बूत किलोंपर धावा है। विजय तो अवश्यंभावी है; निष्ठावान हिन्दू नवयुवकोंकी यह टोली जिस धैर्य और त्यागका परिचय दे रही है, वह व्यर्थ नहीं जायेगा। प्रतीक्षामें बीतनेवाली अवधिमें उन्हें आत्मशुद्धिका लाभ होगा। यदि वे इसमें डटे रहें, तो उनकी गणना भावी भारतवर्षके निर्माताओंमें होगी।

जो सत्याग्रही इस बातके लिए उत्सुक हैं कि मैं वाइकोम पहुँचूँ, मैं भी उन्हें यकीन दिलाना चाहता हूँ कि वहाँ पहुँचनेकी मेरी भी बड़ी इच्छा है। मैं अवसरकी प्रतीक्षामें हूँ। जब इतनी जगहोंसे निमन्त्रण मिल रहे हों, तब चुनाव करना मुश्किल हो जाता है। मेरा हृदय और मेरी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं। कौन कह सकता है कि यह मेरी शारीरिक उपस्थितिसे कम है।

सावधान

गंजाम जिला-कांग्रेस कमेटीने एक व्यापारीका लिखा एक पोस्टकार्ड मेरे पास भेजा है। उसमें बाजारमें बेचनेके लिए २,००० गजकी आँटियोंका भाव पूछा गया है। ऐसे खुले व्यापारपर एतराज करना मुमकिन नहीं। लेकिन उन लोगोंको जो कातना नहीं चाहते और सूत खरीद कर अपना चन्दा देना चाहते हैं, बाजारसे सूत खरीदते समय सावधान रहना चाहिए। उन्हें अपना हिस्सा अपने परिवारोंमें कतवा

१. अछूतोंके एक आध्यात्मिक नेता।

लेना चाहिए। यदि यह मुमकिन न हो तो उन्हें एक विश्वासपात्र कातनेवाला रख लेना चाहिए और उससे सूत कतवा लेना चाहिए। अकोलाके जो कांग्रेसी कातना नहीं चाहते थे उन्होंने इस श्री मशरूवालाको[1], जो हाथ-कताईमें बड़ा विश्वास रखते हैं, जितना सूत चाहिए उतना देनेपर राजी करके मुश्किलको हल कर लिया है। इससे सूतकी तादाद और किस्म दोनोंके सम्बन्धमें इतमीनान रहेगा। किसी भी प्रान्तको दूसरे प्रान्तसे हाथ-कता सूत नहीं मँगाना चाहिए।

सूतकी बरबादी

कुम्भकोणम्से एक सज्जन लिखते हैं :

> आप जानते ही होंगे कि देशमें आजकल नेताओंका सत्कार सूतकी माला पहनाकर करनेका रिवाज पड़ गया है। हरएक राजनीतिक समारोहोंके अवसर-पर सूतकी मालाएँ पहनाई जाती हैं। पर कोई उनकी सम्भाल नहीं रखता; और इसलिए बहुतेरा हाथ-कता सूत यों ही बरबाद हो जाता है। नमूनेके तौरपर मैंने सूतका एक पार्सल आपकी सेवामें भेजा है। कुम्भकोणम्में हाल ही तमिलनाडकी जो खिलाफत परिषद् हुई थी, और जिसके सभापति मौ० शौकत अली थे, यह सूत वहींसे उठाया गया है। यदि मैं इस सूतको न सम्भा-लता तो यह ९६० गज सूत यों ही बरबाद हो जाता। मुझे यकीन है कि इस बार भी परिषदोंमें इससे कहीं ज्यादा सूत खराब गया होगा। इसलिए निवेदन है कि आप 'यंग इंडिया' द्वारा यह हिदायत दें कि जो मालाएँ बनाई जायें उनकी एक निश्चित तादाद — जैसे, २,००० गज — हो, जिससे कि ये २,००० गजकी मालाएँ बटोर ली जायें और उनका सदुपयोग पहननेवाले नेताकी सलाहके अनुसार किया जाये।

सूतकी बरबादीके बारेमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसे मैं ठीक मानता हूँ। नेताओंको सूतकी मालाएँ पहनानेका रिवाज अच्छा है, पर मालाएँ सुन्दर होनी चाहिए और उनमें सूत बहुत नहीं लगाया जाना चाहिए। यदि मंशा नेताओंको सूत भेंट करनेका हो, माला पहनानेका नहीं, तो पत्रलेखकके सुझावका पालन अवश्य किया जाना चाहिए और एक ही आकारकी लच्छियाँ भेंट की जानी चाहिए। क्योंकि यदि सूतकी मालाएँ भेंट करनेका रिवाज देशव्यापी हो जाये और उनकी सम्भाल न रखी जाये तो बहुतेरा अच्छा सूत नष्ट हो जाया करेगा, जो यदि बच रहे तो गरीबोंके लिए सस्ती खादी बनानेमें काम आ सकता है।

खादीका आदी होना

बंगालके एक अध्यापक लिखते हैं :

> मैं एक राष्ट्रीय पाठशालामें अध्यापक हूँ। बेलगाँवमें राष्ट्रीय पाठशालाओंके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास हुआ है उसने राष्ट्रीय पाठशालाओंके अध्यापकों और

१. किशोरलाल घ० मशरूवाला।

विद्यार्थियोंमें बड़ी खलबली मचा दी है। कुछ लोग अपने ही हितको दृष्टिमें रखकर उसका अर्थ तदनुसार लगानेकी कोशिश करते हैं। 'विद्यार्थी खादी पहननेके आदी हों'—इसका अर्थ कुछ लोग ऐसा लगाते है कि इसके द्वारा खादी पहनना अनिवार्य नहीं किया गया है और इसलिए वे कहते हैं कि जो लोग बिना खादी पहने पाठशालाओंमें आते हैं, वे रोके न जायें। अध्यापकोंको सिर्फ इतना ही करना चाहिए कि वे लड़कोंसे कहें कि खादी पहनें और धीरे-धीरे खादीकी आदत डाल लें। वे कहते हैं कि अगर हमें अनिश्चित समयतक लड़के खादी पहने दिखाई न दें, तो भी हम अपनी संस्थाओंको बेलगाँवके प्रस्तावकी मर्यादाका उल्लंघन किये बिना 'राष्ट्रीय' कह सकेंगे। वे तो कहते हैं कि यदि साठ फी-सदी लड़के भी मिलके कपड़े पहन कर आयें तो भी हम अपनी पाठशालाओंको 'राष्ट्रीय' कहते रहेंगे, बशर्ते कि पाठशालाओंके शिक्षक खादी पहननेके औचित्य और उसके उपयोगी होनेके विषयमें उन्हें समझाते रहें और यह आशा करें कि वे धीरे-धीरे उसे पहनने लगेंगे, चाहे छः महीनेमें, चाहे एक सालमें, और चाहे इससे भी ज्यादा वक्तमें।

हमारी रायमें उस प्रस्तावका यह अर्थ नहीं हो सकता। उसका अर्थ तो यह है कि विद्यार्थी बिना खादी पहने पाठशालाओंमें आ ही नहीं सकते। हाँ, आपत्कालमें या लाचारीकी अवस्थामें विद्यार्थी कभी-कभी बिना खादी पहने भी आ सकते हैं। हम समझते हैं कि इस प्रस्तावके द्वारा उन सबपर प्रतिबन्ध लग जाता है जो लगातार नियमपूर्वक बिना खादी पहने पाठशालाओंमें आते हैं। अपने क्षेत्रोंमें हम इसी तरीकेपर अपनी संस्थाओंके चलानेकी कोशिश कर रहे हैं।

इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे, या जरूरत समझें तो 'यंग इंडिया' में, उस प्रस्तावका असली अर्थ स्पष्ट और असंदिग्ध भाषामें लिखें जिससे कि इस प्रश्नपर आपके विचार सब लोगोंको मालूम हो जायें।

मुझे 'आदी होने' के अर्थके सम्बन्धमें जरा भी संशय नहीं है। पत्र-प्रेषक महाशयने उसका जो अर्थ किया है उसका वही अर्थ हो सकता है। कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार वह पाठशाला राष्ट्रीय नहीं कहला सकती जिसके विद्यार्थी आदतन खादी न पहनते हों। लेकिन शब्दोंका अर्थ ढूंढ़नेके लिए तो सबसे अच्छा मार्ग है कोश देखना। ऑक्सफर्ड डिक्शनरीमें 'हेबिच्युअल' (आदी होना) का अर्थ है 'रायज,' 'निरन्तर' 'क्रमबद्ध'।

क्या वे सरकारसे सम्बद्ध हों?

तब यह सवाल पैदा होता है कि क्या वे पाठशालाएँ जो इस शर्तको पूरा नहीं करतीं, सरकारी संस्थाओंसे सम्बद्ध हो जायें? निश्चय ही, जिस पाठशालाने असहयोग किया है उसका यह रास्ता नहीं हो सकता। देशमें कांग्रेस तथा सरकार दोनों ही से स्वतन्त्र रहकर चलनेवाली पाठशालाओंके लिए काफी जगह है। ऐसी

पाठशालाएँ हो सकती हैं जिनके संचालकोंका विश्वास सरकारके आश्रय, नियंत्रण या हस्तक्षेपमें न हो और वे खादी या देशी भाषा या हिन्दुस्तानी पढ़ानेकी भी कायल न हों। अगर ऐसी पाठशालाएँ सर्वसाधारणसे सहायता पाती हों या संचालक स्वयं ही इतने धनी हों कि वे उनको चला सकें तो वे जारी क्यों न रहें? कांग्रेसने जो-कुछ किया है वह सिर्फ यही है कि उसने एक सीमा बाँध दी है जिसके अन्दर ही वह शिक्षा-संस्थाओंको सहायता दे सकती है। कांग्रेसके लिए सिवा इसके दूसरी कौनसी बात स्वाभाविक हो सकती है कि वह अपनी संस्थाओंपर वही शर्त लगाय जो उसकी रायमें देशका हित साधन करती हों।

तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालय

श्री धारपुरे, रजिस्ट्रार, तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, लिखते हैं:

> मेरे कई मित्रों और साथियोंने मेरा ध्यान आपके अध्यक्षीय भाषणके २५वें पृष्ठपर छपे एक वाक्यकी ओर खींचा है जो उसकी अन्तिम दो पंक्तियोंमें आता है। 'कई प्रान्तोंमें अपने-अपने राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय हैं। अकेले गुजरातमें ही एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय चल रहा है, जिसपर १,००,००० रुपया वार्षिक व्यय किया जाता है और उसके नियन्त्रणमें ३ महाविद्यालय और ७० विद्यालय हैं जिनमें ९,००० छात्र पढ़ते हैं।'
>
> इससे एक भ्रम उत्पन्न होता है। यदि आपका आशय यह हो कि किसी दूसरे प्रान्तमें ऐसा विश्वविद्यालय नहीं चल रहा है जिसपर १,००,००० रुपये वार्षिक व्यय होते हों, तो आपका कहना ठीक है। लेकिन लोग इसका अर्थ दूसरी तरहसे कर सकते हैं, अर्थात् वे इसका अर्थ यह लगा सकते हैं कि किसी भी दूसरे प्रान्तमें विश्वविद्यालय नहीं है। खर्चकी बात तो केवल एक विशेषतासूचक वाक्यांश समझी जाती है।
>
> यदि आप अपने पत्र 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें यथासम्भव शीघ्र इस भ्रमका निराकरण करनेकी कृपा करें, तो मुझे प्रसन्नता होगी।
>
> तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालयपर प्रतिवर्ष ६,००० रुपये खर्च किये जाते हैं, ३ महाविद्यालय और ३० विद्यालय उसके अन्तर्गत आते हैं, जिनमें २,००० छात्र हैं। वार्षिक व्यय केवल इसलिए कम है कि प्रत्येक महाविद्यालय और विद्यालय अपनी व्यवस्था स्वयं करता है और उसका कोई भार महाविद्यालयपर नहीं पड़ता।
>
> राष्ट्रीय चिकित्सा महाविद्यालयको अभी मान्यता नहीं मिली है; हाँ, इसका प्रयत्न किया जा रहा है। अभी तिलक महाविद्यालयमें ७५ छात्र पढ़ते हैं जिनपर १५,००० रुपये प्रतिवर्ष व्यय आता है।

मैं समझता था कि मुझे अंग्रेजी काफी अच्छी आती है। श्री धारपुरेने जिस वाक्यकी ओर संकेत किया है वे उसको ठीक सन्दर्भमें ध्यान रख कर पढ़ें, तो उसका अर्थ केवल एक ही निकल सकता है और वह यह कि यदि दूसरे प्रान्तोंकी बात छोड़ भी दें, तो अकेले गुजरातमें ही इतना रुपया खर्च किया जाता है और इतने छात्रोंको

शिक्षा दी जाती है। किन्तु मैं देखता हूँ कि ऐसे मित्रोंने जो कमसे-कम मेरे बराबर अंग्रेजी जानते हैं इस वाक्यका दूसरा अर्थ किया है। मेरे लिए सान्त्वनाकी बात केवल इतनी ही है कि वे और मैं दोनों ही एक ऐसी भाषामें लिखे वाक्यके अर्थका निर्णय कर रहे हैं जो हम दोनोंके लिए विदेशी है। इसलिए यह सोचकर मुझे बहुत ही कम सन्तोष मिलता है कि जैसे मैं अपने अर्थमें भूल कर सकता हूँ वैसे उनके अर्थमें भी भूल होनी सम्भव है। किन्तु मैं उनको यह आश्वासन दे सकता हूँ कि मैंने गुजरातका उल्लेख केवल एक उदाहरणके रूपमें किया है और किसी दूसरे प्रान्तको छोड़कर गुजरातका उल्लेख इसलिए किया कि मेरे पास गुजरातके सम्बन्धमें आँकड़े थे। वाक्यमें मेरा जोर विश्वविद्यालयपर रहा हो और विद्यालयों और महाविद्यालयों पर न रहा हो, ऐसी बात नहीं है। मुझे भाषण लिखते समय भी यह मालूम था कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालय गुजरातमें ही नहीं बल्कि अन्यत्र भी हैं। तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालयके अतिरिक्त, अलीगढ़में मुस्लिम राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, लाहौरमें पंजाब विश्वविद्यालय, पटनामें बिहार विश्वविद्यालय और बनारसमें काशी विद्यापीठ है। मुझे पंजाब और बिहार विश्वविद्यालयों और काशी विद्यापीठके खर्चका पता नहीं है। लेकिन मैं जानता हूँ कि मुस्लिम विश्वविद्यालयपर पिछले साल लगभग ७५,००० रुपये खर्च हुए थे।

स्वयंसेवक

कांग्रेस सप्ताहमें बेलगाँवमें स्वयंसेवकोंने जो काम किया था, उसके सम्बन्धमें मेरे विचार पूछे गये हैं। मैंने समझा था कि मैं अपने बेलगाँवके अनुभवोंमें उसका उल्लेख कर ही चुका हूँ। फिर भी मैं उनकी इच्छानुसार उस विषयमें अपनी राय व्यक्त करता हूँ। उनके कामपर अधिक विस्तृत रूपसे और अलगसे लिखूँगा। मेरी रायमें स्वयंसेवकोंने बेलगाँवमें जो कार्यदक्षता दिखाई, वह मेरी देखी हुई पिछली तीन कांग्रेसोंकी अपेक्षा कहीं अधिक थी। स्वयंसेवक कठोर परिश्रमी, कार्यकुशल और मनसे काम करनेवाले थे। उनके सम्बन्धमें प्रतिनिधियोंसे कोई शिकायत नहीं सुनी गई। मुझे उनका स्वास्थ्य भी अच्छा लगा। डाक्टर हार्डीकरने[1] मुझे उनका शिविर दिखानेकी कृपा की थी। वहाँ मुझे सारा वातावरण कामकाजी और काफी स्वच्छ और व्यवस्थित दिखाई दिया। काफी स्वच्छ और व्यवस्थित इसलिए कहता हूँ कि मेरी रायमें शिविर इस मामलेमें आदर्श होना चाहिए। कोई भी चीज इधर-उधर पड़ी हुई नहीं होनी चाहिए और हर चीज अपनी जगह ही नहीं, बल्कि वहाँ साफ-सुथरे ढंगसे रखी होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, एक स्वयंसेवकका बिस्तर जहाँ चाहिए वहाँ रखा हुआ तो हो सकता है, लेकिन वह ठीक तरह और सफाईसे लपेटकर रखनेके बजाय एक ढेरकी शक्लमें भी पड़ा हो सकता है। सफाईकी दृष्टिसे भी स्वयंसेवक-शिविरमें कोई कमी नहीं होनी चाहिए। उसमें कहीं कागजकी एक चिन्दी या धूल पड़ी नहीं मिलनी चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि डा० हार्डीकरने स्वयसेवकोंकी

१. हिन्दुस्तानी सेवादलके संगठनकर्त्ता। बादमें यह दल कांग्रेसका एक महत्त्वपूर्ण स्वयंसेवक संगठन बन गया था।

संख्या जानबूझकर सीमित रखी थी। इसलिए उनके पास बहुत ज्यादा काम था। जबतक कांग्रेसका अधिवेशन चला, तबतक उनको प्रतिदिन १६ घंटेसे अधिक काम करना पड़ा। इस दौरानमें वे प्रायः खड़े ही रहते थे। मुझे स्वयंसेविकाओंके कामका उल्लेख करना भी नहीं भूलना चाहिए। उन्होंने अत्यधिक सहायता दी और ध्यानपूर्वक काम किया। उनको भी पहले प्रशिक्षण दिया गया था। यद्यपि हम स्वयंसेवकोंकी सुयोग्य सहायताके बिना कांग्रेसके अधिवेशनकी व्यवस्था नहीं कर सकते, फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि वह काम तो स्वयंसेवकके प्रशिक्षणका बहुत ही छोटा अंश है। स्वराज्यकी प्राप्तिमें स्वयंसेवकोंको हमारे लिए सबसे बड़े भरोसेकी चीज होना चाहिए। इस कामको वे तभी पूरा कर सकते हैं जब उनका चरित्र निष्कलंक हो और कवायद एवं सफाई करने और घायलोंको प्राथमिक सहायता देनेका आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर चुकनेके अलावा वे स्वराज्यके लिए राष्ट्रका संगठन करना भी जानते हों। इसलिए इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रत्येक स्वयंसेवकको रुई धुनने और सूत कातनेमें दक्षता प्राप्त करनी चाहिए और अपने हिस्सेका सूत कातनेके अतिरिक्त, जो मताधिकारके लिए आवश्यक है, उनमें अपने-अपने जिलेमें रुई धुनने और सूत कातनेके कामका संगठन करनेकी क्षमता होनी चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि हाथसे सूत कातना सन् १९२१ से ही स्वयंसेवकोंके प्रशिक्षणका एक अंग है।

सच हो तो फिर क्या पूछना

एक सज्जन अपने पत्रमें मुसलमानोंकी इस शिकायतकी कि मुसलमानोंमें शिक्षाकी बुरी हालत है, सख्त आलोचना करते हुए लिखते हैं कि इस मामलेमें आपको धोखा दिया जा रहा है। मेरी जानकारीके लिए उन्होंने कुछ बड़े मार्केके आँकड़े भी एकत्र करके भेजे हैं जिनसे दोनों सम्प्रदायोंकी साक्षरताके अनुपातका पता चलता है। उन्हें मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:

पुरुष

प्रान्त	मुसलमान फी हजार	हिन्दू फी हजार
बर्मा	३०२	२८८
म॰ प्रां॰ और बरार	२२५	८९
मद्रास	२०१	१७०
संयुक्त प्रान्त	७३	७१
बड़ौदा	३०९	२३४
म॰ प्रां॰	१६९	५९
मैसूर	२३८	१३३
सिक्किम	८३३	९१
ग्वालियर	१४२	६०
हैदराबाद	१४०	४७
राजपूताना	६६	५७

स्त्रियाँ

प्रान्त	मुसलमान फी हजार	हिन्दू फी हजार
बर्मा	८७	८६
देहली	३१	२६
म० प्रां० और बरार	२७	८
अजमेर, मारवाड़	१८	१६
बिहार	८	६
संयुक्त प्रान्त	८	६
मैसूर	६२	१६
बड़ौदा	४८	४२
हैदराबाद	३५	४
ग्वालियर	२६	६
मध्य भारत	१९	४
राजपूताना	९	३

मैं मानता हूँ कि मुझे यह पता न था कि आँकड़े मुसलमानोंके इतने अधिक पक्षमें होंगे। फिर भी मेरा वक्तव्य कायम रहता है। वास्तविक प्रतिस्पर्धा आम लोगोंमें — महज मामूली पढ़े-लिखोंमें — नहीं, बल्कि दोनों जातियोंके उच्च शिक्षित लोगोंमें है। और मैं समझता हूँ कि यह निर्विवाद है कि ऊँची कहलानेवाली शिक्षा मुसलमानोंमें उतनी नहीं है, जितनी कि हिन्दुओंमें। मैं चाहता हूँ कि पत्र-लेखक उच्च शिक्षा सम्बन्धी आँकड़ोंकी छानबीन करके कहें कि मेरी बात ठीक है या नहीं। इस बीच आँकड़ोंके अध्येता लोग ऊपर दिये गये आँकड़ोंका विश्लेषण करके अगर उनमें कोई गलती पायें तो मुझे सूचित करें। जिन प्रान्तोंके आँकड़े पत्र-लेखकने नहीं दिये हैं उनके विषयमें मैंने मान लिया है कि वहाँके आँकड़े पत्र-लेखकके आक्षेपके अनुकूल नही है। जहाँतक स्त्रियोंकी साक्षरताका सम्बन्ध है यह देखकर मुझे खुशी होती है कि बहुतेरे प्रान्तोंमें मुसलमान बहनें हिन्दू स्त्रियोंसे ज्यादा आगे बढ़ी हुई हैं। इससे यह मालूम होता है कि परदा साक्षरताके रास्तेमें रुकावट नहीं है। मैं परदेका पक्ष नहीं ले रहा हूँ, मैं तो उसके बिलकुल खिलाफ हूँ। मैं तो इस बातको सिर्फ आश्चर्यजनक समझकर उसका यहाँ उल्लेख करता हूँ। मैं यह तो जानता था कि बहुत-सी मुसलमान बहनें परदेमें रहनेपर भी काफी पढ़ी-लिखी हैं; पर यह नहीं जानता था कि साक्षरतामें भी उनकी संख्या हिन्दू बहनोंसे बढ़ी-चढ़ी है।

कुछ प्रसंगोचित आँकड़े

जिस समय देशका ध्यान हिन्दू-मुस्लिम समस्यामें लगा हुआ है पाठक निम्न सूची[1] पसन्द करेंगे। इसे एक मित्रने तैयार किया है। सूचीमें समस्त भारत और

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

विभिन्न प्रान्तोंके धर्मानुयायियोंकी अनुपातिक संख्या दी गई है। यह आँकड़े १९२१ की जनगणनापर आधारित हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-२-१९२५

३६. तार: सुरेन्द्रनाथ बिश्वासको

५ फरवरी, १९२५

सुरेन्द्रनाथ विश्वास[1]
१६ ए० गोविन्द घोषाल लेन
कलकत्ता

आगामी मासके आरम्भसे पहले तारीख निश्चित करना असम्भव। मेरा सुझाव आप मुझे ध्यानमें न रखकर तारीख[2] निश्चित करें।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

३७. भाषण: रावलपिंडीमें[3]

५ फरवरी, १९२५

मैं पिछले दिसम्बरमें यहाँ था। उस समय मेरी आपकी कुछ बातें हुई थीं।[4] तब मैंने कहा था कि यदि आप सब लोग कोहाट नहीं चले गये तो मैं यहाँ दुबारा आऊँगा और आपसे बात करूँगा। और यदि तबतक कोहाटसे कुछ मुसलमान भाई आ जायेंगे तो मैं कुछ पूछताछ भी करूँगा।

कोहाटसे कुछ मुसलमान भाई आये हैं। मैं उनसे बातचीत भी कर रहा हूँ। मैं आपको उसके परिणामस्वरूप [फिलहाल] ऐसी सलाह कदापि नहीं दे सकता कि आप कोहाट वापस जायें। मैं ऐसी आशा करता था कि उनसे बातचीत करनेका कोई अच्छा परिणाम निकलेगा। मैं निराश तो नहीं हुआ हूँ; किन्तु आज तो कोई

१. बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनकी स्वागत समितिके अध्यक्ष।

२. अनुमानतः बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके अधिवेशनकी तारीख, देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ६२१।

३. यह भाषण सितम्बर १९२४ के दंगोंके कारण कोहाटसे आये हुए हिन्दुओंके सम्मुख दिया गया था।

४. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ४४२-४४४।

ऐसी बात नहीं है कि मैं आपको कोहाट वापस जानेकी सलाह दे सकूँ; बल्कि मेरी इच्छा इससे उलटी सलाह देनेकी ही होती है। सम्भव है कि इन मुसलमान भाइयोंसे मेरी जो बातचीत चल रही है वह सफल न हो। फिर कोहाटमें जिन मुसलमानोंका प्रभाव है, वे यहाँ नहीं आये हैं। उन्होंने तो तार भेजा है और उसमें कहा है कि यहाँ समझौता हो गया है, हिन्दू कोहाट वापस आ रहे हैं। फिर आप हमें क्यों बुलाते हैं और इस तरह लोगोंके दिलोंमें घबराहट पैदा क्यों करते हैं? इसका मतलब यह है कि मुझे और शौकत अलीको इस मामलेमें दखल न देना चाहिए; किन्तु जो मुसलमान यहाँ आये हैं उनसे बातचीतके दौरान जब मैंने यह पूछा कि क्या वे हिन्दुओंको कोहाट ले जानेकी जिम्मेदारी लेते हैं तब उनमें से एक साहबने साफ कहा, "यदि हिन्दू फिर वापस कोहाट जाना चाहते हों तो जायें; किन्तु हम कोई जिम्मेदारी नहीं ले सकते। हम तो उनको बुलावा भी नही दे सकते, क्योंकि वहाँ आज जो हिन्दू हैं उनसे ही घृणा की जाती है।" इसलिए मैं आपको कोहाट वापस जानेकी सलाह नही दे सकता।

एक दूसरी बात भी है। यदि आप वहाँ सरकारकी शक्तिसे जाना चाहते हों और आपने सरकारसे जो बातचीत की है उससे आपमें कुछ विश्वास उत्पन्न होता हो तो यह आपकी मर्जीकी बात है। किन्तु मैं तो अब भी निश्चित रूपसे यही मानता हूँ कि हम इस सरकारसे मिलकर काम करनेसे या इसकी मार्फत काम करानेसे कोई फायदा नहीं उठा सकेंगे। मैं इसीलिए यह सलाह नहीं देता कि आप सरकारके संरक्षणमें कोहाट जायें। आप जहाँ भी रहें वहाँ अपनी शक्तिके आधारपर रहें।

यदि कोहाट जानेके सम्बन्धमें किसीके साथ बातचीत करनेकी जरूरत है तो वह है मुसलमानोंके साथ करनेकी। एक तो उनकी संख्या बहुत है। यदि उनकी संख्या बराबरकी भी होती तो भी चूंकि आप उनके डरसे भाग कर यहाँ आये हैं, इसलिए आपका उनसे बातचीत किये बिना वापस जाना ठीक नही है। यदि कोई मनुष्य पैसेकी खातिर या अपनी जानकी खातिर अपनी इज्जत आबरू खोकर वहाँ जाये तो अलग बात है; मेरे विचारसे इस तरह जीना, जीना नही है, वह तो मरनेके बराबर है।

कल मैंने एक अत्यन्त खेदजनक बात सुनी और वह यह है कि आपमें से बहुतोंने अपनी जान बचानेके लिए पहले इस्लाम स्वीकार कर लिया और तब आप यहाँ आये। मेरी दृष्टिसे तो ऐसे लोग वास्तवमें मुसलमान नहीं हुए हैं; अपनी जान बचानेके लिए डरके मारे मुसलमान हुए हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे यह क्यों कहते कि "हमारी चोटी काटो और हमें कलमा पढ़वाओ।" यदि हम ऐसा करें तो गायत्रीका कोई अर्थ ही न रहे और हिन्दू धर्म भी निकम्मा माना जाये। यही बात आर्यसमाजियों और सिखोंपर भी लागू होगी। मेरे कहनेका अर्थ यह है कि चाहे हमारा अस्तित्व मिट जाये; किन्तु हमें अपना धर्म परिवर्तन नहीं करना चाहिए। हमारा सच्चा धन रुपया-पैसा नहीं है, जर और जमीन नहीं है। ये तो ऐसी चीजें हैं जो लूटी जा सकती हैं। किन्तु हमारा सच्चा धन हमारा धर्म है। जब हम इसे गँवा देंगे तब कहना चाहिए कि हमने अपन घर खुद ही लूट लिये हैं। जबसे

मैंने यह बात सुनी है तबसे मैं यह अनुभव करने लगा हूँ कि आपको वहाँ जानेमें और रहनेमें कोई फायदा नहीं है। धन और जानके लालचमें पड़कर आप बहुत-कुछ खो रहे हैं।

मुसलमान कभी किसी स्त्रीको भगा ले जाते हैं और उसको मुसलमान बना लेते हैं। मेरी समझमें नहीं आता कि इस तरह वह हिन्दू स्त्री मुसलमान कैसे हो गई। वह 'कुरान' नहीं जानती, कलमा नहीं पढ़ सकती। दुःखकी बात है कि वह अपने धर्मके विषयमें भी बहुत कम जानती है। ऐसी स्त्री मुसलमान बन सकती है, यह बात मेरी समझमें ही नहीं आती। कोई मेरी स्त्रीको भगा ले जाये और वह कलमा पढ़ ले तो मेरा इस संसारमें जीना ही अशक्य हो जाये। तब या तो मैं आपसे आकर यह कहूँगा कि आप [उसकी रक्षा करनेमें] मेरी सहायता करें या आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप उसे फिर हिन्दू धर्ममें ले लें। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मैं कापुरुष कहलाऊँगा। मैं उसका पति होनेका दावा नहीं कर सकता। यदि आप इन्सान हों और इन्सान रहना चाहते हों तो आप प्रतिज्ञा करें कि जबतक यह स्थिति नहीं बदलेगी तबतक आप कोहाट वापस नहीं जायेंगे।

मुझे यह कहा गया है कि यदि कोहाटी हिन्दू वापस कोहाट नहीं जायेंगे, तो यह भी सम्भव है कि सरहदी सूबेसे दूसरे हिन्दू भी भाग आयें। मुझे लगता है कि यदि ऐसा हो तो यह ठीक ही होगा। मैं तो कहता हूँ कि आप वहाँ अपनी शक्तिसे रहें अथवा मुसलमानोंसे मित्रता करके रहें; मैं यह नहीं चाहता कि हिन्दू वहाँ कायर बनकर जिन्दगी बितायें। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों बहादुर बनें। मैं चाहता हूँ कि दोनोंकी शक्ति साथ-साथ बढ़े। मैं यह नहीं सह सकता कि हिन्दुओंकी शक्ति मुसलमानोंका नाश करके बढ़े अथवा मुसलमानोंकी शक्ति हिन्दुओंका नाश करके बढ़े। हिन्दू धर्ममें दूसरेके धर्मका नाश करनेकी शिक्षा नहीं दी गई है।

कल यह तर्क दिया गया था कि हिन्दू स्त्री मुसलमान बनाई जा सकती है; किन्तु यह बात मेरे गले तो नहीं उतरी। मैं इस बातको मुसलमान भाइयोंसे अधिक अच्छी तरह समझना चाहता हूँ। क्या इस्लाममें यह शिक्षा दी गई है कि कोई भी मुसलमान मेरी स्त्रीको भगा ले जा सकता है? मेरी स्त्री यह भी नहीं जानती कि इस्लाम या ईसाई धर्म क्या है। वह हिन्दू घरमें जन्मी है, रामनाम लेती है, 'रामायण' और 'भागवत' पढ़ लेती है। उसने मुसलमान बननेकी बात कभी सोचीतक नहीं है। वह अपने धर्मपर दृढ़ रहती है और वह भी पूरी श्रद्धासे। यदि ऐसी स्त्रीके सम्बन्धमें यह कहा जाये कि उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया है तो इसका क्या अर्थ मानना चाहिए? उसने सोच-समझकर इस्लाम स्वीकार नहीं किया है; इसलिए वह अपने-आपको मुसलमान माननेके लिए तैयार नहीं है। मैं मुसलमान भाइयोंसे बात करना चाहता हूँ कि क्या उनके धर्ममें किसीकी स्त्रीको भगानेकी और मुसलमान बनानेकी शिक्षा दी गई है? मेरे लिए यह असह्य है कि सरहदी सूबेमें रहनेवाली किसी हिन्दू स्त्रीसे जोर-जबरदस्ती की जाये। यदि यह कहा जाये कि उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया है तो मैं यह बात माननेके लिए तैयार नहीं हूँ। इसलिए

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप अपने धर्मको प्यारा मानते हों तो आप वापस कोहाट न जायें। जबतक वहाँके मुसलमान यह न कहें कि आप इज्जतके साथ आयें, तबतक आप वहाँ न जायें। आप वहाँ जाकर रुपया कमा लें, किन्तु अपना धर्म खोकर रहें तो मेरी दृष्टिमें आपका कमाया हुआ रुपया मिट्टी ही है।

आप अबतक भूखों नहीं मर गये हैं। मैंने दिसम्बरमें आपसे यह भी कहा था कि जिनके हाथ-पैर चल सकते हैं वे भीख अर्थात् दूसरोंसे माँगे हुए अन्नपर जीवित रहें, मैं यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि मैं आपको इस प्रकार जीवित रहनेकी सलाह दूँ तो मैं गुनहगार बनूँगा। मैं आज भी इसी बातपर दृढ़ हूँ। मैंने इसीलिए कोहाटके शरणार्थियोंके लिए एक पैसा भी नहीं माँगा है। मैं तभी धन संग्रह करूँगा जब मुझे यह मालूम हो जाये कि पैसा किसलिए चाहिए। मैंने देनेवालोंकी कोई सूची नहीं बनाई है। फिर भी यह सच है कि यदि कोई कुछ रुपया देता है तो मैं उसे यहाँ भेज देता हूँ। किन्तु यदि आप लोग मेरी सलाहके अनुसार चलें और जिनके हाथ-पैर हैं वे उनसे कमाकर खायें तो मैं आपको पूरी सहायता देनेका वचन देता हूँ।

मैं आपको साबरमती भी ले जानेके लिए तैयार हूँ। मैं वहाँ आपके रहने और खाने-पीनेकी पूरी व्यवस्था कर दूंगा। मैं पहले आपको खिलाऊँगा तब स्वयं खाऊँगा। किन्तु मैं आपसे नित्य आठ घंटे काम लूँगा। यदि आप श्रम करना चाहते हों तो मैं आपकी सहायता हर तरह करनेके लिए तैयार हूँ। यदि आपमें से कुछ लोग यह कहें कि "हम तो वकील हैं, अतः हमें तो वकीलका धन्धा ही दो" तो मुझसे यह व्यवस्था नहीं हो सकेगी। दो पक्षोंमें लड़ाई करवाके मैं आपको मुकदमे नहीं दिला सकता। इसी प्रकार यदि व्यापारी दस-बीस लाख या दस-बीस हजार रुपये माँगे तो मैं नहीं दे सकूंगा। मैं इतना जरूर कर सकता हूँ कि आपको कोई-न-कोई काम दे दूँ। मैं इसी दृष्टिसे हिन्दुस्तानके लोगोंसे कह रहा हूँ कि प्रत्येक मनुष्य आधा घंटा चरखा चलाये। चरखा श्रमका प्रतीक है। जो चरखा चलाता है वह दूसरा श्रम भी कर लेगा। मेरे पास जमीनका कोई काम नहीं है; किन्तु धुनने, कातने और बुननेका क़ाम पर्याप्त है। इन कामोंसे लाखों लोगोंको रोजी मिल सकती है। मैंने अखबारोंमें पढ़ा है कि मैसूरके महाराजाने भी चरखा चलाना शुरू किया है। आपमें से जो लोग कारीगर हों और जिन्हें अपना काम शुरू करनेके लिए आवश्यक साधनोंकी जरूरत हो, जैसे सुनारीके औजारोंकी, तो उनको जुटाना मेरा कर्त्तव्य है। जिसका जो धन्धा हो, उसको चलवानेकी व्यवस्था करना भी मेरा कर्त्तव्य है। मैं इसके लिए भीख माँगनेके लिए तैयार हूँ। इसलिए मैं आपसे फिर कहता हूँ कि आप इस प्रकारकी सूचियाँ बनायें जिनसे यह मालूम हो कि कितने आदमी किस-किस कामको कर सकते हैं और प्रत्येकके परिवारमें कितने लोग इस प्रकार काम कर सकते हैं और क्या काम कर सकते हैं। बीमार या कमजोर आदमी भी कोई-न-कोई काम कर सकता है। मैं अपनी विधवा बहनसे भी काम लेता हूँ और उसके बाद ही उसका भोजन उसे देता हूँ। वह कहती है कि "हम तो दीवानके बेटे-बेटियाँ हैं।" किन्तु मैं तो यह मानता नहीं। हम तो हिन्दुस्तानके मजदूर हैं; इसलिए मैं

इससे भिन्न आचरण नहीं कर सकता। एक ही मार्ग है — मैं जिसे खानेके लिए दूँ, उससे काम लूँ। मैं अपनी बहन और पत्नीसे भी ठीक निबट लेता हूँ, इसलिए विधवा बहनोंसे भी निबट लूँगा।

कुछ बातें सुनकर मुझे बहुत शर्म मालूम हुई। मैंने सुना है कि कुछ कोहाटी हिन्दू जुआ खेलते हैं, कुछ एक बार रोटियाँ लेकर दुबारा फिर रोटियाँ माँगते हैं और नहीं मिलतीं तो झगड़ा करते हैं; यदि अपने पास रजाई होती है तो भी दूसरी माँगते हैं और उसे बेच देते हैं। इससे मुझे बहुत दुःख होता है। जो-कुछ कोहाटमें हुआ, मैं उसे बर्दाश्त कर सकता हूँ; किन्तु यदि ये सब बातें सच हों तो ये मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकतीं। यदि आप ऐसे ही रहना चाहते हों तब तो आप कोहाट लौट जा सकते हैं और अपना धर्म डुबा सकते हैं। मेरे विचारसे धर्मका अर्थ यह नहीं है। कोई गायत्री पढ़ने-मात्रसे हिन्दू नहीं हो सकता है। मेरी दृष्टिमें केवल वही हिन्दू है जिसके हृदयमें गायत्री सतत अंकित रहती है। कोई 'ग्रन्थसाहब' का पाठ कर लेनेसे सिख नहीं हो जाता। सिख वही है जो 'ग्रन्थसाहब' को सच्चे भावसे हृदयमें धारण करता है। वेद-मन्त्रोंका भलीभाँति गान करनेसे ही कोई आर्यसमाजी नहीं हो जाता। किन्तु जो उन मन्त्रोंको जीवनमें उतारता है, वही सच्चा आर्यसमाजी बनता है। मैं मुसलमानोंसे भी कहता हूँ कि क्या मैं कलमा पढ़ लेनेसे मुसलमान हो सकता हूँ? इसलिए जबसे मैंने आपके विषयमें यह बात सुनी है तबसे मैं बहुत क्षुब्ध हूँ।

यह कलियुग है और ऐसे ही कारणोंसे हमारा अधःपतन हुआ है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप इस प्रकारका आचरण करके मुझे न लजायें। यदि आपको ऐसा ही करना हो तो आप मुझे तो अलग ही रहने दें; क्योंकि तब मैं आपकी सेवाके योग्य नहीं रहता।

इन स्थितियोंमें आप कोहाट न जायें, इस सम्बन्धमें मालवीयजी महाराज मुझसे सहमत हैं। मैंने उनको यहाँ आनेका कष्ट नहीं दिया है, क्योंकि केन्द्रीय विधानसभामें बंगाल अध्यादेशके सम्बन्धमें निर्णय किया जा रहा है और वे इस सम्बन्धमें वहाँ व्यस्त हैं। वे आनेके लिए तैयार थे; किन्तु मैंने उनसे कहा कि मैं उनको इस बार कष्ट नहीं देना चाहता। लालाजी भी आज यहाँ आ गये हैं। उन्होंने लाहौरसे फोन किया था। मैंने उनको यहाँ बुला लिया है; किन्तु वे दुर्भाग्यसे बीमार हैं और आज यहाँ नहीं आ सके हैं। मैंने उनको यहाँ रावलपिंडी आनेका कष्ट इसलिए दिया कि यदि हम दोनों एकमत न हों तो आप लोग भ्रमित होंगे। हम तीनोंकी राय एक ही है। इस्लामके सम्बन्धमें मैंने आपसे जो-कुछ कहा है वह उनको नहीं मालूम है। किन्तु जो-कुछ कोहाटमें हुआ है उसके सम्बन्धमें उनकी राय यही बनी है कि वर्तमान स्थितिमें आपके लिए कोहाट जाना अधर्म है। मैंने स्वयं इतना ही और कहा है कि जबतक मुसलमानोंसे कोई समझौता नहीं होता तबतक आपका वहाँ जाना अधर्म है।

मैं यह भी नहीं चाहता कि आपको इस समय जिस प्रकार मुफ्त खाना दिया जाता है, वह जारी रखा जाये। 'गीता' कहती है कि जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता

फिर भी खाता है, वह चोरी करता है। यज्ञके अर्थ कई होते हैं; किन्तु उसका एक अर्थ शरीर-श्रम भी होता है। मैं आप लोगोंसे बात करनेके लिए आया हूँ। आप मुझसे कोई दूसरी बात पूछना चाहते हों तो पूछ सकते हैं। मैं तो यही चाहता हूँ कि जो लोग यहाँ काम कर रहे हैं आप उनसे यहाँ खाना खानेवाले लोगोंके नाम दर्ज कर लेनेको कह दें और यह भी कह दें कि हम लोग यहाँसे जो-कुछ लेंगे उसका दाम श्रम करके चुकायेंगे। आप सब लोगोंको काम ढूँढ़ लेना चाहिए। यदि आप मेरे साथ साबरमती चलें तो मैं आपको वहाँ काम देनेके लिए तैयार हूँ। मेरे मनमें तो यह आता है कि मैं आपके साथ रहकर मेहनत-मजदूरी करूँ। किन्तु आज तो मेरे सम्मुख दूसरा काम पड़ा है। इसलिए मैं आपके साथ नहीं रह सकता। आप सब इकट्ठे बैठकर सलाह कर लें और यदि आपको मेरी बात स्वीकार हो तो आप एक घर किरायेपर ले लें, उसमें खड्डी लगाकर उसपर काम करें। मैं आप लोगोंको उसके लिए पैसा दिलानेके लिए तैयार हूँ। मुझे ऐसे कामके लिए पैसा माँगनेमें तनिक भी लज्जा नहीं आती।

मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता था वह कर चुका हूँ। अन्तमें आप जो-कुछ पूछना चाहें मैं उसका उत्तर देनेके लिए तैयार हूँ। मैंने आपके सम्बन्धमें जो बात सुनी है वह यदि झूठी हो तो आप मुझे वह भी बतायें। आपको जिन्होंने आश्रय दिया है उनके प्रति भी आपका कर्त्तव्य यही है कि आप कोई-न-कोई काम अपने हाथमें उठा लें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

३८. कोहाटके दंगोंके बारेमें कमाल जिलानीसे जिरह[1]

[रावलपिंडी]
६ फरवरी, १९२५

प्रश्न: क्या आप कोहाटके नजदीक रहते हैं?

उत्तर: बिलकुल नजदीक रहता हूँ।

प्रश्न: क्या आप जमींदार हैं?

उत्तर: मैं जमींदार हूँ। मेरे . . . में बहुतसे गाँव हैं। इसके अलावा हमारे पूर्वजोंको वहाँ करीब-करीब सभी गाँवोंमें जमीनें दी गई थीं।

१. कहा जाता है कि कमाल जिलानी तथा अहमद गुलको की गई जिरहका उल्लेख करते हुए, गांधीजीने यह कहा था: "इस वर्षके दौरान मैंने आज अत्यन्त मूल्यवान् कार्य किया है। . . . मैंने बहुत वर्षोंके बाद इस तरहकी जिरहका काम अपने हाथमें लिया है। इस समय लगता है कि मैंने जिरह करनेमें अपना सारा कौशल समाप्त कर दिया है। गवाहोंको तनिक भी यह महसूस नहीं हुआ है कि उनसे जिरह की जा रही है।" देखिए **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड ७।

प्रश्न : क्या हिन्दुओंसे आपके ताल्लुकात अच्छे हैं?

उत्तर : मैं भरोसेके साथ कह सकता हूँ कि हिन्दुओंके साथ मेरे ताल्लुकात बहुत अच्छे हैं।

प्रश्न : क्या आप कभी कोहाटमें रहते हैं?

उत्तर : मैं वहाँ रोज जाता-आता हूँ, क्योंकि वहाँसे मेरे रहनेका स्थान सिर्फ ५०० गज दूर है।

प्रश्न : आपके खयालमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच फसादका कारण क्या है?

उत्तर : मेरे खयालमें इसके कई कारण हैं जो पहलेसे मौजूद थे। पुस्तिकाका[1] छापना उसका अन्तिम कारण था। इससे फसाद शुरू जरूर हुआ, लेकिन दोनों फिरकोंके दिलोंमें जहर पहले ही पैदा किया जा चुका था।

प्रश्न : क्या आप संक्षेपमें इस मुद्देको स्पष्ट करेंगे?

उत्तर : पिछले कुछ बरसोंसे हिन्दू ऐसे लोगोंको जो मुसलमान बन गये थे, अदालतोंमें मुकदमे चलाकर तंग कर रहे थे और इस प्रकार अपनी नाराजगी जाहिर कर रहे थे।

प्रश्न : कबसे?

उत्तर : उनका यह रवैया चार या पाँच साल पहले शुरू हुआ था और हाल ही की कुछ घटनाएँ ये हैं : (१) कोहाटमें एक फोटोग्राफरकी औरत, तालमें एक हिन्दू औरत . . . तथा भागोमें एक हिन्दू, मुसलमान बनाये गये थे (२) इसके बाद एक हिन्दू मुसलमान या शेख बना और उसने एक मुसलमान औरतसे शादी की। वह फिर हिन्दू बन गया और उसपर औरतके बारेमें मुकदमा दायर किया गया। (३) मुसलमानोंने एक मुसलमान लड़कीके बारेमें मुकदमा दायर किया; किन्तु वे अपराधीको वांछित सजा दिलानेमें असफल हुए। इसके बाद (एक दूसरेके खिलाफ) मुकदमेबाजी चलती रही (४) मुसलमानोंको सामाजिक और राजनीतिक जीवनमें अपने उचित भागसे ज्यादा प्रतिनिधित्व मिला और हिन्दू नौजवानोंने कुछ हिन्दू संस्थाएँ स्थापित कीं। ये कुछ अन्य कारण हैं।

प्रश्न : क्या यह आखिरी बात भी चार या पाँच साल पुरानी है?

उत्तर : यह चार या पाँच सालके अन्दर ही हुई है।

प्रश्न : खिलाफत आन्दोलनके पहले या बाद?

उत्तर : यह खिलाफत आन्दोलनके शुरू होनेसे एक साल बाद हुई।

प्रश्न : क्या कोहाट जिलेमें लोग अक्सर मुसलमान बनाये जाते हैं?

उत्तर : हाँ, जिलेमें मुसलमान बननेवालोंकी बहुत बड़ी संख्या है।

१. कोहाटकी सनातन धर्म सभाके मन्त्री जीवनदास द्वारा प्रकाशित। इसमें एक ऐसी कविता भी जिसमें इस्लामके बारेमें आपत्तिजनक बातें थीं।

प्रश्न: उनकी संख्या लगभग कितनी होगी?

उत्तर: जुम्मा मस्जिदमें कोई न कोई आदमी मुसलमान बनाया ही जाता है। इन मुसलमान बनाये जानेवालोंकी संख्या हर साल सौ या डेढ़ सौ हो जाती है, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि ये सब लोग खास कोहाट ही के हों। हरेक जुम्मेको एक या दो लोग मुसलमान बनाये जाते हैं।

प्रश्न: क्या सभी लोग जो मुसलमान बनाये जाते हैं, हिन्दू होते हैं?

उत्तर: हाँ, वे सभी हिन्दू होते हैं, किन्तु कभी-कभी सिख भी होते हैं।

प्रश्न: क्या इससे पहले पुस्तिकाकी घटनाके अलावा कोई और घटना भी हुई है?

उत्तर: तालाबों आदिसे ताल्लुक रखनेवाली कुछ छुटपुट घटनाएँ हुई हैं, लेकिन इन घटनाओंके अलावा, जिनका जिक्र पहले ही हो चुका है, ऐसी कोई घटना नहीं हुई जिसका असर लोगोंकी बहुत बड़ी तादादपर पड़ा हो। यद्यपि तालाबों आदिके मामले बहुत सीमित प्रकारके थे, फिर भी उन्होंने जोर पकड़ा और बाहरी लोगोंमें फैल गये।

प्रश्न: क्या मुसलमान बनाये जानेके मामलोंमें हिन्दुओंके हस्तक्षेपसे मुसलमानोंमें कोई नाराजगी पैदा हुई थी?

उत्तर: हाँ, इससे जरूर नाराजगी पैदा हुई थी। हिन्दुओंको मुसलमान हमेशा ही बनाया जाता रहा है, लेकिन हिन्दुओंने उधर कभी ध्यान नहीं दिया। लेकिन खुदा जाने अब क्या हो गया। इसपर वे तूफान खड़ा कर रहे हैं। आखिर ये लोग अपनी स्वतन्त्र इच्छासे और इस्लामके प्रति प्रेमके कारण ही मुसलमान बनते हैं।

प्रश्न: क्या ये सभी लोग जो मुसलमान बनाये जाते है, बालिग होते हैं।

उत्तर: जब माँ-बापोंके साथ होते हैं तब बच्चे भी मुसलमान बनाये जाते हैं। बाकी सब तो बालिग ही होते हैं।

प्रश्न: क्या कभी मुसलमानोंने हिन्दुओंसे ऐसा कहा कि उन्हें इस तरहका बरताव नहीं करना चाहिए?

उत्तर: हाँ, उनसे (हिन्दुओंसे) ऐसा कहा गया। मैंने खुद उनसे ऐसा कहा! लेकिन जिनसे मैंने कहा उनमें से कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं था और न उनमें से कोई सार्वजनिक कामोंमें दिलचस्पी ही लेता था।

प्रश्न: यह बात शुद्धि-आन्दोलनके पहले शुरू हुई या उसके बाद?

उत्तर: यह शुद्धि-आन्दोलनके बाद शुरू हुई। ये सभी घटनाएँ जिनका मैंने जिक्र किया है, शुद्धि और संगठन आन्दोलनके बाद हुई हैं।

प्रश्न: क्या आपका विश्वास है कि इसका दंगोंपर कोई असर पड़ा है?

उत्तर: दिलोंमें पहलेसे ही दुर्भावनाएँ मौजूद थीं। यह एक और कारण बन गया।

प्रश्न: क्या यह वही मुसलमान लड़की है जिसका जिक्र सरदार माखनसिंहके लड़केकी घटनाके सम्बन्धमें किया गया है?

उत्तर: हाँ, यह वही है।

प्रश्न: आपका पुस्तिकाके बारेमें क्या खयाल है? उसमें आम हिन्दू जनताका क्या भाग था?

उत्तर: पुस्तिका यहाँ भेजी गई और सनातन धर्म सभाके सदस्योंकी जानकारीमें बेची गई।

प्रश्न: क्या बहुत हिन्दू सनातन धर्म सभाके सदस्य हैं?

उत्तर: मैं उनकी ठीक-ठीक संख्या नहीं जानता।

प्रश्न: क्या आम हिन्दू इसके सदस्य हैं?

उत्तर: जहाँतक मैं खयाल कर सकता हूँ, बहुतसे (गैर सनातनी) हिन्दू उसके सदस्य होंगे। करीब १५ या १६ सदस्य जिनका जिक्र उनके धर्मोन्मादके कारण किया जाता है, इस [सनातनी] वर्गसे ताल्लुक रखते हैं।

प्रश्न: क्या आपने यह सारी पुस्तिका पढ़ी है?

उत्तर: मैंने यह सारी ही पढ़ी है।

प्रश्न: क्या इसमें सभी कविताएँ बुरी हैं?

उत्तर: जो कविता आपत्तिजनक कवितासे पहले दी गई है वह बहुत अच्छी है। बाकी धार्मिक कविताएँ भी अच्छी हैं; लेकिन ग्यारहवीं कविता अत्यन्त आपत्तिजनक है और उसका उद्देश्य मुसलमानोंकी भावनाको आघात पहुँचाना है।

प्रश्न: क्या इस कविताकी बहुत प्रतियाँ बेची गई थीं?

उत्तर: पुस्तिकाकी प्रतियाँ बहुतसे लोगोंके हाथोंमें देखी गई थीं। जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। मैंने इसकी पहली प्रति मौलवी अहमद गुलके[1] हाथमें देखी थी। उसकी दूसरी प्रति एक दूसरे मुसलमानके पास थी।

प्रश्न: हिन्दू कहते हैं कि ३० या ३५ से अधिक प्रतियाँ नहीं बेची गईं, क्या यह सच है?

उत्तर: हो सकता है कि यह सब सच हो; लेकिन मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता।

प्रश्न: सनातन धर्म सभाके सदस्योंने उस छपी हुई आपत्तिजनक कविताके लिए माफी माँगी थी। क्या यह काफी नहीं था?

उत्तर: शिष्टमण्डलके[2] पेशावरसे लौटनेतक मुझे इस माफीके बारेमें कुछ भी पता नहीं था। मैंने अभीतक माफीनामेका मजमून नहीं देखा है। मैंने सुना है कि मुसलमानोंके खयालसे माफीनामा काफी था।

प्रश्न: क्या आप जानते हैं कि उसमें कमी क्या थी?

उत्तर: उसमें क्या लिखा है यह मैंने नहीं देखा। इसलिए मैं इस बारेमें कुछ नहीं कह सकता।

१. खिलाफत समितिके मन्त्री।

२. पेशावरका खिलाफत शिष्टमण्डल। उसने दोनों दलोंको शान्त करनेकी कोशिश की थी, लेकिन उसे इसमें सफलता नहीं मिली।

प्रश्न: क्या आप जानते हैं कि वह पृष्ठ जिसमें वह कविता थी सभी प्रतियोंमें से फाड़कर निकाल दिया गया था?

उत्तर: मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं।

प्रश्न: क्या आप जानते हैं कि सनातन धर्म सभाने बाकी प्रतियोंको डिप्टी कमिश्नरके पास भेज दिया था और वे वहाँ जला दी गई थीं?

उत्तर: हाँ, बाकी प्रतियाँ अदालतमें भेज दी गई थीं और वे वहाँ जला दी गई थीं।

प्रश्न: क्या उस पुस्तिकाका प्रकाशक जीवनदास गिरफ्तार कर लिया गया था?

उत्तर: हाँ, साहब!

प्रश्न: क्या जीवनदासकी गिरफ्तारी काफी नहीं थी?

उत्तर: जहाँतक मेरा ताल्लुक है, यह काफी थी। जब जीवनदास हवालातमें भेजा गया था तब उसपर मुकदमा चलानेका वादा किया गया था और पुस्तिकाकी बाकी प्रतियाँ जला दी गई थीं।

प्रश्न: क्या ऐसा करनेपर मुसलमानोंकी कोई शिकायत बाकी रह गई थी?

उत्तर: शिकायतकी कोई गुंजाइश रहनी तो नहीं चाहिए।

प्रश्न: क्या आप जानते हैं कि ये प्रतियाँ कब जलाई गई थीं?

उत्तर: ३ सितम्बर, १९२४ को।

प्रश्न: क्या आप यह भी जानते हैं कि जीवनदास जमानतपर रिहा कर दिया गया था?

उत्तर: मैंने सुना था कि जीवनदास रिहा कर दिया गया है। वह जमानतपर रिहा किया गया था या किसी और तरह रिहा किया गया था, यह मैं नहीं जानता।

प्रश्न: क्या वह कोहाटसे बाहर भेज दिया गया था। और बादमें छोड़ दिया गया था?

उत्तर: हाँ।

प्रश्न: क्या इससे मुसलमान नाराज हुए थे?

उत्तर: हाँ; मुसलमान डिप्टी कमिश्नरने यह वादा किया था कि जीवनदासपर मुकदमा चलाया जायेगा; वह फिर भी छोड़ दिया गया। इससे मुसलमान आग बबूला हो गये थे।

प्रश्न: क्या इसपर मुसलमानोंका कोई जलसा हुआ था?

उत्तर: मैंने सुना था कि इसपर ८ सितम्बरकी रातको मुसलमानोंका एक जलसा हुआ था।

प्रश्न: क्या मुसलमान वहाँ बड़ी संख्यामें इकट्ठे हुए थे और ९ सितम्बरकी रातको डिप्टी कमिश्नरके पास गये थे?

उत्तर: हाँ, साहब!

प्रश्न: क्या आप उस जलसेमें मौजूद थे?

उत्तर: मुझे उसकी कोई इत्तिला नहीं मिली थी।

प्रश्न: क्या आपको उसके तथ्योंकी जानकारी केवल सुनी-सुनाई बातोंसे मिली?

उत्तर: हाँ, साहब; मैंने भीड़ बाजारसे गुजरती हुई देखी थी। उसमें से कुछ लोग डिप्टी कमिश्नरके पास जा रहे थे और कुछ उनके पाससे आ रहे थे। मैंने बाजार जाते समय भीड़ टाउन हालके पास देखी थी।

प्रश्न: भीड़में कितने आदमी थे?

उत्तर: भीड़में करीब १५०० आदमी होंगे। ९ सितम्बरको बाजारमें हड़ताल थी। हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंकी दूकानें बन्द थीं; जहाँ-तहाँ कुछ सिख अपनी दूकानोंके सामने खड़े थे। उनको दूकानें खोलनेके लिए मजबूर किया गया था।

प्रश्न: यह किस समयकी बात है?

उत्तर: में शहरमें ९ बजे गया था। जब में ११.३० बजे लौटा तब सभी दूकानें बन्द हो गई थीं।

प्रश्न: क्या आपने भीड़को, जब वह डिप्टी कमिश्नरके पास जा रही थी और जब वह वहाँसे लौट रही थी, दोनों बार देखा था?

उत्तर: मैंने दोनों ही वक्त उसे देखा था। जब यह लौट रही थी तब मैं छावनी दरवाजेके अन्दर था और जब जा रही थी तब टाउन हालके पास था।

प्रश्न: भीड़ किस ओर जा रही थी?

उत्तर: ९ बजे टाउन हालकी ओर जा रही थी।

प्रश्न: क्या आपने भीड़के किसी आदमीसे बातचीत की थी?

उत्तर: मैंने शहरसे लौटते समय कुछ लोगोंसे बातचीत की थी।

प्रश्न: आपने किस तरहकी बातचीत की थी और आपको क्या जवाब मिला था?

उत्तर: मैंने पूछा कि मामला क्या है और लोग कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा कि वे यह पूछनेके लिए डिप्टी कमिश्नरके पास जा रहे हैं कि जीवनदासको क्यों छोड़ दिया गया और ११ तारीख मामलेकी सुनवाईके लिए निश्चित करनेपर भी उनको दिया गया वादा क्यों तोड़ दिया।

प्रश्न: क्या आपने सिर्फ यही बातचीत की थी?

उत्तर: कुछ और भी बातचीत की थी। लेकिन वह लगभग इसी तरहकी थी।

प्रश्न: क्या आपने उन्हें ऐसा करनेसे रोकनेकी कोशिश की थी और उनपर आपकी कोशिशोंका कोई असर पड़ा था?

उत्तर: मैंने उन्हें कहा था कि कमसे-कम हमें (हिन्दुओं और मुसलमानोंको) इस तरहका व्यवहार नहीं करना चाहिए। आपसमें झगड़नेसे हम तीसरे पक्षको (सरकारको) अपने कामोंमें हस्तक्षेप करनेका मौका देते हैं। लेकिन मेरे कहनेका उनपर कोई असर नहीं पड़ा।

प्रश्न: क्या आपको ९ तारीखकी घटनाओंकी कोई जानकारी है?

उत्तर: उस दिन मैं अपने घरमें था। मैंने सुना था कि बाजारमें गोली चली है जिसके फलस्वरूप एक मुसलमान मारा गया है और अब वहाँ आगजनी की जा रही है।

प्रश्न: आपने यह सब अफवाहोंसे जाना या ये घटनाएँ खुद जाकर देखीं?

उत्तर: मैंने सिर्फ इसकी चर्चा ही सुनी, लेकिन लपटें और धुआँ देखे जा सकते थे और गोलियोंकी आवाजें सुनी जा सकती थीं।

प्रश्न: जब आप लगभग साढ़े ग्यारह बजे कोहाटमें थे और आपने भीड़ देखी तब क्या गाँवोंके कुछ लोग भी वहाँ मौजूद थे?

उत्तर: गाँवका कोई बाहरी आदमी शहरमें मौजूद नहीं था।

प्रश्न: क्या टाउन हालके पास भीड़में गाँवोंके लोग थे?

उत्तर: भीड़में गाँवोंके करीब एक तिहाई लोग थे।

प्रश्न: क्या आप १० सितम्बरको कोहाट गये थे?

उत्तर: मैंने ९ तारीखकी शामको अपना आदमी अपने दोस्तों और रिश्तेदारोंके लिए कुछ चीजें लेने शहर भेजा था। उसने आकर यह खबर दी कि शहरमें अमन कायम कर दिया गया है; हिन्दुओंके मुकाबले मुसलमान ज्यादा मारे गये हैं और बाजारमें आग अब भी पहलेकी तरह जल रही है।

मैं दस तारीखको अपनी कारमें स्कूलके दरवाजेसे अन्दर गया। फौजने शहरकी दीवारके चारों ओर दुहरा घेरा डाल रखा था। मैंने वहाँ तैनात यूरोपीय अधिकारी (इन्चार्ज)से शहरमें जानेकी इजाजत ली। मैंने वहाँ पहुँचनेपर देखा कि वहाँ पूरी तरहसे अमन कायम है। मैंने शहरकी दीवारमें बहुत-सी दरारें देखीं। मैं जैसे ही कारमें तहसीलके दरवाजेपर पहुँचा, मैंने गोलियाँ चलनेकी आवाजें सुनीं। वह दिन कयामतके दिनका नमूना था। यह हालत १० बजेसे लेकर १ बजेतक बनी रही।

प्रश्न: कयामतके नमूनेसे आपका क्या मतलब है?

उत्तर: मेरा मतलब है कि अगर कोई व्यक्ति भीड़के हाथोंमें पड़ता तो वह लूट लिया जाता और कत्ल कर दिया जाता। लोगोंके घरोंमें आग लगाई जा रही थी। हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनोंके ही घर जलाये जा रहे थे। पुरानी दुश्मनी निकालनेके लिए मौकेका फायदा उठाया गया था। सभी शरीफ लोगोंने अपनी जानके डरसे अपने घरोंमें पीछे पनाह ले ली थी और किवाड़ बन्द कर लिये थे।

प्रश्न: क्या आप एक बजे वापस आ गये थे?

उत्तर: मैं १०.३० बजे वापस आ गया था। लेकिन मैं अपने गाँवके पासकी एक टेकरीपर चढ़कर यह नजारा देख रहा था।

प्रश्न: आपने कहा कि आपने ९ तारीखको कुछ खौफनाक नजारे देखे थे?

उत्तर: हाँ, ९ तारीखको मैंने एक या दो निहत्थे हिन्दुओंको कत्ल किये जाते देखा था।

प्रश्न: ये कत्ल कहाँ किये गये थे?

उत्तर: इनमें से एक तो शाही रोड, अर्थात् भागी कोहाट रोडपर किया गया था और दूसरा चरौदाकी तरफ।

प्रश्न: क्या ये लोग पैदल राहगीर थे?

उत्तर: मुझे बादको मालूम हुआ कि उनमें से एक मोटरमें पेशावरकी ओर जा रहा था और वह मोटरसे बाहर निकाल कर कत्ल किया गया था। मैंने उसकी लाश वहाँ पड़ी देखी थी।

प्रश्न: उसे किसने कत्ल किया था?

उत्तर: मेरे खयालमें कातिल बाहरके गाँवोंके लोग थे और कोहाटके आसपास नहीं रहते थे। क्योंकि उसी मोटरमें हिन्दू सज्जनके अलावा दो मुसलमान भी थे। उनमें से एक तो खान बहादुर गुल्ली खाँका भतीजा था जो ई० ए० के तौरपर कोहाटमें सालों रहा था। अगर ये लोग कोहाट या उसके आसपासके गाँवोंके होते तो वे खानबहादुरके भतीजेको पहचान जाते या खान बहादुरका भतीजा ही उन्हें पहचान लेता।

प्रश्न: खान बहादुरके भतीजेके अलावा दूसरा मुसलमान कौन था?

उत्तर: दूसरा मुसलमान इस्लामिया कालेजका एक प्राध्यापक था। उसके अलावा एक ड्राइवर भी था। कहनेका मतलब यह है कि मोटरमें ड्राइवरके अलावा तीन आदमी और थे। हिन्दू उनमें से एक ही था जो मारा गया।

प्रश्न: क्या ये तीन मुसलमान जो उस हिन्दूके साथ मोटरमें थे उसे नहीं बचा सकते थे?

उत्तर: ये तीनों उसे नहीं बचा सकते थे, क्योंकि हमलावर बहुत ज्यादा थे।

प्रश्न: आपने एक दूसरे हिन्दूके कत्ल किये जानेका जिक्र किया। क्या आप उसके बारेमें कुछ बता सकते हैं?

उत्तर: मैंने सिर्फ उसकी लाश खेतमें पड़ी देखी थी। मैं उसे पहचान नहीं सका।

प्रश्न: क्या आपने पहले कत्ल किये गये दूसरे हिन्दूको पहचान लिया था?

उत्तर: मैंने जब उसकी लाश सड़कपर पड़ी देखी तब जाते वक्त उसके बारेमें सारी बातें पूछी थीं। मैं नहीं जानता कि मेरे वहाँसे गुजरनेके कितने घंटों पहलेसे उसकी लाश वहाँ पड़ी थी।

प्रश्न: क्या आपने कोई ऐसे मन्दिर भी देखे जो जला दिये गये थे?

उत्तर: हिन्दुओंके रावलपिण्डी चले जानेके बाद मैंने देखा था कि कुछ मन्दिरोंके कुछ हिस्से जला दिये गये हैं। उनमें से एक था मण्डीका मन्दिर। उसके पासकी इमारत भी जिसमें बैठकर हमने अमनकी बातचीत की, जला दी गई थी।

प्रश्न: क्या आपने कोई जला हुआ गुरुद्वारा भी देखा?

उत्तर: हमने झरनोंके सामनेका गुरुद्वारा जला हुआ देखा था। कुछ महीने पहले इस गुरुद्वारेके बारेमें हिन्दुओं और सिखोंमें झगड़ा हुआ था। हिन्दुओंका दावा

था कि यह उनका मन्दिर है और सिख कहते थे कि यह उनका गुरुद्वारा है। कुछ हिन्दू साधु इस गुरुद्वारेमें बैठते और चरस पीते थे, इसपर सिखोंने घोर आपत्ति की। इसके बाद सिख बड़ी संख्यामें वहाँ आये और उन्होंने साधुओंको गुरुद्वारेसे निकाल दिया और उसपर कब्जा कर लिया। इसके कारण पुलिसका एक थानेदार कुछ सार्जेन्टों और पुलिस सिपाहियोंके पूरे दलके साथ कई हफ्तों वहाँ पड़ा रहा ताकि झगड़ा न हो, क्योंकि गुरुद्वारा शहरसे बाहर था।

दोनों कौमोंके सम्माननीय नेताओंसे अमन और नेकचलनीकी जमानतें जमा कराई गई थीं और मुचलके लिये गये थे। मैंने खुद कब्रिस्तानके सामनेका अपना एक जमीन-का टुकड़ा उस साधुको दिया था। इस साधुने एलान किया था कि मैं जबतक उस गुरुद्वारेको नहीं जला दूँगा, तबतक वहाँसे नहीं जाऊँगा। दंगोंके दौरान वह साधु दो सम्मानित हिन्दू नेताओंके साथ, जिन्होंने उसके पास पनाह ली थी, दो दिनतक वहाँ रहा और उसने अपने जीवनको खतरेमें डाल कर दूसरे दो हिन्दुओंके जीवनकी रक्षा की। मैंने बादमें सुना कि कुछ सिख सज्जनोंने पुलिसमें रिपोर्ट की है कि लोगोंने उस साधुके उभाड़नेसे गुरुद्वारा जलाया है, इसलिए पुलिसने उस साधुको वहाँसे हटा दिया और जिलेसे बाहर भेज दिया।

प्रश्न: क्या आपने इस गुरुद्वारेके अलावा कोई और मन्दिर या गुरुद्वारा ऐसा देखा है जो जला दिया गया हो?

उत्तर: मैंने नहीं देखा। (याद दिलानेपर गवाहने स्वीकार किया कि थान जोगराम भी जो लगभग लकड़ीका बना हुआ था, जलाया गया है।)

प्रश्न: क्या आप जानते है कि ९ और १० तारीखको कितने हिन्दू और कितने मुसलमान मारे गये थे?

उत्तर: मैं ऐसे किसी हिन्दूको नहीं जानता जो उस रात शहरमें मारा गया हो। (मुसलमानोंमें से) ३ लोग मारे गये थे और ३ या ४ घायल हुए थे। इनमें दो लड़के भी शामिल हैं।

प्रश्न: क्या आप लड़कोंकी उम्र जानते हैं?

उत्तर: मैंने सुना है कि एक लड़केकी उम्र १० या ११ सालकी थी।

प्रश्न: उनमें से एक बच्चा था या दोनों बच्चे थे?

उत्तर: दोनों बच्चे थे—एककी उम्र १० या ११ सालकी थी और दूसरा उससे कुछ बड़ा था।

प्रश्न: क्या आपको १० सितंम्बरके हताहतोंके बारेमें कोई जानकारी है?

उत्तर: बाकी सभी हताहत १० सितम्बरके हैं। आठ मुसलमान मारे गये थे। घायलोंकी संख्या इससे ज्यादा थी। लेकिन हिन्दुओंमें हताहतोंकी संख्या मुसलमानोंसे ज्यादा थी।

प्रश्न: हिन्दू कोहाटसे रावलपिंडी कब पहुँचे?

उत्तर: ग्यारह तारीखको रायबहादुर मथुरादास और रायबहादुर ईश्वरदासने मुझे खबर भेजी थी कि वे कमर्शियल हाउसमें रह रहे हैं और मैं उन्हें रेलवे स्टेशन पहुँचा दूँ। मैं वहाँ दो मोटरें लेकर गया और सात फेरोंमें उनको और उनके रिश्तेदारोंको रेलवे स्टेशनपर पहुँचा आया। कमर्शियल हाउसमें और सड़कोंपर पड़े हिन्दुओंकी हालत बहुत खराब थी। उनकी औरतें भी सड़कोंके किनारे बुरी हालतमें बैठी थीं। सरकारने न तो उनके रहनेका इन्तजाम किया था और न उन्हें रेलवे स्टेशन पहुँचानेका।

प्रश्न: वे कमर्शियल हाउसमें कब गये थे?

उत्तर: मुझे उनसे मालूम हुआ कि वे कमर्शियल हाउसमें १० सितम्बरको गये थे।

प्रश्न: हिन्दू कहते हैं कि ९ और १० सितम्बरके बीच बहुतसे हिन्दुओंको जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया। क्या आप इस बारेमें कुछ जानते हैं?

उत्तर: मेरे खयालमें कोई भी हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान नहीं बनाया गया था, लेकिन कुछ हिन्दुओंने मुसलमानोंके यहाँ पनाह ली थी। उन्हें यह महसूस हुआ कि उनकी जिन्दगी खतरेमें है इसलिए उन्होंने खुद दरखास्त की थी कि उनकी चोटी काट दी जाये और हिन्दुत्वके अन्य चिह्न हटा दिये जायें। उनको पनाह देनेवालोंने यह महसूस किया कि हिन्दुओंकी जिन्दगी सचमुच खतरेमें है इसलिए उन्होंने उनकी चोटियाँ काट दीं और यह जाहिर कर दिया कि वे मुसलमान हो गये हैं।

प्रश्न: आपने एक और तरीकेका भी जिक्र किया था?

उत्तर: उस तरहकी कोई घटना शायद हुई, हो किन्तु किसी ऐसी घटनाकी मुझे जानकारी नहीं है जब किसी मुसलमानने किसी हिन्दूकी जान बचानेके लिए उसे मुसलमान हो जानेकी सलाह दी हो और उसकी चोटी काटी हो। फिर भी मैं विश्वास कर सकता हूँ कि ऐसी घटना हुई होगी।

प्रश्न: आप ऐसा विश्वास क्यों करते हैं कि कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंको शायद सलाह दी हो कि वे अपनी जान बचानेके लिए मुसलमान बन जायें?

उत्तर: सिर्फ इसलिए कि गाँवोंके लोग अशिक्षित थे और उनसे हिन्दुओंकी जानें बचाना एक मुश्किल बात थी।

प्रश्न: क्या आप इस तरह मुसलमान बनाये गये आदमीको मुसलमान समझते हैं?

उत्तर: जबतक इस तरहका आदमी शान्तिके वातावरणमें अपनी स्वतन्त्र इच्छासे एलानिया यह नहीं कहता कि वह मुसलमान है तबतक वह मुसलमान नहीं समझा जा सकता।

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०५३०) से।

३९. कोहाटके दंगोंके बारेमें अहमद गुलसे जिरह[1]

[रावलपिंडी]
६ फरवरी, १९२५

प्रश्न: मौलवी साहब, आपका नाम?

उत्तर: मेरा नाम अहमद गुल है।

प्रश्न: आप क्या काम करते हैं?

उत्तर: मैं दाँतोंका डाक्टर हूँ।

प्रश्न: आप खिलाफत समितिके मन्त्री कबसे है?

उत्तर: १९२२ से।

प्रश्न: आप कोहाटमें कबसे रहते है?

उत्तर: मैं वहीं पैदा हुआ था।

प्रश्न: आपके विचारमें कोहाटके दंगोंका क्या कारण है?

उत्तर: मैं कुछ बातोंमें तो पीर कमाल साहबसे सहमत हूँ, लेकिन कुछमें मेरा उनसे मतभेद है। मेरे विचारमें दंगोंका कारण वह पुस्तिका थी।

प्रश्न: पुस्तिकाको छोड़कर कोई और कारण भी था या नहीं?

उत्तर: एक और घटना भी हुई थी। मेरे जीवनमें इस प्रकारके दो ही अवसर आये हैं जबकि मुसलमान बड़ी संख्यामें सरकारके पास गये हैं। एक अवसर तो सरदार माखनसिंहके बेटेके मामलेमें आया था और दूसरा पुस्तिकाके मामलेमें आया। इन अवसरोंके अलावा किसी भी अन्य अवसरपर इस प्रकारकी उत्तेजना नहीं फैली; न तो कभी मुसलमान इकट्ठे हुए और न कभी ऐसा कोई दंगा हुआ।

प्रश्न: क्या आप केवल इन दो घटनाओंको ही दंगोंका कारण मानते हैं?

उत्तर: कुछ आपसी मतभेद भी थे।

प्रश्न: सरदार माखनसिंहके बेटेका मामला क्या था?

उत्तर: लोगोंमें एक आम अफवाह थी कि सरदार माखनसिंहके बेटेका अपने मालीकी औरतसे अनुचित सम्बन्ध है। वह लाहौर चला गया और उसके साथ ही वह मालिन भी चली गई। इससे लोगोंमें बहुत सनसनी फैली। पठान जाति इस तरहके कामको नफरतकी निगाहसे देखती है, चाहे वह किसी मुसलमानने ही क्यों न किया हो। इसीलिए सरकार भी अपराधीको सख्त सजा देती है और चाहे वह मामला दो मुसलमानोंका ही क्यों न हो, लोग उससे उत्तेजित हो जाते हैं। सरदार माखनसिंहके बेटेके मामलेमें सरकारने कोई ध्यान नहीं दिया; यद्यपि इस बारेमें

१. इसकी उपलब्ध प्रति दोषपूर्ण है अतः आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं संशोधन करके उसका अनुवाद किया गया है।

उसके पास एक शिष्टमण्डल भेजा भी गया था। मेरे कहनेका मतलब यह है कि सरदारके लड़केको दण्ड नहीं दिया गया और मालीको न्याय नहीं मिला। जब कोई हिन्दू या सिख ऐसा करनेका दुस्साहस करता है तब मुसलमानोंको बहुत आघात लगता है। यह भी अफवाह थी कि सरदार माखनसिंहने मालीको कुछ रुपये देकर चुप कर दिया है। यह बात भी फैलाई गई थी कि सरदार माखनसिंहने दूसरे अवसरोंपर भी रुपये देकर अपना बचाव किया है।

प्रश्न: यह वाकया कब हुआ था?

उत्तर: लगभग एक साल पहले अर्थात् पुस्तिकाकी घटनासे पूरे एक साल पहले जब जीवनदास गिरफ्तार करके हवालातमें रखा गया था तब सरदार माखनसिंह गैर-सरकारी निरीक्षकके रूपमें जेलमें गये थे। जेलके सुपरिंटेंडेंटने निरीक्षकके रूपमें उनके व्यवहारकी शिकायत की थी, क्योंकि उन्होंने जेलकी व्यवस्थामें हस्तक्षेप किया था। सुपरिंटेंडेंटने जीवनदासको काल कोठरीमें रखा था; लेकिन सरदार साहबने कहा कि उसे वहाँसे निकाल लिया जाये। चूँकि जीवनदासकी लड़कीकी सगाई सरदार माखनसिंहके लड़केसे हुई थी, इसलिए यह अफवाह भी फैल रही थी कि सरदार साहब जीवनदासको कुछ ही घंटोंमें रिहा करा देंगे। इसके बाद जब पहली बार गोली चली तब सबसे पहली बात यह सुनी गई कि सरदार साहबके मकानके सामने लड़के मारे गये हैं। पिछली बातें तो थीं ही, फिर जीवनदासकी रिहाई और सरदार साहबके मकानके सामने गोली चलनेसे मुसलमान उत्तेजित हो गये। और मेरे विचारमें दंगेका कारण यही है।

प्रश्न: यह अफवाह फैलाई किसने कि सरदार साहब और उनके लड़केने गोली चलाई?

उत्तर: जब मैं अदालतमें था और लोगोंको यह आश्वासन दिया जा रहा था कि जीवनदासपर मुकदमा चलाया जायेगा तब दूसरे हिन्दुओंके खिलाफ हमारी कोई शिकायत नहीं थी। जब अदालतने अपराधीके खिलाफ कार्रवाई करनेका फैसला किया, तब मुसलमान सन्तुष्ट हो गये। अभी आरोपका आधार तैयार किया जा रहा था कि इतनेमें ही खबर मिली कि बाजारमें गोली चल गई है। अहमद खाँने मुझे खबर दी और मुझे साथ लेकर कारमें घटना-स्थलकी ओर रवाना हो गये। कारमें हमारे अलावा तीन मुसलमान और थे। हम छावनी दरवाजेसे शहरमें घुसे और अभी हम सरदार साहबके घरसे पचास कदम इधर ही थे कि हमें पचास साठ आदमियोंकी एक भीड़ मिली। ये लोग हमें रोकनेके लिए आये थे। उन्होंने हमसे कहा कि हमें आगे नहीं जाना चाहिए, क्योंकि गोली चल रही है। एक लड़का सरदार माखनसिंहके बालाखानेके पास मरा पड़ा है और एक आदमी घायल हो गया है। इसपर कार पीछे-ही-पीछे कोतवाली ले जाई गई। वह घुमाई नहीं जा सकी क्योंकि वहाँ इतनी जगह नहीं थी। कोतवाली वहाँसे करीब सौ कदम होगी।

प्रश्न: क्या आप वहाँ गये थे, जहाँ गोली चली थी?

उत्तर: नहीं, वहाँ मैं नहीं गया। मेरा साथी और मैं कारसे उतर गये और अहमद खाँ वापस चले गये। जब मैं कोतवालीसे अपने घर जा रहा था, तब सब ओरसे गोलियाँ चल रही थीं और कुछ लोग शहरमें भी घुसने लगे थे। मैं इस भयानक स्थितिमें घर चला गया; मेरी तबीयत भी ठीक नहीं थी, किन्तु मैंने बादमें सुना कि बाजार जलाया जा रहा है और तीन मुसलमान मारे गये हैं, तीन घायल हो गये हैं।

प्रश्न: क्या आपने उस वक्त किसी हिन्दूके मारे जाने या घायल होनेकी बात भी सुनी थी?

उत्तर: मैंने हिन्दुओंके बारेमें भी पूछताछ की थी, किन्तु मुझे किसी हिन्दूके मारे जाने या घायल होनेकी खबर नहीं मिली। वह रात शान्तिसे बीती।

प्रश्न: यह घटना कब हुई थी?

उत्तर: यह ९ सितम्बरको हुई थी।

प्रश्न: जब आप मोटरमें थे और आपको गोली चलनेकी खबर मिली थी तब क्या अहमद खाँ भी वहाँ गये थे?

उत्तर: अहमद खाँ गोली चलनेकी जगहपर नहीं गये थे। वे वापस चले गये थे।

प्रश्न: आप बाजार कब गये थे?

उत्तर: जब मैं अहमद खाँके साथ बाजार गया था, तब करीब डेढ़ बजा था।

प्रश्न: इसके अलावा आप किसी दूसरी घटनाका जिक्र भी कर रहे थे जो सरदार साहबके मामलेसे पूर्व घटी थी।

उत्तर: वे मामूली बातें हैं। और यहाँपर जिक्र करने लायक नहीं हैं।

प्रश्न: पीर साहबने कहा है कि हिन्दू लोग चार-पाँच सालसे मुसलमान बनाये गये हिन्दुओंके मामलेमें अदालती कार्रवाई कर रहे हैं। इससे मुसलमानोंको बहुत सदमा पहुँचा है। क्या आप भी इस बातसे सहमत हैं?

उत्तर: चूँकि पीर साहबका ताल्लुक अन्दरूनी भागके लोगोंसे है, इसलिए हो सकता है कि देहाती लोगोंका ऐसा खयाल हो। पीर साहबकी राय चाहे जो हो, लेकिन मेरे खयालमें ऐसी बात नहीं हो सकती।

प्रश्न: पीर साहबने कहा है कि चार साल पहले हिन्दू, मुसलमान बनाये जाने-वाले हिन्दुओंकी कोई परवाह नहीं करते थे। किन्तु वे अब चार सालसे अदालतोंका सहारा लेने लगे हैं, इस मामलेमें आपका क्या खयाल है?

उत्तर: इस बारेमें उनकी रायसे मेरी राय अलग है। ऐसा सिर्फ मुसलमान बनाई गई औरतोंके बारेमें हुआ है; मर्दोंके बारेमें नहीं। जब कोई हिन्दू मुसलमान बनता है और हिन्दू उसे वापस लेनेकी कोशिश करते हैं, तब मामला ही दूसरा हो जाता है। सभीको मजहबी आजादी है। चूँकि सरहदमें मुसलमानोंकी संख्या ज्यादा है, इसलिए सरकार मुसलमानोंकी भावनाओंका खास खयाल रखती है। उदाहरणके लिए

अन्य जिलोंमें मुसलमानोंके लिए जो मांस वर्जित है वह बाजारमें बिकता है या लोग उसे लेकर खुलेआम बाजारमें आते-जाते हैं, लेकिन कोहाटमें अबतक ऐसा कभी नहीं हुआ। लेकिन इसके विपरीत जो मांस हिन्दुओंके लिए वर्जित है वह सरहदमें और खासकर कोहाटमें खुले आम बिकता है और काममें लाया जाता है।

प्रश्न : आपने पुस्तिकाकी बात कब सुनी थी?

उत्तर : मुझे इसकी बात २९ अगस्त शुक्रवारको मस्जिदमें मालूम हुई थी।

प्रश्न : आपको वह किसने बताई थी?

उत्तर : यह पुस्तिका मुझे गुलाम अयूब नामके स्वयंसेवकने मस्जिदमें दी थी। वहाँ वह एक बड़ी भीड़को साथ ले कर आया था। भीड़में उसके साथ ऐसे लोग भी थे जिनके कपड़े मस्जिदमें आनेके लिए उपयुक्त नहीं थे। ये लोग इसीलिए मस्जिदके बाहर ही ठहर गये थे।

प्रश्न : स्वयंसेवकने क्या किया?

उत्तर : उसने मुझे बताया कि इस पुस्तिकाके कारण बाजारमें बहुत हंगामा है और ये लोग आम मुसलमान जनतासे इस बारेमें सलाह लेना चाहते हैं और ऐसा कदम उठाना चाहते हैं, जिससे लोग शान्त किये जा सकें।

प्रश्न : आपने फिर क्या किया?

उत्तर : मैंने उस पुस्तिकाको हाथमें ले लिया। लोग सब ओरसे मुझसे कह रहे थे कि मैं उस कविताको, जिसे वे पहले भी सुन चुके थे, पश्तोमें पढ़ कर सुना दूँ, क्योंकि वे यह मालूम करना चाहते थे कि आखिर उसमें क्या बात कही गई है। मैंने मजमेके सामने उसका उल्था पश्तोमें किया। साथ ही उनके जोश और इरादेको देखते हुए, जिसका मुझे अन्दाज हो रहा था, मैंने उन्हें किसी तरहका फसाद करनेसे रोका और मलाबार, मुल्तान, सहारनपुर और अन्य जगहोंमें हुए दंगोंका जो बुरा नतीजा निकला है उसकी याद दिलाई। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि अगर वे अपने-को बसमें नहीं रख सकते तो वे इस मामलेमें भी उसी तरह सरकारके पास जायें, जिस तरह वे दूसरे मामलोंमें जाते हैं।

प्रश्न : आपका कहना है कि लोग पहले सुनी बातको फिर सुनना चाहते थे। जब वे उसे पहले ही सुन चुके थे तब वे उसे फिर क्यों सुनना चाहते थे?

उत्तर : मस्जिदमें भीड़ने ऐसा इसलिए कहा था कि उसमें से कुछ लोग तो इसकी बात जानते थे और कुछ नहीं जानते थे।

प्रश्न : लेकिन क्या भीड़ने इसकी बात पहले पहल मस्जिदमें ही सुनी थी?

उत्तर : हाँ।

प्रश्न : इसके बाद क्या हुआ?

उत्तर : इसके बाद वे लोग आपसमें कानाफूसी करते खिलाफत कमेटीके विरुद्ध षड्यन्त्र और साथ ही यह शिकायत करते देखे गये कि खिलाफती लोग धार्मिक मामलोंमें भी पिछड़ रहे हैं। उन्होंने हमसे चन्देमें हजारों रुपये लिये हैं, लेकिन जब

इस्लामकी सेवाका अवसर आया है तब संकोच कर रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा कि एक बार पहले भी पीर कमाल साहब और मने सरदार माखनसिंहसे रिश्वत लेकर मुसलमानोंकी इज्जत में बट्टा लगाया है।

प्रश्न: इसके बाद पुस्तिकाके बारेमें क्या हुआ?

उत्तर: इसके बाद २ सितम्बरको मुझे इशाकी नमाजके बाद, अर्थात् ९-३० बजे रातको सनातन धर्म सभाका एक पत्र मिला उसमें सभाके हिन्दुओंने पुस्तिकाको छापनेपर हिन्दू समाजकी ओरसे माफी माँगी थी। ३ सितम्बरको मैं वह पत्र परचगन मुहल्लेमें ले गया जहाँ मैं मातमपुरसीके लिए गया था और जहाँ विभिन्न जातियोंके लोग इकट्ठे हुए थे। मैंने उस पत्रको उनके सामने पढ़कर कहा कि सनातन धर्म सभाने इन लफ्जोंमें माफी माँगी है। जब मैंने उनके सामने पत्र पढ़ा तब उन्होंने इससे सन्तुष्ट होनेके बजाय, यह महसूस किया कि पत्रका लहजा और लिखनेका तरीका . . .[1] उनमेंसे एकने पत्रपर इस तरहकी टिप्पणी की कि जब महायुद्धमें सिपाही मारे गये तब बादशाहने शोक प्रकट किया था। यह पत्र इसी प्रकारका है। इसमें न तो माफीका कोई लफ्ज है और न इस तरहका कोई मजमून। इसके बाद सारा मजमा पुलिस सुपरिटेंडेंट और असिस्टेंट कमिश्नरके पास गया, ताकि अपराधीके खिलाफ मुकदमा चलाया जा सके। उस समय डिप्टी कमिश्नर उस्मानामें थे। असिस्टेंट कमिश्नरने हमें अदालतमें चलनेको कहा और खुद भी अदालत गया। पुलिसके सिपाही जीवनदासको लानेके लिए भेजे गये और वह हमारे सामने कमरेमें लाया गया। इसके बाद पुस्तिकाएँ भी मँगा ली गईं और वहीं असिस्टेंट कमिश्नरके सामने जला दी गईं। जीवनदास हवालातमें बन्द कर दिया गया।

प्रश्न: आपने कहा कि आप मातमपुरसीके लिए गये थे और वहाँ आपने पत्र पढ़कर सुनाया और उसे लोगोंने पसन्द नहीं किया। क्या हिन्दुओंने भी कुछ किया था?

उत्तर: मुझे मालूम हुआ था कि कुछ लोगोंने मेरी जानकारीके बिना हिन्दुओंके साथ मिलकर यह तय किया है कि इस जगहके रिवाजके मुताबिक सनातन धर्म सभाके सदस्योंको इसी निमित्त जिरगेके रूपमें बुलाई गई सभामें आना चाहिए ताकि उलेमाओंकी सलाहसे मामलेका फैसला किया जा सके।

प्रश्न: लोगोंने कहा कि पत्र सन्तोषजनक नहीं है। क्या आप इस बारेमें उनसे सहमत हो गये थे?

उत्तर: उस समय उनके रुखको देखकर मैंने यही ठीक समझा कि मैं अपनी कोई राय न दूँ। इसलिए मैंने कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

प्रश्न: लेकिन आपकी राय क्या थी?

उत्तर: मेरी राय भी वैसी ही थी। पत्रमें माफीकी कोई गन्ध नहीं थी।

१. मूलमें यहाँ खाली जगह है।

प्रश्न: जब जीवनदास गिरफ्तार किया गया और पुस्तिकाएँ जलाई गईं तब उनकी संख्या कितनी थी?

उत्तर: यह मैं नहीं कह सकता। वे शायद ५०० से ज्यादा होंगी।

प्रश्न: क्या आपको यह बात बताई गई थी कि आपत्तिजनक कविता इसमें से निकाल दी गई है?

उत्तर: इस तरहकी कुछ बात कही तो गई थी।

प्रश्न: जो प्रतियाँ अदालतमें भेजी गई थीं उनमें वह पृष्ठ नहीं था?

उत्तर: कुछ पन्ने अलग दिखाये गये थे।

प्रश्न: क्या उस पुस्तकके ऊपर कृष्णजीकी तस्वीर थी?

उत्तर: हाँ साहब।

प्रश्न: क्या किसी हिन्दूने इसपर आपत्ति की थी?

उत्तर: नहीं।

प्रश्न: क्या किसीने ऐसा कहा था?

उत्तर: सबसे पहले तो मैं ही उस पन्नेको बाहर निकालनेकी कोशिश करता क्योंकि उसपर कोई कविता नहीं थी।

प्रश्न: आप पेशावरके शिष्टमण्डलके बारेमें क्या कहते हैं?

उत्तर: पेशावरका एक शिष्टमण्डल मुझसे ४ सितम्बरको मिला था। उसके बाद खुशकिस्मतीसे सैयद सिकन्दरशाह वहाँ आ गये। हम पीर कमाल साहबके पास जा रहे थे। वे हमें रास्तेमें ही मिल गये और हम एक स्थानपर गये जो मेरे घरके पास ही था। वहाँ हमने इस मामलेपर बातचीत की। पेशावरके शिष्टमण्डल तथा इन दोनों सज्जनोंने यथासम्भव मामलेको रफादफा करनेकी कोशिश की। लेकिन लोगोंमें बड़ी उत्तेजना थी, इसलिए इस मामलेमें जो हलकी शर्तें रखता या नरम रुख अपनाता, लोग उसी पर शक करते थे।

प्रश्न: क्या आपकी बातचीत लोगोंके सामने हुई थी?

उत्तर: उस समय लोग वहाँ आ गये थे और उन्होंने मुझे इतना तंग किया था कि मुझे शिष्टमण्डलसे खानगी बातचीतका मौका ही नहीं मिला। अगर मैं उनकी रायके खिलाफ कुछ करता तो वसी ही स्थिति उत्पन्न हो जाती जैसी लोगोंने दूसरे राष्ट्रीय नेताओंके विरुद्ध उत्पन्न कर दी थी। मुझे मजबूरन उनका साथ देना पड़ा; क्योंकि अगर मैं भी उनसे अलग हो जाता तो स्थिति गम्भीर होनेका बहुत भय था। लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उनके साथ रहा इस कारण मुसलमानोंने मेरी सलाह सुनी और उपद्रवोंमें पहल नहीं की।

प्रश्न: क्या उस मजमेमें उस समय हिन्दू भी थे?

उत्तर: नहीं, हिन्दू कोई नहीं था। यह अलग बात है कि वहाँ कोई सिख खड़ा रहा हो क्योंकि जलूस आदिके समय सिख मुसलमानोंका साथ देते थे, इसलिए सिखोंके बारेमें उनका खयाल अच्छा था। वे बिना किसी रुकावटके मुसलमानोंके किसी भी जलसेमें शामिल हो सकते थे।

प्रश्न: लोग क्या चाहते थे और पेशावर शिष्टमण्डलने क्या किया था?

उत्तर: लोग यह चाहते थे कि सरकार अपराधीको ऐसी सजा दे कि भविष्यमें कोई भी हिन्दू इस प्रकारकी. . .[1] पुस्तिका छापनेका साहस न करे। किन्तु शिष्ट-मण्डल चाहता था कि हम इस मामलेको आपसमें ही तय कर लें, क्योंकि हम असह-योगी होनेसे इसे सरकारके पास ले जाना पसन्द नहीं करते थे। शिष्टमण्डलसे जो शर्तें तय हुई थीं वे ये हैं: (१) मामलेका फैसला या तो इस्लामी शर्अ (धार्मिक कानून)के मुताबिक तय किया जाये या देशकी प्रथाके अनुसार किया जाये। सनातन धर्मके सदस्य एक जिरगेमें मुसलमानोंके पास आयें। शिष्टमण्डलने, जिसमें सैयद पीर कमाल भी शामिल थे, हिन्दुओंसे बातचीत की लेकिन बादको जब ये सज्जन मुझसे मिले तब उन्होंने बताया कि हिन्दुओंके रुखके कारण उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ है।

प्रश्न: क्या उस समय पण्डित अमीरचन्द[2] भी वहाँ थे?

उत्तर: हाँ, साहब, वे भी वहाँ थे। जब शिष्टमण्डल जनताके सामने इस मामलेके बारेमें मुझसे बातचीत कर रहा था तब लोग उनका बहुत तिरस्कार कर रहे थे और खिलाफतियोंको भी गालियाँ दे रहे थे। उनके बारेमें यह अफवाह फैलाई गई थी कि उन्हें कोहाटके हिन्दुओंने घूसके तौरपर दस हजार रुपये दिये हैं; इसलिए वे लोग हमारी धार्मिक भावनाओंकी परवाह नहीं कर रहे हैं। और हमें ऐसे महत्वपूर्ण मामलेमें भी चुप रहनेकी सलाह दे रहे हैं।

प्रश्न: पीर साहबका कहना है कि जिरगेका मामला उनके सामने नहीं लाया गया।

(उनको मौलवी अहमद गुलका पिछला वक्तव्य पढ़कर सुनाया गया और सैयद पीर कमाल और दूसरे लोगोंने भी यह बात समझाई।)

प्रश्न: जब शिष्टमण्डल, सैयद साहब और पीर साहबने आपसमें बातचीत की तब उन्होंने हिन्दुओंके सामने रखनेके लिए क्या शर्तें तय की थीं?

उत्तर: हमने हिन्दुओंसे बात करना भी छोड़ दिया था, क्योंकि ऐसा करनेसे मुसलमान चिढ़ते थे। मैंने शिष्टमण्डलसे अनुरोध किया था कि वह लोगोंको, जो उस समय धर्मके गहरे रंगमें डूबे हुए थे, उनकी बात मानकर शान्त करे।

प्रश्न: आप सबने इस मामलेके बारेमें क्या सोचा था?

उत्तर: हम उस घरमें लगभग डेढ़ घंटेतक रहे। यह ५ सितम्बरकी बात है, ४ सितम्बरकी नहीं। मैं ४ सितम्बरको सिर्फ पेशावर शिष्टमण्डलसे मिला था जिसके सदस्य मेरे मेहमान थे।

प्रश्न: जब आप लोग ५ सितम्बरको इकट्ठा हुए तब आपने हिन्दुओंको सलाह देनेके बारेमें क्या फैसला किया था?

उत्तर: मैंने फैसला किया था कि मामला सरकारको सौंप दिया जाये, किन्तु शिष्टमण्डल यह नहीं चाहता था। जब शिष्टमण्डल और इन दो सज्जनोंने आपसमें बातचीत की तब कुछ भी निर्णय नहीं हुआ।

१. मूलमें यहाँ जगह खाली है।

२. पेशावरके खिलाफत शिष्टमण्डलके एक सदस्य।

प्रश्न: लोग क्या चाहते थे?

उत्तर: लोग चाहते थे कि मामला सरकारको सौंप दिया जाये। शरहके मामलेपर भी लोगोंसे बातचीत हुई। अगर हिन्दू इसे मंजूर कर लेते तो उन्हें बड़ी खुशी होती।

प्रश्न: अगर लोग दोनों विकल्पोंके लिए तैयार थे तो फ़िर उनकी बात मानकर उन्हें शान्त करानेकी क्या जरूरत थी?

उत्तर: उन्हें शान्त करानेकी जरूरत इसलिए पड़ी कि वे खुद ही बदला लेना चाहते थे। मैंने उन्हें समझाया कि वे कानूनको तोड़कर मनमानी न करें।

प्रश्न: वहाँ लोगोंको कौन लाया था?

उत्तर: वहाँ लोग खुद ही आ गये थे और उनको शिष्टमण्डलपर शक था। जब जिरगेके मामलेपर विचार किया गया तब पीर साहब वहाँ मौजूद नहीं थे।

प्रश्न: क्या हिन्दुओंको शरह और जिरगेकी बात बताई गई थी?

उत्तर: मैं वहाँ मौजूद नहीं था। सिर्फ शिष्टमण्डलने हिन्दुओंसे बातचीत की थी और वह यह उत्तर ले कर वापस आया था कि हिन्दू दोनोंमें से किसी भी शर्तको माननेके लिए तैयार नहीं हैं। शिष्टमण्डलने यह एक तीसरी शर्त भी सुझाई थी कि यह मामला खिलाफत कमेटीको सौंप दिया जाये। इसपर मैंने कहा कि खिलाफत कमेटी इस मामलेका फैसला नहीं कर सकती क्योंकि अब यह आम जनताके हाथमें चला गया है।

प्रश्न: ५ सितम्बरके बाद क्या हुआ था?

उत्तर: शिष्टमण्डल ६ सितम्बरको पेशावर वापस चला गया था। हम सब इस खयालमें थे कि जीवनदास हवालातमें है और उसपर मुकदमा चलाया जायेगा।

प्रश्न: क्या ६ और ७ सितम्बरको कोहाटमें किसी तरहकी उत्तेजना थी?

उत्तर: उन दोनों दिनोंके दौरान कोहाटमें इस तरहकी कोई बात नहीं थी। सामान्य कामकाज साधारण रूपसे चल रहा था।

प्रश्न: जीवनदास ८ सितम्बरको किस वक्त रिहा किया गया था?

उत्तर: उस दिन मैं चुरकोटा चला गया था और वहाँ नहीं था। मैं वहाँ ४ बजे शामको गया था। उस वक्त मियाँ फज़लशाह और मियाँ रहमतुल्ला मेरे यहाँ थे। मैं चुरकोटासे मगरिबकी नमाज पढ़कर लौटा था। कोहाट आते समय मुझे कुछ गाँवके लोग मिले जो अपनी जरूरी चीजें ले कर आ रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा "आप यहाँ हैं। जीवनदास रिहा कर दिया गया है, इसलिए शहरमें बड़ी उत्तेजना फैली हुई है। लोग हजरत हाजी बहादुरकी मस्जिदमें इकट्ठा हो रहे हैं।" इसपर मैं मस्जिदमें गया। उस समय रातके ८-४५ बजे थे। मैंने देखा कि मस्जिदके बाहर और भीतर लोगोंका एक मजमा है और वह डिप्टी कमिश्नर द्वारा जीवनदासकी ११ सितम्बरकी निश्चित तारीखसे पहले रिहा करनेकी कार्रवाईपर एतराज जाहिर कर रहा है। मैं मस्जिदके भीतर गया और मैंने लोगोंसे पूछा, "आप क्या चाहते हैं।"

उन्होंने उत्तर दिया, "सरकार हमारी धार्मिक भावनाका खयाल नहीं करती। हम उन लोगोंकी भी खिलाफत करते हैं जिन्होंने जीवनदासको रिहा करनेकी सलाह दी है।" यह आरोप मेरे कुछ दोस्तोंके खिलाफ भी लगाया गया था। मैंने इसका प्रतिवाद किया और मजमेको सलाह दी कि हम ९ सितम्बरको डिप्टी कमिश्नरके पास जायें और उनसे पूछें कि उन्होंने जीवनदासको समयसे पहले रिहा करनेमें क्या फायदा समझा। इसके बाद मैंने लोगोंको अपने-अपने घर जानेके लिए कहा और वे चले गये। जब वे गये तब साढ़े दस या ग्यारह बजे थे। हमने कुछ समय नमाज पढ़नेमें भी लगाया।

प्रश्न: क्या मजमेमें बहुत अधिक उत्तेजना थी?

उत्तर: हाँ।

प्रश्न: आपने कहा है कि लोग इतने गुस्सेमें थे कि उन्होंने आपकी बात नहीं सुनी और इसके बाद आपने फिर कहा है कि आपने उनके साथ जिरह की और उन्हें समझा दिया कि उनके साथ न्याय किया जायेगा। आपने यह भी कहा कि "अगर हम नाकामयाब रहे तो आप जो चाहे कर सकते हैं।"

उत्तर: हाँ। एक बार हिन्दुओंने मुसलमानोंका बहिष्कार किया था और उनसे साग और मांस खरीदना बन्द कर दिया था। इसपर मैंने हिन्दुओंकी दुकानोंपर धरनेदार बैठा दिये थे और दो दिनतक धरना दिलाया था; जिसका नतीजा यह निकला था कि हिन्दू हलवाइयोंकी मिठाइयाँ बिना बिकी रह गई थीं। यह बात दो साल पहलेकी है। तब मैंने वस्तुतः हिन्दुओंका बहिष्कार किया था। अगर हिन्दू अपना यह रुख न बदलते तो मैं मुसलमानोंसे यही तरीका अपनानेकी सिफारिश करता।

प्रश्न: क्या मुसलमानोंने जलसेमें बहिष्कार करनेकी शपथ ली थी?

उत्तर: यह सरासर गलत है।

प्रश्न: क्या वहाँ आग लगाने और लूटमार करनेके बारेमें बात नहीं चली थी?

उत्तर: बिलकुल नहीं।

प्रश्न: ९ सितम्बरको क्या हुआ था?

उत्तर: मैं टाउन हालके पासके मैदानमें लोगोंके साथ डिप्टी कमिश्नरके पास गया था।

प्रश्न: आपके साथ जानेवाले लोगोंकी संख्या क्या थी?

उत्तर: करीब २,०००।

प्रश्न: क्या भीड़में गाँवोंके लोग भी थे?

उत्तर: नगरपालिकाकी हदके अन्दरके गाँवके लोग थे।

प्रश्न: क्या दूरकी जगहोंके लोग नहीं थे?

उत्तर: उसमें बहुत दूरकी जगहके लोग नहीं थे।

प्रश्न: आपने फिर क्या किया?

उत्तर: हम खुले मैदानमें इकट्ठे हो गये और डिप्टी कमिश्नर टाउन हालमें चला गया। अधिकारी और दूसरे लोग भी मौजूद थे। उन्होंने मुझे अन्दर बुलाया; लेकिन भीड़के लोगोंने कहा कि वे खुले मैदानमें बातचीत सुनना चाहते हैं।

प्रश्न: क्या आप शिष्टमण्डलके नेता थे?

उत्तर: हाँ, मैं नेता था। और उनकी मर्जीके मुताबिक मैंने भी कहा कि हमें खुलेमें ही बातचीत करनी चाहिए। आखिर डिप्टी कमिश्नर दूसरे अधिकारियोंके साथ बाहर आया और उसने लोगोंको सम्बोधित करके पूछा, 'मुझसे कौन बातचीत करेगा?' सबने मिलकर मेरा नाम पेश किया। मैंने डिप्टी कमिश्नरसे बातचीत की और पूछा, "आपने जीवनदासको समयसे पहले क्यों रिहा कर दिया। इससे लोग उत्तेजित हो गये हैं, इसलिए आप उनसे बातचीत करके उनकी उत्तेजनाको दूर करें।" उन्होंने जवाब दिया कि मैंने उसे इस खयालसे जमानतपर रिहा कर दिया है कि निश्चित तारीखको बहुत ज्यादा लोग आयेंगे और अपराधी शायद संकटमें पड़ जाये। मैंने कहा, "आपको जो करना था वह आपने किया, लेकिन अब लोगोंकी माँग है कि पुस्तिकाके प्रकाशक-अपराधीको जेल भेजा जाये और ऐसा तभी हो सकता है जब हमारी मौजूदगीमें हमें सन्तुष्ट करनेके लिए कोई कार्रवाई शुरू की जाये।" डिप्टी कमिश्नरने इसे मंजूर कर लिया और असिस्टेंट कमिश्नरसे कहा कि वह जीवनदासके मामलेको अपने हाथमें ले और कार्रवाई शुरू कर दे। इसके बाद, जैसा मैंने पहले बताया, सारी भीड़ अदालतके भीतर पहुँच गई।

प्रश्न: क्या डिप्टी कमिश्नरका हुक्म भीड़को बता दिया गया था?

उत्तर: मेरी बातचीतके उत्तरमें डिप्टी कमिश्नरका जो भी जवाब होता था मैं उसी वक्त उसे भीड़को बता देता था। अन्तमें मैंने भीड़से कहा, "डिप्टी कमिश्नरने आपकी माँग मंजूर कर ली है। इसके बाद कुछ लोग तो तितर-बितर हो गये, और जो बाहरसे आये थे वे अपने घरोंको चले गये। बाहरसे मेरा मतलब नगरपालिकाके क्षेत्रमें बसे गाँवोंसे है। कुछ लोग अदालत चले गये।

प्रश्न: क्या इन लोगोंके हाथोंमें लाठियाँ और कुल्हाड़ियाँ भी थीं?

उत्तर: कुछ लोगोंके पास छड़ियाँ थीं और कुछके पास बाँसकी लाठियाँ। एक या दोके पास उस जगहके रिवाजके मुताबिक कुल्हाड़ियाँ भी थीं। सरहदी इलाकेमें लोग शौकिया कुल्हाड़ियाँ लिये रहते हैं।

प्रश्न: क्या किसीके पास बन्दूक नहीं थी?

उत्तर: बन्दूक किसीके पास नहीं थी। अगर बन्दूक होती तो डिप्टी कमिश्नर भीड़में न आता।

प्रश्न: यह कार्रवाई कब समाप्त हुई थी?

उत्तर: यह १२ बजे दोपहरको समाप्त हुई।

प्रश्न: आप डेढ़ बजे मोटरमें गये थे?

उत्तर: हाँ।

प्रश्न: क्या सरदार माखनसिंहका बाग शहरसे बाहर है?

उत्तर: वह अदालतके नजदीक है।

प्रश्न: क्या वह उस दिन जला दिया गया था?

उत्तर: मुझे पीछे मालूम हुआ था कि पहले दिन बच्चोंने बागके फल तोड़े थे और फलदार दरख्तोंको ज्यादातर खराब कर डाला था। उन्होंने उसके छोटे पौधे भी उखाड़ फेंके थे। इसके बाद दूसरे या तीसरे दिन मैंने यह भी सुना कि उनका बागमें बना घर जला दिया गया है।

प्रश्न: हिन्दू लोग कहते है कि यह घर ९ तारीखको जलाया गया था।

उत्तर: मेरी जानकारीके मुताबिक यह ९ तारीखको नहीं जलाया गया इसका मुझे पूरा विश्वास है।

प्रश्न: क्या कोहाटमें लूटमार और आगजनी ९ तारीखको शुरू हुई थी?

उत्तर: बाजारमें शुरू हुई थी। जब मैं वहाँसे रवाना हुआ था तब तो सब-कुछ ठीक था। हिन्दुओं और मुसलमानोंके घर जलाये और लूटे गये थे।

प्रश्न: क्या आप ९ तारीखको अपने घरके अन्दर रहे?

उत्तर: मैं बाहर नहीं निकला। लोग मेरे पास आ रहे थे और मुझे खबर दे रहे थे।

प्रश्न: ९ तारीखको किस वक्ततक लूटमार और आगजनी जारी रही?

उत्तर: मेरा खयाल है कि ९ तारीखको बाजार दो घंटेके अन्दर जला दिया गया। राततक लपटें उठ रही थीं। दूसरे दिन भी धुआँ निकल रहा था। उसी वक्त मैंने सुना कि लूटमार हो रही है।

प्रश्न: आगजनी कब शुरू हुई?

उत्तर: मुझे बताया गया था कि ढाई बजे आगकी लपटें देखी गई थीं।[1]

प्रश्न: आपने कहा कि आपने गोली चलनेकी खबर ९ तारीखको अदालतमें सुनी थी और उसे सुनकर आप मोटरमें आये थे। गोलियाँ कहाँसे आती हैं, यह आपने खुद देखा था या किसीसे सुना था?

उत्तर: यह मैंने नहीं देखा था। मरे बच्चे भी मैंने नहीं देखे थे। सरदार साहबके मकानकी ऊपरी मंजिलसे गोली चली है और इसके फलस्वरूप एक लड़का मर गया है, एक आदमी घायल हुआ है, यह बात मुझे तभी बताई गई थी।

प्रश्न: क्या आपने इसके बारेमें कोई पूछताछ की थी?

उत्तर: नहीं।

१. जिरह यहाँ, दोपहरके साढ़े बारह बजे बन्द करके फिर साढ़े छः बजे शामको शुरू की गई थी।

प्रश्न: क्या आप अब भी विश्वास करते है कि सरदार साहबने गोली चलाई थी?

उत्तर: लोगोंने मुझसे ऐसा कहा था कि सरदार साहबने, गोली चलाई है। कुछ लोग कहते थे कि एक आदमी तहसीलके पास मारा गया है। कुछ दूसरे लोगोंका कहना था कि सबसे पहले मरनेवाला यही आदमी था।

प्रश्न: क्या वह सरदार माखनसिंहकी गोलीसे मरा था?

उत्तर: मैंने यह बात सुनी थी।

प्रश्न: यह इतनी बड़ी बात थी और आपने फिर भी पूछताछ नहीं की?

उत्तर: मैंने किसी भी बातके बारेमें पूछताछ नहीं की। मैं कुछ भी सोच नहीं सका। उस वक्त मेरे दिमागकी हालत ऐसी थी कि मैं कोई राय कायम नहीं कर सकता था।

प्रश्न: आपके और सरदार साहबके सम्बन्ध कैसे हैं?

उत्तर: मेरे हिन्दुओंके साथ और सरदार साहबके साथ भी दोस्ताना ताल्लुकात रहे हैं।

प्रश्न: क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं था कि आप सरदार साहबसे पूछताछ करते?

उत्तर: हालत ऐसी थी कि मैं उनके पास नहीं पहुँच सका। मैं न तो अपनी राय ही कायम कर सका और न पूछताछ ही कर सका।

प्रश्न: जब हिन्दुओंसे आपके सम्बन्ध अच्छे थे तब क्या आपने यह बात सोची है कि मैंने जिन हिन्दुओंसे भेंट की है, वे सभी इन सारे फसादोंकी जड़ आपको ही क्यों समझते हैं?

उत्तर: मैं खुद इस रहस्यको नहीं समझ सका हूँ कि उन्होंने मेरे बारेमें ऐसी राय कैसे बनाई है। कुछ ऐसे लोग हैं जिनके पास मैं गया था और जिनकी मैंने रक्षा-का प्रबन्ध किया था और अमन कायम करनेकी कोशिश की थी। तब भी मैं इसका कारण नहीं समझ सका था और अब भी नहीं समझ सकता हूँ कि यह दोष मुझपर क्यों मढ़ा जा रहा है।

प्रश्न: क्या आपने उनकी औरतोंका बचाव किया था?

उत्तर: बहुत-सी हिन्दू औरतें एक अहातेमें आ गई थीं। उनमें एक भिखारिन भी थी। मैंने उनके लिए परदेका बन्दोबस्त किया था। मर्द हुजरा पहुँचा दिये गये थे और औरतें कुछ मर्दोंके साथ एक बड़े मकानमें भेज दी गई थीं। यह सब-कुछ १० सितम्बरको ३ बजे हुआ था। मेरे मुहल्लेके मुसलमानोंने उन हिन्दुओंसे प्रमाणपत्र ले लिये हैं जिनकी उन्होंने रक्षा की थी। मैंने तो यह भी नहीं किया।

प्रश्न: क्या आप उन हिन्दुओंको जिनकी आपने मदद की थी, पहचान सकते हैं?

उत्तर: मैंने बहुतसे लोगोंकी, जिनमें औरतें भी शामिल थीं, मदद की थी, मैं लाला रामजीमलको पहचानता हूँ। एक लड्ढाराम हैं और थानेके पीर साहब भी हैं।

प्रश्न: (लाला रामजीमलसे) क्या आप वहाँ थे?

उन्होंने उत्तर दिया कि बी० अहमद खाँ मेरे पिताके दोस्त थे। और भी मुसलमान थे जिनके साथ हमारे अच्छे ताल्लुकात थे। मैंने मौलवी अहमद गुलसे प्रार्थना की थी कि क्या वे कोई बन्दोबस्त कर सकते हैं। वे चुप हो गये। लेकिन दूसरे मुसलमानोंने उनसे कहा, "मौलवी, जो हो गया सो हो गया, अब मामला यहाँ खतम करो।" दूसरे मुसलमानोंने हमसे पूछा कि हम क्या चाहते हैं। वे हमारे बच्चोंको निकाल लाये और हम बी० अहमदके घरमें रहे। लौटनेपर मैंने मौलवी अहमद गुलसे कहा था, "मुसलमान हमारे घरोंको लूट रहे हैं, क्योंकि वे अब सूने हैं।" इसपर उन्होंने यह जवाब दिया था, "तुम डिप्टी कमिश्नर या असिस्टेंट कमिश्नरके पास जाओ, वे बन्दोबस्त कर देंगे।"

प्रश्न: आप कहते हैं कि दूसरे मुसलमान भाइयोंने १० तारीखको शरण दी थी?

उत्तर: हाँ, जंगलखेल, गढ़ी मुवाजखाँ, मुहल्ला मियाँ बादशी मियाँ खेलान तथा मुहल्ला पीर सायत-उल-असमें दी गई और डा० गुलाम सादिकने भी शरण दी थी।

प्रश्न: (यह सरदार गुरदित्तसिंहने पूछा था।) जब मौलाना साहब १० तारीखको कोतवालीमें आये थे तब मैंने उनसे कहा था कि बड़ी बरबादी हुई है। इसपर उन्होंने जवाब दिया था कि यह हालत विष्णुके मन्दिरकी हुई है। क्या वह ठीक है?

उत्तर: हाँ, यह ठीक है।

प्रश्न: क्या १० तारीखको सभी हिन्दू छावनी चले गये थे?

उत्तर: कुछ चले गये थे, क्योंकि मैं खुद तीन-चार जत्थोंके साथ गया था। सभी स्थानोंमें सुरक्षाके लिए स्वयंसेवक भेजे गये थे। हो सकता है कि एक-दो हिन्दुओंको नुकसान पहुँचा हो। मैं नहीं कह सकता। हिन्दुओंको उनके घरोंसे निकलवा कर थानेमें पहुँचा दिया गया था और सरकारको सौंप दिया गया था।

प्रश्न: सरकारको सौंप देनेसे आपका मतलब क्या है?

उत्तर: अधिकारियोंने हुक्म दिया था कि जो हिन्दू यहाँ रह गये हैं और सुरक्षित हैं, वे थानेमें इकट्ठे कर लिये जायें। डिप्टी कमिश्नरने मुझसे और पुलिससे भी यह बात कही थी। मैंने कहा था कि कुछ हिन्दू मेरे घरमें हैं।

प्रश्न: क्या डिप्टी कमिश्नरने यह बन्दोबस्त आपको सौंपा था?

उत्तर: उन्होंने मुझे ऐसा कोई खास बन्दोबस्त नहीं सौंपा था, जिसे अधिकारी कर सकते थे। सिर्फ मैं उन्हें आदमी देता था कि जो लोग बाहरसे शहरमें घुसें वे पहचाने जा सकें या कोई आदमी बाहर जाये तो यह जाना जा सके कि वह कोई सन्दिग्ध व्यक्ति तो नहीं है। सीमापर स्वयंसेवकोंके साथ पुलिस और सीमाकी पुलिस भी थी।

प्रश्न: क्या आप डिप्टी कमिश्नर या सरकारके साथ काम कर रहे थे?

उत्तर: मैंने उनसे उतना ही सहयोग किया था जितना यदि न किया जाता तो लोग ज्यादा मुसीबतमें पड़ते।

प्रश्न: क्या आप कार्यकारिणी समितिके सदस्य हैं?

उत्तर: हाँ।

प्रश्न: क्या खिलाफती लोग कार्यकारिणी समितिमें हैं?

उत्तर: उसमें चार-पाँच खिलाफती कार्यकर्त्ता हैं।

प्रश्न: कार्यकारिणी समितिका अध्यक्ष कौन है?

उत्तर: टीरीके रईस नवाबजादा बाग मुहम्मद खाँ।

प्रश्न: यहाँ आपके साथ मौजूद लोगोंमें कोई कार्यकारिणी समितिके सदस्य हैं?

उत्तर: कार्यकारिणी समितिके दो हिस्से हैं। एक दल शहरके कोहाट तहसीलके खान लोगोंका है। उसे शहरके लोगोंका दूसरा दल मंजूर नहीं करता। मेरा एक साथी कार्यकारिणी समितिका सदस्य है। मेरा ताल्लुक शहरके लोगोंसे है।

प्रश्न: कार्यकारिणी समितिका सरकारसे क्या ताल्लुक है?

उत्तर: उसका सरकारसे कोई खास ताल्लुक नहीं है। सिर्फ मुसीबतमें पड़े मुसलमानोंको राहत दिलानेके लिए और मुकदमे चलानेका बन्दोबस्त करनेके लिए इसकी स्थापना की गई है। दर हकीकत इसकी स्थापना इसलिए की गई है कि यह हिन्दुओंसे मेल-मिलाप करे, लेकिन अगर मेल-मिलाप न हो सके, तो मुसलमानोंको उनके मामलोंमें मदद करे।

प्रश्न: क्या जो समझौता अब हुआ है वह कार्यकारिणी समितिने किया है?

उत्तर: इसके सदस्य कई बार पेशावर गये थे; लेकिन कोई समझौता नहीं हुआ। जब हिन्दू कोहाट आये तब खुलकर बातचीत हुई, समझौतेकी शर्तें तैयार की गईं और दोनों दलोंने उनपर दस्तखत किये। बाहरके लोगोंने अर्थात् जिन्होंने कार्यकारिणी समिति छोड़ दी थी, उन्होंने भी दस्तखत किये हैं।

प्रश्न: जब पेशावरमें बातचीत चल रही थी तब क्या आप भी वहाँ थे?

उत्तर: मैं कार्यकारिणी समितिके साथ पेशावर हमेशा जाता था।

प्रश्न: पेशावरमें शिष्टमण्डलके कितने सदस्य मौजूद रहते थे?

उत्तर: कभी ६ और कभी-कभी तो १२ या १५ भी मौजूद रहते थे।

प्रश्न: क्या आप वहाँ प्रवक्ता थे?

उत्तर: जैसा भी मौका होता, प्रवक्ताका काम या तो नवाब साहब करते थे या पीर साहब, और कभी-कभी मैं भी बात करता था। चूँकि मैं अंग्रेजी नहीं जानता इसलिए मैं उसमें ज्यादा हिस्सा नहीं ले सकता था।

प्रश्न: कार्यकारिणी समितिका मन्त्री कौन है?

उत्तर: अब शेख अब्दुल रहमान मन्त्री हैं।

प्रश्न: क्या आप इस नये समझौतेको जबरदस्ती लादा गया समझौता समझते हैं, जिसको माननेके अलावा हिन्दुओंके लिए कोई दूसरा रास्ता न था?

उत्तर: मैं ऐसा नहीं कह सकता कि वह इस तरहका है। अधिकारियोंने इसके बारेमें कहा है कि यह हिन्दू और मुसलमान दोनोंके लिए लाभदायक है।

प्रश्न: क्या आप इसे बिना दबावके किया गया समझौता समझते हैं?

उत्तर: अगर इसमें किसी सरकारी आदमीका हाथ न होता तो मैं इसे दबावसे मुक्त समझता, लेकिन, यह समझौता डरके मारे किया गया है।

प्रश्न: क्या समझौतेपर हस्ताक्षर करानेसे पहले मुसलमान भी जेलमें बन्द किये गये थे?

उत्तर: नहीं, लेकिन हिन्दू शिष्टमण्डलके सदस्य जेलमें बन्द किये गये थे और तब उनसे समझौतेपर दस्तखत कराये गये थे। मेरे विचारमें, हिन्दुओं और मुसलमानोंके समझौतेको कोई भी क्यों न करता शर्तें इससे अच्छी नहीं हो सकती थीं; क्योंकि ये शर्तें पूरी तरह बातचीत करनेके बाद तय की गई हैं। बातचीत हिन्दू और मुस्लिम शिष्टमण्डलोंके सदस्योंके बीच हुई और शर्तें एक मतसे मंजूर की गईं।

प्रश्न: आप ऐसा क्यों कहते हैं कि इससे अच्छी शर्तें नहीं हो सकती थीं?

उत्तर: क्योंकि हालात इस तरहके थे। जीवनदास छोड़ दिया गया था और हम अपनेको मजबूर महसूस कर रहे थे। क्योंकि उसने लोगोंसे जिस तरीकेसे बर्ताव किया था उसके कारण हम उसके पक्षमें कुछ नहीं कह सकते थे। वह खुदाके सामने कसूरवार था। जब उसने शरीयतको नहीं माना तब वह अदालतको सौंप दिया गया, क्योंकि हमारे पास इसके अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था। हमें उलेमाका भय था।

प्रश्न: अगर सारे मुसलमान जीवनदासकी रिहाईकी माँग करते तो क्या सरकार फिर भी उसे हवालातमें रखती?

उत्तर: सरकारने कहा था कि वह उसपर मुकदमा चलायेगी। मैं नहीं कह सकता कि अगर मुसलमान सहमत हो जाते तो सरकार उसे रिहा करती या नहीं।

प्रश्न: गुरुद्वारेके बारेमें इस तरहकी पाबन्दी क्यों लगाई गई? क्या सिख मुसलमानोंसे इससे अच्छे बर्तावकी उम्मीद नहीं कर सकते?

उत्तर: वे उससे अच्छे बर्तावकी उम्मीद नहीं कर सकते, क्योंकि आसपास बहुतसी मस्जिदें हैं। पुराने दस्तावेजोंके मुताबिक सिख वहाँ गुरुद्वारा नहीं बना सकते। बनाते तो वह खुद-ब-खुद गिर जाता। जैसे एक मस्जिद उसके पास बनाई गई थी। वह खुद-ब-खुद गिर गई। मैं उनकी तरफसे इस बातपर सहमत हो गया था कि सिखोंको वही दरजा मिलना चाहिए जो उनको ९ तारीखसे पहले प्राप्त था। कच्ची दीवारकी शर्त इसलिए लगाई गई थी कि लोग पहली शर्तको माननेके लिए तैयार नहीं थे।

प्रश्न: १० तारीखके बाद लूटमार और आगजनीका क्या हुआ?

उत्तर: १० तारीखको गोली चल ही रही थी लेकिन लूटमार या आगजनीकी कोई घटना उसके बाद नहीं हुई।

प्रश्न: हिन्दुओंकी हानिका अनुपात या प्रतिशत क्या था, क्या आप इसके कोई अनुमानित आँकड़े दे सकते हैं?

उत्तर: मैं नहीं दे सकता।

प्रश्न: क्या हिन्दुओंकी हानि अधिक हुई थी?

उत्तर: अवश्य ही, हिन्दुओंकी हानि अधिक हुई थी।

प्रश्न: लूटका माल गाँवोंमें मिल सकता है या कोहाटमें?

उत्तर: मैं इस बारेमें कुछ नहीं कह सकता। कुछ माल जैसे कपड़ा मिला था और वह अधिकारियोंने तहसीलमें जमा कर दिया है। कह नहीं सकता कि लूटका माल कोहाटमें है। वह जरूर गाँवोंमें पहुँच गया होगा।

प्रश्न: क्या आप धर्म-परिवर्तनके बारेमें पीर साहबसे सहमत हैं? क्या इस तरहकी कोई घटना ९ और १० तारीखको हुई थी?

उत्तर: मैं उनसे सहमत हूँ। जैसा कि पीर साहबने कहा है कि ऐसी घटना उन्हीं दिनोंमें हुई थी।

प्रश्न: क्या आपका भी यह खयाल है कि हर साल १०० से लेकर १५० तक हिन्दू मुसलमान बनाये जाते हैं?

उत्तर: मैं संख्याके सम्बन्धमें उनसे सहमत नहीं हूँ। जहाँतक मैं जानता हूँ कि एक सालकी औसत संख्या ४० है। इसमें बाहरसे आये हुए लोग भी शामिल हैं।

प्रश्न: क्या औरतोंको मुसलमान बनानेके बारेमें आपका खयाल भी वैसा ही है, जैसा पीर साहबने जाहिर किया है?

उत्तर: अगर औरतको मुसलमान बनाते वक्त दबाव डाला गया हो और अगर वह दबावके कारण मुसलमान बनी हो तो मुसलमान उसे उसके हिन्दू शौहरके पास जाने देनेके लिए बाध्य हैं।

प्रश्न: अगर अदालत हिन्दू शौहरके पक्षमें फैसला देती है तो क्या मुसलमान फिर भी औरतको नहीं लौटाते?

उत्तर: मुसलमान उसे नहीं मानते और हिन्दू शौहरके साथ उसके सम्बन्धको अनुचित समझते हैं।

प्रश्न: मुसलमान औरतको छिपा सकते है या इसके लिए कोई दूसरा तरीका अपना सकते हैं?

उत्तर: यह मुसलमानोंका कर्त्तव्य हो जायेगा कि वे औरतको उसके हिन्दू शौहरके पास न जाने दें, क्योंकि मुसलमान बनते ही अपने हिन्दू शौहरसे उसका ताल्लुक खतम हो जाता है।

प्रश्न : हिन्दू वापस कोहाट कैसे जा सकते हैं?

उत्तर : जब वे दो शर्तें मंजूर करें। पहली शर्त यह है कि वे आगे इस तरह-की पुस्तिका प्रकाशित नहीं करेंगे और दूसरी यह है कि वे इस तरह गोलियाँ नहीं चलायेंगे। अगर वे ये शर्तें मंजूर कर लें तो वे जब भी चाहें वहाँ आ सकते हैं। उनके लिए वहाँ कोई खतरा नहीं है। अगर वे इस तरहके नुकसानदेह तरीकोंको छोड़ देंगे तो मेरी समझमें वहाँ भविष्यमें फसाद होनेका कोई कारण नजर नहीं आता। अगर वे लोग होशियारीसे काम लें तो मुसलमानोंका रुख ठीक हो जायेगा।

प्रश्न : क्या उन्हें इन दोनों शर्तोंको स्वीकार कर लेना चाहिए?

उत्तर : हमने पहले भी कोई शर्त नहीं लगाई और अब भी कोई शर्त नहीं लगाते।

प्रश्न : इसलिए मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि उन्हें क्या करना चाहिए।

उत्तर : मैं कोई शर्त निश्चित नहीं करता। वे बिना किसी शर्तके आ सकते हैं।

प्रश्न : यदि मैं आपकी सलाह लूँ तो आप क्या सलाह देंगे?

उत्तर : मैं उन्हें अपने घरोंको वापस जानेकी सलाह दूँगा लेकिन उन्हें यह देखना चाहिए कि यह सरहद है और साथ ही वे पठानोंके स्वभावका भी खयाल रखें।

प्रश्न : क्या कोहाटका वातावरण ऐसा है कि वहाँ हिन्दू इज्जतके साथ नहीं रह सकते?

उत्तर : मैंने वहाँ न तो ऐसे हालात देखे हैं और न इस बारेमें कुछ सुना ही है कि उनका वहाँ इज्जतके साथ रहना मुश्किल है।

(इस जगह सरदार माखनसिंहने कहा कि हिन्दुओंके साथ जो बरताव किया गया वह पहले-जैसा नहीं है।)

प्रश्न : (हिन्दुओंसे) मौलवी साहबके खिलाफ इतनी बातें क्यों कही गई हैं?

उत्तर : व्यक्तिगत रूपसे उनके खिलाफ कोई शिकायत नहीं है।

प्रश्न : (यह सरदार गुरदित्तसिंहने पूछा था) जब सनातन धर्म सभाने २ सित-म्बरको माफीकी बात सोची थी तब क्या उसने उनपर आपके सामने ही विचार किया था? क्या आप उस समय वहाँ मौजूद थे?

उत्तर : तब मैं वहाँ नहीं था। मुझे तो खत मिलनेपर ही उसका पता चला। उसमें क्षमाका कोई जिक्र नहीं था।

प्रश्न : (यह मौलाना शौकत अलीने पूछा था) क्या आपको यह मालूम हो पाया था या आपने यह मालूम करनेकी कोशिश की थी कि शहरके या बाहरके मुसलमान ८ तारीखको या उससे पहले लूट करनेके लिए बुलाये गये हैं?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : यदि इस तरहकी कोई हलचल हुई होती, या दूसरे लोगोंने ऐसा किया होता तो क्या ऐसा हो सकता है कि यह मामला आपके ध्यानमें न आता?

उत्तर : अगर ऐसी कोई साजिश या हलचल होती तो मुझे किसी-न-किसी तरह उसकी खबर मिल जाती।

प्रश्न: ९ तारीखकी घटना पूर्व नियोजित थी या अचानक हो गई थी?

उत्तर: मुसलमानोंने कोई ऐसी योजना नहीं बनाई थी। कमसे-कम मुझे उसकी कोई सूचना नहीं थी।

प्रश्न: क्या आप यह जानते हैं कि खिलाफतके किसी कार्यकर्त्ता या स्वयंसेवकने हिन्दुओंके घरोंको लूटने या जलानेमें हिस्सा लिया था?

उत्तर: नहीं।

प्रश्न: क्या उन्होंने किसी बाजारको जलानेमें या लूटनेमें अथवा लोगोंको उत्तेजना देनेमें भाग लिया था?

उत्तर: नहीं, मेरा खयाल ऐसा नहीं है।

प्रश्न: कोहाटमें स्वयंसेवक कितने हैं?

उत्तर: आजकल कोहाटमें १४ या १५ स्वयंसेवक हैं।

प्रश्न: क्या उनमें से किसीने इसमें भाग लिया था?

उत्तर: मेरे कानोंमें यह बात आई तो थी, लेकिन मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने वैसा किया है।

प्रश्न: जब खिलाफतने असहयोगका एलान किया था तब आपने असहयोग किया था। फिर आपने सहयोग कब शुरू किया?

उत्तर: मैंने अपने स्वयंसेवकोंके साथ सिर्फ उन्हीं कार्योंमें हिस्सा लिया जिनमें सरकार हिस्सा लेती थी ताकि लोग मुसीबतमें न पड़ें।

प्रश्न: क्या आप इससे पहले डिप्टी कमिश्नरके पास गये थे और आपने सहायता माँगी थी?

उत्तर: एक साल पहले जब मैं अंजुमनमें शामिल हुआ था तब मुझे अंजुमनके स्कूलके लिये डिप्टी कमिश्नरके पास जाना पड़ा था। जबसे खिलाफत शुरू हुई तबसे इसके सिवा मैं कभी डिप्टी कमिश्नरके पास नहीं गया हूँ।

प्रश्न: फिर ऐसी कौन-सी मुसीबतें आईं जिनसे आपको अपना सिद्धान्त छोड़ना पड़ा?

उत्तर: लोग कार्यकर्त्ताओंपर शक कर रहे थे कि वे किसीकी बात नहीं सुनते। वे सिर्फ मुझपर विश्वास करते थे। अगर इस वक्त मैं मैदानसे हट गया होता तो इस तरहके लोग मैदानमें आते और तब और भी ज्यादा मुसीबतें आतीं।

प्रश्न: आप सरकारी अधिकारियोंसे कबसे मिलने-जुलने लगे?

उत्तर: मैं उनसे पुस्तिकाके मामलेके वक्तसे मिलने-जुलने लगा था और मैंने ऐसा किसी संस्थाकी ओरसे नहीं किया था। मैं जबसे खिलाफत आन्दोलनमें शामिल हुआ, मैंने तभीसे सहयोग छोड़ दिया था।

प्रश्न: क्या आपने अपनी तसल्लीके लिए यह पूछताछ की थी कि गोलीसे सबसे पहले मुसलमान लड़का मरा है?

उत्तर: हाँ, गोलीकी बात सुनकर ही मैं बाजार गया था।

प्रश्न: अगर ऐसी घटना नहीं होती तो फसाद भी नहीं होते। क्या आप ऐसा विश्वास करते हैं?

उत्तर: निश्चय ही न होते।

प्रश्न: (मौलाना शौकत अली द्वारा) क्या स्वयंसेवकोंने लूटमें भाग लिया था?

उत्तर: मैं ऐसा कसम खाकर नहीं कह सकता कि किसी भी स्वयंसेवकने इसमें भाग नहीं लिया था।

प्रश्न: क्या आपने इस बारेमें कुछ सुना है?

उत्तर: मैंने इस बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मैं नहीं समझता कि किसी मुसलमानने लूटमारमें हिस्सा लिया है।

प्रश्न: क्या खिलाफतके लोगोंने दूकानोंको लूटने और जलानेमें तथा हिन्दुओंको सतानेमें हिस्सा लिया था?

उत्तर: मैं इसके बारेमें कसम नहीं खा सकता। मैंने शिकायतें सुनी है कि मुसलमानोंने इनमें हिस्सा लिया है।

(पीर साहबने कहा है कि कोई भी मुसलमान इससे अलग नहीं था। खिलाफती स्वयंसेवक भी इसमें शामिल थे।)

प्रश्न: क्या आपने सुना था कि खिलाफती स्वयंसेवकोंने भी लूटमारमें भाग लिया है?

उत्तर: हाँ, मैंने सुना था।

प्रश्न: क्या खिलाफती स्वयंसेवक, लूटके लिए बाहरी लोगोंको बुलानेके लिए बाहर भेजे गये थे?

उत्तर: मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है।

रातको ८.३० बजे समाप्त

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०५३१) से।

४०. तार: मदनमोहन मालवीयको[1]

७ फरवरी, १९२५

पंडित मालवीयजी
बिड़ला हाउस
दिल्ली

भटिण्डा मेलसे कल सुबह दिल्ली पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. यही तार उसी दिन मोतीलाल नेहरू और अलीगढ़के ख्वाजा अब्दुल मजीदको भी भेजा गया था।

४१. काठियावाड़ियोंसे

मैं कुछ ही दिनोंमें काठियावाड़ फिर जाऊँगा, और इस बार राजकोट जाऊँगा। भाई भरूचापर तो काठियावाड़का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उन्होंने वहाँ अधिक समय तक टिकने और खादी तथा चरखेका प्रचार करनेकी अनुमति माँगी है। हम लोग आरम्भ-शूर होते हैं, आशा है यह आरोप इस मामलेमें तो सत्य सिद्ध नहीं होगा। राजकोटके राजनीतिक कार्यकर्त्ता निश्चय करें तो वे राजकोटमें और काठियावाड़के अन्य भागोंमें भी नवजीवनका संचार कर सकते हैं। "अन्य भागोंमें" इसलिए कि राजकोट केन्द्र है और एजेन्सीका सदर मुकाम होनेसे वहाँ सभी राजनीतिक कार्यकर्त्ता भी इकट्ठे होते रहते हैं। राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंको समयकी तंगी रहती है, ऐसा तो कोई नहीं कह सकता। फिर उनका जन-साधारणपर प्रभाव भी है ही। वे काठियावाड़को खादीमय बनाकर उसे पुनः शक्ति दे सकते हैं और जो लोग काठियावाड़में से कुछ सेर बाजरेकी खातिर अन्यत्र जाते हैं उनको वहीं रोक रख सकते हैं। चरखेसे एक व्यक्ति कितना कमा सकता है, ऐसा प्रश्न करनेसे ठीक उत्तर नहीं मिल सकता। किन्तु इससे काठियावाड़की सामान्य जनतामें कितना धन रह जायेगा, यह हिसाब लगानेसे प्रश्नका उत्तर अवश्य समाधानकारक मिलेगा। नमकके करमें रुपयेमें एक पाई बढ़नेसे प्रत्येक मनुष्यको कितना बोझ उठाना पड़ता है, यह सोचें तो हम परेशान नहीं होते; किन्तु उससे कितने अधिक करकी वसूली हो जाती है, यह जानकर हैरानी होती है। इस प्रकारकी हानि "रांपीके घाव[1]"के समान होती है। जन-समूहपर उसका सामूहिक प्रभाव होता है। इस आधारपर हिसाब लगानेसे मालूम हो सकता है कि उसका प्रत्येक मनुष्यपर क्या प्रभाव होता है।

चरखेके सम्बन्धमें भी यही बात है। मान लें कि सूत कातनेसे प्रत्येक मनुष्यके घरमें प्रतिदिन आधा आना आता है। इस हिसाबसे उसके घरमें वर्षमें बारह रुपये आयेंगे। यदि हम प्रत्येक घरमें पाँच मनुष्य मानें तो २६,००,००० ÷ ५ = ५२,००,०० घर × १२ रु० = ६२,४०,००० रुपये काठियावाड़में वर्षभरमें बचेंगे। अब दूसरी तरहसे हिसाब लगायें। यदि छब्बीस लाखकी आबादीमें प्रति मनुष्य औसतन पाँच रुपयेका कपड़ा लिया जाता हो तो इस हिसाबसे काठियावाड़में १,३०,००,००० रुपयेका कपड़ा काममें आता है। यदि हम इसमें से रुईके मूल्यके रूपमें तिहाई रकम कम कर दें तो काठियावाड़ ९०,००,००० रुपये बचायेगा।

मान लें कि काठियावाड़के लोगोंको बम्बई सरकारको प्रति वर्ष नब्बे लाख रुपये करके रूपमें देने पड़ते हों और उसका यह कर माफ कर दिया जाये तो उससे काठियावाड़के लोगोंमें कितनी चेतनता आ जायेगी। यदि हम प्रति व्यक्ति हिसाब

१. चमार इस औजारसे चमड़ेमें छेद करके जब उसे हटाता है तो छेद फिर मुँद-सा जाता है। मगर वह वास्तवमें मुँदता नहीं है।

लगाना छोड़ दें तो हमें अप्रत्यक्ष रूपसे होनेवाला यह हानि-लाभ मालूम हो जायेगा। मैं काठियावाड़के लोगोंसे ऐसे सामूहिक हानि-लाभका ही हिसाब लगानेकी आशा करता हूँ। यदि आज काठियावाड़ ऐसा हिसाब लगाने लगे तो कल समस्त भारत ऐसा ही करेगा। मुझे क्या लाभ है, यदि हम इस प्रकार हिसाब लगायेंगे तो परिणाम बुरा और विनाशकारी होगा। जब हमें 'लोगोंको क्या लाभ होगा?' इसी दृष्टिसे सामूहिक हिसाब लगानेकी टेव पड़ेगी, तभी हमारे देशमें लोकहितके कार्य होंगे। यदि सभी लोग अपना व्यक्तिगत लाभ चाहेंगे तो सभीका नाश होगा, किन्तु यदि सभी सबका अर्थात् सामूहिक लाभ देखेंगे तो उससे प्रत्येक व्यक्तिका और समस्त लोक-समुदायका लाभ होगा।

यदि काठियावाड़के लोग इस पद्धतिसे विचार करें तो वे चरखेका चमत्कार तुरन्त समझ जायें और मैं इसी दृष्टिसे एक मासमें किये गये उनके कार्यका हिसाब प्राप्त करनेकी आशा करता हूँ। जिन्होंने सूत कातनेकी प्रतिज्ञा की थी, क्या उन्होंने नित्य सूत काता है? जिनको सूत कातना नहीं आता था, क्या उन्होंने सूत कातना सीख लिया है? लोगोंसे भिक्षाके रूपमें जो कपास देनेकी प्रार्थना की गई थी, क्या वह कपास इकट्ठी कर ली गई है? यदि वह इकट्ठी कर ली गई हो तो क्या उसका कोई उपयोग सोच लिया गया है? इस प्रकार अभी कार्यवाहक समितियों और सभी कार्यकर्त्ताओंको ऐसी कई बातोंका हिसाब देना है।

मैं राजकोटसे भी किये हुए कामका ऐसा ही हिसाब पानेकी आशा करता हूँ। राजकोटमें मुझे मानपत्र देनेकी तैयारियाँ की जा रही हैं। मुझे क्यों मान देना है? किन्तु यदि मान देना उचित ही लगे तो लोग मेरे सम्मुख सूतका ढेर लगाकर और स्वयं खादीसे सज्जित होकर मुझे मान दे सकते हैं। मेरा परितोष शब्दाडम्बरसे तो नहीं हो सकता। मैं काठियावाड़में यह जो दूसरी बार प्रवेश करूँगा, वह केवल खादी और चरखेके प्रचारकी आशासे, अस्पृश्योंकी सेवाके निमित्त और राजा और प्रजाकी सेवाके उद्देश्यसे ही करूँगा।

मुझे राजकोटमें एक राष्ट्रीय शाला खोलनी है। मेरा विश्वास है कि इस शालामें शुद्ध राष्ट्रीय सेवक काम कर रहे होंगे। इस शालाके निमित्त गुजरात प्रान्तीय समितिने खासी बड़ी रकम दी है। इसके लिए माननीय ठाकुर साहबने सस्ते भावमें जमीन दी है। मैं चाहता हूँ कि राजकोटके नागरिक इस शालाके कार्यमें रस लें। वे इस शालाको देखें-भालें, यदि उसके कार्यमें भूलें हों तो उनको सुधारें और यदि उसमें चरित्रवान् अध्यापक कार्य करते हों तो उसमें अपने बालकोंको भेजकर सहायता दें। उचित तो यही है कि इसका खर्च राजकोटके लोग ही उठायें।

इस बारकी काठियावाड़की यात्रामें बढवान भी सम्मिलित है। मैं वहाँकी राष्ट्रीय शालाके निमित्त कुछ घंटे दूँगा। इस शालाके निमित्त बहुत त्याग किया गया है। मैंने इसकी आलोचना भी बहुत सुनी है। कई बार उसपर संकटोंके बादल आये हैं; और बिखर भी गये हैं। बढवानमें खादीका कार्य किया गया है। बढवान मोतीलालकी भूमि है। उसको भाई शिवलालके साहस और धनका लाभ मिला है। मैं बढवानसे बहुत आशा रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि इसमें बढवान मुझे निराश न करेगा।

मैं यह चाहता हूँ कि सभी स्थानोंमें मेरे मान-सम्मानमें समय नष्ट करनेकी अपेक्षा मुझसे सेवा लेनेका ही विशेष ध्यान रखा जाये। व्यवस्थापकोंसे मेरी विनती है कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे मेरा और लोगोंका समय व्यर्थके भाषणोंमें नष्ट न हो। क्या मुझे यह माँगनेका अधिकार नहीं है कि सभा जहाँ अनिवार्य हो वहीं की जाये और उसमें सब भाई-बहन खादी पहनकर ही आयें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२५

४२. मैसूरके महाराजा

मसूरके महाराजा साहब चरखा चलाने लगे हैं। जिन लोगोंने कताईको धर्म मान लिया है उन्हें इस समाचारसे प्रसन्नता हुए बिना न रहेगी। संवाददाता यह भी सूचित करते हैं कि यह सर प्रभाशंकर पट्टणीके कातना शुरू करनेका परिणाम है। इन सब उदाहरणोंसे हमें फूल नहीं जाना चाहिए। लेकिन इनसे यह तो सूचित होता ही है कि चरखा चलानेमें कितना और कैसा आकर्षण है। फिर बड़े आदमियोंकी मिसालका असर सर्वसाधारणपर भी पड़ता है। मैं मैसूरके महाराजाको धन्यवाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि वे अपने आरम्भ किये कार्यको आजन्म नहीं छोड़ेंगे। यह प्रारम्भ उनके और प्रजाजन दोनोंके लिए कल्याणकारी है। इसका परिणाम आज भले ही कम दिखाई दे, परन्तु मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं कि अन्तमें वह एक विशाल वृक्षके रूपमें सुशोभित हो जायेगा। सूत-कताई महाराजा और प्रजा दोनोंको जोड़नेवाली सुनहली जंजीर बन जायेगी। इससे इस नियमका पुनरुद्धार होगा कि राजाओंको उपयोगी और प्रजा-पोषक उद्यम करना चाहिए। और यह जानकारी कि गरीबसे-गरीब प्रजाके उद्यमके लिए भी महाराजाके महलमें स्थान है, हमेशा प्रजाजनोंको प्रोत्साहित करती रहेगी एवं इससे यह बात सिद्ध होगी कि राजा और रंकके दरम्यान वस्तुतः 'जाति भेद' नहीं है। पर ऐसे नतीजे थोड़े दिनों उद्यम करनेसे नहीं निकल आया करते। उसके लिए निरन्तर, नियमित और श्रद्धामय उद्यमकी आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२५

४३. सच्ची शिक्षा

डाक्टर सुमन्त मेहताका नीचे दिया गया पत्र मेरे हाथमें तो मेरी इस बारकी दिल्ली यात्रामें आया। यात्राके दौरान एक तो पत्र नियमित नहीं मिल पाते; मिलते हैं तो मेरे सहायक उन्हें तभीके-तभी नहीं देख पाते। देखनेपर वे पहले उन पत्रोंको मेरे सामने रखते हैं, जिनपर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक हो और फिर मैं उनको भी समय मिलनेपर ही देख पाता हूँ। अगर डा० सुमन्त मेहताका यह पत्र मुझे समयपर मिल जाता तो दीक्षान्त भाषणके[1] अवसरपर मैं इसका ठीक उपयोग कर लेता; किन्तु वह अवसर तो निकल गया। अब मैं उसपर यहाँ चर्चा कर रहा हूँ। पत्र इस प्रकार है:[2]

डाक्टर साहबके इस पत्रका मैं स्वागत करता हूँ। इसमें जो मूल विचार है, आचार्य गिडवानीने उसपर अमल किया था। अर्थात् उन्होंने स्नातकोंको अलग-अलग जगहोंपर समाज-सेवाके लिए भेजा था और उनके साथ सम्पर्क बनाये रखा गया था। यह बात पाठ्यक्रमका अंग नहीं थी, व्यक्तिगत रूपसे और प्रयोगके तौरपर की गयी थी। डाक्टर साहब उसे स्थायी रूप देकर उसे पाठ्यक्रमका एक अंग बना देना चाहते हैं। यह बिलकुल ठीक ही है। इस पत्रसे यह ध्वनि निलकती जान पड़ती है कि डाक्टर साहबकी यह योजना वर्तमान शिक्षा-योजनाकी जगह रखी जानी चाहिए।

मैं तो यह भी पसन्द कर लूं किन्तु फिर भी महाविद्यालयका वर्तमान कार्यक्रम बिलकुल ही हटा देना आवश्यक नहीं है और यदि आवश्यक हो तो उसे हटा देना सम्भव नहीं है। वर्तमान पाठ्यक्रमकी रचनामें विद्यार्थियोंके स्वाभाविक झुकावका ध्यान रखा गया है। और प्रान्तोंके मुकाबलेमें सेवाभाव गुजरातमें देरसे जाग्रत हुआ है। इससे यहाँके हर विद्यार्थीके दिलमें एकाएक सेवाके लिए आवश्यक अध्ययनकी इच्छा नहीं होती। फिर समाज-सेवाके साथ आजीविकाका सवाल भी है। अभी यह विचार प्रधान माना जा रहा है कि विद्याध्ययन आजीविकाके लिए है। अकेली आजीविका ही लक्ष्य होता तो भी क्षम्य समझा जाता; परन्तु विद्याध्ययनके फल-स्वरूप वे द्रव्योपार्जन करें, अधिकार पायें, यह विचार भी लोगोंको रहता है। जबतक इस विचारमें परिवर्तन नहीं होता तबतक सिद्धान्त-दृष्टिसे हमारे अध्ययनक्रममें त्रुटि ही रहेगी। उसमें एकाएक परिवर्तन करना मुश्किल मालूम होता है। फिर भी मैं मानता हूँ कि धीरे-धीरे उस विचारको गौणपद देना आवश्यक है और यह नितान्त सम्भाव्य भी है।

१. गुजरात विद्यापीठका।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। डा० मेहताने इसमें गुजरात विद्यापीठके शिक्षण कार्यक्रमके प्रति असन्तोष व्यक्त करते हुए राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता तैयार करनेसे सम्बन्धित प्रशिक्षणपर जोर दिया था और उस दिशामें कुछ निश्चित सुझाव भी रखे थे।

विद्यापीठको भी विद्यार्थियोंके लिए समाज-सेवाका कार्य करनेकी दृष्टिसे ऐसे क्षेत्र चुनने होंगे जो उन्हें सेवाके साथ आजीविका प्राप्त करनेके साधन भी दे सकें। आजीविका, विद्याका लक्ष्य न हो लेकिन उससे आजीविका प्राप्त करनेकी सामर्थ्य तो मिलनी ही चाहिए। विद्याका लक्ष्य है आत्मविकास। जहाँ आत्मविकास हुआ वहाँ आजीविका तो हस्तगत हो ही गई।

यह भी देखा गया है कि अंग्रेजी जाने बिना विद्यार्थियोंको तृप्ति नहीं होती। वे साहित्यके ज्ञानकी भी अपेक्षा रखते हैं। इसमें नुकसान कुछ नहीं है। हमें सिर्फ यही देखना है कि वे इसके अन्ध-पुजारी न बनें, वही एकमात्र ध्येय न बन जाये, वह एक प्रकारका बुद्धिविलास न बन जाये। अपने उचित स्थानपर वह अवश्य ही एक सुन्दर वस्तु है और उसके लिए स्थान भी निःसन्देह है।

यह नहीं कहा जा सकता कि सरकारी विद्यापीठोंका पाठ्यक्रम केवल हानिकारक ही है। मुझे कभी ऐसा आभास नहीं हुआ कि उनकी सब बातें त्याज्य हैं। उसकी तोतारटंत, मातृभाषाका अनादर, अंग्रेजीका आडम्बर, इतिहासका एकपक्षीय ज्ञान, प्राचीन संस्कृतिकी अवहेलना, संयमका अभाव — यह और ऐसी सब बातें अवश्य ही त्याज्य हैं।

यही सबब है कि मैं यह मानता हूँ कि विद्यापीठके पाठ्यक्रममें सुधारकी बहुत-कुछ गुंजाइश है। लेकिन ऐसा कहना आसान है। यह सुधार लागू कौन करे? अनुभव तो किसीको भी नहीं है। जिन लोगोंके हाथमें पाठ्यक्रमके सूत्र हैं वे सब सरकारी विद्यालयोंकी छापवाले हैं। उनमें से किसी-किसीके मनमें इन विद्यालयोंके प्रति विरक्ति हुई है, किन्तु नया ज्ञान और नया अनुभव वे लावें कहाँसे? इसलिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रममें त्रुटियाँ दिखाई देती हैं। आचार्योंने प्रत्येक स्थलमें उचित रद्दोबदल करनेका यथाशक्ति प्रयास किया है और उसे घटाने-बढ़ानेमें वे सफल भी हुए हैं।

अब डा० सुमन्त मेहताकी योजनाके बारेमें दो शब्द कहता हूँ। मैं मानता हूँ कि उनकी योजनाके अनुसार कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए। उसमें कितने ही विषय ऐसे हैं कि जो महाविद्यालयके पाठ्यक्रमके प्रारम्भिक कालमें ही पढ़ाये जा सकते हैं। कितने तो उसके भी पहले सिखाये जा सकते हैं और कुछ सामान्य अध्ययन पूरा होनेपर सिखाये जानेके लायक मालूम होते हैं। मैं डा० सुमन्त मेहताको अपनी योजना तैयार करनेका निमन्त्रण देता हूँ। इतना तो मैं उन्हींको पत्र लिखकर कर सकता था। लेकिन इस विषयपर यहाँ चर्चा करनेका कारण तो यह है कि उसपर शिक्षक और शिक्षित लोग विचार करें, उसकी चर्चा करें और डा० सुमन्त मेहताकी मदद करें। हम लोगोंके पास विचारक बहुत कम हैं और जो हैं वे अपने-अपने क्षेत्रमें बंधे पड़े हैं। दिन-प्रतिदिन यह स्थिति दृढ़ होती जा रही है और उसमें कोई हानि भी नहीं है। यदि हर आदमी प्रत्येक विषयमें टाँग अड़ाने लगे तो वह न अपने साथ और न उन विषयोंके साथ, अच्छी तरह न्याय कर सकता है। क्षेत्र चुनकर उसकी साधना किये बिना हम लोग इष्ट फल नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिए योजनाको सफल बनानेका भार तो डा० साहबको ही उठाना होगा। विचारशील शिक्षक और विद्या-प्रिय समाज-सेवक उन्हें मदद करेंगे। मेरा कार्य तो इन दोनोंको पास लाना और साथ ही

कुछ अपना अभिप्राय जाहिर करना था। डाक्टर साहब स्वयं एक वर्षका क्षेत्र-संन्यास लेकर पेटलादमें बैठ गये हैं। वहाँ उन्हें अपनी योजनाका प्रयोग करनेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। इससे उन्हें अपनी योजनाका विकास करनेमें कुछ आसानी होगी।

योजना परिपक्व हो जानेपर उसके अनुसार कार्य करनेवाले शिक्षकोंकी जरूरत होगी। किन्तु यह एक दूसरा सवाल है और मेरा विश्वास है कि प्रसंग आनेपर वे भी मिल जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२५

४४. कोहाटके हिन्दू

[९ फरवरी, १९२५][1]

मैं जानता हूँ कि पाठक इस सप्ताहके 'यंग इंडिया' के पन्नोंमें, कोहाटकी पिछले सितम्बरकी शोकमय घटनाके विषयमें मौ० शौकत अलीके और मेरे निर्णयोंको खोजेंगे। पर खेद है कि उन्हें निराश होना पड़ेगा। क्योंकि मौ० शौकत अली मेरे साथ नहीं हैं और उन्हें दिखाये बिना इस विषयमें कोई बात प्रकाशित करना कदापि उचित न होगा। फिर भी मैं पाठकोंसे इतना तो कहे देता हूँ कि मैंने जो राय कायम की है उनपर पं० मोतीलालजी, पं० मालवीयजी और हकीम अजमलखाँ सा०, डा० अन्सारी और अली भाइयोंसे भी चर्चा कर ली गई है। साबरमती आते हुए रास्तेमें मैंने अपने विचारोंको अभी लिखकर खतम किया है। तुरन्त ही वे मौ० शौकत अलीको भेजी जायेंगी और उन्हें मौ० शौकत अलीकी पुष्टि अथवा संशोधनके साथ प्रकाशित करनेकी आशा रखता हूँ। परन्तु हमारे निर्णयोंको छोड़कर, मैं हिन्दुओंको फिर यही सलाह देता हूँ कि यदि मैं उनकी जगह होता तो जबतक सरकारके दखल दिये बिना मुसलमानोंसे इज्जतके साथ सुलह न हो जाती, मैं वहाँ न लौटता। यह इस मौकेपर मुमकिन नहीं है; क्योंकि बदकिस्मतीसे मुस्लिम कमेटीके लोग, जो कि कोहाटके मुसलमानोंकी रहनुमाई कर रहे हैं, न तो हमसे मिलने आये और न उन्होंने इसे जरूरी समझा। मैं देखता हूँ कि हिन्दुओंकी हालत नाजुक है। वे अपनी मिल्कियतको गँवाना नही चाहते। मौलाना साहब और मैं दोनों ही सुलह करानेमें कामयाब न हुए। हम तो कोहाटके खास-खास मुसलमानोंको बातचीतके लिए भी बुलानेमें समर्थ न हो सके। और न मैं यही कह सकता हूँ कि आगे भी हो सकेंगे। ऐसी हालतमें हिन्दू लोग जो मुनासिब समझें करें। हमारे नाकामयाब होते हुए भी मैं तो उन्हें सिर्फ एक ही रास्ता बता सकता हूँ— जबतक मुसलमान आपको इज्जत और गौरवके साथ ले न जायें, कोहाट न लौटें; पर मैं जानता हूँ कि यह सलाह, सिवा उन लोगोंके जो अपने पैरोंपर खड़े रह सकते हैं और जिन्हें किसीकी सलाहकी जरूरत नहीं है, औरोंके लिए कष्ट निवारण करनेकी

१. यह लेख गांधीजीने ९ फरवरीको साबरमती लौटते समय लिखा था।

दृष्टिसे बहुत कामकी नहीं है। और कोहाटके शरणार्थी दूसरी श्रेणीमें आते हैं। मैंने अपने विचार पण्डित मालवीयजीतक पहुँचा दिये हैं। वही प्रारम्भसे उनके पथ-प्रदर्शक रहे हैं और उन्हें उन्हींकी सलाहके अनुसार चलना चाहिए। लालाजी[1] पिण्डी आये थे, पर बदकिस्मतीसे वे बीमार हो गये। मेरी अपनी राय जो बहुत विचारके बाद मैंने कायम की है, मौ० शौकतअलीके पास भेजे गये मेरे वक्तव्यमें व्यक्त है। मगर यह बात तो मैं पहले ही से कबूल कर लेता हूँ कि उससे उन लोगोंको कुछ भी तसल्ली न मिलेगी। मुझ तो अब एक टूटी नाव ही समझिए। वह भरोसा करने लायक नहीं है।

परन्तु इस बारेमें कि वे जबतक कोहाटके बाहर हैं, क्या करें, मैं उन्हें निःसंकोच सलाह दे सकता हूँ। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हट्टे-कट्टे और मजबूत हाथ-पैर रखनेवाले लोगोंका दानकी रकमोंपर बसर करना अपने सत्वको गँवाना है। उन्हें चाहिए कि वे खुद अथवा वहाँके लोगोंकी मददसे कुछ-न-कुछ काम अपने लिए ढूँढ़ लें। मैंने उन्हें धुनने, कातने और बुननेतक का काम सुझाया है। पर वे कोई भी अपनी पसन्दका अथवा जो उन्हें दिया जाये ऐसा काम ले सकते हैं। मेरे कहनेका भाव यह है कि किसी भी स्त्री-पुरुषको, जो काम करनेकी ताकत रखता है, दानके सहारे पेट नहीं भरना चाहिए। एक सुव्यवस्थित राज्यमें काम करनेकी इच्छा रखनेवाले हरएक शख्सके लिए काफी काम हमेशा होना चाहिए। आश्रित लोगोंको, जबतक कि राष्ट्र उनका भरण-पोषण कर रहा है, अपने एक-एक मिनटका ठीक हिसाब देना चाहिए। "निठल्ले आदमीको शैतानी तो सूझेगी ही" यह महज किसी स्कूली किताबकी कड़ी नहीं है। इसमें एक बड़ा सत्य है और हर शख्स उसका अनुभव कर सकता है। गरीब, अमीर, उच्च-नीच सबपर एक-सी मुसीबत छाई है — सब मुसीबतके मारे हुए एक दूसरेके संगाती हो गये हैं। धनी और खुशहाल लोगोंको चाहिए कि वे खुद आगे बढ़कर अच्छी तरह मेहनत करके दूसरोंके लिए मिसाल पेश करें, फिर चाहे वे मुफ्त राशन न लेते हों। यदि किसी राष्ट्रके लोग कोई ऐसा हुनर या धन्धा जानते हों जो गाढ़े वक्त उन्हें सहारा दे तो इससे देशको कितना बड़ा लाभ होगा? यदि ये शरणार्थी भाई धुनना, बुनना या कातना जानते होते तो इनके दिन कहीं बेहतर और इज्जतके साथ कटते। उस हालतमें शरणार्थियोंका वह शिविर मधुमक्खीके छत्तेकी तरह चहल-पहलका केन्द्र बन गया होता और उसे अरसेतक चलाना आसान होता। यदि वे लोग तत्काल न लौटनेका निश्चय करें, तो अब भी वक्त निकल नहीं गया है। अनाज बाँटना गलती है। व्यवस्थापक लोगोंके लिए ऐसा करनेमें आसानी है, पर इससे शरणार्थियोंमें बड़ी बेतरतीबी फैलती है और इसमें अन्न भी ज्यादा बरबाद होता है। उन्हें चाहिए कि वे अपनेको सिपाहियोंकी तरह अनुशासित करें — नियमसे उठें, नियमसे नहायें, धोयें, नियमसे ईश्वर-भजन करें, नियमसे भोजन करें, नियमसे काम करें और नियमसे सोयें। कोई वजह नहीं मालूम होती कि उनके बीच 'रामायण' का अथवा और किसी धर्म-पुस्तकका पाठ आदि क्यों न हो। इन सबके

१. लाला लाजपत राय।

लिए विचार करने, सावधानी रखने, ध्यान रखने और श्रम करनेकी बड़ी जरूरत है। ऐसा करें तो यह मुसीबत, मुसीबत न रहकर, एक सुख बन जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-२-१९२५

४५. तार: मदनमोहन मालवीयको

९ फरवरी, १९२५

पण्डित मालवीय
बिड़ला भवन
दिल्ली

गोरक्षा संविधानकी क्या स्थिति है? आशा है आप आज रावलपिण्डी जा रहे हैं।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

४६. तार: जयरामदास दौलतरामको[1]

९ फ़रवरी, १९२५

जयरामदास
द्वारा रामप्यारेलाल वकील
रावलपिण्डी

तार द्वारा लालाजीके स्वास्थ्यकी सूचना दीजिए। ९ सितम्बरको कोहाटके पास जिन दो व्यक्तियोंकी हत्या की गई उनके नाम तथा अन्य विवरण भेजिए।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. जयरामदास दौलतराम कोहाटके दंगोंके सिलसिलेमें गांधीजीके साथ रावलपिंडी गये थे।

४७. पत्र : चमनलाल वैष्णवको

माघ बदी १ [९ फरवरी, १९२५][1]

भाई चमनलाल,[2]

मैं यह पत्र गाड़ीमें लिख रहा हूँ। तुम्हारा कार्ड मिल गया है। वहाँ १६ तारीखसे पहले आना नामुमकिन है। मुझे लगता है कि मैं २० या २१ तारीखके आसपास आ सकूँगा; या फिर आनेका कार्यक्रम ही रद कर दिया जाये।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८६९) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

४८. पत्र : देवचन्द पारेखको

माघ बदी १ [९ फरवरी, १९२५][3]

भाई देवचन्दभाई,

यह पत्र गाड़ीमें लिख रहा हूँ। तार भेजनेका खर्च बचा रहा हूँ। तुम्हारा पत्र मिल गया है। वांकानेर १४ तारीखको पहुँचना सम्भव नहीं है। सब वक्त बोरसदमें लग जायेगा। किन्तु यदि सब राजकोट आ जायें तो १५ तारीखको एक घंटा वांकानेरको दिया जा सकता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७१२) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी बढवान २१ फरवरी, १९२५ को गये थे और वहाँ उन्होंने एक बाल-पाठशालाका उद्घाटन किया था।

२. बढवानके एक राजनीतिक कार्यकर्ता।

३. पत्रपर डाकखानेकी ११ फरवरी, १९२५ की मुहर है।

४९. तार: वाइसरायके निजी सचिवको

९ फरवरी, १९२५[1]

वाइसरायके निजी सचिव
दिल्ली

क्या अब महामहिम मुझे और मेरे साथियोंको शुरू मार्चमें कोहाट जानेकी अनुमति देना सम्भव मानते हैं?[2]

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) तथा यंग इंडिया, २६-२-१९२५ से।

५०. पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको

[१० फरवरी, १९२५ से पूर्व][3]

ऐसा आरोप आया है कि आप व्यभिचारी हैं। मैं जब भावनगरमें था यह बात मैंने तब भी सुनी थी, किन्तु मैंने उसपर विश्वास नहीं किया था। अब जिस मनुष्यने[4] यह लिखा है मैं उसकी बात सहज ही दरगुजर नहीं कर सकता। क्या आप व्यभिचारी हैं? मुझे आपकी सरलता और आपके साहसको देखकर बहुत हर्ष हुआ था। किन्तु यह सच हो तो?

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. २६-२-१९२५ के *यंग इंडिया*में तारकी तारीख १० फरवरी दी गई है। सम्भव है कि इसका मसविदा ९ तारीखको तैयार किया गया हो।

२. १३ फरवरीको वाइसरायके निजी सचिवने इसका उत्तर दिया। जिसका आशय था कि कोहाटके हिन्दुओंको गांधीजीने अभी हालमें *यंग इंडिया*के जरिये यह सलाह दी है कि वे तबतक कोहाट वापस न जायें जबतक कि वहाँके मुसलमान सरकारी हस्तक्षेपके बिना उनके साथ सम्मानपूर्ण ढंगसे सुलह न करें। इसे देखते हुए लगता है कि उनके वहाँ जानेसे हाल्का समझौता भंग हो सकता है। जब कि वाइसराय उसे कायम रखनेके लिए प्रयत्नशील हैं। इसलिए उनकी इच्छा पूरी करना महामहिमको असम्भव लगता है।

३. इसका निम्न उत्तर १० फरवरी, १९२५ को मिला था: "मुझसे बाल्पनमें कुछ दोष हो गये थे; किन्तु उसके बाद सत्ताके मदमें, कुछ दोष किया हो, ऐसा याद नहीं आता। आपने लिखा है कि आप मेरे पत्रको फाड़ देंगे। किन्तु आप उसे क्यों फाड़ें? मेरे पत्रोंको तो मेरे कर्मचारी और सचिव खोलते हैं और मैं यह पत्र तो बटुकको बोलकर लिखा रहा हूँ और इसे श्रीमती पट्टणीने भी पढ़ लिया है।"

४. फूलचन्द शाह। देखिए "पत्र: फूलचन्द शाहको", २२-१-१९२५।

५१. तार : प्रभाशंकर पट्टणीको

साबरमती
१० फरवरी, १९२५

सर प्रभाशंकर पट्टणी
भावनगर

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। धन्यवाद। आशा है आप अब स्वस्थ हो गये होंगे।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ३१९१) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पट्टणी

५२. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

माघ बदी २ [१० फरवरी, १९२५][1]

सुज्ञ भाईश्री,

मैं कल रात रावलपिण्डीसे वापस आया हूँ। आपका पत्र मुझे आज मिला। मैं इसकी राह ही देख रहा था। तार द्वारा कृतज्ञता व्यक्त किये बिना जी नहीं माना। पत्र-लेखकपर रोष न करें। मैं आपको उसका नाम आदि भी बतानेके विषयमें सोचूँगा। आप किसी भी पत्रको गोपनीय नहीं समझते यह पढ़कर तो मुझे मानव-जातिपर और भी अधिक अभिमान हुआ है। मेरा गर्व घटा है। मैं तो यही समझता था कि ऐसा तो एक मैं ही होऊँगा। आप तो मुझसे ऊँचे उठ गये हैं, क्योंकि आप ऐसे वातावरणमें रहते हैं जिसमें व्यक्तिगत जीवनको प्रकट करना कठिन होता है। यदि लेखक कोई षड्यन्त्री या दुर्जन होता तो मैं आपको उसके पत्रमें से कुछ भी न लिखता और अपने मनपर भी कतई कोई असर न पड़ने देता। किन्तु लेखक सज्जन है, विवेकी है, संयमी है और विद्वान् है। उसे आपसे कोई द्वेष कदापि नहीं हो सकता; किन्तु उससे यह भूल कैसे हो गई यह बात मैं समझ सकता हूँ। मैं उसको आपके पत्रकी प्रतिलिपि भेज रहा हूँ।[2] इससे उसका उपकार ही होगा। वह ऐसे निर्मल मनका मनुष्य है कि यदि वह आपके पास आकर आपसे क्षमा याचना भी कर ले तो मुझे आश्चर्य न होगा। मैंने अच्छा किया जो आपको पत्र लिख

१. गांधीजी रावलपिंडीसे साबरमती ९ फरवरी, १९२५ को लौटे थे।
२. देखिए अगला शीर्षक और उसकी पाद-टिप्पणी भी।

दिया। आप अपने पिछले दोषोंको स्मरण करते हैं; किन्तु इन दोषोंसे मुक्त कौन रहा होगा? मैं तीन बार पतनसे बचा हूँ, किन्तु अपने पुरुषार्थसे नहीं, बल्कि अपनी अपढ़ माँके प्रतापसे। उसने अपने बेटेको प्रतिज्ञा रूपी सूतसे बाँध लिया था, इससे उसकी रक्षा हो गई।

मैं १५ तारीखको राजकोट पहुँचूंगा। हमारा वहाँ मिलना सम्भव होगा? या फिर किसी दूसरी जगह?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१९६) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

५३. पत्र : फूलचन्द शाहको

माघ बदी २ [१० फरवरी, १९२५]

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारे पत्रका परिणाम[1] साथ प्रेषित है। मूल पत्र मैंने अपने पास रख लिया है। यदि तुम्हें अब भी कुछ शंका हो तो मुझे बताना। यदि तुम्हारी शंका निवृत्त हो गई हो तो भी लिखना। अभी अधिक लिखनेके लिए समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८६७) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

५४. भाषण : सत्याग्रह आश्रम साबरमतीमें

१० फरवरी, १९२५

जिस मनुष्यको अपने बिस्तरके नीचे साँप होनेका सन्देह हो जाता है वह अपने बिस्तरको जोरसे झाड़ता है, कमरेको झाड़ता है, धो भी डालता है। मेरी हालत उसी मनुष्य जैसी हो गई है। कोहाटकी स्थितिके सम्बन्धमें जो बात मुझे मालूम नहीं थी, अब मालूम हुई है। मैं आपके सम्मुख इस बातकी चर्चा इसलिए करता हूँ कि इसका सम्बन्ध धर्मसे है। हम सबको सचेत हो जाना है। सचेत हो जाना है, इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें कोई खास कदम उठाना है; बल्कि यह है कि हमें मानसिक दृष्टिसे और हार्दिक दृष्टिसे तैयार हो जाना है। हमें और भी अधिक शुद्ध होनेकी आवश्यकता है।

१. देखिए "पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको", १०-२-१९२५ से पूर्वकी पाद टिप्पणी।

उपरोक्त बात कह चुकनेपर गांधीजीने कोहाटमें मुसलमान बनाये गये हिन्दुओंकी[1] संख्याका उल्लेख किया और कहा :

सम्भव है यह संख्या अन्यत्र छोटी समझी जाये; किन्तु जिस क्षेत्रमें मुसलमानोंकी संख्या मुश्किलसे १५,००० है उसमें यह भयंकर मानी जायेगी। यहाँ हिन्दुओंमें जागृति फैली। उनकी जागृतिको मुसलमान सहन न कर सके और जो लोग वैर निकालनेका मौका ढूँढ़ रहे थे उन्हें उक्त पुस्तिकाके रूपमें बहाना मिल गया। यदि यही एक कारण होता तो वे इस पुस्तिकाके प्रकाशकको गिरफ्तार करा सकते थे। वे उसे स्वयं कुचल देते और चाहते तो पुस्तिकासे सम्बन्धित अन्य लोगोंको भी कुचल देते। किन्तु वहाँ तो पूरी जातिपर ही अत्याचार किया गया। इसका कारण गहरा होना चाहिए। यह कारण अचानक ही मेरे हाथ लग गया। धर्म-परिवर्तनके सम्बन्धमें मुसलमानोंने सब बातें साफ-साफ कह सुनाईं। किन्तु उनकी इस प्रवृत्तिसे मुझे बहुत चोट पहुँची। यदि ३० करोड़ हिन्दू धर्म-पुस्तकोंके अध्ययन और सोच-विचारके बाद मुसलमान हो जायें तो मुझे कुछ भी दुःख न होगा। तब मैं अकेला ही हिन्दू बना रहूँगा। और इस प्रकार हिन्दुत्वके गौरवको बढ़ाऊँगा अथवा यह कहें कि हिन्दुत्वके अमरत्वका साक्षी बनकर रहूँगा और कहूँगा कि ये सब हिन्दू हिन्दुत्वके तेजको सहन न कर सकनेके कारण मुसलमान हो गये हैं। किन्तु वहाँ तो यह हुआ कि हिन्दू लोभ या भयके कारण मुसलमान बन गये। यह स्थिति सहन नहीं की जा सकती। मैं यह बात आपको दृढ़ बनानेके लिए कह रहा हूँ जिससे आप अपने धर्मपर आरूढ़ रहें। इसके बावजूद मेरी अहिंसावृत्तिमें, प्रेम भावनामें और मुसलमानोंके प्रति मेरे सद्भावमें कोई अन्तर नहीं आयेगा। मैं तो उनमें जितनी अधिक कमजोरियाँ देखूँगा उनकी उतनी ही अधिक सेवा करूँगा। मेरा प्रेमभाव तो अवश्य ही कायम रहेगा। किन्तु प्रेमकी भाषा बदल जायेगी। वह पहलेसे कठोर हो गई है और अभी अधिक कठोर होगी — ऐसे ही जैसे अंग्रेजोंके प्रति मेरी भाषा कठोर होती जा रही है। केवल इतना ही अन्तर होगा। आज आपको जाग्रत और सावधान करना ही मेरा हेतु है। मैं आपको जाग्रत इसलिए करता हूँ कि किसी अवसरपर आपके ऊपर भी ऐसा संकट आ सकता है। यदि आश्रममें से किसी बालक या बालिकाका अपहरण किया जाये तो आप मेरे सिद्धान्तोंका स्थूल अर्थ करके खड़े-खड़े देखते न रह जायें। आत्मशुद्धिका निश्चय अपने-आपमें बलदायक है। जिसका हृदय शुद्ध और पवित्र है उसको शरीर-बल बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। उसका शरीर तो अपने आप सशक्त हो जाता है। और तब केवल निश्चय ही पर्याप्त होता है। सोनेसे पूर्व राम-नाम लेना चाहिए, यह मेरा निश्चय है; इसलिए राम-नाम लिये बिना मुझे कभी नींद ही नहीं आती। यदि आ जाती है तो मैं नींदमें करवट बदलते समय राम-नाम लेता हूँ और मेरे राम मुझे अपने पास खड़े दिखाई देते हैं। यही बात सभी निश्चयोंपर लागू होती है।

आश्रममें तो संकट आनेपर एक बालकको भी डरना नहीं है। उसके पास आत्मबल नहीं है तो नख तो हैं। [इसके बाद उन्होंने कहा,] हम नखोंको इसलिए

१. देखिए "कोहाटके दंगोंके बारेमें कमाल जिलानीसे जिरह", ६ फरवरी, १९२५।

काट देते हैं कि वे जब बढ़ जाते है तब उनमें मैल भर जाता है और उससे हानि पहुँचती है। इसलिए उन्हें हम काट देते हैं। इसी प्रकार हमें शरीरके उन तत्त्वोंको भी, जो हानिकारक हो जाते हैं एक-एक करके दूर करते रहना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

५५. पत्र: माणिकलाल अमृतलाल गांधीको

गाड़ीमें
मंगलवार [१० फरवरी, १९२५][1]

चि० माणिकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने बाबूके सम्बन्धमें जो लिखा वह मैं समझ गया। तुमने उसे भेज दिया, यह ठीक किया। यदि उसे अनुकूल पड़े और वह रह सके तो अच्छा ही है।

प्रभुदासका स्वास्थ्य तो वहाँके जलवायुसे बहुत सुधरा है। यदि मणिका स्वास्थ्य भी ऐसे ही सुधरे तो कैसा अच्छा हो? किन्तु वह चिन्ता बहुत करती है। और चिन्ता तो मनुष्यको मार ही देती है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

आशा है मैं पोरबन्दर १९ तारीखको पहुँचूंगा। यदि महामारीका जोर बढ़ जाये तो क्या किया जा सकता है। इस बातपर तो देवचन्दभाई अवश्य ही विचार कर रहे होंगे।

चि० माणिकलाल अमृतलाल गांधी
राणावाव
काठियावाड़

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ८९०) से।
सौजन्य: माणिकलाल अ० गांधी

१. डाककी मुहरसे।

५६. पत्र : रामेश्वरदास बिड़लाको

साबरमती
माघ कृष्ण ४ [११ फरवरी, १९२५][1]

भाई रामेश्वरदासजी,

आपका पत्र मीला। जमनालालजी[2] आजकल यहां हैं। उन्होंने मुझे खबर दी है कि रु० १०,००० उनकी पेढी पर मील गये हैं। उसका व्यय अंत्यज सेवामें करूंगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

आपका स्वास्थ्य अच्छा है जानकर आनन्द हुआ।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०४) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

५७. भाषण : अंकलावमें

११ फरवरी, १९२५

स्वराज्य वही कहा जा सकता है जिसमें हमारे गरीबसे-गरीब भाई भी सुखसे रह सकें। अगर लोगोंको भूखसे मरनेकी नौबत आती है तो उसके लिए हम लोग, जिन्हें कभी अन्नका अभाव नहीं हुआ, उत्तरदायी हैं। इस गाँवमें सौ साल पहले जो बहनें रहती थीं, वे सूत कातती थीं और भाई सूत कातते या कपड़ा बुनते थे।

धारालाओंमें दुर्व्यसन हैं। वे शराब पीते हैं और चोरी करते हैं। जबतक यह सब होता है तबतक धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। दुर्भाग्यसे यहाँके हिन्दू और मुसलमानोंमें भी अनबन है। हमें अपना धर्म प्रिय होना चाहिए; किन्तु यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग हो तो मेरे लिए यह धर्म निकम्मा है। जो मनुष्य मैलसे अपवित्र हो गया हो वह स्नान करके शुद्ध हो जाता है किन्तु यदि हम उसे फिर भी अस्पृश्य मानें तो यह पाप है। हिन्दुस्तानके लोग संसारके लिए ढेढ़ और भंगी हैं। मनुष्य जैसा

१. पत्रपर डाकखानेकी मुहर ११ फरवरी, १९२५ की है पर १९२५ में माघ कृष्ण चतुर्थी १२ फरवरीको पड़ी थी। पत्र सम्भवतः माघ कृष्ण ३ को लिखा गया होगा।

२. जमनालाल बजाज।

करता है, वैसा भरता है। हमारी दासताके लिए अंग्रेज दोषी नहीं हैं। हमारी ही अस्पृश्यताके पापरूपी बीजमें से दासताका वृक्ष उगा है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

५८. भाषण : बोरसदमें

११ फरवरी, १९२५

बोरसद सत्याग्रह संघर्षके कारण तीर्थस्थान ही बन गया है। किन्तु जैसे हिन्दुस्तानके तीर्थ स्थान अब तीर्थ क्षेत्र नहीं रह गये हैं, कहीं वैसी ही हालत बोरसदकी भी तो नहीं हो गई? आप लोगोंने वहाँ संघर्ष करके जो विजय प्राप्त की, वह कोई मामूली बात नहीं थी। किन्तु संघर्ष करना एक बात है और उसे समेट कर उसके बाद रचनात्मक कार्य करना दूसरी बात है। संघर्षका अच्छा परिणाम निकालना अति कठिन हो जाता है, बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि संघर्ष व्यर्थ ही किया। जैसे लम्बा उपवास करनेके बाद — उसकी ठीक समाप्ति कठिन हो जाती है, वैसे ही लड़ाई करनेके बाद उसका ठीक अन्त करना भी कठिन हो जाता है। यह बात हमने खेड़ाके सत्याग्रहके बाद भी देखी और इस लड़ाईके बाद भी यही दिखाई दे रहा है। बहुत बड़े क्षेत्रमें, यूरोपमें भी यही देखा गया था। वहाँ इंग्लैंड और जर्मनीके बीच बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। इसमें बहुत बड़ा बलिदान किया गया और हमने यह आशा प्रकट की थी कि इसके फलस्वरूप यूरोपकी स्थिति बदल जायेगी। इसके परिणामस्वरूप यूरोपके लोग अधिक नीतिमान, पवित्र, सावधान और ईश्वरसे डरनेवाले बन जायेंगे। किन्तु वहाँ जो ढोंग पहले चलता था वह आज भी चलता है और जिन लोगोंने बलिदान किया था उनकी स्थिति दयनीय है। हमें आशा करनी चाहिए कि इस लड़ाई और उस लड़ाईमें जो अन्तर है, वह अन्तर उनके परिणामोंमें भी होगा। वह लड़ाई विनाशकारी थी। सत्याग्रहकी लड़ाईमें एक भी पक्षका नाश नही होता, दोनोंका भला ही होता है। फिर भी सत्याग्रह-जैसी शुद्ध लड़ाईमें अन्तमें जो परिणाम देखना चाहते है वह क्यों नहीं निकलता? इसका कारण यही है कि आवेश दोनों ही प्रकारकी लड़ाईमें पाया जाता है। हमें जितनी शान्ति और वीरता दिखानी चाहिए उतनी हम नहीं दिखा पाते, इसलिए ऐसा लगता है मानो हमारे सब करे-धरेपर पानी फिर गया हो। किन्तु यहाँ तो मुझे दरबार साहबने[1] पहले ही चेतावनी दे दी थी कि वे हमें खादी-नगर बनाकर नहीं दिखा सकेंगे, क्योंकि लोग इस लड़ाईके बावजूद खादीके महत्त्वको पूरी तरह नहीं समझे है। इसलिए मैं यहाँ कोई बड़ी आशा लेकर नहीं आया हूँ और इसी कारण मुझे बहुत अधिक असन्तोष भी नहीं होता।

१. दरबार साहब गोपालदास।

एक शालाको चलानेके लिए भी बहुत शक्तिकी जरूरत होती है। जैसा पिण्डमें, वैसा ही ब्रह्माण्डमें, यह उक्ति सर्वत्र ही सत्य है। यदि मुझे सत्याग्रह आश्रमको चलाना ठीक तरहसे आता हो तो मैं लॉर्ड रीडिंगकी गद्दी भी सहज ही सम्भाल सकता हूँ। मुझे सत्याग्रह आश्रमको चलानेमें जो कठिनाइयाँ होती हैं, उसके लिए मुझे जितना सोचना पड़ता है और जितनी समस्याओंको सुलझाना पड़ता है, उतना तो हमें लड़ाईको चलानेमें भी नहीं करना पड़ता। लड़ाईको चलानेमें करना ही क्या पड़ता है? मैं एक निश्चित कार्यक्रम बनाकर आपसे कहता हूँ कि यह कार्य करो। मैं इसमें केवल अपनी जीभ हिला देता हूँ। किन्तु आश्रमको चलाना तो इससे बहुत अधिक कठिन काम है। मुझे इस जन्ममें वाइसराय बननेकी इच्छा नहीं है; इच्छा है तो केवल हिन्दुस्तानका सच्चा और शुद्ध सेवक बननेकी है। किन्तु मैं इतना सहज कहना चाहता हूँ कि वाइसरायका काम करते हुए जितना श्रम करना पड़ता है, उससे अधिक आश्रमको चलानेमें करना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि आप भी इस विनय-मन्दिरको चलानेमें जी-जानसे जुट जायें। यह काम आप जितनी निष्ठासे करेंगे, आपकी आत्मा उतनी ही अधिक शुद्ध बनती चली जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-२-१९२५

५९. भाषण : भादरनमें[1]

११ फरवरी, १९२५

आपने जो प्रेम दिखाया और अभिनन्दन-पत्र दिया उसके लिए आभार प्रकट करनेके पहले मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ। आप जो इतनी रात गये इतनी ज्यादा तादादमें यहाँ एकत्र हुए हैं यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है; यदि मैं यह बात न कहूँ तो मानो आपके प्रति अपराध ही होगा। परन्तु साथ ही मुझे दुःख भी हुआ है। इस सभाके व्यवस्थापकोंने जो व्यवस्था की है वह जानबूझकर की है या अनजानमें, सो मैं नहीं जानता। पर अबतक सभाओंमें जानेवाले लोग मेरी खासियतें जान गये हैं। इसमें एक यह है कि यदि किसी भी जलसेमें मैं अन्त्यजोंके लिए अलग विभाग देखूँ तो मुझे भारी चोट पहुँचती है और कुछ भी बोलना मेरे लिए असम्भव हो जाता है। आपने कहा है और दूसरे लोग भी कहते हैं कि अहिंसा मेरे जीवनका परम सूत्र है। अहिंसाको मैं अपने जीवनमें गूँथ रहा हूँ। यदि यह बात सच हो तो मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं आपके दिलको चोट पहुँचाना चाहता हूँ। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप बिना सोचे-समझे कुछ करें। रोषमें भी मैं आपसे कुछ नहीं कराना चाहता। मैं जो-कुछ आपसे करा सकता हूँ, वह आपके बुद्धि और हृदयको द्रवित करके ही। अतएव मेरी प्रार्थना है कि यदि आप

१. गुजरातके खेड़ा जिलेका एक गाँव।

अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका कलंक मानते हों तो आप इस विषयमें मेरा समर्थन करें कि जो वाड़ हमें अन्त्यज भाइयोंसे जुदा कर रही है, निर्मूल हो जाये।[1]

मै यह नहीं कहता कि आप बाड़को अभी तोड़ डालें या सभाके काममें व्यवधान करके कुछ करें। मैं तो आपकी सम्मति लेना चाहता हूँ। क्या आप चाहते हैं कि यह बाड़ न रहे और अन्त्यज भाई-बहन हमारे साथ आकर बैठें?[2] आपने मुझे अभिनन्दन-पत्र दिया है। आपने जिस चौकठेमें मढ़वाकर जिस कागजपर अथवा खादीपर छापकर 'अभिनन्दन-पत्र दिया उसका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है, अथवा उतना ही है जितना आप खुद अपने आचरणसे साबित करेंगे। पर अभी आपने इस वाड़को तोड़कर मेरा जो अभिनन्दन किया है, वह मेरे हृदयमें हमेशा अंकित रहेगा। ऐसा ही अभिनन्दन-पत्र मैं अपने हिन्दू भाई-बहनोंसे चाहता हूँ। आप यदि मुझे थोड़ा-बहुत सूत लाकर दे देंगे, मेरे सामने तरह तरहके फल-फूल और मेवे लाकर रख देंगे, या अन्त्यज बालिकाके हाथसे कुंकुम-तिलक करायेंगे (जैसा कि यहाँ कराया गया) तो इससे मुझे खुशी नहीं हो सकती। ये चीजें तो मुझे चाहे जहाँ मिल जायेंगी; पर अभी आपने जो चीज दी है उसके लिए तो प्रेमकी जंजीर दरकार है। और मैं इस प्रेमकी जंजीरके सिवा आपसे कुछ नहीं चाहता। क्योंकि प्रेम अहिंसाका अंग है। प्रेममें अहिंसाका समावेश हो जाता है।

सनातनी भाइयोंसे मेरा यह कहना है कि वे यह न मानें कि मैं हिन्दू-समाज-को आघात पहुँचाना चाहता हूँ। मैं खुद अपनेको सनातनी गिनता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा दावा बहुत कम भाई-बहन कुबूल करते होंगे — पर मेरा यह दावा है और रहेगा। मैं तो कई बार कह चुका हूँ कि आज नहीं तो मेरी मृत्युके बाद समाज इस बातको जरूर कुबूल करेगा कि गांधी सनातनी हिन्दू था। 'सनातनी' के मानी हैं 'प्राचीन'। मेरे भाव प्राचीन है — अर्थात् ये भाव मुझे प्राचीनसे-प्राचीन ग्रंथोंमें दिखाई देते है और उन्हें मै अपने जीवनमें उतारनेकी कोशिश कर रहा हूँ। इसी कारण मै मानता हूँ कि मेरा सनातनी होनेका दावा बिलकुल ठीक है। शास्त्रोंकी कथाको रोचक बना-बनाकर प्रस्तुत करनेवालोंको मैं सनातनी नहीं कहता। सनातनी तो वही है जिसकी रग-रगमें हिन्दू धर्म व्याप्त हो। इस हिन्दू धर्मका वर्णन भगवान् शंकरने[3] एक ही वाक्यमें कर दिया है — 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। दूसरे ऋषियोंने कहा है 'सत्यसे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं।' और अन्योंने कहा है कि अहिंसा ही हिन्दू धर्म है। इन तीनमें से आप चाहे किसी सूत्रको ले लीजिए, उसमें आपको हिन्दू धर्मका रहस्य मिल जायेगा। ये तीन सूत्र क्या हैं, मानों हिन्दू धर्मशास्त्रोंको मथकर निकाला उनका नवनीत ही है। धर्मका अनुयायी, सनातनधर्मका दावा करनेवाला मैं किसी भी शख्सके दिलको कदापि चोट नहीं पहुँचाना चाहूँगा। मै तो सिर्फ इतना ही

१. ये शब्द मुँहसे निकले ही थे कि कुछ लोग सभासे उठकर शान्तिके साथ बाँसकी टट्टियोंके बन्द छोड़ने लगे।

२. बहुतेरे हाथ ऊपर उठे, सिर्फ एक हाथ खिलाफ उठा; और अन्त्यजोंको सबके साथ बैठा दिया गया।

३. आद्य शंकराचार्य।

चाहता हूँ कि आप अन्त्यजोंको छूनेमें परहेज न करें। अन्त्यज मनुष्य हैं। मैं चाहता हूँ कि उनकी सेवा हो; क्योंकि वे सेवाके लायक हैं। जैसी सेवा माता बालककी करती है वैसी ही वे समाजकी सेवा करते हैं। उनको अछूत मानना, उनका तिरस्कार करना मानो अपना मनुष्यत्व गँवाना है। हिन्दुस्तान आज संसारमें अछूत बन गया है। इसका कारण यह है कि उसने अनेक कोटि अर्थात् असंख्य लोगोंको अस्पृश्य मान रखा है। और इसका फल यह हुआ है कि हमारे साथ रहनेवाले मुसलमान भी दुनियामें अस्पृश्य माने जाने लगे हैं। यह उलटा परिणाम क्यों हुआ? इसका एक ही जवाब है। 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' यह ईश्वरका न्याय है। संसारके द्वारा ईश्वर हमें इस न्यायकी शिक्षा दे रहा है। इसे समझना कठिन नहीं है; यह तो सीधा-सा न्याय है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" भगवान् कृष्णने कहा है कि तुम जिस तरह मुझे भजोगे उसी तरह मैं तुम्हें भजूँगा। इसलिए मैं आपसे जो-कुछ चाहता हूँ यदि आप उसे समझ लेंगे तो आपको कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। मैं आपको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता। मैं आपसे जरूरतसे ज्यादा आशा नहीं करता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप अन्त्यजोंके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करें। यह तो आपकी इच्छाकी बात है। परन्तु अन्त्यजको अस्पृश्य मानना इच्छाका विषय नहीं है। जिसका स्पर्श करना चाहिए, उसे अस्पृश्य मानना और जो अस्पृश्य हैं, उनका स्पर्श करना, इच्छाका विषय नहीं है। यदि आप अन्त्यज भाइयोंके दुःखोंको महसूस न कर सकें, तो फिर आप 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' किस तरह कह सकते हैं? उपनिषदोंके रचयिताओंमें पाखण्डी कोई भी न था। उन्होंने जगतको ब्रह्ममय कहा है। अतएव हम यदि अन्त्यजके दुःखसे दुःखी न होंगे तो हम अपनेको जानवरसे भी बदतर साबित करेंगे। हमारा धर्म पुकार-पुकार कर कह रहा है कि जो जीव पशुमें है वही हम सब लोगोंमें भी है। किन्तु हमने तो उस धर्मका गला ही घोंट दिया है। अखा भगतने अस्पृश्य भावनाको धर्मका अधिकांग कहा है। मैं तो दयाभावसे, प्रेमभावसे, भ्रातृभावसे इस अधिकांगकी शल्यक्रिया करनेको कहता हूँ। यदि ऐसा करेंगे तो हिन्दू धर्मकी शोभा बढ़ जायेगी। इसमें हिन्दू धर्मकी रक्षा भी आ जाती है। हेतु यह नहीं है कि अन्त्यजोंका मुसलमान या ईसाई बनना रुकेगा। किसी भी धर्मका आधार उसके अनुयायियोंकी संख्यापर अवलम्बित नहीं रहता। संख्याको धर्म-बलका आधार माननेसे बढ़कर भ्रान्त कोई भी धारणा नहीं है। यदि एक भी व्यक्ति सच्चा हिन्दू रहे तो हिन्दू धर्मका नाश नहीं हो सकता; और यदि पाखण्डी हिन्दू करोड़ों भी हों तो उनसे हिन्दू धर्मकी रक्षा नहीं होती; ऐसी अवस्थामें तो उसका विनाश ही निश्चित समझिए। मैंने जो यह कहा कि हिन्दू धर्म सुरक्षित रहेगा, उसका भाव यह है कि जब हम प्रायश्चित्त कर चुकेंगे, अनेक युगोंका ऋण अदा कर देंगे, तभी हमें इस दारिद्र्यसे छुटकारा मिलेगा।

अस्पृश्यतामें घृणाभाव स्पष्ट है। कोई यदि कहे कि अस्पृश्य भावना रहते हुए भी मैं अछूतोंसे प्रेम करता हूँ, तो मैं इस बातको कभी नहीं मान सकता। मुझे तो इसमें प्रेमभाव कहीं प्रतीत नहीं होता। यदि प्रेम हो तो हम उन्हें न तो दुरदुरा सकते हैं और न जूठन ही खिला सकते हैं। प्रेम हो तो हम उसी तरह उन्हें पूजेंगे

जिस तरह माता-पिताको पूजते हैं। प्रेम हो तो हम उनके लिए अपनेसे भी अच्छे कुएँ, अच्छे मदरसे बनवा देंगे, उन्हें मंदिरोंमें आने देंगे। ये सब प्रेमके चिह्न हैं। प्रेम अगणित सूर्योंसे मिल कर बना है। जब एक सूर्यका प्रकाश ही फैले बिना नहीं रहता तब भला प्रेम क्यों कर छिपा रह सकता है? किसी माताको कहीं यह कहना पड़ता है कि मैं अपने बच्चेको चाहती हूँ? जिस बच्चेको बोलना नहीं आता वह माताको आँखके सामने देखता है और जब आँख मिल जाती है तब हम देखते हैं कि वे अलौकिक भावसे आप्लावित हैं।

मेरे कहनेसे कोई यह भी न मान बैठे कि दक्षिण आफ्रिकासे आया हुआ नई रोशनीवाला यह हिन्दू अपने विचार हिन्दू धर्ममें प्रविष्ट कर देना चाहता है। मैं कह सकता हूँ कि सुधार करनेकी मुझे अभिलाषा नहीं है। मै तो स्वार्थी आदमी हूँ और खुद अपने ही मनमें मगन रहता हूँ। मैं तो अपनी आत्माका कल्याण करना चाहता हूँ। इसलिए मैं तटस्थ और निश्चिन्त बना बैठा हूँ। पर मै चाहता हूँ कि जिस आनन्दका अनुभव मैं कर रहा हूँ उसका उपभोग आप भी करें। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि अन्त्यजोंका स्पर्श करके, उनकी सेवा करके जो आनन्द प्राप्त होता है आप उसका उपभोग कीजिए।

वर और वधूको हम तो माला ही अर्पित कर सकते हैं। यदि वे प्रेमके बन्धनमें बँध जायें तो फिर हमें और चाहिए ही क्या? यदि वे परस्पर जीवनसंगी बन जायें तो शेष क्या रह जाता है? अगर इससे अधिककी इच्छा किसीको हो तो फिर उसे विवाह करनेका अधिकार नहीं है। विवाहको अनिवार्य माननेकी बेढंगी प्रथाके अन्तर्गत कोई विवाह न करे, मैं तो यही चाहता हूँ। ऐसे कठिन संयोगमें पड़ी हुई कन्या यदि आजीवन कौमार्यका पालनकरे, तपश्चर्या करे, और उमाकी तरह व्रत लेकर बैठ जाये कि शिवके अतिरिक्त किसीसे विवाह नहीं करूँगी तो उसे इस जीवनमें नहीं तो अगले जीवनमें शिव अवश्य मिलेंगे। ऐसी बालिका सारी जातिका मुख उज्ज्वल करेगी। मै चाहता हूँ कि सब लोग यह बात समझ जायें कि विवाह भोगका साधन नहीं है; संयमका साधन है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-२-१९२५

६०. एक डायरीके पृष्ठ[1]

कुमारी ऐंगस और कुमारी हिंडस्लेको अडयारसे डाक्टर बेसेंटने पिंजाई, कताई आदि सीखनेके लिए आश्रममें भेजा था जिससे वे अडयार लौटकर दूसरे लोगोंको उनकी शिक्षा दे सकें। वे आश्रममें एक महीना रहीं और उन्होंने अपने दैनिक अनुभव अपनी डायरीमें लिखे। जब वे वापस जाने लगीं तो वे 'यंग इंडिया' में प्रकाशनकी दृष्टिसे अपनी-अपनी डायरीके सम्बन्धित अंश दे गईं। उन्हें पहली बार पढ़नेपर मैंने सोचा कि उन्हें न छापना ही ठीक होगा, क्योंकि वे मुझे बहुत अधिक व्यक्तिगत जान पड़े। सोचनेपर यह खयाल आया कि उनमें जहाँ-जहाँ व्यक्तिगत बातें हैं उन्हें काट दिया जाये और तब टिप्पणियाँ प्रकाशित कर दी जायें। लेकिन उन्हें फिर पढ़नेपर मैंने यही निश्चय किया है कि वे टिप्पणियाँ बिना किसी फेरफारके ही दे दी जायें। मैं अबतक व्यक्तिगत बातोंके उल्लेखका भार सहता रहा हूँ। इतना अतिरिक्त भार बहुत अच्छी तरह सह सकता हूँ। इन टिप्पणियोंमें एक विशेष गुण है, जिसके कारण मैं उन्हें प्रकाशित करनेके लिए विवश हूँ। उनमें आश्रमका जो वर्णन है वह पूराका-पूरा सत्य नहीं है। इन मित्रोंको यहाँकी बातें जितनी सुन्दर लगी हैं वे उतनी सुन्दर नहीं हैं। आश्रममें विसंगतियाँ हैं, उसके कष्ट और कठिनाइयाँ हैं, उसकी बहुत-सी बाधाओंको दूर करना है। लेकिन आश्रममें उसके नामके अनुरूप जीवन बितानेका प्रयत्न किया जाता है। आश्रममें निश्चय ही कुछ बातें हैं जिनका अनुकरण बिना कोई जोखिम उठाये किया जा सकता है। किन्तु मुझे पाठकोंको यह चेतावनी दे देनी चाहिए कि वे इस सुखद वर्णनकी कुछ बातोंसे भ्रमित होकर आश्रममें प्रवेशकी प्रार्थना न करें। व्यवस्थापकने मुझे यह स्थायी सूचना दे रखी है कि वे जितने सदस्योंकी देखभाल कर सकते हैं, आश्रममें उनसे ज्यादा सदस्य हैं और उन्हें अपने सामर्थ्यसे अधिक काम करना पड़ता है। कुमारी ऐंगस और हिंडस्लेने जिस जीवन पद्धतिका वर्णन किया है, उसे पसन्द करनेवाले लोग जहाँ भी रहते हों, वहीं उसका अनुकरण करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-२-१९२५

१. यह डायरी **यंग इंडियाके** १२ फरवरीसे ५ मार्चके अंकोंमें प्रकाशित हुई है। यहाँ केवल गांधीजीकी प्रस्तावनाका अनुवाद दिया जा रहा है।

६१. टिप्पणियाँ

बिहारका इरादा

बिहारके एक सज्जनके पत्रसे मैं नीचे लिखी बातें प्रकाशित करता हूँ:[1]

मैं आशा करता हूँ कि अन्य प्रान्त भी अपना-अपना कार्यक्रम बना लेनेमें देर न लगायेंगे। मैं जितनी जल्दी हो सके बिहार जाना चाहता हूँ। पर मेरा जाना-आना मेरे हाथकी बात नहीं है। जहाँ तकदीर ले जाती है, मुझे वहीं जाना पड़ता है। इसलिए पहलेसे वचन दे देना व्यर्थ है।

कानपुरमें

डा० अब्दुस्समद लिखते हैं:[2]

मैंने इसकी ताईदके लिए डा० मुरारीलालको नहीं लिखा, क्योंकि डाक्टर अब्दुस्समदका वक्तव्य खुद ही तटस्थ और निर्दोष जान पड़ता है। यदि डा० मुरारीलालका वक्तव्य इससे भिन्न होगा तो मैं उसे खुशीसे प्रकाशित करूँगा। झगड़े तो व्यवस्थितसे-व्यवस्थित समाजोंमें भी हो जाते हैं। पर झगड़ेके बाद दोनों तरफके लोगोंने जिस सद्भावसे काम लिया वह सराहनीय है। अब रही कुछ आर्य-समाजियोंपर लगाये गये इल्जामकी बात, सो मैं नहीं कह सकता, वे कहाँतक उसे कबूल करेंगे। मैं आशा ही कर सकता हूँ कि कानपुरके सभी समाजोंके लोग स्वयं अधिकसे-अधिक संयम और उपद्रवी लोगोंपर पूरा अंकुश रखनेका भरसक प्रयत्न करेंगे एवं अपनेसे भिन्न धर्म, मत या राजनैतिक विचार रखनेवाले प्रतिस्पर्धियोंके प्रति उदारता बरतनेके लिए सदा तैयार रहेंगे।

एक मूक सेवक

चटगाँवसे एक सज्जन एक मूक-सेवकके कामके विषयमें इस तरह लिखते हैं:[3]

श्रीयुत कालीशंकर चक्रवर्ती चटगाँवके एक मूक और अथक कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने हाल ही में चरखेके प्रत्यक्ष प्रयोगकी व्यवस्था की है। . . . वे रोज सुबह अपना बड़ा चरखा लेकर चार परिवारोंमें जाते हैं। वहीं बैठकर चरखा कातते हुए उन्हें सिखाते

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके विभिन्न उत्पादन केन्द्रोंके कामकी तफसील दी गई थी और बताया गया था कि प्रान्तीय समिति उतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं है; उसका इरादा प्रतिवर्ष कमसे-कम ५ लाख रुपयोंकी खादी तैयार करने अर्थात् वर्तमान उत्पादनको तिगुना करनेका है। साथ ही उसमें गांधीजीको वहाँ आनेके लिए आमन्त्रित किया गया था।

२. पत्र नहीं दिया गया है। इसमें २-२-१९२५ को कानपुरमें हिन्दू मुसलमानोंके बीच जो झगड़ा हुआ था समाचारपत्रोंमें प्रकाशित उसके विवरणको भ्रमपूर्ण बताते हुए स्थानीय कांग्रेसके अध्यक्ष डा० मुरारीलालसे पत्र-लेखक द्वारा दिये गये तथ्योंके सत्य होनेके बारेमें पूछ लेनेके लिए भी कहा गया।

३. अंशतः उद्धृत।

भी हैं और काता हुआ सूत उनसे माँग लेते हैं।. . .वे लोग चरखा माँगते हैं और सूत भेजनेका वादा करते हैं। ऐसे-ऐसे लोग भी जो चरखेका मजाक उड़ाते थे उसके कायल होते जा रहे हैं। . . .

मैंने पत्रको संक्षिप्त कर लिया है और उसकी अंग्रेजी भी सुधार दी है। मैं सभी कार्यकर्त्ताओंका ध्यान इसकी ओर दिलाता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोरी बातोंकी अपेक्षा काम करके दिखा देना कहीं ज्यादा अच्छा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-२-१९२५

६२. एक क्रान्तिकारीका बचाव

एक सज्जनने, जिन्होंने अपना नाम दिया है लेकिन पता नहीं दिया, एक पत्र भेजा है, जिसे वह 'खुली चिट्ठी' कहते हैं। मैंने बेलगाँव कांग्रेसके अपने भाषणमें[1] क्रान्तिकारी आन्दोलनके सम्बन्धमें जो बातें कही थीं, इस पत्रमें उन्हींका उत्तर दिया गया है। पत्र देश-प्रेम, उत्साह और आत्मत्यागके भावसे ओत-प्रोत है। इसके अलावा यह उस अन्यायकी अनुभूतिसे लिखा गया है जो कहा जाता है, मैंने क्रान्तिकारियोंके प्रति किया है। इसलिए मैं इस गुमनाम पत्रको प्रसन्नतापूर्वक छापता हूँ। लेखकका पता नहीं दिया गया है। पत्रका पूरा पाठ ज्योंका-त्यों नीचे देता हूँ:[2]

मैं देशके राजनीतिक जीवनसे कब और कैसे निवृत्त होऊँगा, इस सम्बन्धमें मैंने किसीको कोई वचन नहीं दिया है।[3] लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है और अब भी कहता हूँ कि यदि मैं यह देखूँगा कि भारत मेरे सन्देशको ग्रहण नहीं करता और रक्तमय क्रान्ति चाहता है तो मैं निश्चय ही हट जाऊँगा। उस आन्दोलनमें मैं कोई भाग नहीं लूँगा, क्योंकि मैं भारतके लिए या संसारके लिए, जो एक ही चीज है, उसे उपयोगी नहीं मानता।

मैं अवश्य ही यह विश्वास करता हूँ कि देशने असहयोगके आह्वानका आश्चर्य-जनक उत्तर दिया; लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि असहयोग जिस हदतक किया गया उसकी तुलनामें सफलता अधिक मिली है। जन-समुदायमें जो आश्चर्यजनक जागृति हुई है वह इस तथ्यका जीता-जागता प्रमाण है।

मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि देशने बहुत अधिक आत्मसंयम बरता है, लेकिन मुझे अपना यह मत भी दोहरा देना चाहिए कि देशमें जिस स्तरकी अहिंसा-का पालन किया गया वह अपेक्षित स्तरसे बहुत नीचे दर्जेकी थी।

मेरा विश्वास यह नहीं है कि 'मेरा तत्त्वज्ञान' टॉल्स्टॉय और बुद्धके विचारोंका बेतुका मिश्रण है। वह क्या है यह मैं नहीं जानता; हाँ, इतना कह सकता हूँ

१. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५०४-२५।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। गांधीजीके उत्तरसे पत्रके विषयका अनुमान हो जाता है।

३. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ५८५-८८।

कि वह वही है जिसे मैं सच समझता हूँ। उससे मुझे सहारा मिलता है। मैं टॉल्स्टॉय और बुद्धका बहुत ऋणी हूँ। किसी-न-किसी तरह अब भी मेरा खयाल है कि 'मेरे तत्त्वज्ञान' में 'गीता' की शिक्षाओंका सच्चा भाव आ जाता है। सम्भव है मेरा खयाल बिलकुल गलत हो; किन्तु उसके गलत होनेसे मेरी या किसी अन्य व्यक्तिकी कोई हानि नहीं होती। यदि मै विशुद्ध सत्यका समर्थक हूँ तो मेरी प्रेरणाका स्रोत क्या है, यह विचार व्यर्थ है।

जो तत्त्वज्ञान मेरा कहा जाता है उसकी कसौटी उसके गुणावगुणके आधारपर होनी चाहिए। मै मानता हूँ कि संसार सशस्त्र विद्रोहोंसे त्रस्त हो गया है। मैं यह भी मानता हूँ कि दूसरे देशोंमें चाहे जो-कुछ हुआ हो, रक्तमय क्रान्ति भारतमे कभी सफल न होगी। जन-समुदाय उसका साथ नहीं देगा। जिस आन्दोलनमें जन-समुदाय कोई सक्रिय भाग नहीं लेता उससे कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। सफल रक्तमय क्रान्तिसे जन-समुदायके कष्ट बढ़ ही सकते हैं। क्योंकि जनताके नजदीक तो इसके बाद भी शासन विदेशी शासन जैसा ही होगा। मैं जिस अहिंसाकी शिक्षा देता हूँ वह अत्यन्त शक्तिशाली लोगोंकी सक्रिय अहिंसा है। लेकिन अत्यन्त कमजोर लोग भी उसमें हिस्सा ले सकते हैं; उससे वे अधिक कमजोर नहीं बनेंगे। वे उसमें हिस्सा लेनेसे अधिक शक्तिशाली ही हो सकते हैं। जन-समुदाय जितना साहसी आज है उतना पहले कभी न था। अहिंसात्मक आन्दोलनमें यह आवश्यक होता है कि उसका संगठन सामूहिक पैमानेपर किया जाये। इसलिए उससे तामसिकता या अन्धकार या गतिहीनता उत्पन्न नहीं हो सकती। उससे राष्ट्रीय जीवनकी गति तेज होती है। वह आन्दोलन खामोशी-के साथ, करीब-करीब अदृश्य रूपमें अब भी जारी है; किन्तु वह जारी है, इसमें सन्देह नहीं।

क्रान्तिकारियोंने वीरता दिखाई है और त्याग किया है इससे मैं इनकार नहीं करता। लेकिन किसी बुरे उद्देश्यसे वीरता दिखाना और त्याग करना अत्यन्त उपयोगी शक्तिको बरबाद करना और एक बुरे उद्देश्यके निमित्त गलत ढंगसे किये गये त्याग और वीरताकी चमक दिखाकर लोगोंका ध्यान एक अच्छे उद्देश्यकी ओरसे हटाकर उसे नुकसान पहुँचाना है।

मुझे वीर और आत्मत्यागी क्रान्तिकारीके सामने गर्वके साथ खड़े होनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होती, क्योंकि मैं अहिंसक लोगोंका उतना ही वीरत्व और त्याग मुकाबलेमें खड़ा कर दे सकता हूँ, जिसमें खासियत यह होगी कि किसी निर्दोष व्यक्ति-के रक्तका एक धब्बा भी उसपर नहीं होगा। एक ही निर्दोष मनुष्यका आत्मबलिदान उन लाखों लोगोंके बलिदानसे लाखों गुना शक्तिशाली होता है, जो दूसरोंको मारते हुए मरते हैं। संसारमें जिस उद्दण्डतापूर्ण अत्याचारकी आजतक कल्पना हो पाई है, ऐसे किसी अत्याचारका मुँहतोड़ जवाब है — निर्दोष लोगोंका स्वेच्छा-प्रेरित बलिदान।

स्वराज्यके मार्गमें तीन बड़ी बाधाएँ हैं — चरखेका अपर्याप्त प्रचार, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें फूट तथा दलित वर्गोंपर अमानुषिक सामाजिक प्रतिबन्ध। मैं इन तीनोंकी ओर क्रान्तिकारियोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। यह काम बड़े धीरजसे करनेका है; मैं उनसे कहता हूँ कि वे इसे पूरा करनेमें धैर्यपूर्वक उचित सहयोग

दें। सम्भव है इसमें उन्हें कोई तड़क-भड़क दिखाई न दे। लेकिन इस कारण तो उसमें और भी अधिक धैर्य और शौर्यके साथ खामोशीसे निरन्तर उद्योग करनेकी आवश्यकता है, और आवश्यकता है उस आत्मोत्सर्गकी जो बड़ेसे-बड़ा क्रान्तिकारी ही कर सकता है। अधीर होनेसे क्रान्तिकारियोंकी दृष्टि धूमिल हो जायेगी और वे भटक जायेंगे। झूठे गौरवमें आकर फाँसीके तख्तेपर झूल जानेकी अपेक्षा जन-समुदायके बीच स्वेच्छापूर्वक और यशकी आशाको त्यागकर नित्य आधापेट खाकर सेवा करते हुए शरीरको गलाना निस्सन्देह अधिक वीरताका काम है।

आलोचना-मात्र असहिष्णुता नहीं है। चूँकि मुझे क्रान्तिकारियोंसे प्रेम और सहानुभूति है, इसलिए मैंने उनकी आलोचना की है। मुझे गलत माननेका उन्हें उतना ही अधिकार है, जितना मुझे उनकी गलती माननेका है।

'खुली चिट्ठी' में दूसरे मुद्दे भी हैं। लेकिन मैंने उनका उल्लेख नहीं किया है। मेरा खयाल है कि उनका उत्तर पाठक आसानीसे दे सकते हैं और इनका सम्बन्ध किसी महत्त्वपूर्ण विषयसे तो कदापि नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-२-१९२५

६३. भाषण: भादरनमें ब्रह्मचर्यपर[1]

१२ फरवरी, १९२५

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्यके विषयपर मैं कुछ कहूँ। कितने ही विषय ऐसे हैं, जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त लिखता हूँ। ब्रह्मचर्य भी एक ऐसा ही विषय है। इसपर भाषण तो मैं शायद ही कभी देता हूँ, क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसे बोलकर नहीं समझाया जा सकता। फिर मैं यह भी जानता हूँ कि यह एक बड़ी गहन वस्तु है। आप तो सामान्य ब्रह्मचर्यके विषयमें सुनना चाहते हैं, जिस ब्रह्मचर्यकी विस्तृत व्याख्या समस्त इन्द्रियोंका संयम है, उसके विषयमें नहीं। साधारण ब्रह्मचर्यको भी शास्त्रकारोंने बड़ी कठिन वस्तु बताया है। यह बात ९९ फीसदी सच है; इसमें १ फीसदीकी कसर है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम दूसरी इन्द्रियोंको संयममें नहीं रखते। इनमें मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वाको कब्जेमें रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणिशास्त्रके ज्ञाताओंका कथन है कि पशु जिस दरजे तक ब्रह्मचर्यका पालन करता है, उस दरजे तक मनुष्य नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखनेपर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रियपर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं — इच्छापूर्वक नहीं, स्वभावसे ही। वे केवल घासचारे आदि पर अपनी गुजर करते हैं — और महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जीनेके लिए खाते हैं, खानेके लिए जीते नहीं हैं। पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत करते हैं। माँ बच्चेको तरह-तरहके सुस्वादु भोजन कराती है। वह

१. सेवामण्डल द्वारा किये गये अभिनन्दनके उत्तरमें।

मानती है कि बालकके साथ प्रेम दिखानेका यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करके हम उन चीजोंमें स्वाद बढ़ाते नहीं बल्कि कम कर देते हैं। स्वाद तो रहता है भूखमें। भूखके वक्त सूखी रोटी भी सुस्वादु लगती है और बिना भूखके लड्डू भी स्वादरहित मालूम होंगे। पर हम तो अनेक चीजोंको खा-खाकर पेटको ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो पाता। जो आँखें हमें ईश्वरने देखनेके लिए दी हैं उनको हम मलिन करते रहते हैं। देखनेकी वस्तुओंको देखना नहीं सीखते। 'माता गायत्री क्यों न पढ़े और वह बालकको गायत्री क्यों न सिखाये', इसकी छानबीन करनेकी अपेक्षा उसके तत्त्वको समझकर सूर्योपासना कराये तो कितना अच्छा हो। सूर्यकी उपासना तो सनातनी और आर्य-समाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासनाके मानी क्या है? अपना सिर ऊँचा रखकर, सूर्यनारायणके दर्शन करके, दृष्टिको शुद्ध करना। गायत्रीके रचयिता ऋषि थे, दृष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदयमें जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, वह और कहीं दिखाई नहीं दे सकती। ईश्वरके जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाशसे बढ़कर भव्य रंगभूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालककी आँखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है? किन्तु माताके मनमें तो अनेक विचार उठते रहते हैं। बड़े-बड़े घरोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप लडका शायद बड़ा अधिकारी हो जायेगा, पर इस बातका कौन विचार करता है कि घरमें जाने-अनजाने जो शिक्षा बच्चोंको मिलती है, उससे वह कितनी बातें ग्रहण कर लेता है। माँ-बाप हमारे शरीरको ढकते हैं, सजाते है, पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़ बदनको ढकनेके लिए हैं, सर्दी-गर्मीसे रक्षा करनेके लिए हैं, सजानेके लिए नहीं। जाड़ेसे ठिठुरते हुए लड़केको जब हम अँगीठीके पास ढकेलेंगे, अथवा मुहल्लेमें खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेतमें कामपर छोड़ देंगे, तभी उसका शरीर वज्रकी तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है, उसका शरीर वज्रकी तरह जरूर होना चाहिए। हम बच्चोंको चौबीसों घंटे घरमें रखकर उन्हें ठंड आदिसे बचाये रखना चाहते हैं। इससे तो उनकी त्वचामें कृत्रिम ऊष्मा आ जाती है और उन्हें चर्म रोग हो जाते हैं। हमने शरीरको दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है। यह तो आगसे खेलना है।

यह तो हुई कपड़ेकी बात। फिर घरमें तरह-तरहकी बातें करके हम बच्चेके मनपर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादीकी बातें किया करते हैं और इसी किस्मकी चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि इस सबके बाद हम पूरे जंगली ही क्यों नहीं हो गये? मर्यादा तोड़नेके अनेक साधनोंके होते हुए भी मर्यादाकी रक्षा होती रहती है। ईश्वरने मनुष्यकी रचना इस तरहसे की है कि पतनके अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी अलौकिक लीला है। यदि हम ब्रह्मचर्यके रास्तेसे ये सारे विघ्न हटा दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाये।

ऐसी हालतमें भी हम शारीरिक शक्तिमें दुनियाके मुकाबिले खड़े होना चाहते हैं। इसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है — शरीरबल

प्राप्त करनेके लिए हर किस्मके उपायोंसे काम लेना — हर तरहकी चीजें खाना, कुश्ती आदि लड़ना, गोमांस खाना, इत्यादि। मेरे लड़कपनमें मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अंग्रेजोंकी तरह हट्टे-कट्टे नहीं हो सकेंगे। कवि नर्मदाशंकरने भी अपनी एक कवितामें[1] ऐसी ही बात कही है। 'अंग्रेज राज्य कर रहे हैं और भारतीय उनकी गुलामी कर रहे हैं'; 'वह तो पूरे पाँच हाथ ऊँचा है' आदि पंक्तियोंमें यही भाव है। कवि नर्मदाशंकरने गुजरातपर बहुत उपकार किया है। किन्तु इनका जीवनकाल दो पर्वोंमें विभाजित था। एक स्वेच्छाचारका काल और दूसरा संयमका। यह कविता स्वेच्छाचार-कालकी है। जापानको भी जब दूसरे देशके साथ मुकाबला करनेका अवसर आया तब वहाँ गोमांस भक्षणको स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकारसे शरीरको तैयार करनेकी इच्छा हो तो इन चीजोंका सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधनसे शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपनेपर दया आती है। इस अभिनन्दनपत्रमें मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दनपत्रका मजमून तैयार किया है उन्हें नहीं मालूम कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं। जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर-दर्द होता है, न कभी खाँसी होती है, न अपेंडिसाइटिस होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगीका बीज आंतमें रह जानेसे भी अपेंडिसाइटिस होता है। परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आँतें शिथिल पड़ जाती हैं, तब वे ऐसी चीजोंको अपने-आप बाहर नहीं निकाल पाती हैं। मेरी भी आँतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज हजम नहीं कर सका होऊँगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा जाते हैं। माता इसका कहाँ ध्यान रखती है? पर उसकी आँतमें ही इतनी स्वाभाविक शक्ति होती है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोप करके कोई मिथ्याचारी न बने। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ। हाँ, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अपने कुछ अनुभवमात्र ही पेश किये हैं, और इनसे ब्रह्मचर्यकी मर्यादा प्रकट होती है। ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्रीको स्पर्श न करूँ, अपनी बहनका स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे किसी प्रकारका विकार उसी तरह उत्पन्न न हो जिस तरह कागजको स्पर्श करनेसे नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ीका है। जिस निर्विकार दशाका अनुभव

१. अंग्रेजो राज्य करे, देशी रहे दबाघी
देशी रहे दबाघी, जोने बेनां शरीर भाघी
पेलो पाँच हाथ पूरो, पूरो पांचसेंने।

हम मृत शरीरको स्पर्श करके कर सकते हैं उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दर युवतीका स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करे, तो इसका अभ्यासक्रम आप नहीं बना सकते, पर मुझ-जैसा ब्रह्मचारी, फिर वह अधूरा ही क्यों न हो, ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचार्याश्रम संन्यासाश्रमसे भी बढ़कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा और वान-प्रस्थाश्रम भी। संन्यासका तो नाम भी नहीं रह गया। ऐसी दीन हो गई है हमारी अवस्था।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पाँच सौ वर्षोंतक भी पठानोंका मुकाबला नहीं कर सकेंगे। दैवी मार्गका अनुसरण किया जाये तो आज ही उनका मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी साधनसे आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षणमें हो सकता है। पर शारीरिक परिवर्तनमें युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्गका अनुसरण तभी सम्भव होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्मका पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित वातावरण पैदा करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-३-१९२५

६४. भाषण : बोरसदमें

१२ फरवरी, १९२५

ईश्वरीय संयोग तो देखिए। मुझे किसलिए आना था और मैं किस लिए आया हूँ? काशीभाईने[1] निर्णय किया है कि वे डाह्याभाई और यशोदाके विवाहमें कोई अनावश्यक खर्च नहीं करेंगे। इससे सम्बन्धीगण रुष्ट हो गये हैं। मैं धनी लोगोंको चेतावनी देता हूँ कि जिनके पास पैसा फालतू पड़ा हो और जो उसे विवाहमें खर्च करने जा रहे हों वे उसे मेरे पास भेज दें। मैं उसका सदुपयोग करूँगा। आडम्बरमें किया गया व्यय उचित नहीं कहा जा सकता। हम उलटे रास्ते चल रहे हैं। इसका फल यह हुआ है कि पाटीदार जातिमें लड़कीका बाप होना असह्य रूपसे कष्टप्रद हो गया है। जब काशीभाईने कहा कि उन्हें किसी तरहका खर्च नही करना है तो हम सब उनसे सहमत हो गये। मैं इस बारेमें आपकी सम्मति भी चाहता हूँ। आप भी अपने मनमें प्रभुसे प्रार्थना करें कि वह आपको इस प्रकारका संस्कार, ऐसी ही सादगीसे और धर्मविधिसे करनेकी शक्ति दे।

आपने जो मानपत्र दिया है उसके लिए आभार माननेकी आवश्यकता तो है नहीं। इसके लिए आभार माननेका प्रश्न ही नहीं उठता। आपने मानपत्रमें खादी और चरखेकी बात कही है। यदि खादीमें दैवी शक्ति भरी है और चरखेमें स्वराज्य

१. डाह्याभाईके श्वसुर।

दिलानेकी शक्ति है और वह सच्चा सुदर्शन चक्र है तो आप सबको खादी अपना लेनी थी; अन्यथा इस प्रकार मानपत्र देना और उसमें खादी और चरखेकी प्रशंसा लिखना और लड़कियोंसे उसके गीत गवाना व्यर्थ है।

इस सभामें अन्त्यज पीछे क्यों बैठे हैं? मैं तो इनकी पूजा करता हूँ। मैं अपने आपको अन्त्यज कहलानेमें गर्वका अनुभव करता हूँ। मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि यदि मुझे दूसरा जन्म लेना पड़े तो मैं अन्त्यजके घरमें लूँ। मैं इस समय अन्त्यजोंकी सेवा नहीं कर रहा हूँ; अपने पापका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ; आत्मशुद्धि कर रहा हूँ। मैं हिन्दू समाजसे पूछता हूँ कि क्या आप अन्त्यजोंकी भाँति मुझे भी त्यागना चाहते हैं? मैं इस समय अन्त्यजेतर होनेपर भी यह नहीं कह सकता कि मैं नीति-सम्बन्धी समस्त नियमोंका पालन मन, वाणी और कायासे करता हूँ; किन्तु प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि यदि मेरा दूसरा जन्म हो तो मैं पूर्णपुरुषके रूपमें जन्म लूँ और सो भी अन्त्यज परिवारमें। इनको पीछे बिठाना क्षात्रधर्म नहीं है। पाटीदार जाति तो वीर है। इसमें गुण बहुत हैं। किन्तु कुछ दोष भी हैं। किन्तु संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो सर्वथा गुणरहित अथवा सर्वथा दोषरहित हो। हममें से कोई भी पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं है। इस कलि-कालमें यह असम्भव है। इसलिए अन्त्यज नीचे हैं, यह बात मेरा मन स्वीकार नहीं करता। इसलिए इनके साथ रहकर अस्पृश्य बनना आपके साथ रहकर स्पृश्य बननेसे बहुत अच्छा है। मुझे तो प्रभुके दरबारमें माफी माँगनी है। ईश्वर मुझे कहेगा, "यदि तूने इन लोगोंको अस्पृश्य माना हो तो ये लोग तुझे थप्पड़ मारेंगे, क्योंकि तूने अपने भाइयोंको पशु मानकर पाप किया है।" क्षत्रिय पीछे पाँव नहीं हटाते। अन्त्यजोंको पीछे रखना पीछे पाँव हटाना है। मैं आपसे कहता हूँ कि इनको पीछे बिठाकर आप अधर्म न करें। मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि इस अधर्मको छिपानेका प्रयत्न किया गया है।

पाटीदार निम्न जातियोंपर अत्याचार करते हैं, उनको मारते-पीटते हैं और उनसे बगार कराते हैं। मैं जानता हूँ कि यह बात सच है। आप ऐसे कामसे डरें। यदि आप ऐसे कामोंसे नहीं डरेंगे तो आपकी वीरताका लोप हो जायेगा। जो सुखी है, उसे सबको सुखी करनेका प्रयत्न करना चाहिए। स्वयं दुःख सहकर दूसरोंको सुखी बनाना ही धर्म है। स्वयं सुखी रहकर हम दूसरोंको दुःखी करें यह तो आसुरी वृत्ति हुई। मुझे आपका मानपत्र नहीं चाहिए। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप अन्त्यज भाइयोंको सुखी करें और स्वयं भी सुखी हों।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

६५. तार : प्रभाशंकर पट्टणीको

पेटलाद
१३ फरवरी, १९२५

सर प्रभाशंकर
भावनगर

आपका पत्र मिला। राजकोटमें इतवारसे बुधवारतक। बादका कार्यक्रम राज़कोटमें पहुँचकर तय होगा। आज रात आश्रम पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ३१९२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पट्टणी

६६. भाषण : पालेजमें

१३ फरवरी, १९२५

लड़ाईके अन्तमें हममें निडरता आनी चाहिए और रचनात्मक कार्यके अन्तमें योजना-शक्ति और कार्य-शक्ति। यदि हममें योजना-शक्ति और कार्य-शक्ति न आये तो हम राज्य नहीं चला सकते। यदि हम अहिंसासे राज्य प्राप्त करें तो वह सेवा-वृत्तिसे ही कायम रखा जा सकता है। किन्तु यदि हम सत्ता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे राज्य लेंगे तो वह केवल हिंसासे ही टिकेगा। उचित यह है कि हम अहिंसाकी शक्तिको पुष्ट करें और सत्ताके बलको त्यागें। जबतक हममें मिलकर रहनेकी शक्ति नहीं आती तबतक अहिंसासे स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है। मैंने इसीलिए लोगोंके सम्मुख त्रिविध कार्यक्रम रखा है।

धर्मके नामपर हम किसी भी कार्यमें मनचाही कर सकते हैं; किन्तु जब हमें यह मालूम हो जाये कि यह तो अधर्म है, तब हम वैसा करते नहीं रह सकते। मेरी दृष्टिमें तो अस्पृश्यता दासताकी अपेक्षा भी बड़ा अधर्म है। जब यहाँ अस्पृश्यता निवारणका आन्दोलन चला था तब उसमें ईसाइयों आदिके भाग लेनेका सुझाव भी आया था। किन्तु मैंने उसपर आपत्ति की थी। वाइकोममें अस्पृश्यता निवारणके कार्यमें जॉर्ज जोजेफ-जैसे शुद्ध-हृदय मनुष्य भाग लेना चाहते थे; किन्तु मैंने उनको अनुमति नहीं दी।[1] यदि हम दुनिया-भरसे मदद लेने जायें तो हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४१६-१७।

६७. विद्यार्थियोंके बारेमें

एक भाई लिखते हैं:[1]

गुजरात महाविद्यालयके और आपके दूसरे भाषणोंको पढ़नेपर भी जो बात सच है उसका खयाल दूर नहीं होता . . . यह तो आप मानते हैं कि आजीविका विद्याका फल होना चाहिए लेकिन आज तो उसमें भी बड़ी मुश्किलें हैं। . . . असहयोग मुल्तवी होनेपर अन्य लोग अपना मूल धन्धा फिरसे शुरू कर सकते हैं, लेकिन विद्यार्थी इच्छा होनेपर भी ऐसा नहीं कर सकते। . . .

असहयोग करनेसे, उन वकीलोंकी जिन्हें पहले मुकदमे नहीं मिलते थे, प्रसिद्धि हो जानेके कारण अब अच्छी कमाई हो रही है।

आप १५ तारीखको राजकोट पधारेंगे। क्या आप देशी राज्योंको यह सलाह नहीं दे सकते कि विद्यापीठके स्नातकोंको भी वे अपने यहाँ रखें?

विद्यार्थियोंके त्यागका उल्लेख तो मैंने अनेक बार किया है। यह नियम है, और इसका कुछ अपवाद भी नहीं है कि जो स्वयं अपने त्यागका उल्लेख करता है उसके त्यागका उल्लेख दुनिया नहीं करती। जिस त्यागका उल्लेख त्याग करनेवालेको स्वयं ही करना पड़ता है, वह त्याग नहीं है। आत्मत्याग तो स्वयंप्रकाशी होता है। अपने त्यागकी कीमत आँकनेके बजाय, उन्होंने जो-कुछ पाया है उसीका मूल्य विद्यार्थी क्यों न आँकें?

जो यह नहीं जानता कि राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करनेमें ही उसकी कीमत आ जाती है, वह कुछ भी नहीं जानता। राष्ट्रीय विद्यापीठके स्नातकको यह माननेकी कोई आवश्यकता नहीं कि उनका भाव घट गया है। इस प्रकार स्नातक अपना भाव क्यों घटाते हैं? मैं राष्ट्रीय विद्यापीठके स्नातकोंसे आत्मविश्वास रखनेकी आशा रखता हूँ। वे दीन, याचक न बनें, ईश्वरपर विश्वास रखें। स्नातक क्यों चाहते हैं कि मैं उनके लिए देशी राज्योंके आगे हाथ पसारूँ? स्नातक अपने ज्ञान और चरित्रबल-पर ही बहुमूल्य क्यों न ठहरें? ऐसा समय आ सकता है जब राष्ट्रीय स्नातकोंकी ही माँग हो। ऐसा समय लाना स्नातकोंपर निर्भर है। काँचके ढेरमें पड़े हुए हीरेकी पहचान हुए बिना नहीं रहती। राष्ट्रीय स्नातकोंके बारेमें भी यही बात हो सकती है। मैं तो काठियावाड़में, अपने व्याख्यानोंमें स्नातकोंके बारेमें एक शब्द भी नहीं बोलना चाहता। मैं तो काठियावाड़में खादी और चरखेके प्रचारके लालचसे जा रहा हूँ, राज्याधिकारियोंको खादी-प्रेमी बनाने जा रहा हूँ, नरेशोंसे यह विनय करनेके लिए जा रहा हूँ कि आप अपने धर्मपर ध्यान दें। यदि खादीकी और चरखेकी प्रतिष्ठा बढ़ी तो स्नातकोंकी भी प्रतिष्ठा बढ़ी समझिए। क्योंकि जो चरखा-शास्त्रको घोलकर पी नहीं

[1] अंशतः उद्धृत।

गया है वह राष्ट्रीय स्नातक नहीं है। जैसे अधिकारी वर्गको अंग्रेजी जाननेवाले कुशल मन्त्रीकी आवश्यकता होती थी, उसी प्रकार उन्हें कुशल चरखाशास्त्रीकी आवश्यकता हो, ऐसा ही वायुमण्डल पैदा करनेके लालचसे मैं काठियावाड़ जा रहा हूँ।

अब लेखककी दो तीन भूलें सुधारनेकी इजाजत चाहता हूँ। असहयोगी विद्यार्थी दूसरोंकी तरह असहयोग मुल्तवी नहीं रख सकते, यह मानना गलत है। शर्म और दुःखकी बात तो यह है कि हजारों विद्यार्थी असहयोग करनेके बाद फिरसे सहयोगी बन गये हैं। और यह क्रम अब भी चल रहा है। कितने ही असहयोगी कहलानेवाले विद्यार्थियोंने राष्ट्रीय प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेनेपर भी फिरसे सरकारी परीक्षाएँ दी हैं। इसके विपरीत अदालतोंने कितने ही वकीलोंकी सनदें छीन ली हैं और वे मजबूरन असहयोगी-जैसे बन गये हैं। और नौकरी छोड़ देनेवाले कितने ही सरकारी नौकरोंकी दशा बड़ी दीन कही जा सकती है। लेकिन उनमें से कितने ही लोग ऐसा नहीं मानते; वे तो उसमें शान और गौरवका अनुभव करते हैं। क्योंकि सरकारी नौकर रहनेपर वे पराधीन थे और अब नौकरी छूट जानेपर स्वाधीन हैं, स्वतन्त्र हैं और इसलिए अपनेको बड़भागी मानते हैं।

इसलिए जो विद्यार्थी हतोत्साह हो गये हैं, उन्हें मैं कहता हूँ कि उन्हें हतोत्साह होनेका कोई कारण नहीं है। इतना ही नहीं, इससे तो वे आगे ही बढ़ेंगे। हाँ, उसमें एक शर्त है। असहयोगी विद्यार्थीके बारेमें यह माना जाता है कि वह प्रामाणिक, निर्भय, संयमी, उद्यमी और देशसेवक होता है। ऐसे विद्यार्थीको कभी निराश होनेका कारण नहीं होता। उन्हींपर देशका उद्धार निर्भर है। स्वतन्त्रता देवीके स्वर्ण मन्दिरकी बुनियाद उन्हींपर होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-२-१९२५

६८. टिप्पणियाँ

एक सुधार

मैंने पिछले अंकमें लिखा है कि मैं राजकोटकी राष्ट्रीय शालाका उद्घाटन करूँगा। किन्तु अब यह शुभ काम माननीय ठाकुर साहबके हाथोंसे सम्पन्न होगा। व्यवस्थापकोंका खयाल पहले भी तो यही था। किन्तु यदि माननीय ठाकुर साहब उसका उद्घाटन न कर सकते तो मैं तो था ही। मुझे कोई निश्चित तार या समाचार नहीं मिला था, इसलिए मैंने यह मान लिया था कि यह विधि मुझको ही सम्पन्न करनी होगी। मैं तो दिल्लीकी ओर प्रवासमें था और मैंने वहींसे यह टिप्पणी लिख कर भेजी थी। जब मैंने यहाँ आकर यह देखा कि उद्घाटनकी विधि तो माननीय ठाकुर साहब ही सम्पन्न करेंगे तो मुझे प्रसन्नता हुई। और यही व्यवस्था अभीष्ट भी है।

ऐसा ही चाहिए

हल्याल कर्नाटकका एक कस्बा है। वहाँकी ताल्लुका कमेटीके मन्त्रीने मुझे यह पत्र लिखा है:[1]

यह नगरपालिका धन्यवादकी पात्री है। यदि वह पत्रमें उल्लिखित कार्योंके अतिरिक्त नगरकी सफाई भली-भाँति करवाती हो, वहाँ तालाब साफ रखा जाता हो, उसमें पशु पानी पीते और लोटते न हों और उसमें स्त्री-पुरुष नहाते-धोते न हों, और बच्चोंको अच्छा और सस्ता दूध दिया जाता हो तो यह नगरपालिका आदर्श समझी जायेगी। यदि अन्य सब नगरपालिकाएँ इस नगरपालिकाका अनुकरण करें तो यह स्पष्ट है कि हमारी बहुतसी समस्याएँ हल हो जायें और हमारा जन-जीवन बहुत उन्नत हो जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-२-१९२५

६९. भाषण: राजकोटमें[2]

[१५ फरवरी, १९२५][3]

आज सुबह दरबारगढ़में प्रवेश करते समय मुझे बचपनकी एक पावन घटनाका स्मरण हो आया। लीलाधरभाईसे उसके बारेमें बात कर ही रहा था कि हमारी मोटर इस स्थानपर आकर रुक गई। यह पावन स्मरण मैं आपको सुना देना चाहता हूँ। भूतपूर्व ठाकुर साहबके यहाँसे कुछ लोग कानपुर और धरमपुर जा रहे थे। मेरे पिताजी ऐसे मौकोंपर अपने बच्चोंको आगे-आग नहीं करते थे। आज सोचता हूँ तो लगता है, वह ठीक ही था। इससे हम दोनों भाइयोंने कुछ भी नही खोया। मेरी माँकी प्रवृत्ति दूसरी थी। वह चाहती थी कि हम लोग जायें। उसके मनमें धनका लोभ था और कीर्ति तो स्त्री ही है, वह नारीका वरण नहीं कर सकती तिसपर भी वह कीर्तिकी लोभी थी। इस अवसरपर उसने हम दोनोंको बुलाकर कहा भी कि ठाकुर साहब सज्जन पुरुष हैं; उनके पास जाकर रो पड़ोगे तो वे तुम्हें भी भेज देंगे। दल तो चला गया था। मेरी माँ चाहती थी कि हम लोग धरमपुर जायें क्योंकि वहाँसे विदाईमें ज्यादा पैसा मिल सकता था। इसलिए हम दोनों माँकी सीख मानकर ठाकुर साहबके पास गये। इस दरबारगढ़को देखकर मुझे पिछली बातें याद हो आईं। यह भी याद हो आया कि मैं कहाँ उनके पास जाकर खड़ा हुआ था। हम दोनों ठाकुर साहबके पास जाकर रोने लगे। उन्होंने मेरे पिताजीसे पूछा, "गांधीजी, बच्चे

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें मन्त्रीने विस्तारसे बताया था कि वहाँकी नगरपालिकाने, जिसमें राष्ट्रवादियोंका बहुमत था, रचनात्मक कार्यके सम्बन्धमें क्या-कुछ किया है।

२. प्रजा प्रतिनिधि मण्डलकी ओरसे दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

३. २२-२-१९२५ के **नवजीवन**के अनुसार भाषण इस तारीखको दिया गया था।

क्यों रो रहे हैं?" पिताजीने हम दोनोंकी ओर आँखें तरेरीं। उनमें विनय तो थी पर कभी-कभी ठाकुर साहबकी भूल देखते तो उनपर ही आँखें तरेर देते। हम डर गये। इसपर ठाकुर साहब बोले, "तुम्हें जो कहना हो बेधड़क कहो।" हमने कहा कि हम धरमपुर जाना चाहते हैं। ठाकुर साहबने कहा, "लोग तो चले गये हैं; अब तो तुम कानपुर ही जा सकते हो।" हम दोनों भाइयोंने रोते-रोते अपना कहना करवा लिया। मैं आज भी रोकर अपनी बात मनवा लेना चाहता हूँ। यहाँ अभी शास्त्री-जीने मुझे श्लोकबद्ध आशीर्वाद देते हुए यह कहा कि कीर्ति तो कुँवारी है। उसे अभी तक योग्य वर मिला ही नही। और उन्होंने कामना की कि वह मुझे वरण करे। कीर्ति कुँवारी है तो वह वैसी ही बनी रहे। मुझे कीर्तिकी चाह नहीं है। मैं तो दूसरी ही दो बातें चाहता हूँ और उनके लिए मुझे रोना ही पड़ेगा। अभिनन्दनपत्रमें मेरी बहुत स्तुति की गई है। श्रीमान् ठाकुर साहबने भी बहुत-कुछ कहा है। पर इससे मै धोखेमें नहीं आ सकता। मैं यह नहीं मान लूँगा कि मैं इन सबके लायक हूँ। ठाकुर साहबने मुझे अपनी दाहिनी तरफ बैठाया और मानपत्र दिया — पर इससे मैं यह नहीं मान सकता कि मैं राजा हो गया। मै राजा नहीं होना चाहता। मैं तो रैयत हूँ और रैयत ही रहना चाहता हूँ। हाँ, ठाकुर साहबने जो विनय प्रदर्शित की है उसे मैं भी अपनाऊँगा। मैं अपनी मर्यादा नहीं छोड़ूँगा और मूर्ख नहीं बनूँगा। मैं इस प्रकारके मानपत्रमें गर्व न मानकर यथासम्भव विनयशील ही बना रहूँगा।

अभिनन्दनपत्रके लिए आभार मानते हुए भी मुझे यह कहना चाहिए कि इसमें दो बातें छूट गई हैं। जानकर या अनजाने, सो मैं नहीं जानता। इसमें मेरी सेवाओंका जिक्र तो है तथा अहिंसा और सत्यको जो मेरा जीवन-मन्त्र कहा गया है वह भी बिलकुल ठीक है। यदि ये दोनों मेरे जीवनसे निकल जायें तो मैं मुर्दे जैसा जाऊँ और शेष जीवन व्यतीत करना मेरे लिए मुश्किल हो जाये। पर जिन दो साधनों — खादी और अस्पृश्यता-निवारण — के द्वारा मैं सत्य और अहिंसाका पालन करना चाहता हूँ, उनका उल्लेख अभिनन्दनपत्रमें न देखकर मुझे आश्चर्य होता है। इन दोनों बातोंकी साधनामें जो सामर्थ्य है वह हिन्दू-मुस्लिम एकतामें भी नहीं है। बल्कि इन दोनोंमें से एककी भी साधना किये बिना हिन्दू-मुसलमानोंका ऐक्य भी असम्भव है। एक बार एक मुसलमान-मित्रने मुझसे कहा कि आप जबतक यह मानते रहेंगे कि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताके लिए स्थान है तबतक हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य किस तरह हो सकता है? उक्त भाई एक पवित्र मुसलमान हैं। मुसलमानको अपवित्र माननेवाले लोग भी हैं; पर मैं समझता हूँ कि ऐसा मानकर वे अधर्म करते है। 'गीता' और हिन्दू धर्मशास्त्र शिक्षा देते हैं कि सम्प्रदाय विभिन्न होकर भी अखण्ड नहीं हैं। हिन्दू धर्म, जिसे मैं आग्रहपूर्वक पकड़े हुए हूँ, गंगोत्री है। उसकी अनेक शाखाएँ है। पर उनका मूल एक ही है। और मूलकी तरह मुख भी एक ही है।

कोई व्यक्ति ढेढ़, भंगी या चमारके घरमें पैदा हुआ तो इससे क्या? चाण्डाल नामकी कोई जाति नहीं है। ढेढ़ नामकी कोई जाति है? यह शब्द धर्मशास्त्रमें नहीं है। यह शब्द रूढ़ अवश्य है। ढेढ़ अर्थात् कपड़ा बुननेवाला, भंगी अर्थात् पाखाना साफ

करनेवाला। मैं तो आज भी भंगी हूँ। बच्चा यदि टट्टी कर दे तो मैं उसे साफ कर डालूँ। मेरी माता भी भंगी थी। उसके हाथ हमारा मैला साफ कर-करके घिस गये थे। आपकी माता भी यदि सीताकी तरह सती होगी, पतिव्रता होगी तो उसने भी बच्चोंका मल-मूत्र साफ किया होगा। सती सीता प्रातःस्मरणीया थीं। पर उन्होंने भी बहुत मैला साफ किया था और वे भी भंगी बनी थीं। जिस तरह इन माताओंका त्याग नहीं किया जा सकता उसी तरह भंगीका भी त्याग कैसे किया जा सकता है? यदि हिन्दू धर्मशास्त्रोंके अनुसार अस्पृश्यता धर्मका अभिन्न अंग हो तो मैं हिन्दू कहलानेमें अभिमान न मानूँ। मैं शास्त्रियोंसे भी उद्धत होकर कहूँगा कि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताके लिए स्थान नहीं है और निरन्तर कहता रहूँगा कि नहीं है।

जब आजका कार्यक्रम मैंने देखा कि शास्त्री लोग मुझे आशीर्वाद देंगे तो यह देखकर मुझे हर्ष भी हुआ और खेद भी हुआ। खुशी इस बातसे हुई कि मेरे अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी कामके लिए भी मुझे शास्त्रियोंकी ओरसे आशीर्वाद मिलेगा। खेद इस बातका है कि राजाओंकी छायामें खड़े होकर शास्त्री लोग कुछ कहें भी तो उसका क्या मूल्य? मैंने बहुतोंसे सुना है कि काठियावाड़के इन टीलोंमें कमसे-कम एक ऐसा अवश्य है जो वन्दनीय है। सब लोग इस बातको जानते हैं कि ठाकुर साहब प्रजाके हित चिन्तक हैं। परन्तु भूल तो प्राणिमात्रसे होती है और यदि मुझे ठाकुर साहबकी भूल मालूम हो तो मैं राजकोटका प्रजाजन होनेके कारण, प्रजाके अधिकारका उपयोग करते हुए ठाकुर साहबसे कहूँगा कि आप भूल कर रहे हैं। मैं इस राज्यके अपने जमानेके शास्त्रियोंकी हालत जानता हूँ। इनमें एक मावजी जोशी थे, वे शास्त्रज्ञ थे, ज्ञानी थे, किन्तु फिर भी अनेक बार वे सिद्धान्तसे डिग जाते थे। वे स्पष्टवक्ता थे किन्तु हवाका रुख देखकर उन्हें कई मौकोंपर बात करनी पड़ती थी। मैंने सोचा कि ठाकुर साहबने हुक्म दिया होगा कि गांधीको शास्त्रियोंसे आशीर्वाद दिलाया जाये। नहीं तो शास्त्री लोग मुझ-जैसोंको आशीर्वाद क्यों देने लगे? इस तरह मिले आशीर्वादसे लाभ भी क्या है? मैं तो यह चाहता हूँ कि शास्त्री लोगोंमें इतना तेज हो कि यदि मुझे वे सनातनी हिन्दू मानते हों तो वैसा कहें; चाण्डाल मानते हों तो चाण्डाल कहें। मैं तो शास्त्रियोंका भ्रम मिटाना चाहता हूँ। उनसे कहना चाहता हूँ कि जो अहिंसा-धर्मका पालन करता है वह किसीको अस्पृश्य नहीं मानता। इस कारण मुझे दुःख होता है कि शास्त्री लोगों द्वारा आशीर्वाद दिलाते हुए भी मेरी अन्त्यज-सेवाका उल्लेख अभिनन्दनपत्रमें नहीं है। इसके बारेमें मैं जरूर ठाकुर साहबसे शिकायत करूँगा। मैं तो रोकर राज लेनेवाला हूँ इसलिए उनसे कहूँगा कि जो अमियदृष्टि आप प्रजाके दूसरे वर्गोंपर रखते हैं वही अन्त्यजोंपर भी रखिए। तभी आपका यह छोटा-सा राज्य, नन्हा होते हुए भी सारी पृथ्वीको सुशोभित करेगा और रामराज्य कहलायेगा। वाल्मीकि कविने कहा है कि श्री रामचन्द्रने कुत्तेके साथ भी इन्साफ किया था और तुलसीदासने कहा कि रामने चाण्डाल कहानेवालेके साथ मित्रता की, भरत निषादराजके पीछे पागल बनकर घूमते रहे, उसके चरण धोये। आप उन्हीं भरतके वंशज हैं। आप गरीबोंको न भूलें; रातको घूमकर प्रजाके दुःखोंको देखें। अन्त्यजोंका प्रतिनिधि बनकर मैं आपसे यह

माँगता हूँ कि आप पता लगायें कि पाठशालाओंमें अन्त्यजोंके लिए स्थान है या नहीं। यदि हो तो उनमें अन्त्यजोंका प्रवेश कराइए और यदि ऐसा करनेसे दूसरे विद्यार्थी चले जायें तो उन्हें खाली रहने दीजिए।

यहाँ मैंने बालचरोंको देखा। मेरे मनमें यह खयाल आया कि उनकी वर्दी भी खादीकी नहीं है। इनको खादीकी वर्दी मिले तो मेरे अन्त्यज भाइयोंका कुछ काम चले, काठियावाड़की असंख्य गरीब स्त्रियोंको भी कुछ मिले। एक गरीब बहनने मुझसे कहा, हम चरखा चलाती हैं। मगर आपके लोग चरखा उठा ले गये। मैं सुनकर हैरान हो गया। मेरे लोग चरखा उठा ले जायें तो पृथ्वी रसातलको नहीं चली जायेगी! मैंने उससे कहा कि मेरे लोग चरखा चलवाते-चलवाते थक गय होंगे; इसलिए उठवा ले गये होंगे। आपने मेरा बहुत सम्मान किया। मैं तो यही भिक्षा माँग रहा हूँ कि आप मेरे बताये हुए अचूक उपायको अपनायें। आप मुझे खादी दीजिए। आप सब लोग खादी पहनें, प्रजा प्रतिनिधि मण्डलमें खादीके सम्बन्धमें प्रस्ताव कराइए। आपने तो मुझे सुवर्णजटित अभिनन्दनपत्र दिया। इसके लिए मैं तिजोरी कहाँसे लाऊँ? और यदि तिजोरी माँगूं तो उसके लिए स्थान भी माँगना पड़े, और फिर रक्षक कहाँसे लाऊँ? मेरा रक्षक तो राम है। मैं ऐसे अभिनन्दनपत्रोंको लेता हूँ क्योंकि उन्हें सँभालनेवाले जमनालाल बजाज-जैसे धनवान् पुरुष हैं, जो कि मेरे पुत्र बनकर बैठे हैं। मेरे यहाँ तो केवल खादीको स्थान है। और मैं सभीसे खादी माँगूंगा। मैंने तो लॉर्ड रीडिंगसे भी कहा कि मैं चाहता हूँ कि आप और आपके दरबान खादी-भूषित हों। यही शब्द मैं आपसे और आपकी प्रजाके प्रतिनिधियोंसे कहता हूँ। और इस कारण मुझे यह बात खटकती है कि आपने अभिनन्दनपत्रमें मेरे इन दो मुख्य कार्योंका उल्लेख नहीं किया। मुझे तो राजमण्डलीके साथ कानपुर और धरमपुर जाना है। ठाकुर साहबकी सच्ची शादी तो प्रजाके साथ होगी। और उस शादीके लिए मेरी माँग है— खादी और अन्त्यजोंका उद्धार। प्रजा तो कुमारिका है। उसका कुँवारापन यदि दूर करना चाहते हो तो उससे विवाह कीजिए, उसे सुखी बनाइए, उसकी देखभाल कीजिए, रातों जागकर, घूमकर उसके कष्टों और दुःख-दर्दोंको जानिए। रामने धोबीकी उड़ती हुई बातसुन कर सीताजीको छोड़ दिया। आप भी प्रजामतको जानकर उसके अनुसार चलनेका यत्न कीजिए। राजाकी तलवार संहारका चिह्न नहीं है। यह तो इस बातका साक्षी-रूप है कि राजाका धर्म है तलवारकी धारपर चलना। खांडा हमेशा याद दिलाता है कि खांडेकी धारपर चलिए, सीधे रास्ते जाइए। टेढ़े रास्ते न जाइए। इसका अर्थ है कि राजकोटमें एक भी आदमी व्यभिचारी न हो, एक भी शख्स शराब पीनेवाला न हो, मदमत्त न हो, हरएक स्त्री सीताका स्थान लेनेवाली हो।

मुझे अपने पिताजीका स्मरण आ रहा है। मेरे पिताजीमें ऐब थे, पर गुण भी बड़े-बड़े थे। भूतपूर्व ठाकुर साहबमें भी ऐब थे, गुण भी थे। उनके तमाम गुण आपमें आयें। ऐबोंको कोशिश करके दूर करना आपका धर्म है। दुर्बलताकी जगह सबलता, कलुषताकी जगह पवित्रताको स्थान दिलाना आपका धर्म है। इसलिए गरीबोंपर दया रखें। उन्हें खिलाकर खायें। आपकी तलवार आपके अपने गलेके लिए है। प्रजासे आप कहिए कि यदि मै अधिकारकी मर्यादासे च्युत होऊँ तो यह तलवार मेरी

गर्दनपर चला देना। मैं झूठी खुशामद करूँ तो अधर्म करूँगा। मैंने इस दरबार-गढ़में नमक खाया है। भूतपूर्व स्व० ठाकुर साहबने मेरे पिताको चार सौ वर्ग गज जमीन बिना किसी कीमत, शर्त या किरायेके देनेकी कृपा की थी। ठाकुर साहब तो चार हजार वर्ग गज दे रहे थे किन्तु पिताजीने इनकार किया और सिर्फ चार सौ गज ली। इस बातको न कहूँ तो मैं कृतघ्न कहलाऊँगा। सारी पृथ्वी यदि मेरा आदर करे तो भी मैं अभिमान नहीं करूँगा; किन्तु आपके दिये मानकी मेरे निकट बहुत कीमत है। क्योंकि मैं राजकोटमें छोटेसे बड़ा हुआ, अनेक लड़कोंके साथ यहाँ खेला, असंख्य स्त्रियोंने मुझे खिलाया और आशीर्वाद दिया। परन्तु यदि असंख्य स्त्रियाँ मुझे आशिष दें और मेरी माता न दे तो मुझे यह बात कैसे अच्छी मालूम हो सकती है? मुझे दूधकी जगह शराब मिले, गन्ना चाहूँ तो सिगरेट मिले, तो यह मेरे किस कामका? मैं तो स्त्रियों, गरीबों और अन्त्यजोंके दुःखका निवारण कराना चाहता हूँ। अन्त्यजोंके साथ मैं अन्त्यज हो गया हूँ। स्त्रियोंसे मैं कहता हूँ कि मैं आपके लिए स्त्री हो गया हूँ। आपकी पवित्रताकी रक्षाके लिए मैं पृथ्वीका पर्यटन कर रहा हूँ। मैं यहाँ बतौर एक कंगालके आया हूँ; संसारमें जो मुझे मान-आदर मिला है उसके बलपर नहीं आया हूँ। एक प्रजाजनकी हैसियतसे आया हूँ। मुझे यदि आप खबर देंगे कि राज्यमें इतने चरखे चलने लगे हैं, इतनी खादी आ गई है तो मुझे बड़ी खुशी होगी। यदि मुझे खबर मिले कि रानी साहिबा भी खादी पहनती हैं और सारे राज्यमें, दरबारके कोने-कोनेमें खादी व्याप्त हो गई है तो मैं नंगे पाँवों आकर आपको प्रणाम करूँगा। आपका भला हो और ईश्वर आपको प्रजाका कल्याण करनेमें समर्थ करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-२-१९२५

७०. भाषण: राष्ट्रीय शालाके उद्घाटनपर[1]

१५ फरवरी, १९२५

यह राष्ट्रीय शाला अथवा जिस विद्यापीठकी यह शाखा है वह विद्यापीठ, एक महान् प्रयोग है जो इस समय हिन्दुस्तानमें किया जा रहा है। शासक और शासनकी ओरसे ऐसे प्रयोग शायद ही हुआ करते हैं। उनकी प्रवृत्ति प्रचलित पद्धतिपर चलनेकी है। ऐसा राज्य शायद ही कोई होगा जो प्रचलित पद्धतिको छोड़कर दूसरा प्रयोग हाथमें ले। ऐसे प्रयोग करना तो लोगोंका काम है, शासकोंका नहीं। शासक तो लोगोंके रक्षक और प्रतिनिधि हैं। यदि मैं इससे भी आगे बढ़कर कहूँ तो सच्चा राजा प्रजाका सेवक ही है। इसलिए वह लोगोंके खर्चसे ऐसे प्रयोग नहीं कर सकता। अतः इस दृष्टिसे ठाकुर साहबने शिक्षकोंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है वह यथार्थ

१. राजकोटमें।

है। किन्तु मेरे लिए, जिसने ऐसे प्रयोगोंमें ही अपना जीवन लगाया है, अन्य कुछ करना असम्भव है। इसलिए मैं ठाकुर साहबसे निवेदन करता हूँ कि वे मुझ-जैसे लोगोंपर अपनी कृपादृष्टि रखें। जिन लोगोंमें नया जीवन आ गया है और जो स्वतन्त्र और संयत होना चाहते हैं, यदि उन लोगोंके शिक्षकोंके नियम अत्यन्त कठोर न होंगे तो उन्हें सामान्य शालाओंके लिए मध्यम कोटिके शिक्षक प्राप्त करनेमें भी कठिनाई होगी।

मैं शिक्षकोंसे कहना चाहता हूँ कि वे कठिनाइयोंसे संघर्ष करें और मरण-पर्यन्त धर्मका पालन करें। चाहे छात्र १५० से ४० रह जायें, किन्तु वे इस शालाकी सेवा करते रहें। जैसे चुम्बक लोहेको खीचता है वैसे उनकी निष्ठा ही भविष्यमें शालामें दूसरे छात्रोंको आकर्षित करेगी। हम लोग आरम्भ-शूर कहे जाते हैं; किन्तु हमपर जैसे ही संकट आता है कि हम संकटमोचन भगवान्‌की स्तुति करनेके बजाय अहंकार-पूर्वक काम छोड़कर बैठ जाते हैं। यदि हम जातियोके इतिहासका अवलोकन करे तो देखेंगे कि जिन देशोंके लोग स्वतन्त्र है उनमें बहुतसे लोगोंने जीवनके सिद्धान्तोंका पालन मरण-पर्यन्त किया है। पाँच वर्ष नहीं, बीस वर्ष भी इस शालामें प्रगति होती न दिखे तो भी कोई चिन्ताकी बात नही है। किसी संस्थाके जीवनमें बीस वर्षका काल कुछ नहीं होता। चाहे हमें कोई स्पष्ट फल निकलता न दिखे, किन्तु यदि शिक्षकोंमें आत्मविश्वास है तो उन्हें अपने स्वीकार किये हुए सीधे मार्गपर ही चलते जाना चाहिए। अन्तमें उन्हें सुरम्य तट अवश्य दिखाई देगा।

मुझे इस शालाकी विशेषताके सम्बन्धमें दो शब्द कहनेकी आवश्यकता है। इसकी एक विशेषता तो यह है कि इसने अपने सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ आनेपर भी अन्त्यज बालकोंको प्रविष्ट किया है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें शरीर-श्रमको प्रथम स्थान दिया गया है। इस शालाकी भूमिमें हमें जो पेड़-पौधे उगे दिखाई देते हैं, उनको उगानेमें शिक्षकों और बालकोंने योग दिया है। यह शरीर-श्रम यज्ञका रूप है, किन्तु इस देशमें और इस युगमें यज्ञका सर्वोत्तम रूप चरखा चलाना है। प्रत्येक स्त्री और पुरुषको अन्त्यजोंके नामपर, देशके असंख्य कंगालोंके नामपर और देशकी असंख्य विधवाओंके नामपर नित्य आधा घंटा चरखा चलाना चाहिए। अभिभावकोंको जानना चाहिए कि विद्यार्थियोंको अपनी बुद्धि ही नही, शरीर-का भी विकास करना चाहिए। उनको स्वहित ही नहीं, परहित भी साधना चाहिए। चरखेमें परहित आ जाता है, इस बातको जो लोग समझते हैं वे तो चरखेका त्याग कदापि नहीं करेंगे। किन्तु मैंने तो यह सुना है कि माता-पिताको यह नहीं रुचता कि उनके बच्चे शरीर-श्रम करें, चरखेसे सूत कातें। सच्चे ज्ञानमें शरीर, आत्मा और बुद्धिका विकास सम्मिलित है। इस त्रिवेणीकी साधना ही श्रेयस्कर है। यह देश ऐसा है कि इसमें स्वार्थ-त्यागी और परिश्रमी शिक्षकोंके मनमें निराशाके भाव आ जाते हैं। मेरा ठाकुर साहबसे निवेदन है कि वे ऐसे वातावरणमें रहनेवाले शिक्षकों-पर अपनी कृपादृष्टि रखें।

क्या शालाका कार्य नीति-विरुद्ध है? यदि वह नीति-विरुद्ध हो तो अलग बात है। यदि कोई अस्पृश्यताके प्रश्नको नीति-विरुद्ध मानते हों, अन्त्यजोंको छूना भ्रष्टाचार

समझते हों तो वे अपने बालकोंको शालामें न भेजें। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि यदि इसमें मेरी भूल हो तो वह मुझे बचाये और यदि ऐसे माँ-बापोंकी भल हो तो वे उनके इस दुराग्रहको दूर करे।

किन्तु मैं अन्तमें इतना और कहना चाहता हूँ कि यह शाला ठाकुर साहबकी सहानुभूतिसे, माँ-बापोंके प्रयत्नसे अथवा मेरे प्रयत्नसे अथवा वल्लभभाईके प्रयत्नसे अथवा अभावग्रस्त विद्यापीठकी सहायताके वचनसे नहीं चलेगी; इसका दारोमदार तो अध्यापकोंपर निर्भर है। मैंने तो नहीं देखा कि कोई संस्था केवल धनसे चली हो। यदि धनसे ही चल सकती होती तो कलकत्तेका हार्डिंग स्कूल बन्द न हो जाता। ऐसी संस्थाओंको चलानेके लिए सच्चे संचालकोंकी आवश्यकता होती है। उनमें प्राण फूंक सकें। वे नहीं थे, इसलिए उक्त शाला बन्द हो गई। आप इस शालामें प्राण फूंकें और ईश्वरका नाम लेकर काम करें। जो अपनेको निर्बल मानकर और ईश्वरका नाम लेकर काम करेगा और द्रौपदीकी तरह आर्त स्वरमें ईश्वरकी सहायता माँगता रहेगा उसे ठाकुर साहबसे या विद्यापीठसे सहायता लेनेकी कभी आवश्यकता न पड़ेगी। इसलिए यदि शालाको बन्द करनेकी नौबत आती है तो इसमें दोष शिक्षकोंका ही होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-३-१९२५

७१. भाषण: जैन-छात्रावासके उद्घाटन समारोहमें

१५ फरवरी, १९२५

ठाकुर साहबने शिक्षाके सम्बन्धमें सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं; किन्तु उन्होंने इस सम्बन्धमें यह कहकर निराशा दिखाई है कि ऐसे छोटे राज्यमें यह सब कैसे किया जा सकता है। ऐसी निराशाका कोई कारण नहीं है। प्रत्युत राज्य छोटा होनेसे उसे कई लाभ भी हैं। राजकोटके लोग ऐसे नहीं है कि उनसे कोई काम न लिया जा सके। यूरोपके छोटे-छोटे राज्य, जैसे स्वीडन, नॉर्वे और स्विटजरलैंड, जिनको गत महायुद्धमें सम्मिलित न होनेसे लोग सामान्यतः नहीं जानते, ऐसे राज्य हैं जिनकी सभ्यता अन्य बड़े राज्योंकी तुलनामें किसी भी प्रकार कम नहीं है और जिन्होंने शिक्षाके क्षेत्रमें अनेक प्रयोग किये हैं। बड़े राज्योंकी कठिनाइयाँ भी बड़ी होती हैं। लॉर्ड रीडिंग-जैसे लोगोंको कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता होगा, यह मैं समझ सकता हूँ। उनको अनेक पक्षों और स्वार्थोंका विचार रखना पड़ता है और विस्तृत क्षेत्र सम्भालना होता है; इसलिए उनसे क्या हो सकता है? इसके विपरीत छोटे राज्योंमें अच्छी योजनाओंपर अधिक सुगमतासे अमल किया जा सकता है। गुजरात विद्यापीठपर कुछ ऐसी ही बात लागू होती है। यदि हम आदर्श छात्रोंको लेकर एक आदर्श शालाकी स्थापना करें तो उसमें से वैसी अनेक शालाएँ उत्पन्न हो जायेंगी। शून्यसे तो

कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। शून्यका गुणा भी शून्य होता है, किन्तु एकका गुणा तो अनेक हो सकता है। इसलिए निराशाका कोई कारण नहीं है। निराशाका कारण तो मनुष्य सदा स्वयं ही होता है। आत्मा स्वयं अपना शत्रु होता है और स्वयं ही अपना मित्र होता है। मनुष्यके उद्योगकी मर्यादा बाँधनेकी जरूरत नहीं है। हम जैसे आकाशमें ऊँचा उठनेकी मर्यादा नही बाँध सकते वैसे ही हम मनुष्यके उद्योगकी कोई मर्यादा नहीं बाँध सकते। यदि हम आकाशमें ऊपरको उड़ें तो उसके लिए आकाशमें पर्याप्त अवकाश है। हाँ, हम नीचे गिरें तो उसकी मर्यादा है। ईश्वरने प्रकृतिमें स्वयं ही भूमि, पत्थर, पानी आदि जैसी मर्यादाएँ बाँध दी है। इसलिए हमें निराश होनेका तो कोई कारण ही नहीं है। मैं लोगोंसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि वे राजासे जितना लाभ उठाया जा सके उतना उठायें और राजासे मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने बहुत-कुछ किया है; किन्तु जितना किया है अभी उन्हें उससे कहीं अधिक करना बाकी है।

प्रजा और राजाको परस्पर एकरूप हो जाना चाहिए। जैसे 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति सत्य है वैसे ही 'यथा प्रजा तथा राजा' की उक्ति भी सत्य है। यदि आप स्वयं कुछ न करें तो राजा बहुत अच्छा होनेपर भी कुछ नहीं कर सकता। यदि आप अपने जीवनको दम्भ, चापलूसी और पाखण्डसे पूर्ण बना लें तो इन सबकी झलक राजाके जीवनमें भी अवश्य आ जायेगी। मुझे इस सम्बन्धमें इसलिए संकेत देना पड़ता है कि 'नमक शहदसे भी अच्छा' यह कहावत इस समय भी सत्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-३-१९२५

७२. तार: सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

जतपुर
१६ फरवरी, १९२५

एन्ड्र्यूज
द्वारा जहाँगीर पेटिट
माऊंट पेटिट
पेडर रोड
बम्बई

अठारहतक राजकोट, उन्नीसको पोरबन्दर, इक्कीसको बढवान और बाईसको आश्रम। सस्नेह

मोहन

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

७३. तार: मदनमोहन मालवीयको

जेतपुर
१६ फरवरी, १९२५

मालवीयजी
बिड़ला भवन
दिल्ली

आपके लिए नकलें मुहैया कर रहा हूँ।[1] आशा है आप रावलपिंडी[2] हो आये होंगे।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

७४. सत्याग्रहकी कसौटी

वाइकोमसे एक सत्याग्रही अपने पत्रमें लिखते हैं:[3]

> मन्दिरके मार्गपर अन्त्यजोंके आनेकी माँगको लेकर जो सत्याग्रह चल रहा है, त्रावणकोरकी विधान परिषद्ने २१ के खिलाफ २२ मतसे उसके खिलाफ प्रस्ताव पास किया है। दुःख इसलिए और भी अधिक होता है कि मतदाताओं-पर सरकारने इस बातके लिए दबाव डाला।... खुद अन्त्यजोंके एक प्रतिनिधि-ने भी सरकारके हकमें राय दी थी।... अब लोग 'सीधे प्रहार' और जबर-दस्ती मन्दिरोंमें घुस जानेकी हिमायत कर रहे हैं। सत्याग्रह छावनीमें चेचक फैल गई है।... केरल प्रान्तीय कमेटीका उत्साह मन्द पड़ता जा रहा है।... हर बातके लिए हम आपकी अमूल्य सहायता और सलाहपर निर्भर रहते हैं। हमें पैसेकी बड़ी तंगी है। सभी सत्याग्रही आपकी बाट आतुरतासे जोह रहे हैं; कहना निरर्थक है कि आपके पधारनेसे हमारे उद्देश्यको अमूल्य सहायता प्राप्त होगी।

यह पत्र अच्छा है; क्योंकि इसमें बात साफ-साफ कही गई है। यदि इसमें कही बातें सच हों तो त्रावणकोर सरकारको इसपर बधाई नहीं दी जा सकती। पर

१. पत्र की।
२. देखिए "तार: मदनमोहन मालवीयको", ९-२-१९२५।
३. अंशतः उद्धृत।

तथ्योंको मैं स्वयं ठीक-ठीक नहीं जानता। जबतक मैं जाकर सच्ची हालत न जान लूँ तबतक इसपर अपनी राय कायम करना मुल्तवी रखता हूँ। मैं जितना जल्दी हो सके वाइकोम जाना चाहता हूँ और आशा रखता हूँ कि इसमें विलम्ब न होगा।

इस बीच सत्याग्रहियोंको निराश तो कदापि नहीं होना है। निराशाके सामने वे दब तो हरगिज नहीं सकते। मैंने जो थोड़ी-बहुत तमिल सीखी उसमें से एक कहावत मुझे सदा याद रहती है। उसका शब्दार्थ है 'निर्बलके बल राम'। इस सत्यके प्रति विश्वास ही सत्याग्रहके महान् सिद्धान्तका मूल है। इसके प्रमाणभूत उदाहरणोंसे अकेले हिन्दू धर्मका साहित्य ही नहीं, दूसरे तमाम धर्मोंका साहित्य भरा पड़ा है। त्रावणकोर दरबारने भले ही सत्याग्रहियोंके साथ विश्वासघात किया हो और भले ही मैं भी उनका साथ न दूँ; किन्तु इससे क्या होता है? यदि उन्हें उसपर श्रद्धा होगी तो ईश्वर उन्हें मँझधारमें नहीं छोड़ेगा। यदि वे मेरे भरोसे हों तो उन्हें जान लेना चाहिए कि वे एक टूटी हुई पतवारका भरोसा रखे हुए हैं। इतने फासलेपर बैठा हुआ मैं उनकी क्या मदद कर सकता हूँ। मैं भले ही उनके आँसू पोंछ दे सकूँ; पर कष्ट-सहन तो उन्हींको करना है। और यदि उनका कष्ट-सहन शुद्ध होगा तो उसके द्वारा उन्हें विजय मिले बिना नहीं रह सकती। ईश्वर अपने भक्तोंको अन्त तक कसौटीपर चढ़ाता है, पर उनकी सहनशक्तिकी हदसे बाहर हरगिज नहीं। वह उनके लिए जिस अग्नि-परीक्षाका विधान करता है उसमें से उत्तीर्ण होनेकी शक्ति भी वह उन्हें देता है। वाइकोमके सत्याग्रहियोंका सत्याग्रह ऐसा प्रयोगात्मक नहीं है कि कुछ समयमें सफल न होनपर, या इस हदतक कष्ट सह लेनेके उपरान्त वे उसे बीचमें ही छोड़ बैठें। सत्याग्रहीके लिए काल-मर्यादा नहीं होती और न कष्ट सहनेकी ही मर्यादा होती है। इसीलिए सत्याग्रहमें पराजय नामकी कोई चीज ही नहीं होती। जिस बातको लोग सत्याग्रहियोंकी हार मानते हों सम्भव है वह उनकी विजयका उषाकाल हो — प्रसूतिके पहलेकी वेदना हो।

वाइकोमके सत्याग्रहियोंका युद्ध स्वराज्यसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे युगोंसे प्रचलित अपराध और अन्यायका मुकाबला कर रहे हैं। कट्टरता, अन्धविश्वास, रूढ़ि और अधिकारीवर्ग उसके पृष्ठपोषक हैं। यह उन तमाम युद्धोंमें एक ऐसा पुण्य युद्ध है जिन्हें ज्ञानके नामपर प्रचलित अज्ञान और धर्मके नामपर प्रवर्तित अधर्मके खिलाफ लड़ा ही जाना चाहिए। यदि उनके युद्धमें रक्तपातको कोई स्थान नही दिया जाना है तो कठिनसे-कठिन परिस्थितिमें भी उन्हें धीरज ही रखना है। आगकी धधकती ज्वालाओंके मुकाबलेमें भी उन्हें विचलित नहीं होना है।

हो सकता है कि [प्रान्तीय] कांग्रेस कमेटी उन्हें कुछ भी मदद न दे। उन्हें कोई आर्थिक सहायता न मिले। उन्हें भूखों मरना पड़े। फिर भी इन भयंकर कसौटियोंमें उनकी श्रद्धा देदीप्यमान दिखाई देनी चाहिए।

सत्याग्रही जो कर रहे हैं वही 'सीधा प्रहार' है। परन्तु प्रतिपक्षियोंपर वे क्रोध नहीं दिखा सकते। क्योंकि वे बेचारे इससे अधिक नहीं जानते हैं। वे सबके-सब दगाबाज नहीं हैं; जिस तरह सबके-सब सत्याग्रही भी साफ और पाक नही होते। जिसे वे अपने धर्मपर आक्रमण समझते हैं उसके खिलाफ वे प्रामाणिकताके

साथ लड़ रहे हैं। वाइकोमका सत्याग्रह कष्ट-सहनके रूपमें एक दलील है। क्रोधरहित, द्वेषरहित, कष्टसहनके उदीयमान सूर्यके सामने कठोरसे-कठोर हृदय पिघले बिना नहीं रह सकता, घोरसे-घोर अज्ञान दूर हुए बिना नहीं रह सकता।

सत्याग्रह छावनीमें शीतलाके प्रकोपकी बात सुनकर मैं डर गया हूँ। यह रोग गंदगीसे उत्पन्न होता है और तन्दुरुस्ती-सम्बन्धी मामूली उपायोंसे दूर हो सकता है। चेचकके रोगियोंको दूसरोंसे अलग रखकर उसके प्रकोपका कारण खोजना चाहिए। छावनीमें सफाई तो पूरी-पूरी रहती है न? डाक्टरोंके पास चेचककी कोई दवा नहीं होती। जल-चिकित्सा ही उसका उत्तम इलाज है। सूक्ष्म आहार अथवा अनाहार सबसे अच्छा रास्ता है। पर सबसे बढ़कर महत्त्वकी बात तो यह है कि रोगी अथवा दूसरे लोगोंमें से कोई भी हिम्मत न हारे। रोगियोंकी पीड़ा भी उनके कष्ट सहनकी विधिका एक अंग है। सैनिकोंकी छावनियाँ रोगसे बिल्कुल अछूती नहीं होतीं। कहा तो यहाँतक जाता है कि गोलियाँ खाकर मरनेवाले सैनिकोंकी अपेक्षा रोगसे मर जानेवाले सैनिक ही अधिक होते हैं।

सत्याग्रही रुपये-पैसेकी चिन्ता बिलकुल न करें। उनकी अखण्ड श्रद्धा उन्हें आवश्यक आर्थिक सहायता दिला देगी। मैंने अबतक एक भी सत्कार्य ऐसा नहीं देखा जो धनके अभावके कारण पूरा न किया जा सका हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-२-१९२५

७५. हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

> आपने 'यंग इंडिया' में एक पत्र द्वारा तालीमके क्षेत्रमें मुसलमानोंके बहुत पिछड़े हुए होनेकी शिकायतका पर्दाफाश करनेवाले एक पत्रको स्थान दिया है। अब मैं आपका ध्यान एक और ऐसी चीख-पुकारकी ओर आकर्षित करता हूँ जो तालीमवाली बातसे भी ज्यादा बेतुकी है और वह यह कि 'हिन्दुस्तानमें मुसलमान एक अल्पसंख्यक जाति है।' हमेशा यह बात कही जाती है और राजनीतिक मसलोंके पेश होनेपर यह दलील चुपचाप मान भी ली जाती है। पर क्या दरअसल वे अल्पसंख्यक हैं? अगर उनके सिर्फ एक ही फिरके, हनफी सुन्नियोंको ले लें तो क्या वे हिन्दुओंके किसी भी एक फिरकेसे संख्यामें अधिक नहीं हैं? बल्कि भारतके ईसाई, पारसी, सिख, जैन, यहूदी और बौद्ध किसी भी धर्मके लोगोंसे अधिक नहीं हैं? और फिर हिन्दू लोग कितनी ही ऐसी जातियों और फिरकोंमें बँटे हुए हैं जो कि सामाजिक बातोंमें परस्पर उतने ही दूर हैं,

१. यहाँ पत्रका सारांश दिया जा रहा है।

जितने कि मुसलमान किसी गैर-मुसलमानसे? और फिर अछूतोंको लीजिए क्या उनकी तादाद 'मुस्लिम अल्पसंख्यकोंके' बराबर नहीं है? यदि हिन्दुस्तानके मुस्लिम पृथक् और विशेष ढंगका व्यवहार, रक्षा और गारंटी चाहते हैं तब अछूतोंका दावा कितना प्रबल होगा? . . . वे तो सदियोंसे और वास्तवमें आज भी ऐसी निर्योग्यताओंके शिकार हैं जिनसे न मुस्लिम और न सवर्णोंकी कोई अल्पसंख्या पीड़ित है और न भविष्यमें उनके विषयमें इस तरहकी कोई आशंका हो सकती है। उदाहरणके तौरपर वाइकोम सत्याग्रह, पालघाटका झगड़ा, और बम्बईके 'टूक-टूक कर देने' की प्रतिज्ञा करनेवालोंको लीजिए। उन आदिम जातियोंका यहाँ मैं जिक्र ही नहीं करता हूँ जिनकी गिनती हिन्दुओंमें की जाती है। तब क्या सचमुच केवल मुसलमान ही अल्पसंख्यक हैं?

शब्दोंके नीचे रेखांकन लेखकका है। यह पत्र मैं उसमें परिलक्षित असन्दिग्ध गम्भीरताके कारण छाप रहा हूँ। फिर भी मेरी, एक निष्पक्ष निरीक्षककी दृष्टिमें लेखककी वह दलील जिसके द्वारा वे यह दिखलाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी अल्पसंख्या नहीं है, सत्यका आभास-भर देती है। लेखक इस बातको भूल जाते हैं कि बात तो सारे मुसलमानोंके सारे हिन्दुओंके मुकाबले अल्पसंख्यक होनेकी है। लेखक 'हँसब ठठाइ, फुलाइब गालू' वाला आग्रह नहीं रख सकते। यद्यपि हिन्दू आपसमें विभक्त हैं, तथापि मुसलमानोंके ही नहीं तमाम अ-हिन्दुओंके विरोधमें वे लगभग एक होकर उनका मुकाबला करते हैं। मुसलमान भी यद्यपि आपसमें अनेक दलोंमें विभक्त हैं, तो भी कुदरती तौरपर तमाम गैर-मुस्लिमोंका मुकाबला वे एक होकर करते हैं। हकीकतको भुलाकर या उसको अपनी तजवीजोंके मुआफिक बैठाकर इस सवालको कभी हल नहीं किया जा सकता। हकीकत यह है कि मुसलमान सात करोड़ हैं और हिन्दू बाईस करोड़। हिन्दुओंने इस बातको कभी नामंजूर नहीं किया। अब हम यह भी देखें कि मामला दर-असल क्या है? अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक लोगोंसे हमेशा महज इसलिए नहीं डरते कि उनकी संख्या ज्यादा है। मुसलमान हिन्दुओंकी बहुसंख्यासे इसलिए डरते हैं कि उनका कहना है, हिन्दुओंने हमेशा ही हमारे साथ गैर-इन्साफी की है, हमारे मजहबी जजबातकी इज्जत नहीं की है; और उनका यह कहना भी है कि हिन्दू लोग तालीम और धन-दौलतमें हमसे बढ़े-चढ़े हैं। ये बातें ऐसी ही हैं या नहीं इस सवालसे हमें यहाँ कोई मतलब नहीं। हमारे लिए इतना ही काफी है कि मुसलमानोंका विश्वास ऐसा ही है और इसलिए वे हिन्दुओंकी बहुसंख्याकी ओर सशंकित हैं। मुसलमान लोग इस डरका इलाज कुछ अंशमें पृथक् निर्वाचन और विशेष प्रतिनिधित्व — कुछ जगहोंमें तो अपनी संख्यासे भी ज्यादा प्रतिनिधित्व — प्राप्त करके कराना चाहते हैं। हिन्दू लोग मुसलमानोंकी अल्पसंख्याको तो मानते हैं पर उनके इन्साफ न करनेके इलजामसे इनकार करते हैं। इसलिए इसकी तसदीक करनेकी जरूरत है। मैंने हिन्दुओंको इस कथनका खण्डन करते नहीं देखा है कि वे तालीम और धन-दौलतमें मुसलमानोंसे बढ़कर हैं।

इधर हिन्दू भी मुसलमानोंसे डरते हैं। उनका कहना है कि जब कभी मुसलमानोंके हाथमें हुकूमत आई है, उन्होंने हिन्दुओंपर बड़ी-बड़ी ज्यादतियाँ की हैं और कहते हैं कि हालाँकि हमारी बहुसंख्या है तो भी मुट्ठीभर मुसलमान हमले करके हमारे छक्के छुड़ा देते हैं। हिन्दुओंके मनमें हमेशा पुराने अनुभवोंके दोहराये जानेका खतरा रहता है, और वे अग्रगण्य मुसलमानोंकी नेकनीयतीके बावजूद यह मानते हैं कि मुसलमान जनता तो मुसलमान गुंडेका ही साथ देगी। इसलिए हिन्दू मुसलमानोंके कमजोर होनेके उज्रको नामंजूर करते हैं और लखनऊ समझौतेमें[1] निहित सिद्धान्तको व्यापक करनेकी बातसे इनकार करते हैं। यहाँ भी यह सवाल नहीं उठता कि हिन्दुओंका यह डर कहाँतक ठीक है। उन्हें ऐसा डर है और हमें इसपर विचार करना होगा। किसी भी जाति या नेताकी नीयतपर शंका करना अनुचित होगा। मालवीयजी या मियाँ फजल-ए-हुसैनपर अविश्वास करना मानो इस प्रश्नके निपटारेको स्थगित करना है। दोनों अपने विचारोंको ईमानदारीके साथ पेश करते हैं। ऐसी हालतमें अक्लमंदी इसी बातमें है कि तमाम छोटे-बड़े सवालोंको एक ओर रख दें और जो स्थिति वास्तवमें है उसका मुकाबला करें, न कि अपने द्वारा कल्पित किसी स्थितिका।

इसलिए मेरी रायमें लेखकने, चाहे अनजानमें ही हो, अपने पक्षको जरूरतसे ज्यादा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। उनका यह कहना सच है कि खुद हिन्दू परस्पर विरोधी दलोंमें विभक्त हैं। उनमें ऐसे दल हैं जो अपने लिए अलग-अलग ढंगके विशेष व्यवहारका दावा लेकर खड़े होते हैं। उनका यह कहना भी ठीक है कि पृथक् प्रतिनिधित्वके लिए मुसलमानोंकी अपेक्षा अछूतोंका पक्ष कहीं अधिक मजबूत है। लेखकने मुसलमानोंके अल्पसंख्यक होनेकी हकीकतके विरोधमें आवाज नहीं उठाई है बल्कि जातिगत प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचनके विरोधमें उठाई है। उन्होंने यह दिखलाया है कि लखनऊके समझौतेके सिद्धान्तका विस्तार करनेसे असंख्य उपजातियों और दूसरी जातियोंके लिए जातिगत प्रतिनिधित्वका सवाल खड़ा हुए बिना न रहेगा। ऐसा करना स्वराज्यके शीघ्र आगमनको अनिश्चित कालतक स्थगित करना है।

लखनऊ समझौतेके सिद्धान्तको व्यापक बनाना या उसको कायम रखना भयावह है। किन्तु मुसलमानोंके दुःख-दर्दोंको देखा-अनदेखा कर देना भी क्या स्वराज्यको मुल्तवी करना नहीं है? इसलिए स्वराज्यका कोई भी प्रेमी तबतक दम नहीं ले सकता जबतक इस सवालका ऐसा निपटारा न हो जाये, जिससे मुसलमानोंकी आशंका दूर हो जाये और स्वराज्यके लिए भी कोई खतरा न रहे। ऐसा निपटारा असम्भव नहीं है।

एक विकल्प तो यह लीजिए।

मुसलमानोंकी यह माँग कि बंगाल और पंजाबमें उनका प्रतिनिधित्व उनकी संख्याके अनुसार रहे, मेरी रायमें अस्वीकार नहीं की जा सकती है। उनकी यह माँग

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा १९१६ के लखनऊ अधिवेशनमें अपनाई गई संयुक्त सुधार योजना।

उत्तर या उत्तर-पश्चिमके भयके आधारपर अमान्य नहीं की जा सकती। अगर हिन्दू स्वराज्य चाहते है तो उन्हें यह जोखिम उठाना ही चाहिए। यदि हम बाहरी दुनियासे डरते रहें तो हमें स्वराज्यका खयाल छोड़ देना चाहिए। पर चूँकि स्वराज्य तो हमें लेना ही है, इसलिए मैं मुसलमानोंके न्यायोचित दावोंका विचार करते समय हिन्दुओंके डरकी दलीलको खारिज करता हूँ। अपनी भावी सुरक्षाको खतरेमें डालकर भी हममें न्याय करनेका साहस होना चाहिए।

मुसलमानों द्वारा पृथक् निर्वाचनकी माँगका कारण पृथक् निर्वाचन ही नहीं है बल्कि यह है कि वे विधान-सभाओंमें तथा दूसरे निर्वाचक मण्डलोंमें अपने सच्चे प्रतिनिधि ही भेजना चाहते हैं। यह तो कानूनके जरिये अनिवार्य करनेकी अपेक्षा आपसी तौरपर तजवीज कर लेनेसे अधिक अच्छी तरह हो जा सकता है। आपसी तौरपर की हुई तजवीजमें घटा-बढ़ीकी गुंजाइश रहती है। मगर विधान द्वारा थोपे हुए निर्णयोंमें उनके समयके साथ उत्तरोत्तर सख्त होते जानेकी सम्भावना होती है। आपसी तजवीजसे दोनों दलोंकी ईमानदारी और सदाशयताकी परीक्षा होती रहेगी। पर वैधानिक निर्णयमें इन दोनों बातोंकी गुंजाइश ही नहीं होती। आपसी तजवीजके मानी है, घरेलू झगड़ोंका घरेलू निपटारा और दोनोंकी दुश्मन अर्थात् विदेशी हुकूमतके विरोधमें सम्मिलित बलकी मजबूत दीवार। लोग कहते हैं कि मैं जो आपसी तजवीज सुझा रहा हूँ उसके मुताबिक काम करनेमें कानून बाधक है। यदि ऐसा हो तो हमें उस कानूनी बाधाको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए, न कि नई बाधा पैदा करने या जोड़नेकी। इसलिए मेरा सुझाव है कि पृथक् निर्वाचनका खयाल छोड़ दिया जाये और क्षेत्र विशेषमें दोनोंकी संयुक्त सम्मतिसे तयशुदा तादादमें मुस्लिम तथा दूसरे उम्मीदवारोंके चुनावकी सूरत पैदा की जाये। मुस्लिम उम्मीदवार जानी-मानी मुस्लिम संस्थाओंके द्वारा नामजद किये जायें। इस मौकेपर नियत तादादसे अधिक तादादमें प्रतिनिधि रखनेके सवालपर चर्चा जरूरी नहीं है। जब आपसी ठहरावके सिद्धान्तको सभी लोग स्वीकार कर लेंगे तब प्रतिनिधित्वकी बातपर विचार किया जा सकेगा और उसी समय सम्बन्धित सभी दिक्कतें भी हल की जा सकती है।

इसमें कोई शक नहीं कि मेरे इस प्रस्तावमें पहलेसे यह एक बात गृहीत कर ली गई है कि इस सवालमें लगे हुए तमाम लोग स्वराज्यको ध्यानमें रखकर इसे हल करनेकी कोशिश सच्चे और साफ दिलसे चाहते हैं। यदि उद्देश्य किसी सम्प्रदाय विशेषके हकमें सत्ता-प्राप्तिका हो तब तो कोई भी आपसी व्यवस्था टिकी नहीं रह सकती। किन्तु यदि स्वराज्य ही हम सबका लक्ष्य हो और दोनों पक्षोंके लोग केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे ही उसे हल करना चाहते हों तो फिर उसके भंग होनेका अन्देशा रहता ही नहीं है। इसके विपरीत हर फरीक नेकनीयतीके साथ उनके अनुसार चलनेमें अपना हित समझेगा।

कानूनका काम इतना ही है कि वह समुचित मतदानकी व्यवस्था कर दे, ताकि सम्प्रदाय यदि चाहें तो अपनी तादादके लिहाजसे मतदाताओंके नाम दर्ज करा सकें। मतदाताओंकी सूची ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रतिनिधि संख्याके अनुपातमें चुने जा सकें। पर इसके लिए वर्तमान मताधिकारकी कार्यरीतिकी गहरी छान-बीन करनी

होगी। मेरी नजरमें तो वर्तमान मताधिकार किसी भी स्वराज्य योजनामें स्थान पाने योग्य नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-२-१९२५

७६. एस० डी० एन० को[1]

मैंने आपके पत्रके एक भागकी चर्चा अग्रलेखमें[2] की है। समयाभावके कारण दूसरे भागपर विचार फिर कभी करूँगा, शायद अगले हफ्ते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-२-१९२५

७७. टिप्पणियाँ

पहली मार्च याद रहे

पाठक इस बातको भूले न होंगे कि बेलगाँवमें कांग्रेसकी बैठकके बाद ही कुछ कार्यकर्त्ताओंने १ मार्चके पहले स्वयं कातनेवाले सदस्योंकी संख्या दर्ज करनेका वादा किया था। वह दिन बहुत नजदीक आ गया है। मेरे सामने उन सज्जनोंकी नामावली मौजूद है जिन्होंने ऐसा वादा किया था। मैं आशा करता हूँ, वे अपने वचनका पूरा-पूरा पालन करेंगे। लोगोंकी जानकारीके लिए मैं यह कह देना चाहता हूँ कि उस समय उपस्थित लोगोंने सारे देशसे ६,८०३ सदस्य बनानेका वादा किया था, और जबकि उस समय सभी प्रान्तोंके कार्यकर्त्ता मौजूद नहीं थे। पर, उदाहरणके लिए, बिहार और गुजरातने बेलगाँवके वादेसे अधिक सदस्य दर्ज करनेका निश्चय किया है। यदि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके मन्त्री कृपापूर्वक स्वयं कातनेवाले तथा अन्य सदस्योंकी संख्या इस मासके अन्ततक 'यंग इंडिया' के नाम तारके जरिये भेज दें तो बड़ी अच्छी बात हो। कार्यकर्त्ताओंको सब जगह चार-चार आना देनेवाले सदस्य दर्ज करनेकी अपेक्षा स्वेच्छापूर्वक कातनेवाले सदस्य दर्ज करनेके काममें अधिक कठिनाई आ रही है। मेरे नजदीक कताईके मताधिकारका महत्त्व भी इसी कठिनाईमें है। इस कठिनाईका कारण योग्यताकी कमी नहीं बल्कि मनोयोग और अध्यवसायकी कमी है। यह बात ध्यानमें रहे कि इस कठिनाईका अनुभव सिर्फ चरखेमें अविश्वास रखनेवाले लोगोंको ही नहीं हो रहा है बल्कि विश्वास रखनेवाले लोगोंको भी हो रहा है। वे सहसा वादे कर लेते हैं और झटही उन्हें तोड़ भी डालते हैं, जैसा कि

१. पिछले शीर्षकमें उद्धृत पत्रके लेखक।

२. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न", १९-२-१९२५।

दिसम्बरके सूतके आँकड़ोंसे मालूम होता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जिन सज्जनोंने वादे किये हैं, वे अब इसके लिए अविराम प्रयत्न करेंगे।

पुरस्कार-निबन्धके सम्बन्धमें

कुछ मित्रोंने सुझाव दिया है कि हाथ-कताई और खद्दरके सम्बन्धमें पुरस्कार-निबन्ध भेजनेका समय बढ़ा दिया जाये। एक मित्रका सुझाव है कि इसकी तारीख नवम्बरतक बढ़ा दी जाये। लेकिन मैं ऐसा करूँ तो जिस उद्देश्यके लिए निबन्धकी जरूरत है वह उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। श्री रेवाशंकरने इस पुरस्कारकी घोषणा ईसवी सन्‌के इसी वर्षमें, जो तेजीसे खत्म हो रहा है, चरखेके सन्देशके सम्बन्धमें विचार और कार्यको उत्तेजन देनेकी दृष्टिसे की है। इसके अलावा अवधि जो कम रखी गई है उसका कारण यह है कि हमारे पास इस विषयके जो थोड़े-बहुत अनुसन्धानकर्त्ता हैं, वे अपनी शक्तिको केवल इसी दिशामें लगा सकें और आर्थिक लाभकी दृष्टिसे इसमें जरूरतमन्द खादी-विद्यार्थियोंको आकर्षित करनेका ध्यान भी रखा गया है ताकि वे इस अवधिमें निबन्ध तैयार करनेमें अपना समस्त ध्यान केन्द्रित कर सकें। मैं यह आशा नहीं करता कि इस सम्बन्धमें कोई विशद् ग्रन्थ तैयार हो जायेगा, लेकिन मैं यह आशा अवश्य करता हूँ कि इस विषयपर एक उच्च स्तरका प्रारम्भिक निबन्ध लिखा जा सकेगा जो एक अधिक विशद् ग्रन्थ प्रामाणिक रूपमें लिखनेमें सहायक होगा। निबन्धमें इस विषयपर एक विस्तृत पुस्तक-सूची और इस सूचीकी पुस्तकोंका वैज्ञानिक, संक्षिप्त, सम्बद्ध और संगत विवरण होना चाहिए।

ऐसे अनेक लोग हैं जो इन स्तम्भोंमें और अन्यत्र चरखेका आर्थिक महत्त्व सिद्ध करनेके लिए जो कुछ लिखा जाता है, प्रायः उसके तथ्योंपर शंका करते हैं। अनेक लोगोंको यह सन्देह है कि चरखा मिलोंसे स्पर्धा नहीं कर सकता। दूसरे कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इसे महज एक खिलौना समझते हैं और यह मानते हैं कि विदेशी कपड़ेके आयातपर इसका कोई प्रभाव भी नहीं पड़ सकता। इस निबन्धमें ऐसे आँकड़े और तर्क चरखेके महत्त्वके सम्बन्धमें दिये जाने चाहिए जो अकाट्य हों। यदि निष्पक्ष और सत्यशोधक विद्यार्थियोंके आँकड़े इसे असम्भव बतायें तो बात दूसरी है। यह प्रयत्न इसी वर्षमें, जबकि मताधिकारके रूपमें चरखा चलानेका प्रयोग जाँचा जा रहा है, किया जाना चाहिए।

मुझे पाठकोंको यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि कुछ प्रतिभाशाली युवक नियमित रूपसे इस काममें लगे हुए हैं और इसमें वे इसके आर्थिक महत्त्वके खयालसे नहीं, बल्कि इसलिए लगे हैं कि उन्हें इससे प्रेम है। मैंने ऐसे दो युवकोंसे निबन्ध प्राप्तिका समय बढ़ानेके सम्बन्धमें सलाह की और उन्होंने कहा कि यदि समय बढ़ाया जा सकता हो तो अच्छा हो। इसलिए अन्तिम तिथि अगली ३० अप्रैल कर दी है। इसका अर्थ है ६ सप्ताह और। मेरा विश्वास है कि यह वृद्धि उन सभी लोगोंके खयालसे, जो उत्तम निबन्ध लिखनेका प्रयत्न कर रहे हैं, पर्याप्त समझी जायेगी।

एक दूसरा सुझाव एक अन्य मित्रकी ओरसे आया है। उनका खयाल है कि परीक्षकोंमें एक दो मिल-मालिक — जैसे अम्बालाल साराभाई और मटुभाई काँटावाला —

भी शामिल किये जाने चाहिए। परीक्षकोंके नामोंका चुनाव मैंने किया था और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैंने मिल-मालिकोंका नाम जानबूझ कर छोड़ा था। मैंने यह अनुभव किया था कि परीक्षक इस विषयपर न्याय कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि उनका खादीपर विश्वास हो, तथा जिनमें परीक्षक होनेकी योग्यताके साथ-साथ सीधी बात स्वीकार कर सकनेकी क्षमता भी हो। लेकिन मेरे संवाददाताने सुझाव दिया है कि श्री मगनलाल गांधी-जैसे विशेषज्ञ भी मिल-उद्योगके घनिष्ठ परिचयके अभावमें भूल कर सकते हैं। इस आपत्तिमें बल है। मैं उसे स्वीकार करता हूँ और इसलिए सम्बन्धित सज्जनसे प्रसन्नतापूर्वक स्वयं पत्र-व्यवहार करूँगा और निबन्धकी जाँचमें उनका सहयोग लेनेका प्रयत्न करूँगा।

बंगालके अछूत

बंगालसे एक सज्जन पत्र लिखकर पूछते हैं:

> **(१) बंगालमें अछूतोंको कुँओंसे पानी नहीं लेने देते और जिस जगह पीनेका पानी रखा हो वहाँ उन्हें जाने भी नहीं देते। इस बुराईको दूर करनेके लिए क्या करना चाहिए? यदि हम उनके लिए अलग कुएँ खुदवाएँ और अलग शालाएँ स्थापित करें तो इसका अर्थ इस बुराईको छूट देना होगा।**
>
> **(२) बंगालके अछूतोंका झुकाव इस बातकी तरफ है कि ऊँची जातिवाले उनके हाथका पानी पीयें। लेकिन वे खुद अपनेसे नीची जातिवालोंके हाथका पानी लेनेसे इनकार करते हैं। उन्हें इस गलतीसे विरत करनेके लिए क्या करना चाहिए?**
>
> **(३) बंगालकी हिन्दू महासभा और आम तौरपर हिन्दू लोग यह कहते हैं कि आप अछूतोंके हाथका पानी पीनेकी बात पसन्द नहीं करते।**

मेरे उत्तर ये हैं:

(१) इस बुराईको दूर करनेका एक उपाय अछूतोंके हाथका पानी पीना है। मैं यह नहीं मानता कि उनके लिए अलग कुएँ खुदवानेसे यह बुराई स्थायी हो जायेगी। छुआछूतके प्रभावोंको निर्मूल करनेमें बहुत समय लगेगा। इस डरसे कि अछूतोंको अलग कुएँ बनवाकर मदद देनेके परिणामस्वरूप भविष्यमें भी उनके सार्वजनिक कुओंके उपयोग कर सकनेकी सम्भावना समाप्त हो जायेगी; इसे रोक रखना ठीक न होगा। मेरा विश्वास तो यह है कि उनके लिए यदि हम अच्छे कुएँ बनायेंगे तो और भी बहुतसे लोग उनका इस्तेमाल करेंगे। ऊँची जातिवाले हिन्दू उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका खयाल करके उनके सम्बन्धमें अपने भ्रम दूर करते रहेंगे। इसके साथ ही अछूतोंमें भी सुधार होता रहना चाहिए।

(२) जब ऊँचे कहलानेवाले हिन्दू अछूतोंको छूना शुरू कर देंगे तब अछूतोंमें भी अछूतपन अपने-आप नष्ट हो जायेगा। हमारा कार्य अछूतोंमें भी, जो सबसे नीचे दर्जेके हैं, उन्हींसे शुरू होना चाहिए।

(३) मैं यह नहीं जानता कि बंगालकी हिन्दू महासभा मेरे नामसे क्या कहती है। मेरी स्थिति तो बिलकुल साफ है। अछूतोंको शूद्रोंमें गिनना चाहिए और उनके साथ वैसा ही व्यवहार रखना चाहिए जैसा कि हम शूद्रोंके साथ रखते हैं और चूँकि हम शूद्रोंके हाथका पानी पीते हैं, हमें अछूतोंके हाथका पानी पीनेमें भी नहीं झिझकना चाहिए।

जेलसे

आचार्य गिडवानीने अपनी धर्मपत्नीके नाम जो पत्र भेजा है, उसे देखनेका अवसर मुझे भी मिला। उसका कुछ अंश नीचे देता हूँ :

> **बच्चे कैसे हैं? उनकी और अपनी चायकी आदतको छुड़ा दो, और जितना दूध दे सको, दो। तुम्हारी पढ़ाईका क्या हाल है? जबतक तुम रचना-पर ध्यान न दोगी, तबतक तुम जल्दी आगे नहीं बढ़ सकोगी। मुझे भरोसा है कि तुम हिन्दी और चरखेके सम्बन्धमें लापरवाही नहीं कर रही हो। दिनका सारा वक्त धूपमें और खुली हवामें बिताओ। हालाँकि मेरा वजन कम ही बढ़ा है पर हालत यकीनन् अच्छी है। जबतक तुम फिर मिलने आओगी तबतक में खूब चंगा हो जाऊँगा। मैं इसके लिए 'मुलरकी प्रणाली' को धन्यवाद देता हूँ, जो जवाहरलालने[1] जब वे यहाँ थे मुझे बताई थी। मेरा स्वास्थ्य ऐसा नहीं बिगड़ा है कि सुधर न सके। उस नौ महीनेकी काल कोठरीमें मैं बराबर प्राणायाम और शारीरिक व्यायाम करता रहा था। मैंने उस पद्धतिका पूरा-पूरा अभ्यास कर लिया है। यदि तुम भी उसको शुरू कर सको और बच्चोंको भी सिखा सको तो अच्छा हो। बहरहाल पार्वतीसे कह जरूर देना कि मैं चाहता हूँ कि वह घरके तमाम छोटे-बड़ोंको यह पद्धति सिखा दे। सम्बन्धित पुस्तक बाजारमें मिलती है।**
>
> **पिछला खत भेजनेके बाद मैंने ज्यादा नहीं पढ़ा है। जिन किताबोंको भेजनेके लिए तुम्हें लिखा था उनके न मिलनेसे संस्कृतकी मेरी पढ़ाई रुकी हुई है।**
>
> **फिलहाल मैं बढ़ईगिरीका काम सीख रहा हूँ। कुछ दिनके बाद बुनना सीखना शुरू करूँगा।**

चूँकि मैं भी कैदी रहा हूँ इसलिए दूसरे कैदियोंके अनुभवोंके साथ अपने अनुभवोंका मिलान अच्छा लगता है। आचार्य गिडवानी ही ऐसे नहीं हैं जिन्हें जेलमें जाकर चायसे अरुचि हुई हो। मैं खुद भी रोज चाय और काफी पिया करता था। लेकिन मेरी पहली जेल-यात्राने ही वह आदत छुड़ा दी। वहाँ चाय नहीं दी जाती थी और चायकी गुलामीसे छूटनेका खयाल मुझे अच्छा मालूम होने लगा। हिन्दुस्तान तो इस शौकको करनेकी स्थितिमें भी नहीं है। मगर चायकी सबसे बड़ी खराबी यही है कि वह दूधका स्थान ले लेती है। चायमें सिर्फ उतनी ही पोषक शक्ति है जो उसमें पड़े दूध और चीनीसे मिलती है। जिस तरीकेसे हिन्दुस्तनमें चाय बनाई

१. नेहरू।

जाती है वह तो दूध और चीनीका असर भी मार देता है। यहाँ चायको इतना उबालते हैं कि उसकी पत्तियोंका दूषित व हानिकर रस, टेनिन भी उसमें उतर आता है। यदि चाय पीनी ही हो तो उसकी पत्तियाँ हरगिज न उबाली जानी चाहिए। बल्कि उन्हें छन्नीमें रखकर धीमे-धीमे उसपर खौलता हुआ पानी उँड़ेलना चाहिए। इस तरह जो पानी बरतनमें गिरे उसका रंग सूखी घासके रंगका होना चाहिए। सबसे अच्छी बात तो आचार्य गिडवानीका अनुकरण करना ही है; अर्थात् हम चाय पीना बिलकुल छोड़ ही दें। जो चायको अपनी खूराक न बनाना चाहते हों, सिर्फ शौकिया पीना चाहते हों, वे महज खौलता हुआ पानी लेकर उसमें थोड़ा दूध और थोड़ी चीनी मिलाकर रंगके लिए थोड़ी दालचीनीकी बुकनी डालकर ले सकते हैं। 'मुलरकी प्रणाली' से सम्बन्धित आचार्य गिडवानीके विचारोंमें लोग दिलचस्पी लेंगे। मेरी रायमें आचार्यजी इस मामलेमें नये मुल्ला-जैसे हैं। इन तमाम तरीकोंका लाभ शुरूमें जितना दिखाई देता है उतना वास्तवमें होता नहीं है। 'मुलरकी प्रणाली' में नई बात कुछ नहीं है। वह हठयोगकी कुछ क्रियाओंकी बेतुकी और अधूरी-सी नकल है। सिर्फ तन्दुरुस्तीके ही खयालसे देखें तो हठयोगकी क्रियाएँ प्रायः पूर्णताको पहुँच गई हैं। उनमें अनेक हिन्दुस्तानी बातोंकी तरह सिर्फ दोष इतना ही है कि उनका जन्म हिन्दुस्तानमें हुआ है। उसका रहस्य केवल गहरे और नियमित श्वासोच्छ्वास और रगोंको हलके हलके ताननेमें है। मुलरकी ओर हमारा ध्यान इसीलिए दौड़ जाता है कि उसने अपने इन व्यायामोंके शारीरिक लाभ बताये हैं। मुलरकी पद्धतिका उपयोग उन लोगोंके लिए अवश्य है जो हठयोगकी गुत्थियोंको समझनेके झगड़ेमें न पड़ना चाहते हों। वे जरूर मुलरकी आसान पद्धतिका लाभ उठा सकते हैं। फिर हमारे यहाँ हठयोगके ज्ञाता भी बहुत नहीं हैं और उनके पास सबकी पहुँच भी नहीं हो सकती। जो थोड़े बहुत हैं वे स्वभावतः, और उचित ही, उसके शारीरिक लाभोंके फेरमें नहीं पड़ते और इसलिए वे अध्यात्मके प्रेमी लोगोंको उसकी शिक्षा देते हैं।

चरखेके प्रेमी आचार्यकी चरखा-भक्ति तथा हिन्दी और संस्कृतके प्रेमकी कद्र किये बिना न रहेंगे। बहुत दिनोंके बाद आचार्य गिडवानीके इस उल्लासपूर्ण पत्रको छापते हुए मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है; आचार्यजीकी तन्दुरुस्ती अब पहलेसे बहुत अच्छी है।

एक नई बात

पिण्डीसे मेरे लौटनेके बाद मैंने बोरसद ताल्लुकेके कोई १० गाँवोंकी यात्रा की है। यह वही तहसील है जहाँ कि १९२३ में श्री वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें शानदार सत्याग्रह हुआ था और उसमें विजय भी प्राप्त हुई थी। इसके निवासी बुद्धिमान्, सुयोग्य और अपेक्षाकृत हट्टे-कट्टे हैं। पर मुझे यह देखकर बड़ा खेद हुआ कि कुछ गाँवोंमें गन्दगी और भ्रष्टता फैली हुई है और उसका एकमात्र कारण है दरिद्रता। कड़ी सर्दीके कारण फसल नष्ट हो गई थी। कुछ गाँवोंमें तो लोगोंको रात-दिन यही चिन्ता बनी रहती है कि कहीं वहाँके प्रमुख जमींदार अपने मवेशी उनके खेतोंमें ही न छुड़वा दें। उन्हें यह भरोसा नहीं है कि कल क्या होगा और न वे यही महसूस

कर पाते हैं कि उनका अपना कोई घरद्वार है। इसका नतीजा है निराशा और इसलिए कामकी ओर उदासीनता। ऐसे लोगोंको चरखा ही एक सहारा था। मगर वहाँ चरखेका काम भी धीरे-धीरे ही चल रहा है। वे कुछ भी करना नहीं चाहते। वे जैसे-तैसे अपनी दो वक्तकी रोटी-भर कमा लेना चाहते हैं। उनकी शून्य और अविश्वासशील दृष्टिसे यही झलकता था कि 'बरसोंसे हमारा यही हाल है। इसी तरह हमारी जिन्दगी खत्म हो जाने दो।' यदि कोई उन्हें कुछ दूसरा उद्योग या काम सुझाता है तो वे उसकी ओर कोई रुचि नहीं दिखाते। वे काम नहीं करना चाहते क्योंकि उन्होंने अभीतक दूसरोंकी चाकरी ही बजाई है और इसलिए वे चाकरीको ही सर्वोत्तम समझते हैं, स्वयं उद्योगशील बननेको नहीं। मेरे लिए यह एक नई बात थी और इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। पर मैंने ऐसी हालत इसके पहले भी चम्पारनमें देखी थी और उड़ीसामें उससे भी बदतर। पर इस बोरसद तहसीलमें मुझे बड़ा धक्का लगा। मैंने यह नहीं सोचा था कि बोरसद तहसीलमें ऐसा अनुभव होगा। बल्कि मैं तो यह उम्मीद कर रहा था कि वहाँ सुव्यवस्थित गाँव देखनेको मिलेंगे और उनमें उत्साह और आशा तथा प्रसन्नताके दर्शन होंगे। सभी गाँवोंकी यही हालत हो सो बात नहीं है। वे एक दूसरेके बहुत नजदीक बसे हुए हैं, फिर भी हरएककी अपनी समस्या है और हरएककी अपनी खसूसियत है। जिन गाँवोंका मैंने जिक्र किया है, यदि उनके लिए आशाका कोई साधन हो सकता है तो वह एकमात्र चरखा ही है। उसे न तो मवेशी चर सकते है, न तुषार जला सकता है। कुदरतके निष्ठुर उत्पात तथा एक हदतक मनुष्यकी ज्यादतीसे भी बचनेका यही साधन है।

जो देशप्रेमी युवक ग्राम्य-जीवनकी कठिनाइयोंका खयाल नहीं करते, और जो मूक तथा लगातार परिश्रममें, जो कि बहुत भारी तो नहीं होता है, फिर भी अपनी एकरूपताके कारण काफी भारी महसूस होता है, आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिए वहाँ भरपूर काम पड़ा हुआ है। जीवनदायी उद्योगकी एकरसताका अनुभव कर पानेके लिए पर्याप्त मनोयोगपूर्वक श्रम करनेकी आवश्यकता है। संगीतका नया विद्यार्थी उसके आरम्भिक पाठोंको रूखा पाता है; पर ज्यों ही वह उस कलामें प्रवीण हो जाता है, उसकी एकरसता ही उसके लिए आनन्ददायिनी हो जाती है। यही बात ग्राम कार्यकर्त्ताओंपर घटती है। मादक शहरी जीवनका नशा उतरते ही जब काममें मन लगने लगेगा तब शारीरिक श्रमकी एकरसतासे उन्हें बल और प्रेरणा मिलने लगेगी; क्योंकि उसमें उत्पादनकी शक्ति है। सूर्य-मण्डलको अनुदिन उसी क्रम और अचूक नियमितताके साथ परिभ्रमण करते देखकर किसका जी ऊबा है? महा-पुरातन होनेपर भी उसे देखकर मनमें आश्चर्य और सराहनाके भाव उत्पन्न होते हैं। उसकी सम-गतिमें व्याघात होनेका अर्थ सारी मनुष्यजातिका सर्वनाश ही है। यही बात उस ग्राम-सूर्यमण्डलपर भी घटती है जिसका मध्यबिन्दु चरखा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-२-१९२५

७८. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

माघ वदी ११ [१९ फरवरी, १९२५][1]

सुज्ञ भाईश्री,

मैं यह पत्र पोरबन्दर जाते हुए गाड़ीमें और इसीलिए पेन्सिलसे लिख रहा हूँ।

मैं आश्रममें २२ से २६ तक रहूँगा और २७को दिल्लीके लिए निकलूँगा। वहाँ मैं २ मार्च तक तो ठहरूँगा ही। उक्त अंग्रेज सज्जन मुझसे इस बीचमें मिल सकते हैं। ३ मार्चके बादका कार्यक्रम दिल्लीमें निश्चित होगा।

जब मैं राजकोटसे रवाना ही हो रहा था तब उससे जरा पहले भाई जयशंकर बाघजी जाम साहबकी ओरसे मुझे मिलने आ गये थे। उन्होंने कहा कि जाम साहब मुझसे मिलनेके लिए उत्सुक हैं। वे मुझसे बम्बईमें मिलना चाहते हैं और ७ मार्चके बाद। मैंने निश्चय किया कि जब बम्बई जाऊँगा तब जयशंकरको तार दे दूँगा।

मुझे गोंडलके दीवानका असन्तोषजनक उत्तर मिला है। उन्होंने लिखा है कि मेरा गोंडल राज्यके कार्यमें हस्तक्षेप करना अनुचित है। सूचित करें, आपके प्रयत्नका क्या परिणाम हुआ।

राजकोटमें ठाकुर साहबने बहुत सौजन्य दिखाया। मैंने उनको बता दिया है कि मेरे विचार क्या हैं।

आशा है आप चरखा नियमसे चलाते होंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१९४) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

७९. तार : वाइसरायके निजी सचिवको

पोरबन्दर
१९ फरवरी, १९२५

वाइसरायके निजी सचिव
दिल्ली

तारके लिए धन्यवाद।[2] आपके तारमें उल्लिखित 'यंग इंडिया' में मैंने एक आदर्शकी बात की है, परन्तु मुकदमोंको वापस लेनेके काममें विघ्न डालनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं। मेरा प्रयोजन सच्ची शान्तिकी स्थापना है

१. गांधीजी १९ और २० फरवरी, १९२५ को पोरबन्दरमें थे।
२. देखिए "तार : वाइसरायके निजी सचिवको", ९-२-१९२५ की पाद-टिप्पणी।

जो मेरे विचारसे सरकारी हस्तक्षेप द्वारा लगभग असम्भव है, और भी ठीक कहें तो जनताके सहज प्रयत्न या हस्तक्षेपके बिना असम्भव है। मेरे और मेरे मित्रोंके हस्तक्षेपसे सरकार द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नोंसे वास्तविक शान्ति स्थापित करनेमें सहायता ही मिलेगी। कृपया जवाब साबरमतीके पतेपर दीजिए।[1]

गांधी

यंग इंडिया, २६-२-१९२५ तथा अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

८०. भाषण : पोरबन्दरमें

१९ फरवरी, १९२५

पोरबन्दरकी प्रजाकी तरफसे मुझे यह अभिनन्दन-पत्र दीवान साहबके हाथों दिलाया गया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। अभिनन्दन-पत्र चाँदी या संदलकी मंजूषामें रखकर देनेके बजाय उसके साथ आपने मुझे २०१) रुपयेका चेक देकर जिस विवेकका परिचय दिया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यदि पोरबन्दरके नागरिक ही मेरी अभिलाषाओंको न समझें और उन्हें पूरा न करें तो फिर इस पृथ्वीतलपर मैं किससे आशा रखूँगा? अनेक बार मैंने कहा है कि चाँदी वगैरा रखनेके लिए मेरे पास जगह ही नही है। चाँदी आदि रखनेके साधन जुटाना एक उपाधि ही है। ऐसी वस्तुओंको त्याग करके ही मैं अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा कर पाया हूँ; और इसीलिए मैं हिन्दुस्तानसे कहता हूँ कि जिसे सत्याग्रहका पालन करना है, उसे निर्धन बननेके लिए और हर क्षण मृत्युसे भेंट करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। चाँदीकी मंजूषा रखनेके लिए मेरे पास स्थान कहाँ? इसलिए उसके बजाय आपने मुझे जो चेक दिया, उससे मुझे आनन्द ही हुआ है।

लेकिन एक तरफ जहाँ मैं आपको धन्यवाद देता हूँ वहाँ दूसरी तरफ मुझे अपनी कृपणतापर दया आती है। मेरी भूख बहुत बड़ी है। इस कागजके टुकड़ेसे मेरा पेट नही भर सकता; २०१) मेरे लिए काफी नहीं हो सकते। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि मैं आपको यह यकीन दिला सकता हूँ कि जितना भी आपसे लूँगा

१. वाइसरायके निजी सचिवने २२ फरवरीको धन्यवाद देते हुए इसका जवाब दिया था कि जो समझौता अभी इतने प्रयत्नोंके बाद हुआ है वह दोनों जातियोंके गैर-सरकारी लोगोंकी सहज रूपमें की गई सहायतासे ही सम्भव हो सका है। निस्सन्देह, उसका स्वरूप दोनों जातियोंके बीच आपसी समझौते-जैसा है और उसकी शर्तोंमें कोई भी रद्दोबदल करनेसे पूरा समझौता गड़बड़ा जायेगा। इसके अलावा, इसी समझौतेके आधारपर बहुत सोच-विचारके बाद ही महामहिमने मुकदमे वापस लेनेकी बात मानी है। इसलिए महामहिमको इस बातकी प्रसन्नता तो है कि आपकी अपनी इच्छा भी शान्ति स्थापित करनेकी है, पर उनको लगता है कि आपके प्रस्तावित दौरेका परिणाम यह होगा कि सारे मामलेपर फिर एक बार बहस खड़ी हो जायेगी...।

उससे दुगुना या उससे भी अधिक आप मुझसे बदलेमें पा लेंगे; क्योंकि मेरे पास ऐसा एक भी पैसा नहीं आता जिसमें से रुपयोंके वृक्ष पैदा न होते हों — ब्याजसे नहीं, उसके उपयोगसे। ब्याज लेकर जीनेसे तो मरना ही बेहतर है। एक पैसेसे जितना भी रस लूटा जा सकता है उतना रस मैं लुटाऊँगा। उसका उपयोग हिन्दुस्तानकी पवित्रताकी रक्षा करनेमें, हिन्दुस्तानके वस्त्रहीन स्त्री-पुरुषोंका [शरीर] ढँकनेमें ही होगा। हिसाब एक-एक पाईका रहेगा। आजतक मुझे एक भी शख्स ऐसा नहीं मिला जिससे मैं यह कह सकूँ कि आपने मुझे बहुत दिया है। इसीलिए मेरे बोहरा मित्र तो मुझसे दूर भागते हैं। वर्ना उमर हाजी आमद झवेरी[1] तो आज यहाँ होने ही चाहिए थे। वे कहते हैं कि तुम जब मिलते हो, लूटनेकी ही बातें करते हो। इस प्रकार आजके कठिन कालमें मेरे साथ मित्रता रखना भी भयंकर है। आजके कठिन समय जो भाई हिन्दू होकर अपने रुपये भंगीके हाथसे[2] लुटवाना चाहते हों, जो भाई देशकी स्वतन्त्रताके लिए अपनी तमाम शक्ति या अपना सब धन खर्च करनेके लिए तैयार हो, वही मुझसे मित्रता कर सकता है। राजकोटके ठाकुर साहबने मुझपर प्रेमकी वर्षा की थी। मैं उसमें डूब-सा गया था। लेकिन मैं काँप रहा था और अपने हृदयसे पूछ रहा था कि राजाकी मित्रता कबतक रख-सकोगे? मेरे पिता जिस राज्यमें दीवान थे उस राजाके हाथसे अभिनन्दन-पत्र लेना मुझे अच्छा क्यों न मालूम हो? आज जो महाराजा साहब हैं उनके पितामहके राज्यमें मेरे पितामह दीवान थे, उनके भी पिताके राज्यमें मेरे पितामह दीवान थे। राजा साहबके पिता मेरे मित्र थे, मेरे मुवक्किल थे। मैंने उनका अन्न खाया है — इसलिए महाराजा साहबका निमन्त्रण मुझे पसन्द क्यों न हो? लेकिन सबकी मित्रता निबाहना मुश्किल है। मैं अंग्रेजोंकी मित्रता नहीं निबाह सका। मुझे तो इस संसारमें केवल एक ही की मित्रता निबाहना बहुत जरूरी मालूम होता है — और वह है ईश्वरकी मित्रता। ईश्वरका अर्थ है अपनी अन्तरात्मा। यदि मुझे उसका नाद सुनाई पड़े और मुझे लगे कि सारी दुनियाकी मित्रता छोड़ देनी चाहिए तो मैं उसके लिए तैयार हूँ। आप लोगोंकी मित्रताका मैं भूखा हूँ। मैं आपके तमाम रुपये-पैसे ले जाऊँगा और फिर भी मुझे तृप्ति न होगी। आपसे तो मैं माँगता ही रहूँगा और जब आप मुझे देशनिकाला दे देंगे तो मैं ईश्वरकी शरण चला जाऊँगा। मैं जो रुका हूँ सो हिन्दुस्तानकी सेवाके लिए। जबतक हिन्दुस्तानमें दुःखका दावानल सुलग रहा है तबतक मैं कहीं भी नहीं जाना चाहता। दक्षिण आफ्रिका जा सकता हूँ; लेकिन आज तो मुझे वहाँ जाना भी पसन्द नहीं है क्योंकि यहाँकी अग्नि बुझानेपर ही वहाँकी अग्नि बुझ सकती है। मैं सब राजाओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अग्नि-शमनके इस काममें मदद करें, और यदि इसमें मैं पोरबन्दरसे अधिकसे-अधिक आशा रखूँ तो इसमें गलती क्या है?

प्रजाकी तरफसे भी मैं ऐसी ही आशा रखे बैठा हूँ। मैं आप सबका सहयोग चाहता हूँ। शायद इसका परिणाम यह भी हो कि हम अंग्रेजोंसे भी सहयोग करने

१. डर्बनके एक व्यापारी तथा फीनिक्स आश्रमके एक न्यासी; देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ३१८।

२. गांधीजी स्वयं अपनेको भंगी मानते थे।

लगें। इसका यह मतलब नहीं कि हम लोग अंग्रेजोंके पास दौड़कर चले जायें। दौड़ते तो वे ही हमारे पास आयेंगे। वे मुझसे कहते हैं कि तुम तो भले हो; लेकिन तुम्हारे साथी बदमाश हैं, वे फिर तुम्हें चौरी-चौरा-जैसा धोखा देंगे। लेकिन मैं तो मनुष्य-स्वभावमें विश्वास रखता हूँ। प्रत्येक मनुष्यमें आत्मा है और प्रत्येक आत्माकी शक्ति मेरी आत्माके बराबर ही है। आप मेरी शक्तिको देख सकते हैं क्योंकि मैंने प्रार्थना करके, ढोल बजाकर और उसके समक्ष नाच कर अपनी आत्माको जाग्रत रखा है। आपकी आत्मा उतनी जाग्रत न हो लेकिन हम स्वभावमें तो एकसे ही हैं। राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहते हैं लेकिन यदि इन सबको ईश्वरकी मदद न हो तो उनसे एक तृण भी इधरसे-उधर नहीं हो सकेगा। प्रजा यदि यह माने कि हम बलवान् होकर राजाको सतायेंगे और राजा माने कि मैं बलवान् होकर प्रजाको पीस डालूँगा; हिन्दू यदि मानें कि सात करोड़ मुसलमानोंको पीस डालना मुश्किल नहीं है और मुसलमान मानें कि बाइस करोड़ शाक-सब्जी खानेवाले हिन्दुओंको हम पीस डालेंगे तो राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान — ये सभी मूर्ख हैं। यह खुदाका कलाम है, 'वेद'का वाक्य है, 'बाइबिल'का लेख है कि मनुष्यमात्र एक-दूसरेका बन्धु है। हरएक धर्म पुकार-पुकार कर कहता है कि प्रेमकी ग्रन्थिसे ही जगत् बँधा हुआ है। विद्वान् लोग यह सिखाते हैं कि यदि प्रेमका बन्धन न हो तो पृथ्वीका एक-एक परमाणु छिटक जाये और पानीका बिन्दु-बिन्दु अलग हो जाये। इसी प्रकार यदि मनुष्य-मनुष्यके बीच प्रेम न होगा तो हम मृतप्राय ही हो जायेंगे। यदि हम स्वराज्य चाहते हों, रामराज्य चाहते हों तो हम सबको प्रेमकी ग्रन्थिसे बँध जाना चाहिए। यह प्रेमकी ग्रन्थि क्या है? हाथसे कते हुए सूतकी ग्रन्थि। सूत परदेशी होगा तो वह लोहेकी बेड़ी बन जायेगा। आपकी एकसूत्रता तो देहातोंके साथ, ग्वालोंके साथ, बरडाके मेरोंके साथ होनी चाहिए। उसके बजाय यदि आपकी एकसूत्रता लंकाशायर अथवा अहमदाबादके साथ हो तो उससे पोरबन्दरका क्या लाभ होगा? प्रजाकी सच्ची माँग तो यह है कि हमारी मेहनतका उपयोग करो, हमें निठल्ला रखकर भूखों न मारो। राणावावके पत्थरोंके बजाय आप इटलीसे पत्थर मँगायें तो काम कैसे चलेगा? यदि आप अपने ही देहातोंमें बने मिट्टीके रामपात्र और अपनी गाय और भैंसोंका घी छोड़कर ये चीजें कलकत्तेसे मँगायें तो कैसे निबाह होगा? यदि आप अपनी ही चीजोंका उपयोग नहीं करेंगे और उन्हें दूसरी जगहोंसे मँगायेंगे तो मैं कहूँगा कि आप बेड़ियोंसे जकड़े हुए हैं। जबसे मुझे यह शुद्ध स्वदेशीका मन्त्र उपलब्ध हुआ है, जबसे मैं यह समझा हूँ कि गरीबसे भी गरीबके साथ मेरी एकसूत्रता होनी चाहिए, तभीसे मैं मुक्त हो गया हूँ और मुझसे मेरा आनन्द छीन सकनेमें न राजा साहब शक्तिमान हैं, न लॉर्ड रीडिंग और न सम्राट् जॉर्ज।

बहनोंसे मैं यह कहूँगा कि आपके दर्शनोंसे मैं तभी पावन होऊँगा जबकि आप खादीसे विभूषित होंगी और चरखा चलाने लगेंगी। आप मन्दिरोंमें जाकर धर्मकी रक्षा करना चाहती हैं। लेकिन जो बहन कातती है उसका हृदय ही मन्दिर बन जाता है। इसीलिए मैं आपसे पूछता हूँ कि जब मैं हिमालयके चमत्कारोंकी बातें करूँगा

क्या आप तभी मेरी बातें सुनेंगी? और जब मैं कहूँगा कि चूल्हेके साथ चरखा भी रखो तो क्या यह कहेंगी कि बूढ़ेकी अक्ल मारी गई है? मैं पागल नहीं हूँ, मैं तो समझदार हूँ। मेरा अनुभव ही पुकार-पुकारकर बोल रहा है।

एक शख्सने मुझसे पूछा था कि तुम पोरबन्दरका अभिनन्दन-पत्र लेकर क्या करोगे? पहले यह तो जान लो कि वहाँके खादी पहनने वाले कैसे हैं? लेकिन यह पूछनेके बदले कि पोरबन्दरमें खादी पहननेवाले लोग कैसे हैं, मैं यही पूछता हूँ कि खादी पहननेवाले हैं ही कहाँ? आपको महीन कपड़ोंकी लालसा रहती है। पर करोड़पतियोंने मुझे यह बताया है कि हमेशा बारीक कपड़ा खरीदना तो उन्हें भी महँगा जान पड़ता है। लेकिन जिस प्रकार घरमें आप बारीक सेव बनाती हैं, उसी प्रकार यदि आप बारीक कातें तो बारीक कपड़े भी पहन सकेंगी।

जबतक हम सूत कातनेकी इस साधनाको नहीं अपनायेंगे तबतक प्रेमकी गाँठ नहीं बँधेगी। यदि समस्त जगत्को आप प्रेमकी गाँठसे बाँध लेना चाहते हैं तो दूसरा उपाय ही नहीं है। हिन्दू-मुसलमान प्रश्नके लिए भी दूसरा कोई उपाय नहीं है। भाई शुएब कुरेशी भी मेरे साथ राजकोट गये थे। उन्हें वहाँके मुसलमानोंने कहा कि गांधी आपको धोखा देता है; खादीका प्रचार करके विलायती कपड़ोंका व्यापार करनेवाले मुसलमानोंको भिखारी बनाना चाहता है। लेकिन शुएब कुछ सुननेवाले थोड़े ही थे। वे जानते हैं कि विदेशी कपड़ोंका व्यापार करनेवाले मुट्ठीभर मुसलमानोंका मैं बुरा नहीं चाह सकता। वे खुद खादीके भक्त हैं और वे यह भी जानते हैं कि जितनी सेवा मैं इस्लामकी कर रहा हूँ उतनी खादीकी और देशकी भी नहीं कर सकता। मुसलमान भाइयोंको समझना चाहिए कि उनकी जन्मभूमि यही है और उसे स्वतन्त्र किये बिना इस्लामके स्वतन्त्र होनेकी आशा नहीं है।

मेरी काठियावाड़की यह शायद आखिरी ही मुलाकात ठहरे। शायद मेरी जिन्दगी अब बहुत कम बरसोंकी है। मैंने बड़ी अनिच्छाके साथ कांग्रेसका अध्यक्ष होना स्वीकार किया है और काठियावाड़ राजकीय परिषद्का भी। अब सिर्फ दस महीने बचे हैं। मैं आप लोगोंके पास इसीलिए आया हूँ कि यदि आप विशेष रूपसे मुझे अपना भाई समझते हों — यद्यपि मैं तो जीव-मात्रका भाई हूँ — तो मेरी इस प्रार्थनाको समझकर रोज आधा घंटा चरखा अवश्य चलायें। उससे आपकी कोई हानि नहीं है; और उससे देशकी दरिद्रता दूर होगी। आप मुझसे कितना दुखड़ा सुनना चाहते हैं? यदि आप अस्पृश्यता दूर न कर सकें तो धर्मका नाश हो जायेगा। सच्चा वैष्णव-धर्म तो वही है जिसमें पोषक-शक्ति अधिकसे-अधिक हो। आज तो वैष्णव-धर्मके नामपर अन्त्यजोंका नाश हो रहा है। हिन्दू धर्मका रहस्य अस्पृश्यता कदापि नहीं है। अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादी यह मेरी त्रिवेणी है। राजा और गरीब, सभी भाई-बहनोंसे मैं आज इसीकी माँग कर रहा हूँ।

शराबकी कुटेवका अन्त होना ही चाहिए और वह प्रजाके प्रयत्नोंसे ही। इसमें मुझे कुछ भी शंका नहीं है कि प्रजाके प्रयत्नोंसे ही यह बुराई दूर होगी। कुछ मूर्ख मनुष्योंने जोर-जबरदस्तीसे काम न लिया होता तो आज यह बुराई हिन्दुस्तानसे कभी-

की नष्ट हो गई होती। मैंने सुना है कि पोरबन्दरमें कुछ मल्लाहोंने शराब छोड़ दी है। मैंने यह भी सुना है कि राजा साहब इस आन्दोलनसे सहमत हैं और मदद करनेके लिए भी तैयार हैं। हम जबतक शराबकी लतसे छुटकारा नही पाते तबतक हम स्वतन्त्र नहीं हो सकते। स्वतन्त्रताके लिए यूरोपके उपाय हमारे काम नहीं आ सकते। वहाँके लोगों और आबोहवामें तथा हमारे यहाँके लोगों और आबोहवामें जमीन-आसमानका अन्तर है। वहाँके लोग दयाका त्याग कर सकते हैं, हम नहीं कर सकते। विदेशोंके मुसलमान मुझसे कहते हैं कि यहाँके मुसलमान शरीर-बलमें उनके मुकाबलेमें कमजोर हैं। यह अच्छा है या बुरा, हिन्दू-मुसलमानोंसे पूछो, जगतसे पूछो। लेकिन मेरा खयाल है कि वे कमजोर हैं इस कारण उनका कुछ भी नही बिगड़ेगा। दयालु बननेके मानी भी यह नहीं है कि मनुष्य डरपोक बन जाये या लाठीका त्याग कर दे। लेकिन उसके मानी हैं लाठी होनेपर भी उसका इस्तेमाल न करना। जो लाठी-का इस्तेमाल नही करता फिर भी सीना तानकर लाठीका इस्तेमाल करनेवालेके सामने जाता है, वह अपेक्षाकृत बलवान है। पहलवानका मन्त्र, क्षात्रधर्मका रहस्य अपने स्थानका त्याग न करना, पीठ न दिखाना है और इस गुणको प्राप्त करनेके लिए नशेकी चीजोंका त्याग आवश्यक है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि पोरबन्दरकी प्रजा शराबका सर्वथा त्याग कर दे। राजकोटमें यह बुराई बहुत फैल रही है। सिविल स्टेशनके दुकानदारके साथ स्पर्द्धा हो रही है और इसलिए वहाँ शराब सोडेके दाम बिकती है। लेकिन जिन्हें इतनी सस्ती शराब मिल रही है, वे खूनके आँसू बहा रहे हैं। मजदूरी करनेवालोंकी औरतें मुझसे पूछती हैं, "आप ठाकुर साहबसे इसके बारेमें कुछ न कहेंगे? इस बुराईने हमारे घरका सत्यानाश कर दिया है। हमारे घरमें कलह घुस आई है। हमारे पति व्यभिचारी बन गये हैं और हम कंगाली भोग रहे हैं।" इन गरीब स्त्रियोंसे यदि आशीर्वाद लेना हो तो हम सबको कटिबद्ध होकर राजासे कहना होगा कि वे इस दुःखसे रैयतको बचायें। इससे कुछ आमदनी होती हो तो भी क्या और इससे कुछ क्षणिक आनन्द मिलता हो तो भी क्या? यदि यह बुराई फैलेगी तो देशकी स्थिति ऐसी भयंकर हो जायेगी कि उसका खुद-ब-खुद नाश हो जायेगा; किसीको उसके नाश करनेका प्रयत्न न करना पड़ेगा। ईश्वर आप लोगोंका कल्याण करे, मेरे दीन वचनोंको सुनने और समझनेकी शक्ति वह आपको दे और इससे सारे जगत्का भी कल्याण हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-३-१९२५

८१. भाषण: पोरबन्दरके अन्त्यजोंकी सभामें

१९ फरवरी, १९२५

दीवान साहब, अन्त्यज भाइयो और बहनो,

आप सबको देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। आप जो अन्त्यज अर्थात् ढेढ़, भंगी और चमार भ्रमवश नीचे वर्णमें माने जाते हैं, यहाँ आये हैं। आपसे मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। आप जानते हैं कि अन्त्यजोंको उच्च वर्णोंके हिन्दू नहीं छूते। वे लोग मानते हैं कि अन्त्यजोंको खानेके लिए जूठन दी जा सकती है। इस प्रकार आपके साथ कई प्रकारके अन्याय किये जाते हैं। कितने ही हिन्दू इन सभी अन्यायोंकी निवृत्तिके लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं और कांग्रेसमें भी इस सम्बन्धमें बहुत चर्चा चल रही है और कोशिश की जा रही है।

किन्तु ये लोग अकेले क्या कर सकते हैं। इस कार्यमें आपकी सहायता भी आवश्यक है। मुझसे बहुतसे हिन्दू कहते हैं, "आप तो इनका पक्ष लेते हैं। किन्तु आप देखें तो कि ये लोग कैसे हैं। ये लोग मुरदार माँस खाते हैं और ये नहाते-धोते भी नहीं हैं। इनको देखकर मतली होती है। इनके रीति-रिवाज गन्दे हैं। हम इनको कैसे छुएँ?"

इसमें कुछ तो सच है ही। इसमें जितनी सचाई है उसपर आपको ध्यान देना चाहिए। जो बातें खराब हों, वे आपको छोड़ देनी चाहिए और अपने सुधारमें स्वयं योग देना चाहिए। जो खुद प्रयत्न नहीं करता, ईश्वर भी उसकी सहायता नहीं करता। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप स्वयं प्रयत्न करें। आप प्रातः चार बजे जगें, मुँह-हाथ धोएँ, आँखोंसे मैल साफ करें और भगवानका नाम जपें। स्मरण कैसे करना चाहिए, यह पूछें तो मैं कहूँगा कि आप रामका नाम लें। कान्हा या कृष्ण कहें तो वह भी ठीक है। किन्तु राम-नाम सबसे सुगम है। आप भगवानसे भीख माँगें, 'हे भगवान तू हमें अच्छा बना।' आप कई दिन बीत जानेपर भी नहाते नही हैं, यह ठीक नहीं है। नहाना तो प्रतिदिन चाहिए। मजूर कामसे लौटकर रातको नहा ले। आप चोरी भी न करें। अपने बच्चोंको साफ रखें। आप इन्हें साफ नहीं रखते, इसमें आप सबका दोष है। शालाके पण्डितजी बेचारे क्या करें? तीसरी बात यह है कि आप शराब न पीयें। शराब पीकर मनुष्य पशु बन जाता है। आप गला-सड़ा माँस न खायें। सच तो यह है कि आपको माँस ही नहीं खाना चाहिए। रोटी और दूध मिल जाये तो क्या उससे आपका काम नहीं चल सकता? जो लोग कपड़ा बुनना जानते हैं, वे कपड़ा बुनते रहें। आप सूत न कातते हों तो मैं उसे बर्दाश्त कर सकता हूँ; लेकिन ये सारी बुराइयाँ बर्दाश्त नहीं की जा सकतीं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

८२. तार: मोतीलाल नेहरूको

पोरबन्दर
२० फरवरी, १९२५

पण्डित नेहरू
वेस्टर्न होस्टल
दिल्ली

मेरी रायमें डा० बेसेंट अपनी रिपोर्ट[1] प्रकाशित कर सकती हैं।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

८३. पत्र: रेवाशंकर झवेरीको

[२० फरवरी, १९२५][2]

आदरणीय रेवाशंकर भाई,

इसके साथ पटवारीसे हुआ पत्र-व्यवहार वापस भेज रहा हूँ। मैं इसे पढ़ गया हूँ। उनको दिया गया उत्तर भी पढ़ लिया है। उनके व्यवहारसे दुःख होता है। उनसे बहुत आशाएँ थीं; किन्तु अब तो वे सभी व्यर्थ हो गई जान पड़ती हैं।

पोरबन्दरके राणा साहबसे भेंट कल हुई। उन्होंने भी खादी-कार्यमें सहायताका वचन दिया है। बातें जी-भर कर हुईं।

आज वाँकानेर पहुँच जाऊँगा।

मोहनदासके प्रणाम

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० १२६१) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २६-२-१९२५के अन्तर्गत उपशीर्षक "२८ फरवरी"।
२. गांधीजी वाँकानेर २० फरवरी, १९२५को पहुँचे थे।

८४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

वाँकानेर
माघ कृष्ण १३ [२१ फरवरी, १९२५][1]

भाईश्री ५ घनश्यामदासजी,

आपसे मैंने मुसलमानोंके लीये कहा था। अलीगढ़में राष्ट्रीय मुस्लीम युनिवर्सिटी चलती है। उसकी आर्थिक स्थिति बहोत ही कठिन है। मैंने उन भाइयोंको कहा है मैं सहाय दिलानेका प्रयत्न करूंगा। वे लोग एक रकम इकट्ठी कर रहे है। मैंने कहा है कि उसमें रु० ५००००की सहाय मांगनेकी कोशीष मैं करूंगा। आप इस बातको सोचीये और आपका दिल यदि इस सहाय पूरी या कुछ भी देना चाहता है तो मुझे लीखिये। हिंदु-मुसलमीन प्रश्नका मैं खूब अभ्यास कर रहा हुं। मेरा विश्वास मेरे हि इलाजपर बड़ता जाता है। अगर मुसीबतें ज्यादा देखता हुं तो भी।

मैं आजकल काठीयावाड़में घूम रहा हुं। आज मेरा प्रवास खतम होगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

आश्रममें १२ से २६ तारीख तक रहुंगा। २८ तारीखको दिल्ली पहोंचुंगा।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०५) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

८५. भाषण : बढवान कैम्पकी सभामें

२१ फरवरी, १९२५

हमें आज शिवलालभाईकी[2] अनुपस्थिति साल रही है। यह तो आपने अभी सुना कि उन्होंने काठियावाड़ और देशकी कितनी सेवा की है। यह हिन्दुस्तानका दुर्भाग्य ही है कि इसमें से जो अच्छे लोग चले जाते हैं उनकी जगह दूसरे नये पैदा नहीं होते। जाना तो हरएकके नसीबमें ही है। जन्म और मरणका जोड़ा है और वे साथ-साथ चलते हैं। इनके सम्बन्धमें किसीको मोह या शोक नहीं करना चाहिए। फिर भी कोई मरता है तो दुःख होता है। मुझे ऐसा लगता है कि इस दुःखका

१. पत्रमें उल्लिखित काठियावाड़की यात्राके दौरान गांधीजी इस तारीखको वाँकानेरमें थे।
२. बढवानकी उद्योगशालाके संस्थापक। देखिए "काठियावाड़के संस्मरण—२", ८-३-१९२५के अन्तर्गत उपशीर्षक "उद्योग-शाला"।

कारण स्वार्थ है। मैं जब शिवलालभाईका पुण्य स्मरण करता हूँ तब सोचता हूँ कि इस व्यक्तिसे हमारा कितना स्वार्थ सधता था। यदि हम उनकी याद कायम रखना चाहते हों तो हमें उनकी जगह ले लेनी चाहिए। हमें यह संकोच नहीं होना चाहिए कि हम उनसे आगे कैसे बढ़ेंगे। यदि हम पुरखोंकी वसीयतमें कुछ भी वृद्धि न करें तो यह शर्मकी बात होगी। जो अपने पुरखोंकी सम्पत्तिमें थोड़ी बहुत भी वृद्धि कर पाता है वही सच्चा उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। शिवलालभाईकी इस सम्पत्तिमें वृद्धि करना हमारा कर्त्तव्य है। यह नहीं हो पाया है, इसका मुझे दुःख होता है।

मेरी अभिलाषा तो यह है कि खादीका काम सब लोग करें और वह गाँव-गाँवमें फैले। जबतक चरखा हर गाँवमें नहीं पहुँचता और जबतक सब लोग खादी नहीं पहनने लगते तबतक यहाँ शुद्ध स्वराज्यकी स्थापना होनी कठिन है। अभी हिन्दुओं और मुसलमानोंके हृदय एक नहीं हुए हैं। यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपने हृदय एक करने हैं तो दोनोंको चरखा चलाना आरम्भ कर देना चाहिए। अन्त्यजोंका प्रश्न भी खादीके अन्तर्गत आता है। अन्त्यजोंको लेकर बढवानमें हलचल मच गई है। क्यों मच गई है, यह मेरी समझमें नहीं आता। यदि हम खादीको सब लोगोंमें फैलाना चाहते हों तो हमें अन्त्यजोंको गले लगाना होगा। हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठा मुसलमानों और अन्त्यज बुनकरोंपर ही निर्भर है। बुनकरोंका संगठन किये बिना मनपसन्द खादी नहीं मिल सकती। मैं वाँकानेरसे आया हूँ। वहाँ ३०० मुसलमान बुनकर हैं। वे बहुत अच्छा कपड़ा बुनते हैं। किन्तु उनमें हाथ-कता सूत बुननेवाले केवल दो या तीन ही हैं। यदि हम दूसरोंसे भी खादी बुनवाना चाहते हैं तो हम सबको सूत कातना आरम्भ कर देना चाहिए। जो बहनें पैसेके लिए सूत कातती हैं हम उनसे दूसरी कमाई छुड़वाकर सूत नहीं कतवाना चाहते। जिनको एक पैसा भी नसीब नहीं है हम उन्हींसे सूत कतवाना चाहते हैं। जिस देशमें लोगोंको रूखी रोटियाँ और मटमैला नमक ही खानेको मिलता है, वहाँ चरखा कामधेनु है। इतना यज्ञ करना अनिवार्य हैं। यह यज्ञ व्यवस्थित रूपसे चलता रहे तो अच्छा हो।

आप कातनेका काम छोड़कर बुनाईका काम हाथमें न लें। यदि बारीक सूत जरूरी हो तो वह अपने हाथसे ही कातना पड़ेगा। बारीक सूतके अभावमें हम अपने सुकुमार भाई-बहनोंको क्या देंगे? आप एक सेर सूतकी बुनाई छः आना या आठ आना देंगे, किन्तु आपको कोई भी छः आनेमें चालीस नम्बरका सूत कात कर न देगा।

यदि आप शिवलालभाईकी याद कायम रखना चाहते हैं तो आपको उनका काम जारी रखना पड़ेगा। खादीके प्रति स्नेह ही शिवलालका प्रथम और अंतिम काम था। उन्होंने इसमें बहुत रुपया भी लगाया। अब यदि हम उनके कार्यकी दिशामें कुछ भी न करें तो यह हमारे लिए शर्मकी बात होगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

८६. भाषण: बढवानकी सार्वजनिक सभामें

२१ फरवरी, १९२५

मैं अन्त्यज बाड़ेसे अभी हाल ही लौटा हूँ। मुझे वहाँ बैठनेमें बहुत सुख मिला क्योंकि मैं इस प्रकार अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहा था। अब मैं यहाँ आपके बीच बैठा हूँ। इस सम्बन्धमें ईश्वर मुझसे अवश्य पूछेगा, क्या बढवानके लोगोंसे कोई नई बात कहने गया था? आपने उनका मुहल्ला अलग बनाकर उनका त्याग कर दिया है; इसलिए मुझे उनको बहुत-सी नई बातें कहनी और बतानी थीं। आज मुझे आपको कोई ऐसा चमत्कार करके नहीं दिखाना है कि आप स्तम्भित रह जायें। मैं तो यही अनुरोध करता हूँ कि आप अपने धर्मको समझें और उसका पालन करें। मेरा आपसे इतना ही कहना है कि आप जिस बातको धर्म मान रहे हैं, वह पाप है। आप इस सम्बन्धमें भली-भाँति विचार करें और यदि आपका हृदय और आपकी बुद्धि दोनों इस बातको स्वीकार करें तभी आप उसे मानें और अन्त्यजोंको अस्पृश्य समझना बन्द कर दें।

जब मैं [आफ्रिकासे] हिन्दुस्तानमें आया था तब पहले अहमदाबाद गया। मैंने उस शहरके लोगोंसे सलाह की। मैंने उनको अपने विचार बताये। वे मुझे एक वर्ष तक सहायता देंगे यह वचन लेनेके बाद मैंने वहाँ अपना आश्रम खोला।[1] अन्त्यजोंके सम्बन्धमें भी बात हुई। मैंने कहा, मैं तो किसी विधर्मीसे भी भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं करूँगा और अन्त्यजोंको तो अपने आश्रममें अवश्य लूँगा। उन्होंने कहा, 'आपको ऐसे अन्त्यज कहीं नहीं मिल सकेंगे।' मैं वहाँ गया और रहने लगा। मुझे बर्तन-भाँडे सब मिले, किन्तु रुपया बिलकुल नहीं मिला। किन्तु मैंने आशा नहीं छोड़ी। एक महीना ही बीता था कि दूदाभाई[2] ठक्कर बापाकी[3] चिट्ठी लेकर आ गये। मैंने उनको स्थान दे दिया। स्थान देते ही अहमदाबादके भाइयोंने मेरे बहिष्कारका निश्चय कर लिया। मैं जिस कुएँसे पानी भरता था, उस कुएँसे पानी भरनेवाले लोगोंने मुझे बहिष्कृत कर दिया। मैंने उनसे कहा, आप चाहे जो करें, किन्तु मैं तो अहमदाबादसे नहीं जाऊँगा। यदि ईश्वर मुझे यहाँ रखना चाहेगा तो रखेगा। कुछ न होगा, तो मैं अन्त्यज वाड़ेमें जाकर रहूँगा। मैं तो अपनी मान-मर्यादा समझनेवाला मनुष्य हूँ। आप रोष करेंगे तो भी मैं उसे अपना अपमान कदापि न मानूँगा। पाँच दिन बाद कुएँसे पानी भरनेवाले लोगोंके हृदय पसीज गये और उन्होंने दूदाभाईको कुएँसे पानी भरनेकी अनुमति दे दी। किन्तु रुपया? जिस दिन रुपया बिलकुल खत्म हुआ, उसी

१. देखिए खण्ड १३ पृष्ठ ८८-९१।

२. एक अन्त्यज शिक्षक जिसके आश्रममें प्रवेशपर बहुत शोर मचा था, देखिए *आत्मकथा*, भाग ५, अध्याय १०।

३. अमृतलाल वि० ठक्कर।

दिन ईश्वर सशरीर वहाँ आकर मुझे अपने हाथसे रुपया दे गया। एक दिन एक मोटर आकर खड़ी हुई उसमें से एक सज्जन[1] जिन्हें मैं पहचानता भी नहीं था, उतरकर आये और बोले, मुझे १३,००० रुपये देने हैं। क्या आप ले लेंगे? वे दूसरे दिन फिर आये और १३,००० रुपयेके नोट देकर चले गये। यह सत्याग्रह आश्रम आज भी मौजूद है। मुझे तो अपने सत्याग्रहपर आरूढ़ रहकर अहमदाबादमें जमे रहना ही था। आज अहमदाबादके लोग मेरे साथ हैं। वे सब मेरे पास आते हैं और मुझे उन सबकी सहानुभूति प्राप्त है। इसका कारण केवल यह है कि मैंने उन्हें प्रेमकी डोरीसे बाँध लिया था और मुझे यह विश्वास था कि अहमदाबादसे ही अपने प्रेमका बदला मुझे मिलेगा। फूलचन्द भी मेरी ही तरह आसन लगाकर जम जानेवाले मनुष्य हैं। वे बढवानको क्यों छोड़ेंगे? चाहे भूखों ही मरना पड़े तो भी उन्हें तो यहाँसे डिगना ही नहीं चाहिए। यदि वे रोष या दुराग्रहवश ऐसा कुछ करेंगे या आपको कटुवचन कहेंगे तो यह पाप होगा। यदि उनके शब्द प्रेममें पगे होंगे तो आपका हृदय पसीज जायेगा। उनके व्यवहारके मूलमें क्या भाव है, यह तो ईश्वर ही जाने। उनका भाव जैसा होगा, परिणाम भी वैसा ही होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-३-१९२५

८७. भाषण : बढवानके बाल-मंदिरमें[2]

२१ फरवरी, १९२५

चाँदीका यह ताला, कुंजी और कन्नी, मुझे अपने साथ ले जानी हैं। इन चीजोंको माटीका स्पर्श भी नहीं हुआ है। धोराजी वालाभाईने जो गिन्नियाँ मुझे दी हैं, मैं वे गिन्नियाँ फूलचन्दभाईको दे दूंगा। चाँदीकी ये चीजें और ये गिन्नियाँ कुछ अर्थ रखती हैं। इस देशमें अनेक प्रकारके काम हो रहे हैं। किसे पता, उनके अन्दर कितना सत्य, कितनी कुरबानी, कितनी भावना है? मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि आज देशकी बहुत थोड़ी संस्थाओंमें आत्मा और जीवन है। एक अंग्रेज कविने स्वर्गका वर्णन करते हुए कहा है — स्वर्गके दरवाजेपर पीटर बैठा है और उसकी चाबी सोनेकी नहीं, लोहेकी है। इसका खुलासा करते हुए दूसरा कवि कहता है — स्वर्गका दरवाजा खोलना सहल काम नहीं है, वह सोनेकी चाबीसे नहीं खुल सकता; क्योंकि सोना मुलायम होता है। लोहा सख्तसे-सख्त धातुओंमें से एक है। इसलिए वह लोहेकी चाबीसे ही खुल सकता है।

किसी बातका करना यदि बहुत मुश्किल होता है तो उसके लिए हम काठियावाड़में कहते हैं — लोहेके चने चबाना। सो ऐसी संस्थाओंकी सुव्यवस्था लोहेके चने

१. अम्बालाल साराभाई।

२. काठियावाड़की यात्रामें गांधीजीने बढवानके बाल-मन्दिरका उद्घाटन किया। चाँदीके तालेको चाँदीकी कुंजीसे खोला। इसीलिए उन्होंने अपना भाषण चाँदीके ताले-कुंजीके उल्लेखसे ही शुरू किया।

चबानेके बराबर है। पुस्तकालयको बनानेके लिए चाँदीके औजार काम नहीं आते, लोहेके ही चाहिए और उसे बन्द करनेके लिए चाँदीका ताला काम नहीं दे सकता, लोहेका ही चाहिए। अर्थात् हमने इस क्रियाको करते हुए आरम्भ कृत्रिमतासे ही किया है। मैंने तो सिर्फ थोड़ी-सी मट्टी डालकर पत्थर रख दिया, इसे बाँधनेका सारा काम तो राज ही करेंगे और मन्दिरका उद्घाटन तो शिक्षकों द्वारा ही होगा। पुस्तकालयका अर्थ पुस्तकोंका घर या पुस्तकें नहीं हैं; और न उसका अर्थ उसमें केवल जाकर बैठ जानेवाले लोग ही हैं। यदि ऐसा होता तो किताब बेचनेवाले अनेक लोग चरित्रवान् होते। बाल-मन्दिरकी इमारत खूबसूरत है और पैसा भी इसपर काफी खर्च किया गया है, पर क्या इसी कारण यह चल गया? इसका उत्कर्ष तो उसके संचालकोंके सुयोग्य होने और उसमें आत्मा होनेपर ही निर्भर करेगा। साधारण तौरपर ऐसी संस्थाओंका उद्घाटन करनेका कार्य मुझे ठीक नहीं मालूम होता; क्योंकि इन्हें खोलकर मैं *क्या करूँगा*? पर इस संस्थाका उद्घाटन करना मैंने कुबूल किया, उसका कारण यह है कि इसमें काम करनेवाले लोगोंपर मुझे विश्वास है। बाकी आप ऐसा न समझें कि मेरे हाथों उद्घाटन हुआ है इसलिए कुछ लाभ हो सकता है। मैं तो उड़ता पंछी हूँ। आज यहाँ, कल अहमदाबाद और परसों दिल्ली। फिर भी मेरा नाम लेकर जितना भला किया जा सकता है, उतना आप करना चाहें तो मैं नाहीं नहीं करता। इस मन्दिरकी हस्तीका आधार न तो धनवान हैं, न बालक हैं, और न दानकी लाखों अशर्फियाँ, उलटे अधिक अशर्फियाँ तो बाधक ही हो सकती हैं। मैंने खुद अपने अनुभवसे देखा है कि जब-जब बहुत आर्थिक सहायता मिली, मेरे कामोंमें विघ्न ही आये। जब दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह चल रहा था, तब ज्यों ही यहाँसे रुपये-पैसेकी वर्षा होने लगी, त्यों ही मेरे आन्दोलनकी शक्ति न जाने कहाँ चली गई। उसी तरह जिस तरह युधिष्ठिरने 'नरो वा कुंजरो वा' कहा था और उसके रथका पहिया नीचे खिसक गया था। ईश्वरने सबको २४ घंटे ही दिये हैं। और ८ घंटेकी मजदूरीसे २४ घंटेके लिए जरूरी चीजें मिल जाती हैं। इतने ही पर सबको सन्तुष्ट रहना चाहिए। इस कारण मैं बिलकुल नहीं चाहता कि इस संस्थाकी आर्थिक अवस्था अच्छी हो। इस संस्थाके पास धन सिर्फ इतना ही हो कि जिससे यहाँ काम करनेवालोंका शरीर चलता रहे और जरूरत आ पड़े तो वे उसका त्याग भी कर दें।

जिस संस्थाको बहुत-सा धन और थोड़े कार्यकर्त्ता मिल जायें उसे तो मैं 'मशरूम' (कुक्करमुत्ता)-जैसी उपज ही कहूँगा। वह चार दिन रहकर नष्ट हो जायेगी। मेरे इस कथनका तात्पर्य यह है कि जो भाई यहाँ आये हैं और जिन्होंने इस संस्थाके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देनेकी प्रतिज्ञा की है, उन्हें चाहिए कि वे परमात्मामें भरोसा रखते हुए जमकर बैठ जायें। जब ऐसा भी मालूम हो कि अब डूबनेमें देर नहीं है तब भी श्रद्धापूर्वक पार जानेका प्रयत्न करते रहें; नहीं तो निश्चय ही आप हिन्दुस्तानके शापके अधिकारी होंगे। यह भव्य भवन इस गरीब देशको शोभा नहीं देगा। ऐसे मकान तो राजा-महाराजाओंको शोभा देते हैं — हिन्दुस्तानकी गरीबीमें तो बिलकुल शोभा नहीं देते। यदि हम जनताको इसके बदलेमें कुछ न दें तो अबतक जनताको

इनका कोई प्रतिदान नहीं मिलता तबतक क्या ये मकान उनके संचालकोंको खानेको नहीं दौड़ेंगे? जिस तरह जनक राजा महलोंमें रहते हुए भी त्यागी माने गये उसी तरह यदि फूलचन्दभाई और उनके साथी त्यागवृत्तिसे इसका संचालन करें तो फिर इसमें कोई हर्ज नहीं कि यह संस्था कायम हुई और उसकी नीव मेरे हाथों डाली गई। पर यदि त्याग-भाव उड़ गया और भोगको प्रधानता मिल गई तो इसका नाश निश्चित समझिए। राष्ट्रीय शाला वही है जिसके द्वारा हम स्वराज्य प्राप्त कर सकें, और जिसके शिक्षक सभी नियमोंका पालन करते हों, त्यागवृत्तिवाले हों तथा कठिन जीवन व्यतीत करते हों।

स्थानीय लोगोंने इस संस्थाकी सहायतासे हाथ खींच रखा है, यह जानकर मुझे दुःख हुआ है। आज हिंदमें प्रायः यही स्थिति प्रत्येक संस्था की है।[1] जिस संस्थाको जबतक चलानेकी जरूरत हो तबतक उसके लिए धन स्थानीय लोगोंसे मिलना चाहिए और संचालकोंको भी स्थानीय जनताको अपने कार्यसे प्रसन्न रखना चाहिए। हम जैसे स्वराज्यवादी जनसेवकोंकी स्थिति विषम है, क्योंकि वे सुधारक भी हैं। सुधारककी स्थिति विचित्र हो जाती है, क्योंकि वह वातावरणके अनुसार काम नहीं कर सकता। उसे आवश्यक पोषण बाहरसे ही लेना होता है। नहीं तो रंगूनके डा० मेहताका[2] बढवानकी शालासे क्या सम्बन्ध। फूलचन्दके अन्त्यज सेवा सम्बन्धी विचारोंसे परिचित रहते हुए भी बढवानके लोगोंने इसके कोषमें चन्दा दिया और फिर अब उसका बहिष्कार क्यों कर रहे हैं, यह बात समझमें नहीं आती। मैं चाहता हूँ कि वे मुझे आकर अपनी बात समझायें।

राष्ट्रीयका अर्थ होता है राष्ट्रके जीवनका पोषक। राष्ट्रीयका अर्थ इतना ही नहीं है कि केवल सरकारसे सम्बन्ध छोड़ दिया जाये — राष्ट्रीय संस्थाकी बुनियाद तो चारित्र्य है। यदि लड़कोंका ढेर लगा हो और पढ़कर उन्हें जीविका मिलने लगे तो शाला उससे भी राष्ट्रीय नहीं हो सकती। आजीविका मिले तो ठीक है; परन्तु शिक्षणका यह हेतु नहीं है कि वह आजीविका पैदा करनेकी कला सिखाये। उसका हेतु तो है बालककी आत्माको जाग्रत करना, उसे प्रकाशमें लाना, बालकके शरीर, बुद्धि और आत्माको विकसित करना। वाँकानेरकी शालामें भी बहुत लड़के दाखिल होते हैं क्योंकि उनका परीक्षा-फल शत-प्रतिशत रहता है। यह भी हो सकता है कि वहाँके शिक्षक अच्छे हों। किन्तु यह मापदण्ड कोई सही मापदण्ड नहीं है। वहाँ जो बालक दाखिल कराये जाते है, सो इस इच्छासे नहीं कि वे अच्छे शिक्षकोंसे नीति और सदाचरण सीखेंगे बल्कि इस आशासे दाखिल कराये जाते हैं कि योग्य शिक्षकोंसे पढ़कर वे परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे। केवल परीक्षाके कृत्रिम शिक्षा-मापसे हमें मुक्त होना है और विद्यापीठकी स्थापना इसीलिए हुई है और राष्ट्रीय शालाका अस्तित्व भी इसीलिए है। मैं माँ-बापोंसे कहता हूँ कि ऐसी शालाओंको सहायता दीजिए और शिक्षकोंसे कहता हूँ कि आप अपने ध्येयपर दृढ़ रहिये, तपश्चर्या करिये और अपने

१. महादेवभाईनी डायरी, भाग ७ में यह वाक्य भी है।
२. प्राणजीवन मेहता।

चरित्र-बलसे बालकोंको आकर्षित करिये। ऐसा होनेपर ही मेरा यहाँ आना और इस भवनको खोलना सार्थक कहलायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-३-१९२५

८८. टिप्पणियाँ

उत्कलमें खादी

उत्कल अर्थात् उड़ीसाके विषयमें श्री शंकरलाल बैंकर कलकत्तासे लिखते हैं:[1]

उत्कलके बराबर कंगाल प्रान्त दूसरा नहीं है। उसमें खादीका काम तो सबसे ज्यादा हो सकना चाहिए। परन्तु इस पत्रसे मालूम होता है कि वहाँ काम दूसरी सभी जगहोंसे कम हो रहा है। इसका कारण सभी जानते हैं। जहाँ लोगोंको खाने-पीनेकी कमी है, वहाँ काम करनेकी शक्ति और उत्साहका लोप हो जाता है। यदि वहाँ कार्यकर्त्ता मिल जायें तो यह आशा की जा सकती है कि उत्कल सबसे आगे बढ़ जायेगा।

सूत बनाम खादी

एक सज्जन लिखते हैं: "आपके पास हाथकते सूतको खरीदकर भेजनेकी अपेक्षा क्या यह अधिक ठीक न होगा कि हम उतनी ही खादीका पैसा आपको भेज दें और खादी भी पहनें?" इस प्रश्नमें थोड़ी-सी गलतफहमी है। कांग्रेसकी माँग इन दो में से एककी नहीं, दोनों बातोंकी है। पहली बात तो यह है कि हरएक आदमी-को २,००० गज हाथकता सूत खुद कातकर या किसीसे कतवाकर हर माह भेजना है; और दूसरी बात यह है कि हर एकको खादी पहननी है। इसलिए विकल्प तो कोई है ही नहीं — दोनों बातें अनिवार्य हैं; केवल कातनेवाला कांग्रेसका सदस्य नहीं हो सकता और न केवल खादी पहननेवाला ही। और यही ठीक भी है। कातनेको सबपर लागू करके हम खादीका उत्पादन बढ़ायेंगे और खादी पहनना सबपर लागू करके हम खादीकी खपत बढ़ायेंगे। इस प्रकार हिन्दुस्तानकी गरीबी और भुखमरी मिट सकेगी।

एक बहनकी कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं कि मैंने एक बहनको खादी पहननेके लिए समझाया। उन्होंने कहा, "यदि मैं खादी पहनने लगूँ तो मेरे पति मिलके कपड़े पहननेवाली किसी स्त्रीपर मोहित होकर चरित्र भ्रष्ट न हो जायेंगे?" ऐसे जवाबकी आशा मैं किसी पवित्र बहनसे नहीं रख सकता। पर जब यह सवाल पूछा ही गया है तब

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है; इसमें उत्कल प्रदेशमें खादी प्रचार कार्यका ब्योरा था।

उसका विचार कर लेना उचित है। अपनी पत्नीके सादगीका अवलम्बन करनेपर अथवा स्वधर्म-पालन करनेपर यदि किसी पतिके चरित्रभ्रष्ट होनेकी सम्भावना हो तो उसके विषयमें पवित्र स्त्रीको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिस पुरुषकी पवित्रता किसी अन्यकी पत्नीके लिबासको देखकर भंग हो सकती हो तो उसकी पवित्रतामें क्या सार है? लिबासके फेरफारसे जो पति भ्रष्ट हो सकता है वह क्या किसी अधिक रूपवती स्त्रीको देखकर भी नहीं गिर सकता?

पर मेरा अनुभव उक्त बहनकी बातसे उलटा है। मैं ऐसे सैकड़ों पतियोंको जानता हूँ जो अपनी पत्नियोंके खादी पहननेसे प्रसन्न हुए हैं। उनके घरका खर्च कम हुआ है और खादी धारण करनेवाली अपनी पत्नीके प्रति उनका प्रेम बढ़ा है। यह भी हो सकता है कि इन बहनको वास्तवमें खादी पहनना ही नहीं था और इसलिए अनजानमें ऐसा अनुचित विचार उनके मनमें उठ आया। ऐसी बहनोंसे तो मेरी यह प्रार्थना है कि उन्हें दृढ़तापूर्वक खादी पहननी चाहिए और समझना चाहिए कि शृंगार लिबासमें नहीं, बल्कि पवित्रतामें है और लिबास शृंगारके लिए नहीं है बल्कि सर्दी-गर्मीसे शरीरकी रक्षा करने और बदन ढँकनेके लिए है।

हम क्या करें!

मुझे जेतपुर [काठियावाड़]में वहाँके निवासी दो सज्जनोंका नीचे लिखा हुआ पत्र मिला था:

> *आपका चरखेका सिद्धान्त हमें हृदयसे स्वीकार है। परन्तु वर्तमान समय ही ऐसा विकट हो गया है कि आजीविकाके लिए जो काम रोज ही करने पड़ते हैं, वे इसके मार्गमें बहुत बड़ी बाधा बने हुए हैं। इससे मंजिलपर पहुँचनेमें असफल हो जाना अचरजकी बात नहीं है। अनुभवसे तो हम केवल इतना ही देख सके हैं कि सच्ची राहको भुलाकर दाँव-पेच, प्रपंच, दगा इत्यादिसे रुपया पैदा करना और गृह-संसार चलाना रूढ़ हो गया है। यदि इसमें सफल न हों तो नौकरीके लिए भटकना पड़ता है। इससे हृदयबल घट गया है और यही सबब है कि निश्चित लक्ष्य चूक जाता है।*
>
> *इस रूढ़िको बदल देनेमें हमारी मुश्किलें ये हैं: खेती करनेसे सब बातें हल हो सकती हैं; किन्तु धनाढ्यतामें पले हुए होनेके कारण शरीरके बलका ह्रास हो गया है; यहाँतक कि जिन्दगी-भर उस सामर्थ्य और हिम्मतके लौटनेकी आशा नहीं हो सकती।*
>
> *किसानोंकी संख्या बहुत है। वे अपना काम चला लेते हैं। लेकिन उन्हें ज्ञान प्राप्त करनेके साधन ही नहीं मिलते। इसलिए आज तो वे भी अधोगतिको प्राप्त होते जा रहे हैं। उनके बाद, हम-जैसे अर्धदग्ध मनुष्योंकी संख्या अधिक है। उनके लिए क्या मार्ग होगा? हम यह किस प्रकार जान सकते हैं? यदि कभी आपके सत्य सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करनेकी कोशिश करते हैं तो हम-जैसे शक्तिहीन मनुष्योंको हर प्रकारके साधनोंको प्राप्त करनेके लिए दूसरोंकी मदद लेनेकी जरूरत पड़ती है। यदि ऐसी मदद प्राप्त करना*

चाहते हैं तो निःस्वार्थ मदद करनेवाले बहुत कम मिलते हैं। नर्मन करने जाते हैं तो सिर ही खो देना पड़ता है। ऐसा भी अनुभव हुआ है। अब हमें कोई सरल मार्ग दिखाई नहीं देता। हम आशा करते हैं कि आप हमें जरूर ही सरल मार्ग बतायेंगे।

यह वर्णन यथार्थ है। बिना मानसिक बल प्राप्त किये ऐसे लाचार वातावरणमें से कोई नहीं उबर सकता। ये भाई जिस वर्गके हैं उसे आलस्य रूपी रोगने घेर रखा है। चालाकीसे द्रव्य प्राप्त करनेकी आदत पड़ जानेके कारण उन्हें मेहनत करके कमाना अच्छा नहीं मालूम होता। आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। मेहनत करके जो-कुछ मिलता है उससे पूरा नहीं पड़ता। विवाह, मरण इत्यादिके कृत्रिम खर्च इतने बढ़ गये हैं कि बिना कर्ज लिये या बेजा तौरपर कमाये बिना चलाये ही नहीं जा सकते। खेती लायक शरीर नहीं रह गये हैं और उसके लिए पूंजी और आवश्यक जानकारी भी नहीं रही। इसलिए अब बच रहता है केवल चरखा। यहाँ चरखेके मानी सिर्फ कातना नहीं समझना चाहिए, बल्कि रुईसे सम्बन्धित समस्त क्रियाएँ समझनी चाहिए। यही एक पेशा है जिसमें पूँजी और शारीरिक समृद्धि दोनोंकी जरूरत कम है। यदि हम रूढ़ आडम्बरसे बचते रहें और सादा रहन-सहन रखें तथा आलस्यका त्याग कर दें तो उसके द्वारा आजीविका मिल सकती है। पूर्वोक्त दोनों भाई यदि कुछ हिम्मत करें तो थोड़े ही प्रयत्नसे कातने और बुननेका काम भी सीख सकते हैं और फिर आगे चलकर वे बुनाईके कामसे ही अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते हैं।

अभी लोगोंको खादीका शौक नहीं हुआ है इसलिए बुनाईके जरिये आमदनी कम होती है। लेकिन जब खादीका अच्छा प्रचार हो जायेगा तब हममें से अधिकतर लोग बुननेका काम करेंगे या खादीके नीतियुक्त व्यापारके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करेंगे। यदि ये भाई कुछ पुरुषार्थ करनेकी हिम्मत दिखायें तो वे जाकर किसी खादी विद्यालयमें भरती हो जायें। काठियावाड़में ऐसी एक संस्था मढडामें है ही। अब तो काठियावाड़ राजकीय परिषद्ने चरखेके प्रचारके कार्यको अपना प्रधान कार्य बना लिया है। इसलिए उसके मन्त्रीके साथ सलाह करके उन्हें अपना मार्ग ढूँढ़ लेना चाहिए। हमें स्मरण रखना चाहिए कि एक कमाये और दूसरे लोग बैठकर खायें यह इस धन्धेमें नहीं चल सकता।

खादी प्रदर्शनी

सूपा गुरुकुलके वार्षिकोत्सवके अवसरपर एक खादी प्रदर्शनी की गई थी। उसका विवरण देते हुए वहाँके खादी विभागके व्यवस्थापक लिखते हैं:[1]

यदि समय-समयपर ऐसी खादी प्रदर्शनियाँ होती रहें तो खादी और चरखेके प्रचारपर उनका असर हुए बिना नहीं रहेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-२-१९२५

१. उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

८९. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद
२२ फरवरी, १९२५

श्री गांधी काठियावाड़में राजकोट, पोरबन्दर, वाँकानेर और बढवानका दौरा करके आज सुबह सत्याग्रह आश्रम लौटे। लौटते हुए उन्होंने गनोद गरासिया केन्द्र भी देखा। वे इन सभी राज्योंके राजाओंसे मिले थे और उन्होंने प्रजाके हितका जो आग्रह उनमें देखा वे उससे बहुत ही प्रभावित हुए। इन स्थानोंके जिन लोगोंसे वे मिले उनसे इन सभी राज्योंके राजाओंकी बड़ी प्रशंसा की। श्री गांधीका कहना है कि राजकोटके राजा ठाकुर साहबने प्रातिनिधिक विधानसभाकी स्थापनाके साथ जो प्रयोग शुरू किया है, वह बहुत ही दिलचस्प है, हालाँकि उसके बारेमें कोई निश्चित राय अभी कुछ समय बाद ही दी जा सकती है। फिर भी जितना वे जान पाये हैं उससे उन्हें सफलताकी आशा है।

श्री गांधीने कहा:

यह समयके परिवर्तनका ही लक्षण है कि इन सब जगहोंमें मैंने जनतामें पूर्ण मद्यनिषेधकी इच्छा बड़ी बलवती पाई। राजकोटमें यह इच्छा बहुत ही तीव्र है, क्योंकि वहाँ शराबके सरकारी ठेकों और गैर-सरकारी ठेकोंके बीच एक बड़ी ही अशोभनीय और दूषित किस्मकी होड़ लगी हुई है। इसके परिणामस्वरूप कीमतें काफी गिर गई हैं, और निचले वर्गोंके लोग अब पहलेसे कहीं अधिक शराब पीने लगे हैं। इन वर्गोंके मर्द रोज ही शराब पीकर घर लौटते हैं। उनकी स्त्रियाँ बड़े दुःखी मनसे परिवारोंके तबाह होनेकी शिकायत करती हैं। लोग ठाकुर साहबसे शराबकी दूकानें बिलकुल बन्द करा देनेका आग्रह कर रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी बात लेकर वे ऐसा करनेमें हिचक रहे हैं। उनकी राय है कि शराबबन्दी लोगोंको समझा-बुझा कर ही की जानी चाहिए। राज्यकी विधान-परिषदने सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव पास किया है जिसमें दरबारसे सभी लाइसेंस शुदा शराबकी दूकानें बन्द कर देनेका अनुरोध किया गया है। और यह भी कि यदि जरूरत ही पड़े तो औषधिके काम आनेवाली शराबके अलावा और सभी तरहकी शराब उतारनेपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये। देखें ठाकुर साहब इस प्रस्तावसे कैसे निपटते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-२-१९२५

९०. तार: कलकत्ता कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीको[1]

२३ फरवरी, १९२५

मन्त्री
कांग्रेस कमेटी
कलकत्ता

लगता है मार्चमें बंगाल आना लगभग असम्भव; अप्रैलसे पहले नहीं आ सकता।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९१. तार: गोविन्द दासको

२३ फरवरी, १९२५

गोविन्द दास
कोषाध्यक्ष
शरताली

रुपया भेजनेका प्रबन्ध कर रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९२. तार: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

२३ फरवरी, १९२५

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
एक्सटेंशन
सेलम

वाइकोम-सत्याग्रहके लिए एक हजार दे दीजिए। अगली मार्चके पहले वापस कर दूंगा। आगामी मार्चमें वाइकोम जा रहा हूँ। क्या मार्चमें मद्रास अहातेके अन्य हिस्सोंमें मेरा दौरा जरूरी है?

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. ऐसा ही तार बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन, फरीदपुरकी स्वागत-समितिके अध्यक्षको भी भेजा गया था।

९३. तार : लाजपतरायको[1]

[साबरमती
२३ फरवरी, १९२५]

सदस्योंसे राय लिये बिना मैं बैठक[2] मुल्तवी नहीं कर सकता। बैठकके लोग जरूरी लगनेपर उसे मुल्तवी कर सकते हैं। उम्मीद है आप अब बिलकुल अच्छे हो गये हैं।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९४. तार : आ० टे० गिडवानीको

[२३ फरवरी, १९२५][3]

गिडवानी
हिन्दू कालेज
दिल्ली

बधाई। शनिवारको दिल्ली पहुँच रहा हूँ। हो सके तो आज रवाना हो जाइए या मेरे आनेतक रुकिए।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. यह तार २३ फरवरी, १९२५को मिले लाजपतरायके निम्नलिखित तारके जवाबमें था: "आयंगर, जयकर, जयरामदास तथा अन्य लोग २८को शरीक नहीं हो सकते। मार्चके तीसरे सप्ताहसे पहले कोई तारीख अनुकूल नहीं पड़ती। कृपया मुल्तवी करनेकी व्यवस्था कीजिए और तार दीजिए।"

२. देखिए "वक्तव्य: सर्वदलीय सम्मेलन उप-समितिकी बैठकके स्थगनपर", २-३-१९२५।

३. गुजरात महाविद्यालय, अहमदाबादके प्राध्यापक, जैतो जानेवाले शहीदी जत्थेके साथ जानेके कारण १९२४ में जेल गये थे। नाभाके अधिकारियोंने २२ फरवरीको उन्हें रिहा कर दिया था और वे हिन्दू कालेजके प्राध्यापकके पास रहे थे। देखिए "टिप्पणियाँ", २६-२-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "आचार्य गिडवानी रिहा"।

९५. तार: मोतीलाल नेहरूको[1]

२३ फरवरी, १९२५

लालाजीको तार भेजा है। अन्य सदस्योंकी राय लिये बिना मुल्तवी नहीं कर सकता। बैठक होनी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९६. पत्र: शौकत अलीको

साबरमती
२३ फरवरी, १९२५

प्यारे दोस्त और भाई,

मैंने आज कोहाट-सम्बन्धी अपने वक्तव्यपर आपकी टिप्पणी पढ़ी। आपकी स्पष्टवादितासे मेरे दिलमें आपके प्रति और भी ज्यादा प्रेम और सम्मान पैदा हो गया है। पर आपकी टिप्पणीसे यह जाहिर होता है कि कभी-कभी हम लोगोंकी तरह परस्पर इतने घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति भी पूरी तौरपर तटस्थ और निष्पक्ष रहनेके बावजूद, हूबहू एक-से तथ्योंके आधारपर भी, सर्वथा विपरीत निष्कर्षोंपर पहुँच जा सकते हैं। इससे मैं अपने विरोधियोंके प्रति पहलेसे ज्यादा उदार और अपने निर्णयोंके प्रति और अधिक अविश्वस्त बन गया हूँ। टिप्पणी दूसरी बार भी गौरसे पढ़ ली है और मैंने देखा है कि इस मामलेमें मेरे और आपके विचारोंके बीच बहुत ही चौड़ी खाई है। मैं कविताके प्रकाशनकी जोरदार शब्दोंमें निन्दा करनेको तैयार हूँ, किन्तु लूटमार तथा आगजनीको मैं माफ नहीं कर सकता। मैं आपकी इस रायकी पुष्टि नहीं करता कि उपद्रवोंका कारण पुस्तिका थी। उसकी पृष्ठभूमि तो पहले ही तैयार हो चुकी थी। मैं उन धर्म-परिवर्तनके मामलोंको उतना मामूली नहीं मान सकता जितना आप मानते हैं। मेरी रायमें खिलाफती लोगोंने अपने कर्त्तव्यकी बुरी तरह उपेक्षा की है और मौलवी अहमद गुलने निश्चय ही, उनपर जो विश्वास किया जाता था, उसका घात किया है।

मैं यह सब बातें आपकी रायको, यदि उसके बदले जानेका आप कोई कारण न मानें तो, बदलनेके लिए नहीं कह रहा हूँ। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि

१. यह २३ फरवरीको मिले, मोतीलाल नेहरूके एक तारके उत्तरमें भेजा गया था। तारका मजमून लाला लाजपतरायके तार-जैसा ही था। देखिए "तार: लाजपतरायको", २३-२-१९२५ की पाद-टिप्पणी १।

आपने तथ्योंपर जितनी गहराईसे गौर किया है, उससे ज्यादा गहराई तक आप जायें और देखें कि क्या फिरसे गौर करनेकी जरूरत है। मैं आपका वक्तव्य प्रकाशित करनेके विचारतक से काँप उठता हूँ। उसके प्रकाशनसे कटुतापूर्ण विवाद छिड़ जायेगा। इसलिए मैं तो यह भी सुझाव दूँगा कि हकीम साहब या डा० अंसारी पूरे मामलेकी जाँच कर लें। इस प्रश्नपर कोई नये विचार या तथ्य सामने आयें तो मुझे बड़ी ही खुशी होगी। मैं यह भी चाहूँगा कि सभी मित्र तथ्योंपर विचार करें और हम दोनोंको अपनी-अपनी राय बदलनेको प्रेरित करें। लेकिन यदि एक ही निष्कर्षपर पहुँचनेके हमारे सभी उपाय विफल हो जायें तो हमें जनताके समक्ष अपने मतभेद प्रस्तुत करने और उसपर यह बात जाहिर कर देनेका साहस अवश्य करना होगा कि इन मतभेदोंके बावजूद हम दोनोंके बीच प्रेम बना रहेगा, और हम साथ-साथ काम करते रहेंगे। किन्तु इसी प्रेमका तकाजा है कि हम जल्दबाजीमें कोई कदम न उठायें। क्या आप दिल्ली आ रहे हैं? यदि आ रहे हैं, तो क्यों न हम साथ-साथ सफर करें? मैं २६ तारीखको छोटी लाइनसे रवाना होऊँगा। यदि आप आ रहे हों और आप पंजाब मेलसे रवाना हो सकें, तो मैं आपको बड़ौदामें मिल जाऊँगा। अच्छा हो कि हमारी बातचीत फुरसतसे हो। और ऐसी बातचीतके लिए तो मुझे रेलगाड़ी ही सबसे अच्छी जगह जान पड़ती है। आप जो निश्चित करें उसकी सूचना अवश्य दीजिए; और हो सके तो तार दीजिए। वक्तव्यको मैं इस सप्ताह प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ।

सस्नेह,

आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

मुझे खुशी हुई कि आप डा० कूनेकी पद्धतिसे इलाज कर रहे हैं। निश्चय ही आपको काफी व्यायामकी जरूरत है।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० १०५२४) की फोटो-नकल से।

९७. तार: रेवाशंकर झवेरीको

२५ फरवरी, १९२५

मॉरेलिटी[1]
[बम्बई]

आपकी उपस्थितिके बिना प्रभाशंकर[2] विवाह करनेसे इनकार करते हैं।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९८. तार: मथुरादास त्रिकमजीको

२५ फरवरी, १९२५

मथुरादास त्रिकमजी
९४, बाजारगेट स्ट्रीट
बम्बई

शौकत अलीके साथ बड़ौदासे दिल्लीके लिए बृहस्पतिवारको दो सीट सुरक्षित करवाइए।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

९९. तार: रघुवीरसिंहको

[२५ फरवरी, १९२५][3]

रघुवीरसिंह[4]
कश्मीरी गेट
दिल्ली

शुक्रवारकी रातको नागदा मेलसे पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. रेवाशंकरका तारका पता।

२. इनकी बेटी चम्पाका विवाह डा० प्राणजीवन मेहताके पुत्र रतिलालसे होनेवाला था।

३. यह तार भी २५-२-१९२५ को भेजा गया होगा। देखिए "तार: मथुरादास त्रिकमजीको", और "तार: मुख्तार अहमद अंसारीको", २५-२-१९२५।

४. दिल्लीके मॉडर्न स्कूलके मन्त्री।

१००. तार : मुख़्तार अहमद अंसारीको

२५ फरवरी, १९२५

डा० अंसारी
दरियागंज
दिल्ली

शुक्रवारकी रातको नागदा मेलसे पहुँच रहा हूँ। हकीमजी, मुहम्मद अलीको खबर दीजिए। शायद रघुवीरसिंहके पास ठहरूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१०१. तार : चौंडे महाराजको

२५ फरवरी, १९२५

चौंडे महाराज[1]
वाई

शुक्रवारको दिल्ली पहुँच रहा हूँ। क्या आप आ रहे हैं?

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१०२. पत्र : फूलचन्द शाहको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
फाल्गुन सुदी ३ [२५ फरवरी, १९२५][2]

चि० फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो कुछ लिखा है वह बिलकुल ठीक है। हमारे जीवनमें अतिशयोक्ति और निन्दा बहुत बढ़ गई है।

तुम पट्टणी साहबको पत्र लिखोगे, यही प्रायश्चित्त पर्याप्त होगा।[3]

१. महाराष्ट्रके एक साधु, जिन्होंने गोरक्षा कार्यमें अपना जीवन लगा दिया।

२. डाकखानेकी मुहरसे।

३. देखिए "पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको", १०-२-१९२५ से पूर्व तथा "पत्र : फूलचन्द शाहको", १०-२-१९२५।

एक अच्छा पत्र लिखकर मुझे भेज देना। मैं उसे उनको भेज दूँगा।

मैं तुम्हारे पत्रकी भाषा देखना चाहता हूँ। तुम उन तीनों सज्जनोंसे फिर मिले थे? शहरके लोग तुम्हारा साथ देंगे तो बहुत अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२५) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

१०३. भाषण : विवाहोत्सवपर[1]

२५ फरवरी, १९२५

प्रार्थनाका समय आशीर्वाद देनेके लिए उपयुक्त समय है। इससे पूर्व दो अवसर आ चुके हैं जब आश्रममें पले-बढ़े युवकों और युवतियोंके विवाह किये गये थे। हममें से बहुतेरे उन अवसरोंके महत्त्वको भी नहीं समझ सके थे। आश्रममें कुमार अथवा विवाहित जितने भी लोग आते हैं वे सभी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं और जिस आश्रमका हेतु सभीको ब्रह्मचर्यके पालनकी प्रेरणा देता है, उस आश्रममें विवाह कैसे सम्पन्न किया जा सकता है, यह प्रश्न सभीके मनमें उठना स्वाभाविक है। फिर भी यहाँ तीन विवाह करने पड़े हैं। यों आश्रममें नियम कड़े रखनेपर भी हम संयमके पालनमें असमर्थ रहे हैं। युवकों और युवतियोंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा देना आसान बात नहीं है। अवश्य ही प्रौढ़ लोग भी ब्रह्मचर्यका पालन समुचित रूपसे नहीं कर सकते। यदि मनुष्य किसी ध्येयको प्राप्त करना चाहता हो तो उसके मनमें उसके लिए तीव्र लगन होनी चाहिए। यह विषय इतना गहन है कि मैं इसमें ज्यों-ज्यों उतरता जाता हूँ त्यों-त्यों डर लगता है। मुझे इसके सौन्दर्यका भी उतना ही अधिक अनुभव होता जाता है और मैं तो पात्र भर-भरकर यह अनुभव-रस पी रहा हूँ।

हम आश्रममें बच्चों और नवयुवकोंको रखते हैं। किन्तु किसीसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कराया जा सकता। इसलिए कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि विवाह अनिवार्य हो जाता है। ऐसे तीन अवसर आ चुके हैं। इसलिए मैंने इस सम्बन्धमें अपने मनको समझानेके लिए उनके साथ जबरदस्ती न करना तय किया। विवाहकी विधि आश्रमकी सीमाके बाहर सम्पन्न की जानी चाहिए। जगतको और आत्माको धोखा न देकर विवाह कर लेना चाहिए; और फिर आश्रममें बैठकर समस्त आश्रमका आशीर्वाद ले लेना चाहिए।

यदि ऐसा विवाह करना ही पड़े तो उसका उद्देश्य भोगवृत्तिका पोषण नहीं, किन्तु संयम है। यह बात विवाहित दम्पतीको बता देनी और आश्रमवासियोंको भी

१. यह भाषण गांधीजीने अहमदाबादमें वल्लभभाई पटेलके पुत्र डाह्याभाई पटेलके विवाहके अवसरपर वर-वधूको आशीर्वाद देते हुए दिया था; देखिए "टिप्पणियाँ", २९-३-१९२५।

समझा दी जानी चाहिए। विवाहका अवसर आयेगा ही, आश्रमवासियोंको ऐसी बात तो कदापि नहीं सोचनी चाहिए। किन्तु यह अनिवार्य हो जाये तो बात दूसरी है। यह तो परमात्माके साथ आत्माका सम्बन्ध है। इसी कारण अंग्रेजीमें आत्मा स्त्रीलिंग है। जयदेवने भी आत्माकी कल्पना स्त्रीके रूपमें की है और कहा है कि आत्मा परमात्मासे रमण करती है। ऐसे दिव्य विवाहके बाद जगतमें कुछ करना बाकी नहीं रह जाता। किन्तु यदि वैसे दिव्य विवाहका अवसर न आये और तब इस [सांसारिक] विवाहका अवसर आ जाये तो कोई बात नहीं है। इसलिए [आश्रममें विवाहके] इस चौथे अवसरपर मुझे आपको यह बताना आवश्यक है कि विवाह भोगके निमित्त नहीं है, बल्कि त्यागके निमित्त है। आप आज यह निश्चय करते हैं कि यदि आपको रति-सुख भी लेना हो तो आपको उसमें भी मर्यादाका पालन करना है। हमारे समाजमें अव्यभिचारी-धर्म केवल स्त्रीके लिए ही रखा गया है, यद्यपि विवाह-संस्कारमें वर और वधूको जो पिछले चार ग्रास खिलाये जाते हैं वे दोनोंके माँस, अस्थि, और आत्माके एकीकरणके द्योतक होते हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि हम पुरुषके सम्बन्धमें ऐसी कल्पना नही करते। इसीलिए मुझे बताना पड़ता है कि आप मर्यादाका पालन करें और समझ लें कि रति-सुख केवल सन्तानोत्पत्तिके निमित्त होता है।

आजके भयंकर समयमें एक सन्तानको उत्पन्न करनेका अधिकार भी किसे है? हिन्दुस्तानमें असंख्य लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और यूरोपमें भी ऐसे बहुत लोग हैं। रोमन कैथोलिक सम्प्रदायमें बहुतसे प्रौढ़ स्त्री-पुरुष ऐसे होते हैं जो आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। अठारह वर्षकी कन्या सांसारिक जीवनको छोड़ देती है और फिर आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करती है। ऐसे स्त्री-पुरुषोंके लिए वहाँ मठ भी बने हुए हैं। आजके कठिन कालमें हिन्दुस्तानमें किसीको भी सन्तानोत्पत्तिका अधिकार नहीं है। कोई भी मनुष्य सामर्थ्यवान हुए बिना यह अधिकार नहीं पा सकता।

मेरी इच्छा थी कि विवाहकी विधि आश्रममें सम्पन्नकी जाये। इसका कारण यह था कि आश्रममें गुरु समस्त क्रियाएँ समझाकर पूरी करेगा और उससे यह बात समझमें आ सकेगी कि विवाहकी क्रियाका उद्देश्य भोग नहीं, बल्कि संयम है। इसलिए तुम दोनों इस अवसरपर विचार करना और उसे याद रखना। मैंने अपने ऊपर यही एक जिम्मेदारी ली है। मुझे इसपर पश्चात्ताप तो अवश्य ही नही होगा। इसका परिणाम शुभ ही होगा। वल्लभभाईसे मेरा क्या सम्बन्ध है, यह तो आप जानते ही हैं। उन्होंने अपनी इच्छासे आग्रह किया था कि यह विवाह मेरे हाथों सम्पन्न हो। काशीभाई भी इस विचारसे सहमत हो गये। क्या खर्च करना विवाहका अंग है? उसका अंग तो तपश्चर्या है। किन्तु आश्रमसे बाहर, अन्यत्र, बिना रुपया खर्च किये विवाह नहीं किया जा सकता। वहाँ बरात-जैसी रूढ़ियोंको छोड़कर विवाह करना असम्भव हो जाता है। इसीलिए विवाह-विधि यहाँ सम्पन्न की गई है। जो बीज आज बोया गया है यह कभी वृक्ष बनेगा। किन्तु तुम इसके अंकुरको पुष्ट करनेके लिए अपने माता-पिताओंके योग्य बनो और भोगवृत्तिका त्याग करो। खर्च न करनेमें पैसा बचानेकी वृत्ति नहीं थी — लोभकी दृष्टि तो थी ही नहीं। किन्तु ऐसे खर्चका

बोझ समाजपर — पाटीदार समाजपर — पड़ता है, इससे हमने उसको बचानेका विचार किया था।

मैं डाह्याभाईको बहुत समयसे जानता हूँ और यशोदाको भी जानता हूँ। दोनोंमें इस विवाहको संयमसे शोभित करनेकी क्षमता है, ऐसा मुझे लगता है। मुझे आश्रम-वासियोंसे जो-कुछ कहना है, उसके अवसर बार-बार नहीं आ सकते। मैं ऐसे अव-सरोंको ढूँढ़-ढूँढ़ कर नहीं लाना चाहता। यह काम मेरा नहीं है। फिर भी ऐसे विवाहोंके अवसर आयें तो उनको सम्पन्न करानेसे संयममें ही वृद्धि होनेकी सम्भावना है। सम्भव है, मेरा यह विचार भ्रमयुक्त हो, फिर भी यदि ऐसी विधियाँ सम्पन्न करानेके अवसर आयेंगे तो मैं उनको सम्पन्न करानेसे पीछे नहीं हटना चाहता। साथ ही मैं यहाँके सब लोगोंसे यह चाहता हूँ कि आप सब ऐसे अवसरोंसे अधिक संयम पालना सीखें। इसीलिए हम सब ऐसे अवसरपर यहाँ इकट्ठे हुए हैं। हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी भावनाएँ पूरी हों, यहाँ ऐसे स्त्री-पुरुष उत्पन्न हों जिनका ध्यान ही इन बातोंकी ओर न हो, जिनका मन सन्तानोत्पत्तिकी ओर न जाये, जो संसार-भरके बालकोंको अपना बालक मानें और जो अपना समय दुःखी बालकोंकी सेवा करनेमें ही लगायें। डाह्याभाई और यशोदाको स्वयं स्वतन्त्र रूपसे सोचना चाहिए कि उनकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है। मुझे ऐसा लगता है मानो वे आज तो अपनी-अपनी स्वतन्त्रता तो खो ही बैठे हैं। किन्तु इसमें सौन्दर्य भी हो सकता है। वे सुखी हों, संयमी हों, उनमें त्यागभावका विकास हो और वे अपने-अपने माता-पिताकी और हमारी प्रतिष्ठा बढ़ायें, जिससे किसीको यह कहनेका अवसर न मिले कि आश्रममें ऐसा प्रसंग कैसे आया?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

१०४. निषेधादेश[1]

यह बात बिलकुल सच है कि मेरे कोहाट जानेसे वहाँके हिन्दू-मुसलमानोंके समझौतेका मामला, जिस हदतक वह अपने आपमें दोषपूर्ण होगा, फिरसे खुले बिना न रहेगा। पर जो समझौता हुआ है वह दबावसे हुआ है; क्योंकि मुकदमें चलाये जानेकी धमकी तो दोनों दलोंके सिरपर खड़ी ही थी। यह समझौता स्वेच्छासे नहीं हुआ है और दोनोंके मनका नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें, जो कि रावल-पिण्डीमें मौ० शौकत अलीसे और मुझसे मिले थे, ऐसा ही कहा था। परन्तु मेरे कोहाट

१. मूल लेखमें गांधीजीने पहले वाइसरायके निजी सचिव तथा अपने बीच हुए तार-व्यवहारको उद्धृत किया था। ये तार शीर्षकों और पाद-टिप्पणियोंके रूपमें इसी खण्डमें पहले दिये जा चुके हैं। देखिए "तार: वाइसरायके निजी सचिवको", ९-२-१९२५ तथा "तार: वाइसरायके निजी सचिवको", १९-२-१९२५।

जानसे चाहे कुछ भी नतीजा निकले, उससे दोनों दलोंमें जो मनमुटाव है वह बढ़नेवाला तो हरगिज नहीं है। ऐसी हालतमें यदि मुझे अपने मुसलमान मित्रोंके साथ कोहाट जाने दिया जाता तो शान्ति-स्थापनाका ध्येय, जिसका कि दावा मेरे बराबर ही वाइसराय साहब भी करते है, आगे बढ़ता। उस समय जब कि कोहाटमें आग धधक रही थी, मुझे वहाँ न जाने देना कुछ-कुछ समझमें आ गया था, परन्तु इस समयकी मनाई समझमें नहीं आती। कितने ही मित्रोंने मुझे सूचित किया कि बिना इजाजत लिये अथवा बिना खबर किये मुझे कोहाटके लिए रवाना होकर निषेधादेशके उल्लंघनकी सजा ओढ़ लेनी थी। पर यह मैं उसी हालतमें कर सकता था जब इस प्रकारके आदेशकी अवज्ञा करके मैंने जेल जानेकी ठान ली होती। पर मैं मानता हूँ कि देशमें आज ऐसी किसी कार्रवाईके योग्य वायुमण्डल नही है। इसलिए मैंने यह जोखिम नहीं उठाई। मुझे तो आशा है कि जिस सावधानीके साथ मैं ऐसी किसी भी कार्रवाईसे, जिससे सविनय अवज्ञाकी नौबत आ जानेकी सम्भावना पास आ सकती है, दूर ही रहा हूँ, सरकार उसकी कदर करेगी। और इस सावधानीमें भी मेरा हेतु यह है कि जहाँतक हो सके ऐसा कोई काम न किया जाये जिससे लोग अप्रत्यक्ष-रूपसे भी हिंसामें प्रवृत्त हो सकें। पर हाँ, ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब अघटित परिणामोंका लेशमात्र विचार किये बिना सविनय अवज्ञा करना मेरा धर्म हो जायेगा। मैं स्वयं नहीं जानता कि यह समय कब आ सकेगा या आवेगा भी। पर मैं इतना जरूर मानता हूँ कि वह आ सकता है। जब वह वक्त आ जायेगा तब मेरा खयाल है, मेरे मित्र मुझे पीछे हटते हुए नहीं देखेंगे। तबतक वे मुझे निबाह लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-२-१९२५

१०५. सच हो तो अमानुष

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक-समितिकी ओरसे मुझे नीचे लिखा तार मिला है:

> नाभासे हाल ही में बड़े अमानुषी अत्याचारोंकी खबरें आई हैं। कैदियोंको केश, दाढ़ी पकड़कर खींचा गया है और ऐसी मार मारी गई है कि वे बेहोश हो गये हैं। उनसे पानीमें गोते लगवाये गये हैं। बदनके भिन्न-भिन्न हिस्से लोहेके लाल गरम सींकचोंसे दागे गये हैं और उन्हें सिर नीचे और पाँव ऊपर बाँधकर लटका दिया गया है, जिससे कितने ही लोग मर भी चुके हैं। बहुतोंकी हालत चिन्ताजनक हो रही है। कितनों ही को सख्त जख्म पहुँचे हैं। कुछ जत्थोंको तो ता० १३–१४ को खाना ही नहीं दिया गया। बड़ी सनसनी फैल रही है। हालत निहायत गम्भीर है। तुरन्त कुछ उपाय करना जरूरी है।

मैं इस तारको छाप रहा हूँ, पर अफसोसकी बात है कि तुरन्त कुछ भी नहीं किया जा सकता है। निश्चय ही लोगोंकी हमदर्दी तो कैदियोंके प्रति है। मुझे इस

बातमें भी कोई शक नहीं कि विधानसभामें प्रश्नोत्तर भी होंगे; पर इससे उन दुखियों-को क्या तसल्ली मिलेगी। मैं तो यही चाहता हूँ कि यह विवरण अतिरंजित निकले और कर्मचारीगण द्वारा उपरोक्त अमानुषता बरतनेका अपराध न किया गया हो। मैं विश्वास करता हूँ कि जो भयंकर इल्जाम जेलके कर्मचारियोंपर लगाये गये हैं, नाभाके राज्याधिकारी उनका स्पष्टीकरण देंगे और निष्पक्ष तौरपर उनकी जाँच करावेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-२-१९२५

१०६. फिर वाइकोम

वे हिन्दू जो अस्पृश्यताको पाप मानते हैं, नीचे लिखे पत्रको पढ़कर बड़े क्षुब्ध होंगे :[1]

एक उन्नत बताया जानेवाला राज्य[2] प्रगतिशील विचारोंका विरोध करे तो यह उस 'उन्नत' राज्यके लिए लज्जाजनक है। नैतिक दृष्टिकोणसे तो प्रगतिशील लोगोंकी जीत हो गई है। यद्यपि यह खेदकी बात है कि कथित अस्पृश्यों द्वारा एक सार्वजनिक मार्गके उपयोगके विरुद्ध २२ सदस्योंने मत दिये; किन्तु यह जानकर सान्त्वना मिलती है कि २१ सदस्योंने हिन्दू सुधारकोंके प्रस्तावके पक्षमें अपना मत देकर उनके द्वारा ग्रहण की हुई स्थितिका समर्थन किया है। लेकिन पत्रकी सबसे दुःखजनक बात यह है कि सत्याग्रही निराश होते हुए जान पड़ते हैं। मुझे इससे आश्चर्य नहीं होता। लगातार सत्याग्रह करनेका उनका यह पहला अवसर है। फिर भी मैं उन्हें विश्वास दिला दूँ कि विजय सुनिश्चित है क्योंकि उनका उद्देश्य न्याय्य है और उनके साधन अहिंसात्मक हैं। उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि उन्होंने अपने कष्ट सहनसे संसार-का ध्यान आकर्षित कर लिया है। आन्दोलन शुरू होनेसे पहले वाइकोमको कौन जानता था? उन्हें यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि वे युगों पुराने एक अन्धविश्वास-के विरुद्ध लड़ रहे हैं। द्वेषकी लौहभित्तिको तोड़नेके प्रयत्नमें कुछ सुधारकोंका एक वर्षका कष्ट सहन कोई बड़ी बात नहीं है? अधीर होनेका अर्थ लड़ाई हार जाना है। उन्हें तो अन्ततक लड़ना होगा। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग हो भी क्या सकता है? हिंसासे कोई कार्य सिद्ध न होगा। रूढ़िवादी लोग और भी अकड़ जायेंगे और शहीदोंके खूनसे उन्हें बल मिलेगा; क्योंकि यदि रूढ़िवादी घायल होते हैं तो सहानुभूति प्रबल रूपसे उनको ही प्राप्त होगी — चाहे उनका उद्देश्य अनुचित ही क्यों

१. यह उद्धृत नहीं किया गया है। पत्रमें बताया गया था कि राज्यकी सरकारने स्थानीय विधान परिषद्में अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी प्रस्तावको किस प्रकार विफल कराया; उसमें यह भी कहा गया था कि इसकी प्रतिक्रिया आम अशान्ति भी हो सकती है। उसमें यह प्रार्थना भी की गई थी कि यदि ऐसी अवस्थामें गांधीजी स्वयं वहाँ न जा सकते हों तो वे कमसे-कम एक वक्तव्य देकर सत्याग्रहियोंके मनोबल और जनताके धैर्यको स्थिर रखनेमें सहायता अवश्य दें। "सत्याग्रहीकी कसौटी", १९-२-१९२५ भी देखिए।

२. त्रावणकोर।

न हो। सड़कपर जबरदस्ती जा पहुँचनेके प्रयत्नसे बाड़ें और भी मजबूत कर दी जायेंगी और यदि बल-प्रयोग सफल हो ही गया तो उसका अर्थ केवल यही होगा कि अस्पृश्य लोग केवल एक सार्वजनिक मार्गका उपयोग-भर कर सकेंगे, लोकमतको बदल नहीं सकेंगे।

किन्तु हिन्दू सुधारक तो उन रूढ़िवादी लोगोंके विचारको बदलना चाहते हैं जिन्होंने अस्पृश्यताको अपना धर्म मान लिया है। इस उद्देश्यको तो वे जैसे अब कष्ट सह रहे हैं, वैसे कष्ट सहकर ही प्राप्त कर सकेंगे। सत्याग्रह सफलताका छोटेसे-छोटा रास्ता है। जोर-जबरदस्तीके तरीकोंसे जितने भी सुधार हुए हैं वे एकाध बरस नहीं, बहुत बरसोंमें हो पाये हैं। यूरोपमें अज्ञानपर ज्ञानकी विजय लम्बी अवधिमें और बड़ी यातनाएँ सह कर हुई थी; और यह निश्चय किसीको नहीं है कि उनकी यह सफलता स्थायी सफलता है अथवा नहीं। जिन लोगोंने विरोध किया और उसी विरोध-में मरे, उनके विचारमें परिवर्तन नहीं हुआ। जिन दूसरे लोगोंके विचारमें परिवर्तन हुआ वे उन लोगोंके कष्ट सहनसे आकर्षित हुए जो अपने विरोधियोंको मारते हुए स्वयं मृत्युको प्राप्त हुए थे। उस युगके प्रयत्नका विशुद्ध परिणाम यह हुआ है कि संसारका विश्वास हिंसाके तरीकोंमें बद्धमूल हो गया। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि वाइकोमके सत्याग्रही अपने मार्गसे विचलित न होंगे, भले ही उनकी संख्या कम रह जाये और उनके जीतनेकी आशा और भी धुंधली पड़ जाये। सत्याग्रहका अर्थ है अपने आपको पूरे तौरपर मिटा देना, अधिकतम अपमान सहन करना, अधिकतम धैर्य धारण करना और गहरी श्रद्धाको जागृत रखना। सत्याग्रह स्वयं अपना पुरस्कार है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-२-१९२५

१०७. टिप्पणियाँ

२८ फरवरी

सर्वदलीय सम्मेलन-समितिकी तरफसे नियुक्त उपसमितिकी बैठक दिल्लीमें २८ फरवरीको फिर होगी। जो कठिन काम उसके सुपुर्द किया गया है, ऐसा कठिन काम तो शायद ही किसी उपसमितिको करना पड़ा होगा। इस समितिने अपनेको दो हिस्सोंमें बाँट लिया है। एकको स्वराज्य योजनाका मसविदा और दूसरीको हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी योजना तैयार करनेका काम सौंपा गया है। स्वराज्य समितिकी प्रमुख डा० बेसेंट थीं और उन्होंने अपनी रिपोर्ट समितिके सामने विचारार्थ पेश भी कर दी है। समितिकी बैठक पहले मुल्तवी इसीलिए कर दी गई थी कि उस समय हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके प्रश्नका समझौता नहीं हो सका था और उपस्थित सदस्य चाहते थे कि वे अनुपस्थित सदस्योंसे और जो लोग सदस्य तो नहीं हैं लेकिन इस कार्यमें मदद कर सकते हैं, उनसे मशविरा कर सकें। यह आशा की जाती है कि जो लोग आ सकते

हैं वे समितिकी इस बैठकमें जरूर ही आयेंगे। लाला लाजपतरायने मुझे तार दिया है कि इस बैठकको मार्चके तीसरे हफ्तेके बाद किसी भी तारीखतक मुल्तवी रखा जाये। कुछ सदस्योंने उन्हें खबर दी है[1] कि वे उस बैठकमें हाजिर न रह सकेंगे। मैंने उन्हें खबर दी है कि समितिसे पूछे बिना मैं इस बैठकको मुल्तवी नहीं कर सकता। यदि जरूरी हुआ तो समिति ही स्वयं अपनी बैठकको मुल्तवी कर देगी। अबतक यह तो हरएकने सोच ही रखा होगा कि आगे क्या करना है। इस बैठकमें शायद इस प्रश्नपर अब कोई नई बात सामने नहीं रखी जायेगी। हमारे सामने केवल यह सवाल होगा कि दिल्लीकी आखिरी बैठकमें जो दो नितान्त विरोधी विचार-धाराएँ उठ खड़ी हुई थीं, उनके बीचका कोई रास्ता निकल सकता है या नहीं। इससे एक दूसरा यह भी सवाल पैदा होता है कि दोनों दल इस प्रश्नका तत्काल निपटारा करना चाहते हैं या नहीं? स्वराज्यकी योजना भी बड़ा महत्त्वशाली प्रश्न है। सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम सवालने ही सारी प्रगतिको रोक रखा है। मैं सोचता हूँ कि जो लोग आ सकते हैं, वे अवश्य ही आयेंगे और इस प्रश्नको हल करनेमें मदद करेंगे। लालाजीकी सूचनाके विपरीत यदि बैठक मुल्तवी न की जाये और वहाँ इस प्रश्नका विचार करना ही पसन्द किया जाये तो मेरी सलाह है कि जो सदस्य हाजिर न हो सकें, वे अपनी राय समितिको लिख भेजें।

आचार्य गिडवानी रिहा

हमें सोमवारकी प्रातः अम्बालासे निम्न तार मिला है, जिसे पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई है, और आशा है मेरी तरहसे पाठकोंको भी प्रसन्नता होगी:

> गिडवानी कल सायंकाल सजा फिर स्थगित किये जानेके कारण रिहा कर दिये गये। इस बार प्रशासककी आज्ञामें तथ्य सही रूपमें दिये गये हैं। उनके भाई आलिम गिडवानीके हाथ, जो ८ तारीखको श्रीमती गिडवानीके लिए भेंटकी तारीख लेने गये थे, प्रशासकने एक सन्देशा भेजा था। प्रशासकके सन्देशमें कहा गया था कि यदि गिडवानी नाभाकी राजनीतिमें हस्तक्षेप न करें तो वे आज ही चले जा सकते हैं। गिडवानीने खबर भेजी है कि यदि इसका अर्थ निर्वासनकी आज्ञाका पालन करना है तो जब वे आये थे तब भी उनका उस आज्ञाका उल्लंघन करनेका कोई विचार नहीं था, और भविष्यमें भी नहीं होगा। श्रीमती गिडवानी ११ तारीखको यह खबर लाईं कि प्रशासक श्री गिडवानीसे यही चाहते हैं। श्री गिडवानीने तुरन्त निम्न पत्र भेजा: "श्रीमती गिडवानीने मुझे बताया है कि आप मुझसे कोई ऐसा आश्वासन लेना चाहते हैं कि आपकी जारी की हुई निर्वासन आज्ञाको न माननेका मेरा कोई इरादा नहीं है। मुझे आपको इस आश्वासनको देनेमें कोई झिझक नहीं है। जब पिछले साल मैं अमृतसरसे रवाना हुआ था और मैंने आपसे जैतोमें प्रवेशकी अनुमति

१. देखिए "तार: लाला लजपतरायको", २३-२-१९२५।

माँगी थी तब भी उस आज्ञाका उल्लंघन करनेका मेरा कोई विचार न था। जैसा कि मैंने ८ मार्च, १९२४ के अपने लिखित वक्तव्यमें स्पष्ट किया था, मैंने आपके निर्णयको माननेका पूरा इरादा कर लिया था। मेरे मित्र मुझे बताते हैं कि वह पत्र आपको समयपर नहीं मिला, जिसमें इस दुःखजनक भ्रमको कदाचित् स्पष्ट कर दिया गया है। मैंने रवाना होनेसे पहले स्वयं इस मामलेमें कांग्रेसकी स्थिति और श्री गांधीकी इच्छा जान ली थी। उनके अनुसार मुझे आपके आदेशका पालन करना था और भविष्यमें भी मेरी कार्यदिशा यही रहेगी; मैं इस आज्ञाका पालन तबतक करूँगा जबतक वह वापस नहीं ले ली जाती।" प्रशासक १२ तारीखको प्रातःकाल दिल्ली चले गये थे। वे १५को वहाँसे लौटे और उन्हें तुरन्त जैतो जाना पड़ा। जैतोसे वे २१ की रातको लौटे। श्री गिडवानीको इस सजाको स्थगित करानेकी आज्ञा २२ तारीखको ४ बजे सुबह प्राप्त हो गई। श्री गिडवानी आज रात दिल्ली जा रहे हैं जहाँ वे हिन्दू कालेजके आचार्यके पास ठहरेंगे और महात्माजीकी हिदायतोंकी प्रतीक्षा करेंगे।

मुझे आचार्य गिडवानीकी रिहाईकी खबर पाकर खुशी हुई है क्योंकि उनकी कैदकी सजा बिलकुल अन्यायपूर्ण थी और अब उस अन्यायका परिमार्जन कर दिया गया है। सचमुच ही नाभाके अधिकारियोंके तरीके अजीब हैं। आचार्यसे जो आश्वासन उन्होंने अब लिया है उसे वे बहुत पहले ले सकते थे। असलमें जैसा कि इन स्तम्भोंमें बार-बार कहा जा चुका है, आचार्य गिडवानी आज्ञा भंग करनेकी गरजसे नाभाकी सीमामें कदापि नहीं घुसे। वे तो वहाँ विशुद्ध और केवल मानवीय सेवा करनेके उद्देश्यसे गये थे। लेकिन इस कैदकी सजासे न तो राष्ट्रकी कोई हानि हुई है और न आचार्य गिडवानीकी। यह तो स्वराज्यके लिए आवश्यक शिक्षण और स्वतन्त्रताका मूल्य है जो प्रत्येक व्यक्तिको चुकाना ही चाहिए।

संगसारी

मुझे एक लम्बा तार मिला है जो मुझे राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे भेजा गया है। यह तार अफगानिस्तानमें अहमदिया फिरकेके दो सदस्योंके पत्थरोंसे मार दिये जानेके बारेमें है। जब स्वर्गीय नियामतुल्लाह खाँको भयंकर दण्ड दिया गया था तब मैंने जान-बूझकर उसपर कोई टिप्पणी नहीं की थी; लेकिन अब इन घटनाओंकी, जिनकी खबर मुझे अभी मिली है, उपेक्षा करनेका साहस मुझमें नहीं है—खास तौरसे तब जब मुझसे मत प्रकट करनेका अनुरोध निजी तौरपर किया गया है। मुझे मालूम हुआ है कि 'कुरान' में केवल कुछ अवस्थाओंमें ही संगसारीकी हिदायत दी गई है, किन्तु जिन मामलोंपर हम विचार कर रहे हैं उनपर ये अवस्थाएँ लागू नहीं होतीं। मैं मनुष्य हूँ और ईश्वरसे डरता हूँ। इस रूपमें किन्हीं भी स्थितियोंमें ऐसे तरीकोंकी नैतिकतापर मुझे शंका करनी चाहिए। नबीके जीवनकालमें और उस युगमें चाहे कुछ भी आवश्यक या विहित रहा हो, 'कुरान' में इसका उल्लेख होने मात्रसे इस विशेष दण्डका समर्थन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक धर्मके प्रत्येक

नियमको विवेकके इस युगमें पहले विवेक और व्यापक न्यायकी अचूक कसौटीपर कसना होगा। तभी उसपर संसारकी स्वीकृति माँगी जा सकती है। किसी भूलका समर्थन संसारके समस्त धर्मग्रन्थोंमें भी किया गया हो तो भी वह इस नियमसे मुक्त नहीं हो सकती। इस संकटमें मैं अहमदिया फिरकेके प्रति सहानुभूति प्रकट करता हूँ। यह कहना अनावश्यक है कि मैं इस मामलेके गुणावगुणोंके सम्बन्धमें अपना मत व्यक्त नहीं कर सकता। मेरा खयाल है कि आम लोगोंको इस मामलेके तथ्य मालूम नहीं हैं जिससे वे इसके गुणावगुणोंपर अपना मत स्थिर कर सकें। यह ऐसा दण्ड है जिससे मानवीय अन्तःकरणको चोट पहुँचती है। विवेक और हृदय किसी भी अपराधके लिए ऐसी यातनाका समर्थन नहीं करते—चाहे वह अपराध कितना ही जघन्य क्यों न हो।

टेढ़े प्रश्न

'एक हितचिन्तक' ने नीचे लिखी सतरें मेरे चिन्तनके लिए भेजी हैं:

> **'बाइबिल' को लोग ५६६ भाषाओंमें पढ़ सकते हैं। पर उपनिषदों और 'गीता' को कितनी भाषाओंमें पढ़ सकते हैं?**
>
> **पादरी लोगोंने कितने कुष्ठालय खोले हैं और कितनी संस्थाएँ दलित और पीड़ित लोगोंके लिए खोल रखी हैं?**
>
> **"आपने कितनी खोली हैं?"**

ऐसे टेढ़े प्रश्न मुझसे अक्सर पूछे जाते हैं, 'एक हितचिन्तक' को जवाब देनेकी जरूरत है। पादरियोंके उत्साह, उमंग और त्यागके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर-भाव है। पर मैंने उन्हें यह बतानेमें कभी संकोच नहीं किया है कि उनके उत्साह, उमंग और त्यागका समुचित उपयोग नहीं होता। दुनियाकी हरएक जबानमें अगर 'बाइबिल' का तरजुमा हो जाये तो इससे क्या? पेटेंट दवाका विज्ञापन बहुतेरी भाषाओंमें किया जाता है, इसलिए क्या उसकी महत्ता उपनिषदोंसे बढ़ सकती है? कोई गलती अपने बहुल प्रचारके कारण सत्यका स्थान नहीं ग्रहण कर सकती, और न सत्य इसलिए मिथ्या हो सकता है कि उसपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती। जिन दिनों 'बाइबिल' का उपदेश पूर्वकालीन ईसाई धर्मप्रचारक देते थे उन दिनों उसकी शक्ति आजसे कहीं अधिक थी। अगर 'एक हितचिन्तक' यह समझते हों कि 'उपनिषदों' की अपेक्षा 'बाइबिल' का अधिक भाषामें अनुवाद होना उसकी श्रेष्ठताकी कसौटी है तो कहना होगा कि उनको पता नहीं है कि सत्यका प्रसार कैसे होता है। सत्यका फल तभी मिल सकता है जब तदनुसार आचरण किया जाये। परन्तु यदि मेरा उत्तर पानेसे 'एक हितचिन्तक' को कुछ सन्तोष हो सकता है तो मैं उनसे खुशीके साथ कहूँगा कि हाँ, 'बाइबिल' की अपेक्षा 'उपनिषदों' और 'गीता' का अनुवाद बहुत कम भाषाओंमें हुआ है। मुझे कभी इस बातकी जिज्ञासा नहीं हुई कि उनके अनुवाद कितनी भाषाओंमें हुए हैं।

अब, दूसरे सवालके बारेमें भी, मुझे यह कबूल करना चाहिए कि पादरियोंने कुष्ठ चिकित्सालय तथा ऐसी बहुत-सी संस्थाएँ खोली हैं। मैंने एक भी नहीं। फिर

भी मेरी स्थिति अचल है। ऐसी बातोंमें मैं पादरियों अथवा और किन्हीं लोगोंसे प्रति-स्पर्धा नहीं कर रहा हूँ। मैं तो जिस तरह ईश्वर राह दिखाता है उसी तरह नम्र भावसे मनुष्य-जातिकी सेवा करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। कुष्ठालय इत्यादि खोलना मनुष्य-जातिकी सेवाका एक साधन है और वह भी शायद सर्वोत्तम नहीं है। परन्तु ऐसी उच्च सेवाओंकी भी उच्चता उस अवस्थामें बहुत-कुछ घट जाती है जबकि उनके पीछे धर्मान्तर करनेका हेतु रहता है। वही सेवा सर्वोच्च होती है जो केवल सेवाके लिए ही की जाती है। हाँ, यहाँ कोई मेरे आशयको गलत न समझ ले। जो पादरी निःस्वार्थ भावसे ऐसे कुष्ठालयमें सेवा करते हैं, उनका मैं आदर करता हूँ। यह कबूल करते हुए मुझे बहुत शर्म मालूम होती है कि हिन्दू लोग ऐसे निष्ठुर हो गये हैं कि दुनियाकी बात तो दूर, अपने देशके ही दीन-अनाथोंकी भी वे बहुत कम परवाह करते हैं।

एक वहम

बंगालके एक जमींदारने हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता और स्वराज्यके विषयमें मुझे एक बड़ी लम्बी चिट्ठी भेजी है। चिट्ठी इतनी लम्बी है कि प्रकाशित नहीं की जा सकती और उसमें कोई नई बात भी नहीं कही गई है। फिर भी नमूनेके तौरपर उसमें से एक वाक्य यहाँ पर देता हूँ:

> पाँच सौ बरससे हिन्दुओंका और मुसलमानोंका सम्बन्ध दुश्मनोंका-सा रहा है। ब्रिटिशोंका राज्य होनेके बाद एक नीतिके तौरपर हिन्दू-मुसलमान उस जातिगत द्वेषको भूल जानेपर मजबूर किये गये थे और अब उन दोनों जातियोंमें वैसी कटुता और दुश्मनी नहीं रही। लेकिन इन दोनों जातियोंके स्वभावका स्थायी-भेद अब भी मौजूद है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानों-का वर्तमान मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध ब्रिटिश राज्यके कारण ही है और नवीन हिन्दू धर्मकी उदारताके कारण नहीं।

मैं इसे सिर्फ एक वहम मानता हूँ। मुसलमानोंके राज्यमें दोनों जातियाँ आपसमें सुलह-सफाईके साथ रहती थीं। यह याद रखना चाहिए कि मुसलमानोंके राज्य-कालके पहले भी कितने ही हिन्दुओंने इस्लामको अंगीकार किया था। मेरा यह विश्वास है कि जिस प्रकार ब्रिटिश राज्य यहाँ न होता तो भी यहाँ ईसाई लोग होते ही, उसी प्रकार यदि मुसलमानोंका राज्य न हुआ होता तो भी यहाँ मुसलमान तो रहते। इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि ब्रिटिश राज्यकी स्थापनासे पहले यहाँ हिन्दू और मुसलमानोंमें झगड़ा रहता था। मेरा विश्वास है कि ब्रिटिशोंकी इस 'फूट डालकर शासन करनेकी' नीतिने हमारे मतभेदोंको और भी बढ़ा दिया है। और जबतक, इस नीतिके होते हुए भी, हम यह न समझ जायें कि हमें एक हो जाना चाहिए तबतक वह हमारे मतभेदोंको बढ़ाती ही रहेगी। लेकिन यह तबतक मुमकिन नहीं जबतक हम अधिकार और पदोंके लिए झगड़ते रहेंगे। पहल हिन्दुओंको ही करनी चाहिए।

भरूचाकी डायरी

यहाँ हम श्री भरूचाके कामका लेखा देते हैं:

> मैं श्री दास्ताने और श्री देवके साथ पूर्वी खानदेशका दौरा कर रहा हूँ। दैनिक विवरण इस प्रकार है:
>
> १३–२–१९२५, भुसावल: ३५० रुपयेकी खादी मुख्यतः वकीलोंको बेची और १२ बंगाली मन रुई इकट्ठी की।
>
> १४–२–१९२५, जामनेर: १६/१$\frac{?}{?}$ बंगाली मन रुई इकट्ठी की।
>
> १५–२–१९२५, चालीसगांव: ३१० रुपयेकी खादी वकीलोंको और ४५० रुपयेकी कपड़ा व्यापारियोंको बेची। एक बंगाली मन रुई इकट्ठी की।
>
> १६–२–१९२५, पाचौरा: यहाँ १२ मन और ५ पक्का बंगाली मन रुई सिन्दूरनीमें इकट्ठी की।
>
> १७–२–१९२५, आज हम यावलेमें हैं। श्री दास्ताने पश्चिमी खानदेशमें ३ दिन अर्थात् २३ तारीखतक और रहना चाहते हैं।

मै श्री भरूचाके एक पत्रसे यह उद्धरण इस खयालसे दे रहा हूँ कि उससे दूसरे कार्यकर्त्ताओंको काम करनेकी प्रेरणा मिले। व्यावसायिक ढंग और सतत प्रयत्नके बिना सूत कातने और खद्दरके प्रचारमें सफलता मिलनी सम्भव नहीं है। मेरा अनुभव तो यह है कि जितना भी काम किया जाये उसकी प्रतिक्रिया तुरन्त होती है।

भारतकी दुर्दशा

इलाहाबाद कृषि संस्थानके श्री हिगिनबॉटमसे कर जाँच-समितिने इसी ६ तारीख-को पूछताछ की थी। इस पूछताछके उत्तरमें उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण विषयोंमें अपनी यह दिलचस्प राय जाहिर की। मैं 'सिविल ऐंड मिलिटरी गजट' से चुनकर निम्न उद्धरण देता हूँ:

> भारत बहुत गरीब देश है, फिर भी वह खेती सम्बन्धी कई बातोंमें संसार-भरमें सबसे ज्यादा फिजूलखर्च देश है। देशमें जो हद दर्जेकी गरीबी है उसका कारण जमीनकी कमी या खेतीके सामानकी कमी उतनी नहीं जितनी वैज्ञानिक ढंगसे खेती करनेकी। देशमें अलाभप्रद असंख्य पशु और धार्मिक भिखारी होनेकी वजहसे भारी आर्थिक शोषण होता है। देशमें खाद्य जुटानेके लिए और कामकी दृष्टिसे जितने जानवरोंकी जरूरत है उसकी अपेक्षा यहाँ बहुत ज्यादा जानवर हैं। उनको काफी चारा नहीं मिलता, इसलिए वे कदमें छोटे और कीमतमें हल्के रह जाते हैं। भारतकी गाय सब देशोंकी गायसे कम दूध देती है; इसका कारण यह है कि यहाँ चारा कम है और जो निकम्मी गायें हैं, भारतीय उनको खतम करना नहीं चाहते। भारतमें दूधका उत्पादन करनेमें बहुत ज्यादा खर्च आता है और देशके ९० प्रतिशत पशु आर्थिक दृष्टिसे बोझ हैं। . . .

. . . लोग अत्यन्त कीमती खादको, जिसका मिलना मुश्किल है, जला रहे हैं। भारतमें कर लगानेकी गुंजाइश बहुत अधिक है, लेकिन लोगोंकी कर देनेकी वर्तमान सामर्थ्य बहुत कम है। जमीनपर करका भार जितना पड़ना चाहिए उसकी अपेक्षा बहुत कम पड़ रहा है। भारतमें जब किसानकी जमीन इतनी कम होती है वह आर्थिक दृष्टिसे लाभ नहीं दे सकती तो उसपर लगान भार-रूप हो जाता है।

अलाभप्रद खातों (जमीनके टुकड़ों) को खतम करनेके लिए कानून बनानेकी जरूरत है। वर्तमान कानूनसे तो छोटे खातोंको प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे बड़े खाते बहुत कम हैं जिनपर मेहनत बचानेके लिए मशीनोंका इस्तेमाल किया जा सके। कानूनकी वर्तमान स्थितिमें सब लाभप्रद खाते अलाभप्रद हो रहे हैं। गाँवोंमें उद्योगोंकी उचित व्यवस्था नहीं है जिनमें फालतू लोग लग सकें। इसके अलावा बहुतसे लोगों और जानवरोंके लिए जो जमीनपर सिर्फ आधा वक्त ही काम कर सकते हैं, जमीनसे पूरी आजीविकाकी आशा करते हैं। इसका उपाय यही है कि गाँवोंमें स्त्रियों या पुरुषोंके लिए मौसमी उद्योग स्थापित करनेकी योजनाएँ बनाई जायें और उन उद्योगोंका विकास किया जाये जिससे जब खेतीमें उनके लिए कुछ काम नहीं होता तब वे कुछ समय लाभप्रद काममें लगा सकें। . . . जमींदार अपनी आमदनीको व्यक्तिगत समझता है और यह नहीं सोचता कि गाँवोंका सुधार करनेमें उसका लाभ है। इसके अतिरिक्त काश्तकार और जमींदार हमेशा आपसमें लड़ते रहते हैं।

इन उद्धरणोंमें चार बातोंकी चर्चा की गई है। कीमती खादकी बरबादी, पशुओंकी चिन्ताजनक समस्या, अलाभप्रद खाते और किसानोंके लिए पूरे वर्ष धन्धेकी कमी। करके भारकी बात छोड़ भी दें तो भी इन सबसे जनसमुदायकी गरीबी बढ़ती है और इसलिए सब देशभक्तोंको इस सम्बन्धमें विचार करना उचित है। इनमें से प्रत्येक प्रश्नपर कारगर तौरपर कार्रवाई की जा सकती है। जिस देशमें गायकी पूजा की जाती हो, उसमें पशुओंकी कोई समस्या होनी ही नही चाहिए। किन्तु हमारी इस गोभक्तिने अज्ञानपूर्ण धर्मान्धताका रूप ले लिया है। हम जितने जानवरोंको रख सकते है उनसे ज्यादा जानवरोंको रखते हैं। इस तथ्यपर सबसे पहले विचार करना जरूरी है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गोरक्षा समितियोंको यह प्रश्न अपने हाथमें लेना चाहिए। यह उनका उचित कर्त्तव्य है। अलाभप्रद खातोंका प्रश्न ऐसा है जिसके लिए हमें अपनी परिवार-व्यवस्थाको बदलनेकी जरूरत है। खादकी बरबादीका प्रश्न हल करनेके लिए खेतीकी सच्ची शिक्षा देनेकी जरूरत है। और लाखों स्त्रियों और पुरुषोंके ६ महीने बेकार रहनेका प्रश्न केवल चरखेसे ही हल किया जा सकता है। यह साफ है कि सरकारसे लड़नेके साथ-साथ हमें विज्ञानका अध्ययन करना चाहिए और श्री सैम हिगिनबॉटम द्वारा उठाय गये सवालोंपर विचार करना चाहिए।

[अंग्रजीसे]

यंग इंडिया, २६-२-१९२५

१०८. तार : आर्यको

२६ फरवरी, १९२५

आर्य
रंगून

रतिलाल चम्पाका विवाह आनन्दपूर्वक समस्त धार्मिक संस्कारोंके साथ सम्पन्न।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१०९. पत्र : अब्बास तैयबजीको

दिल्ली जाते हुए
२७ फरवरी, १९२५

प्रिय मित्र और भुर्र. . .[1]

आप फिजूल क्यों परेशान होते हैं? यदि मैंने कार्ड अंग्रेजीमें लिखा होता तो शायद आप उसको ठीक-ठीक पढ़ लेते। मुझे आपके हृदयका आलिंगन तो सदा प्राप्त है। शरीरका आलिंगन प्राप्त हो या न हो इससे क्या हुआ? मुझे आपके सम्बन्धमें गलतफहमी नहीं हो सकती। मैंने जान लिया था कि आप भ्रममें पड़ गये हैं। रेहानाको[2] मेरा सस्नेह स्मरण।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५५१) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी और तैयबजी द्वारा एक दूसरेके लिए अभिवादनमें प्रयुक्त एक विशेष ध्वनि।
२. तैयबजीकी पुत्री।

११०. पत्र : एस० वी० बापटको

२७ फरवरी, १९२५

आपका पत्र मिला। 'काफी पा लेनेपर और पानेकी कामनामें गाँठका भी चला जाता है।' मुझे क्षमा कीजिए।

मो० क० गांधी

एस० वी० बापटको
'केसरी', 'मराठा' कार्यालय
पूना

[अंग्रजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१११. तार : अब्दुल मजीदको

दिल्ली
२८ फरवरी, १९२५

ख्वाजा साहब अब्दुल मजीद
अलीगढ़

आशा है कल सुबह आप यहाँ जरूर पहुँच जायेंगे। मैं शायद कल शाम चल दूंगा।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

११२. तार : आनन्दानन्दको

दिल्ली
२८ फरवरी, १९२५

स्वामी आनन्दानन्द
अहमदाबाद

२६ मार्चको आपको पूरा समय दे सकता हूँ। क्या इससे काम चलेगा? नहीं तो मैं मद्रास जानेसे पहले अहमदाबाद आनेको तैयार हूँ।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

११३. पत्र : डा० मैंक्रूवरको

२८ फरवरी, १९२५

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। सत्याग्रह और अहिंसामें मेरा विश्वास पहले जैसा ही अटूट है। मैं अब भी असहयोग कर रहा हूँ और इसी प्रकार भारतके हजारों नर-नारी असहयोग कर रहे हैं। जो लोग हमसे सहमत नहीं हैं उनसे यह समझौता हुआ है कि एक राष्ट्रीय कार्यक्रमके रूपमें असहयोग-कार्य मुल्तवी कर दिया जाये। इससे जो लोग देशकी विधान-परिषदोंमें प्रवेशके इच्छुक हैं, वे वहाँ जानेको स्वतन्त्र हो जाते हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

११४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

फाल्गुन सुदी ६, सं० १९८१ [२८ फरवरी, १९२५]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिल गया है। मेरा कार्यक्रम इस प्रकार है :

आश्रम	४ मार्च
बम्बई	५ मार्च
मद्रास	७ मार्च
वाइकोम	८ मार्च

इसके बादका कार्यक्रम वाइकोममें तय किया जायेगा। आश्रममें २६ मार्चको वापस पहुँचनेका विचार है। मुझे १ अप्रैलको बोटाद जाना है और उसके बाद मढडा पालिताना, सिहोर आदिका कार्यक्रम है।

अब तो मैं वाइकोमसे बम्बई लौटनेके बाद ही जाम साहबसे मिल सकूँगा, बशर्ते कि वे बम्बई आ जायें।

इसके साथ भाई फूलचन्दका पत्र है। उनके सम्बन्धमें मेरे मनमें बहुत ऊँचा भाव है। अच्छेसे-अच्छे लोग भी सुनी-सुनाई बातोंसे कैसे भ्रमित हो जाते हैं, इसका यह एक उदाहरण है। आप भाई फूलचन्दको क्षमा तो कर ही देंगे, मैं यह मान लेता हूँ। जब भाई फूलचन्दने आपसे क्षमा माँगनेका विचार स्वयं प्रकट किया तब मैंने उन्हें यह सुझाव दिया था कि वे यह पत्र मुझे भेज दें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१९७) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

११५. पत्र : फूलचन्द शाहको

फाल्गुन सुदी ६, १९८१ [२८ फरवरी, १९२५]

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पट्टणी साहबको जो पत्र लिखा था, वह मैंने उनको भेज दिया है।[1] तुम्हारा दूसरा पत्र मिल गया है। मैं फुरसतसे उसका उत्तर नामोंका उल्लेख किये बिना सार्वजनिक रूपसे दूँगा।

हमें शराबियोंके घर खाना-पीना नहीं चाहिए, इस नियमका औचित्य मेरी समझमें नहीं आया है।[2]

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. देखिए "जहाँ मद्यपान हो, वहाँ क्या करें?", २२-३-१९२५।

जो लोग खादी नहीं पहनते, क्या मैं उनके घर नहीं जाता? तुम्हारी जैसी मान्यता है वैसा मैं करूँ तो उससे शराबबन्दीमें कोई खास मदद नहीं मिलती।

किन्तु मैं मानता हूँ कि यदि हम शराबियोंके घर जानेपर भी शराब न पियें तो इससे सहायता मिलती है। यदि हम इस तरह व्यवहार न रखना चाहें तो हमें जन-समाजको ही त्याग देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८७०) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

११६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

फा० शु० ६, १९८१ [फरवरी २८, १९२५]

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपके लीये जो खास चरखा बनवा रहा था, बनकर आ गया है। देखनमें तो सुंदर है हि है। मैंने और भाई महादेवने चलाकर भी देखा है। अच्छा चलता है। मैं नहिं जानता कोई आपके वहां उसको अच्छी तरह बिठा सकेंगे। मुझको लीखिये कैसे चलता है। एक चरखा और भी भेजनेका मैंने चि० मगनलालको कहा था। मैं नहिं जानता कि वह मील गया है या नहिं। आपको मैंने एक पत्र इसके पेश्तर लीखा था मीला होगा। मैं वाइकम जा रहा हुं।

आपका
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०६) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

११७. काठियावाड़के संस्मरण – १

प्रजा प्रतिनिधि-मण्डल ¹

तारीख १५ से २१ तक मैं काठियावाड़में घूमा। उस अवधिके संस्मरण मेरे दिलमें हमेशा ताजा बने रहेंगे। राजकोटके ठाकुर साहबके स्वतन्त्रता-प्रेमपर मैं मुग्ध हो गया। प्रजा प्रतिनिधि-मण्डलकी उपयोगिताके बारेमें मुझे कुछ शक था, लेकिन उसकी एक बैठकमें तीन घंटे बैठनेके बाद मेरा वह शक भी जाता रहा। यह तो भविष्यकी बात है कि यह मण्डल आखिर कितना उपयोगी साबित होगा। लेकिन यह कह सकते हैं कि वह आज भी उपयोगी है। उसे अधिक उपयोगी बनानेका दारोमदार प्रतिनिधियोंपर ही है। प्रतिनिधियोंको अपने विचार प्रकट करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता है और वे उसका पूरा-पूरा उपयोग करते हुए भी देखे गये। किसीको भी यह खयाल नहीं होता था कि माननीय ठाकुर साहबको क्या पसन्द होगा, क्या नहीं। प्रतिनिधि उन विचारोंको भी प्रकट करते थे, जो ठाकुर साहबको अप्रिय मालूम हो सकते थे।

सब कामकाज गुजरातीमें होनेके कारण बड़ी शोभा देता था। अंग्रेजी व्याख्यानोंमें जो कृत्रिमता, आडम्बर इत्यादि पाये जाते हैं, यहाँ वे देखनेको भी न मिले। वहाँके कुछ व्याख्यान तो बड़े प्रभावपूर्ण और अच्छे कहे जा सकते हैं। व्याख्यान लम्बे नहीं थे और सामान्य तौरपर सब लोग वही बातें कहते थे, जो जरूरी थीं। यह मण्डल अपनी दलील करनेकी शक्तिमें, मर्यादाकी रक्षा करनेमें और बाकायदा काम करनेमें किसी भी दूसरे प्रतिनिधि-मण्डलसे कम है, यह मैं हरगिज नहीं कहूँगा।

मद्यपान-निषेध

इस मण्डलमें मद्यपान-निषेधपर ही मुख्यतः चर्चा हुई थी। प्रतिनिधि-मण्डलने सर्वसम्मतिसे यह प्रस्ताव पास किया कि शराबकी दुकानें और शराबका बनना राज्यकी तरफसे बन्द कर दिया जाये। प्रतिनिधि लोग यह जानते थे कि ठाकुर साहबका मत इसके विरुद्ध है तो भी प्रतिनिधि-मण्डलने इसे वहाँ दूसरी बार पेश किया था।

विचार-दोष

माननीय ठाकुर साहबने स्वयं प्रतिनिधियोंके सामने अपनी बात पेश की। इसलिए उनके विचार भी जाने जा सके। उनकी दलील यह थी कि यदि शराबकी दुकानें बन्द कर दी जायेंगी तो यह व्यक्तिके स्वातन्त्र्यको हानि पहुँचाना होगा। मेरा खयाल है कि इसमें बड़ा भारी विचार-दोष है। यह समझना मुश्किल है कि यदि राज्यकी तरफसे शराबकी दुकानें बन्द कर दी जायें तो इससे व्यक्तिके स्वातन्त्र्यकी क्या हानि होगी? प्रजाकी माँग यह नहीं थी कि शराबका पीना जुर्म माना जाये।

उनकी माँग तो यह थी कि राज्यमें शराबका बनना और बेचना बन्द कर दिया जाये। व्यक्ति या समाज जिस चीजको दोषयुक्त मानता है, उसे बनाना या बेचना समाज या व्यक्तिके लिए लाजिमी नहीं है। शराबसे होनेवाली हानिको तो सभी जानते हैं। जिस प्रकार चोरी करनेका स्वातन्त्र्य नहीं मिल सकता उसी प्रकार शराब बनाने और बेचनेका स्वातन्त्र्य भी नहीं मिल सकता। जो लोग बिना शराबके नहीं रह सकते, वे चाहें तो उस राज्यको छोड़ दें। व्यक्तिके स्वातन्त्र्यके पूजक देशोंमें भी ऐसी रोक-टोकके दृष्टान्त बहुत पाये जाते हैं। स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता दोनों एक ही नहीं हैं। किसी भी व्यक्तिको स्वच्छन्द होकर काम करनेका अधिकार ही नहीं है। जहाँ ऐसा अधिकार हो वहाँ स्वतन्त्रता देवीका निवास सम्भव नहीं है। प्रत्येक मनुष्यको उतनी ही स्वतन्त्रताके उपभोग करनेका अधिकार है जिससे किसी दूसरेको नुकसान न पहुँचे। अंग्रेजीमें विधिशास्त्रका एक सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक मनुष्यको अपनी सम्पत्तिका उपयोग ऐसा करना चाहिए कि उससे किसी दूसरेकी हानि न हो। मुझे अधिकार है कि मैं अपनी सारी जमीन खोद डालूँ। लेकिन मैं उसे इस तरह नहीं खोद सकता कि उससे मेरे पड़ौसीके घरकी नींव ही कमजोर हो जाये। प्रजाका कोई वर्ग यदि शराब पीता हो तो उसका नतीजा केवल पीनेवालेको ही नहीं भुगतना पड़ता, उसके बाल-बच्चों और पड़ौसियोंको भी भुगतना पड़ता है। अमरीकाने शराबकी दुकानें और शराब बनानेके कारखाने बन्द कर दिये। इससे वहाँ व्यक्तिके स्वातन्त्र्यका लोप नहीं हो गया। इस समय जब शराबके व्यापारके विरुद्ध सारी दुनियामें हलचल हो रही है, यदि राजकोट-नरेश शराबके लिए व्यक्तिके स्वातन्त्र्यका तर्क पेश करें तो यह बड़े दुःखकी बात है।

प्रजामत

यदि यह मान भी लें कि शराबके व्यापारको बन्द करनेसे व्यक्तिके स्वातन्त्र्यकी हानि होती है तो भी यह सिद्धान्त तो सर्वमान्य है कि जहाँ स्पष्टतया प्रजाका एक ही मत हो वहाँ राजाका धर्म है कि वह उसीका वशवर्ती होकर रहे। प्रजा प्रतिनिधि-मण्डलमें ऐसा कोई भी न था जो शराबके व्यापारको बन्द न करवाना चाहता हो। ऐसे भी प्रमाण मौजूद हैं कि स्वयं शराब पीनेवाले ही उसे बन्द कराना चाहते हैं। उनके कुटुम्ब त्रस्त हैं। ऐसे विषयोंमें भी यदि राजकोटके ठाकुर साहब प्रजामतका आदर न करें तो यह बड़े दुःखकी बात होगी। जिस नरेशने प्रजा प्रतिनिधि-मण्डल बनानेमें पहल की है उनसे मैं यह आशा जरूर रखता हूँ कि वे शराबके लिए दूषित सिद्धान्तोंके कायल होकर प्रजामतका तिरस्कार नहीं करेंगे और शराबके व्यापारको बन्द करके गरीबोंकी दुआ लेंगे।

नियमितता

राजकोटके ठाकुर साहब नियमितताके पुजारी हैं। सब काम नियत समयपर करते हैं और दिये हुए और मुकर्रर किये हुए समयकी पाबन्दी स्वयं भी बड़ी सजगता-से करते हैं और दूसरोंसे भी कराते हैं। वे (डिसिप्लिन) अनुशासनके भी पुजारी

हैं। वे मानते हैं कि हमारा बड़ा भारी दोष अनुशासनका अभाव है। इसमें बहुत कुछ सत्यांश है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। नियम और अनुशासनके अभावके कारण ही प्रजा अपनी शुभेच्छाओंको पूरा नही कर पाती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १–३–१९२५

११८. स्टेनकोनोवके प्रश्नोंके उत्तर[1]

[२ मार्च, १९२५][2]

खेद है कि आज मेरा मौन-व्रत है। लेकिन आप जो-कुछ कहना चाहते हों, कह सकते हैं। मैं उसका जवाब लिखकर दूँगा। मैं 'यंग इंडिया' के सम्पादन-कार्यमें बहुत व्यस्त हूँ परन्तु कुछ मिनट निकालूँगा।

चरखेका प्रभाव

मैं ऐसे व्यक्तिपर इसके प्रभावकी दृष्टिसे उतना नहीं देखता जितना राष्ट्र-पर होनेवाले प्रभावकी दृष्टिसे देखता हूँ। कताईका प्रभाव व्यक्तिपर भले ही साफ दिखाई न पड़े किन्तु राष्ट्रपर उसका प्रभाव बहुत काफी होगा। जैसे कि एक खाई खोदनेवाले सैनिकका काम भले ही कुछ न लगे परन्तु वही काम हजारोंके मिलकर करनेसे पलड़ा भारी हो सकता है।

"इंडिपेंडेंट" दलके धमकी-बाज लोगोंकी स्थिति

जान पड़ता है वे नेतृत्व करनेकी धमकी दे रहे हैं। किन्तु वे सफल नहीं होंगे। भारतकी मनोवृत्ति उनकी प्रणालीके विपरीत बैठती है। आपने जो-कुछ भी नृशंसता देखी है, मेरा खयाल है वह लोगोंके एक बहुत ही छोटे भागतक सीमित है।

इंग्लैंडसे सौहार्दपूर्ण समझौतेकी सम्भावना

निश्चय ही इसकी पूरी सम्भावना है। मैं इसीके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन यह बहुत-कुछ अंग्रेजोंके आचरणपर निर्भर है।

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५९९३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: प्रो० जॉर्ज मॉर्गेनस्टन

१. श्री स्टेनकोनोव (१८६७-१९४८); नॉर्वेके भारतीय संस्कृतिशास्त्री, पुरालेखविद और पत्रकार। शान्तिनिकेतनमें (१९२४-२५) एक अतिथि प्राध्यापक। मौन दिवसपर गांधीजीने स्टेनकोनोवके प्रश्नोंके उत्तर लिखकर दिये थे। उपशीर्षक गांधीजीकी लिखावटमें नहीं हैं।

२. स्टेनकोनोव द्वारा सूचित।

११९. तार : आनन्दानन्दको

२ मार्च, १९२५

स्वामी
'नवजीवन'
अहमदाबाद

दससे ज्यादा स्तम्भोंकी सामग्री डाकसे रवाना। दो अंश मंगलको पहुँचेंगे। मैं बुधवारको पहुँच रहा हूँ। उसी दिन बम्बईके लिए रवाना होना जरूरी। वल्लभभाई और आश्रमको सूचित करें।

बापू

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१२०. तार : जयशंकर वाघजीको

दिल्ली
२ मार्च, १९२५

जयशंकर वाघजी
जामनगर

बृहस्पतिवारकी सुबह बम्बई पहुँच रहा हूँ। उसी रात वाइकोमके लिए रवाना।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१२१. तार : वरदराजुलु नायडूको

[२ मार्च, १९२५]

डा० वरदराजुलु नायडू[१]

वाइकोम पहुँचनेसे पहले कुछ तय नहीं किया जा सकता। शायद शनिवारको मद्रास पहुँचूँगा। उसी दिन वाइकोमके लिए रवाना होऊँगा।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. कांग्रेस कार्य-समितिके एक सदस्य।

१२२. पत्र : बीरेन्द्रनाथ सेनगुप्तको

२ मार्च, १९२५

प्रिय मित्र,

मैंने इस बीच आपका पत्र बराबर अपने पास रखा है। मौलाना मुहम्मद अलीके वक्तव्यमें[1] आपत्ति करने लायक कोई बात मुझे नहीं दिखी। क्या एक सात फुट लम्बा आदमी दूसरे पाँच फुट लम्बे आदमीसे अपनेको ऊँचाईमें बड़ा नहीं कह सकता, भले ही दूसरा व्यक्ति और सब बातोंमें उससे बढ़-चढ़कर हो? क्या मौलाना पूरी ईमानदारीसे ऐसा नहीं कह सकते कि वे संसारके तथाकथित सबसे बड़े आदमीसे भी बड़े हैं क्योंकि जहाँतक धर्मका सवाल है मौलाना ऐसे धर्मके अनुयायी हैं जो उनके विचारसे सबसे अच्छा धर्म है? मैं समझता हूँ कि मौलानाने यह फर्क बहुत ही ठीक दिखाया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१२३. पत्र : फजल-ए-हुसैनको

दिल्ली
२ मार्च, १९२५

प्यारे मियाँ साहब,

आपने कृपापूर्वक मौलाना मुहम्मद अलीसे हिन्दू-मुसलमान सवालपर अपनी टिप्पणी मुझे दिखा देनेके लिए कहा था। इसलिए उन्होंने वह टिप्पणी मेरे पास भेज दी। मैंने उसे बार-बार पढ़ा। मैं पूरी तरह इसके पक्षमें हूँ कि पंजाब और

१. मुहम्मद अलीने लिखा था :
"इस्लामको माननेवाला होनेके नाते मैं यह माननेके लिए मजबूर हूँ कि इस्लामके उसूल इस्लामके अलावा किसी भी दूसरे मजहब माननेवालोंके उसूलोंसे ऊँचे हैं। इस नजरियेसे एक पस्त और गिरे हुए मुसलमानके मजहबी उसूल भी एक गैर-मुसलमानके मजहबी उसूलोंके मुकाबिले ऊँचा दर्जा पानेके मुस्तहक हैं — भले ही वह गैर-मुसलमान कितना ही पाक और नेकचलन क्यों न हो और चाहे वह खुद महात्मा गांधी ही क्यों न हों।" देखिए खण्ड २३, परिशिष्ट १३।

बंगालमें मुसलमानोंको उनकी संख्याके अनुपातमें प्रतिनिधित्व मिले। लेकिन आपने पृथक् निर्वाचनके पक्षमें जो दलील दी है, उसे मैं समझ नहीं पाया। लगभग सभी जगह चुनावकी यह प्रणाली असन्तोषजनक सिद्ध होती दिखाई देती है। और यदि एक जातिके लिए पृथक् निर्वाचन मान लिया जाये तो फिर आप अन्य जातियों और अन्ततोगत्वा उपजातियोंको भी ऐसे ही निर्वाचनका हक मांगनेसे रोक नहीं सकेंगे। इसका अवश्यम्भावी परिणाम राष्ट्रीयताका विनाश है। मैंने जो सुझाव दिया था, क्या आपने उसपर विचार किया है?

मैं आशा करता हूँ कि आपसे मैं जब मिला था उसकी अपेक्षा आपकी सेहत अब बेहतर होगी। अच्छा होता कि हम दोनों फिर मिल सकते और जब-तब मिलते रह सकते।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

मैं फिलहाल दिल्लीमें हूँ। कल साबरमती जा रहा हूँ और वहाँसे मद्रास जाऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१२४. पत्र : जफर अली खाँको

२ मार्च, १९२५

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है कि आप नाहक परेशान हो रहे हैं। यदि आप मेरी टिप्पणी दुबारा पढ़ें, तो उसे नुकसानदेह नहीं पायेंगे। मैं आपके पत्रपर 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें चर्चा कर रहा हूँ क्योंकि उसकी विषय-वस्तु सर्वसाधारणके हितकी है।[1] परन्तु मान लीजिये मैंने भूल की, तो क्या हमें एक-दूसरेकी राय बर्दाश्त नहीं करनी चाहिए, विशेष रूपसे जब कि वह ईमानदारीसे स्थिर की गई हो।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. देखिए "मेरा अपराध", ५-३-१९२५।

१२५. पत्र : सरोजिनी नायडूको

२ मार्च, १९२५

राष्ट्रीय स्कूलोंतक को बन्द करनेका यह निर्णय आखिर किसलिए? कालेजोंको बन्द करनेकी बात तो मैं कुछ समझ सकता हूँ। क्या स्कूलोंको भी बन्द करना जरूरी है?

सस्नेह,

[अंग्रेजीसे]

तुम्हारा,

मो० क० गांधी

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१२६. पत्र : नरोत्तम लालजी जोशीको

२ मार्च, १९२५

मैंने आपका पत्र बहुत दिनोंसे संभालकर रख छोड़ा है। फुरसत मिलेगी तो आपका नाम दिये बिना 'नवजीवन' में उसका सार्वजनिक उपयोग भी करूँगा। यदि ऐसा करूँ तो आप मेरी टीकाको ध्यानसे पढ़ें। आशा है जल्दी ही करूँगा। आप बहुत लोभी हैं। सब बातें तुरन्त ही जान लेना चाहते हैं; भविष्यके लिए कुछ नहीं छोड़ते और श्रद्धाको भी कोई अवकाश नहीं देते। रामनाम किसीके धन्धेकी या रोजगारकी जगह नहीं ले सकता; बल्कि वह तो उसकी शुद्धिके निमित्त होता है। आप कुछ भी काम करते हुए रामनाम जप सकते हैं। इस जपका फल तो श्रद्धालु ही पा सकते हैं। यदि आपकी श्रद्धा अपने शिक्षकमें नहीं है तो आप उससे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। यदि जगह हुई तो कुछ समयके लिए ही क्यों न हो आश्रममें प्रवेश मिल जायेगा। यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो व्यवस्थापकको लिखें। आप गाँवमें तो बहुत-सा काम कर सकते हैं, बशर्ते कि आप वहाँ शान्तचित्त होकर रह सकें और शरीर-श्रम कर सकें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१२७. वक्तव्य : सर्वदलीय सम्मेलन उप-समितिकी बैठकके स्थगनपर[1]

दिल्ली
२ मार्च, १९२५

हिन्दू-मुसलमान समस्याके सम्बन्धमें सर्व-दलीय सम्मेलनकी उप-समितिकी बैठकके मुल्तवी किये जानेका कारण बतलाते हुए महात्मा गांधी और पण्डित मोतीलाल नेहरूने निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया है :

सर्वदलीय सम्मेलनकी समिति द्वारा नियुक्त उप-समितिकी बैठकमें निर्णय किया गया था कि इस व्यवस्थाके साथ कार्यवाही स्थगित की जाये कि उप-समितिके सदस्य जब बहुमतसे माँग करें तो फिर बैठक बुलाई जाये। बैठकने हमें यह अधिकार और आदेश दिया था कि आज जैसी स्थिति है हम उसका संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करें। बैठकमें बहुत कम सदस्य — ५३ में से १४ ही — शरीक हुए। हम दोनोंके अलावा मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डा० एस० दत्त, श्री अहमद अली, एम० एल० ए०, सलेमपुरके राजा अहमद अली खाँ, नवाब सर साहबजादा अब्दुल कयूम, श्री मुहम्मद याकूब, श्री ना० म० जोशी और श्री न० चि० केलकर थे। श्री जिन्ना एक दूसरी बैठक (स्वतन्त्र दलकी बैठक)को छोड़कर चन्द मिनटोंके लिए इस बैठकमें शरीक हुए थे।

सर्वश्री जयकर, श्रीनिवास आयंगार और जयरामदासके शरीक होनेकी असमर्थताके कारण लाला लाजपतरायने बैठक आगेके लिए मुल्तवी करनेकी माँग[2] की थी। हम अपनी जिम्मेदारीपर बैठक मुल्तवी नहीं कर सकते थे। इसलिए हमने लाला लाजपतरायको सूचित कर दिया कि मुल्तवी करनेका प्रश्न बैठकमें पेश किया जाये।[3] बादमें यही हुआ। लेकिन लाला लाजपतराय तथा उनके बताये सज्जनोंकी अनुपस्थितिके अलावा यों भी उपस्थिति इतनी कम थी कि कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता था। फिर हमारी रायमें किसी निश्चित निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए सामग्री भी नहीं थी। निकट भविष्यमें किसी निश्चित निष्कर्षपर पहुँचनेकी कोई सम्भावना भी नहीं है। इसलिए सिवा इसके कि हमने बैठक बुलानेकी माँग करनेका जो उल्लेख किया है वह माँग की जाये तो भले ही बैठक हो, अन्यथा निश्चित अवधिके भीतर सभाकी आम बैठक बुलाये जानेकी आशा हमें दिखाई नहीं देती। किसी निष्कर्षपर पहुँचनेमें असफल होनेसे जनतामें निराशा फैलनेकी सम्भावना है। फिर भी हम पत्रकारों और

१. पहली मार्चको। गांधीजी इस उप-समितिके अध्यक्ष थे और मोतीलाल नेहरू महामन्त्री।

२. देखिए "तार : लाजपतरायको", २३-२-१९२५ की पाद-टिप्पणी।

३. देखिए "तार : लाजपतरायको", २३-२-१९२५।

अन्य लोगोंको निराश न होनेकी सलाह देंगे। चूँकि उप-समिति किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकी है, इसी कारण व्यक्तियों और दलोंको कोई हल निकालनेके अपने प्रयत्न शिथिल नहीं कर देने चाहिए।

डा० बेसेंटकी अधीनतामें उप-समितिने जो स्वराज्य-योजना बनाई है, उसका उल्लेख करना बाकी है। उस उप-समितिके सदस्योंकी ओरसे असहमतिकी आवाजें उठ रही हैं। हमारे पास उनकी विमति-टिप्पणियाँ आ रही हैं। यह देखते हुए कि उपस्थिति बहुत कम थी और हिन्दू-मुसलमान प्रश्नके विषयमें किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँचा जा सकता था, इस बैठकमें योजनापर विचार नहीं हो सका।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ४-३-१९२५

१२८. पत्र: दाभोलकर और जेष्टरामकी पेढ़ीको[1]

साबरमती,[2]
३ मार्च, १९२५

महोदय,

मुझे आपका . . . का[3] पत्र मिला जिसमें आपके . . . के[4] पत्रकी नकल संलग्न है। मुझे अभीतक वह पत्र नहीं मिला। शायद वह मेरे पिछले पतेपर दिल्ली भेज दिया गया हो।

चूँकि न्यायालयमें मामला आगे पहुँच गया है और चूँकि श्री गोदरेजके अपने मुख्तार हैं, इसलिए मैं प्रस्तुत विषयपर कुछ नहीं कहना चाहता। आपके मुताबिक और श्री गोदरेज द्वारा निर्वाचित व्यक्तिके साथमें प्रसन्नतापूर्वक पंच बननेके लिए मैं तैयार हूँ। बात केवल यह है कि उस दिशामें मेरी काम करनेकी क्षमता सीमित है। इसलिए मेरे साथी पंचको मेहरबानी करके मेरे अन्य कार्योंका भी खयाल रखना होगा। मैं आपका पत्र श्री गोदरेजको भेज रहा हूँ ताकि वे जैसा चाहें कदम उठा सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० १०५२७ आर०) से।

१. इस पत्रका मसविदा सर्वश्री दाभोलकर और जेष्टराम (मुख्तारोंकी एक फर्म) से प्राप्त २ मार्च, १९२५ के पत्रकी पिछली ओर तैयार किया गया था।

२. किन्तु २-३-१९२५ को दिल्लीसे लिखे हुए पत्रमें गांधीजीने लिखा था: "मैं कल साबरमती जा रहा हूँ।" देखिए "पत्र: फजल-ए-हुसैनको", २-३-१९२५

३ व ४. साधन-सूत्रके अनुसार।

१२९. तार : च० राजगोपालाचारीको

[४ मार्च, १९२५को या उसके पश्चात्][1]

शनिवारको सुबह मद्रास पहुँचकर उसी दिन वाइकोम रवाना हो जाऊँगा। अवश्य साथ चलें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६३३) की फोटो-नकलसे।

१३०. टिप्पणियाँ–१

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

पाठकोंको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित वक्तव्यसे विदित हो जायेगा कि सर्वदलीय सम्मेलनकी उप-समिति उक्त जबरदस्त समस्याके बारेमें कोई भी निर्णय नहीं कर पाई है। परन्तु शायद यह ठीक ही हुआ कि उसने कोई निर्णय नहीं किया। इसके उचित समाधानके लिए उपयुक्त वातावरणका अभी तो अभाव ही है। दोनों पक्षोंमें परस्पर अविश्वास है। ऐसी परिस्थितिमें काम करनेका कोई सर्व-सामान्य आधार नहीं मिल सकता। *यथासम्भव कोई भी कुछ छोड़ना नहीं चाहता; और न दोनोंमें से कोई* पक्ष समाधानके लिए सचमुच चिन्तित ही दिखाई पड़ता है। फिर भी निराश हो बैठनेका कोई कारण नहीं है। दूसरोंकी नीयतपर भरोसा रखनेवाले, बिलकुल निर्भय किस्मके लोग यदि अपने विश्वासपर अडिग रहकर कोई समाधान निकालनेकी कोशिश करें तो वर्तमान असफलता ही हमारी भावी सफलताकी सीढ़ी बन जा सकती है। समाधान कोई भी हो, वह राष्ट्रीय तभी बन सकेगा जब वह सरकारपर बिलकुल ही निर्भर न हो; अर्थात् जब उसके अन्दर अपने ही पैरों चलने और आगे बढ़नेकी क्षमता होगी और जब वह अमलमें आनेके लिए सरकारकी सद्भावनाका मुखापेक्षी नहीं रहेगा।

असहायता

मुझे एक काफी लम्बा-चौड़ा तार मिला है। उसमें बतलाया गया है कि २२ तारीखकी रातको दस बजे सक्खर नगरके ऐन बीचोंबीच एक पुलिस थानेके पास ही एक बड़ी दुःसाहसपूर्ण डकैती हुई है। तारमें यह भी कहा गया है कि डाकू अभी तक पकड़े नहीं गये हैं और साहूकार लोग अपने-आपको बड़ा असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। तारका उद्देश्य तो स्पष्ट ही जनताकी सहानुभूति प्राप्त करना और संसारके

१. यह च० राजगोपालाचारी द्वारा देवदास गांधीको ४ मार्च, १९२५को भेजे गये निम्न तारके उत्तरमें था: "बापूके साथ जानेकी कोशिश करना; उनके मद्रास पहुँचनेकी तारीख तुरन्त सूचित करना।"

इस सबसे अधिक व्यय-साध्य प्रशासनकी इस असफलताको जनताके सामने लाना है कि वह लोगोंके जान-मालकी रक्षा करनेका अपना मामूली-सा कर्त्तव्य भी पूरा नहीं कर पाता। जहाँतक सहानुभूतिका सम्बन्ध है जनताकी पूरी सहानुभूति सक्खरके नागरिकोंके साथ है। सरकारकी आलोचना भी जितनी चाहे की जा सकती है। परन्तु अधिक संगत प्रश्न तो यह है कि डकैतोंके हमलेके वक्त साहूकार क्या कर रहे थे। तारसे तो यह लगता है कि उन्होंने पर्याप्त सफलताके साथ आत्म-रक्षाका प्रयास किया था। परन्तु पैसेवालोंके पास आत्म-रक्षाकी शक्ति आखिरकार बहुत नहीं होती। इस डकैतीको लेकर ऐसी असहाय पुकार सुनकर मैं तो सरकारकी असमर्थताकी अपेक्षा लुटे हुए लोगोकी कमजोरीकी बात ही अधिक सोचता हूँ। कानून आत्म-रक्षाका अधिकार देता है। मानवीय गरिमाका भी यही तकाजा है कि आत्म-रक्षाका साहस हमारे अन्दर होना चाहिए। यदि सभी लोग हर जगह अपनी सम्पत्ति और अपने *सम्मानकी रक्षाके लिए सरकारका मुँह ताकना छोड़कर अपने पैरोंपर खड़े होना* सीख लें तो वह स्वराज्यकी एक अच्छी तालीम होगी।

सिलहटकी पुकार

सिलहट जिलेमें दौरा करनेके लिए निमन्त्रण देते हुए उसके समर्थनमें नीचे लिखी मार्मिक अपील की गई है:

> यद्यपि हमारी आजकी हालतको देखते हुए आपको तकलीफ देना ठीक नहीं मालूम होता; लेकिन हमारा पिछला इतिहास तो आपकी सहानुभूति प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। हमारी कुछ अजीब स्थिति है। राजनीतिक दृष्टिसे तो हम लोग असम सरकारकी हुकूमतमें हैं लेकिन भाषामें, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक, सभी बातोंमें हमारा बंगालसे ही घनिष्ठ और अभिन्न सम्बन्ध है। हमारी जिला-कमेटी बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मातहत है।
>
> जब असहयोग जोरोंपर था उन दिनों पंजाबके बाद असम प्रान्तको ही, जिसमें हमारा जिला भी शामिल है, नौकरशाहीके क्रोधका सबसे बड़ा शिकार बनना पड़ा था।
>
> हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंमें यह जिला चाय बागानके मजदूरोंके बड़ी संख्यामें बाहर चले जाने, मेज भागमें 'कुरान' के फाड़े जाने और अन्तमें कानाईघाटकी दुर्घटनाके कारण मशहूर हुआ।
>
> 'कानून और व्यवस्था' के नामपर इस जिलेके करीब २६ लाख निवासियोंसे करीब २ लाख रुपयेसे भी अधिक महसूल जुर्मानेके तौरपर वसूल किया गया था।
>
> लगभग २०० राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंको जेलमें डाल दिया गया था।
>
> इस निष्ठुर दमनसे कांग्रेसके कार्यको बड़ी हानि पहुँची है। बहुतसे लोग तो अपने काम-धन्धोंको सँभालनेके लिए वापिस चले गये और इसीलिए आज हमें कार्यकर्त्ताओंकी संख्यामें बड़ी कमी दिखाई देती है।

> दस राष्ट्रीय शालाओंमें से आज सिर्फ एक ही शाला मुश्किलसे चल रही है। करीब २०,००० करघे चल रहे हैं, लेकिन चन्द करघोंको छोड़ कर सब विदेशी सूतका इस्तेमाल कर रहे हैं। हमारे जिलेसे साल-दर-साल विदेशी धनपतियोंके द्वारा काफी मात्रामें कपास बाहर भेज दिया जाता है।

सिलहटका पिछला इतिहास निस्सन्देह बड़ा शानदार रहा है। लेकिन कोई भी राष्ट्र सिर्फ अपने भूतकालपर ही जिन्दा नहीं रह सकता। गौरवशाली इतिहास वर्तमान-कालको प्रेरणा दे सकता है, उसे प्रेरणा देनी ही चाहिए; लेकिन भविष्यका निर्णय तो हमारे वर्तमान कार्यसे ही होगा। इसलिए सिलहट जिलेके लोगोंको जागना चाहिए और जहाँतक उनके जिलेका ताल्लुक है उन्हें रचनात्मक कार्यक्रमको सफल बनाना चाहिए। यह विचार बड़ा ही दुःखद है कि जेलकी सजाओंने देशभरमें लोगोंको निष्क्रिय बना दिया है। यदि हम कष्ट-सहनका रहस्य समझे होते, तो उससे हमारे अन्दर एक नया जोश आना चाहिए था, बजाय इसके कि हम निस्तेज पड़ जाते जैसा कि आम तौरपर हुआ है। उनके जिलेसे जो कपास बाहर जाता है उसे रोकना और अपने ही जिलेके कते हुए सूतसे कपड़ा बुननेके लिए जुलाहोंको राजी करना, यह सिलहटके लोगोंकी ताकतके बाहर नहीं होना चाहिए। तभी वे मुझे अपने जिलेके दौरेके लिए कहनेके हकदार होंगे, उससे पहले नहीं।

दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्ध

दक्षिण आफ्रिकी विधानमें रंग-भेद सम्बन्धी प्रतिबन्धका क्षेत्र और अधिक विस्तारित करनेके प्रस्तावके बारेमें आखिरकार जनरल स्मट्सने[1] अपने विचार व्यक्त कर ही दिये। पाठकोंको कुछ समय पहलेके उस तारका स्मरण होगा जिसमें कहा गया था कि संघ सरकार खानोंमें काम करनेवाले एशियाइयोंपर प्रतिबन्ध लगानेकी बात सोच रही है। समाचार है कि उस प्रस्तावित विधानके सम्बन्धमें उसके विरुद्ध बोलते हुए जनरल स्मट्सके वक्तव्यका विवरण इस प्रकार है:

> संघ विधानसभामें रंग-भेद विधेयकका विरोध करते हुए जनरल स्मट्सने स्पष्ट कहा कि विधेयक सरकारको यह शक्ति प्रदान करना चाहता है कि वह खानों और निर्माण-कार्योंमें कानूनके जरिये गोरों और वतनियों तथा एशियाई रंगदार लोगोंके लिए अलग-अलग काम निश्चित कर सके। उन्होंने कहा कि यह एक बड़ी गम्भीर चीज है। उनकी समझमें विधेयकके पीछे ईमानदारी नहीं है। वे निश्चित रूपसे यह मानते हैं कि गोरे लोगोंकी सभ्यताकी सुरक्षाकी केवल एक ही गारंटी हो सकती है और वह यह है कि इस देशमें रहनेवाले प्रत्येक मनुष्यके साथ ईमानदारीसे न्यायपूर्ण बर्ताव किया जाये। (हर्षध्वनि) एशियाइयोंपर पड़नेवाले विधेयकके प्रभावके बारेमें उन्होंने कहा श्री गांधीसे

१. जे० सी० स्मट्स (१८७०-१९५०); दक्षिण आफ्रिकी राजनीतिज्ञ, प्रधान मन्त्री (१९१९-१९२४ और १९३९-१९४८)।

चलनेवाली वार्ताके दौरान श्री गांधीका यही अनुरोध था कि भारतीयोंको बे-इज्जत न किया जाये और श्री गांधीने बादमें लन्दनमें हुए सम्मेलनोंमें अपने इसी अनुरोधको बार-बार दोहराया है। श्री गांधीने कहा था, "हम मानते हैं कि हमारे और आपके बीच एक अन्तर है और दोनोंके बीच विभेद किया जाना चाहिए, परन्तु अपने देशके कानूनमें हमारे ऊपर कोई कलंक मत थोपिये।" — लेकिन इस विधेयकके जरिए सरकार ठीक वही कर रही है जो उससे न करनेको कहा गया था। सरकार एकसे दूसरे छोरतक, समूचे एशिया महाद्वीपकी घृणा मोल लेने जा रही है। उन्होंने अन्तमें कहा कि सरकारको इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिए कि क्या उसे विधेयकके दूसरे वाचनको सभाकी कार्य-सूचीसे निकाल नहीं देना चाहिए और क्या इस कठिनाईसे बाहर निकलनेका कोई दूसरा रास्ता नहीं हो सकता।

मेरे साथ जनरल स्मट्सकी जो बातचीत हुई थी उसका ठीक-ठीक सार उन्होंने दे दिया है। मेरा मुद्दा यह था कि जबतक मानव-स्वभाव बदलता नहीं है, आज जैसा है वैसा ही बना रहता है, और जबतक यूरोपीय और भारतीय संस्कृतियोंमें टकराव बना रहता है, तबतक कुछ प्रशासकीय भेदभाव तो रहेगा ही, पर उस भेदभावको कानूनी तौरपर मान्यता देना, देशके कानूनमें रंग-भेदके दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्धोंको शामिल कर देना एक असहनीय बोझ बन जायेगा। १९१४ का समझौता भारतीयोंके इसी दृष्टिकोणकी जीत थी। जनरल स्मट्सके विरोधके बाद हम आशा करते हैं कि अब विधेयकको आगे नहीं बढ़ाया जायेगा। लेकिन हमें अपने आपको धोखेमें नहीं रखना चाहिए। हालमें पारित नेटाल मताधिकार-वंचक विधेयक (नेटाल डिसफ्रैंचाइज बिल) इसी 'दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्ध' के क्षेत्रको विस्तार देता है। इसलिए जनरल स्मट्सके विरोधका अर्थ केवल इतना ही है कि आजीविकाके मामलेमें भी इस प्रतिबन्धको लागू न किया जाये। उनका विरोध प्रतिबन्ध-मात्रके विरुद्ध नहीं है। फिर भी मैं जनरल स्मट्सको बधाई देता हूँ कि उन्होंने देशमें अपनी राजनीतिक साख कमजोर होनेकी परवाह न करते हुए, इस तरहकी स्पष्टवादिता दिखाई। यह दूसरी बात है कि हमें तबतक सन्तोष नहीं होगा जबतक कि दक्षिण आफ्रिकाकी विधि-पुस्तिकासे, सभी विधियोंमें से गोरों और एशियाइयों या अधिक उपयुक्त शब्दोंमें कहिए तो गोरों और रंगदार लोगोंके बीच किये जानेवाले कानूनी भेदभावको बिलकुल ही निकाल नहीं दिया जाता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-३-१९२५

१३१. कांग्रेस और ईश्वर

एक मित्र लिखते हैं:[1]

जहाँतक अन्त:करणके उज्रसे सम्बन्ध है यदि जरूरत हुई तो कांग्रेसके प्रतिज्ञा-पत्रमें से, जिसे कि तैयार करनेका मुझे अभिमान है, ईश्वरका नाम निकाल दिया जा सकता है। यदि यह उज्र उसी समय पेश किया गया होता तो मैं फौरन स्वीकार कर लेता। हिन्दुस्तान-जैसे देशमें ऐसे उज्रकी मैंने आशा नहीं की थी। यद्यपि शास्त्रोंमें चार्वाक मत भी मान लिया गया है तथापि मैं यह नहीं जानता कि उसके माननेवाले लोग हैं भी या नहीं। मै यह नही मानता कि बौद्ध और जैन लोग अज्ञेय-वादी या नास्तिक हैं। वे लोग तो अज्ञेयवादी हो ही नहीं सकते। जो लोग आत्माको शरीरसे भिन्न मानते है और शरीरके नष्ट हो जानेपर भी उसकी स्वतन्त्र हस्ती रहना स्वीकार करते हैं, वे नास्तिक नहीं कहे जा सकते। हम सब ईश्वरकी जुदी-जुदी व्याख्यायें करते है। हम सब यदि ईश्वरकी व्याख्यायें अपनी मर्जीके मुताबिक करें तो उसकी उतनी ही व्याख्यायें होंगी जितने कि स्त्री या पुरुष होंगे। लेकिन इन जुदी-जुदी व्याख्याओंके मूलमें भी एक किस्मका अभ्रान्त सादृश्य होगा, क्योंकि मूल तो सबका एक ही है। ईश्वर तो यह अनिर्वचनीय (ला-कलाम) वस्तु है कि जिसका हम सब अनुभव तो करते हैं लेकिन जिसे हम जानते नहीं हैं। बेशक चार्ल्स ब्रेडलॉने[2] अपनेको नास्तिक कहा है, लेकिन बहुतेरे ईसाइयोंने उन्हें ऐसा नहीं माना है। मुँहसे अपनेको ईसाई कहनेवाले बहुतसे लोगोंके मुकाबलेमें मैंने ब्रेडलॉसे अपनेको अधिक निकट महसूस किया है। भारतवर्षके उस नेक दोस्तकी अन्त्येष्टि क्रियाके समय मौजूद रहनेका मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मैंने बहुतसे पादरियोंको वहाँ देखा। उनके जनाजेके साथ कुछ मुसलमान और बहुतेरे हिन्दू भी थे। वे सब ईश्वरको माननेवाले थे। ब्रेडलॉने ईश्वरके उस स्वरूपके अस्तित्वसे इनकार किया था जिसे उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें पढ़ा था। उस समय जो शास्त्रीय विचार प्रचलित थे उसके तथा आचार और विचारके भयंकर भेदके खिलाफ उनका पाण्डित्यपूर्ण और तीव्र विरोध था। मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भ-यता ईश्वर है। ईश्वर जीवन और प्रकाशका मूल है; और फिर भी वह इन सबसे परे है। ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह तो नास्तिकोंकी नास्तिकता भी है। क्योंकि वह अपने अमर्यादित प्रेमसे उन्हें भी जिन्दा रहने देता है। वह हृदयको देखनेवाला

१. उद्धृत नहीं किया गया है। पत्रमें लेखकने कांग्रेसके प्रतिज्ञापत्रसे 'ईश्वर' शब्दको हटानेका सुझाव दिया था।

२. (१८३३-१८९१) अंग्रेज चिन्तक और राजनीतिज्ञ।

है। वह बुद्धि और वाणीसे परे है। हम स्वयं जितना अपनेको जानते हैं, उससे कहीं अधिक वह हमें और हमारे दिलोंको जानता है। जैसा हम कहते हैं, वैसा ही वह हमें नहीं मानता। क्योंकि वह जानता है कि जो हम जबानसे कहते है अक्सर वही हमारा भाव नहीं होता; और कुछ लोग ऐसा जान-बूझकर करते हैं तो कुछ अनजाने ही। ईश्वर उन लोगोंके लिए एक व्यक्ति ही है जो उसे व्यक्ति-रूपमें हाजिर देखना चाहते हैं। जो उसका स्पर्श करना चाहते है, उनके लिए वह साकार है। वह पवित्रसे पवित्र तत्त्व है। जिन्हें उसमें श्रद्धा है उन्हीके लिए उसका अस्तित्व है। विभिन्न लोगोंके लिए उसके विभिन्न रूप हैं। वह हममें व्याप्त है और फिर भी हमसे परे है। "ईश्वर" शब्द कांग्रेससे निकाल दिया जा सकता है, लेकिन खुद ईश्वरको तो कोई कहींसे नहीं निकाल सकता। ईश्वरके नामपर की गई प्रतिज्ञा और केवल प्रतिज्ञा यदि एक वस्तु नही है तो फिर प्रतिज्ञा होगी क्या चीज? अन्तरात्मा तो निश्चय ही ईश्वर शब्दका एक बड़ा ही अपर्याप्त और जबरदस्ती बनाया हुआ पर्याय है। उसके नामपर भयंकर अनीतियुक्त काम किये गये हैं और अमानुष अत्याचार भी हुए हैं, लेकिन इससे उसका अस्तित्व नहीं मिट सकता। वह बड़ा सहनशील है, वह बड़ा धैर्यवान् है, लेकिन वह रुद्र भी है। उसका व्यक्तित्व इस दुनियामें और भविष्यकी दुनियामें भी सबसे अधिक काम करानेवाली ताकत है। जैसा हम अपने पड़ोसी —मनुष्य और पशु—दोनोंके साथ बरताव करते है वैसा ही बरताव वह हमारे साथ भी करता है। उसके सामने अज्ञानकी दलील नहीं चल सकती। लेकिन यह सब होनेपर भी वह बड़ा रहमदिल है, क्योंकि वह हमें पश्चात्ताप करनेके लिए मौका देता है। दुनियामें सबसे बडा प्रजातन्त्रवादी वही है; क्योंकि वह बुरे-भलेको पसन्द करनेके लिए हमें स्वतन्त्र छोड़ देता है। वह सबसे बड़ा जालिम है, क्योंकि वह अक्सर हमारे मुँह तक आये हुए कौरको छीन लेता है और इच्छा-स्वातन्त्र्यकी ओटमें छूट लेनेकी बहुत हीं कम गुंजाइश देता है और हमारी लाचारीपर हँसता है। यह सब हिन्दू धर्मके अनुसार उसकी लीला है, उसकी माया है। हम कुछ नहीं है सिर्फ वही है और अगर हम हों तो हमें सदा उसके गुणोंका गान करना चाहिए और उसकी इच्छाके अनुसार चलना चाहिए। आइए, उसकी बंसीकी धुनपर हम नाचें। सब अच्छा ही होगा।

लेखकने मेरी एक पुस्तिका 'नीतिधर्म' का भी जिक्र किया है। सो पाठकोंका ध्यान इस बातकी ओर खीचना जरूरी है कि लेखकने जिसका उल्लेख किया है वह अंग्रेजी पुस्तक है। मूल पुस्तक गुजरातीमें लिखी गई है। और गुजराती पुस्तिकाकी भूमिकामें यह बात साफ तौरपर कही गई है कि यह मौलिक पुस्तक नहीं है। बल्कि अमरीकामें प्रकाशित 'नैतिक-धर्म' नामक एक पुस्तकके आधारपर लिखी गई है। यह अनुवाद यरवदा जेलमें मेरी नजरोंसे गुजरा और मुझे यह देखकर अफसोस हुआ कि उसमें मूल पुस्तकका कंही उल्लेख नही है। मुझे मालूम हुआ है कि खुद अनुवादकने भी गुजराती नहीं बल्कि उसके हिन्दी अनुवादका अनुवाद किया है। इस तरह उसके अंग्रेजी अनुवादको एक 'द्राविड़ी प्राणायाम' ही समझिए। उस मूल

अमरीकी पुस्तकके[1] प्रति यह खुलासा देना मेरा कर्त्तव्य था। और खुशीकी बात है कि पत्र-लेखकने मुझे इसकी याद दिलाकर उसके ऋणको अदा करनेका अवसर दिया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-३-१९२५

१३२. मेरा अपराध

मौ० जफर अलीखाँने पंजाब खिलाफत समितिके सभापतिकी हैसियतसे एक खत मुझे भेजा है। मैं उसे यहाँ खुशीके साथ दे रहा हूँ:

> इसी ता० २६ के 'यंग इंडिया' में काबुलकी संगसारीके विषयमें आपके प्रकाशित वक्तव्यको पढ़कर मुझे बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। आप फरमाते हैं कि 'कुरान' में इसका उल्लेख होने मात्रसे इस विशेष दण्डका समर्थन नहीं किया जा सकता।' आपने यह भी कहा कि 'प्रत्येक धर्मके प्रत्येक नियमको विवेकके इस युगमें पहले विवेक और व्यापक न्यायकी अचूक कसौटीपर कसना होगा तभी उसपर संसारकी स्वीकृति माँगी जा सकती है।' अन्तमें आप कहते हैं कि 'किसी भूलका समर्थन संसारके समस्त धर्मग्रन्थोंमें भी किया गया हो तो भी वह इस नियमसे मुक्त नहीं हो सकती।'
>
> मैंने हमेशा आपकी महत्ताके आगे सर झुकाया है और आपको बराबर ही उन थोड़े-से आदमियोंमें गिनता आ रहा हूँ जो आधुनिक इतिहासका निर्माण कर रहे हैं; पर अगर मैं यह बात आपपर रोशन न करूँ कि आपने यह कहकर कि 'कुरान' को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने अनुयायियोंके जीवनको अपने ही ढंगसे नियन्त्रित करे, अपने लाखों मुसलमान प्रशंसकोंके दिलमें यह भावना पैदा कर दी है कि आप उनकी रहनुमाई करने लायक नहीं हैं, तो मैं एक मुसलमानकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाऊँगा।
>
> आपको इस बातपर अपनी राय जाहिर करनेकी छूट तो पूरी-पूरी है कि धर्मसे च्युत लोगोंको शरीयत संगसारीकी सजा देती है या नहीं। परन्तु यह मानना कि यदि 'कुरान' भी ऐसी सजाकी ताईद करती हो तो वह गलती है और इस रूपमें मलामतके काबिल है, इस किस्मकी विचारसरणी है जो मुसलमानोंको जँच ही नहीं सकती।
>
> गलती आखिरकार एक सापेक्ष चीज है और मुसलमानोंके यहाँ उसका अपना अलग अर्थ है। उनके नजदीक 'कुरान' एक अटल कानून है जो क्षुद्र मानवजातिकी सदा परिवर्तनशील व्यवहार नीति और समय-नीतिकी सीमासे

१. विलियम मैकिंटायर साल्टर लिखित पुस्तक 'एथिकल रिलिजन'।

परे हैं। अच्छा होता यदि भारतके नेताकी हैसियतसे आपने जो अनेक काम किये हैं उनमें 'कुरान' शरीफकी शिक्षाओंकी प्रतिकूल आलोचना करनेका नाजुक काम आपने न किया होता।

मौलाना साहबने मेरी उस टिप्पणीपर जो अर्थ घटाया है वह उसपर घटता नहीं है। मैंने 'कुरान' शरीफके उपदेशोंकी प्रतिकूल (या अन्य किसी ढंगकी) आलोचना नहीं की है। मैंने उपदेशकोंकी अर्थात् उसके भाष्यकारोंकी आलोचना जरूर की है। और यह जानते हुए की है कि वे इस सजाका समर्थन किये बिना नहीं रहेंगे। मुझे भी 'कुरान' और इस्लामकी तवारीखका इतना इल्म जरूर है कि मैं यह कह सकता हूँ कि 'कुरान' के ऐसे कितने ही भाष्यकार हुए हैं जिन्होंने अपने पूर्व कल्पित विचारोंके अनुकूल उसका अर्थ लगाया है। इसमें मेरा उद्देश्य ऐसे किसी अर्थको माननेके विषयमें चेतावनी दे देनेका था। लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि खुद 'कुरान'की शिक्षाएँ भी आलोचनासे मुक्त नहीं रह सकतीं। आलोचनासे तो हरएक सच्चे धर्म-ग्रन्थको लाभ ही होता है। आखिर अपने तर्क-बलके अतिरिक्त हमारे पास यह बतानेवाली और कोई चीज नहीं है जो हमें बताये कि क्या अपौरुषेय (इल्हामी) है और क्या नहीं। शुरूमें जिन मुसलमानोंने इस्लामको अख्तियार किया उन्होंने उसे इसलिए अख्तियार नहीं किया कि वे इसे इल्हामी मानते थे बल्कि इसलिए कि वह उनकी सीधी-सादी समझमें बैठ गया था। मौलाना साहबका यह कहना बिलकुल ठीक है कि भूल एक सापेक्ष शब्द है। लेकिन हकीकतमें देखा जाये तो कुछ बातें तो ऐसी हैं ही जिन्हें सारा संसार गलत मानता है। मेरे खयालसे यन्त्रणा देकर प्राण लेना ऐसी ही गलत चीज है। मौलाना साहब द्वारा उल्लिखित मेरी तीन बातोंमें मैंने सिर्फ अर्थ लगानेकी तीन विधियोंका जिक्र किया है और उसके खिलाफ कोई उँगली नहीं उठा सकता। हर हालतमें मैं तो उन्हींका पाबन्द हूँ। और अगर मुझे इस बातको जाहिर करनेकी पूरी आजादी है कि इस्लामकी शरीयतके मुताबिक धर्मपतित लोग संगसारीकी सजाके पात्र हैं या नहीं, तब मैं इस बातपर भी क्यों न अपनी राय जाहिर करूँ कि शरीयतके अनुसार संगसारीकी सजा दी भी जा सकती है या नहीं। मौलाना साहबने इस्लाम सम्बन्धी गैर-मुस्लिमकी आलोचनाको बरदाश्त न करनेकी वृत्ति जाहिर की है। मैं उन्हें सूचित करता हूँ कि प्राणप्रिय वस्तुओंकी भी आलोचनाको बरदाश्त न करना सार्वजनिक और सामुदायिक जीवनके विकासके लिए हितकर नहीं है। यदि आलोचना बेजा भी हो तो उससे निश्चय ही इस्लामको डरनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं मौलाना साहबसे कहूँगा कि काबुलकी इस दुर्घटनामें जो जबर्दस्त प्रश्न जुड़े हुए हैं उनपर मेरी आलोचनाके प्रकाशमें विशद दृष्टिसे चिन्तन करना उचित होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-३-१९२५

१३३. टिप्पणियाँ – २

मरुस्थलमें हरियाली

खद्दरके सम्बन्धमें बम्बईके खिलाफ जिस समय शिकायतें आ रही हैं उस समय यदि यह मालूम हो कि स्त्रियोंका एक मण्डल वहाँ चुपचाप खादीका अच्छा प्रचार कर रहा है तो यह एक खुशीकी बात मानी जायेगी। मेरे सामने एक पत्र पड़ा है। उसमें लिखा है:

> इस महीनेमें २,०००) से ज्यादा की खादीकी बनियान श्रमिक-निकाय और स्कूलोंमें बेची जा चुकी हैं और कुछ भावनगरमें भी भेजी गई हैं। इसमें रोजाना मामूली बिक्रीके दाम और जोड़ दीजिए। सेवासदनमें[1] एक नया वर्ग इस शर्तपर खोला जा रहा है कि उसमें वे ही बच्चे दाखिल किये जायेंगे जो रोज थोड़ा-बहुत कातनेके लिए तैयार हैं। कातना भली-भाँति सीख लेनेके बाद उन्हें माहवार २,००० गज सूत देना होगा। इसका असर मौजूदा वर्गोंपर भी पड़ा है। कुछ वर्गोंकी लड़कियाँ कातना शुरू करनेवाली हैं।

एक-दूसरे मित्र ठीक कहते हैं कि यह नहीं कि लोगोंमें सहानुभूति नहीं है। उसका अभाव तो नेताओं और कार्यकर्त्ताओंमें ही है। वे इसके सन्देशके प्रचारके लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अभी खादीका चाव लोगोंमें इतना नहीं बढ़ा है कि वे समय निकालकर स्वयं खादी खरीदने जायें। लेकिन यदि उनके दरवाजोंपर कोई खादी लेकर जाये तो वे उसे खुशीसे खरीद लेंगे। फसल तो शानदार खड़ी है, काटनेवाले नहीं मिलते। हरएक कार्यकर्त्ता यह निश्चय क्यों न कर ले कि वह हर महीनेमें एक निश्चित परिमाणमें खादी बेचेगा। मैं यह जानता हूँ कि खादी बनानेमें हमने काफी प्रगति कर ली है और शौकीन लोगोंकी रुचिके अनुरूप खादी भी तैयार होने लगी है। मुझे एक रोजएक धनी दुल्हनका जामा दिखाया गया। वह साराका-सारा खादीका बना हुआ था और उसमें सोने चाँदीकी जरीका काम किया गया था। श्रीमन्तोंकी दृष्टिसे भी उसमें कोई कसर नहीं थी। अब जैसी चाहें वैसी खादीकी साड़ियाँ बन सकती हैं। पाणिग्रहणके समय ओढ़नेके लिए आवश्यक रंगीन दुशाला भी खादीका ही बनाया गया था। इसलिए अब कोई यह बहाना नहीं बना सकता कि जैसी चाहिए वैसी बारीक और रंगीन खादी नहीं मिलती है इसीलिए हम खादी नहीं पहनते। क्या हिन्दुस्तानके सभी कार्यकर्त्ता, जिन बहनोंके कार्यके प्रति मैंने उनका ध्यान दिलाया है, उनके कार्यपर गौर करेंगे और उनका अनुकरण करेंगे?

फरीदपुर सम्मेलन

मेरे पास तारपर-तार आ रहे हैं कि मैं बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनमें उपस्थित होऊँ। पर अत्यन्त खेद है कि मैं उसमें शरीक नहीं हो पाऊँगा। मेरी भी वहाँ

१. सारस्वत भवन; देखिए "एक भूल सुधार", २६-३-१९२५।

जानेकी बड़ी इच्छा थी; परन्तु जा नहीं पा रहा हूँ और इसका मुझे बड़ा खेद है। मैंने फरीदपुरके मित्रोंको सूचित भी कर दिया है कि मेरी उपस्थिति निश्चित न मानें। मैंने उनसे कह दिया है कि आजकल मेरा आना-जाना अनिश्चित रहता है। मेरी स्थिति दयनीय है। बिहार, वर्धा, उड़ीसा, आन्ध्र तथा कितनी ही दूसरी जगहोंसे मुझे निमन्त्रण हैं। मैं सभी जगह जाना पसन्द करूँगा। पर मैं सब जगह एक साथ नहीं जा सकता। इसीलिए मुझे यह निर्णय करना होगा कि कहाँ पहुँचकर मैं ज्यादासे-ज्यादा सेवा कर सकूँगा। मैं महसूस करता हूँ कि अभी फिलहाल मेरा स्थान वाइकोमके वीर सत्याग्रहियोंके बीच ही है। यह बड़ा पुराना वादा है। वे छोटीसे-छोटी बातमें सत्याग्रह-सिद्धान्तका पालन करना चाहते हैं। उनकी तादाद थोड़ी है। वे बड़ी विपरीत परिस्थितिमें भी लड़ाई जारी रखे हुए हैं। अबतक मैंने उन्हें बाहरसे आर्थिक तथा अन्य प्रकारकी सहायता नहीं लेने दी है। अब उनके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं सत्याग्रहके एक विशेषज्ञके नाते वहाँ जाऊँ, उनका निर्देशन करूँ और उनके सामने जो दिक्कतें पेश हैं उनसे निपटनेमें उनकी हिम्मत बढ़ाऊँ। वहाँ जानेकी बात बहुत दिनोंसे टलती ही जा रही थी। आशा है, दूसरे प्रान्तोंके सज्जन इसपर आपत्ति नहीं करेंगे।

एक बात और। मैं समझता हूँ कि मेरे वाइकोम जानेसे सत्याग्रहियोंको कुछ सहायता मिलेगी; लेकिन अन्य प्रान्तोंमें उसका प्रदर्शनके सिवा और कोई उपयोग नहीं है। उन्हें तो मैं एक सीधी बात बताता हूँ। अपने-अपने स्थानीय झगड़ोंको निबटा लीजिए — वे चाहे हिन्दू-मुसलमानोंमें हों, चाहे ब्राह्मणों-अब्राह्मणोंमें हों। जितना आपसे हो सके उतना चरखा कातिए, सदा खादी पहनिए और आप कांग्रेसके लिए सूत कातनेवाले जितने सदस्य बना सकते हों, बनाइए। इसके साथ ही ऐसे सदस्य भी बनाइए जो खुद भले ही न कातें फिर भी हर माह २,००० गज सूत दूसरेसे कतवा कर दें। अपने जिले या प्रान्तके दलित-पीड़ित भाइयोंकी जिस तरह हो सके मदद कीजिए। अपने मुकामको शराब और अफीमकी कुटेवसे मुक्त कीजिए। इतना हो चुकनेपर काम बढ़ानेकी दृष्टिसे मुझे बुलाइए। अगर हम यह चाहते हों कि आगामी वर्षके प्रारम्भ तक आशाका अरुणोदय हो जाये तो हमें चाहिए कि इस शान्तिके वर्षमें हम अपनी तमाम शक्ति राष्ट्रके इस रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेमें लगावें। सरकार क्या करती है, इसकी परवाह किये बिना बंगाल अध्यादेशके रहते हुए भी हमें अपना काम जारी रखना चाहिए। यदि हम चाहते हों कि यह अध्यादेश रद हो जाये तो उसके लिए हमें काफी शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये। मेरी दृष्टिमें उसका एक ही उपाय है; और वह है अपनी पूरी शक्तिके साथ रचनात्मक कार्यक्रममें लग जाना।

पुनर्विचारके योग्य

बम्बई नगर-निगम द्वारा बनवाई गई चालोंमें रहनेवाले कुछ दलित वर्गके लोग बेदखल कर दिये गये थे। निगमने उस सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए एक समिति नियुक्त की थी। दलित वर्गोंके प्रख्यात हितैषी श्री अमृतलाल ठक्करने मुझे उस समितिकी रिपोर्ट की एक प्रति भेजी है। इन गरीब स्त्री-पुरुषोंको चालोंसे बेदखल

करनेके तीन कारण बताये गये हैं। वे नगरपालिकाके कर्मचारी नहीं हैं, उनमें से कुछ लोग ज्यादा किराया देने योग्य हैं और कुछ ऐसे अवांछनीय, सजायाफ्ता लोग हैं। बेदखल किये गये लोगोंकी ओरसे यह दलील दी गई है कि वे नगरपालिकाके कर्मचारियोंके निकट सम्बन्धी हैं, वे बरसोंसे नगरपालिकाकी इन चालोंमें रहते आये हैं और उनके विरुद्ध बेदखलीकी कार्यवाही नगरपालिकाके उन भ्रष्ट कर्मचारियोंके कहनेसे की गई है जिनको ये बेदखल लोग रिश्वत नहीं दे सके। नगरपालिकाके कमिश्नरकी रिपोर्टमें कहा गया है:

> **कुछ साल पहले श्री गांधीने इन चालोंको देखने और जाँच करनेके बाद यह विश्वास व्यक्त किया था कि (भ्रष्टाचारके सम्बन्धमें) जो साक्षी दी गई है और जो बातें कही गई हैं वे ऐसी हैं कि उन्हें कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति नहीं मान सकता।**

मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी ऐसी बात कही थी; लेकिन रिश्वतका सवाल असंगत है। यदि यह सिद्ध भी किया जा सके कि नगरपालिकाका कोई भी कर्मचारी रिश्वत नहीं लेता है तो भी 'जहाँतक दलित वर्गोंका सम्बन्ध है' उनमें से उन लोगोंकी बेदखली जो नगरपालिकाके कर्मचारी नहीं हैं सिद्धान्ततः अनुचित है। इनका मामला एक विशिष्ट मामला है। ऐसी कोई जगह ही नहीं है, जहाँ वे चले जायें। वे सस्ती रिहायश पानेके लोभसे नगरपालिकाकी चालोंमें इकट्ठे नहीं हुए हैं; वे वहाँ इसलिए रहते हैं कि उन्हें कोई दूसरे मकान मिल ही नहीं सकते। मैं मानता हूँ कि निगमका यह कर्त्तव्य है कि वह दलितवर्गीय कर्मचारियोंके सम्बन्धियोंको उनके साथ रहने दे, इतना ही नहीं, बल्कि उसे उन वर्गोंके लिए काफी और अच्छी अतिरिक्त रिहायशका प्रबन्ध भी करना चाहिए। निगमको ऐसी रिहायशके लिए उचित किराया वसूल करनेका हक होगा। मैं दलित वर्गोंके बहुत ही सम्माननीय सदस्योंके कुछ उदाहरण जानता हूँ जिन्हें ऊँचेसे-ऊँचे किरायेपर भी मकान नहीं मिल सके हैं। मालिक इन वर्गोंके लोगोंको अपने मकान किरायेपर नही देना चाहते। जो लोग नगरपालिकाके कर्मचारी नहीं हैं और नगरपालिकाकी चालोंमें रहते हैं उनके विरुद्ध नगरपालिकाकी समितिकी या कमिश्नरकी आपत्ति उचित तभी हो सकती है जब वह किसी दूसरे वर्गके बारेमें हो। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस मामलेपर पुनर्विचार किया जायेगा और दलित वर्गोंके जो लोग बेदखल किये गये हैं उनमें से हरएकके रहनेका प्रबन्ध कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-३-१९२५

१३४. तार: मद्रास नगरनिगमके अध्यक्षको

५ मार्च, १९२५

अध्यक्ष मद्रास नगरनिगम, मद्रास

धन्यवाद। नगरनिगमकी सुविधाके समयपर शनिवारको अभिनन्दन सहर्ष स्वीकार।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१३५. तार: डा० वरदराजुलु नायडूको

५ मार्च, १९२५

डा० वरदराजुलु नायडू
३, ब्रॉडवे
मद्रास

शनिवारको अभिनन्दनपत्रकी स्वीकृतिका नगरनिगमको तार भेज दिया। मद्रासमें दो दिन ठहरना असम्भव क्योंकि उसके बाद ही मौन दिवस।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१३६. तार: एस० श्रीनिवास आयंगारको

५ मार्च, १९२५

एस० श्रीनिवास आयंगार
मयलापुर
मद्रास

शनिवारको अभिनन्दनपत्रकी स्वीकृतिका नगरनिगमको तार दे दिया।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१३७. पत्र : एन० मेरी पीटर्सनको

५ मार्च, १९२५

कुमारी पीटर्सन[1]
पोर्टोनोवो

वाइकोम जाते हुए शनिवारको मद्रास पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१३८. पत्र : अमृतलाल खेतसीको

बम्बई
फाल्गुन सुदी १० [५ मार्च, १९२५][2]

भाई श्री अमृतलाल,

चि० रामीकी तबियत खराब होनेकी खबर पढ़कर दुःख हुआ। मुझे वाइकोम-के पतेपर उसकी खबर देते रहना। रामीसे कहना, ठीक होते ही मुझे पत्र लिखे।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ६७७) से।
सौजन्य : नवजीवन न्यास

१३९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

फाल्गुन सुदी १० [५ मार्च, १९२५][3]

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र रांचीसे मीला है। आश्रमसे एक पेटी-चर्खा आपको कलकत्ते भेजा गया है। और एक नयी किसमका दिल्लीसे भेजा गया है। दोनों आपके खत मीलनेके पेश्तर भेजे गये। इसलीये कलकत्ते गये हैं।

१. दक्षिणमें डेनिश धर्म प्रचारक संघकी कार्यकर्त्री। वे कुछ समयतक साबरमती आश्रममें रही थीं।
२. गांधीजी ५ मार्च, १९२५ को बम्बईमें थे।
३. गांधीजी ५ मार्च, १९२५ को बम्बईसे मद्रासके लिए रवाना हुए थे।

आपकी धर्मपत्नीकी तबीयत अच्छी नहिं है सुनकर मुझे खेद होता है। सब हाल ठीक जाननेके सिवा कुछ कहना मुश्केल है। हां, इतना तो सामान्य है कि दर्दके वखत खाना कमसे-कम और ज्यादेतर दूध ही और फल। हमारी आदत कमरा बंध करके सोनेकी है। दर्दके समय स्वच्छ हवाकी ज्यादह आवश्यकता है। परंतु मेरी सब बातें निकम्मी मानता हूं। आपके वैद्य या दाक्तर जो कुछ कहें वही सही समजा जाय।

मै आज वाईकोम जा रहा हूँ। शायद इस महीनेकी आखर तक मद्रास इलाकेमें रहना होगा। आश्रममें २६-२७ मार्चको पहोंचुंगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११८) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१४०. भेंट : पत्र-प्रतिनिधियोंसे

बम्बई
५ मार्च, १९२५

मेरे विचार अब भी वही रहते हैं जो पहले थे। एकता अपरिहार्य है। मेरे अनुमानसे जितना समय लगना था, यह उससे ज्यादा समय लेगी। विद्वेषकी आँधी जोर पकड़ रही है। आशा है कि तूफानके बीच भी हममें से कुछ लोग अविचलित ही रहेंगे। मैंने तो जीतनेकी कसम ले ली है। मैं हिन्दू हूँ; मुसलमानोंके साथ झगड़ा नहीं करूँगा। न मैं ऐसी धमकियोंसे डरूँगा जैसे कि कहा जाता है पेशावरमें दी गई हैं। मै मौलाना ज़फर अली खाँ और डा० किचलूसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मुझे आशा है, उनके बारेमें गलत रिपोर्ट दी गई है। मैं तो तब भी आवेशमें नहीं आऊँगा, यदि उन्होंने वह सब-कुछ कहा हो जो उनके द्वारा कथित माना जा रहा है। मैं बदला लेनेकी उपयोगितापर विश्वास नही करता। मैं हिन्दुओंसे जोर देकर कहूँगा कि वे ऐसी घटनाओंपर क्रुद्ध न हों। लेकिन मैं देखता हूँ कि निकट भविष्यमें कोई समझौता होने की आशा नहीं है। सौदेबाजीसे कोई स्थायी समझौता नहीं हो सकता। नौकरशाहीके साथ सत्तामें साझीदार होनेके लिए संघर्ष करना मुझे पसन्द आ ही नहीं सकता। इस प्रकारके संघर्षसे केवल ब्रिटिश प्रभुत्वको ही बल मिलेगा। समान साझीदार होने पर मैं ब्रिटिश सहयोगकी कद्र करूँगा, किन्तु उनकी प्रभुताकी अपेक्षा मै अराजकताको पसन्द करूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि, इस प्रभुताके रहते हुए हम कभी एक राष्ट्र नहीं बन सकते। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच खुलकर लड़ाई हो चुकनेपर भी मुझे उनमें पारस्परिक समझौता होनेकी आशा है, किन्तु ब्रिटिश शस्त्रोंके प्रतिबन्धमें शान्तिपूर्वक रहते हुए भी मुझे उनके बीच मेल-मिलापकी कोई आशा नहीं। हमें अपनेको अनुशासनमें रखना सीखना चाहिए। इसलिए मेरा आदर्शवाक्य है : "यदि एकता सम्भव

है तो आज अभी, हो; और लड़े बिना काम न चले तो लड़ाई भी आज ही हो ले। किन्तु हर सूरतमें हम ब्रिटिश हस्तक्षेपसे अपनेको बचायें।" मैं जानता हूँ कि इसमें उनकी मदद लेना एक बहुत बड़ा प्रलोभन है, बहरहाल मुझे तो इससे बचना ही है फिर यह प्रलोभन बड़ा हो, चाहे छोटा। भारतके हर गाँव या गली-कूचेमें थर्मापोलीके[1] दृश्य उपस्थित हो जानेपर भी मुझे स्वराज्यका उदय दीख पड़ रहा है। परन्तु शस्त्रोंकी बदौलत इन दो जातियोंके बीच स्थापित शान्तिमें मुझे स्वराज्यके दर्शन नहीं होते। उचित समझौता होनेसे पहले जितनी आवश्यकता अंग्रेजोंके हृदय-परिवर्तनकी है, उतनी ही हिन्दुओं और मुसलमानोंके हृदय-परिवर्तनकी भी है।

एक प्रतिनिधिने पूछा, "लेकिन आपकी सलाहपर चलेगा कौन?" महात्माने उत्तर दिया:

मैं चलूँगा, क्या इतना काफी नहीं है? क्या मुझे अपन विश्वासको इसलिए छोड़ देना चाहिए कि उसका कोई अनुसरण नहीं करेगा।

एक प्रतिनिधिने कहा, "अब भी यह मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं हुआ?" महात्माने कहा:

आपकी यह शिकायत उचित है, फिर भी मैं ज्यादा कुछ नहीं कह सकता। मैं जानता हूँ कि इस समय मेरी कोई नहीं सुनता। लोग सरकारके पास जायेंगे और ऐसी परिस्थितिमें शायद कोई भी वैसा ही करता जैसा कि अंग्रेज कर रहे हैं, अर्थात् दोनोंको विभक्त करके शासन करनेकी कोशिश करता। जो लोग अपने ऊपर दूसरोंका शासन चाहते हैं उनके साथ और किया भी क्या जा सकता है? इसलिए हिन्दू-मुस्लिम समस्या इस समय बहुत जटिल बन गई है। मैं अपनेको इससे बाहर रखना चाहता हूँ। जब मेरी आवश्यकता पड़ेगी तब मैं इसमें हाथ डालूँगा। मै ईश्वर-पर सिद्धान्तके रूपमें नहीं, बल्कि तथ्यके रूपमें विश्वास करता हूँ। उसका अस्तित्व जीवनके अस्तित्वसे भी अधिक यथार्थ है। इसलिए मुझे उसका भरोसा करना चाहिए। आवश्यकता पड़नेपर वह इस प्रश्नके सम्बन्धमें मुझे राह सुझायेगा जैसा कि आज तक सुझाता रहा है। इस बीच चरखा और अस्पृश्यता, दोनों मुझे और मेरी तरह सोचनेवालोंको व्यस्त रखनेके लिए काफी हैं।

"किन्तु, क्या आप उन लोगोंको भी जो कि आपकी सलाहपर चलेंगे, ठोस सुझाव नहीं देंगे?" यह अन्तिम प्रश्न था।

मुझे उनके बारेमें सोचना ही होगा। किन्तु मैं जबतक यह नहीं देखता कि मेरे द्वारा सुझाया गया उपाय समुचित प्रकारसे कार्य करेगा तबतक मैं अपने बीच प्रचलित सिद्धान्तोंमें एक और जोड़कर स्थितिको अधिक पेचीदा नहीं बनाना चाहता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-३-१९२५

१. यूनानमें, स्पार्टा निवासियोंने ई० पू० ४८० में ईरानियोंके आक्रमणका बहादुरीके साथ सामना करते हुए वीरगति पाई थी।

१४१. पत्र : जनकधारी प्रसादको

गाड़ीमें
६ मार्च, १९२५

प्रिय जनकधारी बाबू[1],

आपका पत्र इतने सारे दिनोंसे मेरे साथ-साथ घूम रहा है। मैं यह पत्र मद्रास जाते हुए गाड़ीमें लिख रहा हूँ। बेलगाँवमें किसीकी उपेक्षा करनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। लेकिन मैं क्या करता? मेरे पास वैयक्तिक बातचीतके लिए एक क्षण भी नहीं था। इसलिए मैंने अपने हृदयको कठोर बना लिया।

आप उदास हैं। किन्तु यह उदास होनेका समय नहीं है। हम अपनी पूरी योग्यताके साथ अपना दैनिक कार्य करें और प्रसन्न रहें। जीवनकी पुस्तकमें निष्ठाके साथ किये गये सभी कार्योंका मूल्य एक ही है। फिर चिन्ता क्यों करें?

आपने कोई निश्चित प्रश्न नहीं पूछे हैं; किन्तु यदि ऐसे निश्चित कोई प्रश्न हों तो पूछनेमें संकोच न करें। इस बातका विश्वास रखें कि मेरे लिए आप जो पहले थे, आज भी वही हैं। चम्पारनके सच्चे सहयोगियोंकी स्मृतिको तो मैं एक निधिके समान संजोये हुए हूँ। इससे अधिक सच्चे लोगोंके साथ न तो मैंने पहले कभी काम किया और न आगे आशा है। यदि इस प्रकारके लोग सारे भारतमें मिल जायें तो स्वराज्य आनेमें विलम्ब न हो।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४८) की फोटो-नकलसे।

१४२. तार : 'नवजीवन' को

मद्रास
६ मार्च, १९२५

'नवजीवन'
अहमदाबाद

डाकसे सोलह कालम सामग्री रवाना। एन्ड्रयूजका लेख अवश्य दें। मेरे लेखोंमें से एकाध निकाला जा सकता है।

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. सन् १९१७के चम्पारन आन्दोलनमें गांधीजीके सहयोगी कार्यकर्ता।

१४३. तार : अलवाई यूनियन कालेजके प्राध्यापकको

मद्रास
६ मार्च, १९२५

प्राध्यापक
यूनियन कालेज
अलवाई

सफरमें रुकनेकी अपेक्षा वाइकोमके बाद कार्यक्रम निश्चित करना अधिक अच्छा।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१४४. पत्र : छगनलाल गांधीको

यात्रामें
फाल्गुन सुदी ११, [६ मार्च, १९२५][1]

चि० छगनलाल,

यदि अंकलेश्वरका वह आदमी आये तो उसे उसकी अँगूठी दे देना और कह देना कि यदि उसे कुछ कहना हो तो वह मुझे पत्र लिखे। उसे आश्रममें ठहरनेकी अनुमति बिलकुल नहीं है। वह आदमी तो स्पष्ट ही पागल है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुमने बढवानके ५,००० रुपये भेज ही दिये होंगे। उस ४,००० रुपयेके चेकके सम्बन्धमें उचित कारंवाई करना।

गुजराती पत्र (एस० एन० १०२४५) की फोटो-नकलसे।

१. सन् १९२५ में फाल्गुन सुदी एकादशी, ६ मार्च को थी। डाकखानेकी मुहर ७ मार्च, १९२५ की है।

१४५. भेंट : 'स्वदेशमित्रन्' के प्रतिनिधिसे[1]

मद्रास
७ मार्च, १९२५

हमारे प्रतिनिधिने आज दोपहर बाद १–३० बजे महात्माजीसे श्री श्रीनिवास आयंगारके निवास-स्थानपर भेंट की. . .। जब हमारा प्रतिनिधि वहाँ पहुँचा तब कालेजकी कुछ छात्रायें उनके दर्शनार्थ आई हुई थीं।

महात्माजीने छात्राओंसे पूछा :

आप चरखा चलाती हैं?

एक छात्राने उत्तर दिया, हम तो कालेजमें पढ़ती हैं; इसलिए हमें चरखा चलानेके लिए समय नहीं मिलता। महात्माजीने उनसे उनके कालेज और पाठ्यक्रम आदिके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न पूछे। उन्होंने उसके बाद पूछा :

आपको तमिल भाषा अधिक अच्छी लगती है या अंग्रेजी?

एक छात्राने उत्तर दिया, तमिल हमारी मातृभाषा है; इसलिए हमें वह अधिक अच्छी लगती है। अन्तमें छात्राओंने गांधीजीसे जानेकी अनुमति माँगी। गांधीजीने उन्हें सलाह दी कि वे चरखेपर सूत काता करें। छात्राओंने गांधीजीको चरखा चलानेका वचन दिया।

इसके बाद हमारे प्रतिनिधि और गांधीजीमें इस तरह बातचीत हुई :

आपने बम्बईमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नके सम्बन्धमें एक पत्रके संवाददातासे जो-कुछ कहा था उसे पढ़कर मुझे लगा कि वातावरण ही ऐसा है कि मतभेद हो जाते हैं। इसलिए मैं सीधा आपसे ही यह जानना चाहता हूँ कि वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें आपका क्या खयाल है?

इन दोनों पड़ौसी साम्प्रदायिक समुदायोंमें एकता नहीं है और उनकी फूट बढ़ रही है। उनका एक-दूसरेके प्रति सन्देह भी बढ़ गया है।

आपकी रायमें इसका तात्कालिक हल क्या हो सकता है?

उन्हें एक-दूसरेपर सन्देह करना छोड़ देना चाहिए जिससे उनका ऐक्य-सम्बन्ध दृढ़ हो। लोगोंको अपने नेतामें श्रद्धा रखनी चाहिए।

वाइसरायकी इंग्लैंड यात्राके अवसरपर इंग्लैंडके पत्रोंने भारत और भारतके हितों तथा उसके उत्थानके विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया है। इस सम्बन्धमें कुछ लोगोंका सुझाव है कि हमें भी जवाबमें इंग्लैंडमें प्रचार करना चाहिए और इस प्रकार उन लोगोंको वस्तुस्थिति और भारतके लोगोंका दृष्टिकोण बताना चाहिए। मैं इस विषयमें आपका मत जानना चाहता हूँ।

१. तमिल दैनिक स्वदेशमित्रन्‌में प्रकाशित मूल विवरण तमिलमें है, लेकिन यहाँ अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

हमारे लिए ब्रिटेनके पत्रोंके माध्यमसे प्रचार करना असम्भव है, ब्रिटेनके पत्र साम्राज्यीय उद्देश्योंको पुष्ट करनेके लिए कृत-संकल्प हैं। हम उन्हें भारतकी वास्तविक स्थिति बतानेके लिए कितने ही तथ्य क्यों न दें, वे उन्हें प्रकाशित ही न करेंगे। एक बार एक व्यक्तिने ब्रिटेनके एक पत्रमें विज्ञापनके रूपमें प्रकाशनार्थ तथ्यात्मक सामग्री छपाईके खर्चके साथ भेजी थी; किन्तु पत्रने उसे यह कहकर लौटा दिया कि वह उसे प्रकाशित नहीं कर सकता।

क्या हम इंग्लैंडकी आम जनतामें अपने विचारोंका प्रचार नहीं कर सकते?

अंग्रेज ऐसे नहीं हैं कि वे हमारे वक्ताओंके व्यक्त किये हुए विचारोंपर विश्वास कर लें। उनका स्वभाव ऐसा है कि वे किसी देशकी बुरी स्थितिको केवल दो लक्षणोंके उपस्थित होनेपर ही अनुभव कर सकते हैं — या तो वहाँ विद्रोह कर दिया जाये या उस देशकी सरकारसे असहयोगका जन-आन्दोलन आरम्भ कर दिया जाये। एक बार बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इंग्लैंड गये थे। वहाँ उन्होंने बड़ी योग्यतासे भारतकी दुर्दशाका चित्र प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि इसपर एक अंग्रेज सज्जनने उनसे पूछा, "यदि आप जो-कुछ कहते हैं वह सत्य है तो आपके देशवासी विद्रोह क्यों नहीं कर देते?" यह मनोदशा वहाँ अभीतक कायम है।

कहा जाता है कि सुधार-जाँच समितिके बहुमतकी रिपोर्ट प्रतिगामी है। क्या समितिके निष्कर्षोंकी सरकार द्वारा स्वीकृतिके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन करनेकी आवश्यकता नहीं है?

जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं जनसाधारणके विचारोंको समझनेका पूरा-पूरा प्रयत्न करता हूँ। मैं नहीं समझता कि इस समय मुडीमैन-समितिके[1] प्रतिगामी निष्कर्षोंसे, या सरकारकी दमन कार्रवाइयोंसे या उसके आतंककारी शासकोंसे — इनमें से किसी भी तत्त्वसे — हमारे देशवासियोंकी भावनाएं जागृत हो सकती हैं। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, मुझे तो देशमें सर्वत्र ही लोगोंमें निराशाका भाव व्याप्त दिखाई देता है।

तब आप लोगोंकी इस निराशाको दूर करने और उनमें उत्साहका संचार करनेके लिए क्या सुझाव देते हैं?

लोगोंमें उचित भावना उत्पन्न करनेके लिए चरखा चलाने और सूत कातनेसे अधिक अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं है। जनसाधारणकी — गरीबोंकी — पहली माँग अन्न है और उन्हें अन्न — केवल चरखा ही दे सकता है। वह उनके लिए हितका एक जबरदस्त साधन है।

१. सर अलेक्जेंडर मुडीमैनकी अध्यक्षतामें, भारत शासन कानूनपर अधिक अच्छा अमल कैसे किया जा सकता है, इस सम्बन्धमें जाँच करने और रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त की गई सरकारी-समिति। इसकी रिपोर्ट मार्च १९२५ में प्रकाशित हुई थी। इसका बहुमत — जिसमें मुडीमैन और तीन अन्य सदस्य शामिल थे — इस पक्षमें था कि निश्चित विचार-मर्यादाके अन्तर्गत वे कानूनके उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए ऐसे उपायोंकी सिफारिश नहीं कर सकते किन्तु उन्होंने कानूनके सफलतापूर्ण कार्यान्वयनकी प्रशंसा की थी। इसके विपरीत अल्पमत समितिने यह मत व्यक्त किया था कि यह द्वैध शासन प्रणालीपर आधारित संविधान असफल रहा है और इससे भविष्यमें अधिक अच्छे परिणाम नहीं निकल सकते। देखिए इंडियन १९२५-२६।

आपने जनरल स्मट्सके अभी हालके भाषण पढ़े होंगे। क्या दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके लिए उनसे और उनके दलके लोगोंसे उनके भाषणोंमें वर्णित अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए सहयोग करना ठीक होगा?

यदि जनरल स्मट्स वास्तवमें अपने [हालके] भाषणोंमें कही हुई सब बातोंको कार्यरूप देना चाहते हैं तो जो उन्होंने अधिकार गिनाये हैं उन्हें प्राप्त करनेके लिए संयुक्त प्रयत्न करना ठीक होगा। वे इस समय विरोधी पक्षमें हैं। [दक्षिण आफ्रिकाके] भारतीय उक्त अधिकारोंको प्राप्त करनेके प्रयासोंमें उनका साथ दे सकते हैं; किन्तु इस सम्बन्धमें सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है, क्योंकि यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सत्ता मिल जानेपर वचन-भंग कर सकते हैं।

गांधीजीने हमारे प्रतिनिधिसे बादमें बातचीत करते हुए कहा: मैं नहीं कह सकता कि मैं वाइकोममें कबतक ठहरूँगा। मैं मद्रास आनेसे पूर्व सब सम्बन्धित व्यक्तियोंको सूचना दे दूँगा।

[अंग्रेजीसे]

स्वदेशमित्रन्, ७-३-१९२५

१४६. भेंट : 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे

मद्रास
७ मार्च, १९२५

महात्मा गांधी वाइकोम जाते हुए मद्रास पहुँचे।

फ्री प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिने लॉर्ड रीडिंगके इंग्लैंड जानेके सम्बन्धमें महात्मासे भेंट की।

प्रश्न किया गया: "क्या आप बर्कनहेड[1]-रीडिंग मन्त्रणाके फलस्वरूप ब्रिटेनकी भारतीय नीतिमें किसी परिवर्तनकी आशा करते हैं?"

एक साधारण व्यक्तिके लिए जो चरखेमें विश्वास करता है, यह बहुत ही बड़ा प्रश्न है?

मान लीजिए कि सरकार निकट भविष्यमें दमनकी नीति अपनाती है तो आपका देशके लिए क्या सन्देश होगा?

मैं कहूँगा, "खद्दर, खद्दर, खद्दर।" यह एक चीज है जिसपर मैं जोर देता हूँ, इसके अलावा आप अस्पृश्यता-निवारणको भी याद रखें।

क्या आप विश्वास करते हैं कि दमनका उत्तर देनेके लिए खद्दर काफी है?

हाँ, ऐसा ही है। वह एक प्रभावशील उत्तर है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-३-१९२५

१. लॉर्ड बर्कनहेड (१८७२-१९३०); अंग्रेज राजनीतिज्ञ, भारतमन्त्री १९२४-२८।

१४७. भेंट : 'स्वराज्य' के प्रतिनिधिसे

मद्रास
७ मार्च, १९२५

'स्वराज्य' के प्रतिनिधि द्वारा यह प्रश्न करनेपर कि क्या स्वराज्यवादियोंके पद स्वीकार करनेसे कांग्रेस और स्वराज्यवादियोंके आपसी सम्बन्धपर प्रभाव पड़ेगा, महात्माजीने निश्चयात्मक स्वरमें उत्तर दिया, "नहीं, कांग्रेसने स्वराज्यवादियोंको परिषदोंमें उनकी गति-विधियोंके लिए पूर्णाधिकार दे दिया है।"

निर्वाचित हिन्दू सदस्योंके विरोध करनेके बावजूद वाइसराय द्वारा हिन्दू धर्मस्व अधिनियमको स्वीकृति देनेकी ओर ध्यान खींचनेपर महात्माजीने कहा कि मैंने अधिनियमका या उसके अभिप्रायोंका अध्ययन नहीं किया है। यदि मेरे लिए नितान्त आवश्यक हो जायेगा तो मैं अपना ध्यान उस ओर लगाऊँगा और समय आनेपर उसके बारेमें अपने विचार प्रकट करूँगा।

यह सवाल करनेपर कि क्या तमिलनाड-कांग्रेसके अध्यक्ष द्वारा अधिनियमका खुलेआम समर्थन करना कांग्रेसकी नीतिके साथ मेल खाता है, महात्माजीने उत्तर दिया कि मैं ऐसे किसी कांग्रेसी द्वारा अधिनियमका समर्थन करनेमें कोई आपत्ति नहीं देखता जिसने परिषदोंमें प्रवेशके सिद्धान्तको भी स्वीकार किया हो।

एक अन्य प्रश्नका उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा कि यदि हो सका तो वाइकोम जानेके सुअवसरका लाभ उठाकर मैं राज्य-संरक्षिका महारानीसे अवश्य मिलूँगा।

उन्होंने दुःखके साथ यह स्वीकार किया कि उत्तरमें, जहाँ वे अभी हाल गये हुए थे, हिन्दू-मुस्लिम एकताके आसार बहुत उज्ज्वल नहीं हैं। उन्होंने कहा कि मैंने बम्बई जाते हुए इस विषयपर डा० किचलू और अन्य मुस्लिम नेताओंको लिखा था और मैं उनसे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे यह देखकर सन्तोष होता है कि इस प्रान्तमें दोनों जातियोंके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं।

दक्षिणको मैं केवल एक सन्देश दे सकता हूँ और वह यह कि आप लोग चरखा कातें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-३-१९२५

१४८. भाषण : मद्रासमें[1]

७ मार्च, १९२५

श्री अध्यक्ष, निगमके सदस्य तथा भाइयो,

मुझे आशा है कि खड़े होकर भाषण न दे सकनेके लिए आप हमेशाकी तरह मुझे क्षमा करेंगे। मैं इसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे एक सुन्दर अभिनन्दन-पत्र भेंट किया है। अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करना मेरे लिए सदैव एक परेशानीकी चीज रही है। मैंने बहुतसे अवसरोंपर अपने आपको भंगी कहा है। मुझे नगरपालिकाके कार्योंसे प्यार है। मगर किस्मतमें कुछ और ही लिखा था। एक समय था जब मैं नगरपालिकाका काम अपनानेके विषयमें गम्भीरतासे सोचता था। यह एक ऐसा जीवन है जिसमें घोर परिश्रमकी आवश्यकता होती है। मैं स्वयं वैसा व्यक्ति हूँ। मैं अपनको भंगी इसलिए कहता हूँ कि मैं एकाधिक दृष्टियोंसे सफाईमें विश्वास करता हूँ, अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर स्वच्छतामें।

मैं मद्रासके लिए अजनबी नहीं हूँ। मुझे प्रायः कई अवसरोंपर काफी लम्बे अर्से तक मद्रासमें रहनेका समय मिला है जिससे मैं आपके नगरकी सफाईको गौरसे देख-समझ सका हूँ; जब भी प्रातःकाल मैं आपकी गलियोंसे गुजरा हूँ, उन्हें गन्दा देखकर मुझे दुःख हुआ है। मुझे जब कभी श्री नटेसनके[2] साथ रहनेका अवसर मिला, मैंने उनसे मद्रासकी सड़कोंकी दुरव्यवस्थाके बारेमें बातें कीं। मैं यह नहीं कहता कि भारतके दूसरे नगरोंकी अपेक्षा मद्रासकी सड़कें खास तौरपर गन्दी हैं, किन्तु मुझे उनके बारेमें ऐसा इसलिए कहना पड़ता है कि उन दिनों बच्चे ही नहीं, सयाने भी सड़कोंको गन्दा किया करते थे। मेरी समझमें देशके किसी दूसरे नगरमें यह बात इतनी ज्यादा देखनेमें नहीं आती थी। इस प्रकारके दृश्य, दुःखके साथ कहता हूँ कि मैंने मद्रास आनेसे पहले कहीं नहीं देखे थे और कई बार मुझे ऐसा लगा कि मैं स्वयं झाड़ू क्यों न उठा लूँ और जिस गली-कूचेसे होकर मुझे जाना होता था उसको पूरी तौरपर क्यों न साफ कर डालूँ। मैं अवकाश मिलनेपर सफाईका काम अब भी किया करता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जब भी मुझे थोड़ा-सा सफाईका काम करनेको मिल जाता है, मुझे अच्छा लगता है। इससे आप नगरपालिकाओं द्वारा दिये जानेवाले अभिनन्दन-पत्रोंको स्वीकार करनेकी मेरी कमजोरीको समझ ले सकते हैं। मैं जब-जब अभिनन्दन-पत्रोंका इस तरह दिया जाना स्वीकार करता हूँ, तब-तब यही खयाल मनमें आता है कि इससे मुझे देशके नागरिकोंके मनमें यह बात बखूबी अंकित करनेका मौका मिलेगा कि सफाईका काम स्वयं करना कितनी अच्छी चीज है। मेरा खयाल है कि बाहरी स्वच्छताके बारेमें हमें पश्चिमसे बहुत-कुछ

१. नगर-निगम द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

२. जी० ए० नटेसन।

सीखना होगा। मुझे अकसर पाश्चात्य सभ्यता और उसके तौर-तरीकोंके विरुद्ध कुछ कहना पड़ता है और इसलिए मुझे जब भी अवसर मिलता है, मैं यह बतानेमें नहीं चूकता कि हमें पश्चिमसे किन-किन उपयोगी बातोंकी शिक्षा ग्रहण करना उचित है। मेरा विचार है कि भारतमें हमारे जो बड़े-बड़े नगर हैं उनकी सफाईके तरीकोंके सम्बन्धमें शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हम पश्चिमके पास जायें, इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता। मैं चाहता हूँ कि मैं यह बात आपके हृदयमें बिठा सकूँ कि झाड़ देना एक शानदार पेशा है, यद्यपि हमें उससे वह यश अथवा अपयश नहीं मिलता जो जीवन-के दूसरे विभागोंमें काम करनेसे मिलता है। जब मैं नगरपालिकाकी सेवाके विषयमें कहता हूँ तब आप मेरी बातका गलत अर्थ न लगायें। जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें सेवा करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि नगरपालिकाकी सेवा करना। किन्तु मैंने देखा है कि हमारे सार्वजनिक जीवनमें सफाईके कामकी कीमत न समझनेकी प्रवृत्ति पाई जाती है।

अपने अभिनन्दन-पत्रमें आपने मेरी उन छोटी-छोटी सेवाओंकी प्रशंसामें जो, मैं जनसेवीके रूपमें कर सका हूँ, बहुत-सी बातें कही हैं। मैं जनसेवी हूँ और जनसेवी ही रहना चाहता हूँ। किन्तु मैं देखता हूँ कि आपने अपने अभिनन्दन-पत्रमें एक बातका उल्लेख नहीं किया है; और वह है खद्दरके सम्बन्धमें। मैं आपको यह बताना चाहूँगा कि मानवताके लिए मैंने जो कुछ भी किया है उनमें मैं खद्दरको लगभग सबसे आगे रखता हूँ। भारतकी विभिन्न जातियों तथा विभिन्न धर्मोंका अनुसरण करनेवाले समाजों में एकता स्थापित करना राष्ट्रीय जीवनके उदयके लिए अनिवार्य है। अस्पृश्यताके अभि-शापको दूर करना भी उतना ही आवश्यक है जितना एक व्यक्तिके क्षयरोगको दूर करना। अस्पृश्यताके कारण हिन्दू धर्मकी जीवनी शक्तिका ह्रास होता चला जा रहा है। जनताको गिरानेवाली गरीबीको दूर करना खद्दरपर निर्भर है। यही कारण है कि जब प्रत्येक भारतीय, प्रत्येक अंग्रेज तथा प्रत्येक विदेशी जो भारत आता है और मुझसे पूछता है कि आप एक विदेशीसे क्या कराना चाहते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि आप मेरे देशकी परिस्थितियोंका अध्ययन करें और यह मालूम करें कि क्या इस मामूली-से चरखेकी अपेक्षा कोई और अच्छी चीज आपको मिली है। यदि आपको भारतकी परिस्थितियों-का ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेके बाद यह लगे कि उससे अच्छी कोई चीज नहीं मिली तो आप चरखेके पक्षमें दो शब्द कहें। मैं चाहता हूँ कि मैं चरखेको बहुत-सी अन्य चीजों-से — राजनीतिसे अलग कर लूँ। किन्तु आप जानते है, मैंने कई बार कहा है कि जीवनके ये सारे विभाग परस्पर ग्रथित और अन्तर्मिश्रित हैं; और इसलिए उन्हें जीवनके अन्य विभागोंसे अलग करना असम्भव है। किन्तु मैं यह निश्चित रूपसे जानता हूँ कि चरखे और खद्दर-उत्पादनका राजनीतिक मूल्य तो है ही। इसके अतिरिक्त यदि हमें उस आर्थिक कष्टको जिसके नीचे यह देश छटपटा रहा है, दूर करना है; यदि हमें भारतके करोड़ों मूक लोगोंकी सेवा करनी है तो हम खद्दरके बिना, चरखेके बिना कुछ नहीं कर सकते। इसलिए मैं निवेदन करता हूँ कि नगरपालिकाके सदस्य उसकी ओर ध्यान दें। मैं आपसे कहता हूँ कि आप उसे अपने स्कूलोंमें स्थान दें। आप अंग्रेज, भारतीय-

मुसलमान, हिन्दू — कोई भी हों और चाहे आप देशके इस राजनीतिक दलके हों या उस दलके; मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपने घरोंमें चरखे और खद्दरको स्थान दें।

चरखे और खद्दरका कुछ अनुभव होनेके कारण मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है वह सत्य है; सत्यके अलावा और कुछ नहीं। इस अभिनन्दन-पत्रको देनेके लिए मैं आपको फिरसे बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। मै चाहता हूँ कि मद्रास नगर-निगमको अपने कार्यमें सफलता मिले और नगरपालिकाके जीवनसे सम्बन्धित मामलोंमें यह सबसे अग्रसर बने।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-३-१९२५

१४९. भाषण: मद्रासकी सार्वजनिक सभामें

७ मार्च, १९२५

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

आज तीसरे पहर जो मुझे अभिनन्दन-पत्र दिये गये है उनके लिए मैं आप सबको तथा विभिन्न संस्थाओंको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। खेदकी बात है कि इतने वर्षोंके बाद भी आप लोग हिन्दुस्तानी या हिन्दी नहीं समझते। और मेरे लिए यह लज्जाकी बात है कि मैं आपसे तमिल या तेलगूमें बात करनेमें असमर्थ हूँ। मै सोचता था कि यदि मै पूरे छः वर्षोंतक यरवदा जेलमें रह सका तो मैं दक्षिणके इस प्रान्तमें श्रोताओंके बीच तमिलमें भाषण दे सकूंगा। यह मेरी और आपकी बदकिस्मती है कि ऐसा नहीं हुआ। किन्तु मैं आशा जरूर करता हूँ कि ऐसा समय आयेगा और वह भी जल्दी ही, जबकि आप उत्तर और पश्चिम प्रदेशोंसे आनेवाले लोगोंसे हिन्दुस्तानीमें भाषण देनेका आग्रह करेंगे। आप जानते हैं, और यदि नहीं जानते तो आपको अब जान लेना चाहिए कि भारतके अन्य भागोंने ७५,००० रुपये मद्रास प्रान्तके लिए दिये है ताकि उसे हिन्दुस्तानी सीखनेके लिए प्रोत्साहित किया जाये। इस प्रान्तमें अध्यापक नियुक्त किये गये है जो हिन्दी या हिन्दुस्तानीकी शिक्षा देते है। आपको उसे सीखनेके लिए परिश्रम तो करना ही चाहिए। यदि आपने अभीतक इस अवसरसे लाभ नही उठाया है तो अब सही।

मैं तो अपनी यात्राके दौरान यहाँ उतर-भर गया हूँ। मै मद्रास नही आया हूँ बल्कि वाइकोमके सत्याग्रहियोसे मिलने निकला हूँ। यदि वहाँ काम खत्म करनेके बाद समय मिला तो निश्चय ही मै मद्रासमें कुछ दिन बिताने और आप लोगोंके साथ पुराने सम्बन्ध ताजा करनेका इरादा करता हूँ। (हर्षध्वनि)। इस बीच आपसे निवेदन है कि अध्यक्ष महोदयने जो बात आपसे कही है, उसे आप पूरा करें, अर्थात् मै जिस उद्देश्यसे वाइकोम जा रहा हूँ उसकी पूर्तिके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करे। मैं वहाँके निष्ठावान सत्याग्रहियोंके दलके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने और उन्हें समर्थन

देनेके लिए वाइकोम जा रहा हूँ। मुझे आशा है कि वे मुझे कट्टरपन्थी दलके पास जाने और उनका दृष्टिकोण समझनेकी अनुमति देंगे। सत्याग्रह हिंसात्मक संघर्ष नहीं है; बल्कि वह हृदय परिवर्तन करने तथा सच्ची धारणा उत्पन्न करनेका प्रयास है; इसलिए कट्टरपन्थी दलका दृष्टिकोण समझने तथा अपना दृष्टिकोण उनके सामने रखनेका मैं कोई भी अवसर हाथसे नहीं जाने दूँगा। यदि महाविभव महारानी अनुग्रहपूर्वक मुझे मिलनेकी अनुमति देंगी तो मैं आशा करता हूँ कि मैं उनसे भी मिलूँगा। साथ ही मैं दीवान और अन्य सम्बन्धित अधिकारियोंसे भी मिलूँगा।

मेरे लिए अस्पृश्यताका प्रश्न एक गम्भीर धार्मिक प्रश्न है। जो लोग अछूत नहीं हैं, उनके लिए यह प्रायश्चित्त और शुद्धीकरणका मामला है। यह हिन्दू धर्मके मूल तत्त्वसे सम्बन्धित सुधार है। (हर्षध्वनि)। इसलिए यदि आप गहरे विश्वासके साथ मेरे उद्देश्यकी सफलताके लिए प्रार्थना कर सकें तो उससे मुझे बड़ी मदद मिलेगी।

मैं जानता हूँ, कि मेरे यहाँ आ जानेपर आप मुझसे यह आशा करते होंगे कि मैं भारतके सामने उपस्थित वर्तमान समस्याओंके बारेमें कुछ कहूँगा। किन्तु आप मुझसे यह आशा न करें कि मैं इस प्रश्नके उस पहलूपर जिसे राजनीतिक पहलू कह सकते हैं, कुछ कहूँगा। उसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। कांग्रेस संगठनका तो यह एक बड़ा जरूरी अंग है; किन्तु मैं अपनेको उससे जान-बूझकर दूर रख रहा हूँ।

इसके प्रति मेरी स्वाभाविक रुचि नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी कदापि नहीं है कि दूसरे लोग भी इस कार्यक्रमके प्रति निष्ठा न रखें या उसे अनावश्यक समझें। मेरे लिए मेरा जीवन-कार्य निर्दिष्ट है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि यदि हम सुधार अन्दरसे शुरू करें तो बाहर सुधार उसी तरह हो जायेगा, जैसे रातके बाद दिन होता है। मुझे इस बातका भी उतना ही विश्वास है कि जबतक सुधार अन्दरसे नहीं होता; तबतक बाहरसे किया गया कोई भी सुधार सफल नहीं होगा। विधान परिषद् या विधान सभामें किया गया तथा लन्दनमें आपकी ओरसे किये जानेवाले सभी प्रयत्न पूरी तरह विफल हो जायेंगे। जो लोग इस गतिविधिमें भाग ले रहे हैं, यह बात उनकी आलोचना करनेके लिए नहीं कही गई है, बल्कि इस तथ्यपर जोर देनेके लिए कही गई है कि आपको और मुझे, जनताके हर साधारण आदमीको, अपनी चिन्ता स्वयं करनी होगी। यह इस तथ्यपर जोर देनेके लिए कही गई है कि यदि आप और मैं उस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए सहायता पहुँचाना चाहते हैं तो हमें यह कार्य अपनेसे शुरू करना होगा। यदि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेका सिर फोड़नेके लिए तैयार रहते हैं तो आपकी परिषदें क्या कर सकती हैं? यदि हम हिन्दू अपने ही भाइयोंके पंचमांशका बहिष्कार किये हुए हैं तो हमारे पार्षद परिषदोंमें क्या कर सकते हैं? यदि हम चरखा न चलायें और खद्दर न पहनें और इस प्रकार अपने दलित और गरीब देशभाइयोंके साथ एकरूप नहीं हो जाते तो फिर वे बेचारे कर ही क्या सकते हैं? मुझसे समय-असमय, अनेक बार कहा गया है कि जबतक हमारे इस विशाल देशमें लोगोंको आवेश नहीं दिलाया जाता तबतक यहाँ कुछ भी नहीं हो सकता। किन्तु कृपया यह याद रखें कि स्वराज्य आवेश

या नशेसे मिलनेवाली चीज नहीं है। स्वराज्य सुव्यवस्थित आचरणसे स्वयमेव प्रतिफलित होगा और होगा हमारे पारस्परिक सहयोग, कठोर अनुशासन और आज्ञापालन, सतत उत्साह और खुशीसे किये हुए सदाशयतापूर्ण सोचे-समझे बलिदानसे; वह सारे राष्ट्रके मिले-जुले उद्योग और श्रमसे तथा जनताकी विवेकपूर्ण जागृतिसे प्राप्त होगा। भारतके दस-बीस नगरोंके सम्मिलित प्रयत्नोंसे वह नहीं मिल सकता। हम लोगोंको, जिनमें कुछ हदतक राजनीतिक चेतना आ गई है और जो अपने देशको अपना देश होनेके नाते प्रेम करने लगे हैं, जनताके बीच फैल जाना चाहिए और गाँवोंमें बस जाना चाहिए।

मैंने हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें बम्बईमें जो-कुछ कहा है सो आपको विदित है। आप लोगोंमें.से जो लोग कातना जानते हैं, वे उस उपमाको समझ जायेंगे, जिसे मैं देने जा रहा हूँ। आपमें जो लोग अच्छा कातना नहीं जानते उन्हें अनुभव हुआ होगा कि जब वे तकुएसे सूत निकालते हैं तब सूत कभी-कभी उलझ जाता है और फिर जितना ही आप उसे सुलझानेकी कोशिश करते हैं, वह उतना ही उलझता जाता है। किन्तु एक कुशल कातनेवाला उस उलझे हुए सूतको खीझ जानेपर एक तरफ रख देता है और खीझ मिट जानेपर उसे सुलझानेकी कोशिश करता है। ऐसा ही हिन्दू-मुस्लिम समस्याके साथ समझिए। यह समस्या इस समय बुरी तरह उलझ गई है। मैं सोचता हूँ कि मैं कातनेमें माहिर हूँ; उसी प्रकार मैंने यह भी सोचा था कि मैं ऐसी उलझनोंको सुलझानेमें भी माहिर हूँ। फिलहाल मैंने इस समस्याको ताकपर रख दिया है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मुझे इसके सुलझनेकी कोई आशा नहीं रही है। जबतक मुझे इसका कोई हल नहीं मिलता तबतक मेरा मस्तिष्क इस समस्यापर विचार करता ही रहेगा। किन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मैं कोई ऐसा व्यवहार्य हल, जिसकी आप आशा करते हैं, फिलहाल प्रस्तुत नहीं कर सकता। किन्तु मैं आपके सामने एक छोटा-सा विचार रखना चाहूँगा। आपमें से जिन लोगोंको हिन्दू या मुसलमानोंसे, व्यवहार करना होता है, उन्हें एक-दूसरेके प्रति अपने व्यवहारमें खरा, ईमानदार और निडर होना चाहिए। यद्यपि अभी आशा की कोई किरण दिखाई नहीं देती फिर भी आप अपने विश्वासको न छोड़ें, आपसमें प्रेमका व्यवहार करें और इस बातको याद रखें कि चाहे हिन्दूका शरीर हो, चाहे मुसलमानका, उसमें एक ही दिव्यात्मा विराजमान है और यह सोचकर एक-दूसरेके प्रति उदार रहनेकी कोशिश करें।

यह आवश्यक नहीं है कि मैं आपसे अस्पृश्यताके बारेमें कुछ कहूँ क्योंकि उसकी स्थितिका आपको पूरा-पूरा ज्ञान है। किन्तु मेरी समझमें, और शायद आप भी इस बातसे सहमत होंगे कि हमने विगत चार वर्षोंके दौरान इस दिशामें जबरदस्त प्रगति की है। मैं जानता हूँ कि अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए यह काफी नहीं है; किन्तु हममें इतनी आशा जागृत करनेके लिए काफी है कि हमारे जीवनकालमें ही हिन्दू धर्मसे यह कलंक मिट जायेगा।

अन्तमें चरखा और खद्दरका उल्लेख करना शेष रह गया है जो कि कम महत्वकी बातें नहीं हैं। मैं जानता हूँ कि उस दिशामें भी हमने थोड़ा-बहुत काम किया

है। फिर भी खादीकी जो हालत आज है उसके लिए हमारा आलस्य और अज्ञान ही उत्तरदायी है। हिन्दू-मुस्लिम समस्याकी तरह कटुता और द्वेषभावनाका यहाँ कोई सवाल नहीं है और न अस्पृश्यताकी तरह धार्मिक असहिष्णुताका प्रश्न है। मुझे अभी तक एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला जो यह कहे कि चरखा चलाना या उससे उत्पन्न खद्दरको पहनना उसकी अन्तरात्माके विरुद्ध है। यह तो अर्थशास्त्रका ककहरा-मात्र है कि यदि भारतके उन लाखों लोगोंकी झोपड़ियोंमें जो वर्ष-भरमें कमसे-कम चार महीने खाली बैठे रहते हैं, चरखा पहुँचा दिया जाये तो वह उन चार महीनोंका सदुपयोग कर सकेंगे। वे उससे जो दो पैसे रोजाना कमायेंगे उनका आपके और मेरे लिए चाहे कुछ मूल्य न हो; किन्तु उनके लिए तो वे एक नियामत ही ठहरेंगे। यह समझ लेना तो बहुत ही आसान है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी चरखा चलायें तो उनकी झोपड़ियोंमें आशाका सन्देश पहुँचानेके पहले हमें इस मृतप्राय कलाको सीख लेना होगा। आप यह मानेंगे कि यह बात तो एक बच्चेकी समझमें भी आ सकती है कि जब सारी जनता चरखा चलायेगी और खद्दर तैयार करेगी तो छोटे-बड़े हरएकको खद्दर ही पहनना और काममें लाना चाहिए। मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि यदि हम इतने नाजुक बन गये हैं कि मोटा खद्दर नहीं पहन सकते तो मैं कहे रखता हूँ और आप इसकी गाँठ बाँध लीजिए कि स्वराज्य इस पीढ़ीके भाग्यमें नहीं है। स्वराज्य एक मजबूत पेड़ है जो धीरे-धीरे जड़ पकड़ता और पल्लवित होता है, और इसीलिए उसे साहसी स्त्री-पुरुषोंके धैर्यके साथ किये गये परिश्रम-की आवश्यकता होती है। इसलिए आपको वही करना होगा जो पुराने समयमें रानी एलिजाबेथने अपने देशके लिए किया था। उसने हॉलैंडसे नरम कपड़ेके आयातपर पाबन्दी लगा दी थी और वह स्वयं अपने प्यारे देश, इंग्लैंडका बुना हुआ मोटा कपड़ा पहनने लगी थी। और उसने यही सारे राष्ट्रके लिए अनिवार्य कर दिया था। आपको खद्दर और चरखेके प्रश्नकी गुत्थियोंमें उलझनेकी जरूरत नहीं। आपको यह सोचनेकी भी जरूरत नहीं कि यह स्वयं स्वराज्य लानेमें समर्थ है या नहीं। आप तो इसे अपने और मेरे लिए एक साधारण और सरल कसौटी ही रहने दें। क्या हम आधा घंटा राष्ट्रको देने और यथाशक्ति कताई करके उसका ऋण चुकाने तथा अपनको देशके गरीबसे-गरीब लोगोंके साथ एकरूप करनेके लिए तैयार हैं, या नहीं? हम ऐसा कपड़ा पहननेके लिए तैयार है या नहीं जिसे हमारी बहनों और भाइयोंने काता और बुना हो? इनमें से क्या ठीक है: हमारा प्रतिगज कैलिकोके लिए १ या २ आने मैंचेस्टर या अहमदाबादको भेजना अथवा एक या दो आने मद्रासके पासकी ही इन झोपड़ियोंमें भेजना — बोलिए, आपको क्या पसन्द है? अपने पास-पड़ोसके उन लोगोंके बारेमें जिन्हें खानेके लाले पड़े हैं, सहानुभूतिके साथ सोचने लायक देशप्रेम आपमें है या नहीं?

वैसे तो मैं बड़ा धैर्य रखनेवाला आदमी हूँ किन्तु फिर भी इस बातके अत्यन्त बोधगम्य होनेके बावजूद कि एक गज खादी खरीदनेका अर्थ किसी गरीबसे-गरीब आदमीकी जेबमें कमसे-कम दो आने पहुँचाना है, चतुर व्यक्ति मेरे पास आकर तरह तरहकी बारीकियाँ निकालते हैं; तब मेरा धीरज छूट जाता है। मेरे पास अपने देशको

देनेके लिए यही एक चीज़ है; और मेरे पास इससे अच्छा सन्देश है ही नहीं। यदि इस सन्देशका एक प्रचारक मैं ही बच रहूँ और कोई सुननेवाला भी न हो तो भी मैं अपनी अन्तिम साँसतक इसी सन्देशकी रट लगाता रहूँगा।

आप सविनय अवज्ञाके इच्छुक हैं। मैं भी इसे चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि सशस्त्र विद्रोहका एक यही विकल्प है। यह हमारी शक्तिकी वास्तविक कसौटी है। किन्तु अवज्ञाके सविनय होनेके लिए अनुशासन, विचार, सावधानी तथा सतर्कताकी आवश्यकता है। सविनय अवज्ञा और आवेश तथा उत्तेजनामें बड़ा बैर है। फिर मैं यह भी जानता हूँ कि चरखे और खद्दरका उचित एवं सावधानीके साथ संगठन किये बिना सविनय अवज्ञा सम्भव ही नहीं है। जैसा कि लालाजीने कहा है और ठीक कहा है कि हम स्वराज्य तो प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु उस हालतमें उसे कायम रखनेकी शक्ति हममें नहीं होगी। यह बात उन्होंने किसी और अवसरपर, किसी और विषयके सम्बन्धमें कही थी, किन्तु उनका वह कथन यदि अधिक नहीं तो उतने ही जोरसे सविनय अवज्ञापर भी लागू होता है।

आपने मेरी बात अत्यन्त धैर्य और शिष्टताके साथ सुनी इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे आशा करनी चाहिए कि यदि मेरी बात आपको ठीक जँची हो तो आप उसे कार्यरूपमें परिणत करनेकी कृपा भी करेंगे। ईश्वर आपको इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आवश्यक बल और बुद्धि दे। (जोरकी हर्षध्वनि)।

अन्तमें गांधीजीने प्रार्थना की कि सब लोग अपने स्थानोंपर बैठे रहें और मुझे बिना किसी बाधाके इस सभासे जाने दें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-३-१९२५

१५०. काठियावाड़के संस्मरण – २

दूसरे राज्य

मुझे पता चला है कि जिस प्रकार राजकोटके ठाकुर साहब लोकप्रिय हैं उसी प्रकार पोरबन्दर, वाँकानेर और वढवानके नरेश भी हैं। ऐसा लगता है कि ये चारों अपनी-अपनी प्रजाका हित चाहते हैं। मेरे दिलपर यह छाप पड़ी कि ये सब राजा प्रजाको सन्तुष्ट करनेकी कोशिश कर रहे हैं। पर मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। हर राज्यमें न्यूनाधिक परिमाणमें राज्यका खर्च आमदनीसे बहुत बढ़ा हुआ दिखाई दिया। मेरा विश्वास है कि जबतक राजा अपने खर्चपर अंकुश नहीं रखेंगे तबतक वे अपनेको प्रजाका रक्षक सिद्ध नहीं कर सकेंगे। राजा प्रजाकी मेहनत-कमाईमें से हिस्सा लेता है और उसके बदलेमें वह उसकी सेवा करता है। जिसकी सेवाके बिना प्रजाका काम नहीं चल सकता, वही सरदार बनता है; पर वह जबतक प्रजाके प्रति वफादार रहता है तभीतक वह उसका सच्चा सरदार रहता है। वफादार राजामें दो गुण होने चाहिए — एक तो वह प्रजाके सुख, उसकी स्वतन्त्रता और उसके

नीति-सदाचारकी रक्षा करे और दूसरा प्रजासे मिले धनका सदुपयोग करे। यदि राजा अपने लिए अनुचित खर्च करता है तो वह धनका सदुपयोग नहीं करता। भले ही वह प्रजाकी अपेक्षा ज्यादा खर्च करे, उससे ज्यादा आमोद-प्रमोद करना चाहे तो करे, किन्तु उसकी एक हद अवश्य होनी चाहिए। मैं तटस्थ रहकर यह भली-भाँति देख रहा हूँ कि जन-जागृतिके इस युगमें मर्यादाकी बड़ी आवश्यकता है। ऐसी कोई भी संस्था जो अपनी लोकोपयोगिता सिद्ध नहीं कर सकती, अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकती। एक सप्ताहमें काठियावाड़के चार राज्योंका जितना निरीक्षण हो सकता है उसके आधारपर कहा जा सकता है कि काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्में मैंने वहाँ प्रचलित राज्यतन्त्रका बचाव करते हुए जो विचार व्यक्त किये थे उनसे मेरे विचारोंकी पुष्टि हुई है। पर उसके साथ ही मैं उस तन्त्रकी कमजोरियाँ भी देख पाया हूँ। राजाओंके एक शुभैषीकी हैसियतसे मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि यदि वे पूर्वोक्त बातोंमें स्वेच्छापूर्वक सुधार कर देंगे तो वे अधिक लोकप्रिय ही नहीं बनेंगे वरन् अपने सिंहासनकी शोभा भी बढ़ायेंगे। वही सच्चा शासक है जो अपनी सत्ताकी मर्यादा खुद ही बाँध लेता है। ईश्वरने अपनी सत्ताको स्वयं नियमित कर लिया है, उसका दुरुपयोग करनेकी शक्ति होते हुए भी वह ऐसा नहीं करता। शरीरको जीवित रखनेका सामर्थ्य रहते हुए जो उसका त्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है। शुद्धतम ब्रह्मचारी स्वेच्छासे अपनी शक्तिका संग्रह करता हुआ ऐसी पराकाष्ठाको पहुँच जाता है कि अन्तको क्लीवकी तरह हो जाता है। यह स्थिति अवर्णनीय है — द्वन्द्वातीत है। वह जड़की तरह होते हुए भी शुद्ध निर्विकार चैतन्य है। इसीसे अंग्रेजीमें कहावत है कि राजा गलती कर ही नहीं सकता। भागवतकार कहते हैं कि तेजस्वीमें दोष नहीं होता। तुलसीदासने कहा है, 'समरथको नहिं दोष गुसाईं'। इस कालमें इन तीनों वचनोंका अनर्थ हो रहा है। अर्थात् यह कि बलवानके दोष करते हुए भी हम यह मानते हैं और दूसरोंसे मनवाते हैं कि वह दोषी नहीं है। सच बात तो उससे उलटी ही है। बलवान वही है जो अपने बलका दुरुपयोग नहीं करता, अपनी इच्छासे वह बलका दुरुपयोग करना त्याग देता है — वह भी इस हदतक कि वह दुरुपयोग करनेके लिए अशक्त बन जाता है। हमारे राजा भी ऐसे क्यों न हों? क्या ऐसा होना उनकी शक्तिसे बाहरकी बात है?

राष्ट्रीय शाला

दो राष्ट्रीय शालाओंका उद्घाटन मेरे सामने हुआ है। एक तो राजकोट की; इसका उद्घाटन श्रीमान् ठाकुर साहबने ही किया — मैं तो केवल उपस्थित था। दूसरी बढवानकी। इसका उद्घाटन मेरे हाथों हुआ। दोनोंपर काले बादल मंडराये। दोनोंके सामने अछूतोंका सवाल आया। दोनोंने इस समस्याको हल कर लिया है। फिर भी इसके सम्बन्धमें वे निर्भय नहीं हुई। निर्भय होनेमें ही शिक्षकोंकी शक्तिका माप मालूम हो जायेगा। 'यदि शिक्षक विवेक, शान्ति, मर्यादा तथा तितिक्षापूर्वक अपना कार्य करते रहे तो अन्त्यजोंको अपनाते हुए भी वे लोगोंके विरोधके पात्र न होंगे और शालाओंमें दूसरे वर्णोंके बालक अवश्य आ जायेंगे। शालाओंकी राष्ट्रीयता अध्या-

पकोंके चरित्र बलपर, उनके देश-प्रेमपर, उनकी त्याग-भावना तथा उनकी दृढ़ता-पर अवलम्बित है। दोनोंकी इमारतोंको मैं मीठी ईर्ष्यासे देखता हूँ। यदि इनमें तपस्वी अध्यापक रहें तो ठीक होगा अन्यथा सम्भव है उनके द्वारा हमारी अधोगति हो। बर्मामें एक समय ऐसा था कि हर गाँवमें बढ़िया इमारतवाली सुन्दर शालाओंमें वहाँके साधु परिश्रमके साथ शिक्षा देते थे। इमारतें तो आज वही हैं, पर जब मैं उनमें गया तो वहाँ मुझे ऊँघते हुए आलसी साधु ही दिखे। शालाएँ तो नाम-मात्रको रह गई हैं। उनके प्राण निकल चुके हैं। जिस तरह अन्त्यजोंको भरती करना राष्ट्रीय शालाका आवश्यक अंग है उसी तरह चरखा भी है। इस चक्रकी नियमित गतिपर भारतवर्षके चक्रकी गति अवलम्बित है। इस चक्रका पूर्ण विकास तो राष्ट्रीय शालाओं-के द्वारा ही हो सकता है। मैं प्रत्येक शालामें उसकी साधनाकी आशा रखता हूँ। शिक्षकगण चरखेके प्रति जिस हदतक आदर पैदा कर सकेंगे उसी हदतक वे देशभक्त माने जायेंगे। आलस्यकी नींदमें सोये इस देशको उद्यमी बनानेका चरखा ही एक साधन है। चरखा एक निष्काम उद्यम है और इसी कारण पूर्णतः फल-दायी है। वह उद्यमका एक उत्कृष्ट स्वरूप है। आरम्भमें वह भले ही नीरस मालूम हो, पर उसकी नीरसतामें ही रस समाया हुआ है। उस रसके लिए रुचि पैदा करनेका काम शिक्षकोंका है। मैं आशा करता हूँ कि दोनों शालाएँ आदर्श बनेंगी।

बढवानके नागरिकोंसे

राजकोट और बढवानके निवासियोंसे मेरा निवेदन है कि वे अपनी-अपनी शालाओंमें दिलचस्पी लें; यह निवेदन मुख्यतया बढवानके नागरिकोंसे है। बढवानमें आचार्य फूलचन्द तथा नगर निवासियोंके बीच कुछ तनाव था। मैंने इस मामलेको समझनेका अवसर खोज निकाला और उन व्यक्तियोंसे भी मिला जिन्हें आचार्य फूल-चन्दके विरुद्ध कुछ शिकायतें थीं। बातचीत करनेपर मुझे ऐसा लगा कि इन शिका-यतोंका कारण भाई फूलचन्दके स्वभावकी उग्रताके सिवा और कुछ न था। नवीन व्यवस्थामें नागरिकोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शाला नगर-निवासियोंकी ही है। इसलिए यह वांछनीय है कि वे उसके सचालनमें सोत्साह भाग ले और यह उनका कर्त्तव्य भी है। एक समय था जब वे ऐसा करते थे और शालाके लिए धन भी देते थे। यह बात सभीकी जुबानपर थी कि अगर भाई शिवलाल जीवित होते तो बढवानका तेज कुछ और ही होता। परन्तु मरना तो प्रत्येक व्यक्तिको है। यदि हम चाहें तो जिनसे हमें स्नेह है उन्हें हम अमर बना सकते हैं। बढवानके अनेक बुद्धिमान नागरिक शिवलाल क्यों नहीं बन सकते? इस बातकी उम्मीद करना कि बढवानके सम्पन्न नागरिक अपने नगरकी शालाका खर्च उठा लेंगे, कोई बड़ी बात नहीं है। इस प्रकारकी संस्थाओंके प्राण उनमें काम करनेवाले अध्यापक हैं। शरीर नागरिकोंको बनाना चाहिए।

उद्योग-शाला

वढवानमें भाई शिवलाल द्वारा स्थापित कताई-बुनाई सम्बन्धी उद्योग-शाला भी उल्लेखनीय है। इस शालाके द्वारा खादी-प्रचार कार्य समुचित रूपसे हुआ है, परन्तु

समीपवर्ती ग्रामोंकी क्षमताको देखते हुए कहा जा सकता है कि काफी प्रचार नहीं हुआ है। हाँ, जहाँ आसपास कुछ काम न हुआ हो वहाँ थोड़ा काम भी बहुत दीखता है, इस न्यायसे यह माना जा सकता है कि बढवानने काफी काम किया है। परन्तु हम थोड़ेसे सन्तोष नहीं कर सकते। सवाल तो यह है कि बढवानने शक्ति-भर योग दिया है या नहीं? इस नगरकी शक्ति बहुत बड़ी है — यह मैंने देख लिया है। यह उद्योग-शाला भाई शिवलालका स्मारक है, चरखा-प्रचार उनके जीवनका मुख्य ध्येय था। मुझे बतलाया गया था कि उन्होंने चरखेके महत्त्वको भली प्रकार जान लिया था। मैं चाहता हूँ कि बढवानमें चरखेसे सम्बन्धित सभी कलाओंका विकास हो।

तीन-स्रोत

इन दिनों काठियावाड़में खादीके तीन स्रोत हैं — बढवान, मढ़डा और अमरेली। कार्यवाहक समितिने और अधिक खादी तैयार करनेकी योजना बनाई है। पर ये तीनों केन्द्र अपने अनुभवोंका आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरेसे स्वस्थ स्पर्द्धा करें यह वांछनीय है। तीनों केन्द्र खादीकी उत्पत्ति बहुत बढ़ा सकते है। राज्योंकी ओरसे खादीको प्रोत्साहन मिलनेकी पूर्ण आशा है। इसलिए वे बिना रुके खादीका उत्पादन करते रहें। लोगोंमें खादी-प्रचार लगातार करते रहनेके लिए उचित कार्रवाई की जानी चाहिए। यह कार्य मुख्यतः कार्यवाहक समितिका है। मैं तो यह चाहता हूँ कि कार्यवाहक समिति तमाम खादी लागतके दामोंपर खरीद ले और उसका संग्रह करे। समितिको खादीका इजारा ले लेना चाहिए। अमेरिकामें जो बात धनवान लोग अपना धन बढ़ानेके लिए करते हैं वह हम यहाँ जनहितके लिए करें। किसी एक चीजके व्यापारको अपने हाथमें लेनेके लिए वे उसे साराका-सारा खरीद लेते है और फिर उसे मनमाने दामपर बेचते हैं। हम लोग हितकी भावनासे खादीके सम्बन्धमें ऐसा ही क्यों न करें? अमेरिकामें वे ऐसा दाम बढ़ानेके लिए करते हैं, हम दाम घटानेके लिए करें। खादीके उत्पादनका खर्च सब जगह एक समान नहीं होता। क्योंकि कताई आदिकी दरोंमें थोड़ा-बहुत फर्क रहा ही करता है। फिर हम तो कपास माँग रहे हैं। यह खादीके लिए "बाउंटी" — प्रोत्साहन — के रूपमें है। इससे समिति घाटेपर भी खादी बेच सकती है। पर खानगी संस्थाएँ ऐसा नहीं कर सकतीं। समिति खादी बनानेसे सम्बन्ध रखनेवाली सब चीजोंके दाम और दानमें मिली कपासका दाम जोड़कर जो भाव पड़े उसपर खादी बेचे। खानगी संस्थाओंसे खादी किस दरपर ली जाये, इसका निर्णय उनसे मिलकर किया जा सकता है। इतनी बातें तो ध्यानमें रखी ही जानी चाहिए।

१. स्थानीय रूपसे जितना माल बिक सके, बेच दिया जाये। जैसे कि बढवानमें तैयार की गई खादीके कुछ भागकी बिक्री बढवानमें हो जानी चाहिए। इस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न संस्थाओंको अपने-अपने स्थानोंपर अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

२. संस्थाओंको सूतकी किस्म और अच्छी बनाने, उसे बटदार और महीन बनानेकी ओर ध्यान देना चाहिए।

३. बुनाईमें सुधार करना चाहिए।

४. समितिसे लागत-मात्र ही ली जाये; और इस सम्बन्धमें समितिको इत-मीनान दिला दिया जाये।

यह काम तभी हो सकता है जब सब लोग उमंग, परिश्रम, और ईमानदारीके साथ परस्पर विश्वास रखकर काम करें। अभी बहुतेरे लोगोंके दिलोंमें लोकसेवाके लिए एक साथ मिलकर काम करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं हुई है और न ही उसकी योग्यता आ पाई है। इससे हमारे काममें अनेक रुकावटें पैदा होती हैं। ये संस्थाएँ इन तमाम दोषोंसे मुक्त रह सकती हैं क्योंकि उनके कार्यकर्त्ताओंमें लोकसेवाकी भावनाका पर्याप्त विकास हो गया है। उनमें धर्म-भावना है और उन्हें थोड़ा-बहुत अनुभव भी है। केवल साथ मिलकर काम करनेकी और एक दूसरेके स्वभावको सहन करनेकी तालीमकी कुछ कमी हो सकती है। पर जहाँ भावना अच्छी है वहाँ इस खामीको अनुभवं ही दूर कर सकेगा।

चरखेमें सुधार

सामान्य तौरपर मैं यात्रामें भी अपना चरखा अपने साथ रखता हूँ। लेकिन काठियावाड़पर श्रद्धा होनेके कारण और बहुत-सी चीजोंको साथ रखनेकी अनिच्छाके कारण मैंने चरखा साथ नहीं लिया और यह निश्चय किया कि जहाँ जाऊँगा वहींसे चरखा माँग लूँगा। इससे मुझे परीक्षाका भी ठीक-ठीक अवसर मिल गया। मैंने राज-कोटमें तो अच्छे-अच्छे चरखे देखनेकी उम्मीद बाँध रखी थी। लेकिन जो मिला उसे मैं बहुत अच्छा नहीं कह सकता। बढ़िया चरखा तो वही है जो बराबर चलता हो, जिसकी साड़ी, माल इत्यादि सब अच्छे हों और जिसका तकुआ पतला और बिलकुल सीधा हो। मुझे नहीं लगता कि वहाँका चरखा सब बातोंमें पूरा उतरा। चरखेपर जो गर्द और धूल चढ़ी हुई थी वह तो बिलकुल असह्य थी। कारीगर हमेशा अपने औजा-रोंको अच्छीसे-अच्छी हालतमें रखता है। चरखेपर धूल क्यों जमी हो? जेतपुरने तो हद कर दी। जोशमें आकर देवचन्दभाईने कह दिया कि "मेरे पास अच्छा चरखा है, अभी भेजता हूँ।" वे मुझे मोटरमें बिठा कर जेतपुर ले गय। रातके ग्यारह बजे थे। लेकिन मैं बिना काते कैसे सो सकता था? चरखा तो लाया गया, लेकिन वह चलता ही न था। तकुआ तो मानो गिरनारका मेहमान हो, साड़ीकी जगह जैसा-तैसा लपेटा गया सूत, माल तो मानो रस्सा था। चरखा चलाते हुए साधारण तौरपर मेरा कन्धा नहीं थकता। लेकिन इस अवसरपर तो चरखा चलानेमें मुझे इतना जोर लगाना पड़ा कि आधे घंटेमें ही मेरा कन्धा थक गया। इतना बढ़िया था देवचन्द-भाईका चरखा! ऐसे कटु अनुभवके बाद मानो उस चरखेकी फजीहत करानेके लिए ही देवचन्दभाईने सभा आयोजित की हो! मैंने उस सभामें उस चरखेको तथा उसके मालिकको बदनाम करनेमें कुछ उठा नहीं रखा। लेकिन जैसा कि मैं ऊपर कह गया हूँ, समरथको दोष नहीं लगता। इस लोकोक्तिका अनर्थ करके देवचन्दभाईके चरखेका दोष कौन निकालेगा? देवचन्दभाई तो मन्त्री ठहरे। उनके चरखेमें तो दोष हो ही नहीं सकते। उन्होंने भी यही मान लिया था। इसलिए मैं खुलेआम यह बता देना

चाहता हूँ कि यदि देवचन्दभाई अपने चरखेको तुरन्त नहीं सुधारेंगे तो वे मन्त्रीपदसे हटा दिये जायेंगे।

लेकिन विनोद छोड़िए। विनोदमें फटकार तो है ही। परन्तु चूँकि यह आग्रही-की डाँट है इसलिए उससे चोट तो लगेगी, लेकिन वह मीठी प्रतीत होगी। देव-चन्दभाई-जैसा खरा और चरित्रवान मन्त्री मिलना मुश्किल है। उनकी सेवाओंका जितना भी उपयोग हम कर सकें, हमें करना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि प्रजा सोती हो और राजा जागता रहे। हम स्वयं ही लापरवाह रहें तो फिर देवचन्दभाई सावधान कैसे रह सकेंगे? देवचन्दभाई चरखेका महत्त्व तो समझते हैं लेकिन चारों तरफ वाता-वरणमें शिथिलता होनेके कारण उन्होंने उसको दुरुस्त नहीं किया है, और उसे अच्छा नहीं बनाया। यदि उन्हें केवल चरखेकी ही साधना करनी होती तो उनके चरखेकी यह अपूर्णता अक्षम्य थी। पोरबन्दरमें असन्तोष कुछ कम रहा, इसी प्रकार वाँकानेरमें भी। इस अपूर्णताको देखकर मुझे काठियावाड़में चरखेकी प्रगतिका अन्दाजा हो गया। चरखेको जो सम्मानपूर्ण स्थान मिलना चाहिए अभी नहीं मिला है। चरखेको लोग सहन कर लेते हैं लेकिन उसका स्वागत नहीं करते हैं। वह अभी अभ्यागत है, मान-नीय अतिथि नहीं बना है। और जबतक उसका अतिथि-जैसा स्वागत न होगा, काठियावाड़की भूख नहीं मिटेगी।

चरखेकी अपूर्णताके बारेमें मैंने जो इतना विस्तारसे लिखा है उसमें कुछ मतलब है। चरखेके दोष ढूँढ़ निकालना आसान है। मेरे सुझाव ये हैं:

(१) मन्त्री लोग चरखोंकी गिनती करायें।

(२) चरखोंकी जाँच करनेके लिए एक या अधिक निरीक्षक नियुक्त किये जायें। और वे घूम-घूमकर प्रत्येक चरखेकी जाँच करें।

(३) चरखेके मालिकोंसे अपने-अपने चरखेके दोषोंकी शिकायतें दर्ज करानेका अनुरोध किया जाये।

(४) चालू चरखोंके तकुए आदि सुधार दिये जायें। बड़े तकुओंको बदल दें और तकुएके पायोंमें आवश्यक फेरफार कर दें।

(५) निरीक्षक लोग चरखेके मालिकोंको उसमें किये गये सुधारोंके बारेमें समझाएँ।

(६) निरीक्षक जिस-जिस गाँवमें जाये वहाँ एक स्थानीय व्यक्तिको इस कामके लिए तैयार करे और उसका नाम दर्ज कर ले।

(७) वह इसका भी हिसाब रखे कि किस चरखेसे कितना सूत काता जाता है और वह कितने घंटे चलाया जाता है।

इस प्रकार व्यवस्थित काम करनेसे थोड़े ही समयमें चरखेमें और उससे उत्पन्न होनेवाले सूतमें बड़ा सुधार होगा। मैंने अनुभव किया है कि मैं अपने चरखेपर आधे घंटेमें १०० गज सूत आसानीसे कात सकता हूँ परन्तु इन चरखोंपर तो मैं मुश्किल-से ५० गज सूत ही कात सका। और अच्छे चरखेपर कातनेमें जो आनन्द मिलता है

वह मुझे राजकोटके सिवा और कहीं भी न मिला। इस वर्षके अन्ततक काठियावाड़में खादीकी नींव मजबूत हो जाये — इतना ही नहीं बल्कि हम इतना बारीक सूत कातने लगें कि खादीकी साड़ियाँ भी बनाई जा सकें। मैंने देखा है कि यशोदा बहनने अपने पति डाह्याभाईके लिए हाथ-कते सूतकी धोतियाँ बुनवाई थीं। ये धोतियाँ आन्ध्रकी बारीक धोतियोंके मुकाबलेमें रखे जाने योग्य थीं। सैकड़ों भाई-बहन इतना बारीक सूत क्यों नहीं कात सकते?

राजनीति

परिषद्के समय ऐसे विभाग किये गये थे कि प्रजा चरखे चलाये और खादी पहने और मैं राजनीतिक मामलोंको देखूँ। इस विभाजनका अर्थ तो मैं समझा चुका हूँ लेकिन फिर भी उसे स्पष्ट करनेकी आवश्यकता मालूम होती है। उसका अर्थ यह कि यदि जनता जागृत रहकर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करेगी तो मैं भी जागृत रहूँगा और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा। जनता यदि जागृत रहती है तो अपनी प्रतिज्ञाका सफलतापूर्वक पालन कर सकती है क्योंकि सफलता प्राप्त करना उसके अपने हाथमें है। लेकिन सम्भव है कि मैं जागृत रहनेपर भी और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करने-पर भी सफल न होऊँ, क्योंकि मेरी सफलता दूसरोंपर निर्भर है। जनताके प्रतिज्ञा-पालनपर मेरी सफलताका दारोमदार है। बड़े दुःखकी बात तो यह है कि आज भी सूतका राजनीतिसे क्या सम्बन्ध है, यह समझाना पड़ता है। सूत कातनेमें ही जनताकी सामूहिक शक्ति निहित है। मुझे विश्वास है कि उस शक्तिका अदृश्य प्रभाव सर्वत्र पड़ेगा। यह हो या न हो, लेकिन यह आवश्यक है कि जनता मेरी प्रतिज्ञाका अर्थ समझ ले। यह नहीं कह सकता कि मैं कुछ कर सकूँगा ही। जिसे मैं सर्वोत्तम मार्ग समझता हूँ वह मैंने जनताको दिखा दिया है। केवल आन्दोलन करनेसे ही जनता कुछ नहीं प्राप्त कर सकती। राजाओंकी स्थिति भी समझ लेनी चाहिए। निन्दा करनेसे या टीका करनेसे ही कुछ नहीं बनता। इस स्थितिको समझनेके लिए ही मैंने परिषद्को राज-नीतिक प्रकरणोंके सम्बन्धमें चुप रहनेकी सलाह दी थी। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि अध्यक्षकी हैसियतसे इस सम्बन्धमें जितनी जाँच कर सकता हूँ, उतनी करूँगा। उसका पालन करनेका मैं अब भी प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं निश्चिंत होकर न बैठा हूँ और न बैठूँगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जिसे बीमारी है वह अपनी बीमारीका इलाज ही न करे। मेरी सलाहका मतलब तो सिर्फ यही था कि पूर्वोक्त सहायता ही परिषद्की तरफसे मिल सकती है। यह समझ लेना चाहिए कि न्याय प्राप्त करनेके लिए अगर लोग सत्य और शान्तिपूर्ण उपायोंको काममें लाना चाहें तो उसमें मेरी तरफसे कोई रुकावट न होगी। परिषद्से जितनी भी मदद हो सकेगी वह करेगी। आज उस मददका यह रूप है कि जिन राज्योंके बारेमें शिकायतें हो रही हैं उनके सम्बन्धमें मैं अपनी अनुनय-विनय करनेकी शक्तिका उपयोग करूँ। सफलता तो मामले और उससे सम्बन्धित लोगोंकी सचाई तथा जनताके प्रतिज्ञा-पालनपर निर्भर है। जनता-को भी अपनी कार्यदक्षताकी छाप डालनी चाहिए। जनता यदि रचनात्मक कार्य करेगी और आत्मसम्मान बनाये रखेगी तो उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा। आज तो

दूसरे भागोंकी ही तरह काठियावाड़की भी जनता अपना आत्मविश्वास खो बैठी है। जनताको भी अपनी कार्यदक्षताकी छाप डालनी चाहिए। लेकिन मेरा अनुभव तो यह है कि काठियावाड़के बहुतसे राज्योंमें स्थिति यह है कि जनता जितनी चाहे उतनी प्रगति कर सकती है। ब्रिटिश प्रशासनमें जनताको जो सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं वे काठियावाड़की रियासतोंमें हैं। रचनात्मक कार्य करके ही जनता इन सुविधाओंका पूरा लाभ उठा सकती है।

१ अप्रैल

काठियावाड़ने मुझे इतना मोह लिया है कि मैंने अप्रैलमें फिर काठियावाड़ जानेके लिए अवकाश निकाला है। बोटादकी अन्त्यज शाला, अमरेली खादी कार्यालयका काम और मढडाका आश्रम देखनेके लिए मुझे जाना तो था ही। लेकिन पिछली बार मैं वहाँ नहीं जा सका था। जो लोग मुझे कहीं भी ले जाना चाहते हैं वे देवचन्दभाई और अमरेली कार्यालयके साथ इस सम्बन्धमें बात कर लें। मैं चाहता हूँ कि जहाँ खादीका आकर्षण न हो वहाँ मुझे ले जानेकी बात कोई न सोचे। अप्रैलमें बहुतसे लोगोंके सदस्य बननेकी आशा करता हूँ और यह आशा भी करता हूँ कि जिस रुईका वादा किया गया था वह प्राप्त हो जायेगी; उसके लिए और लोग भी वादा करेंगे। जिन केन्द्रोंको खोलनेके बारेमें राजकोटमें विचार हुआ है वे सब केन्द्र काम करने लगेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-३-१९२५

१५१. टिप्पणियाँ

एक बहनकी भावना

भाई विट्ठलदास जेराजाणी लिखते हैं:[1]

इसका रस तो जिसने अनुभव किया है वही जानता है। जिसने अपने हाथ-कते सूतका और अपने हाथसे बुना या किसी दूसरेसे बुनवाया हुआ कपड़ा पहना है वह इस बहनकी आँखोंसे गिरे हुए मोती-जैसे आँसुओंका मूल्य समझ सकता है। एक भाईका अपने हाथसे कते हुए सूतका बना तौलिया खो गया, जबतक वह मिल न गया तबतक उसकी बचैनी कम नहीं हुई। हम एक दियासलाईकी सींक या एक आलपिनका कोई मूल्य नहीं समझते; किन्तु यदि वह हमारी ही बनाई हुई हो तो? अपने हाथकी पकी रसोईमें जो मिठास और भाव होता है, वही अपने हाथसे काते गये सूतकी बनी खादीमें होता है।

१. यह पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें केन्द्रमें बुनाईके लिए दी गई अपने हाथके कते सूतकी साड़ीके केन्द्रसे गुम हो जानेपर एक बहनके खेदका वर्णन था। बादमें वह साड़ी मिल गई थी।

कालीपरज लोगोंमें

मैं नीचेका उद्धरण वेडछी खादी आश्रमसे प्राप्त पत्रसे देता हूँ:[1]

जैसा अनुभव इस पत्रलेखकको हुआ है वैसा ही अनुभव अनेक लोगोंको अन्य अनेक स्थानोंमें हो रहा है। चरखा हमारे राष्ट्रीय जीवनके निर्माणका केन्द्रबिन्दु बन गया है।

शिक्षामें क्या चाहिए?

एक अनुभवी शिक्षाविद्ने लिखा है:[2]

पाठक देखेंगे कि ये विचार डा० सुमन्त मेहताके विचारोंसे[3] बिलकुल उलटे हैं। सत्य दोनोंमें है। दोनोंपर अमल किया जाये तो अच्छा। किन्तु हममें इतनी शक्ति नहीं होती कि जो-कुछ अच्छा हो हम उस सबपर अमल कर सकें। शिक्षाको स्थायी रूप तो अनुभवसे ही प्राप्त होगा। हम अभी रसायनादि विषयोंकी शिक्षा नही देते। इसका कारण यह नहीं कि हम इस सम्बन्धमें उदासीन हैं; बल्कि यह है कि हमारे पास उसके लिए आवश्यक सामग्री नहीं है। इसी कारण जो विषय अत्यावश्यक हैं, शिक्षामें उन्हींको अग्रिम स्थान दिया गया है। चरखा तो उद्यमके चिह्नके रूपमेंहै। जब उसको निश्चित स्थान मिल जायेगा तब लुहार, बढ़ई आदि व्यवसायोंको और उनके शिक्षणको भी सहज ही उचित स्थान प्राप्त हो जायेगा। हमारा प्रयास निस्सन्देह चारो वर्णोंकी शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेकी दिशामें ही होना चाहिए। यह तो स्पष्ट है कि हम इसी दिशामें आगे बढ़ रहे हैं। यदि सभी शिक्षा-शास्त्रियोंकी आस्था राष्ट्रीय शिक्षामें बनी रहेगी और वे निश्चयपूर्वक और श्रद्धाके साथ अपना-अपना काम करते जायेंगे तो शिक्षामें अभीष्ट सुधार अपने-आप हो जायेंगे। जहाँ दियानतदारी है वहाँ बरकत होती है। मैंने अपने भ्रमणोंमें एक ही बात देखी है। लोग ऐसे कामोंके लिए धन देनेके लिए तैयार हैं और इसके लिए अधीरसे हैं; किन्तु हमारे पास दृढ़-निश्चयी और कुशल लोग बहुत ही कम हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-३-१९२५

१. इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें कालीपरज लोगोंपर खादी प्रचार कार्यका जो प्रभाव पड़ा, वह बताया गया था।

२. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें पत्र लेखकने बहुमुखी शिक्षापर जोर दिया था।

३. देखिए "सच्ची शिक्षा", ८-२-१९२५।

१५२. भाषण : एर्नाकुलम्में[1]

८ मार्च, १९२५

अभिनन्दन-पत्र तथा उसमें अभिव्यक्त भावनाओंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यह मेरे लिए अत्यन्त दुःखकी बात है कि इस समय मेरे साथ न तो मेरे मित्र मौलाना शौकत अली हैं और न मौलाना मुहम्मद अली। जैसाकि आप जानते है भारत-का दौरा करते समय हम सदा ही साथ रहे हैं। किन्तु उनमें से एक भाई आज पत्रकारितामें व्यस्त हो गये हैं और दूसरे महान् भाईने बम्बई और बम्बईके आस-पासके कार्योंमें अपनेको बिलकुल तल्लीन कर लिया है। चूंकि मैं केवल वाइकोम तथा उस प्रदेशमें, जहाँ मुझे अपने वर्तमान दौरेमें काम करना है, प्रवेश करनेके लिए इस प्रान्तसे गुजर रहा हूँ, मुझे आपका यह अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। यह यात्रा मैंने शान्तिके उद्देश्यसे की है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मुझे वह सम्पूर्ण समर्थन आप दें जो मुझे इस देशके कोने-कोनेसे सहमतिके रूपमें मिल सकता है। सबसे अधिक शुभकामना मैं उन लोगोंकी प्राप्त करना चाहता हूँ जिनका प्रार्थनामें विश्वास है, चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी या पारसी कोई भी हों। वे चाहे किसी भी धर्ममें विश्वास क्यों न करते हों, यदि वे प्रार्थनामें विश्वास करते हैं तो मैं चाहता हूँ कि वे मेरे इस उद्देश्यकी सफलताके लिए प्रार्थना करें।

कुछ दूसरी चीजें भी हैं जिनमें मेरी दिलचस्पी है और जिनमें आपकी भी दिलचस्पी होनी चाहिए। इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता कि आप खास ब्रिटिश भारतके निवासी हैं या किसी रक्षित-राज्यके। मेरा अभिप्राय उस हिन्दू-मुस्लिम एकता से है जो भारतके विभिन्न धर्मोको माननेवाली जातियोंकी एकताका ही रूप है। मुझे मालूम हुआ है कि इस राज्यमें हिन्दुओं और मुसलमानों या हिन्दुओं या अन्य जातियोंके बीच कोई समस्या नहीं है। यह मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नताका विषय है कि इस राज्यमें सभी जातियाँ शान्ति, सौहार्द तथा भ्रातृभावके साथ रहती हैं। ईश्वर करे ऐसी स्थिति हमेशा ही बनी रहे। किन्तु जहाँतक चरखेका सम्बन्ध है, आपकी इस तरह प्रशंसा नहीं की जा सकती। मद्रास नगर-निगम द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए मैंने अवसरका लाभ उठाकर इस तथ्यका उल्लेख किया था कि तबतक भारतमें किसी भी नगरपालिकाका कार्य पूरा नहीं माना जा सकता जबतक कि वह अपनेको अपने निम्नतम नागरिकोंके साथ एक न कर ले। अक्सर यह जान पड़ता है कि इस क्रमको उलट दिया गया है, अर्थात् नगरपालिकाएँ उन्हें ही देती हैं जिनके पास पहले ही काफी है और उन्हींसे अधिक लेती हैं जिनके पास कि पहलेसे ही बहुत कम है। (हँसी) वे धनी और शक्तिशाली लोगोंकी ज्यादा परवाह करती हैं और गरीब और दलितकी बिलकुल भी परवाह नहीं करतीं; या कम करती हैं। (तालियाँ) मुझे आशा है कि

१. एर्नाकुलम्-निगम द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

यह बात इस नगरपर लागू नहीं होती होगी और जिस वस्तुको जो स्थान दिया जाना चाहिए यहाँ उसे वही स्थान दिया जा रहा होगा। इसलिए मेरा चरखेका सुझाव देना आपके प्रशंसनीय कार्यों में केवल एक कार्य और जोड़ना है। यह मेरे लिए गरीब और अमीरके बीच अटूट सम्बन्धका प्रतीक है। यह भारतकी जनताकी गरीबीका एक निश्चित हल है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप चरखेको अपने स्कूलोंमें स्थान दें और साथ ही इससे प्राप्त होनेवाली चीज, खद्दरको अपनायें। मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपने घरोंमें इसे जो पवित्र स्थान अतीतमें प्राप्त था, वही फिरसे दें। मैंने इसे इस युगका एक यज्ञ कहनेमें संकोच नहीं किया है। जैसा श्रेष्ठ जन करते हैं, वैसा ही इतर प्रजा भी करती है; इसलिए आप जबतक स्वयं चरखे-को नहीं अपनायेंगे तबतक आपको इसका सन्देश भारतके गरीब घरोंतक पहुँचानेमें सफलता नहीं मिलेगी। ईश्वर आपको मेरी नम्रतापूर्वक दी गई इस सलाहका अनु-सरण करनेके लिए साहस, बल, और सद्भावना प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-३-१९२५

१५३. भाषण : कोचीनकी सार्वजनिक सभामें

८ मार्च, १९२५

मित्रो,

मुझे इस बातकी बड़ी खुशी है कि आखिरकार मैं आपसे मिल सका। जब मैंने वाइकोम आनेका निश्चय किया था तब मुझे इस बातकी कोई आशा नहीं थी कि वहाँ रवाना होनेके पहले मेरा यहाँ आना जरूरी और सम्भव हो जायेगा। मैं जानता हूँ कि आपका नगर ऐतिहासिक है। यहाँ आकर न जाने कितनी बातें मनमें जाग उठी हैं। वे सभी यादें सुखद नहीं हैं। आप समुद्रके किनारे रहते हैं, इसलिए आप जानते हैं कि साहसिक कार्योंसे क्या-कुछ कर दिखाया जा सकता है। समुद्र साहसिक कार्योंका प्रतीक है। किन्तु मैं आपसे वैसे साहसिक कार्योंकी अपेक्षा नही रखता जो समुद्री किनारेके लोगोंसे जुड़े हुए माने जाते हैं। हमें जिस बातकी जरूरत है वह तो यह है कि हममें अपने राष्ट्रीय जीवनमें साहसिक कार्य करनेकी भावना आये। यदि हमें ऐसा लगता है कि हमने अपने लक्ष्यकी ओर नहींके बराबर प्रगति की है तो इसका कारण यह है कि हममें साहसिक कार्य करनेकी भावना नहीं है। उदाहरणके लिए हिन्दू धर्मकी बुराइयोंको ढूँढ़नेके लिए साहसिक भावनाकी आवश्यकता है। जिन लोगोंमें यह भावना नहीं है वे जिन परिस्थितियोंमें रहते हैं, उन्हींसे सन्तुष्ट रहते हैं। वे यह तक देखनेकी जरूरत नहीं मानते कि वे बुरी हैं या भली। 'दक्षिण आफ्रिकाके अपने २० वर्षोंके प्रवासके बाद जबसे भारत आया हूँ तभीसे हिन्दुओंसे कहता आ रहा हूँ कि हमारे हिन्दू धर्मका एक कलंक है; हमें उसे दूर करना होगा। यह कलंक अस्पृश्यता है।

मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यहाँ तो अस्पृश्यताके साथ अनुपगम्यता भी जुड़ी है। मैं यहाँ कट्टरपन्थियोंसे तर्क करने नहीं आया हूँ। मैं शान्तिका सन्देश लेकर आया हूँ। मैं उनसे विवेकसे काम लेनेकी अपील करता हूँ; उनसे कहता हूँ कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यता हिन्दू धर्मका अंग हो ही नहीं सकती। मैं उनसे यह कहनेके लिए आया हूँ कि जो सत्याग्रही वाइकोममें अत्यधिक कठिनाइयोंके बीच संघर्ष कर रहे हैं वे धर्मको नष्ट करनेके लिए नहीं, बल्कि उसमें सुधार करनेके लिए निकले हैं। मैं उन्हें इस संघर्षके सभी फलितार्थ बताने आया हूँ। मैं उन्हें यह बतानेके लिए भी आया हूँ कि यदि हमें यह भरोसा हो जाये कि ये बातें खराब हैं तो फिर हमें उनके वर्तमान रूपसे सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। इसलिए मुझे इससे प्रसन्नता होती है कि मैं अपने साथ आपकी शुभकामनाएँ और सहानुभूति ले जाऊँगा, क्योंकि आपकी ओरसे नगरपालिकाने मुझे जो अभिनन्दन-पत्र भेंट किया है उसमें विश्वास दिलाया गया है कि आपकी सहानुभूति और आपका समर्थन मेरे साथ है। मैं यह भी चाहता हूँ कि आप इस भावनाको थोड़ा और आगे ले जाकर यह मालूम कर लें कि सारे भारतमें जनताकी निरन्तर बढ़ती हुई गरीबीका एक प्रबल कारण यह है कि वर्षके करीब एक तिहाई भागमें उनके पास करनेके लिए कुछ भी नहीं होता। मैं चाहूँगा कि आप भी मेरी तरह यह जान लें कि केवल सौ वर्ष पहले चरखेके लिए घर-घरमें स्थान था, और यदि आज भी लोगोंको चरखा दे दिया जाये, तो उन्हें फुरसतके समयमें लगे रहने योग्य काफी काम मिल जायेगा। किन्तु यदि हम लोग विदेशी या मिलके कपड़े पहनना नहीं छोड़ते तो फिर हमारा अपने लाखों घरोंमें चरखेको दाखिल कराना बिलकुल बेकार होगा।

इसलिए जब मैं यात्रामें होता हूँ तब भी जिन स्त्री-पुरुषोंसे मिलता हूँ, उनसे कहता हूँ कि विदेशी या मिलके बने कपड़ोंको छोड़ना और उनके स्थानपर हाथसे तैयार किये गये खद्दरको पहनना उनका अनिवार्य कर्त्तव्य है। मलाबारमें आपका ढेर सारे कपड़े पहनना व्यर्थकी बात है। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि आप लोगोंमें से बहुत-से लोग इस समय मुझसे ईर्ष्या कर रहे होंगे। यहाँके इस मौसममें हम जितने कम कपड़े पहनें प्रत्येक दृष्टिकोणसे उतना ही अच्छा है। मैं चाहता हूँ कि आप बिना सोचे-समझे इस विचारको सही न मानने लगें कि प्रतिष्ठा और सभ्यताके लिए ज्यादा कपड़े पहनना कोई आवश्यक चीज है। (हँसी और हर्षध्वनि)। "वह व्यक्ति सुन्दर नहीं है जो सुन्दर कपड़े पहनता है, बल्कि सुन्दर वह है जो सुन्दर काम करता है।" सभ्यता, संस्कृति और प्रतिष्ठाकी सर्वाधिक सच्ची कसौटी चरित्र है, न कि कपड़े। जब कभी मैं भारतके लोगोंको यह कहते सुनता हूँ कि वे खद्दरके युगसे बहुत आगे बढ़ चुके हैं और इसलिए अब उनका उस बर्बर युगमें जबकि उनके पूर्वज खद्दरके कपड़ोंसे सन्तुष्ट हो जाते थे, वापस जाना असम्भव है तो मुझे बड़ा दुःख होता है। जिन लोगोंका ऐसा विचार है, मैं चाहूँगा कि आप उन्हें यह उत्तर देनेके लिएमेरे साथ हो जायें कि भारतको गरीबी एवं कंगालीसे मुक्त करनेके लिए हम सबको खद्दर ही पहनना चाहिए। उसका सर्वोत्कृष्ट तरीका यही है। आपमें से जो लोग सजधज और महीन वस्त्रोंको पसन्द करते हैं वे अपनी इच्छानुसार सुन्दर महीन सूत कात

या कतवाकर उसे प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप प्रयास करेंगे, अपनी बुद्धिका उपयोग करेंगे और कोचीनमें हर घरको चरखेसे सुशोभित करेंगे और साथ ही इस बातका भी ध्यान रखेंगे कि कोचीनका प्रत्येक व्यक्ति खद्दर ही पहने और कुछ नहीं।

मुझे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर कुछ कहनेकी आवश्यकता नही है। मैं जानता हूँ कि आपको अली भाइयोंमें से किसीका भी न आना खल रहा है। अभीतक सारे भारतकी यात्रामें उन दोनोंमें से एक भाई मेरे साथ होता ही था किन्तु अब ऐसा करना सम्भव नहीं था। किन्तु मैं आपको इसलिए बधाई देना चाहता हूँ कि यह हिन्दू-मुस्लिम समस्या आपके बीच नहीं है। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्षकी बात है कि इस राज्यमें विभिन्न धर्मोको माननेवाली सभी जातियाँ सद्भावना और भाईचारेके साथ रहती हैं। मैं चाहता हूँ कि हम भारतके प्रत्येक भागमें आपके प्रशंसनीय उदाहरणका अनुकरण कर सकें। अपने घरोंमें चरखा और खद्दर दाखिल करनेके लिए तथा हिन्दू धर्मको अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त करनेके लिए ईश्वर आपको बल और बुद्धि प्रदान करे। ईश्वर करे इस सुन्दर देशमें रहनेवाली सभी जातियाँ सदैव वैसे ही प्रेमके साथ एक होकर रहें, जैसे आज रहती हैं।

[अंग्रजीसे]

हिन्दू, ९-३-१९२५

१५४. पत्र : सुब्रह्मण्यम्को

[९ मार्च, १९२५][1]

सुब्र[ह्मण्यम्]

पत्रके लिए धन्यवाद। कल सुबह ८ बजे जिला मजिस्ट्रेटके घर आपसे और अन्य मित्रोंसे मुलाकात होगी। वे सभी लोग जिनका आपने उल्लेख किया है और अन्य जिन्हें आप चुनें, भेंटके समय वहाँ आ जायें। मै अपनी ओरसे उन व्यक्तियोंके सिवा जिनका कि आपने उल्लेख किया है और किसीको अपने साथ नही लाऊँगा। किन्तु कृष्णस्वामी अय्यरके यहाँ न होनेके कारण श्रीयुत कैलप्पन नय्यरको जो उनकी जगह-पर आये है, अपने साथ लाना चाहता हूँ; बशर्ते कि आप इसे स्वीकार करें।

आपने ठीक ही कहा है कि दोनों पक्षोंके बीच कोई दुर्भावना नही होनी चाहिए। मैं भी यही चाहता हूँ। हमें एक-दूसरेके विचारोंके प्रति सहिष्णु होना ही चाहिए।

अनुपगम्यताकी आपने और दूसरे मित्रोंने जो व्याख्या की है उसके पक्षमें मैं किसी औरका नहीं, शंकराचार्यका प्रमाण चाहता हूँ। यदि यह प्रश्न सौहार्द तथा

१. इस पत्रमें उल्लिखित भेंट १० मार्च, १९२५ को हुई थी।

सन्तोषपूर्ण ढंगसे एवं उस धर्मकी प्रतिष्ठा और शुद्धताके अनुरूप हल हो जाये, जिसमें हमारा और आपका समान रूपसे विश्वास है तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

आपका,
धर्म-सेवक,

[पुनश्च:]

मुझे खेद है कि मैं मलयालम नहीं जानता। आपके लिए मेरी हिन्दीको अनूदित कराना कठिन होगा, इसलिए मैं अपना उत्तर अंग्रेजीमें भेज रहा हूँ।

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०५९४) की माइक्रोफिल्मसे।

१५५. पत्र: डा० वरदराजुलु नायडूको

१० मार्च, १९२५

प्रिय डा० वरदराजुलु,

गुरुकुल विवादके[1] सन्दर्भमें मैंने श्री अय्यरसे[2] कहा कि जबतक मैं आपसे नहीं मिलता और आपके विचार नहीं सुन लेता तबतक मैं अपना निश्चित मन्तव्य प्रकट नहीं करूँगा। आपकी बात सुननेके बाद मुझे लगता है कि जहाँतक ब्रह्मचारियोंका सम्बन्ध है यदि ब्राह्मण लड़कोंके माता-पिता जोर देते हैं कि उनके बच्चोंको अलग भोजन करनेकी अनुमति मिलनी चाहिए तो इनकी नैतिक आपत्तियोंको मान लेना चाहिए। किन्तु भविष्यके लिए यह घोषणा कर देनी चाहिए कि ऐसे किसी भी ब्रह्मचारीको यहाँ भरती नहीं किया जायेगा जिसके माता-पिताको उसके अन्य ब्रह्मचारियोंके साथ पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेमें आपत्ति हो। मुझे आपसे मालूम हुआ है कि गुरुकुलमें रसोइया सदैव ब्राह्मण ही रहेगा। आपकी जो आपत्ति है (वह उचित ही है), वह है अब्राह्मण लड़कोंको ब्राह्मण लड़कोंसे अलग रखनेमें। मेरा भी यह निश्चित विचार है कि जब लड़के भोजन करें तो वे सभी एक ही पंक्तिमें बैठें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २१-३-१९२५

१. शेरमादेवीमें स्थित तमिल गुरुकुलमें प्रवेश सम्बन्धी प्रश्न।
२. उक्त गुरुकुलके वी० वी० एस० अय्यर।

१५६. वाइकोमके सवर्ण हिन्दू नेताओंके साथ बातचीत[1]

[१० मार्च, १९२५]

गांधीजी : क्या यह उचित है कि हिन्दुओंकी एक समूची जातिको तथाकथित निम्नवर्गमें उत्पन्न होनेके कारण उन सड़कोंके उपयोगसे वंचित कर दिया जाये जिनका उपयोग अहिन्दू, अपराधी, दुश्चरित्र और यहाँतक कि कुत्ते और ढोर भी कर सकते हैं?

नम्बूद्री न्यासी : इसके लिए क्या किया जा सकता है? वे अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अछूतोंके रूपमें उत्पन्न होनेकी वजहसे उन्हें जो काम मिला है उसके कारण वे वैसे ही कष्ट भोग रहे हैं। अब आप उनके इस कष्ट को और क्यों बढ़ाते हैं? क्या वे अपराधियों और जानवरोंसे भी गये बीते हैं?

अवश्यमेव वे ऐसे होंगे; नहीं तो ईश्वर उन्हें अछूतोंके घरोंमें जन्म लेनेकी सजा ही क्यों देता?

ईश्वर उन्हें सजा दे सकता है; किन्तु हम मानव कौन हैं जो ईश्वरका स्थान ग्रहण कर उनकी सजा बढ़ायें?

हम तो केवल निमित्त हैं। उन्होंने अपने कर्मोंका जो दण्ड पाया है; उसे उनपर लागू करनेके लिए ईश्वर निमित्त रूपमें हमारा उपयोग करता है।

किन्तु मान लीजिए, अवर्ण कहें कि वे आपको सजा देनेके लिए ईश्वरके हाथोंमें निमित्त-रूप हैं तो आप क्या करेंगे?

तब सरकार उनके और हमारे बीच आकर उन्हें रोकेगी। अच्छे आदमी भी ऐसा ही करेंगे। महात्माजी, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अवर्णको हमारे युगों पुराने अधिकार छीननेसे रोकिये।

क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं कि आपको उन्हें सड़कोंका उपयोग न करने देनेका अधिकार है? मेरा विश्वास है कि पद-दलित जातियोंको भी सड़कोंके उपयोग-का उतना ही अधिकार है जितना आपको है। शास्त्रोंमें कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है कि वे इन सड़कोंका उपयोग नहीं कर सकते हैं। क्या आप जानते हैं कि दीवान साहबके विचारानुसार भी आपने गलत रुख अपनाया है?

१. इसका संक्षिप्त विवरण देते हुए हिन्दूने अपने ११-३-१९२५ के अंकमें लिखा है: "कल सबेरे ही श्री गांधी सत्याग्रहियोंकी प्रार्थनामें शामिल हुए. . .श्री गांधी इंडन्तुरित्ति नम्ब्यातिरीके निवास स्थानपर स्थानीय कट्टरपन्थी सवर्ण हिन्दुओंके विरोधी नेताओंसे मिले। जो लोग श्री गांधीके साथ गये थे, उनमें सर्वश्री राजगोपालाचारी, महादेव देसाई, रामदास गांधी तथा कृष्णस्वामी अय्यर थे। उन्होंने बातचीत तीन घंटेसे अधिक समयतक की जिसमें व्यावहारिक प्रस्ताव इस दृष्टिसे रखे गये कि संघर्ष जल्दी ही समाप्त हो जाये। वे वैकल्पिक प्रस्ताव थे: पंच निर्णय, जनमत संग्रह तथा चुने हुए पण्डितों द्वारा शंकरकी स्मृतियोंका परीक्षण। विरोधियोंने इनमें से किसीको भी नहीं माना"।

दीवान साहब भले ही ऐसा मानते हों। वे चाहें जैसा विचार रखें; यह उनकी मर्जीकी बात है। महात्माजी, आप इन जातियोंके लिए दलित शब्दका उपयोग क्यों करते हैं? और क्या आप जानते हैं कि वे दलित क्यों हैं?

जी हाँ! इसका भी ठीक वही कारण है, जिसके लिए डायरने जलियाँवाला बागमें निर्दोषोंका संहार किया था।

इसलिए आपके विचारमें जिन्होंने यह प्रथा चलाई, वे डायर कहलाये? क्या आप शंकराचार्यको डायर मानेंगे?

मैं किसी भी आचार्यको डायर नहीं कहता। किन्तु मैं आपकी कार्यवाहीको जरूर डायरशाही मानता हूँ। यदि कोई आचार्य इस प्रथाको लागू करनेके लिए सचमुच उत्तरदायी है तो उसका अज्ञान भी उतना ही भयानक माना जायेगा जितना कि जनरल डायरका था।

किन्तु हम प्राचीन प्रथाको छोड़ कैसे सकते हैं? आप कहते हैं कि सत्याग्रही कष्ट उठा रहे हैं। कष्ट तो हम उठा रहे हैं। सत्याग्रही मन्दिरके द्वारपर बैठे रहते हैं। कहीं उनकी छाया हमें अपवित्र न कर दे, इसलिए हमें लम्बे और चक्करदार मार्गसे मन्दिर जाना पड़ता है। क्या यह कोई बड़ा कष्ट नहीं है?

निश्चित रूपसे यह असाधारण कष्ट है। इसपरसे तो मुझे भेड़िये और मेमनेकी कहानी याद आ जाती है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कमसे-कम तर्ककी बात तो करें।

धार्मिक मामलोंमें तर्क काम नहीं देता।

यदि यह कोई पुरानी सनातनी प्रथा होती तो इसे भारतमें सर्वत्र प्रचलित होना चाहिए था। लेकिन मैं इसे देशके अन्य किसी भागमें प्रचलित नहीं देखता।

निश्चित रूपसे अस्पृश्यता भारतके हर भागमें मिलती है। हम अस्पृश्यताको थोड़ा और आगे ले गये हैं। बस इतना ही।

आप कहते हैं कि ये लोग अपराधियोंसे भी गये-बीते हैं। मान लीजिए कि कल ये मुसलमान या ईसाई बन जायें तो क्या फिर ये अपराधी नहीं रहेंगे?

(नम्बूद्री न्यासी मौन रहा। किन्तु कमिश्नर देवस्वम्‌ने उसकी ओरसे उत्तर दिया: नये मुसलमान या ईसाईको यह अधिकार नहीं होगा। पुराने ईसाई और मुसलमान ही इस अधिकारका उपभोग करते हैं।)

राजगोपालाचारी: तो क्या ईसाई और मुसलमान ईश्वरके नियमों और आदेशों-को उलट सकते हैं?

(कोई उत्तर नहीं।)

गांधी: आप अपने तर्ककी पुष्टिमें शंकराचार्यको उद्धृत करते हैं। क्या आप यह उद्धरण मुझे भी दिखायेंगे?

न्यासी: अवश्य।

और यदि शंकराचार्यके ग्रन्थ इस प्रथाका समर्थन न करें तो क्या आप अपने विरोधको वापस ले लेंगे?

उनमें इसके काफी प्रमाण हैं। लेकिन वस्तुतः आप उसकी दूसरी व्याख्या करनेमें समर्थ हैं।

मैं उसकी व्याख्या नहीं करूँगा। व्याख्या तो माने हुए पण्डित करेंगे।

यदि व्याख्या प्रथाके विरुद्ध गई तो हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते।

इसका यह अर्थ हुआ कि शंकराचार्यके ग्रन्थोंमें इस प्रथाका कोई समर्थन नहीं है; किन्तु यह आपके विवेककी कमीके कारण प्रचलित है? मान लीजिए न्यायालय यह निर्णय दे कि अवर्णोंके लिए सड़कें खोल देनी चाहिये?

तो फिर हमें चाहिए कि हम उन सड़कोंका उपयोग बन्द कर दें और उन मन्दिरोंको छोड़ दें।

यदि महाराजा, शंकराचार्यकी भाँति ही जिन्हें कि आप प्रतिबन्धके समर्थनमें उद्धृत करते हैं, सड़कोंको खुला छोड़नेकी घोषणा जारी कर दें तो आप क्या करेंगे?

राज्यको अधिकार है कि वह जो चाहे आदेश जारी करे। हमें उसका पालन करना ही होगा।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप यह न भूलें कि आप हिन्दू-धर्मके न्यासी हैं, और मुझे आशा है कि आप उसके उज्ज्वल नामपर धब्बा नहीं लगायेंगे। मैं आपके सामने एक बीचका रास्ता रखता हूँ। क्या आप जनमत संग्रहको स्वीकार करेंगे?

क्या आपका अभिप्राय केवल मन्दिरमें आनेवाले लोगोंके मत-संग्रहसे है?

नहीं; यह उचित नहीं है। मेरा मतलब सभी सवर्णोंके मत-संग्रहसे है। मैं अवर्णोंके मत-संग्रहकी बात नहीं कहता। आपको इससे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।

(कोई उत्तर नहीं।)

दूसरा सुझाव है। मान लीजिए कि हम भारतके किसी माने हुए पण्डितसे शंकराचार्यके आदेशकी व्याख्या करनेके लिए कहते हैं। क्या आप उसकी व्याख्याको स्वीकार करेंगे?

हो सकता है कि स्मृतिमें ऐसा कोई प्रमाण न हो; किन्तु स्मृतिपर लिखी गई टीकामें काफी प्रमाण मिलेंगे।

(यहाँपर एक बूढ़े न्यासीने कहा: परशुरामने हमें सारा मलाबार दिया है। अब यदि आप हमसे कहें कि परशुरामका पट्टा दिखाओ तो हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? प्रस्तुत अधिकारके बारेमें भी यही बात है। इसके लिए हम प्रमाण कहाँसे लायें?)

अन्तिम विकल्पके रूपमें, क्या आप पंच फैसलेको स्वीकार करेंगे? आप एक पण्डित नियुक्त करें और मैं भी सत्याग्रहियोंकी ओरसे एक पण्डित नियुक्त करूँ और दीवान साहब निर्णायकका पद लें; आप इस बारेमें क्या कहते हैं?

(कोई उत्तर नहीं)

[अंग्रेजीसे]

एपिक ऑफ त्रावणकोर

२६–१७

१५७. भाषण : वाइकोमकी सार्वजनिक सभामें

१० मार्च, १९२५

मित्रो,

मैं जानता हूँ कि आप मुझे इस बातके लिए तो क्षमा कर ही देंगे कि मैं खड़े होकर भाषण नहीं दे सक रहा हूँ, साथ ही मैं यह भी आशा रखता हूँ कि आप मेरे कुछ मिनट विलम्बसे आनेके लिए भी मुझे क्षमा करेंगे। मैं अपनी ओरसे आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि मेरे यहाँ आनेमें जो देरी हुई है उसका कारण व्यक्तिगत नहीं है। जिस उद्देश्यको लेकर मैं यहाँ आया हूँ, उसीके लिए मै सारा दिन व्यस्त रहा। आप लोग इतनी बड़ी संख्यामें यहाँ उपस्थित हैं, यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है, क्योंकि मैं आप सबको अपने आनेका उद्देश्य बता सकूँगा।

किन्तु सबसे पहले मैं उन सब लोगोंको धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझे कल अभिनन्दन-पत्र भेंट किये थे। जब अभिनन्दन-पत्र भेंट किये जा रहे थे उस समय मुझे एक पत्र मिला जिसमें अभिनन्दनका विरोध किया गया था और मुझे विश्वास दिलाया गया था कि यह अभिनन्दन-पत्र वाइकोमके रहनेवाले सभी लोगोंकी भावनाओंका प्रतिनिधित्व नहीं करता (शर्म, शर्म)। मैं सहर्ष इस विरोधको स्वीकार करता हूँ और आपपर उस स्वीकृतिको प्रकट भी कर रहा हूँ। उस पत्रपर कुछ सज्जनोंके हस्ताक्षर थे, और इसलिए जाहिर है कि कमसे-कम इन लोगोंका समर्थन तो अभिनन्दन-पत्रको या उसकी शब्दावलीको प्राप्त नहीं था। मुझे इससे भी आश्चर्य नहीं हुआ कि इस अभिनन्दन-पत्रको वाइकोमके सभी लोगोंकी स्वीकृति नहीं मिली है। मैं जानता हूँ कि दुर्भाग्यसे आप सब एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नपर सहमत नहीं हैं। जहाँतक मेरा अपना प्रश्न है, अभिनन्दन-पत्रका न दिया जाना ही मुझे अधिक रुचिकर लगता है। किन्तु अभिनन्दन-पत्र भेंट किये ही जाते हैं तो मुझे उनसे जिन सभाओंमें भाषण देने होते हैं भाषणका मसाला मिल जाता है और इस अभिनन्दन-पत्रसे यह तथ्य भली-भाँति प्रकट हो जाता है। जिन लोगोंने आज मुझे अभिनन्दन-पत्र दिया है उन्हें भी मैं धन्यवाद देता हूँ। उसमें भी उसी विषयको, जिसके कारण मैं यहाँ आया हूँ उठाया गया है। वह विषय है अस्पृश्यता, अनुपगम्यता और उन्हें दूर करनेका तरीका अर्थात् वाइकोममें एक विशिष्ट प्रणाली द्वारा अपनाया गया सत्याग्रह। जैसा कि आप जानते हैं, प्रारम्भसे ही इस संघर्षके प्रति मेरी गहरी सहानुभूति रही है और मैं इसकी हार्दिक सराहना करता रहा हूँ। सम्भव है कि सत्याग्रह चलानेवालोंने इस संघर्षमें कोई गलती की हो। संसारमें ऐसा कौन है जिससे गलती न होती हो, किन्तु मुझे इस बातसे सन्तोष है कि यदि कोई गलती हुई भी है तो वह जानबूझकर नहीं की गई। सत्याग्रह, अपने नामके समान ही, कुछ हदतक एक नया सिद्धान्त है। या यों कहिये कि इसमें एक पुराने सिद्धान्तको नये ढंगसे प्रस्तुत किया गया है।

अस्पृश्यता उन प्रश्नोंमें से एक है जिसके लिए खास तरहसे सत्याग्रहका सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि सत्याग्रह स्वयं कष्ट उठानेका तरीका है। अतः इसमें उन लोगोंको कष्ट नहीं दिया जाता जो इसका विरोध करते हैं, बल्कि कष्ट स्वयं ही उठाना पड़ता है। इस समय सत्याग्रहियोंने वाइकोममें यह स्थिति ग्रहण की है कि जो सड़कें बड़े मन्दिरके पाससे गुजरती हैं, उन्हें अछूत या अनुपगम्य समझे जानेवाले लोगोंके लिए खोल दिया जाये। इस दावेका आधार मानवता ही है। जहाँतक हिन्दुओं-का सम्बन्ध है ऐसी कोई भी सड़क जो जनताके अर्थात् सवर्ण हिन्दुओंके लिए खुली है, उन लोगोंके लिए भी खुली रहनी चाहिए जो बहिष्कृत हैं और जिन्हें अछूत या अनुपगम्य कहा जा रहा है। मेरे नम्र विचारमें उनका यह दावा स्वाभाविक और न्यायसंगत है। जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाके लम्बे प्रवासके बाद मैंने जबसे भारतकी जमीनपर पाँव रखा है तभीसे मैं स्पष्ट रूपसे, निडरताके साथ तथा खुलकर अस्पृश्यताके प्रश्नपर बोलता आ रहा हूँ। मैं सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ। मैं इस बातका भी दावा करता हूँ कि मुझे अपने मतलब-भरके लिए शास्त्रोंका काफी ज्ञान है। इसलिए मैं यह सुझाव देनेका साहस करता हूँ कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यताके लिए, हमारे इस पवित्र देशमें जैसा उन्हे व्यवहारमें लाया जाता है, हिन्दू शास्त्रोंमें न तो कोई विधान ही है और न किसी प्रकारकी स्वीकृति ही। (हर्ष-ध्वनि और तालियाँ)। मेरे कथनका आप न तो अनुमोदन करें और न विरोध करें; उसे केवल सुनें। मैं उन लोगोंको जो हिन्दू धर्मके अनुयायी होनेका दावा करते हैं, जो हिन्दू धर्मको अपने प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं, यह सुझाव देनेका साहस करता हूँ कि प्रत्येक अन्य धर्मके समान ही हिन्दू धर्मको शास्त्रोंकी अनुमतिके अलावा भी, अपने-को एक सार्वभौम तर्ककी कसौटीपर कसना जरूरी है। इस तर्क, सार्वभौम ज्ञान तथा शिक्षाके युगमें और ऐसे युगमें जिसमें विभिन्न धर्मोका तुलनात्मक अध्ययन होता हो, जो धर्म केवल अपने ही शास्त्रीय वचनों और प्रमाणोंका अनुसरण करता है, मेरे नम्र विचारमें असफल ही रहता है। मेरे विचारमें छुआछूत मानवतापर एक कलंक है और इसीलिए हिन्दू धर्मपर भी वह कलंक है। यह तर्ककी कसौटीपर खरा नही उतर सकता। यह हिन्दू धर्मके मूलभूत नियमोंके विरुद्ध है। हिन्दू धर्मके तीन सिद्धान्तोंमें से जिन्हें मैं यहाँ प्रतिपादित करना चाहता हूँ, पहला है, "सत्यान्नास्ति परोधर्मः" अर्थात् सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। दूसरा है, "अहिंसा परमोधर्मः"। यदि अहिंसाका अर्थ प्रेम है तो अहिंसा जीवनका कानून है और वह सबसे बड़ा धर्म है; बल्कि वही एकमात्र धर्म है। तो फिर मैं आपसे कहूँगा कि अस्पृश्यताका सत्यके साथ सीधा विरोध है। तीसरा है, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" अर्थात् अकेला ईश्वर ही सत्य है, और सब-कुछ क्षणभंगुर है, माया है। यदि ऐसी बात है तो मैं कहता हूँ कि हमारे लिए अस्पृश्यता-की इस महान् सिद्धान्तके साथ संगति बिठाना असम्भव है। इसलिए मैं अपने कट्टर-पन्थी मित्रोंके साथ तर्क करने आया हूँ। मैं उनसे और उनके सौजन्य तथा सद्भावनासे अपील करने आया हूँ। आज दोपहरके बाद मुझे उनके साथ बैठनेका अवसर मिला। उन्होंने मेरी बात धैर्यपूर्वक और ध्यानसे सुनी। हमने बहस की, मैंने उनके विवेकसे,

उनकी मानवतासे और उनके हिन्दुत्वसे अपील की। मुझे खेदके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि मैं उनपर प्रभाव नहीं डाल सका। मुझे आशा थी कि मैं डाल सकूँगा; किन्तु निराशा एक ऐसा शब्द है जो मेरे शब्दकोशमें नहीं है (हँसी)। मैं तभी निराश होऊँगा जबकि मैं अपनेसे, ईश्वरसे तथा मनुष्यतासे निराश हो जाऊँगा। लेकिन जैसे मैं ईश्वरपर विश्वास करता हूँ, जैसे मैं इस तथ्यपर विश्वास करता हूँ कि हम यहाँ पर एक साथ बैठे हैं, साथ ही जैसे मैं मानवतापर विश्वास करता हूँ, क्योंकि हमारे सारे मतभेदों और हमारे सारे झगड़ेके बावजूद मानवता जीवित रहती है, उसी प्रकार मैं इसपर भी विश्वास करता हूँ कि जिस सत्यके प्रतिनिधि होनेका दावा मैं इस समय कर रहा हूँ वह यहाँ रहनेवाले मेरे कट्टरपन्थी मित्रोंपर अपना प्रभाव डालेगा।

वाइकोमके सत्याग्रहियोंके नामपर और उनकी ओरसे मैंने अपने इन मित्रोंके सामने तीन उदार प्रस्ताव रखे हैं। ये प्रस्ताव मेरे लिए अपरिहार्य हैं। किन्तु मैंने उन्हें खुली छूट दी है कि वे चाहें तो उन्हें स्वीकार करें और चाहें तो अस्वीकार करें। मैंने उन्हें समझानेकी कोशिशकी है कि उन्हें, चाहे परीक्षणके रूपमें ही सही, ये प्रस्ताव स्वीकार कर लेने चाहिए। मुझे इस एकपक्षीय इकरारपर जरा भी संकोच नहीं हुआ है, क्योंकि उस सत्यपर जिसपर मैं निश्चित रूपसे विश्वास करता हूँ, और जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ, मुझे विश्वास है। मैं झगड़को उत्तेजित करने एवं बढ़ानेके लिए नहीं आया हूँ, बल्कि कट्टरपन्थियों और उन लोगोंके बीच जो आज मनुष्यता और न्यायके नामपर काम करनेकी कोशिश कर रहे हैं, शान्ति और सद्भावना स्थापित करनेके लिए आया हूँ। यद्यपि कभी-कभी ऐसा लगता है कि मैं लड़ रहा हूँ, किन्तु मेरा उद्देश्य कभी लड़नेका नहीं रहा, न मैंने कभी यह कोशिश की है कि लड़ाई लम्बी हो, बल्कि मेरा उद्देश्य तो जल्दीसे-जल्दी शान्ति स्थापित करनेका रहा है। जब मैंने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था तब एक अंग्रेज मित्रने मुझसे कहा कि आपका असहयोग ऊपरी मनसे ही है और सच कहें तो आप सहयोगके लिए ही उत्सुक हैं। मैंने तुरन्त उनकी बात स्वीकार कर ली और मैंने उनसे कहा कि आपने मेरे हृदयको सही रूपमें समझा है। और मैं अपने कट्टरपन्थी भाइयोंको भी विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरा इस मामलेमें भी यही रुख है। सत्याग्रह चल रहा है लेकिन यह उनके चाहते ही बन्द कर दिया जायेगा। यह उनपर निर्भर करता है कि वे कोई उचित प्रस्ताव रखें। वह स्वीकार कर लिया जायेगा, केवल ध्यान यही रखना है कि उसमें सत्यका गला न घोंटा जाये। सत्याग्रही अपनी माँगें सदैव कमसे-कम ही रखता है। और इस संघर्षमें भी कमसे-कम माँग रखी गई है। इस प्रकारकी उचित माँग रखना ही सही है कि जो माँगते ही स्वीकार करने योग्य हो। इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि इस संघर्षके बारेमें मनमें कोई दुराव-छिपाव नहीं है।

मैंने भारतके हिन्दुओंको बार-बार बताया है कि अस्पृश्यता-निवारण, मेरे लिए तथा उन लोगोंके लिए जो आज उस पवित्र संघर्षमें रत हैं, क्या अर्थ रखता है। इसका अर्थ वर्णाश्रम धर्मको भंग करना नहीं है। इसका अर्थ अन्तर्जातीय भोजन और अन्तर्जातीय विवाह भी नहीं है। किन्तु इसका इतना अर्थ जरूर है कि मानव

और मानवके बीच ऐसे सामान्य सम्बन्ध जो कि किसी भी सभ्य समाजमें होने चाहिए, स्थापित हों। इसका यह अर्थ जरूर है कि यदि पूजाके स्थान किसी व्यक्तिके लिए खुले हैं तो वे उन सबके लिए, जो हिन्दू कहलाते हैं, खुले रहने चाहिए। किन्तु मैं यह बात स्वीकार करता हूँ कि यदि कोई विशिष्ट वर्ग, मान लीजिए ब्राह्मण मन्दिर बनाना चाहता है और उनमें अब्राह्मणोंको नही आने देना चाहता तो मैं कहता हूँ कि ऐसा करनेका उसे अधिकार है। किन्तु यदि कोई ऐसा मन्दिर है जो अब्राह्मणोंके लिए भी खुला है, तो फिर पंचम जाति जैसी कोई चीज नहीं है जिसे कि उस मन्दिरसे बाहर रखा जाये। इस प्रकारके बहिष्कारके लिए तो मुझे हिन्दू शास्त्रोंमें कोई प्रमाण नजर नहीं आता। इसी प्रकार मेरा दावा है कि स्कूलों-जैसे सार्वजनिक स्थान जो कि अन्य वर्गोंके लिए खुले हों, समान रूपसे अछूतोंके लिए भी खुले रहने चाहिए। यही बात कुओं, तालाबों तथा नदी आदि जलाशयोंपर भी लागू होनी चाहिए। उन लोगोंकी ओरसे जो अस्पृश्यता और अनुपगम्यताके विरुद्ध संघर्षमें संलग्न हैं, मेरी इतनी ही माँग है।

किन्तु जहाँतक वाइकोमका सम्बन्ध है, मैं स्थितिको थोड़ा और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। वर्तमान सत्याग्रह केवल अछूतोंके उन सड़कोंसे गुजरनेके अधिकारोंकी पुष्टिके लिए किया गया है जिनसे गुजरनेका ईसाइयों, मुसलमानों तथा सवर्ण हिन्दुओंको अधिकार है। सत्याग्रही आज मन्दिर प्रवेशके लिए नहीं लड़ रहे हैं। वे स्कूलोंमें प्रवेशके लिए — मैं नहीं जानता कि त्रावणकोरके स्कूलोंमें प्रवेशपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध है या नहीं — नहीं लड़ रहे हैं। यह बात नहीं कि वे ऐसा करनेका दावा नहीं करते। किन्तु मैं वर्तमान संघर्षका सार आपके सामने रख रहा हूँ। चूँकि सत्याग्रह हृदय परिवर्तन और विश्वासकी प्रणाली है, इसमें जबरदस्तीकी गुंजाइश ही नहीं होती। इसीलिए मैं प्रसन्नतापूर्वक त्रावणकोर विधानसभामें दिये गये दीवान साहबके भाषणमें कही गई बातसे पूरी तरह सहमत हूँ;[1] यदि मुझे ऐसा जान पड़ा है कि वाइकोमके सत्याग्रही, कट्टरपंथी हिन्दुओंपर अनुचित दबाव डालनेके लिए अपन सिद्धान्तके विपरीत हिंसाका उपयोग करते हैं या कोई दूसरा तरीका अपनाते हैं तो आप देखेंगे कि प्रमाण मिलनेपर मैं उन तथाकथित सत्याग्रहियोंसे अपनेको बिलकुल अलग कर लूँगा। किन्तु जबतक सत्याग्रही अपने करारकी शर्तोंके अन्तर्गत बने रहते हैं तबतक मेरा यह निश्चित कर्त्तव्य है कि मैं एक अकेले और विनम्र व्यक्तिके रूपमें जो सहायता दे सकता हूँ, उन्हें देता रहूँ। इसलिए मैं अपनी सारी शक्तिके साथ वाइकोमके उन कट्टरपन्थी ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंसे जो कि इस संघर्षके विरुद्ध है, अपील करता हूँ कि वे संघर्षका अध्ययन उसके सभी पहलुओंको नजरमें रखकर करें और संघर्षको विवेकदृष्टिसे देखकर यदि उन्हें ऐसा लगे कि यह संघर्ष न्यायसंगत है और वे तरीके जो मानवताके अधिकारोंकी पुष्टिके लिए सत्याग्रहियोंने अपनाये हैं, उचित, अहिंसक और तर्कसंगत हैं तो वे न्याय और मानवताके पक्षमें खड़े हों।

१. देखिए परिशिष्ट १।

मुझे इस बातकी ताईद करनेमें प्रसन्नता होती है कि पुलिस अधिकारियों तथा सत्याग्रहियोंके बीच आम तौरपर अबतक सम्बन्ध अच्छे ही रहे हैं। उन्होंने दिखा दिया है कि सभ्य और सौजन्यपूर्ण लड़ाईको किस प्रकार बिना किसी रोषके, बिना किसी तरहकी कठोर बातें कहे तथा बिना किसी हिंसाके चलाया जा सकता है। मैं जानता हूँ, एकाएक पूर्वग्रहोंपर विजय पाना बड़ा कठिन है। अस्पृश्यता एक ऐसी कुप्रथा है जो दीर्घकालसे चली आ रही है। इसीलिए मैंने अपने सत्याग्रही मित्रोंसे कहा है कि उन्हें अत्यन्त धैर्यसे काम लेना होगा। समय हमेशा उनका साथ देता है जो धैर्यसे काम लेते हैं। मेरा खयाल है कि वाइकोमकी जनताकी राय भी उनके ही पक्षमें है। वाइकोमसे बाहरकी जनताकी राय भी उन्हींके पक्षमें है। संसारकी राय उनके पक्षमें बनती जा रही है और इसलिए यदि सत्याग्रही केवल सारे नियमोंका पालन करते हुए सत्याग्रह करते रहे और धीरज खोये बिना चुपचाप कष्ट सहन करते रहे तो निस्सन्देह विजय उन्हींकी होगी। त्रावणकोरकी सरकारने, जहाँतक मुझे दीवान साहबके भाषणसे मालूम होता है, दोनों पक्षोंके प्रति समान दृष्टि रखी है। जब मैंने अपने सत्याग्रही भाइयोंसे यहाँपर यह कहा कि दीवान साहबने जो-कुछ कहा है वह आपत्तिसे परे नहीं है तो उन्होंने सहमति प्रकट की। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि यदि समाजके दोनों पक्ष आपसमें मिलकर बिना शासकीय हस्तक्षेपके इस प्रश्नका कोई तर्कसंगत तथा सम्मानपूर्ण हल निकाल लें तो यह श्रेयस्कर होगा। दीवान साहबने तो कट्टरपन्थी लोगोंपर अपना मन्तव्य प्रकट कर ही दिया है। उन्होंने उनसे समयके साथ चलनेके लिए तथा समयकी भावना पहचाननेके लिए कहा है। मुझे आशा है कि मेरे कट्टरपन्थी मित्र उनकी दी हुई इस समुचित सलाहको सुनेंगे। कुछ भी हो अपनी ओरसे मैं उन्हें पूरा-पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि चाहे वे कुछ भी सोचें, चाहे जैसा व्यवहार करें, मेरे प्रस्तावको स्वीकार करें या न करें, मैं तो केवल हिन्दू-धर्मके उस रूपके आदेशानुसार कार्य करूँगा, जिसे मैं जानता हूँ। मैं पृथ्वी-तलपर किसीको भी अपना दुश्मन नहीं समझता। इसलिए उनके और अपने बीच मतभेद होनेपर भी मैं उन्हें प्यार करूँगा। मैं हमेशा ईश्वरसे प्रार्थना करता रहूँगा कि वह उन्हें सही दिशामें चलनेकी प्रेरणा दे, उनके ज्ञान-चक्षु खोले और वे यह समझकर कि भविष्य कहाँ जा रहा है अपने इन पद-दलित देशभाइयोंके साथ न्याय करें। साथ ही मैं ईश्वरसे अत्यन्त दीनतापूर्वक यह प्रार्थना भी करता हूँ कि यदि मैंने हिन्दू शास्त्रोंको गलत पढ़ा है, यदि मैंने मानवताको गलत समझा है और यदि मैंने सत्याग्रहियोंको सलाह देनेमें गलती की हो तो वह मेरी भी आँखें खोले, मुझे अपनी गलती सुझाये और मुझे शक्ति और साहस प्रदान करे ताकि मैं अपनी गलती स्वीकार कर सकूँ और अपने कट्टरपन्थी भाइयोंसे क्षमा-याचना कर सकूँ।

एक बात और कहकर मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा। जहाँ अस्पृश्यताके प्रश्नपर आपके और मेरे बीच मतभेद है, वहाँ मुझे आशा है कि दूसरे प्रश्नपर जिसका सम्बन्ध देशके गरीबसे-गरीब लोगोंसे है, मतभेद होनेका सवाल ही नहीं उठता। मेरा अर्थ चरखे और खद्दरसे है। देशके गरीब लोगोंके प्रति आपका कर्त्तव्य है कि

आप चरखेको निष्ठापूर्वक अपनायें और आपका उनके प्रति यह कर्त्तव्य भी है कि आप चरखेसे उपलब्ध खद्दरको पहनें और इस तरह अपने देशके गरीबसे-गरीब स्त्री-पुरुषोंके हाथमें दो पैसे पहुँचानेकी व्यवस्था करें। जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, मैं तबतक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जबतक कि राजा और रंक, वाइसराय और उसका अर्दली सिरसे पाँवतक हथकते और हथबुने कपड़े न पहनने लगें।

तीसरी बातके बारेमें मुझे आपसे कहनेकी जरूरत नहीं। वह है हिन्दू-मुस्लिम एकता। इस सम्बन्धमें आपको भारतके शेष भागोंको बहुत-कुछ सिखाना है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि त्रावणकोरमें विभिन्न धर्म और जातियोंके लोग बड़े मेल-जोल और सौहार्दके साथ रहते हैं। मैं कह सकता हूँ कि वास्तवमें है भी ऐसा ही। मुझे आशा है कि शेष भारत भी इसी प्रशंसनीय भावनाका अनुसरण करेगा जो कि आप लोगोंको प्रेरणा देती है। आपने धैर्यके साथ मेरा भाषण सुना है, उसके लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ। मैं इस आशा और उत्कट प्रार्थनाके साथ अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि वाइकोममें जो संघर्ष चल रहा है उसका अन्त केवल उसी प्रकार हो जिसे शोभनीय कहा जाये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-३-१९२५

१५८. भाषण: वाइकोमके सत्याग्रह आश्रममें[1]

११ मार्च, १९२५[2]

वाइकोममें सत्याग्रह आश्रमके निवासियोंके सामने मैंने जो-कुछ कहा उसे लगभग ज्योंका-त्यों नीचे दिया गया है। आश्रममें इस समय पचाससे ऊपर स्वयंसेवक हैं जो वाइकोम मन्दिरके चार प्रवेश द्वारोंकी रक्षाके लिए बनाई गई बाड़ोंके सामने खड़े रहकर या बैठकर धरना दे रहे हैं। धरना देनेवाली एक-एक टोली वहाँ छः घंटे रहती है और सूत कातती है। दो दल बारी-बारीसे वहाँ भेजे जाते हैं। मैं यह भाषण इस विचारसे यहाँ दे रहा हूँ कि आम लोग इसमें दिलचस्पी लेंगे; समस्त सत्याग्रहियोंसे भी मैं यही आशा रखता हूँ। मो० क० गांधी।

मुझे दुःख है कि मैं आपसे पूरी और सन्तोषजनक ढंगसे बातचीत किये बिना ही आज चला जाऊँगा। लेकिन लगता है कि इससे ज्यादा कुछ करना सम्भव नहीं है। मेरे कार्यक्रमकी व्यवस्था करनेवालोंकी राय है कि उद्देश्यकी सफलताकी दृष्टिसे मुझे वाइकोमके अलावा और भी जगहें देखनी चाहिए। मैंने उनकी सलाह मान ली है, लेकिन अपने विगत अनुभवोंके आधारपर मेरी निश्चित धारणा यही है कि आन्दोलनकी सफलता किसी बाहरी सहायताकी अपेक्षा खुद आपपर ही अधिक निर्भर

१. यह "सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य" शीर्षकसे यंग इंडियामें छपा था।

२. १४-३-१९२५के हिन्दूके अनुसार।

करती है। यदि स्वयं आपमें कुछ शक्ति नहीं है, तो फिर मेरे थोड़ी देरके लिए यहाँ आ जानेसे चाहे कितना ही उत्साह क्यों न पैदा हो जाये, वह सब व्यर्थ ही है। और यदि मैं यहाँ न आया होता और जनतामें भी कोई उत्साह न होता, परन्तु यदि आप अपने प्रति सच्चे रहे होते तो किसी बातकी कमी न रहती। इस तरह-के उद्देश्यके लिए जितने उत्साहकी जरूरत होती, वह आपके कार्यसे पैदा हो जाता। मैंने यहाँ जितना समय गुजारा है अगर उससे ज्यादा समयतक ठहर सकता तो और भी अच्छा होता। जो भी हो, अपने मित्रोंकी सलाहके विरुद्ध मेरे लिए यहाँ और ठहरना सम्भव नहीं है।

इसलिए कमसे-कम शब्दोंमें मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैं आपसे क्या अपेक्षा रखता हूँ। मैं चाहूँगा कि आप कार्यक्रमके राजनीतिक पहलूको भूल जायें। इस संघर्षके राजनीतिक परिणाम भी हैं, लेकिन उनकी आप कोई चिन्ता न करें। अगर आप उसकी चिन्ता करेंगे तो आप सच्चे फलसे तो हाथ धो ही बैठेंगे, साथ ही राजनीतिक परिणामोंसे भी वंचित रह जायेंगे। और जब संघर्ष अपनी चरम सीमा-तक पहुँचेगा तब आप उसके अयोग्य सिद्ध होंगे। इसलिए भले ही आपको डर लगे, लेकिन मैं आपके सामने संघर्षका सच्चा स्वरूप रखना चाहता हूँ। यह संघर्ष हिन्दु-ओंके लिए एक अत्यन्त धार्मिक संघर्ष है। हम हिन्दू धर्मके सबसे बड़े कलंकको मिटाने-की कोशिश कर रहे हैं। जिस पूर्वग्रहके विरुद्ध हमें लड़ना है वह युगों पुराना है। मन्दिरके चारों तरफके रास्ते हमारी रायमें सार्वजनिक रास्ते हैं। इन्हें अन्त्यजोंके लिए खुलवानेका यह संघर्ष तो बड़े युद्धका एक छोटा-सा अंग है। अगर वाइकोममें इन रास्तोंके खुलनेके साथ ही हमारी लड़ाई खतम हो जानेवाली होती तो आप विश्वास रखें कि मैं इसके बारेमें चिन्ता न करता। इसलिए अगर आप समझते हों कि वाइकोममें ये रास्ते अन्त्यजोंके लिए खुलनेके साथ ही यह लड़ाई खत्म हो जायेगी तो आप भ्रममें हैं। रास्ता तो खुलना ही चाहिए; वह खुलकर ही रहेगा। लेकिन यह तो शुरूआत ही होगी। असली उद्देश्य तो सम्पूर्ण त्रावणकोरमें ऐसे सभी रास्ते अन्त्य-जोंके लिए खुलवानेका है। और केवल यही नहीं हम तो यह आशा करते हैं कि हमारी कोशिशोंसे अछूतों और अन्त्यजोंकी सामान्य दशामें भी सुधार होगा। इसके लिए जबरदस्त बलिदानकी जरूरत होगी। कारण, हमारा उद्देश्य विरोधियोंके प्रति कोई भी हिंसात्मक कार्य करके कुछ प्राप्त करना नहीं है। वैसा करना तो हिंसासे या जबर्दस्तीसे मत परिवर्तन कराना होगा, और यदि हम धार्मिक मामलोंमें जबरदस्तीका सहारा लें तो इसमें कोई शक नहीं कि वह आत्मघात होगा। इस संघर्षको हमें पूर्ण अहिंसासे, अर्थात् स्वयं कष्ट सहन करते हुए चलाना है। यही है सत्याग्रहका अर्थ। सवाल यह है कि इस लक्ष्यकी ओर बढ़ते हुए आपपर जो मुसीबतें आयेंगी वे तो आपके भाग्यमें हैं ही; पर क्या आपमें उन सभीको झेलनेकी सामर्थ्य है? कष्ट-सहन करते हुए भी आपके मनमें अपने विरोधियोंके प्रति लेशमात्र भी कटुता नहीं होनी चाहिए। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि यह कोई यन्त्रवत् करने-जैसा काम नहीं है। इसके विपरीत मैं चाहता हूँ कि आप अपने विरोधियोंके प्रति प्रेमका भाव रखें, और

इसका तरीका यह है कि आप उन्हें उनके उद्देश्यके प्रति उतना ही सच्चा होनेका श्रेय दें जितना सच्चा होनेका आप स्वयं दावा करते हैं। मैं जानता हूँ कि यह काम कठिन है। मै स्वीकार करता हूँ कि मैं कल जब उन लोगोंसे जो अन्त्यजोंको मन्दिरके रास्तोंसे दूर रखनेके अपने अधिकारका आग्रह करते है, बातें कर रहा था तब मुझे वैसा करना कठिन लग रहा था। मैं मानता हूँ कि उनकी बातोके पीछे स्वार्थ-भावना थी। यदि यह सच हो तो मैं उन्हें उद्देश्यके प्रति ईमानदारीका श्रेय कैसे दे सकता हूँ? मै इसके बारेमें कल सोचता रहा और आज सुबह भी मैंने सोचा। मैंने अपने आपसे सवाल किया : "उनकी स्वार्थ-भावना या उनका अपना हित आखिर किस बातमें है? यह सच है कि उनके अपने कुछ हित हैं, जिन्हें वे सिद्ध करना चाहते हैं। लेकिन उसी तरह हमारे हित भी हैं, जिन्हें हम पूरा करना चाहते हैं। अन्तर इतना ही है कि हम अपने हितको शुद्ध और इसलिए निःस्वार्थ मानते हैं। लेकिन इस बातका फैसला कौन करेगा कि किस जगह निःस्वार्थ भाव समाप्त होता है और स्वार्थभाव आरम्भ हो जाता है। हो सकता है कि निःस्वार्थभाव स्वार्थभावका ही शुद्धतम रूप हो।" यह बात मैं केवल तर्कके लिए ही नही कह रहा हूँ बल्कि मैं यह बात सचमुच महसूस करता हूँ। मै उनके मनकी स्थितिका उन्हींके दृष्टिकोणसे विचार कर रहा हूँ, न कि अपने दृष्टिकोणसे। अगर वे हिन्दू न होते तो उन्होंने कल जिस ढंगसे बात की, उस ढंगसे न करते। और ज्यों ही हम किसी चीजके बारेमें उस ढगसे विचार करने लगते हैं, जिस ढंगसे हमारे विरोधी करते हैं, त्यों ही हम उनके साथ पूरा न्याय करने योग्य बन जाते हैं। मै जानता हूँ कि इसके लिए तटस्थ मनःस्थिति आवश्यक है, और ऐसी मनःस्थितितक पहुँचना बहुत ही कठिन है। तथापि एक सत्याग्रहीके लिए यह सर्वथा अनिवार्य है। अगर हम अपने विरोधीकी स्थितिमें अपनेको रखकर उसके दृष्टिकोणको समझें तो दुनियामें से तीन-चौथाई दुःख और गलतफहमियाँ समाप्त हो जायेंगी। तब हम अपने प्रतिपक्षीकी बातसे जल्दी ही सहमत हो जायेंगे या उसके प्रति उदार हो जायेंगे। इस मामलेमें तो अपने प्रतिपक्षियोंके साथ जल्दी सहमत होनेका कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि हमारे आदर्श एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। लेकिन हम उनके प्रति उदार हो सकते है और यह मान सकते हैं कि उनका वास्तवमें वही अभिप्राय है जो वे कहते हैं। वे अन्त्यजोंके लिए रास्ते नहीं खोलना चाहते। वे स्वार्थकी वजहसे वैसा कहते हों या अज्ञानके कारण, हमारा विश्वास तो यही है कि ऐसा कहना उनकी गलती है। इसलिए हमारा काम यह है कि हम उन्हें दिखा दें कि वे गलतीपर हैं, और यह काम हमें अपने कष्ट-सहन द्वारा करना चाहिए। मैंने पाया है कि जहाँ पूर्वग्रह युगों पुराने हों और तथाकथित धार्मिक प्रमाणोंपर आधारित हों, वहाँ केवल तर्क द्वारा समझानेकी कोशिश बेकार जाती है। तर्कको कष्ट-सहन द्वारा मजबूत करना होगा और कष्ट-सहन विवेकको जगा देता है। इसलिए हमारे कार्योंमें जबरदस्ती लेश-मात्र भी नही होनी चाहिए। हमें अधीर नहीं बनना चाहिए और हम जो तरीके अपना रहे है उनमें हमारी अडिग आस्था होनी चाहिए। जो तरीका हम इस समय अपना रहे हैं वह यह है

कि हम चारों बाड़ों तक जायें और रोके जानेपर वहीं बैठ जायें और कताई करें। यही क्रम रोज चलता रहे। हमें विश्वास करना चाहिए कि इस तरीकेसे वे रास्ते खुल जायेंगे। मैं जानता हूँ कि यह एक कठिन और धीमी प्रक्रिया है। किन्तु यदि आपको सत्याग्रहकी प्रभावकारितामें विश्वास है तो आप इस तिल-तिल होनेवाली यन्त्रणा और कष्ट-सहनमें भी आनन्दका अनुभव करेंगे — और प्रतिदिन चिलचिलाती धूपमें वहाँ जाकर बैठनेमें जो तकलीफ होती है, उसे अनुभव नहीं करेंगे। यदि आपको अपने उद्देश्यमें, अपने साधनमें और ईश्वरमें आस्था है तो तपता हुआ सूरज आपके लिए शीतल बन जायेगा। आप थककर यह न कहें कि 'और कबतक', और न कभी झुँझलायें। जिस पापके लिए हिन्दू धर्म उत्तरदायी है, उसके लिए आपके प्रायश्चित्तका यह तो एक छोटा-सा अंश है।

आप लोगोंको मैं इस अभियानमें सिपाहियोंकी तरह मानता हूँ। आप हर चीज-पर स्वयं विचार करके निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते। आपको आश्रमकी व्यवस्थामें विश्वास है इसीलिए आप इसमें आये हैं। इसका मतलब यह नहीं कि आपको मुझमें विश्वास है। मैं तो व्यवस्थापक नहीं हूँ। जहाँतक आदर्शों और मोटे-मोटे निर्देशोंका सवाल है, बस उसी हदतक मैं आन्दोलनका संचालन कर रहा हूँ। इसलिए आपका विश्वास उनमें होना चाहिए जो इस समय इसके प्रबन्धक हैं। आश्रम आनेसे पहले पसन्द-नापसन्द करनेका अधिकार आपको था। लेकिन एक बार फैसला करने और आश्रम आ जानेके बाद शंका उठानेका अधिकार आपको नहीं है। अगर हमें एक शक्तिशाली राष्ट्र बनना है तो आपको समय-समयपर जो निर्देश दिये जायें उनका पालन करना चाहिए। यही एक तरीका है जिससे राजनीतिक या धार्मिक जीवनका निर्माण हो सकता है। आपने अपने लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये होंगे और उन्हीं सिद्धान्तोंके अधीन होकर आप इस संघर्षमें शामिल हुए होंगे। जो लोग आश्रममें रुके रहते हैं वे भी संघर्षमें उतना ही हिस्सा ले रहे हैं जितना वे जो नाकेबन्दियों-पर जाकर सत्याग्रह करते हैं। संघर्षके सिलसिलेमें किया जानेवाला प्रत्येक काम समान रूपसे महत्वपूर्ण है, और इसलिए आश्रममें सफाई रखनेका काम भी उतना ही जरूरी है जितना कि नाकेबन्दियोंपर जाकर सूत कातनेका। और यदि इस स्थानपर टट्टियों और अहातेकी सफाईका काम कताईकी तुलनामें अधिक अरुचिकर है, तब तो उसे और भी महत्वपूर्ण और हितकर समझना चाहिए। व्यर्थकी बातचीतमें एक क्षण भी बर्बाद नहीं करना चाहिए, बल्कि हमारे सामने जो काम है उसीमें हमें पूरे मनोयोगसे लगे रहना चाहिए; यदि हममें से हरएक इसी सच्ची भावनासे काम करेगा तो आप देखेंगे कि काममें कितना आनन्द मिलता है। आश्रममें हर वस्तुको आप अपनी सम्पत्ति समझें, ऐसी सम्पत्ति न समझें जो इच्छानुसार व्यर्थ ही बर्बाद की जा सकती है। आपको अन्नका एक दाना, कागजका एक टुकड़ा भी बर्बाद नहीं करना चाहिए और इसी प्रकार अपने समयका एक क्षण भी। यह समय हमारा नहीं है। हमारे समयपर राष्ट्रका अधिकार है, और हम राष्ट्रके न्यासियोंके रूपमें उसका उप-योग करें।

मैं जानता हूँ कि आपको यह सब बहुत दुश्वार मालूम होगा। बातको प्रस्तुत करनेका मेरा तरीका कठोर प्रतीत हो सकता है, लेकिन इसे किसी और ढंगसे प्रस्तुत करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। अगर मैं इसे आसान चीज मानकर आपको धोखा दूँ, तो मैं गलत काम करूँगा।

हमारा धर्म बहुत विकृत हो गया है। राष्ट्रके रूपमें हम अकर्मण्य हो गये हैं और समयका महत्त्व भूल गये हैं। हमारे हर कामके पीछे स्वार्थ रहता है। हममें जो बड़ेसे-बड़े लोग हैं उनमें भी परस्पर ईर्ष्याभाव है। हम एक दूसरेके प्रति अनुदार भाव रखते हैं। जिन चीजोंकी ओर मैंने आपका ध्यान खींचा है, अगर मैं वैसा न करूँ तो इन बुराइयोंसे पिण्ड छुड़ाना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। सत्याग्रह तो सत्यकी अनवरत खोज है, सत्यको खोजनेका दृढ़ संकल्प है। मैं तो केवल आशा ही कर सकता हूँ कि आप जो-कुछ कर रहे हैं, उसका अर्थ समझेंगे। यदि आप उसका अर्थ समझ लेंगे तो आपका रास्ता आसान हो जायेगा — आसान इसलिए कि आप कठिनाइयोंमें भी आनन्दका अनुभव करेंगे और जब हर आदमी निराश होगा उस समय भी आपके मनमें आशाका उत्साह बना रहेगा। ऋषियों और कवियोंने धार्मिक पुस्तकोंमें जो दृष्टान्त दिये हैं, मुझे उनपर विश्वास है। उदाहरणार्थ, खौलते तेलमें डुबोये जाते समय सुधन्वाका मुस्कराना एक ऐसी घटना है जिसकी सम्भावनामें मुझे अक्षरशः विश्वास है। कारण, सुधन्वाके लिए उबलते तेलमें डाले जानेसे भी बड़ी यन्त्रणा थी अपने रचयिताको भूलना। और यदि हममें इस आन्दोलनमें सुधन्वाकी-सी आस्थाका एक कण भी हो तो वैसा ही यहाँ भी एक छोटे पैमानेपर हो सकता है।[1]

इसके बाद कार्यकर्त्ताओंने महात्माजीसे बहुतसे प्रश्न किये। श्री टी० आर० कृष्णस्वामी अय्यरने पूछा कि यह संघर्ष कितने दिनोंतक जारी रखा जाना चाहिए। महात्माजीने कहा :

मैं नहीं जानता। यह कुछ दिनोंमें ही समाप्त हो जा सकता है और हमेशा चलता भी रह सकता है। दक्षिण आफ्रिकाका संघर्ष आरम्भ करते समय मैंने सोचा था कि वह एक महीनेमें समाप्त हो जायेगा, लेकिन वह आठ सालतक जारी रहा।

यह पूछे जानेपर कि बड़े-बड़े जत्थे नाकेबन्दियोंपर क्यों न भेजे जायें, उन्होंने कहा कि इससे उपद्रव और गलतफहमी होगी, और दूसरे इसके लिए हमारे पास काफी आदमी नहीं हैं। मेरी रायमें जनमत तैयार करनेके लिए काफी काम करना चाहिए। आपका दावा है कि जनमत आपके पक्षमें है, जो कुछ हदतक ठीक है। लेकिन अभी जनमत प्रभावशाली नहीं हुआ है। इसके लिए जबर्दस्त संगठनकी आवश्यकता, है जो आपके पास नहीं है। मुझे संघर्षको और तेज करनेमें कोई लाभ नजर नहीं आता। कार्यकर्त्ताओंको मैं तीन महीनेमें हिन्दी, और साथ ही संस्कृत भी सीखनेकी सलाह देता हूँ। उन्हें ऐसे काममें लगना चाहिए जिससे यह आश्रम आगे चलकर आत्मनिर्भर बन जाये। यदि केरल और त्रावणकोरके बाहर अन्य जगहोंसे

१. इसके बादका अंश हिन्दूसे लिया गया है।

चन्दा माँगा गया तो लोग ढीले पड़ जायेंगे। चम्पारनमें मुझे सभी सूत्रोंसे आर्थिक मददके प्रस्ताव आये, लेकिन अपने एक निजी दोस्तके अलावा मैंने और किसीकी मदद लेनेसे इनकार कर दिया। इसी प्रकार अहमदाबादमें मजदूरोंकी हड़तालके दौरान मैंने एक व्यक्ति द्वारा हजारों रुपयेकी मददके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया था। खेड़ाकी लड़ाईमें मैंने निजी दोस्तोंकी कुछ मदद जरूर स्वीकार की, लेकिन जो धन मिला उसका आधा भी खर्च नहीं हुआ। दक्षिण आफ्रिकामें भी एकत्रित राशिमें से तीन-चार लाख रुपये बच गये थे। मैंने जितनी भी लड़ाइयाँ लड़ी हैं उनमें से एकमें भी प्राप्त रकमसे अधिक खर्च करना पड़ा हो, ऐसा याद नहीं आता। और जो धन-राशि हर संघर्षमें मिली वह बिना कठिनाई या दौड़धूपके मिली।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-३-१९२५

हिन्दू, १४-३-१९२५

१५९. राष्ट्रीय शिक्षा

एक राष्ट्रीय संस्थाके उपाचार्यने लिखा है:[1]

> सरकारी स्कूलोंकी युवा-पीढ़ीमें दासताकी जो मनोवृत्ति पैदा हो जाती है उससे उनको बचानेके लिए इस शताब्दीके प्रथम दशकमें देशमें बड़े पैमानेपर राष्ट्रीय शिक्षाका आन्दोलन आरम्भ किया गया था। उसका उद्देश्य केवल ऐसे स्कूल खोलना था जिनमें 'राष्ट्रीय आधारपर और राष्ट्रीय नियन्त्रणमें' शिक्षा दी जाती हो।. . .उसके फलस्वरूप कार्यकर्त्ताओंका एक ऐसा दल सामने आया जिसमें से बहुतोंने स्वतन्त्रताके संघर्षमें जोरदार भाग लिया। फिर भी इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि विशुद्ध शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनके रूपमें उसका न तो मूल ही पृथक था और न अस्तित्व ही। . . .
>
> असहयोग आन्दोलनसे राष्ट्रीय शिक्षाके उद्देश्यको दूसरी बार प्रोत्साहन मिला और वह वास्तवमें एक जबरदस्त प्रोत्साहन था। देश-भरमें एकाएक सैकड़ों स्कूल खुल गये। उनका उद्देश्य क्षेत्रकी दृष्टिसे सीमित था। उनका मुख्य उद्देश्य असहयोगी छात्रोंको केवल एक वर्षतक पढ़ानेकी व्यवस्था करना ही था। लड़कोंको स्वराज्यके सैनिक अर्थात् उन्हें असहयोगके विभिन्न कार्यक्रमोंको चला सकने योग्य बनाना उनका उद्देश्य था। शिक्षा आन्दोलनका राजनैतिक आन्दोलनसे अलग अस्तित्व नहीं था। जब राजनैतिक आन्दोलन कमजोर पड़ा तब शिक्षा आन्दोलन भी अशक्त हो गया।

१. अंशतः उद्धृत।

इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षाको हमेशा कार्यक्रममें दूसरे दर्जेका या गौण स्थान दिया गया और किसी भी नेताने उसपर कभी शास्त्रीय ढंगसे विधिवत् स्वतन्त्र विचार नहीं किया। ऐसा लगता है कि आपको भी इस आन्दोलनसे उतना प्यार नहीं है जितना आपको खद्दरसे है; अथवा यह भी हो सकता है कि आपकी दृष्टिमें खद्दर और राष्ट्रीय शिक्षा एक ही वस्तु हों। स्वराज्यवादी लोगोंको केवल कौंसिलोंसे ही मोह है। इन बातोंपर विचार करते हुए क्या इस आन्दोलनकी कुछ भी प्रगति सम्भव है? और यदि यह आन्दोलन बार-बार असफल होता है तो क्या अधिकांश लोगोंपर इसका प्रभाव निरुत्साहजनक और शोचनीय नहीं होगा?. . .

शिक्षाका उद्देश्य बच्चोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका विकास करना है, जिससे वे देशके योग्य नागरिक बन सकें। यह उनकी माध्यमिक स्कूलोंकी अवधिमें ही सम्भव है। उससे पहले वे बहुत छोटे होते हैं और उसके बाद उनका चरित्र विशिष्ट दिशामें मुड़ चुका होता है। और फिर उसे अभीष्ट दिशामें मोड़ना कठिन होता है। आपके मतानुसार माध्यमिक स्कूलोंमें बच्चोंको मुख्यतः सूत कातने, कपड़ा बुनने और उनसे सम्बन्धित दूसरे सभी कामोंमें लगाना चाहिए। विभिन्न रुचियों और विभिन्न योग्यताके छात्रोंको एक ही ढांचेमें ढालने की कोशिशमें क्या शिक्षा अस्वाभाविक नहीं हो जायेगी और क्या उससे बच्चोंके मनोंपर बोझ नहीं पड़ेगा?. . .सूत कातना और कपड़ा बुनना पाठ्यक्रमका एक अंग हो सकता है, लेकिन वह पूरा पाठ्यक्रम नहीं बन सकता और उसे ऐसा बनाया भी नहीं जाना चाहिए। क्या राष्ट्रीय शिक्षाके कुछ व्यापक बुनियादी और निश्चित सिद्धान्त स्थिर करना और प्रत्येक संस्थाको अपनी आवश्यकता और सामर्थ्य तथा छात्रोंकी शक्ति और विवेकके अनुसार कार्य करने देना अधिक अच्छा नहीं है?. . .

पिछले लगभग ४० बरसोंमें राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें कुछ प्रयोग किये गये हैं। क्या आप कमसे-कम एक ऐसी संस्था बता सकते हैं जिसको आदर्श मानकर उसका अनुकरण करनेके लिए हम गर्वपूर्वक सरकारसे कह सकें?

भौतिक सभ्यतामें, जिसके बिना हम निश्चय ही पिछड़ जायेंगे, सारा संसार प्रगति कर रहा है। अब यह एक निश्चित तथ्य हो गया है कि भारत पश्चिमी राष्ट्रोंके अधीन इसलिए हुआ कि उसकी वैज्ञानिक और भौतिक उन्नति पर्याप्त नहीं थी। हमने इतिहाससे यह शिक्षा ली है और इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन ऐसा लगता है कि आप भौतिक विज्ञान और रसायन-शास्त्र-जैसे विषयोंको अधिक महत्व नहीं देते। क्या यह अजीब बात नहीं है?

मुझे यह नहीं मालूम कि सन् १९०६ में स्थितियाँ क्या थीं, लेकिन १९२१ में हालत कैसी थी यह मैं जानता हूँ। यदि राष्ट्रीय शिक्षाको हमें सच्चे अर्थोंमें राष्ट्रीय

बनाना हो तो उसमें राष्ट्रकी तत्कालीन दशा प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। और चूंकि इस समय राष्ट्रीय दशा अनिश्चित है, अतः राष्ट्रीय शिक्षा भी न्यूनाधिक अनिश्चित रहेगी। जहाँ आक्रमण हुआ है और जिस स्थानको शत्रुने घेर लिया है, वहाँके बच्चे क्या करते हैं? क्या वे घेरा डालनेवालोंको पीछे हटानेमें अपनी सामर्थ्यके अनुसार भाग नहीं लेते और अपने आपको बदली हुई परिस्थितियोंके अनुकूल नहीं बना लेते? क्या वह उनकी सच्ची शिक्षा नहीं है? क्या शिक्षा, पढ़नेवाले बच्चोंमें पूर्ण मनुष्यता-का विकास करनेकी कलाका नाम नहीं है? वर्तमान शिक्षा-प्रणालीका सबसे बड़ा दोष यह है कि उसपर वास्तविकताकी छाप नहीं है; बच्चोंमें देशकी विभिन्न आव-श्यकताओंकी प्रतिक्रिया नहीं होती। सच्ची शिक्षा आसपासकी स्थितियोंके अनुरूप होनी चाहिए और यदि वह वैसी नहीं है तो उससे स्वस्थ विकास नहीं होगा। इस प्रति-क्रियाकी आवश्यकता है: इसी उद्देश्यपूर्तिके लिए शिक्षामें असहयोग दाखिल किया गया है। यह सच है कि हमने आदर्शके अनुकूल आचरण नहीं किया है। इसका कारण है हमारी सीमाएँ और इसका कारण यह है कि हम अपनी परिस्थितियोंके मोहक प्रभावसे मुक्त होनेमें असमर्थ रहे हैं।

लेकिन ऐसा कहनेका अर्थ यह नहीं कि हमारी शिक्षा संस्थाएँ कताई और बुनाईकी संस्था-मात्र बन कर रह जायें। मैं कताई और बुनाईको किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीका आवश्यक अंग समझता हूँ। किन्तु मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि बच्चोंका सारा समय इसीमें लग जाये। एक कुशल चिकित्सककी भाँति मेरा ध्यान रोगीके रोग-पीड़ित अंगपर केन्द्रित रहता है और मैं उसीका उपचार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि अन्य अंगोंकी सार-सँभाल करनेका सबसे अच्छा तरीका भी यही है। मैं बच्चेके हाथोंका, दिमागका और आत्माका विकास करना चाहता हूँ। उसके हाथ लगभग निश्चेष्ट हो गये हैं। उसकी आत्मा नितान्त उपेक्षित रही है। मैं इसीलिए समय और असमय हमारी शिक्षाके इन गम्भीर दोषोंको दूर करनेका अनुरोध करता रहता हूँ। क्या प्रति दिन आधा घंटा सूत कातना हमारे बच्चोंके लिए कोई बहुत भारी काम है? क्या इससे उनका मस्तिष्क कुण्ठित हो जायेगा?

मैं विभिन्न विज्ञानोंकी शिक्षाको महत्व देता हूँ। हमारे बच्चे भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्रका अत्यधिक अध्ययन नहीं कर सकते। और जिन संस्थाओंमें मेरी दिलचस्पी मानी जाती है उनमें यदि इन विषयोंकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है तो इसका कारण यह है कि हमारे पास इन विषयोंके लिए प्राध्यापक नहीं है और दूसरे इन विज्ञानोंके प्रयोगात्मक शिक्षणके लिए बहुत महँगी प्रयोगशालाओंकी आवश्य-कता होती है, जिनको हम वर्तमान अनिश्चित और आरम्भिक अवस्थामें बनानेमें समर्थ नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६०. दक्षिण आफ्रिका

दक्षिण आफ्रिकामें स्थिति स्पष्ट रूपसे बिगड़ती जा रही है और उसका अन्त कहाँ होगा, यह नहीं कहा जा सकता। सत्तारूढ़ सरकारने दो अलग-अलग विधेयक प्रस्तुत किये हैं; इन विधेयकोंमें 'एशियाइयों' के विरुद्ध भेद-भाव किया गया है और उनको 'रंगदार' लोगोंके वर्गमें न रखकर 'वतनी' लोगोंके वर्गमें रखा गया है। जो लोग कभी दक्षिण आफ्रिका नहीं गये हैं, उनके लिए यह समझना कठिन है कि इस भेदभावका अर्थ क्या है। समझनेकी बात यह है कि अधिकांश वतनीलोग बिलकुल ही अनपढ़ हैं। दूसरी ओर 'रंगदार' लोग (अर्थात् वे लोग जिनमें थोड़ा-सा भी यूरोपीय खून है) कुल मिलाकर काफी साक्षर लोग हैं। ऐसा लगता है कि नई सरकारकी नीति, जिसके कर्णधार जनरल स्मट्स और हर्टजोग हैं, 'एशियाइयों'को और भी अधिक दबानेकी और 'रंगदार' लोगोंका दर्जा ऊँचा करनेकी है।

एक और विधेयक भी बनाया जानेवाला है। इसके अनुसार दक्षिण आफ्रिकाकी नागरिकता केवल उन विशुद्ध गोरे लोगोंतक ही सीमित रहेगी जो दक्षिण आफ्रिकामें पैदा हुए हैं और वहीं पले-पुसे हैं। जो अंग्रेज इंग्लैंडसे सीधा आयेगा वह इंग्लैंडमें जन्म लेने और वहाँका मूल निवासी होनेके आधार पर दक्षिण आफ्रिकाकी नागरिकताका अधिकार नहीं माँग सकेगा। उसको दक्षिण आफ्रिकाकी नागरिकता प्राप्त करनेके लिए प्रमाणपत्र लेने पड़ेंगे। दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख समाचारपत्रोंका यह कहना है कि मजदूर दल (जो अंग्रेज मजदूरोंके मतोंपर निर्भर है) और राष्ट्रवादी दल (जो मुख्यतः डचोंके मतोंपर निर्भर है) के बीच इस मान्यताके आधारपर समझौता हो गया है कि राष्ट्रवादी एक जबर्दस्त एशियाई-विरोधी मजदूर नीतिका समर्थन करेंगे बशर्ते कि मजदूर दलके सदस्य उनकी जबर्दस्त "बर्गर" (नागरिकता सम्बन्धी) नीतिका समर्थन करनेको तैयार हों।

इसके अतिरिक्त हमें यह खबर भी मिली है कि पृथक्करण सम्बन्धी एक नये विधेयकका मसविदा जो पिछले 'वर्गक्षेत्र विधेयक'से भी ज्यादा कड़ा होगा, तैयार किया जा रहा है। पाठकोंको स्मरण होगा कि नेटालके जिस नगरपालिका मताधिकार अधिनियमसे भविष्यमें भारतीयोंको नगरपालिका मताधिकारसे वंचित रखा गया है, वह अधिनियम अब पारित हो गया है और उसपर गवर्नर जनरलने स्वीकृति दे दी है। यदि जातिभेद मूलक पृथक्करण अधिनियम भी पारित कर दिया गया तो यह जानना कठिन है कि हमारे

उन निहित अधिकारोंमें से क्या रह जायेगा जिनका १९१४के स्मट्स-गांधी समझौतेके अनुसार पूरी तौरपर पालन होना था।

ट्रान्सवालमें सभी भारतीय व्यवसायोंका बहिष्कार और उनके विरुद्ध धरना देना फिर आरम्भ कर दिया गया है। इस बार जबकि वातावरण बहुत उत्तेजनापूर्ण है, यह कुछ-कुछ सफल भी हो गया है। नेटालमें 'भरती करने-वाले' सरकारी कर्मचारियोंके द्वारा भारतीयोंको स्वदेश वापस भेजनेका काम अब भी चल रहा है। मद्रासमें जो लोग लौटे हैं, उनसे खुद मैंने पूछताछ की है। उन्होंने मुझे बताया है कि उनको भारतमें धन्धा नहीं मिल सका है। इसलिए बड़े अर्थसंकट और अनेक कष्टोंको सहन करनेके बाद ये लोग मलायाके प्रवासी-डिपोमें जाकर इस बातकी अनुमति माँग रहे हैं कि उन्हें भारतसे बाहर संयुक्त मलाया राज्यके रबर बागानोंमें भेज दिया जाये। निःसन्देह दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थिति इतनी गई बीती हो गई है कि वहाँ साहसीसे-साहसी भारतीयका भी हौसला पस्त हो गया है और उसे अपना भविष्य अन्धकारमय दीख रहा है। लेकिन एक ऐसी बात भी है जिससे कुछ राहत मिलती है। उसकी झलक हमें भारत पहुँच रही हर नई खबरसे लगातार मिल रही है। वहाँ हिन्दू-मुसलमानोंकी कोई समस्या नहीं है। इस समान संकटमें सब भारतीय एक हैं। वे मन और प्राणसे एक हैं और वे एक ही देशको अपनी जन्मभूमि मानते हैं।[1]

दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिके उपरोक्त निराशाजनक ब्यौरेको ध्यानमें रखते हुए इन स्तम्भोंमें गत सप्ताह जनरल स्मट्सका जो कथन[2] उद्धृत किया गया था, वह और भी दिलचस्प हो जाता है। श्री एन्ड्रयूजने जिस धरनेका उल्लेख किया है, वह प्रच्छन्न दबावके अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब १९२१ में सब तरहकी सावधानी बरतनेपर भी धरना भारतमें शान्तिपूर्ण नहीं रहा, तब दक्षिण आफ्रिकामें वह शान्तिपूर्ण कैसे रह सकता है, इस बातको वे लोग ही समझ सकते हैं जो वहाँके गोरे लोगोंके स्वभावसे परिचित हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१. यह लेख श्री सी० एफ० एन्ड्र्यूज द्वारा लिखा गया था।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्ध"।

१६१. स्वदेशी और राष्ट्रीयता

नीचे दिया गया पत्र बहुत दिनोंसे मेरे कागजोंमें रखा हुआ था :

निःसन्देह आपने एम० रोमां रोलां द्वारा रचित 'महात्मा गांधी' नामक पुस्तक पढ़ी ही होगी। उसके पृष्ठ १७६[1] पर लिखा है, "यह राष्ट्रीयताकी अत्यन्त संकुचित और विशुद्धतम विजय नहीं तो और क्या है? घरके अन्दर बने रहो, सब दरवाजे बन्द कर लो, किसी चीजमें परिवर्तन न करो, हर बात-पर जहाँके-तहाँपर चिपके रहो। किसी वस्तुका निर्यात न करो, किसी वस्तुका आयात न करो, देह और आत्माको शुद्ध और उन्नत बनाते रहो।" निश्चय ही यह मध्ययुगीन साधुओंकी ही सीख है। और उदारचेता गांधी इस पुस्तकके साथ अपना नाम जुड़ने देते हैं। (द० बा० कालेलकरके 'स्वदेशी धर्म'की भूमिकाके तौरपर), चूँकि यह वचन आपके एक बड़े प्रशंसकके लिखे हुए हैं, इसलिए इसके सम्बन्धमें आपको उत्तर देना चाहिए। यं० इं० के २७ नवम्बरके अंकमें एन्ड्रयूज साहबके "राष्ट्रवादके सम्बन्धमें सचाई" नामक लेखके[2] नीचे आपकी एक टिप्पणी इस आशयकी प्रकाशित हुई है कि भारतकी स्वदेशी भावना अशुद्ध या जातिद्वेष-मूलक नहीं बन सकती। क्या आप किसी अगले अंकमें इस आशय-को और स्पष्ट करके इस अद्‌भुत पुस्तकके लेखक और उसके असंख्य पाठकों-की आशंका दूर करनेकी कृपा करेंगे?

जहाँतक श्री कालेलकरकी पुस्तिकाका सवाल है, स्थिति इस तरह है। वह गुजराती पुस्तिकाका अंग्रेजी अनुवाद है। मैंने प्रस्तावना मूल पुस्तकके लिए लिखी थी। श्री कालेलकर मेरे आदरणीय साथी हैं। इसलिए मैंने पुस्तकको गौरसे देखे बिना ही पाँच छः सतरें प्रस्तावनाके तौरपर गुजरातीमें लिख दीं। मैंने उसके कुछ वाक्य इधर-उधरसे देख लिये थे। मैं स्वदेशी-सम्बन्धी उनके विचारोंको जानता था। इस कारण मुझे उनके साथ एकमत होनेमें कोई कठिनाई नहीं थी। लेकिन एन्ड्रयूजके कहने पर मैंने अंग्रेजी अनुवादको पढ़ा और मैं मानता हूँ कि उसमें कहीं-कहीं संकीर्णता आ गई है। मैंने श्री कालेलकरसे भी उसकी चर्चा की और वे भी इस बातको मानते हैं कि अनुवादमें संकीर्णता दिखाई देती है, पर उसके लिए वे जिम्मेवार नहीं हैं। जहाँतक मेरे विचारोंकी बात है मेरे 'यंग इंडिया' के लेख इस बातको अच्छी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि मेरी स्वदेशी, और इस कारण श्री कालेलकरकी स्वदेशी वैसी संकुचित नहीं है जैसा कि उस पुस्तिकाको पढ़नेसे लगता है।

यह तो हुआ पुस्तिकाके बारेमें।

१. यहाँ पृष्ठ संख्या ११५ होनी चाहिए।
२. ट्रूथ अबाउट नेशनलिज्म।

मेरी स्वदेशीकी व्याख्या सभी लोग जानते हैं। मैं अपने नजदीकी पड़ोसीकी हानि करके दूरवर्ती पड़ोसीकी सेवा नहीं करूँगा। इसमें प्रतिशोध या दण्डकी बात जरा भी नहीं है। वह संकुचित किसी भी अर्थमें नहीं है; क्योंकि मुझे अपनी उन्नति या विकासके लिए जिन-जिन चीजोंकी जरूरत पड़ती है वे सब मैं दुनियाके हर हिस्सेसे खरीदता हूँ। किन्तु मैं किसीसे भी कोई ऐसी चीज लेनेसे इनकार करता हूँ — फिर वह कितनी ही नफीस और खूबसूरत क्यों न हो — अगर वह मेरी या उन लोगोंकी उन्नतिमें, जिनकी सार-संभाल करना कुदरतने मेरा पहला फर्ज बताया है, बाधा डालती हो या नुकसान पहुँचाती हो। मैं उपयोगी और स्वस्थ साहित्य संसारके प्रत्येक भागसे खरीदता हूँ। मैं शल्यचिकित्साके औजार इंग्लैंडसे, पिन और पेन्सिलें आस्ट्रियासे और घड़ियाँ स्विट्जरलैंडसे मँगाता हूँ। पर मैं उम्दासे-उम्दा एक इंच कपड़ा भी इंग्लैंडसे, जापानसे या दुनियाके और किसी हिस्सेसे न खरीदूँगा — क्योंकि उससे भारतके लाखों लोगोंको हानि पहुँच चुकी है और बराबर पहुँच रही है। भारतके लाखों कंगाल और जरूरतमन्द लोगोंके द्वारा कते-बुने कपड़ोंको न खरीदकर विदेशी कपड़ेको खरीदना मैं पाप मानता हूँ — फिर भले ही वह भारतके हाथ-कते कपड़ेसे बढ़िया क्यों न हो। अतएव मेरी स्वदेशीका मध्यबिन्दु प्रधानतः हाथकती खादी है और उसकी परिधिमें वे सब चीजें आ जाती हैं जो हिन्दुस्तानमें बनती हैं या बनाई जा सकती हैं। मेरी राष्ट्रीयता वहींतक है जहाँ मेरी स्वदेशी भावनाको आँच नहीं आती। भारतके उत्थानकी कामनाके पीछे मेरी यह कामना निहित है कि सारे संसारको लाभ हो। मैं यह नहीं चाहता कि भारत दूसरे राष्ट्रोंका विनाश करता हुआ प्रगति करे। यदि भारतवर्ष सशक्त और समर्थ होगा तो वह दुनियाको अपनी कलात्मक वस्तुएँ और स्वास्थ्यप्रद मसाले भेजता रहेगा और अफीम या नशीली चीजें भेजनेसे इनकार करेगा — भले ही उनके व्यापारसे उसको बहुत बड़े आर्थिक लाभ होनेकी सम्भावना क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६२. सन्तति नियमन

निहायत झिझक और अनिच्छाके साथ मैं इस विषयमें कुछ लिखनेको प्रवृत्त हुआ हूँ। जबसे मैं भारतवर्ष लौटा हूँ तभीसे पत्र-लेखक कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति नियमनके प्रश्नपर मुझे लिखते रहे हैं। मैं खानगी तौरपर ही अबतक उनको जवाब देता रहा हूँ। किन्तु अभीतक सार्वजनिक रूपसे मैंने उसकी चर्चा नहीं की है। आजसे कोई पैंतीस साल पहले जब मैं इंग्लैंडमें पढ़ता था तब इस विषयकी ओर मेरा ध्यान गया था। उस समय वहाँ एक संयमवादी और एक डाक्टरके बीच बड़े जोरका विवाद छिड़ा हुआ था। संयमवादी कुदरती साधनोंके सिवा किसी दूसरे साधनोंको माननेके लिए तैयार न था और डाक्टर कृत्रिम साधनोंका हामी था। कुछ समयतक कृत्रिम साधनोंकी ओर प्रवृत्त होनेके बाद उसी समयसे मैं उनका पक्का विरोधी हो गया।

अब मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी पत्रोंमें कृत्रिम साधनोंका वर्णन ऐसे भद्दे तथा कुरुचि-पूर्ण ढंगसे और खुले तौरपर किया गया है कि उसे पढ़कर शिष्टताकी भावनाको आघात पहुँचता है। और मैं यह भी देखता हूँ कि एक लेखकने तो सन्तति-नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंकी सूचीमें मेरा नाम सम्मिलित करनेमें संकोच नहीं किया है। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जबकि मैंने कृत्रिम साधनोंके उपयोगके पक्षमें कोई बात कही या लिखी हो। मैंने यह भी देखा है कि दो और प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम इसके समर्थकोंमें दिये गये हैं। उनसे पूछे बिना मुझे उनका नाम प्रकट करनेमें संकोच हो रहा है।

सन्तति-नियमनकी आवश्यकताके बारेमें तो दो मत हो ही नहीं सकते, परन्तु इसका एक ही उपाय है आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य, जो कि हमारी युगोंकी विरासत है। यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो उसका पालन करते हैं उन्हें लाभ ही लाभ होता है। डाक्टर लोगोंका मानव-जातिपर बड़ा उपकार होगा, यदि वे सन्तति-नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंकी शोध करनेकी जगह आत्मसंयमके साधनोंकी खोज करें। स्त्री-पुरुषके मिलापका हेतु आनन्द भोग नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति है। जब सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा न हो तब संभोग करना अपराध है।

कृत्रिम साधनोंकी सलाह देना मानो दुराचारको बढ़ावा देना है। उससे पुरुष और स्त्री उच्छृंखल हो जाते हैं। और इन कृत्रिम साधनोंको जो मान्यता दी जा रही है उससे तो उस संयमके बन्धन समाप्त हो जायेंगे जो लोकमतके कारण मनुष्य अपनेपर रखता है। कृत्रिम साधनोंके अवलम्बनका कुफल होगा पौरुषहीनता और क्लीवता। यह दवा मर्जसे भी ज्यादा बदतर साबित होगी। किये गये कर्मके फलोंको भोगनेसे बचनेकी कोशिश करना अनुचित है, अनीतिपूर्ण है। जो शख्स जरूरतसे ज्यादा खा लेता है उसके लिए यह अच्छा है कि उसके पेटमें दर्द हो और फिर उसे लंघन करना पड़े। रसनाको वशमें न रखकर खूब डटकर खा लेना और बादको पाचक दवाइयोंका सेवन करके उसके नतीजोंसे बचना अहितकर है। विषय-भोगमें रत रहना और फिर अपने इस कृत्यके परिणामोंसे बचना इससे भी बुरा है। प्रकृति बड़ी कठोर शासिका है। वह इस प्रकारके नियमोल्लंघनोंका बदला पूरी तरह चुकाती है। नैतिक संयमके द्वारा ही हमें नैतिक फल मिल सकता है। दूसरे तमाम प्रकारके संयम-साधन अपने हेतुके ही विनाशक सिद्ध होंगे। कृत्रिम साधनोंके समर्थनके मूलमें यह युक्ति या धारणा रहती है कि भोग-विलास जीवनकी एक आवश्यक चीज है। इससे बढ़कर कोई दूसरा भ्रम हो ही नहीं सकता। अतएव जो लोग सन्तति-नियमनके लिए उत्सुक हैं, उन्हें चाहिए कि वे प्राचीन लोगोंके बताये हुए उचित उपायोंकी खोज करें, और इस बातकी कोशिश करें कि उनको किस तरह पुनर्जीवित किया जाये। उनके सामने बुनियादी काम प्रचुर मात्रामें मौजूद है। बाल-विवाह जनसंख्याकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। अबाध प्रजननकी बुराईका बहुत-कुछ सम्बन्ध हमारी वर्तमान जीवन-पद्धति है। यदि इन कारणोंकी छानबीन की जाये और उनको दूर करनेका उपाय भी किया जाये तो समाज नैतिक दृष्टिसे बहुत ऊँचा उठ जायेगा। परन्तु यदि हमारे इन जल्दबाज और अति उत्साही लोगोंने उनकी ओर ध्यान न दिया और यदि कृत्रिम साधनोंका

ही दौर-दौरा रहा तो नैतिक अधःपतनके अतिरिक्त कोई दूसरा परिणाम न निकलेगा। जो समाज पहले ही विविध कारणोंसे निःसत्व हो रहा है, इन कृत्रिम साधनोंके प्रयोगसे और भी अधिक निःसत्व हो जायेगा। इसलिए वे शख्स जो कि बिना सोचे-विचारे कृत्रिम साधनोंका प्रचार करते हैं; नये सिरेसे इस विषयका अध्ययन-मनन करें, अपनी हानिकर कृतियोंसे बाज आयें और क्या विवाहित और क्या अविवाहित दोनों ही ब्रह्मचर्यको लोकप्रिय बनायें। सन्ततिनियमनका यही उच्च और सच्चा तरीका है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६३. टिप्पणियाँ

और सदस्य

पिछले सप्ताहके बाद गुजरातसे प्राप्त आँकड़ों तथा इलाहाबादसे प्राप्त पं० जवाहरलालके तारसे जो सूचना मिली है उसके अनुसार सदस्योंकी कुल संख्या ७८५१ हो गई है। पिछले सप्ताह यह संख्या ६६४४ थी। पिछले सप्ताहसे इस सप्ताह सिर्फ पाँच सूबोंमें वृद्धि दिखाई देती है। इस सप्ताहके अंक मिलाकर अंकोंका ब्यौरा इस प्रकार है:

	अ	ब	योग
१. गुजरात	१८४७	८०	१९२७
२. संयुक्त प्रान्त	१२९	२५४	१०९४
	(अवर्गीकृत अंक भी शामिल हैं)		
३. बिहार	४१८	१४६	७३७
	(अवर्गीकृत अंक भी शामिल हैं)		
४. महाराष्ट्र	४८	१२३	१७१
५. सिन्ध	तफसील प्राप्त नहीं		१६८
६. बर्मा	२६	३	२९

बर्मा उन छः प्रान्तोंमें से एक है जिनकी रिपोर्ट पहली मार्चतक नहीं आई थी। अन्य पाँच प्रान्त हैं, तमिलनाड, केरल, दिल्ली, असम और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त। ऊपरके कुल जोड़में इन प्रान्तोंका लेखा शामिल नहीं है।

जैसा कि पिछली रिपोर्टसे लगा था, अधिकांश प्रान्त अपने-अपने जिलोंके अंक इकट्ठा करनेका काम पूरा नहीं कर पाये हैं। उम्मीद है कि पूरे वर्गीकृत अंक अगले सप्ताहतक 'यंग इंडिया' के कार्यालयमें आ जायेंगे। यह सूचना हमें बुधवारकी सुबहसे पहले मिल जानी चाहिए।

सभासदोंकी सूची

पिछले सप्ताह सभासदोंकी जो सूची प्रकाशित की गई थी. उसमें ऐसी बहुत-सी बातें नहीं हैं, जो होनी चाहिए थीं। छः प्रान्तोंने तो सूची भेजी ही नहीं। जिन्होंने भेजी भी है उनमें से बहुतोंने उसका वर्गीकरण ही नहीं किया है। कुछ सप्ताह पहले

मैंने एक पत्र प्रकाशित किया था उससे ऐसा जान पड़ता था कि कमसे-कम वरार सूत देनेवाले सभासदोंकी दृष्टिसे शानके साथ सामने आयेगा। लेकिन मुझे अफसोस है कि वह तो सबसे पीछे रह गया है। यदि अजमेर चाहे तो एक हजार कातनेवाले सदस्य आसानीसे दे सकता है। लेकिन उसने तो दो कातनेवाले और १५ सूत देने-वालोंसे ही शुरूआत की है। मैं आशा करता हूँ कि बंगाल, आन्ध्र, कर्नाटक, बिहार और तामिलनाड, जहाँ कातनेके अच्छे केन्द्र हैं, गुजरातको हरा देंगे; और यह किसी अन्य कारणसे नहीं तो केवल इसलिए कि उनकी जनसंख्या गुजरातसे कहीं अधिक है। उनको कताईकी परम्परा विरासतमें मिली है और वहाँके लोग उसे आजतक भूले नहीं हैं।

१,००० रुपयेका इनाम

मैं देख रहा हूँ कि श्री रेवाशंकरके इनामको[1] पानेके लिए कई युवक जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ लेख तो बहुत ही बढ़िया ढंगसे लिखे गये जान पड़ रहे हैं। इस प्रतिद्वन्द्वितामें भाग लेनेवालोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री अम्बालाल साराभाईने[2] परीक्षक-मण्डलमें शामिल होना स्वीकार कर लिया है। मुझे आशा है कि इस विषयके साहित्यको बढ़ानेकी दिशामें कुछ और भी उत्कृष्ट लेख प्राप्त होंगे।

दिया हुआ सूत खरीदना

एक जिला कमेटीके मन्त्री लिखते हैं कि कुछ सूत कातनेवालोंको अपने काते हुए सूतसे इतना प्रेम है कि वे अपना सूत फिर खरीद कर अपने इस्तेमालके लिए उसी-का कपड़ा बुनवाना चाहते हैं। वे मुझसे पूछते हैं कि जिन लोगोंने अपना सूत सदस्यताकी फीसके रूपमें भेजा है वे पूर्वोक्त उद्देश्यसे फिर अपना सूत खरीद सकते हैं या नहीं। निःसन्देह आदर्श तो यही है कि लोग अपने कपड़ोंके लिए फुरसतके वक्त पर्याप्त सूत कातें। कपड़ेके विषयमें स्वावलम्बी होनेका यही सबसे अच्छा और सुगम उपाय है। इसलिए मैं सभी कांग्रेस कमेटियोंके मन्त्रियोंको सलाह दूँगा कि वे सूत देनेवालोंको अपना सूत खरीदनेके लिए जरूर उत्साहित करें; पर इसका इतमीनान कर लें कि वे फिर उसी सूतको अपनी फीसके तौरपर जमा तो नहीं करा रहे हैं।

कुछ प्रभावकारी आँकड़े

एक खद्दर प्रेमीने मुझे कुछ आँकड़े यह सिद्ध करनेके लिए भेजे हैं कि यदि लोगोंको सुस्ती छोड़ने और चरखा चलाने एवं खद्दरके कपड़े पहननेके लिए राजी किया जा सके तो कपड़ेके मामलेमें भारतको स्वावलम्बी बनाना कितना आसान है।[3]

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १९-२-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "पुरस्कार-निबन्धके सम्बन्धमें"।

२. अहमदाबादके एक उद्योगपति।

३. ये यहाँ नहीं दिये गये हैं। उन आँकड़ोंके अनुसार भारतकी ३१ करोड़ २० लाखकी आबादीके लिए प्रति व्यक्ति, सालमें औसतन २० गज कपड़ेके हिसाबसे, ६२४ करोड़ गज कपड़ेकी जरूरत है। तीन करोड़ चरखे और ३५ लाख करघे चलाकर यह कपड़ा देशमें ही तैयार किया जा सकता है। १९२२ में लगभग २०० करोड़ गज जो कपड़ा विदेशोंसे मँगाया गया था, उसे देशमें ही सिर्फ एक करोड़ चरखे और १२ से १५ लाखतक करघोंपर तैयार किया जा सकता था।

संगसारी 'कुरान' में नहीं है।

मैं नीचे डाक्टर मुहम्मद अली, सदर अहमदिया अंजुमन इशआते इस्लामका भेजा तार बड़ी खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ:

> कैसे भी गुनाहके लिए कुरानशरीफमें संगसारीकी इजाजत नहीं है। आपकी टिप्पणीसे इस्लाम और नबीके साथ अन्याय होता है और उससे इस्लामके खिलाफ दुनियामें जबरदस्त गलतफहमी पैदा होनेका अन्देशा है। मुझे यकीन है कि आपने यह राय सोच-विचार कर कायम नहीं की है; बल्कि इसे आपने यों ही लोगोंसे सुनकर लिख दिया है। इस विषयपर 'कुरान' के मेरे अंग्रेजी तरजुमेको आप देखेंगे तो आपको यकीन हो जायेगा कि जिन्होंने आपको यह खबर दी है वे गलतीपर हैं। इसलिए आपसे यह प्रार्थना है कि आप इसपर विचार करें और इस गलतफहमीको दूर कर दें।

डा० मुहम्मद अली मेरी टीकाको ठीक-ठीक नहीं समझ सके हैं। मैं यह जानता था कि कुछ लोग किन्हीं खास हालतोंमें 'संगसारी' की सजाको, 'कुरान' में लिखी हुई समझकर, ठीक मानते हैं। मैंने इस बातपर कि 'कुरान' या 'हदीस' में ऐसी सजा लिखी है या नहीं या यह प्रथा बहुत अर्सेसे चली आ रही है, अपनी राय जाहिर नहीं की है; मैंने तो सिर्फ इतना ही कहा था कि यदि 'कुरान' में ऐसी सजा लिखी भी हो, तो भी उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। मुझे बड़ी खुशी है कि डा० मुहम्मद अली मुझे इस बातका यकीन दिलाते हैं कि 'कुरान' में संगसारी के लिए इजाजत नहीं दी गई है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि काबुलमें किस आधार-पर उसका समर्थन किया गया और हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके एक वर्गने किस आधार-पर उसे ठीक माना। मैं यह भी चाहता हूँ कि सब मुसलमान एक स्वरसे संगसारीकी सजाकी निन्दा करें। यदि ऐसा हो सका तो फिर इस्लामी दुनियामें ऐसी सजाका दुबारा कहीं भी दिया जाना नामुमकिन हो जायेगा।

एक खत

एक प्रसिद्ध भारतीय सार्वजनिक कार्यकर्त्ताने एक सुविख्यात अंग्रेजको मुलाकातके लिए एक पत्र लिखा था। उस अंग्रेजने जो जवाब दिया था वह नीचे दिया जाता है:

> 'आपका पत्र मिला। मुझे अफसोस है; मैं आपसे नहीं मिल सकूँगा। इसका कारण सिर्फ यही है कि मेरी रायमें भारतीय प्रश्नकी आज जो स्थिति है उसको देखते हुए, आपका मुझसे मिलना फायदेमन्द नहीं होगा। मैं भारतीय नेताओंके कामों और उनके इरादोंको न तो समझ पाता हूँ और न उनके प्रति मेरी कोई सहानुभूति हो सकती है। आप लोगोंको जिस जातिके लोगोंसे वास्ता पड़ा है उसके स्वभावको थोड़ा-बहुत तो अवश्य जान लेना चाहिए। ब्रिटिश सरकारने आपको बहुत-कुछ दिया है। न्यायकी भावनासे जो-कुछ आपको दिया गया है क्या उसका आप पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर सकते? मुमकिन है

आप मताधिकारकी शक्तिको सुव्यवस्थित करके, योग्य लोगोंका चुनाव करके और उनमें जो सर्वोत्कृष्ट हैं उनके कार्योंकी समालोचना करके, क्रमशः यह साबित कर सकें कि आप नागरिकताकी जबरदस्त और गम्भीर जवाबदेहीका निर्वाह कर सकते हैं और अपने महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्योंका पालन कर सकते हैं। मुझे यकीन है कि राजनीतिक सामर्थ्यका यह प्रमाण मिलनेपर मेरे समर्थतम देशवासी आपके भावी राजनीतिक विकासकी दिशामें आपका साथ देंगे और आपको उनकी सक्रिय सहानुभूति भी प्राप्त होगी। यदि आपका विश्वास अंग्रेजी राजनीतिक दलोंके साथ सौदा करनेमें हो तो उसका नतीजा निराशाजनक ही होगा।

मेरी समझमें नही आ रहा है कि लेखककी इस उद्धततापर अफसोस करे या अपने विचारोके प्रति उसकी दृढ़ताकी सराहना। उसने तो अपने मनमें यह मान ही लिया है कि मुलाकात करनेवाले सज्जनसे उसे जानना कुछ भी नही है। उसे तो केवल देना ही देना है। ऐसे अंग्रेजको कौन सन्तुष्ट कर सकता है जो अपनेको चारों तरफसे बन्द रखता है और यह समझनेसे इनकार करता है कि बहस करनेकी प्रबल-से-प्रबल शक्तिका सम्पादन करने-भरसे हम नागरिकताकी गम्भीर जवाबदेही निभानेके काबिल नहीं हो सकते। ऐसे अंग्रेजको यह कौन समझाये कि नागरिकताकी जवाबदेही निभानेके लिए पहले आत्म-रक्षा करनेकी ताकतका होना आवश्यक है और वह ताकत वादविवादमें निष्णात होनेकी कला जाननेसे हासिल नहीं हो सकती। उसे यह कौन बताये कि खुद उसकी जातिने भी अपने देशकी रक्षा करनेकी ताकतको बढ़ा कर ही स्वराज्यकी कला प्राप्त की है और अंग्रेजोंको बहस करनेकी वर्तमान क्षमता स्वराज्य मिल चुकनेके बाद ही प्राप्त हुई है। इस लेखक और उसके हम-खयालोंको यह कौन समझाये कि हम भारतीय यह नही मानते कि न्यायकी भावनासे हमें बहुत-कुछ दिया जा चुका है। बल्कि हम मानते हैं कि हमें जो-कुछ दिया गया है वह बहुत ही कम है और वह भी दिया गया है परिस्थितियोंके दबावके कारण। अन्तमें उनके मनमें यह बात कौन बैठा सकेगा कि हम लोग अंग्रेजोंके "राजनीतिक दलोंकी आपसी सोदेबाजी" में नहीं, अपनी ताकतपर ही विश्वास रखते हैं। अंग्रेजोंका ऐसा अज्ञान और उनका जानबूझकर अलग रहनेका रवैया बड़े ही दु:खका विषय है। इस पत्रसे हमे एक सबक भी मिलता है। जिन्हें हम जानते नही हैं उनके साथ मुलाकात करनेका प्रयत्न करके हमें अपना अपमान नहीं कराना चाहिए। सारी दुनियाके साथ हमारे सम्बन्धोंका क्या रूप होगा, यह हमारे अपने व्यवहारपर निर्भर है।

एक कार्यकर्त्ताको कैदकी सजा

मुझे कोचीनसे एक तार मिला है, जिसमें बताया गया है कि श्री कुरुर नम्बूद्रीपादको दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी गई है। यह सजा किस कारण दी गई है यह मैं नहीं जानता। श्री नम्बूद्रीपाद एक मंजे हुए सैनिक और निष्ठावान् कार्यकर्त्ता हैं। मैं उनको इस कैदकी सजापर बधाई देता हूँ। मेरी रायमें जो

व्यक्ति सेवा करते हुए और बिना किसी नैतिक अपराधके कैदकी सजा पाता है वह भी देशकी सेवा करता है।

मैं राजनीतिज्ञ?

एक अंग्रेज मित्रने श्री एन्ड्रयूजको एक पत्र भेजा है जिसे उन्होंने जवाब देनेके लिए मेरे पास भेज दिया है। उनकी समस्या यह है:

> हाल ही के एक लेखमें श्री गांधीने सवर्णो और अछूतोंके बीच विवाहका विरोध किया है; उसे पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। इस सवालको तो मैं एक कसौटी मानता हूँ। जिस प्रकार मैं उनसे यह नहीं कहूँगा कि वे इस बातका समर्थन करें कि अमुक व्यक्तिको अमुक व्यक्तिसे विवाह करना चाहिए उसी प्रकार मैं उनसे यह उम्मीद नहीं करूँगा कि वे यह कहें कि इस जाति और उस जातिके बीच विवाह-सम्बन्ध होना चाहिए। परन्तु यह तो निश्चित है कि जहाँ स्त्री-पुरुष समान विचारके होते हैं वहीं उत्तम दाम्पत्य सम्बन्ध पाये जाते हैं और सन्तान उत्तम होती है। क्या भारतमें श्री गांधीका यही लक्ष्य नहीं है? और जिस हदतक वे इस लक्ष्यको प्राप्त करेंगे उसी हदतक क्या भिन्न-भिन्न जातियोंमें अन्तर्विवाह वैसे ही सहज न हो जायेंगे जैसे एफिसस में यहूदियों और यूनानियोंके बीच?
>
> मैं जानता हूँ कि गांधी एक राजनीतिज्ञ हैं और मैं समझ सकता हूँ कि उन्होंने यह बात लोगोंकी नाराजगीसे बचनेके लिए लिख दी होगी। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होनेपर भी उनके इस वक्तव्यसे उनके प्रधान लक्ष्यको हानि पहुँचे बिना न रहेगी। यदि ब्राह्मण लोग भंगियोंको, महज जातिकी बिनापर, बराबरीके अधिकार देनेसे इनकार करें तो केनियाके यूरोपीय किसानोंसे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे वहाँ हिन्दुस्तानी दुकानदारोंसे समुचित व्यवहार करेंगे?

मैंने जाति-भेद और अन्तर्विवाहके सम्बन्धमें अपने विचार अनेक बार व्यक्त किये हैं। मेरे नजदीक विवाह पति-पत्नीतककी पारस्परिक सौहार्दकी आवश्यक कसौटी नहीं है, फिर उनकी जातिकी तो बात ही क्या? मैं ऐसे किसी कालकी कल्पना नहीं कर सकता जब कि सारी मनुष्य-जातिका धर्म एक ही हो जायेगा। ऐसी अवस्थामें आम तौरपर धार्मिक भेद रहेंगे ही। लोग अपने अपने-धर्ममें विवाह करेंगे। उसी तरह क्षेत्रीय प्रतिबन्ध भी रहेंगे। जातीय प्रतिबन्ध उसी सिद्धान्तका व्यापक रूप है। यह एक प्रकारकी सामाजिक सुविधा है। किसी अभिजात कुलवाले अंग्रेज व्यक्तिका पुत्र आम तौरपर किसी पंसारीकी लड़कीसे शादी नहीं करता। आम तौरपर कुलकी बातको सोचकर ही वह ऐसी लड़कीसे सम्बन्ध नहीं करेगा। मैं अस्पृश्यताके खिलाफ इसलिए हूँ कि उसके कारण सेवाका क्षेत्र संकुचित हो जाता है। विवाह कोई सेवा-कार्य नहीं है। वह तो एक ऐसा सुख-साधन है जिसे स्त्री या पुरुष अपने लिए चाहते

हैं। इसलिए यदि सुखका साथी चुननेका क्षेत्र सीमित कर दिया जाता है या विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण जीवन परिवर्तनके लिए सोच-समझकर चुनाव किया जाता है तो मुझे इसमें कोई हानि नहीं दिखाई देती। अगर केनियाका कोई वाशिन्दा मेरा केनियामें रहना केवल इसी बिनापर बरदाश्त नही कर सकता कि मै अपनी लड़कीकी शादी उसके साथ नहीं करता या उसकी लड़कीका पाणिग्रहण अपने लड़केके साथ नही होने देता, तो मुझे उसके लिए खेद होगा, पर मजबूर होकर ऐसे अनमेल या अनुपयुक्त रिश्ते करनेके बजाय मै केनियासे निकाल दिये जानेमें अधिक सन्तोष मानूंगा। मै तो यह भी कहूँगा कि केनियावासी तो मुझे ऐसी बात सोचने भी न देगा। और यदि मैं ऐसा कोई दावा पेश भी करता हूँ तो वह मुझे वहाँसे हटाये जानेका एक और कारण बन जायेगा। यद्यपि यह विषय मेरी दृष्टिमें बहुत साफ है और सारी दुनियामें विवाह सम्बन्ध करनेके लिए जाति, वर्ण आदिकी मर्यादाओंका पालन होता है, तथापि सम्भव है कि श्री एन्ड्रयूजके मित्रको मेरे उत्तरसे सन्तोष न हो। पर मैं उन्हे यह आश्वासन दे सकता हूँ कि मैंने किसीकी नाराजगीके खयालसे सवालको टाला नहीं है। लेखकने राजनीतिज्ञ शब्दका प्रयोग जिस संकुचित अर्थमें किया है उस अर्थमें मै राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। मैंने वही बात लिखी है, जिसे मैं मानता हूँ। मैंने किसी राजनीतिक लाभके लिए सिद्धान्तको नहीं छोड़ा है। यदि मै अन्तर्विवाहपर लगाये हिन्दू धर्मके संयम-विधान-को न मानूं तो शायद मैं उन लोगोंमें अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लूंगा जिनसे मैं मिलता-जुलता हूँ। और मेरा मुख्य लक्ष्य क्या है? मनुष्य-मात्रके साथ समान व्यवहार। और समान व्यवहारका अर्थ है समान सेवा। सेवा करनेके अधिकारसे किसीको वंचित नहीं रखा जा सकता। विवाह-सम्बन्धमें गुण-शीलकी समानता होनी चाहिए। यदि कोई स्त्री किसी लाल बालवाले पुरुषसे विवाह करनेसे इनकार कर दे तो यह कोई गुनाह न होगा, पर अगर वह उसके लाल बालोंके कारण उसकी सेवा करनेके अपने कर्त्तव्यकी अवहेलना करेगी तो वह पापकी भागिनी होगी। विवाह अपनी रुचिका विषय है। सेवा एक कर्त्तव्य है जिससे हम बच नहीं सकते।

एक क्रान्तिकारी

मुझे अंदेशा है कि आपकी इस सलाहका पालन करना कि मैं सार्वजनिक जीवनसे हट जाऊँ, आसान नहीं है। ऐसी सलाह देना आसान हो सकता है! मेरा दावा है कि मैं भारतका और उसके माध्यमसे सारी मानव-जातिका सेवक हूँ। मैं हमेशा जैसा चाहूँ वैसा नही हो सकता। अगर मौसम कभी मेरे अनुकूल रहा है तो मुझे प्रतिकूलताका भी मुकाबला करना चाहिए। जबतक मुझे लगता है कि अभी मेरी जरूरत है तबतक मुझे मैदान नहीं छोड़ना चाहिए। जब मेरा काम खतम हो जायेगा और मैं एक असमर्थ या थका-हारा सिपाही रह जाऊँगा तब लोग मुझे अलग कर देंगे। तबतक मुझे अपना काम करते रहना है और क्रान्तिकारी हलचलोंके विषाक्त असरको खतम करनेके लिए जो-कुछ भी सम्भव है उसे करना है। उस समय जब कि रोगीको अंगूरका ताजा रस पिलानेकी जरूरत है यदि कोई डाक्टर उसे संखियाकी भस्म खिलाता है तो फिर उसका उद्देश्य चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो और वह

कितना ही आत्मत्यागी क्यों न हो, वह दूरसे ही नमस्कार कर लेनेके योग्य है। मेरा क्रान्तिकारियोंसे कहना है कि वे अपने हाथों आत्मघात न करें और अनिच्छुक लोगोंको अपने साथ न घसीटें। यूरोपका रास्ता हिन्दुस्तानका रास्ता नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान कलकत्ता या वम्बईमें नहीं है। हिन्दुस्तान तो अपने सात लाख गाँवोंमें बसा हुआ है। यदि क्रान्तिकारियोंकी संख्या बहुत है तो वे इन गाँवोंमें फैल जायें और अपने देशकी लाखों अन्धेरी झोंपड़ियोंमें कुछ उजाला पहुँचायें। अंग्रेज अधिकारियों तथा उनके अन्य सहायक लोगोंके खूनके प्यासे बने रहनेकी अपेक्षा ऐसा करना उनकी महत्वाकांक्षा और देश-प्रेमके अधिक अनुरूप होगा। अधिकारियोंको मार डालनेकी अपेक्षा उनके मनोभावको बदलनेकी कोशिश करना कहीं अच्छा है।

हिन्दुओंकी ज्यादती

एक मुसलमान संवाददाताने, निजी सम्पत्तिपर कथित मस्जिद बनानेके सम्बन्धमें लिखे गये मेरे लेखपर नरम शब्दोंमें मेरी भर्त्सना की है और हिन्दुओंकी कथित ज्यादतियोंके कई उदाहरण दिये हैं किन्तु उनके सम्बन्धमें उसने कोई प्रमाण पेश नहीं किये हैं। अपने एक आरोपके समर्थनमें उसने कुछ तथ्य अवश्य दिये हैं। मैंने उससे कहा है कि वह अपने दूसरे आरोपोंको भी सिद्ध करे। मैंने वचन दिया है कि यदि वे उनके प्रमाण देंगे तो मैं उन्हें पूराका-पूरा छाप दूँगा और मामलेकी पूछताछ भी करूँगा। फिलहाल मैं नीचे उस एक आरोपको देता हूँ जो संवाददाताने सप्रमाण लगाया है:

> लोहानीके मुसलमान एक पुरानी कच्ची मस्जिदकी जगह एक पक्की मस्जिद बनाना चाहते हैं। बलशाली हिन्दू मुसलमानोंको अपने इस अधिकारका प्रयोग नहीं करने देते। हमारे ये भाई अपने देशवासियोंके न्याय्य अधिकारोंके विरुद्ध उसी बहिष्कार-अस्त्रका प्रयोग कर रहे हैं जिसका प्रयोग उन्हें विदेशी आक्रमणकारीके विरुद्ध करना सिखाया गया है। वहाँ नमाज और अजान बिलकुल बन्द है।

यदि लोहानीके हिन्दुओंने, उनपर जो-कुछ करनेका आरोप लगाया गया है वह काम किया है तो निश्चय ही उन्होंने ज्यादती की है। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे अपना कथन प्रकाशनके लिए भेजें और यदि उनके विरुद्ध लगाये गये आरोप ठीक हों तो मेरा उनसे कहना है कि वे अपनी भूल तुरन्त सुधार लें। न्यायकी माँग करने-वालोंको खुद निर्दोष रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६४. केनियाके मैदान[1]

मै अभी हालमें दिल्ली गया था। वहाँसे लौटकर मुझे लगा कि किसीको जरा भी गलतफहमी न हो, इसलिए मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि केनियाके मैदानोंके जिस क्षेत्रमें भारतीयोंको बसानेके लिए बड़े पैमानेपर सरकारी जमीनें मुफ्त देनेका प्रस्ताव है उस क्षेत्रके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए सरकारी तौरपर भारतसे किसीको भेजे जानेपर मुझे प्रबल आपत्ति है।

पहली बात तो यह है कि ऐसे प्रस्तावको अस्थायी रूपसे भी मानना या उसको माननेके खयालसे उसपर विचार भी करना समस्त भारतीय स्थितिको हास्यास्पद बनाना है, क्योंकि भारतीयोंकी माँग यह नहीं है कि उन्हें किसी दूसरी जगह सरकारी जमीनें मुफ्त दी जायें; उनकी माँग तो यह है कि उनको वचन दिये जानेके बावजूद, केनियाके पहाड़ी प्रदेशोंमें जमीनें खरीदने और बेचनेका जो कानूनी अधिकार अवैध रूपसे उनसे छीन लिया गया है वह उन्हें फिर वापस दे दिया जाये। भारतीय नागरिकताके प्राथमिक अधिकारकी माँग कर रहे हैं। उनकी माँग यही है कि कानूनकी निगाहमें उन्हें दूसरे नागरिकोंके साथ बराबरीका दर्जा दिया जाये। इसलिए यह आसानीसे समझा जा सकता है कि यदि भारतीय केनियाके मैदानोंमें मुफ्त जमीनें पानेके प्रस्तावपर विचारतक करेंगे तो इससे निश्चित रूपसे यही समझा जायेगा कि उन्होंने अन्यत्र अपने कानूनी अधिकार एकदम छोड़ दिये हैं। मै समझता हूँ कि मैंने यह बात बिलकुल साफ कर दी है कि मैदानोंमें किसी क्षेत्रकी जाँच करनेके लिए किसी भारतीय अधिकारीके भेजे जानेका अर्थ यही होगा कि भारतीयोंने केनियाके पहाड़ी प्रदेशोंमें अपने कानूनी अधिकार बिलकुल छोड़ दिये हैं।

दूसरी बात यह है कि केनियाके पहाड़ी प्रदेशोंमें गोरोंने वतनियोंकी १२,००० वर्गमील उपजाऊ जमीन तो ले ही ली है; और अब इसके सिवा यदि भारतीय इन मैदानोंके एक बड़े क्षेत्रको अंग्रेजी सैनिक शक्तिकी सहायतासे कब्जेमें लें और वतनियोंको इस नये प्रदेशसे भी वंचित करें तो यह अन्याय होगा। इस तरह भारत पहली बार वह कदम उठायेगा जिसका अर्थ होगा सम्भव दिखनेपर जमीनें हड़पनेकी साम्राज्यवादी नीतिपर अमल करनेके लिए उसका तैयार होना। यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि आफ्रिकाके वतनी, जहाँतक उन्हें अपनी बात कहनेका अधिकार है, भारतीयों द्वारा जमीनें हड़पनेकी ऐसी किसी नीतिके विरुद्ध अत्यन्त प्रबल आपत्ति करेंगे। यदि उन्हें अपनी बात कहनेका

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा लिखित।

अधिकार प्राप्त नहीं है और वे शक्तिहीन हैं तब तो उनके साथ किया गया यह अन्याय और भी बड़ा अन्याय कहलायेगा। यह याद रखना चाहिए कि केनिया कोई निर्जन देश नहीं है; वह ऐसा देश नहीं है जिसमें वहाँके मूलनिवासी न हों। यह एक बड़ा प्रदेश है किन्तु उसमें बहुत थोड़ी जमीन ऐसी है जहाँ सिंचाईके लिए भरपूर साधन उपलब्ध हैं और जहाँ खेती की जा सकती है। अगर अपने स्वार्थ-साधनके लिए वतनियोंको मजदूर बनाकर उनका शोषण न किया गया होता, ऐसा शोषण जिससे वतनियोंका दिन-ब-दिन अधःपतन हो रहा है, तो वतनी लोगोंकी आबादी सारी कृषि योग्य भूमिमें फैल गई होती और उसने उसपर अधिकार कर लिया होता। आज भी इस शोषणके बावजूद वतनी लोगोंके लिए 'रक्षित भूमि' बहुत कम पड़ रही है। इसलिए यदि भारतीय, अंग्रेज और भारतीय सैनिकोंकी संगीनोंके बलपर उस प्रदेशमें से, जो अब भी वतनियोंके लिये खुला है, बड़ा भाग हथिया लेंगे तो यह उनके प्रति घोर अन्याय होगा।

तीसरी बात यह है कि केनिया और युगाण्डामें भारतीय अबाध प्रवासका दावा इसी आधारपर करते हैं कि वे वतनी लोगोंकी उन्नतिमें सहायता दे रहे हैं और उनके मार्गमें रुकावटें नहीं डाल रहे हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई दूसरा दावा नहीं है। उनका कहना यह है कि पूर्वी आफ्रिका और भारतके बीच दो हजार सालसे व्यापार चल रहा है। भारतीय पूर्वी आफ्रिकामें बेरोक-टोक आते रहे और वहाँ उनका स्वागत किया गया, क्योंकि वे वहाँ मेल-जोलसे रहनेके लिए गये — लड़नेके लिए नहीं; और क्योंकि भारतीयों और वतनियोंके बीच व्यापार और वस्तु-विनिमयका दोनोंको फायदा हुआ है। इधरसे पूर्वी आफ्रिकाके लोग भी भारतमें इसी प्रकार अबाध रूपसे जा सके हैं। वहाँ भी इसी कारण उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया गया है। इस प्रकार दोनों ओरसे मुक्त प्रवासको बढ़ावा दिया गया है और वह प्रवास लगातार चलता रहा है। लेकिन यदि दोनोंके बीच एक नये ही सम्बन्धकी — विजेताकी भावनासे अधिकार करनेकी — वकालतकी जाती है (चाहे उसे कैसा ही शिष्ट रूप क्यों न दिया जाये) तो पूरी स्थिति ही बदल जाती है। भारतीयोंका यह दावा कि वे वतनियोंका सम्मान करते हैं और उन्हें लाभ पहुँचाते हैं, व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। भारतीय आफ्रिकामें साम्राज्यवादी आक्रमणकारी बन जाते हैं और वे इस मामलेमें यूरोपीयोंकी श्रेणीमें आ जाते हैं। यद्यपि वे स्वयं गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़े हुये हैं फिर भी दूसरोंको गुलाम बनानेके लिए तैयार हैं। वे पीड़ित और शोषितोंके पक्षमें नहीं हैं, बल्कि अन्यायियोंके साथी बन जाते हैं और लूटमें हिस्सा लेते हैं। उत्तरदायी भारतीय ऐसे कार्य करेंगे और इतने बड़े पैमानेपर जैसा कि अब विचार किया जा रहा है, यह बात मैं सोच भी नहीं सकता।

मैं श्री एन्ड्रयूजके इस विचारका पूरा समर्थन करता हूँ कि भारतीय लोगोंको पहाड़ी प्रदेशोंसे हटाकर खास तौरसे मैदानोंमें बसानेके विचारको मानना हर तरहसे अनुचित होगा, विशेषतया जब इसमें इन मैदानोंको वतनी लोगोंसे छीननेकी बात हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६५. एम० बी० एन० से

मैं अस्पृश्यता और वर्ण या जातिमें बहुत बड़ा अन्तर मानता हूँ। अस्पृश्यताका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। उसका समर्थन तर्कसे नहीं किया जा सकता। उसके कारण मनुष्य अपने साथियोंकी सेवा करनेके अधिकारसे वंचित हो जाता है और मुसीबतमें पड़े "अछूत" अपने इतर सह मनुष्योंकी सेवा पानेके अधिकारी नहीं रहते। मेरी रायमें वर्ण-व्यवस्थाका आधार वैज्ञानिक है। विवेकसे उसका विरोध नही है। यदि इससे हानियाँ हैं तो लाभ भी हैं। वर्ण-व्यवस्था किसी ब्राह्मणको अपने शूद्र भाईकी सेवा करनेसे नहीं रोकती। वर्णसे सामाजिक और नैतिक मर्यादा बंधी रहती है। वर्णके सिद्धान्तको इससे आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। मैं उसे चार वर्णतक ही सीमित मानता हूँ। उन्हें और बढ़ानेसे बुराइयाँ आयेंगी। मैं वर्णोंका सुधार करना और उनमें सचमुच जो बुराइयाँ आ गई हैं उन्हें दूर करना चाहता हूँ। किन्तु मुझे वर्णोंको ही खत्म करनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता। मेरी दृष्टिमें वहाँ ऊँच-नीचका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जो ब्राह्मण यह समझता है कि वह श्रेष्ठ प्राणी है और दूसरे वर्णोंका तिरस्कार करता है, वह ब्राह्मण नहीं है। यदि उसको वर्णोंमें अग्रगण्य स्थान मिलता है तो वह सेवाके अधिकारकी दृष्टिसे है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६६. आर० एस० एस० आर० से

आपने अपना पता नही दिया है। यदि आपके मतसे 'गीता' के अन्य अध्यायोंमें हिंसाका समर्थन किया गया है, तो फिर आपने १२ वें अध्यायसे जो श्लोक उद्धृत किये हैं उनसे भी अहिंसाका अधिक समर्थन नही होता। लेकिन आपके इस कथनसे कि 'गीता'में कही भी हिंसाका समर्थन है और उसकी शिक्षा दी गई है, मै सहमत नहीं हूँ। दूसरे अध्यायके अन्तके श्लोकोंको देखिए। यद्यपि उस अध्यायके शुरूके श्लोकोंकी व्याख्या हिंसामूलक की जा सकती है, फिर भी मुझे लगता है कि उस अध्यायके अन्तमें जो श्लोक हैं उनका वैसा अर्थ नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि 'गीता' की शाब्दिक व्याख्या करनेसे पाठक विरोधोंके जालमें फँस सकता है। जैसा कहा गया है, "शब्द मारक होता है, भाव तारक होता है।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-३-१९२५

१६७. भेंटके सम्बन्धमें तार

१२ मार्च, १९२५

खेद है वर्तमान कार्यक्रममें भूतपूर्व महाराजासे[1] मिलनेके लिए दिन निकालना असम्भव[2]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-३-१९२५

१६८. भाषण: क्विलोनमें[3]

१२ मार्च, १९२५

अध्यक्ष महोदय, नगरपालिकाके पार्षदगण तथा मित्रो,

आपने जो सुन्दर अभिनन्दन-पत्र मुझे दिया है और उसमें जो भाव व्यक्त किये हैं उनके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी ही तरह आपको भी मेरे मित्र मौलाना शौकत अलीकी अनुपस्थितिपर दुःख है। आम तौरपर ऐसे सभी दौरोंमें वे मेरे साथ रहते हैं। हुआ यह है कि कुछ विशेष कार्योंमें उलझे होनेके कारण दिल्लीसे उनका हटना सम्भव नहीं है; और फिर इस दौरेमें उनका मेरे साथ आना जरूरी भी नहीं था। जैसा कि आप जानते हैं, फिलहाल त्रावणकोरमें मैं एक विशेष कामसे आया हुआ हूँ जिसमें उनकी उतनी दिलचस्पी नहीं है, जितनी कि हम हिन्दुओंकी है।

अस्पृश्यताकी समस्या अपनी सारी बुराइयोंके साथ मलाबारमें प्रकट हुई है। मैं स्वीकार करता हूँ कि वाइकोममें संघर्ष शुरू होनेसे पहले मुझे मालूम भी नहीं था कि अस्पृश्योंका किन्हीं विशेष स्थानोंमें प्रवेश कोई अपराध है। त्रावणकोर भारतके उन चन्द भाग्यशाली क्षेत्रोंमें से है जहाँ लगभग सभी लोग शिक्षित हैं। आप लोग एक ऐसे राज्यमें रहते हैं जो प्रगतिशील समझा जाता है; और मेरी रायमें ऐसा समझना ठीक ही है। मैं जानता हूँ कि इस राज्यने उन लोगोंके लिए बहुत-कुछ किया है, जिन्हें भ्रमवश नीच जातिका कहा जाता है। मैं उन्हें नीच जातिका कहना गलत मानता हूँ; उनके लिए सही शब्द होगा दलित जाति। स्वामी विवेकानन्दने हमें याद दिलाया था कि ऊँची जातिवालोंने ही अपनेमें से कुछ लोगोंको दलित किया था और इस प्रकार स्वयं नीच हो गये थे। आप अपने ही वर्गके मनुष्योंको नीचा

१. सर श्रीराम वर्मा, कोचीनके भूतपूर्व महाराजा।

२. १९-३-१९२५ के हिन्दूके अनुसार गांधीजी १८ मार्चको महाराजासे मिले।

३. यह भाषण क्विलोन नगरपालिका द्वारा भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

करके खुद ऊँचे नहीं बने रह सकते। यह बात अकल्पनीय लगती है कि किसी मनुष्य-के लिए अर्द्ध-सार्वजनिक या सार्वजनिक सड़कोंका उपयोग करना निषिद्ध कर दिया जाये। जबसे मैंने त्रावणकोरमें कदम रखा है तबसे मैं इस प्रकारके निषेधके पक्षमें जितने तर्क दिये जा सकते हैं, उन सभी तर्कोंको धैर्य और नम्रताके साथ सुनता रहा हूँ, लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मैं उनसे जरा भी प्रभावित नहीं हुआ हूँ— इसलिए नहीं कि मैं दूसरेकी बात समझनेके लिए तैयार नहीं हूँ बल्कि इसलिए कि कट्टरपन्थी लोगों द्वारा जो विरोध किया जा रहा है, वह मूलतः गलत है।

मैंने उनके सामने तीन निश्चित प्रस्ताव रखे हैं। इस समय मैं उनकी चर्चा नहीं करूँगा, लेकिन आप सबसे जो यहाँ इकट्ठा हुए हैं, मेरा निवेदन है कि आप मुझे तथा इस अनुष्ठानको अपनी सक्रिय सहानुभूति और सहयोग प्रदान करें। (हर्षध्वनि) हिन्दू धर्ममें जो बुराई घुस गई है, यदि आप उसे हृदयसे स्वीकार करते हैं तो मैं इस नगरके प्रत्येक स्त्री और पुरुषसे सहयोग और सहानुभूति देनेका अनु-रोध करूँगा। कृपया याद रखें कि इस समय दुनियाके सभी धर्मोंमें अव्यवस्था और गड़बड़ी फैली हुई है। अब वे केवल अपने धर्म-ग्रन्थोंके प्रमाणोंके सहारे ही नहीं खड़े रह सकते। उन्हें अब तर्क और बुद्धिकी कड़ीसे-कड़ी परीक्षा पास करनी होगी। मैं सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ, फिर भी मैंने जो बात कई मौकोंपर पहले कही है उसे फिर दोहरानेमें मुझे हिचक नहीं है, और वह यह है कि यदि 'वेदों' या 'पुराणों' में मुझे ऐसी चीजें दिखाई पड़ें जो बुद्धिकी कसौटीपर खरी न उतरें तो उन्हें अस्वीकार करनेमें मैं कोई आगा-पीछा नहीं करूँगा। लेकिन अपने सीमित समय और सीमित ज्ञानके अनुसार मैं स्वयं जितनी खोज कर सका हूँ, और भारतके बड़ेसे-बड़े विद्वान् शास्त्रियोंसे मुझे जितनी कुछ सहायता मिली है, उसके आधारपर मेरी यह दृढ़ धारणा बन गई है कि इस समय भारतमें अनुपगम्यता अथवा अस्पृश्यता जिस रूपमें प्रचलित हैं, उनके लिए शास्त्रोंमें कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। यह देश ज्ञानका भण्डार है और यदि आप मेरे कथनका खण्डन करना चाहते हों तो मैं आपसे कहूँगा कि मेरी सहायता कीजिए और मुझे वे श्लोक दिखाइये जो आपकी रायमें कट्टरपन्थियोंके मतका समर्थन करते हैं। मैं आपको चेतावनी देता हूँ कि यदि आप समय रहते नहीं चेते—यह बात मैं यहाँ उपस्थित हिन्दू श्रोताओंसे कह रहा हूँ— तो हमारे धर्मके सर्वनाशका भय है।

इस सुधारके बारेमें मुझसे धीरज रखनेको कहा जाता है। मैं अनुभवसे जानता हूँ कि धीरज एक गुण है। मैंने पिछले ४० वर्षोंसे अपने विनम्र ढंगसे बहुत प्रयास-पूर्वक इस गुणको अपने भीतर पैदा किया है, लेकिन मैं आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि मैं हिन्दू धर्मको कलंकित करनेवाले इस अभिशापके प्रति धीरज नहीं रख सकता। मैं तो आपसे कहूँगा कि आप इस अभिशापके प्रति अधैर्यको एक गुण समझें। मेरे शब्दोंपर ध्यान दीजिए। मैं कट्टरपन्थियोंके प्रति अधैर्यको बरतनेको नहीं कहता; मेरा आपसे अनुरोध है कि आप अपने प्रति अधीरता बरतें। देशको इस अभिशापसे जबतक मुक्त न कर लें, चैनसे न बैठें। अगर आप हलचल करें और अपनी रायको जोरदार ढंगसे व्यक्त करें तो अन्धी कट्टरताका विरोध छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

सत्याग्रह अपनी रायकी जोरदार अभिव्यक्तिके सिवा कुछ नहीं है। और जरूरत बातोंपर जोर देनेकी नहीं है, कार्योंपर जोर देनेकी है; और कार्योंपर जोर देनेका मतलब है स्वयं कष्ट सहन करना। मैं चाहता हूँ कि आप इस कसौटीपर वाइ-कोममें चल रहे संघर्षको जाँचें और यदि आपको वहाँ सत्याग्रहियोंमें हिंसाका लेश भी नजर आये तो आप उनकी कटुतम शब्दोंमें निन्दा करें। किन्तु यदि आप पायें कि वाइकोमकी कट्टरपन्थी विचारधाराकी अवहेलना करनेवाले वे लोग ईमानदार हैं और वे कष्टोंको सत्याग्रहियोंकी भाँति सहन कर रहे हैं, यदि आप देखें कि इन लोगोंके बारेमें मैं जो-कुछ आपको बता रहा हूँ वह सच है, तो मैं आपसे इनका समर्थन करनेका अनुरोध करता हूँ।

सत्याग्रहने अब एक चिरन्तन शक्तिका रूप ले लिया है। संसारकी कोई भी शक्ति उसका विनाश नहीं कर सकती। सत्याग्रह एक अमूल्य निधि है। वह सत्याग्रही और जिसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जाये, दोनोंका ही कल्याण करता है। इससे किसीको डरनेकी जरूरत नहीं है और मैं चाहूँगा कि यहाँ रहनेवाले आप शिक्षित लोग सत्याग्रह और उसके समूचे फलाफलका अध्ययन करें; तब आप मुझसे सहमत होंगे कि सत्याग्रहको यदि ठीकसे समझा जाये और ठीकसे प्रयोगमें लाया जाये तो यह एक लाजवाब तरीका है।

त्रावणकोरके दीवानके मानपत्रमें चरखेका उल्लेख देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। आप लोगोंने अपनी विधान सभामें एक प्रस्ताव पास किया है जिसके द्वारा राष्ट्रीय स्कूलोंमें चरखेको अपनानेकी सिफारिश की गई है। मैं विधान सभाको इस प्रस्तावके लिए बधाई देता हूँ, लेकिन त्रावणकोरके नगरों और कस्बोंकी यात्रा कर चुकनेके बाद मुझे अब आपसे यह कहना ही पड़ेगा कि आपके स्कूलोंमें चरखेकी योजनाकी सफलताके बारेमें मुझे शक है। अगर मुझे ठीक याद है तो दीवान महोदयने एक कुशल कतैयेके लिए विज्ञापन निकलवाया है। मुझे त्रावणकोरमें एक भी कुशल कतैया मिलनेमें शक है। और अगर आपके पास पर्याप्त संख्यामें कुशल कतैये नहीं हैं तो मैं नहीं जानता कि आप अपने स्कूलोंके लिए कताई-शिक्षक कहाँसे लायेंगे। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि जब आपने प्रस्ताव पास कर दिया है तो उसे अब सफल बनाइए। आप विश्वास करें कि यदि भारतकी दिनोंदिन बढ़ती गरीबीकी समस्याको कोई चीज हल कर सकती है तो वह केवल चरखा ही है। समूचे भारतके कृषक वर्गके लिए किसी एक सहायक धन्धेकी जरूरत है। ऐसा सहायक धन्धा केवल चरखेसे ही मिल सकता है। यह कोई नई चीज नहीं है। आजसे सिर्फ सौ साल पहले भारतकी हर कुटियामें चरखा रहता था। चरखेको उसका पुराना स्थान देते ही आप देखेंगे कि आपने गरीबीकी समस्या हल कर ली है।

मेरे मनमें त्रावणकोरकी स्त्रियोंके प्रति ममता उत्पन्न हो गई है। उन्हें तन ढँकनेके लिए उतने लम्बे वस्त्रकी जरूरत नहीं पड़ती जितनी तमिलनाडकी स्त्रियोंको पड़ती है। मुझे यह देखकर खुशी हुई है कि त्रावणकोरकी स्त्रियाँ अपना तन ढाँक लेनेमें ही पर्याप्त श्रृंगार मानती हैं। उनका श्वेत परिधान मुझे बहुत प्रिय जान पड़ता है। मुझे आशा और विश्वास है कि यह श्वेत परिधान उनकी आन्तरिक पवित्रताका

द्योतक और प्रतीक है (हर्षध्वनि) लेकिन मुझे यह देखकर दुःख हुआ है कि वे मैंचेस्टर-का, और वहाँका नहीं तो अहमदाबादका ही बना वस्त्र पहनती हैं। मेरा अनुरोध है कि वे असमकी अपनी बहनोंका अनुकरण करें। असमकी हर स्त्री बुनना जानती है, और असमके लगभग सभी घरोंमें हाथकरघा होता है। मैं हर स्त्री-पुरुषसे हाथ-कता और हाथ-बुना खद्दर पहननेका अनुरोध करता हूँ। ऐसा करनेसे आपका देशके गरीबसे-गरीब व्यक्तिके साथ सीधा सम्पर्क होगा और यदि आप मेरी नम्र सलाहको कृपापूर्वक मान लेंगे तो आप देखेंगे कि यह देश फिरसे समृद्ध हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-३-१९२५

१६९. भाषण : वर्कलामें[1]

१३ मार्च, १९२५

आपने कृपापूर्वक जो अभिनन्दन-पत्र मुझे दिया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरे मनमें यहाँ आनेकी बहुत इच्छा थी। मैं जानना चाहता था कि वे विभिन्न जातियाँ कौन-सी हैं जिन्हें वाइकोमकी उन सड़कोंपर जो सार्वजनिक या अर्धसार्वजनिक हैं, जानेकी मनाही है। इसलिए मेरा यहाँ आना और आप लोगोंके साथ व्यक्तिगत रूपसे मिलना और बातचीत करना स्थितिके अध्ययनमें सहायक हुआ है। घटनाचक्रके अवलोकनसे अब मुझे यह प्रत्यक्ष दीख गया है कि यदि पूज्य स्वामीजी[2] वाइकोम जाकर नाकेबन्दीको लांघनेकी कोशिश करेंगे तो उनके साथ क्या व्यवहार होगा।

जैसा कि आप जानते है, मै राजमातासे मिलनेवाला था, और पूज्य स्वामीजीसे भी भेंट करनेवाला था। मैं कल दोनोंसे मिला। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं इन दोनों महान् व्यक्तियोंसे मिल पाया। मैं आपको बता सकता हूँ कि जहाँतक राज-माताका व्यक्तिगत रूपसे सम्बन्ध है, उनकी सहानुभूति पूरी तरह न्यायकी माँग करने-वालोंके साथ है। मै आपको यह भी बतानेकी स्थितिमें हूँ कि उनकी रायमें वाइकोम और अन्य स्थानोंकी सभी सड़कें सभी वर्गोंके लिए खुली होनी चाहिए (हर्षध्वनि), लेकिन राज्यकी प्रधान होनेके नाते वे अनुभव करती हैं कि जबतक उनके पीछे जन-मतका बल न हो, अर्थात् जबतक त्रावणकोरमें जनमत पूर्णतः वैध, शान्तिपूर्ण और विधानसम्मत ढंगसे संगठित नहीं हो जाता, और जबतक यह मत उतने ही वैध, शान्तिपूर्ण विधानसम्मत रूपमें, फिर वह कितना ही जोरदार क्यों न हो, व्यक्त नहीं किया जाता, तबतक वे उस छूटका आदेश देनेमें असमर्थ हैं, जो माँगी जा रही है। जहाँतक मेरा सवाल है, मैं उनकी बातको पूरी तरह स्वीकार करता हूँ। अब आपका

१. यह एजवाहों तथा अन्य अस्पृश्यों द्वारा भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

२. स्वामी नारायण गुरु।

और मेरा कर्त्तव्य है कि हम अन्ध कट्टरताके विरोधको समाप्त कर दें। जबतक आप इन विरोधकी दीवारोंको तोड़नेमें स्वयं मुख्य भाग नहीं लेंगे तबतक आप मुक्ति और स्वतन्त्रताके आनन्दका अनुभव नहीं करेंगे।

मैं जिन कट्टरपन्थी भाइयोंसे मिला, उन्होंने बड़े शुष्क ढंगसे कर्मफलके भोगकी बात कही; और वह ठीक ही है। कर्मके सिद्धान्तका जो भावार्थ मैं देना चाहूँगा वह यह है कि हर व्यक्ति जिसके योग्य होता है वही पाता है, और हमें जो कुछ जन्मसे प्राप्त हुआ है, हम उसके पात्र हैं। हिन्दू धर्म वंश-परम्परामें विश्वास करता है, और वैज्ञानिक भी इसे मानते हैं। हिन्दू धर्म तो व्यवहारगत विज्ञान ही है। लेकिन यही विज्ञान, यही हिन्दुत्व हमें कर्मकी गतिको बदलना भी सिखाता है। कर्मकी गति बदली जाती है, पूर्वकृत कर्मोंसे बिलकुल विपरीत ढंगके कर्म करनेसे। यदि अपने पूर्वजन्ममें मैंने ऐसा कोई काम किया है जो गलत है तो उस पूर्वकर्मके फलको मैं उस पाप कर्मसे बिलकुल उलटा कोई पुण्य कार्य करके समाप्त कर सकता हूँ। और जिस प्रकार हमारे लिये विगतकी अपेक्षा इस जन्ममें ज्यादा अच्छे कर्म कर सकना सम्भव है उसी प्रकार इन कट्टरपन्थियोंके लिये सम्भव है कि वे इस जन्ममें बुरेपर-बुरे कर्म ही करते चले जायें और बादमें अपने कर्मोंका कड़वा फल चखें। कर्मका सिद्धान्त किसीके साथ पक्षपात या अन्याय नहीं करता, लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि आप कट्टरपन्थियोंको उन्हींके हालपर छोड़ दीजिए। मनुष्य स्वयं अपने भाग्यका निर्माता है और इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि अपने भाग्यके निर्माता आप स्वयं बनिए। मैं इन कट्टरपन्थियों और उनकी कट्टरतासे पीड़ित लोगोंके बीच सेतु बननेकी कोशिश कर रहा हूँ, अतएव मेरे लिए जहाँतक सम्भव है मैं आप लोगोंमें से ही एक बननेकी कोशिश कर रहा हूँ। और फिर, जैसा कि आज सुबह मैंने पूज्यपादको भी बताया था, मैं अपनेको भंगी कहता हूँ, और भंगियोंका स्थान दलित वर्गोंमें सबसे नीचा है। मुझे अपनेको भंगी कहनेमें लज्जा नहीं है और मैं भंगियोंसे कहता हूँ कि वे अपने पेशेपर लज्जाका अनुभव न करें। एक ईमानदार भंगी तो स्वच्छता रखनेवाला व्यक्ति है। मैं अपनेको बुनकर, कतैया और किसान भी कहता हूँ। कट्टरपन्थी कहते हैं कि दलित वर्गको अपनी जन्मजात बुराइयोंके कारण दलितवर्गमें ही रहना चाहिए। हमारा और आपका यह काम है कि हम और आप दिखा दें कि मनुष्यमें कोई बुराई जन्मजात नहीं है। मनुष्यमें जो-कुछ जन्मजात हैं वे गुण ही हैं। अपनी सामर्थ्य और सम्भावनाओंकी अनुभूति करते ही मनुष्य देवताके समान बन जाता है और मैं चहता हूँ कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति जो उसे बनना चाहिए वही बने, न कि वह जैसा है वैसा ही बना रहे।

मुझे आपके बीच इतने सारे शिक्षित लोग, वकील, डाक्टर और अन्य धन्धोंके लोग देखकर खुशी तो होती है; लेकिन फिर भी मैं यह कहूँगा कि केवल मेरे सन्तोषके लिए इतना ही काफी नहीं है। पढ़ा-लिखा होना अच्छा तो है, लेकिन यही कुछ नहीं है। अन्तमें जो चीज काम आयेगी वह शब्दज्ञान नहीं बल्कि चरित्रबल है। इसलिए मैं आपसे कहूँगा कि अपने अन्दरके सभी अच्छे गुणोंका विकास कीजिए, और आप देखेंगे कि चाहे जितनी दुर्धर्ष शक्तिसे पाला क्यों न पड़े वह शक्ति उस

आन्तरिक बलके आगे नहीं टिक सकेगी जो आप अपनेमें पैदा कर लेंगे। हिन्दुस्तान-भरमें ऐसे लोगोंके असंख्य उदाहरण हैं जो दलितवर्गके थे लेकिन जिन्होंने अपनेको कुछ बनाकर दिखाया; यही नहीं वे बड़ेसे-बड़े ब्राह्मणोंसे सम्मानित हुए। मैं चाहता हूँ कि इन विशिष्ट व्यक्तियोंने आपसे पहले जो-कुछ कर दिखाया है आप उससे पीछे न रहें। मैं आपसे कहूँगा कि आप अपनेको हिन्दू धर्मके कल्याणका न्यासी समझें। मैं जानता हूँ कि इस समय त्रावणकोरमें ही नहीं, सारे हिन्दुस्तानके दलितवर्गोंमें बेचैनी-की एक लहर दौड़ रही है। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इस प्रकार अधीर होना अनुचित है। आप धैर्य खोकर कोई स्थायी सुधार नहीं कर सकते। अधीर ही होना है तो हमें अन्यायीके विरुद्ध नहीं, अपने प्रति अधीर होना चाहिए। अंग्रेजोंका हमारे प्रति जो रवैया है, उसके बारेमें भी मैंने भारतके सामने यही उपाय रखा है, और मैं आपके प्रति कट्टरपन्थियोंके रवैयेके खिलाफ भी कोई दूसरा उपाय नहीं सुझा सकता। वे हममें जो-जो बुराइयाँ गिनाते हैं यदि हम उन सबको समाप्त कर दें तो आप देखेंगे कि रूढ़िवादिताके पाँवोंके नीचेकी जमीन खिसक जायेगी। आप पूछ सकते हैं, और ऐसा पूछना ठीक ही होगा कि एक सार्वजनिक सड़कपर प्रवेशके सवालसे गुण और चरित्रका क्या सम्बन्ध है। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि आप इस विषयपर जरा गहराईसे विचार करें। कट्टरपन्थियोंके दिमागमें कुछ खास-खास सार्व-जनिक सड़कोंके इस्तेमालका सवाल धर्मसे बुरी तरह जुड़ा हुआ है।

कट्टरपन्थियोंने जो स्थिति अपनाई है वह गलत, भ्रान्तिपूर्ण, अनैतिक और पाप-मय है। लेकिन यह मेरा और आपका दृष्टिकोण है—कट्टरपन्थियोंका नहीं। एक समय था जब हमारे पूर्वज मानव-बलि चढ़ाया करते थे। हम जानते हैं कि यह राक्षसी कृत्य था, अधर्म था, लेकिन हमारे पूर्वज ऐसा नहीं मानते थे। उन्हें यह ठीक ही लगता था और उन्होंने इस दुर्गुणको गुण मान रखा था। अगर हम उन्हें आजके मापदण्डसे नापें तो यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। अगर हम उनके साथ न्याय करना चाहते हैं, तो हमें अपनेको उनकी स्थितिमें रखकर यह देखना होगा कि मानवबलि देनेकी प्रथा समाप्त होनेपर उन्हें कितनी चोट लगी थी। यह बात उनके पिछले कृत्योंको न्याय नही ठहराती। यह एक वस्तुस्थिति है कि वे इन कामोंको सर्वथा ठीक समझते थे और उनका इसके अतिरिक्त कुछ न समझ सकना ऐसी बात है जो हमारे पूर्वजोंके पक्षमें जाती है। मैं चाहता हूँ कि आप आजके धर्मान्ध कट्टरपन्थियोंको भी इसी दृष्टिसे देखें। उन्हें अपनी ही बात निर्दोष लगती है, मैं यह बात कटु अनुभवसे कह रहा हूँ। मैं यह बात अपने घरेलू-जीवनके अनुभवसे कह रहा हूँ। मैं अपनी प्रिय पत्नीके चारों ओर पूर्वग्रहोंकी खड़ी हुई दीवारको अभीतक हटा नहीं पाया हूँ, लेकिन मैं उसके प्रति अधीर भी नहीं होता। उसके प्रति ज्यादासे-ज्यादा लिहाज, ज्यादासे-ज्यादा सौजन्य, और यदि अधिक स्नेह सम्भव हो तो अधिक स्नेहके बलपर उसे अपने विचारोंसे सहमत करना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। अपने निजी आचरणके प्रति मैं पूरी पूरी कठोरता बरतता हूँ, मुझे जहाँ अपने अन्दर पैठी हुई छोटीसे-छोटी अन्याय भावनाको भी सहन नहीं करना चाहिए वहाँ मुझे अपनी पत्नीके प्रति उदार होना

चाहिए। आप भी मुझसे किसी दूसरे व्यवहारकी अपेक्षा नहीं करेंगे। इसी प्रकार मैं आपसे अपेक्षा करता हूँ कि आप कट्टरपन्थियोंके प्रति अन्यथा भाव नहीं रखेंगे। यही सच्चे धर्ममय जीवनका रहस्य है। स्वामीजीने कल मुझसे कहा कि धर्म एक है। मैंने इस विचारका विरोध किया और आज यहाँ भी मैं उसका विरोध कर रहा हूँ। जबतक अलग-अलग मनुष्य हैं तबतक भिन्न-भिन्न धर्म रहेंगे, लेकिन सच्चे धार्मिक जीवनका रहस्य एक-दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुता बरतनेमें है। कुछ धार्मिक प्रथाओंमें जो चीज हमें बुरी लग सकती है वह उस प्रथाको माननेवालोंको भी बुरी लगे, यह जरूरी नहीं है। मैं वर्तमान मतभेदोंकी तरफसे आँख बन्द नहीं करना चाहता, ऐसा करनेका साहस भी नहीं कर सकता। मैं चाहूँ तो भी उन भेदोंको मिटा नहीं सकता, लेकिन उन भेदोंको जानते हुए, मैं उन लोगोंसे भी प्रेम करूँगा जो मुझसे भिन्न मत रखते हैं। आप इस नियमको सारी दुनियामें देख सकते है। हम जिस पेड़की छायामें बैठे हैं, उसकी कोई भी दो पत्तियाँ एक समान नही हैं, हालाँकि वे एक ही मूलसे उत्पन्न हुई हैं, लेकिन जिस प्रकार पत्तियाँ आपसमें पूरी तरह हिलमिल कर रहती हैं और कुल मिलाकर सघन वृक्षके रूपमें एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार हमारा मानव-समाज अपनी समस्त विभिन्नताओंके साथ देखनेवालेको एक सुन्दर समष्टिके रूपमें दिखना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब अपनी भिन्नताओंके बावजूद हम एक-दूसरेके प्रति प्रेम रखना और परस्पर सहिष्णुता बरतना शुरू करें। अत: यद्यपि मैं विवेकशून्य कट्टरवादितामें निपट जड़तापूर्ण अज्ञान देखता हूँ, फिर भी उस कट्टरताके प्रति असहिष्णु नहीं बनता; इसीलिए मैंने दुनियाके सामने अहिंसाका सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। मैं कहता हूँ कि जो व्यक्ति इस धरतीपर धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहता है और जो इसी जन्ममें इस पृथ्वीपर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे हर रूपमें, हर प्रकारसे और अपने हर कृत्यमें अहिंसक रहना चाहिए। मैं आपसे यहाँ यह कहने आया हूँ कि यदि वाइकोमका यह सत्याग्रह पूरी तरह अहिंसात्मक भावनासे चलाया गया होता और यदि उसे आपसे जो समर्थन मिलना चाहिए वह मिला होता तो लड़ाई कबकी बन्द हो गई होती। मैंने वाइ-कोमके सत्याग्रहियोंकी तारीफ की है। उन्होंने बहुत अच्छा काम किया है। वे मेरी प्रशंसाके पात्र हैं, लेकिन यह तसवीरका एक ही पहलू है। अगर मैं आपके सामने दूसरा पहलू न रखूं तो आपके साथ अप्रामाणिकता होगी। लेकिन यह दूसरा पहलू रखते हुए भी अहिंसाके सिद्धान्तके अनुसार मुझे उनकी निन्दा नहीं करनी है। जितना उनसे हो सकता था उन्होंने जरूर किया है, लेकिन मैं उनसे और आपसे और भी अच्छा काम कर दिखानेको कहता हूँ। उन्होंने किसीपर प्रहार नहीं किया, लेकिन उनके विचार और उनके मनमें हिंसाकी भावना थी। उनसे बातचीतके दौरान भी मैंने यह बात देखी। अस्पृश्यताका विरोध करनेवाले कट्टरपन्थियोंके प्रति उनके मनोंमें बड़ी कटुता है। वे उनसे क्रुद्ध हैं और उनकी नीयतपर शक करते हैं। वे सरकारकी नीयतपर भी शक करते हैं। मेरा कहना है कि ये सारी चीजें सत्याग्रहकी मर्यादाके विपरीत हैं। मैं सरकारके वचनपर भरोसा करूँगा। कट्टरपन्थी यदि यह कहते हैं

कि जब मैं उनकी सड़कपरसे गुजरता हूँ तो इससे उनकी धार्मिक भावनाको चोट पहुँचती है तो मै उनकी इस बातका विश्वास करता हूँ, और जिस ईमानदारीका दावा मै स्वयं करता हूँ उसी ईमानदारीका श्रेय उन्हे देकर मै उनके सन्देह और उनके विरोधको समाप्त कर देता हूँ। अपनेको उनके आदरका पात्र बनाकर मैं स्थितिको अपने लिए बहुत अनुकूल बना सकता हूँ। और इस प्रकार मैं आशा कर सकता हूँ कि मै उनके विवेकको जगा सकूँगा। मै चाहता हूँ कि आप भी मानसिक रूपसे यही रुख अपनाएँ; क्योंकि मेरा विश्वास है कि विचार कर्मकी अपेक्षा कही अधिक शक्तिशाली होते है। हमारे कर्म हमारे विचारोंकी अधूरी-सी प्रतिकृति होते हैं, और किसी कार्यका विश्लेषण करके उसकी जड़तक पहुँचनेमें मनोविज्ञानके जानकारोंको कोई कठिनाई नहीं होती, और न यह खोज निकालनेमें ही कठिनाई होती है कि अमुक व्यक्ति कितना नेक और वीर है, लेकिन फिर भी कितनी बार वह नीचताके काम कर डालता है।

मेरा उद्देश्य आज इन मुख्य सिद्धान्तोंको फिरसे दोहरा देना है कि हमें अपनी मुक्ति स्वयं प्राप्त करनी चाहिए, हमें स्वावलम्बी बनना चाहिए, हमें डटकर उद्योग करना चाहिए। मै आपसे कहता हूँ कि आपके सामने जो भी दूसरे काम हों उन्हें आप एक तरफ रख दें और इस सत्याग्रहको सफलताके साथ पूरा करनेके लिए प्रयत्नशील हो। यह संघर्ष आपकी कसौटी है, इसपर पूरा उतरनेका यही तरीका है कि आप इन वीर सत्याग्रहियोंके दलकी जरूरतोंको हर मानेमें पूरा करें। आपको इस प्रान्तसे बाहरके, बल्कि हो सके तो वाइकोमके बाहरके किसी आदमीसे या मुझसे पैसा लेनेमें लज्जा आनी चाहिए। आपको सत्याग्रहियोके लिए पैसेका इन्तजाम तो करना ही चाहिए बल्कि आपको इस अनुष्ठानमें भी पूरी लगनसे लग जाना चाहिए। ध्यान रखें कि सत्याग्रहियोंकी टोलियाँ आती रहें। कुछ थोड़ेसे नौजवान, बहादुर लड़के, दिन-प्रतिदिन नाकेबन्दियोंके सामने तेज धूपमें बैठकर सूत कातते रहें, आपको इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि आपको इस अनुष्ठानमें हिस्सा लेकर कष्ट सहन करना चाहिए, आपको भी इस कड़ी धूपमें धरना देकर तपश्चर्या करनी चाहिए, और इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चूँकि त्याग और बलिदान पवित्र गुण हैं, आपको यह काम पवित्र मनसे करना चाहिए। इसलिए आपका चरित्र सन्देहसे परे होना चाहिए, और आपको सत्यवादी और आत्मसयमी बनना चाहिए। कमसे-कम सत्याग्रहके दौरान आपको भोग विलाससे दूर रहना चाहिए, और अपनी आवश्यकताएँ न्यूनातिन्यून कर देनी चाहिए। कुछ दिनोंके लिए आपको किसी सासारिक बन्धनमें नहीं पड़ना चाहिए। आप अपने बुजुर्गोंकी आज्ञा लेकर फिर घर-द्वारकी ओर मुँह भी न करें। उनसे कह दें कि एक बार जब आप सत्याग्रहके लिए घरसे निकल पड़े हैं तो जरूरत होनेपर भी वे आपकी सहायताकी अपेक्षा न करें। आप यह सब काम सच्चे मनसे कीजिए और फिर आप देखेंगे कि आपने अपने लिए वह स्थान प्राप्त कर लिया है जिसे दुनियाकी कोई ताकत आपसे छीन नही सकती। ऐसा विशेष कार्य करनेका सौभाग्य तो सभीको नही मिल सकता; लेकिन अपने समाजमें सामाजिक सुधारका काम सभी कर सकते हैं। आपको अपने बीचसे अस्पृश्यता समाप्त

कर देनी चाहिए। आपके समाजमें अन्य कौन-कौनसे दुर्व्यसन हैं सो मैं नहीं जानता, किन्तु आपको अपने बीचसे अस्पृश्यताको तो दूर ही कर डालना चाहिए। दलित वर्गोंमें जो आपसे नीची जातिवाले हैं, उनके बीच आपको जाना चाहिए, उन्हें अपना मित्र बनाना चाहिए और जैसे बन वैसे उनकी सहायता करनी चाहिए।

कताई और खद्दरके सन्देशको अपना लीजिए। उसे हृदयंगम कीजिये। मैंने पूज्यपाद स्वामीजीसे इस कामको पूरी लगनसे उठानेका आग्रह किया है और आप सबसे भी मेरा निवेदन है कि आप कताई और बुनाईको अपनाइए और अपने श्रमसे तैयार किया गया कपड़ा पहनिए। मुझे मालूम हुआ है कि बहुत समय नहीं हुआ जब आपमें से हर व्यक्ति, या कमसे-कम आपके समाजकी प्रत्येक स्त्री बहुत अच्छी कताई कर लेती थी। हजारों लोग बुनाईका काम जानते थे। ये दोनों ही गौरवपूर्ण धन्धे हैं। मेरा निश्चित मत है कि कताईमें ही भारतकी आर्थिक मुक्ति निहित है। हाँ, यह जरूर है कि वैयक्तिक स्तरपर कताई लाभदायक धन्धा नहीं है, लेकिन राष्ट्रीय स्तरपर यह अत्यन्त सम्मानपूर्ण और लाभजनक धन्धोंमें से है। इसीलिए मैंने कताईको भारतके लिए इस युगका यज्ञ कहा है। मुझे उस समय अपार हर्ष हुआ जब पूज्यपाद स्वामीजीने मुझसे कहा कि वे स्वयं कताई करेंगे (हर्षध्वनि) और उन्होंने मुझे वचन दिया है कि वे अपने शिष्योंसे कहेंगे कि धवल खादीके वस्त्र पहनकर ही वे उनके सामने आ सकेंगे, अन्यथा नहीं। मैं चाहता हूँ कि आपमें से सभी शिक्षित लोग कताई करने और खादी पहननेमें गौरव अनुभव करें। मैं आशा करता हूँ कि आप महिलाओंके पास जायेंगे और उनसे भी ऐसा ही करनेको कहेंगे। मद्रास प्रान्तमें तमिल बहनें जो भारी-भारी साड़ियाँ पहनती हैं, आप उनकी नकल न कीजिए। आप विविधता और रंगोंके पीछे न पड़ें। मैं आपकी स्त्रियोंके धवल परिधानपर मुग्ध हूँ। पुरुष या स्त्रीकी जरूरतके लिए कुछ गज कपड़ा काफी होता है। आप मैंचेस्टर या अहमदाबादके बने कपड़ेपर निर्भर रहते हैं, यह आपके लिए शर्म और अपमानकी बात है; इसमें आपके गौरवकी हानि है। यदि आप इन चीजोंकी ओर ध्यान देंगे, तो राष्ट्रीय अनुष्ठान या वाइकोमके सत्याग्रहमें यही आपका योगदान होगा। वह लड़ाई लम्बी चलेगी, इससे डरिए मत। स्वामीजीने कल मुझसे कहा कि हो सकता है कि शायद हम अपने जीवनमें, इस पीढ़ीमें इस दुःखका अन्त न देख सकें, और सम्भवतः मुझे इस दुःखद स्थितिका अन्त देखनेका सुख अगले जन्मसे पहले न मिले। मैंने आदर-पूर्वक उनसे असहमति प्रकट की। मैं इसका अन्त इसी युगमें और अपने जीवनकालमें ही देखनेकी आशा रखता हूँ, लेकिन बिना आपकी सहायताके नहीं। आप अपनी सामर्थ्य-भर मेरी सहायता करें ताकि मैं आपको दिखा सकूँ कि इस अन्यायका समय बीत चुका है। आप मर्दकी तरह अपना कर्त्तव्य करें, और मैं जिम्मेदारी लेता हूँ कि मैं हिन्दू समाजमें से पंचम वर्ग समाप्त कर दूँगा। (हर्षध्वनि) ईश्वर स्वामीजीको शक्ति और संकल्प-बल प्रदान करे कि वे आपमें समुचित समझ पैदा कर सकें, और ईश्वर आपको इस पुण्य कार्यको सम्पन्न कर सकनेकी बुद्धि और शक्ति दे।

मैं सार्वजनिक रूपसे पूज्यपाद स्वामीजीको अपने प्रति दिखाई गई असीम कृपा और सत्कारके लिए धन्यवाद देता हूँ। आपने मुझे जो अभिनन्दन-पत्र दिया है और

जिस धैर्यके साथ मेरी बात सुनी है उसके लिए आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ, लेकिन आप मुझे सबसे बड़ा पुरस्कार यही दे सकते हैं कि आपने जो-कुछ सुना है, उसे आप कर दिखायें। (जोरसे हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-३-१९२५

१७०. भाषण: महाराजा कालेज, त्रिवेन्द्रममें[1]

१३ मार्च, १९२५

भारतमें और जैसा कि मुझे यूरोप और अमेरिकासे प्राप्त होनेवाले पत्रोंसे विदित होता है, भारतके बाहर तो और भी अधिक व्यापक रूपसे यह भ्रममूलक धारणा फैली हुई है कि मैं विज्ञानका विरोधी हूँ; उसका शत्रु हूँ। इस तरहके आरोपसे अधिक मिथ्या कोई अन्य आरोप हो ही नहीं सकता। यह बिलकुल सच है कि जो बात मैं आपसे अभी कहनेवाला हूँ, अगर विज्ञानके साथ वह बात न हो तो मैं उस तरहके विज्ञानका प्रशंसक नहीं हूँ। मेरी रायमें अगर हम विज्ञानका उचित उपयोग करें तो विज्ञान हमारे लिए संजीवनी बूटी है। किन्तु संसारमें अपने भ्रमणके दौरान मैंने विज्ञानका इतना दुरुपयोग होते देखा है कि प्रायः कई बार मुझे ऐसी बातें कहनी पड़ी हैं या मैंने कही हैं जिनसे लोग सोच सकते हैं कि मैं विज्ञानका विरोधी हूँ। मेरी नम्र रायमें वैज्ञानिक शोधकी भी सीमाएँ हैं और वैज्ञानिक शोधकी जो सीमाएँ मैं मानता हूँ, वे मानवताके विचारसे मानता हूँ। अभी हाल हीमें मैं एक मित्रके साथ विज्ञानके उपयोगोंके बारेमें चर्चा कर रहा था। उस समय मैंने अपने जीवनका एक किस्सा उनको सुनाया। आपको भी सुनाता हूँ। उनसे मैंने कहा कि मेरे जीवनमें एक ऐसा समय भी आया था कि जब मैंने करीब-करीब डाक्टरी पढ़नेका निश्चय कर लिया था। और मैंने उन्हें यह भी बताया कि अगर मैंने डाक्टरी पढ़ी होती तो शायद मैं एक विख्यात चिकित्सक या विख्यात सर्जन, या दोनों ही हो गया होता। कारण मैं वास्तवमें डाक्टरीकी इन दोनों शाखाओंका प्रेमी हूँ, और मुझे लगता है कि मै डाक्टरके रूपमें बहुत सेवा कर सकता था। लेकिन जब मेरे एक डाक्टर दोस्तने बताया — और वह एक अच्छे डाक्टर थे — कि मुझे चीर-फाड़ करनी पड़ेगी, तब मेरा मन घृणासे भर गया और उस तरफसे बिलकुल हट गया।

शायद आपमें से कुछ लोग मेरी इस बातपर हँसें; लेकिन मैं चाहता हूँ कि मैं जो कह रहा हूँ उसपर आप हँसे नहीं बल्कि ध्यानसे विचार करें। मुझे लगता है कि हम पृथ्वीपर इसलिए जन्मे हैं कि हम अपने स्रष्टाकी आराधना करें, अपनेको पहचानें, दूसरे शब्दोंमें आत्मानुभूति करें और इस तरह अपने प्रारब्धको जानें। मेरी

१. यह भाषण महाराजा कालेज ऑफ साइंसके विद्यार्थियों द्वारा भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

रायमें चीर-फाड़ हमारे नैतिक उत्थानमें रत्ती-भर भी सहायक नहीं होता। चीर-फाड़से उस व्यक्तिको जिसके शरीरमें कोई कष्ट है, शायद कुछ राहत मिल सकती है। हालाँकि कई डाक्टरोंने मुझे बताया है कि यह बात भी पूर्ण रूपसे सही नहीं है। लेकिन मैं आपसे यह बात सच्चे दिलसे कहना चाहता हूँ कि मैं शरीरको जीवित रखनेके उपायोंपर प्रतिबन्ध लगानेमें विश्वास करता हूँ। शरीरका क्या भरोसा? वह क्षण-भंगुर है। और किसी भी समय छूट जा सकता है। कर्नल मैडॉकके कुशल हाथों द्वारा किये गये उस ऑपरेशनसे तो चंगा होकर मैं निकल आया; लेकिन मेरे अच्छे हो जानेके बाद इस बातकी कोई गारंटी नहीं थी कि बिजली गिर जानेसे या किसी दुर्घटनामें पड़कर मेरी मृत्यु नहीं हो जायेगी। ऐसी स्थितिमें मैं समझता हूँ कि हमें इस बातका पता लगाना चाहिए कि हमारे लिए उचित क्या है — संयम रखना अथवा कोई बन्धन न मानना।

वैज्ञानिक अनुसन्धान और विज्ञानके उपयोगोंके ऊपर मैं जो सीमाएँ लगाना चाहूँगा, यह तो उसका मैंने केवल एक उदाहरण ही दिया है। इसलिए मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा — जैसा कि मैंने भारतके बहुत-सारे छात्रोंसे कहा है, और चूँकि मुझे छात्र-जगतका विश्वास प्राप्त होने और भारत-भरमें हजारों-लाखों छात्रोंके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त है, इसलिए मैं उनसे कहनेमें संकोच नहीं करूँगा — कि उन्हें जीवनमें कमसे-कम एक चीजके बारेमें निश्चित होना चाहिए, अर्थात् इस बारेमें कि वे इस दुनियामें किसलिए आये हैं। मैं यही विचार पूरी नम्रताके साथ प्रोफेसरों और शिक्षकोंके सामने भी रखता हूँ, और यही कारण है कि मैंने आधुनिक सभ्यताकी — मैं पश्चिमी सभ्यता नहीं कहूँगा, हालाँकि वर्तमान स्थितिमें ये दोनों एक-दूसरेके पर्यायवाची बन गये हैं — भौतिकवादी प्रकृतिके बारेमें और उसके विरुद्ध अक्सर लिखा और कहा है। लेकिन एक दूसरा पहलू भी है जो मैं आपके सामने रखना चाहूँगा। बहुत-से छात्र ज्ञानार्जनके लिए विज्ञान नहीं पढ़ते बल्कि विज्ञान पढ़कर नौकरी मिलेगी; इसलिए पढ़ते हैं। यह बात विज्ञानकी शिक्षा लेनेवाले कालेजोंके छात्रोंके बारेमें ही नहीं, बल्कि सभी कालेजोंके छात्रोंके बारेमें सच है। लेकिन यह देखते हुए कि विज्ञान उन कुछ चीजोंमें से है जिसमें विचार और प्रयोगकी यथार्थतापर आग्रह रखना होता है, मैं आपको जो चेतावनी देना चाहता हूँ वह औरोंकी अपेक्षा आप ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे।

मैं चाहूँगा कि हमारे अपने देशमें जो दो महान् वैज्ञानिक हुए हैं, उन्हे आप सामने रखें। ये दोनों हैं डाक्टर जगदीश चन्द्र बोस तथा डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय। कम-से-कम विज्ञानके छात्रोंके लिए तो ये जाने-माने नाम हैं। मेरा विश्वास है कि समस्त शिक्षित भारतके लिए ये नाम सुपरिचित हैं। इन दोनोंने 'विज्ञानके लिए विज्ञान' का उद्देश्य निश्चित किया, और हम जानते हैं कि उनकी क्या उपलब्धियाँ हैं। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि विज्ञान पढ़कर उन्हें धन या यशके रूपमें क्या मिलेगा। उन्होंने विज्ञानके ही लिए विज्ञानका अध्ययन किया। सर जगदीशचन्द्र बोसने एक बार मुझे बताया था कि विज्ञानके प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या हो। उस सिल-

सिलेमें मैंने जब कुछ नहीं कहा था, उससे बहुत पहले ही उन्होंने अपनी हदतक विज्ञानकी सीमाएँ स्वीकार कर ली थी। मैं उनके ही कथनके आधारपर कह रहा हूँ कि उनकी तमाम वैज्ञानिक खोजका उद्देश्य यही रहा है कि उसके सहारे हम अपने स्रष्टाके और निकट पहुँच सकें।

लेकिन भारतमें छात्रोंके सामने एक भारी समस्या है। इस तरहकी शिक्षा या उच्चतर शिक्षा पानेवाले छात्र मध्यवर्गके परिवारोंसे आते हैं। यह हमारा और हमारे देशका दुर्भाग्य है कि मध्यवर्गके लोग अपने हाथका इस्तेमाल करना लगभग भूल चुके हैं। और मैं मानता हूँ कि अगर कोई लड़का अपनी आस्तीन चढ़ाकर सड़कपर काम करनेवाले किसी मामूली मजदूरकी तरह परिश्रम नहीं कर सकता तो उस लड़केके लिए विज्ञानके रहस्योंको या वैज्ञानिक क्रिया-कलापोंसे प्राप्त होनेवाले आनन्दको समझना असम्भव है।

जब मैं रसायनशास्त्र पढ़ता था उस समयकी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे वह सबसे नीरस विषय लगता था (हँसी)। अब मैं जानता हूँ कि यह कितना दिलचस्प विषय है। हालाँकि मैं अपने सभी शिक्षकोंका भक्त हूँ, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि इसमें गलती मेरी नहीं थी, मेरे शिक्षककी थी। उन्होंने मुझसे बड़े-बड़े और विकट लगनेवाले नाम जबानी याद करनेको कहा — जबकि मुझे यह भी नही मालूम था कि उनके मतलब क्या है। विभिन्न धातुएँ भी उन्होने मुझे कभी नहीं दिखाईं। मुझे बस हर चीज जबानी याद करनी पड़ी। वे अपने सावधानीसे लिखे गये बड़े-बड़े नोट्स लाते थे और हमारे सामने पढ़ देते थे। हमें उनको लिख लेना और याद करना होता था। मैंने इसका विरोध किया और उसी एक विषयमें फेल हो गया (हँसी)। और स्थिति यह हुई कि वे तो शायद मैट्रिकुलेशन परीक्षामें बैठनेके लिए मुझे प्रमाणपत्र भी न देते। भाग्यवश मैं उस समय बीमार था; उन्हें मुझपर दया आ गई और उन्होंने प्रमाणपत्र दे दिया। अगर ऐसा न होता तो वे रसायनशास्त्रके पर्चेमें पास न होनेके लिए अपनेको दोष न देकर वास्तवमें मुझे दोष देते और मुझे परीक्षामें बैठनेसे रोक लेते।

अतः प्रोफेसर और शिक्षक — श्रीमान्, मैं आपको और आपकी जातिको इनमें शामिल नहीं करता — भारतीय शिक्षक और प्रोफेसर तथा छात्र सभी एक ही नावपर सवार हैं। विज्ञान मूलतः उन चीजोंमें से है जिसमें जबतक आपको व्यावहारिक ज्ञान न हो और आप उसका व्यावहारिक प्रयोग न करें, केवल सिद्धान्तका कोई महत्त्व नहीं है। मैं नहीं जानता कि आप लोग किस हदतक व्यावहारिक प्रयोग करते हैं और उसमें किस हदतक आनन्द लेते हैं। अगर आप सही भावनासे विज्ञान पढ़ते हैं तो मेरी रायमें हमारे विचार और कामको सटीक बनानेमें इससे अधिक महत्त्वपूर्ण व सहायक और कोई वस्तु नहीं है। जबतक हमारे दिमाग और हमारे हाथ मिलकर साथ-साथ नहीं चलेंगे तबतक हम कुछ भी नही कर सकेंगे।

दुर्भाग्यवश, हम कालेजोंमें पढ़नेवाले लोग भूल जाते हैं कि असली भारत गांवोंमें है, नगरोंमें नहीं।

भारतमें ७,००,००० गाँव हैं, और उदार शिक्षा प्राप्त करनेवाले आप-जैसे लोगोंसे अपेक्षा की जाती है कि आप इस शिक्षाको, या इस शिक्षाके फलको गाँवोंमें ले जायेंगे। अपने वैज्ञानिक ज्ञानका प्रसार गाँवोंके लोगोंमें आप कैसे करेंगे? क्या आप गाँवोंको ध्यानमें रखते हुए विज्ञान पढ़ रहे हैं, और क्या आप इतने कुशल और व्यावहारिक बन सकेंगे कि इतने शानदार, सामानवाले शानदार कालेजोंमें जो ज्ञान आप प्राप्त करते हैं, उसका उपयोग गाँवोंके लाभके लिए करें?

और अन्तमें मैं एक ऐसे यन्त्रकी बात आपके सामने रखता हूँ जिसपर आप अपने वैज्ञानिक ज्ञानका प्रयोग कर सकते है, और वह यन्त्र है मामूली चीज — चरखा। भारतके सात लाख गाँव आज इसी सीधे-सादे यन्त्रके अभावमें दिन-प्रतिदिन विपन्न होते जा रहे हैं। सिर्फ एक सदी पहले भारतके घर-घरमें चरखा था, और उस समय भारत वैसा काहिल देश नहीं था, जैसा कि आज है। तब उसके किसान जो कुल जनसंख्याके ८५ प्रतिशत हैं, सालमें कमसे-कम चार महीने बेकार रहनेको मजबूर नहीं थे। यह मैं नहीं बता रहा हूँ, यह मेरी बनाई हुई बात नहीं है। यह एक अर्थशास्त्री श्री हिगिनबॉटमका[1] कथन है। उन्होंने इधर कर-समितिके सामने वक्तव्य दिया है और उनका कहना है कि भारतकी बढ़ती हुई गरीबी घटनेके बजाय तबतक बढ़ती रहेगी जबतक कि भारतके करोड़ों लोगोंके पास कोई सहायक धन्धा नहीं होगा। अब आप अपने वैज्ञानिक साधनोंके सहारे पता चलाइए कि ऐसा कौन-सा सहायक धन्धा हो सकता है जो १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े धरातलपर फैले हुए ७,००,००० गाँवोंकी जरूरतोंको पूरा कर सकता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मजबूर होकर इस नतीजेपर पहुँचेंगे कि केवल चरखा ही ऐसा कर सकनेमें समर्थ है।

आज चरखेका इस्तेमाल नहीं हो रहा है। जहाँ-कहीं मैं जाता हूँ चरखेकी माँग करता हूँ और मुझे चरखेके नामपर जो चीज मिलती है वह तो एक खिलौना-भर है। इन खिलौनोंसे मुझे वह सूत नहीं मिल सकता जो आपको अच्छी खादी दे सके। देशमें चरखेकी गूँज सुनाई दे, यह तो आपपर निर्भर है। मैं आपके सामने बंगाल कैमिकल वर्क्सके संस्थापक डा० प्रफुल्लचन्द्र रायका सुन्दर उदाहरण रखता हूँ। बंगाल कैमिकल वर्क्स एक बढ़ती हुई संस्था है, जिसने सैकड़ों छात्रोंको काम दिया है। डा० राय वैज्ञानिकोंमें भी अग्रगण्य हैं। वे भारतमें गाँववालोंको अपने वैज्ञानिक ज्ञानका लाभ देना चाहते है। उन्होंने खुलनाके अकालके समय काम करते हुए चरखेका रहस्य समझा, और आप जानते हैं कि आज वे अपना जीवन केवल चरखेके प्रचारमें लगा रहे हैं और उनके अधीन काम करनेवाले सभी कार्यकर्ता, जो सब वैज्ञानिक हैं, चरखे और चरखेके जरूरी उपसाधनोंको अधिकसे-अधिक उन्नत बनानेकी कोशिशमें लगे हुए हैं। यह एक श्रेष्ठ कार्य है। यह वैज्ञानिकोंके योग्य है। ईश्वर करे आपके मनमें भी इसके प्रति उत्साह उत्पन्न हो और वह स्थायी बने। आपने मुझे धैर्यपूर्वक सुना इसके लिए धन्यवाद। (हर्षध्वनि)।

१. इलाहाबादके कृषि-संस्थानसे सम्बद्ध।

प्रधानाचार्य महोदयने तब महात्माजीको माला पहनाई और एक सुन्दर गुलदस्ता भेंट किया। महात्माजीने कहा :

मैंने सोचा था कि माला हाथ-कते सूतकी होगी।

कारमें बैठते हुए उन्होंने कहा :

अगली बार मैं आप सबको खद्दर पहने देखना चाहता हूँ, आपके अपने बुने हुए खद्दरमें।

'वन्दे मातरम्' और हर्षध्वनिके बीच महात्माजीने साइंस कालेजसे प्रस्थान किया।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-३-१९२५

१७१. भाषण : त्रिवेन्द्रमकी सार्वजनिक सभामें[1]

१३ मार्च, १९२५

महात्माजीने सभी अभिनन्दनपत्रोंका उत्तर एक साथ देते हुए त्रावणकोरकी राजमाताको तथा दीवान महोदयको सार्वजनिक रूपसे धन्यवाद दिया। महात्माजी उनसे वाइकोम संघर्षके सिलसिलेमें मिले थे और उन्होंने शिवगिरि मठमें स्वामी नारायण गुरुसे भी भेंट की थी। वहाँ उन्होंने कुछ पुलाया बालकोंको संस्कृत श्लोकोंका पाठ करते सुना था। महात्माजीने कहा कि एजवाहा लोग स्वच्छ हैं और देशकी किसी सर्वश्रेष्ठ जातिसे किसी प्रकार कम नहीं हैं। स्वामीजी वाइकोमकी निषिद्ध सड़कोंमें प्रवेश नहीं कर सकते यह देखकर मेरी धार्मिक, मानवीय और राष्ट्रीयताकी भावनाको ठेस लगती है।

वाइकोमके रुढ़िवादी लोगोंके साथ हुई अपनी बातचीतका[2] उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि मैंने उनके सामने स्वीकृतिके लिए तीन प्रस्ताव रखे। पहला यह था कि वाइकोममें या सम्पूर्ण त्रावणकोरमें केवल सवर्ण हिन्दुओंकी मतगणना करा ली जाये जिसे रुढ़िवादियोंके प्रतिनिधियोंने स्वीकार नहीं किया, बल्कि कहा कि जिनके अपने निश्चित विश्वास हैं वे लोग बहुमतका निर्णय माननेके लिए बाध्य नहीं हैं। दूसरा प्रस्ताव मैंने यह रखा कि रुढ़िवादियोंके निश्चित विश्वासोंके प्रामाणिक आधार भारतके विद्वान् शास्त्रियोंके सामने रखे जायें। इसके जवाबमें कहा गया कि प्रमाणोंकी प्रामाणिकता और व्याख्याके बारेमें शास्त्रियोंका निर्णय अपने अनुकूल न होनेपर वे उसे अस्वीकार करनेको स्वतन्त्र होंगे। तीसरा प्रस्ताव मैंने यह रखा कि सत्याग्रहियोंकी ओरसे मैं एक शास्त्रीको पंच नामजद करूँगा और विरोधी लोग अपना एक पंच

१. त्रावणकोरके नागरिकों, केरल हिन्दू सभा, मानवदया संघ, स्थानीय कांग्रेस कमेटी तथा खिलाफत कमेटी और हिन्दीके विद्यार्थियों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें।

२ देखिए "वाइकोमके सवर्ण हिन्दू नेताओंके साथ बातचीत", १०-३-१९२५।

नामजद करें। इन दोनोंके बीच मध्यस्थके पदपर दीवान महोदय रहेंगे। मैंने कहा कि पंच और मध्यस्थका जो निर्णय होगा उसे मैं अपने लिए बाध्यकारी मानूँगा। ये तीनों प्रस्ताव अब भी कायम हैं। सवर्ण हिन्दुओं और समस्त हिन्दू समाजसे मेरा अनुरोध है कि वे वाइकोममें कट्टर पन्थियोंके पूर्वग्रहको मिटा दें और जनमतके भारी दबावसे इन रास्तोंको अस्पृश्यों और अन्त्यजोंके लिए खुलवा दें। राजमाता और दीवान, दोनोंने मेरे प्रस्तावोंको पसन्द किया और सुधारकोंके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की, और दोनोंने वादा किया है कि वे इस समय कोई कानून तो नहीं बनायेंगे लेकिन अन्य सभी तरीकोंसे सुधार-आन्दोलनकी अपनी सामर्थ्य-भर सहायता करेंगे। मुझे विश्वास है कि संगठित जनमत कानूनी कदम उठाकर भी सुधारकोंकी सहायता करेगा। मैंने राजमातासे मतगणना करानेको कहा है, लेकिन वे वैसा कर सकें या न कर सकें, जनमत संगठित करनेसे तो आपको कोई नहीं रोक सकता। विवेक-शून्य कट्टरता स्थानीय जन-आलोचनाका तेज नहीं सह सकेगी, बशर्ते कि यह आलोचना सहानुभूतिपूर्ण, अहिंसक और विनम्र हो। मलाबारमें ६० हजार ब्राह्मणोंके मुकाबिले आठ लाख अब्राह्मण और १७ लाख अस्पृश्य हैं। उनमें शिक्षाका प्रसार देख कर मुझे खुशी होती है; लेकिन उन्हें सामान्य अधिकारोंसे भी वंचित नहीं किया जाना चाहिए। सभामें काफी संख्यामें उपस्थित महिलाओंसे खद्दर पहननेकी अपीलके बाद महात्माजीने अपना भाषण समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-३-१९२५

१७२. भाषण: अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें[1]

१४ मार्च, १९२५

अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें महात्माजीने कहा:

त्रावणकोरमें मैंने जो कुछ देखा है, उसके आधारपर मैं, आपके द्वारा त्रावणकोर राजपरिवारके प्रति मानपत्रमें व्यक्त किये गये उदारभावोंका हार्दिक समर्थन कर सकता हूँ। जैसा कि मैंने अपने साथी मित्रोंको बताया है, त्रावणकोरके राजपरिवारकी सादगीपर मैं मुग्ध हो गया हूँ। मैं भारतके बहुतसे राजाओं और उनके रहन-सहनसे परिचित हूँ। और मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने त्रावणकोरके राजघरानेमें इस सादगीसे भरे जीवनको देखनेकी बिलकुल आशा नहीं की थी। मुझे लगा कि जिस चीजने मुझे इतना विमोहित किया है यदि उसे सार्वजनिक रूपसे व्यक्त न करूँ तो यह अशिष्टता, यहाँतक कि सत्यको छिपाना होगा।

१. यह अभिनन्दन-पत्र त्रिवेन्द्रम नगरपालिका द्वारा दिया गया था।

मोटरसे आते हुए मार्गमें उन्होंने त्रिवेन्द्रमकी दो गन्दी बस्तियाँ देखी थीं, उनका उल्लेख करनेके बाद महात्माजीने कहा कि मेरी रायमें नगरपालिकाका सदस्य अपने पदके योग्य तभी है जब वह अपनेको उन नागरिकोंके स्वास्थ्यका जिम्मेदार माने जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। नगरोंमें ज्यादातर बीमारियाँ धूल, कूड़ा-कचरा और गन्दी हवासे पैदा होती हैं। उन्होंने तिरुचिनापल्लीका दृष्टान्त दिया जहाँ कावेरी नदीके तटपर ही, जिसका जल लोग पीते हैं, लोग मलमूत्र त्यागने बैठ जाते हैं। उन्होंने कहा कि तिरुचिनापल्ली एक बड़ा नगर है लेकिन वहाँके नागरिकों द्वारा जल-व्यवस्थाकी घोर उपेक्षा की जाती है, लेकिन त्रिवेन्द्रममें यहाँकी स्वच्छता और सफाई देखकर मैं दंग रह गया हूँ। लोग बड़े नगरोंमें काल कोठरियों-जैसे मकानोंमें रहकर घुटते रहते हैं, जहाँ ताजी हवा भी नहीं मिल सकती। लेकिन मुझे यह देखकर खुशी हुई है कि समूचे त्रावणकोरमें लोग दूर-दूर बने मकानोंमें रहते हैं। नागरिक जीवन पसन्द होनेके कारण मैंने कई नगर-निगमोंकी गतिविधियोंका अध्ययन किया है, और मैं इसे अपना दुर्भाग्य समझता हूँ कि मैं अपना जीवन नगरपालिकाके काममें नहीं लगा सका।

इसके बाद महात्माजीने कहा कि हालाँकि दक्षिण आफ्रिकामें हमारे देशभाई कुछ निर्योग्यताओंसे पीड़ित हैं जो मेरी समझमें अस्थायी हैं, लेकिन दक्षिण आफ्रिकामें बहुत अच्छे लोग हैं जो दुनियाके रुखको समझते हैं। रंगके विषयमें उनके विचार जो भी हों, लेकिन जिस ढंगसे वे अपने नगर-निगमोंका प्रबन्ध करते हैं उससे मैंने बहुत-कुछ सीखा है। उन्होंने गन्दे और असुन्दर स्थानोंको सुरम्य बना दिया है। जोहानिसबर्गको जो पहले एक रेतीला मैदान था उन्होंने एक सुन्दर उद्यानमें बदल दिया और उस नगरको रमणीक बनानेमें बहुत धन खर्च किया। जब जोहानिसबर्गमें प्लेग फैला तब उन्होंने पैसा पानीकी तरह बहाया और २४ घंटेके अन्दर ही नगरको इस बीमारीसे मुक्त कर दिया। उन्होंने प्लेगसे आक्रान्त सारे क्षेत्रको शेष भागोंसे अलग कर दिया और सफाई इन्स्पेक्टरकी रिपोर्टपर सरकारने एक खूबसूरत बाजारको जला कर राख कर दिया। आनेवाले संकटके उपाय पहलेसे ही सोच रखना और समय रहते तत्परतासे कदम उठाना नगरपालिकाकी मितव्ययिता कही जाती है।

भारत-भरमें नगरपालिकाओंको राजनीतिसे अलग रहना चाहिए। उन्हें अपना सारा ध्यान नागरिकोंके स्वास्थ्य, उनके समुचित आहार और उनकी समुचित शिक्षा-पर लगाना चाहिए। मैं एक क्षणको भी यह ,नहीं मानता कि नगरपालिकाएँ केवल प्राथमिक शिक्षाकी व्यवस्था ही करें। मेरे विचारसे उन्हें चाहिए कि वे अपनी देख-रेखमें बड़े होनेवाले बच्चोंकी उच्चतम शिक्षाका प्रबन्ध भी करें। दो बड़े नगरनिगमोंके अनुभवसे मेरा यह मत दृढ़ हो गया है कि अपने नगरोंकी सड़कोंकी रोशनी और नगरकी सफाईके इन्तजामके अलावा नगरपालिकाओंके हाथमें पुलिसका प्रबन्ध भी होना चाहिए। गांधीजीने उक्त नगरपालिकाके सदस्योंको अपनी एक बैठकमें सूत

कातनेके पक्षम प्रस्ताव पास करनेके लिए बधाई दी। गांधीजीने कहा कि आप लोग इस सम्बन्धमें सच्चे दिलसे और लगनके साथ कार्य करें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-३-१९२५

१७३. भाषण: लॉ कालेज, त्रिवेन्द्रममें

१४ मार्च, १९२५

फोर्ट हाइस्कूल और महिला मन्दिरमें थोड़ी-थोड़ी देर रुकनेके बाद महात्माजी लॉ कालेज पहुँचे जहाँ कालेजके कार्यवाहक प्रधानाचार्य श्री एम० के० गोविन्द पिल्लैने उनका स्वागत किया। कालेजके छात्रोंकी ओरसे एक अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया। उसका उत्तर देते हुए महात्माजीने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा, इंग्लैंडकी पहली यात्रा आदिकी चर्चा की और बताया कि किस प्रकार ४० वर्ष पहले उन्होंने उस समय जबकि पहले ही वकीलोंकी भरमार थी, वकालतके पेशेमें पैर रखा था। उन्होंने वकालतका इरादा रखनेवाले छात्रोंको सलाह दी कि उनके लिए तथ्योंकी पूरी जानकारी और मानव-स्वभावकी समझ जरूरी है और जो भी मामला उनके सामने आये उसका पूरा-पूरा अध्ययन करनेके बाद अगर लगे कि मामला न्यायसम्मत है तो वे उसे हाथमें लें, वरना छोड़ दें। वकीलोंकी हैसियतसे उन्हें पैसेके लिए अपनी आत्मा नहीं बेच देनी चाहिए। जब कोई ठीक और सही मामला उनको मिले, तो फिर उन्हें मुवक्किलके मामलेको अपना मामला समझकर पैरवी करनी चाहिए। जो सवालात ठीक लगें उनके आधारपर मुवक्किलकी बातोंमें आये बिना उन्हें सभी तथ्य मालूम कर लेने चाहिए।

गांधीजीने कहा:

आप जानते हैं कि मैंने वकीलों और उनके तरीकोंकी बहुत कड़ी और कटु आलोचना की है। लेकिन अगर मैं ऐसा न करूँ तो कौन करेगा, क्योंकि मैं वकालतके पेशेकी अच्छाइयों, बुराइयों और पेचीदगियोंसे परिचित हूँ। इसीलिए इस पेशेके सम्बन्धमें मेरे मनमें जो-कुछ था उसे मैंने साहसके साथ कहा है।

स्वर्गीय सर फीरोजशाह मेहता और बदरुद्दीन तैयबजी वकीलोंकी हैसियतसे सबसे श्रेष्ठ तो नहीं थे, लेकिन राष्ट्रके लिए उनकी सेवाएँ अमूल्य थीं। स्वर्गीय मनमोहन घोष गरीबोंके मित्र थे और जब किसी गरीबका मुकदमा उनके हाथमें आता तो वे फीस नहीं लेते थे। बंगालमें नील-बागानोंसे सम्बन्धित उपद्रवोंके[1] समय उन्होंने बहुमूल्य सेवा की।

१. मनमोहन घोषने हिन्दू पैट्रियटमें नील बागानोंके बारेमें लिखकर आन्दोलन खड़ा किया था, जिसके फलस्वरूप एक आयोग नियुक्त किया गया।

श्री घोष-जैसे वकीलोंके जीवनका अध्ययन करनेकी सलाह देते हुए महात्मा गांधीने कहा कि इन महान् वकीलोंने भावी वकीलोंके लिए जो विरासत छोड़ी है, उससे ही आप सन्तुष्ट न हों, बल्कि मैं चाहता हूँ कि आगेकी पीढ़ियाँ उनसे भी ज्यादा अच्छे काम कर दिखायें। उन्हें हर अर्थमें गरीबोंका मित्र बन जाना चाहिए और तभी वे वकालतके पेशेका औचित्य सिद्ध कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि आपका लक्ष्य जरूरतसे ज्यादा पैसा या जीवनमें मान कमाना नहीं, बल्कि मातृभूमिकी सेवा करनेके लिए मानवताकी सेवा करना है। आप लोगोंको झगड़े बढ़ानेके लिए वकील नहीं बनना है। आप जो शिक्षा प्राप्त करते हैं वह आजीविका कमाने-जैसे तुच्छ कामके लिए नहीं होनी चाहिए। बल्कि उसका उपयोग नैतिक उत्थानके उद्देश्यसे होना चाहिए ताकि आप अपने-आपको पहचान सकें और समझ सकें कि आपके ऊपर आपका सिरजनहार बैठा सब-कुछ देख रहा है; वह आपके नेक और बद सब विचारोंका लेखा रखता है। आप जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसका उपयोग कठोर आत्मविश्लेषणके लिए है, न कि पैसा कमाने भरके लिए।

अन्तमें महात्माजीने छात्रोंको चरखेका सन्देश दिया और कहा कि आप याद रखें कि न तो कानूनकी किताबोंसे और न मंचोंसे दिये गये भाषणों ही से बल्कि केवल चरखेसे आप भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले दिनकी सार्वजनिक सभामें एकत्र किये गये ५०० रुपये महात्माजीको भेंट किये गये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-३-१९२५

१७४. ज्ञानकी शोधमें

१५ मार्च, १९२५

फ्रांसके एक लेखकने एक कहानी लिखी है। उसका शीर्षक 'ज्ञानकी शोधमें' रखा जा सकता है। लेखक कितने ही विद्वानोंको भिन्न-भिन्न देशोंमें ज्ञानकी शोधके लिए भेजता है। शोधकोंका एक दल हिन्दुस्तान आता है और उस दलके सदस्य ब्रह्मज्ञानियों, शास्त्रियों, दरबारियों, इत्यादिके दरवाजे खटखटाते हैं, परन्तु ज्ञान उन्हें कहीं नहीं मिलता। उक्त शोधक-दल ज्ञानका अर्थ ईश्वरकी खोज मानता है। अन्तमें वे एक अन्त्यजके घर पहुँचते हैं। वहाँ वे भक्तिकी पराकाष्ठा देखते हैं। वहाँ उन्हें पहली बार सरलता, सादगी तथा निष्कपटता देखनेको मिलती है। वहाँ उन्हें ईश्वरका साक्षात्कार होता है और वे इस निश्चयपर पहुँचते हैं कि जो व्यक्ति अनायास ईश्वरसे साक्षात्कार करना चाहता है उसे ईश्वरकी खोज गरीब और तिरस्कृत लोगोंमें करनी चाहिए।

यह वार्ता तो कल्पित है, परन्तु हमारे शास्त्र इसी बातका साक्ष्य देते हैं। सुदामाको भगवान् सहजमें मिल गये। और मीराबाई जब रानी नहीं रही तब भगवान्से मिल पाईं। दुर्योधन कृष्णके सिरहाने जाकर बैठा तो उसे भगवान्ने केवल अपनी सेना दी। वे सारथि तो हुए पैरोंके पास बैठनेवाले अर्जुनके।

ये विचार मेरे मनमें नीचे लिखे पत्रको पढ़कर उत्पन्न हो रहे हैं:[1]

इस पत्रका लेखक निर्मल-हृदय है। वह ज्ञानकी शोधमें है। पर ज्यों-ज्यों वह ज्ञानको खोजता है त्यों-त्यों उसे ज्ञान दूर भागता हुआ दिखाई देता है। जो चीज बुद्धिके द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती उसके लिए वह बुद्धिका प्रयोग कर रहा है। फिर ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए वह जो अक्ल लड़ा रहा है उसका फल देखनेके लिए भी बहुत व्याकुल है। कर्मके फलकी आशा न रखनेका अर्थ यह नहीं कि फल मिलेगा ही नहीं बल्कि कर्म तो कोई भी निष्फल नहीं जाता, और संसारकी विचित्र रचना ऐसी रहस्यमयी है कि यही समझमें नहीं आता कि इस वृक्षका तना कौनसा है और शाखा कौनसी। तब फिर अनेक मनुष्योंके अनेक कर्मोंके समुदायके सम्मिलित फलमेंसे एक व्यक्तिके कर्मके फलको कौन छाँट ले सकता है? और इसका हमें अधिकार भी क्या है? एक राजाके सिपाहीको भी अपने किये कर्मका फल जाननेका अधिकार नहीं होता तो फिर हमें, जो कि इस संसारके सिपाही हैं, अपने कर्मके फलको जानकर क्या करना है? क्या यही ज्ञान काफी नहीं है कि कर्मका फल अवश्य मिलता है?

पर इस लेखकके हृदयमें न तो राम-नाममें और न ईश्वरमें ही श्रद्धा है। उसे मेरी सलाह है कि वह करोड़ोंके अनुभवपर श्रद्धा रखे। संसार ईश्वरके होनेसे कायम है। राम-नाम ईश्वरका एक नाम है। राम-नाम न रुचे तो वह ईश्वरकी उपासना अपनी मर्जीके किसी दूसरे नामसे कर सकता है। अजामिलका उदाहरण झूठ है, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं। सवाल यह नहीं है कि अजामिल हुआ था या नहीं; बल्कि यह है कि ईश्वरका नाम लेता हुआ वह पार हो गया या नहीं। पौराणिकोंने मनुष्य जातिके अनुभवोंका जो वर्णन किया है उनकी अवहेलना करना इतिहासकी अवहेलना करना है। मायाके साथ संघर्ष तो चल ही रहा है। अजामिल-जैसोंने युद्ध करते हुए नारायण-नामका जप किया है। मीराबाई उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, गिरिधरका नाम जपती थी। युद्धके बदलेमें राम-नाम नहीं लिया जा सकता बल्कि युद्ध करते हुए उसका जप युद्धको पवित्र बनाता है। राम-नाम लेनेवाला, द्वादश मन्त्र जपनेवाला व्यक्ति मायाके साथ संघर्ष करते हुए नहीं थकता, बल्कि मायाको ही थका देता है। इसीसे कविने गाया है—

'माया मोहित करे सभीको, हरिजनसे वह हारी रे।'[2]

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें २५ वर्षीय एक नवयुवकने धर्म सम्बन्धी अपनी कुछ शंकायें व्यक्त की थीं।

२. माया सहुने मोह पमाडे हरिजन थी रहि हारी रे।

राम-रावणका दृष्टान्त तो शाश्वत है। इससे सन्तोष न होनेका अर्थ इतना ही है कि असन्तुष्ट होनेवालेने राम-रावणको ऐतिहासिक पात्र मान लिया है। ऐतिहासिक राम-रावण तो चले गये। परन्तु मायावी रावण आज भी मौजूद है और जिनके हृदयमें रामका निवास है वे रामभक्त आज भी रावणका संहार कर रहे हैं।

जो बात मृत्युके बाद ही जानी जाती है उसको आज जान लेनेका लोभ रखना कितना जबरदस्त मोह है? यदि पाँच सालका कोई बालक पचासवें वर्षमें क्या हो जायेगा, यह जाननेका लोभ रखे तो उसकी क्या स्थिति होगी? परन्तु जिस तरह ज्ञानी बालक औरोंके अनुभवसे अपने सम्बन्धमें कुछ अनुमान कर सकता है उसी तरह हम भी औरोंके अनुभवसे मृत्युके बादकी स्थितिका कुछ अनुमान करके सन्तुष्ट रह सकते हैं।

अथवा मृत्युके बाद क्या होगा, यह जानने से क्या लाभ? क्या इतना जान लेना काफी नहीं है कि सुकृतका फल मीठा और दुष्कृतका कड़वा होता है? सर्वोत्तम कृत्यका फल मोक्ष है। मैं मोक्षकी यह व्याख्या उक्त पत्र-लेखकको बताना चाहता हूँ।

लेखक महोदय मूर्तिका स्थूल अर्थ करके भ्रमात्मक उपमाका सहारा लेते हुए खुद ही भुलावेमें पड़ गये हैं। मूर्ति परमेश्वर नहीं है। बल्कि लोग मूर्तिमें परमेश्वर-का आरोप करके उसकी आराधनामें तल्लीन होते हैं। हम लकड़ीके मनुष्य बनाकर लकड़ीके उन पुतलोंसे मनुष्यका काम नहीं ले सकते। लाखों सुपुत्र और सुपुत्रियाँ चित्र रखकर अपने माता-पिताओंकी स्मृति ताजा बनाये रखते हैं, तो इसमें क्या बुराई है? परमेश्वर सर्वव्यापक है। नर्मदाके एक पत्थरमें भी उसका आरोप करके परमेश्वरकी भक्ति सम्भव है।

अन्तमें, लेखक महोदय यदि यह मानते हों कि देहातमें रहकर चरखेके द्वारा देहातियोंकी सेवा करनेमें उन्हें सन्तोष होगा तो उन्हें देहातमें चले जानेकी तैयारी फौरन करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-३-१९२५

१७५. 'नवजीवन' के सम्बन्धमें

'नवजीवन' के एक ग्राहकने एक लम्बा शिकायतनामा भेजा है। उसका आशय इस प्रकार है:

१. 'नवजीवन' मासिक-पत्रोंके ढंगका पत्र हो गया है क्योंकि उसमें केवल चरखे और खादीके सम्बन्धमें नीरस और निराशा-भरे लेख रहते हैं।

२. 'नवजीवन' में महादेव मेरे दौरोंका दैनिक विवरण लगभग डायरीके रूपमें देते हैं और फिर उसीको लेकर लिखते चले जाते हैं।

३. 'नवजीवन' के परिशिष्टांकमें, जिसके बारेमें यह माना गया है कि वह शिक्षा, सम्बन्धी बातोंके लिए ही है, जो शिक्षा-सम्बन्धी समाचार प्रकाशित हुए हैं, उन्हें पढ़कर निराशा ही होती है और उसमें शिक्षाकी कोई योजना भी नहीं दी गई है।

४. 'नवजीवन' में अन्य लेख तो दिए ही नहीं जाते हैं। यह तो हद ही हो गई।

५. 'नवजीवन' जैसा महँगा साप्ताहिक दुनियामें कदाचित् ही कोई दूसरा होगा। कागजका दाम कम हो जानेपर भी 'नवजीवन' का दाम अभीतक वही बना हुआ है।

इन तर्कोंमें कुछ सत्य है। ग्राहक महोदयका आग्रह है कि मैं इस विषयकी चर्चा 'नवजीवन' में करूँ।

मैं ग्राहकोंको 'नवजीवन' का हिस्सेदार मानता हूँ। जबतक वे एक निश्चित संख्यामें 'नवजीवन' खरीदते रहेंगे तबतक मैं उसका प्रकाशन अवश्य करूँगा। मुझे 'नवजीवन' को ग्राहकोंके द्वारा भेजे गये वार्षिक चन्देके बलपर ही चलाना है, विज्ञापनोंका सहारा लेकर नहीं। इसलिए ग्राहक यदि चाहें तो उसका प्रकाशन बन्द हो जा सकता है।

यह बात बिलकुल सच है कि 'नवजीवन' ताजी खबरें छापनेवाला पत्र नहीं, बल्कि इसमें कुछ निश्चित विचारोंका प्रतिपादन किया जाता है। फिर वह इन विचारोंकी कसौटी भी करता है और यह दो तरीकेसे; एक तो समय-समयपर उनपर बहसको स्थान देकर और दूसरे यह मालूम करके कि उन विचारोंका समर्थन करनेवाले लोग कितने हैं।

'नवजीवन' स्वराज्य प्राप्तिके उपायोंकी खोज करता है और उन्हें जनताके सम्मुख प्रस्तुत करता है। इसलिए 'नवजीवन' एक नई वस्तु देता है। दूसरे अखबार जो देते हैं उसे देनेका प्रयत्न 'नवजीवन' नहीं करता। जिसे दूसरे पत्र नहीं देते उसको 'नवजीवन' निरन्तर देता है। इससे उसकी नवीनता अथवा विशिष्टता बनी रहती है। 'नवजीवन' का दूसरे पत्रोंसे स्पर्धा करनेका इरादा नहीं है।

'नवजीवन' में जो रोचकता पहले थी वह आज नहीं है, यह स्पष्ट है। एक समय था जब 'नवजीवन' के लगभग ४०,००० ग्राहक थे; किन्तु आज तो ६,००० ग्राहक

ही रह गये हैं। स्वामी आनन्दको लगता है कि उसका कारण यह है कि मैं आजकल 'नवजीवन'के लिए कम और 'यंग इंडिया'के लिए अधिक लिखता हूँ। मैं इस बातको नहीं मानता, क्योंकि इस समय जैसी शोचनीय स्थिति 'नवजीवन' की है वैसी ही 'यंग इंडिया'की भी है। उसकी ग्राहक संख्या कभी ३०,००० थी; किन्तु आज वह भी लगभग 'नवजीवन'के बराबर ही रह गई है।

फिर भी 'नवजीवन'में और अधिक लिखनेकी मेरी कामना तो है ही। यदि ईश्वरकी इच्छा होगी तो मेरी यह कामना पूरी होगी और तब स्वामीकी शंका दूर हो जायेगी।

हकीकत यह है कि मैं इस समय लोगोंके सम्मुख जिस चीजको रख रहा हूँ उससे उन्हें किसी प्रकारकी उत्तेजना या जोश नहीं मिलता। फिर स्वराज्य जल्दी मिलनेकी आशा भी नहीं है। 'नवजीवन'में स्वराज्य प्राप्त करनेके नये-नये साधन प्रस्तुत नहीं किये जाते। प्रत्युत वह उन्हीं उपायोंको नये ढंगसे लोगोंके सम्मुख रखनेका प्रयत्न करता है। 'नवजीवन'का रस उसकी इस नीरसतामें ही है। वह तो स्वराज्यका पोषक है इसलिए जिनका चरखे और इसी प्रकारके अन्य साधनोंमें विश्वास है, वे ही 'नवजीवन' खरीदते हैं। मुझे इतनेसे ही सन्तोष है। जबतक एक निश्चित संख्यामें ग्राहकोंको इससे सन्तोष मिलता रहेगा यह पत्र चलता रहेगा।

जो लोग चरखेको स्वराज्य प्राप्तिका एक सबल साधन मानते हैं और जो उसे भारतकी गरीबीको दूर करनेके लिए रामबाण मानते है, वे 'नवजीवन'से नही ऊबेंगे। जिनमें धैर्य है, श्रद्धा है, वे इस शस्त्रकी शक्तिको आज नहीं तो कल अवश्य समझ जायेंगे। मुझे इस सम्बन्धमें कोई शंका नहीं है और आशा है कि 'नवजीवन' के पाठकोंको भी नहीं होगी।

भाई महादेव देसाई मेरे दौरेकी दैनन्दिनी देते हैं, इस कारण किसीको शिकायत नहीं होनी चाहिए। मैं भ्रमण अपने मनोरंजनके लिए नहीं, सेवाके लिए करता हूँ। इसलिए पाठकोंको मेरे भ्रमणका परिणाम जाननेका अधिकार है और उसको किसी न किसी रूपमें देना मेरा कर्त्तव्य है। कई बार महादेवकी दैनन्दिनीमें मेरी प्रशंसा रहा करती है। यह दोष तो उसमें है ही। किन्तु लगता है कि यह दोष तो उसके लिए लगभग अनिवार्य हो गया है। मेरा सचिव जो यात्रामें मेरे साथ रहता है और मेरे चाकरकी तरह जुटा रहता है, मेरी आलोचना शायद ही कर सके। वह तो केवल प्रेम या मोहसे प्रेरित होकर ही मेरे साथ घूमता है। उसके लिए वेतनके लोभका तो सवाल हो ही नहीं सकता। उसकी स्तुतिपर मैं अंकुश लगा सकता हूँ, किन्तु उसे बिलकुल बन्द नहीं कर सकता। मेरे बारेमें मेरे निकटतम साथियोंके दिलोंमें जो प्रशंसाका भाव है उससे मैं फूल नहीं उठता; मैं उस स्तुतिको एक बोझ मानता हूँ और उसके योग्य बननेका विशेष प्रयत्न करता हूँ; जबतक मैं इस प्रकारका प्रयत्न करता हूँ, तबतक यह प्रशंसा हानिकर सिद्ध नहीं हो सकती।

फिर भी मैं इस आलोचनाके बारेमें विशेष तौरपर कुछ कहना चाहता हूँ। स्तुतिमें कुछ भय हमेशा रहता है। यदि बेटा बापकी स्तुति निरन्तर करता रहे तो वह अपने बापको भ्रमित करनेके पापका भागी बन जा सकता है। इसलिए वह पुत्र

जो अपने पिताके प्रति प्रेमभाव रखता है, पिताकी प्रशंसा नहीं किया करता। उसी प्रकार यदि बाप बेटेकी तारीफ हर समय किया करे तो उस बापसे बेटेका भला होनेके बजाय बुरा ही होनेकी सम्भावना है;. इसी प्रकार मित्र यदि मित्रकी स्तुति करता है तो वे दोनों एक दूसरेके लिए गड्ढा खोदते हैं।

इसलिए महादेवको मेरी सलाह है कि वे उक्त लेखककी आलोचनाके सारको समझें और तदनुसार कार्य करें। मैं भी और सावधान रहनेका प्रयत्न करूँगा।

इसमें भी एक कठिनाई तो रहती है। वह यह कि मैं महादेवके सब लेखोंको 'नवजीवन' में छपनेसे पहले पढ़ नहीं सकता; और बादमें भी पढ़नेका समय नहीं मिलता; इस कारण कुछ बातें ऐसी छप जाती हैं जिन्हें मैं समयपर पढ़ पाऊँ तो निकाल दूँ। इस स्थितिमें यदि 'नवजीवन' अन्यथा उपयोगी सेवा कर रहा हो तो इस ग्राहक-जैसे पाठकगण कृपया उक्त दोषको, जिस हदतक वह अनिवार्य हो उस हदतक दरगुजर करें।

'नवजीवन' का शिक्षा-सम्बन्धी अंक भी सेवाके निमित्त ही निकाला गया है। यह निश्चय किया गया कि विद्यापीठ अपनी शिक्षा-सम्बन्धी मासिक पत्रिका 'नवजीवन' के परिशिष्टांकके रूपमें निकाला करे तो व्ययकी काफी बचत हो सकती है। यह अंक उस निश्चयके बाद निकाला गया है। उससे भी लोगोंको राष्ट्रीय शिक्षाकी सही तस्वीर मिलती है; इसलिए इससे ग्राहकोंका हताश होना स्वाभाविक ही है। यदि सत्य नीरस हो, कष्टप्रद हो तो भी उपयुक्त अवसर आनेपर उसे व्यक्त करना ही पड़ता है। इस समय राष्ट्रीय शिक्षाकी गतिविधि शिथिल है; इसलिए उससे सम्बन्धित लेखे-जोखेमें निराशाजनक समाचार ही हो सकते हैं। किन्तु इस अन्धकारपूर्ण निराशामें आशाकी किरणें दिखाई देने लगी हैं। उनमें कितने बालक पढ़ते हैं, इस बातकी ओर पाठक ध्यान न दें। किन्तु जिन कठिनाइयोंके बीच हमारी राष्ट्रीय शिक्षाकी नौका आगे बढ़ रही है; पाठक उनकी ओर ध्यान दें। आज राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा बालकोंको जो सिखाया जा रहा है उससे उनमें निर्भयता और स्वराज्य लेनेकी योग्यता आयेगी एवं उनकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होगी।

'नवजीवन' का मूल्य क्यों नहीं घटाया जा सकता, अब यह बतानेकी आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी मैं यह तो कह ही दूँ कि 'नवजीवन' के ग्राहक 'नवजीवन' के मालिक हैं, इतना ही नहीं बल्कि जो लाभ होता है उसका कोई निजी उपयोग नहीं किया जाता; वह भी लोकोपयोगी सम्पत्ति है। 'नवजीवन' मासिक नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि उसमें केवल लेख ही नहीं होते, स्वराज्यकी प्रगतिका साप्ताहिक विवरण भी रहा करता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-३-१९२५

१७६. अहिंसाका मर्म

एक सज्जन नीचे लिखे सवाल करते हैं:

१. क्या यह बात सच है कि विदेशी चीनीमें हड्डियाँ तथा खून आदि अपवित्र चीजें डाली जाती हैं?

२. अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य क्या विदेशी चीनी खा सकता है?

३. जो शख्स अहिंसाकी दृष्टिसे खादी पहनते हैं वे क्या स्वराज्य मिलनेके बाद भी खादी पहनते रहेंगे या दूसरे कपड़े पहन सकेंगे?

४. खादी पहनना अहिंसाका सवाल है या राजनीतिका? हिंसाकी दृष्टिसे मिलके कपड़ेमें अधिक हिंसा है या विलायती कपड़ेमें; बने तो वे दोनों ही मशीनके हैं।

५. अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला चाय पी सकता है? यदि नहीं पीनी चाहिए तो उसे पीनेमें हिंसा कहाँ है?

ऐसे सवालोंका जवाब देते हुए मुझे संकोच होता है, क्योंकि ऐसे सवाल अज्ञान-सूचक हैं। परन्तु चूँकि कितने ही पाठक ऐसे सवाल किया करते हैं इसलिए उनका निर्णय कर डालना उचित मालूम होता है। इन सवालोंके जवाबके निमित्त मैं अहिंसा-तत्त्वको भी जिस तरह समझता हूँ, स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

विदेशी चीनीके अन्दर हड्डियाँ आदि नहीं डाली जातीं; हाँ, ऐसा सुना है कि उनका उपयोग चीनी साफ करनेमें किया जाता है। यह माननेका भी कोई कारण नहीं कि ऐसा प्रयोग देशी चीनीके लिए नहीं किया जाता।

इस कारण अहिंसाकी दृष्टिसे शायद दोनों प्रकारकी चीनी त्याज्य है। यदि लेना ही हो तो वह कहाँ-कैसे बनती है, इसकी जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। स्वदेशी-को प्रोत्साहन देनेके लिए विदेशी चीनीका त्याग करना उचित है। अहिंसाकी एक सूक्ष्म दृष्टिसे तो चीनीका ही त्याग कर देना चाहिए। प्रत्येक प्रक्रियामें हिंसा होती है। इसलिए जिस खाद्यपदार्थपर जितनी कम प्रक्रिया होती हो वह उतना ही अच्छा है। गन्ना चूसना सबसे उत्तम है; गुड़ खाना उससे कम अच्छा है और चीनी खाना उससे भी कम। परन्तु मैं सर्व-साधारणके लिए इतना बारीकीमें जानेकी बिलकुल जरूरत नहीं समझता।

खादी पहननेवाला अहिंसा और स्वराज्य दोनों दृष्टियोंसे स्वराज्य मिलनेके बाद भी खादी ही पहनेगा। स्वराज्य जिन साधनोंके बलपर मिलेगा उन्हीं साधनोंके बल-पर वह कायम रह सकेगा। जो राष्ट्र अपनी जरूरतोंके लिए विदेशोंपर मुनहसिर रहता है, या तो वह गुलाम बन जाता है या औरोंको गुलाम बनाता है।

खादी पहननेमें अहिंसा, राजनीति और अर्थशास्त्र तीनोंका समावेश हो जाता है। पूर्वोक्त नियमके अनुसार खादीकी प्रक्रियाएँ अपेक्षाकृत कम हैं, इसलिए उसमें हिंसाका समावेश कम है।

अब विदेशी या स्वदेशी मिलके कपड़ेका मुकाबला करें तो भले ही दोनोंमें एक-ही प्रकारकी मशीनोंका उपयोग होता है, स्वदेशी मिलके कपड़े पहननेमें कम हिंसा है। क्योंकि ऐसा करते हुए हमारे हृदयमें अपने देश-भाइयोंके प्रति प्रेम रहता है। परन्तु विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल करनेमें प्रेमका अभाव होता है। यही नहीं, वल्कि बिलकुल स्वच्छन्दता, स्वार्थ या अपनी ही सुख-सुविधाका सवाल रहता है और परमार्थका, प्रेमका अर्थात् अहिंसाका अभाव रहता है।

अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला चाय पी भी सकता है और नहीं भी पी सकता है। चाय [के पौधे] में भी प्राण है। वह निरुपयोगी वस्तु है। इस कारण उसे पीनेसे होनेवाली हिंसा अनिवार्य नहीं है। अतएव उसका त्याग इष्ट है। जहाँ-जहाँ चायके वगीचे हैं, वहाँ-वहाँ गिरमिटिया लोगोंसे मजूरी कराई जाती है। गिरमिटिया लोगोंके दुःखोंसे हिन्दुस्तान वाकिफ है। जिस पदार्थके उत्पादनमें मजदूरोंको कष्ट मिलता हो वह भी अहिंसाकी दृष्टिसे त्याज्य है। व्यवहारमें हम इतनी छोटी-मोटी वातोंका खयाल नहीं करते। इस कारण जिस तरह दूसरी चीजोंको अहिंसाकी दृष्टिसे निर्दोष समझते हैं उसी तरह चायको भी मान सकते हैं। वैद्यककी दृष्टिसे चायमें गुणकी अपेक्षा दोष अधिक हैं, खासकर तब जबकि वह उबाल ली जाती है।

इन प्रश्नोंसे यह प्रकट होता है कि अहिंसाकी बातें करनेवालोंको अहिंसाके वारेमें कितना कम मालूम है। अहिंसा एक मानसिक स्थिति है। जो इस स्थितिको नहीं पा सका वह चाहे कितनी ही चीजोंको त्याग दे तो भी उसे उसका फल शायद ही मिल सकेगा। रोगी, रोगके कारण अनेक चीजोंसे परहेज करता है। उसके इस त्यागका फल रोग दूर करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अकाल पीड़ितको यदि भोजन न मिले तो इससे उसे उपवासका फल नहीं मिलता। जिसका मन संयमी नहीं है उसकी कृतिमें भले ही संयम दिखाई दे; पर वह संयम नहीं है। खाद्य-अखाद्यके विषयमें अहिंसाका समावेश नहीं होता। अहिंसा क्षत्रियका गुण है। कायर उसका पालन कर ही नहीं सकता। दया तो शूरवीर ही दिखा सकते हैं। जिस कार्यमें जिस अंशतक दया है उस कार्यमें उसी अंशतक अहिंसा हो सकती है। इसलिए दयामें ज्ञानकी आवश्यकता है। अन्ध प्रेमको अहिंसा नहीं कहते। अन्ध प्रेमके अधीन होकर जो माता अपने वालकको अनेक तरहसे लाड़ करती है उसमें अहिंसा नहीं बल्कि अज्ञानजनित हिंसा है। मैं चाहता हूँ कि लोग खाने-पीनेकी मर्यादाओंको ज्यादा महत्त्व न दें और उनका पालन करते हुए भी अहिंसाके विराट् रूपको, उसकी सूक्ष्मताको, उसके मर्मको समझें। रिवाजके अनुसार चलनेवाला पश्चिमका कोई साधु पुरुष गोमांस खानेपर भी रूढ़ि रिवाजके अनुसार गोमांसको छोड़नेवाले एक पाखण्डी क्रूर मनुष्यसे हजार गुना अधिक अहिंसक है। मैं चाहूँगा कि मुझसे प्रश्न पूछनेवाले अपने आपसे यह कहें कि मैं विदेशी चीनी, विदेशी कपड़े और चायको छोड़ भी दूँ पर अपने पड़ोसीके प्रति दयाभाव न रखूँ, दूसरोंके लड़कोंको अपने लड़केके वरावर न मानूँ, अपने व्यवसायमें सचाईका पावन्द न बनूँ, अपने नौकरों-चाकरोंको अपना कुटुम्बी मानकर उनके साथ प्रेम-भाव न रखूँ तो मेरी खाने-पीनेकी मर्यादाका कुछ मूल्य नहीं है; मेरी यह मर्यादा आडम्बर-मात्र है और अज्ञानजनित दिखावा है। नरसिंह

मेहताका पवित्र वचन है कि "ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्ह्यो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।" आत्म-तत्त्वको पहचाननेके मानी है अहिंसामय होना। अहिंसामय होनेका अर्थ है विरोधीके प्रति भी प्रेमभाव रखना, अपकारीका भी उपकार करना, बुराईका बदला भलाईसे देना और ऐसा करते हुए यह मानना कि यह कोई अनोखी बात नहीं है, यह तो हमारा कर्त्तव्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-३-१९२५

१७७. टिप्पणी

एक शिक्षकका दुःख

एक शिक्षक लिखते हैं:[1]

उक्त शिक्षकने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर भी उन्होंने स्वयं दे दिया है। इससे मेरा काम कुछ हलका हो गया है। मेरे कहनेका आशय यह तो माना ही नहीं जा सकता कि दस शिक्षक या एक शिक्षक केवल एक ही बालकको पढ़ाकर आराम करने लग जायें; मेरा अभिप्राय तो यह है कि दस नहीं यदि बीस शिक्षक भी हों और विद्यार्थी एक ही हो तो भी वे शालाका त्याग न करें वरन् विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़ानेका प्रयत्न करें। जब विद्यार्थी पर्याप्त संख्यामें मिलने लगें तो शिक्षक अपनी आजीविका-भरके लिए वेतन लें, पर प्रतिकूल परिस्थितिमें कुछ भी वेतन न लेनेमें उनकी सच्ची कसौटी है, भले ही वे स्वयं और उनके आश्रित जन भी भूखों मरें। ऐसा शिक्षक अपने कार्यके निमित्त अपने सगे-सम्बन्धियों, माँ-बाप, बाल-बच्चों और अपने सर्वस्वकी आहुति दे देता है। जब लोग दूसरे धन्धोंमें अपनी पूंजी गँवा बैठते हैं, तब वे क्या करते हैं? यथाशक्ति प्रयत्न करनेपर भी जब मनुष्यको कोई काम-काज नहीं मिलता तब वह अपना और अपने बाल-बच्चोंका भूखों मरना सहन कर लेता है। राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षकोंके विषयमें भी यही बात लागू होनी चाहिए। इससे उनके आश्रित भी पेट भरने लायक पैसा कमानेके लिए काम करने लगेंगे। जिन दिनों शिक्षक विद्यार्थियोंके न होनेके फलस्वरूप बेकार रहें उन दिनों वे अवश्य दूसरा काम उठा ले सकते हैं; किन्तु तब भी उनको शालाओंके उद्धारका प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। दूसरा काम खोज लिया जाये, इसका अर्थ यही है कि यदि विद्यार्थी न हों और समय व्यर्थ जा रहा हो तो उसमें शिक्षक धुनाई या बुनाईका काम करके अपना गुजारा करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-३-१९२५

१. यह नहीं दिया जा रहा है।

१७८. भाषण : कोट्टयममें[1]

१५ मार्च, १९२५

मुझे ईसाई मतावलम्बी लोगोंके मुख्य केन्द्र कोट्टयममें आ सकनेसे खुशी हुई है। दुनियाके सभी देशोंमें मेरे बहुतसे ईसाई दोस्त हैं, और मैं भारतके ईसाइयोंसे बहुत उम्मीद रखता हूँ। मैंने देशके सामने जो कार्यक्रम रखनेका साहस किया है, उसमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसमें ईसाई लोग हार्दिक सहयोग न दे सकते हों। मैं तो यहाँतक कहनेको तैयार हूँ — और विनम्रतापूर्वक यही निवेदन करूँगा कि यदि कोई ईसाई इस रचनात्मक कार्यक्रममें सच्चे दिलसे भाग नहीं लेता तो वह सही अर्थमें ईसाई धर्मका पालन नहीं करता। अगर ईसाई लोग, जो इस देशमें जन्मे और बड़े हुए हैं और जिनके लिए यह भूमि उसी प्रकार मातृभूमि है जिस प्रकार मेरी या मुसलमानोंकी है, अगर वे लोग इस देशके विकासमें सहायक नहीं बनते तो मैं कहूँगा कि वे उस हदतक ईसाइयतसे विमुख होते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि आप ईश्वरकी सेवा तो करें और अपने पड़ोसीकी सेवा करनेसे इनकार करें। जो व्यक्ति अपने पड़ोसीकी उपेक्षा करता है वह हिन्दू, ईसाई या मुसलमान कोई भी हो, अपने ईश्वरसे विमुख होता है। इसलिए मैं अपने ईसाई मित्रोंसे कहूँगा कि वे अपनी शक्ति-भर भारतकी सेवा करना अपना विशेष सौभाग्य और विशेष कर्त्तव्य मानें।

हमारे जुदा-जुदा धर्म हो सकते हैं, ईश्वरके बारेमें हमारी कल्पनाएँ भिन्न-भिन्न हो सकतीं हैं; और मुक्तिके विषयमें हमारे विचार भिन्न हो सकते हैं। लेकिन एक चीज है जो सभी भारतीयोंको इस देशकी धरतीसे बाँधती है। एक चीज है जो सभी भारतीयोंको अटूट बन्धनमें बाँधती है, और वह चीज है चरखा और उससे बननेवाला खद्दर। मैं समय-असमय खद्दर और चरखेकी बात कहता ही रहता हूँ, क्योंकि म जानता हूँ कि खद्दरमें ही, चरखेमें ही भारतकी आर्थिक मुक्तिकी कुंजी है। चरखा एक प्रतीक है, जनसाधारण और उच्च वर्गोको आपसमें बाँधनेवाले बन्धनका। जनसाधारणका श्रम ही उच्च वर्गोंका जीवनाधार है, और उच्च वर्गोंसे मेरी विनती है कि वे जनसाधारणसे जो-कुछ पाते हैं उसके बदले कुछ थोड़ा-सा प्रतिदान दें। इसलिए मैं प्रत्येक भारतीयसे, भारतमें निवास करनेवाले अंग्रेजोंसे भी, बल्कि भारतसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे कहता हूँ कि वह खद्दरको अपनाये। अपने घरमें वह सिरसे पैरतक खद्दर ही पहने और इस प्रकार जनसाधारणको प्रतिदान दे। (हर्षध्वनि)

मैं कोट्टयम और आसपासके इलाकोंकी महिलाओंसे और पुरुषोंसे कहता हूँ, "अगर आप चरखेको अपने घरोंमें पुनः प्रतिष्ठित करेंगे तो आप देखेंगे कि इस

१. यह भाषण कोट्टयम नगरपालिका और हिन्दी छात्रोंकी ओरसे दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

तरह आपने भारतकी कोटि-कोटि भूखी मानवताको आशा और सान्त्वनाका सन्देश दिया है।"

अस्पृश्यताका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा :

आपकी राजमाता और दीवान महोदयने मुझे विश्वास दिलाया है कि उनकी सहानुभूति सुधारकोंके साथ है, और मैंने अगर उन्हें ठीक समझा है तो मैं जानता हूँ कि इस कलंकको दूर करनेके लिए वे इसी बातका इन्तजार कर रहे हैं कि जनताकी ओरसे सवर्ण हिन्दू लोग इसके पक्षमें जोरदार, सुस्पष्ट और संयमित आवाज उठाएँ। यदि हिन्दू लोग अपने धर्मके प्रति सच्चे हैं और स्वयंको अपने धर्मकी गरिमाका रक्षक मानते हैं, और यदि अस्पृश्यताके विरुद्ध उनकी भावना उतनी ही तीव्र है जितनी कि मेरी है तो वे तबतक चैनसे नही बैठेंगे जबतक कि राजमाता और दीवान महोदयको इस बातका यकीन नही दिला देते कि त्रावणकोरकी सारी जनता इस सुधारकी माँग करती है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-३-१९२५

१७९. अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल

[१६ मार्च, १९२५][1]

पाठकोंको याद होगा कि पिछले दिसम्बरमें बेलगाँवमें जो अनेक परिषदें हुई थीं, उनमें एक गोरक्षा परिषद् भी थी। अनिच्छा होते हुए भी प्रेमके वश होकर मैंने उसका अध्यक्ष बनना स्वीकार किया था। मेरी यह मान्यता है कि इस युगमें हिन्दू धर्मके माननेवालोंके लिए गोरक्षा महत्त्वपूर्ण और एक आवश्यक कर्त्तव्य है। मेरी यह भी नम्र मान्यता है कि मैं अपने तरीकोंसे इस कार्यको वर्षोंसे कर रहा हूँ। इस बातको तो सारा हिन्दुस्तान जानता है कि मैं जो जानबूझकर मुसलमानोंके साथ मैत्रीभाव बढ़ा रहा हूँ उसके पीछे गोरक्षा एक प्रबल कारण है। लेकिन मैं यह नही मानता कि मुसलमानोंके हाथसे गायको बचाना गोरक्षाका सबसे बड़ा अंग है। उसका सबसे बड़ा अंग तो हिन्दुओंसे गायकी रक्षा करना ही है। गोरक्षाकी मेरी व्याख्यामें गाय-बैलोंपर किये जानेवाले जुल्मोंसे उनकी रक्षा करना भी शामिल है।

लेकिन इस महान् कार्यमें अभीतक मैंने खुद बहुत भाग नहीं लिया है। ऐसा कार्य करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए मैंने तपश्चर्या की है, लेकिन पूरी योग्यता अभी प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए अध्यक्ष बननेमें मुझे संकोच होता था, फिर भी मैंने अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया। परिषद्में एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ था कि एक स्थायी मण्डल स्थापित किया जाये। इस कार्यमें भी तो मेरा योग देना जरूरी

१. कन्या कुमारीकी यात्राके उल्लेखसे पता लगता है कि यह लेख गांधीजीने १६ मार्चको लिखा होगा।

था। इसलिए मैं दिल्ली गया। गत जनवरी मासके आखिरी सप्ताहमें परिषद् द्वारा नियुक्त समितिकी बैठक हुई।[1] उसमें अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल स्थापित करनेका निश्चय किया गया। संगठनका संविधान तैयार किया गया, और उसे समितिने मंजूर किया। यह मण्डल जितना-कुछ कर पाया है, इसका मुख्य श्रेय वाईके प्रख्यात गोसेवक चौंडे महाराजको है। उन्हींकी इच्छा और साहससे प्रेरित होकर मैं यह काम कर पा रहा हूँ। दादासाहब करन्दीकर,[2] लाला लाजपतराय, बाबू भगवानदास, श्री केलकर, डाक्टर मुंजे[3], स्वामी श्रद्धानन्दजी इत्यादि इस समितिके सदस्य हैं। परन्तु भारत भूषण मालवीयजीके बिना इस मण्डलके अस्तित्वको मैं असम्भव मानता हूँ। इसलिए मैंने यह निवेदन किया कि उसे जनताके सामने लानेके पहले उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इसे सबने स्वीकार किया और उन्हें इस संस्थाके विधि-विधानको दिखानेका काम मेरे जिम्मे पड़ा। उन्हें वह दिखाया गया और उन्होंने इसे पसन्द किया।

लेकिन इसे प्रकाशित करनेमें मुझे संकोच होता है, क्योंकि उसका अध्यक्ष अभी तक मैं ही हूँ। मूल संस्थापकोंकी इच्छा यह है कि मैं ही उसका अध्यक्ष बना रहूँ। मुझे अपनी योग्यताके बारेमें शंका रहती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जबतक इस महान् कार्यमें अगुआ गिने जानेवाले हिन्दुओंकी सहमति न होगी तबतक इसमें विशेष प्रगति न हो सकेगी। मुझे अपने दिलमें हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं मेरे अस्पृश्यता-सम्बन्धी दृढ़ विचारोंके कारण मेरा अध्यक्ष होना इसके लिए हानिकारक साबित न हो। मैंने अपनी यह आशंका चौंडे महाराजजीपर प्रकट की। उनका खयाल है कि मेरे अस्पृश्यता-विषयक विचारोंका इस कार्यसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और यदि सम्बन्ध है, इस विचारसे कोई उससे अलग रहता है तो भी यह जोखिम उठाकर इस कार्यको आगे बढ़ाना हमारा धर्म है।

यह धर्म है या नहीं सो मैं नहीं जानता। लेकिन समितिने जिस विधानको स्वीकार किया है, उसे मैं जनताके समक्ष रख रहा हूँ। मुझे आशा है कि मैं २६को बम्बई पहुँच जाऊँगा। तब इस नियमावलीको मंजूर करानेके लिए एक सभा बुलानेकी तारीख तय की जायेगी। तारीख तय हो जाये तो सभा बुलाई जायेगी।

हे द्रौपदीके सहायक! तू मेरी सहायता कर। तू ही मुझ अनाथका नाथ बन। यह तू ही जानता है कि मुझे गोरक्षासे कितना प्रेम है। यदि यह प्रेम शुद्ध हो तो तू इस अयोग्य सेवकको योग्य बना लेना। तेरी डाली हुई अनेक जिम्मेदारियोंको मैंने उठा रखा है। उसमें यदि यह एक और बढ़ानी हो तो बढ़ा देना। मेरी शर्म तो तू ही ढँक सकता है।

पाठक, मेरे हृदयकी पीड़ा आप नहीं समझ सकेंगे। यह मैं बड़े तड़के लिख रहा हूँ और लिखते हुए मेरे हाथ काँप रहे हैं। आँखोंमें आँसू हैं। कल ही कन्या-

१. बॉम्बे सीक्रेट एब्सट्रैक्ट्स, १९२५ के अनुसार यह बैठक २४ जनवरीको हुई थी।
२. रघुनाथ पांडुरंग करन्दीकर, (१८५७-१९३५), सुप्रसिद्ध वकील और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता।
३. नागपुरके प्रख्यात नेत्रचिकित्सक, हिन्दू महासभाके नेता, १९३० के गोलमेज परिषद्के सदस्य।

कुमारीके दर्शन करके लौटा हूँ। जो विचार हृदयमें उमड़ रहे हैं, यदि समय मिला तो उन्हें आपके सामने रखूँगा। जिस प्रकार किसी बालकको खूब खानेकी इच्छा तो हो पर खानेकी शक्ति न होनेके कारण वह फूट-फूट कर रोता है, मेरी स्थिति भी कुछ वैसी ही है। मैं लोभी हूँ। मैं धर्मकी विजय देखने और उसे संसारके सामने रखनेके लिए बड़ा आतुर हूँ। इसके लिए आवश्यक कार्य करनेकी मुझे बड़ी अभिलाषा रहती है। मुझे हिन्द-स्वराज्य भी इसीलिए चाहिए। गोरक्षा, चरखा-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण, और मद्यपान-निषेध सब इसीलिए चाहिए। इनमें से मैं क्या करूँ और क्या न करूँ? तूफानी समुद्रमें मेरी अभिलाषा-रूपी नैया डोल रही है।

एक समय समुद्रमें एक बड़ा भयंकर तूफान आया। सब यात्री व्याकुल हो गये। सबने नरसिंह मेहताके इष्ट देवको स्मरण किया। मुसलमान अल्लाह-अल्लाह पुकारने लगे। हिन्दुओंने राम-राम जपना शुरू किया। पारसी भी अपने धर्मग्रन्थका पाठ करने लगे। मैंने सभीके चेहरोंपर चिन्ता देखी। तूफान शान्त हुआ और सबके-सब खुश हो गये। खुश होनेपर वे ईश्वरको भूल गये और ऐसा व्यवहार करने लगे मानो कभी तूफान आया ही न हो।

मेरी स्थिति विचित्र है। मैं तो हर क्षण तूफान ही में रहता हूँ और इसलिए सीतापति को नहीं भूल सकता। लेकिन जब कभी बहुत बड़े तूफानके बीच फँस जाता हूँ तब तो मैं अपने उन साथियोंसे भी अधिक विकल हो जाता हूँ और "पाहि माम् पाहि माम्" पुकार उठता हूँ।

इतनी प्रस्तावना लिखनेके बाद मैं गोमाताका स्मरण करके, परमात्माका ध्यान करके, इस मण्डलके संविधानको जनताके समक्ष रखता हूँ।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-३-१९२५

१८०. पत्र : कल्याणजी वि० मेहताको

सोमवार [१६ मार्च, १९२५][2]

भाई कल्याणजी,

तुम्हें तार देनेकी इच्छा हुई थी; किन्तु लोभके वश होकर पैसेकी बचत करनेका निश्चय किया। मैंने तुम्हारी रिहाईकी खबर आज ही 'नवजीवन' में पढ़ी है। रिहा हो गये, अच्छा हुआ। मैं २७ तारीखको आश्रममें पहुँचूँगा। तुम मुझे आश्रममें मिलोगे ही। आशा है तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २६७८) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ नहीं दिया गया है। देखिए "अ० भा० गोरक्षा मण्डलके संविधानका मसविदा", २४-१-१९२५।
२. साबरमती जेलसे कल्याणजीकी रिहाईकी खबर १५-३-१९२५ के नवजीवनमें छपी थी।

१८१. पत्र: डब्ल्यू० एच० पिटको

अलवाई
१८ मार्च, १९२५

प्रिय श्री पिट,[1]

वाइकोममें मन्दिरको जानेवाली सड़कपर सत्याग्रहियोंको सीमा-रेखा पार करनेसे रोकनेके लिए बनाई गई नाकेबन्दियों और पुलिस दलको हटानेकी सम्भावना और वांछनीयतापर हमारी जो बातचीत[2] हुई थी उसे देखते हुए स्थितिको जैसा मैंने समझा है वह इस प्रकार है: सरकार और सुधारक दोनोंका एक यही उद्देश्य है कि तथाकथित अछूतों द्वारा सड़कोंका उपयोग करनेपर लगाई गई पाबन्दी हटा ली जाये। आपका विचार है कि यदि मैं सत्याग्रहियोंको यह सलाह दूँ कि वे नाके-बन्दियों और पुलिस दलके न रहते हुए भी अन्तिम निर्णय होनेतक सीमा-रेखाको पार न करें तो मैं जो-कुछ चाहता हूँ वह और भी जल्दी हो जायेगा। आप मुझसे कहते हैं कि कट्टरपन्थी लोगोंको नाकेबन्दियों तथा पुलिस दलकी उपस्थितिसे बल मिलता है क्योंकि वे यह गलत अनुमान लगा लेते हैं कि नाकेबन्दियाँ खड़ा करने और पुलिस दल बैठानेका उद्देश्य उनके मनके अनुसार स्थिति बनाये रखनेमें सहायता पहुँचाना है। आपके साथ हुई बातचीतसे मुझे ऐसा लगा कि यदि मैं आपके सुझाये हुए ढंगपर सीमा-रेखाका उल्लंघन न करनेका वादा करूँ तो आप उन आदेशोंको जिनके अधीन आप कार्रवाई कर रहे हैं, वापस करा सकेंगे। यद्यपि मैं सहज ही यह विश्वास नहीं कर पाता हूँ कि यदि सत्याग्रही आपके बताये हुए तरीकेको उपयोगमें लायें तो कट्टरपन्थियोंका दिल पसीज जायेगा और उनकी स्थिति कमजोर हो जायेगी, फिर भी आपके सुझावके पीछे जो भावना है उसकी मैं कद्र करता हूँ। इसलिए मैं परीक्षणके तौरपर आपके दिये हुए सुझावको स्वीकार करनेकी सलाह देनेके लिए तैयार हूँ। आखिर सत्याग्रही यही तो चाहते हैं कि जनताकी सक्रिय तथा जबरदस्त राय उनके पक्षमें हो जाये। उनका उद्देश्य कट्टरपन्थियोंको नाराज करनेका नहीं है बल्कि उन्हें अपने पक्षमें लानेका है। इसके अतिरिक्त उनका उद्देश्य इस आन्दोलनको चलाकर किसी प्रकार भी सरकारको परेशान करना नहीं है, बल्कि जहाँतक सम्भव हो, उसकी सहानुभूति और उसके समर्थनको प्राप्त करना है। इसलिए आपकी ओर से यह जानकारी मिलनेपर कि इस पत्रमें उल्लिखित प्रतिषेधात्मक आदेश वापस ले लिया गया है, मैं आपके सुझावपर तुरन्त अमल करनेके लिए तैयार हूँ। इसका असर यह होगा कि सत्याग्रही बहुत कम संख्यामें जो कि वर्तमान संख्यासे ज्यादा *नहीं होगी अपने उद्देश्यके समर्थनमें सीमा-रेखातक जायेंगे और जाकर खड़े रहेंगे या*

१. त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नर।
२. १० मार्चको त्रिवेन्द्रममें।

चरखा कातेंगे, जैसा कि वे सीमा-रेखापर अब कर रहे हैं। जबतक यह समझौता रहेगा तबतक वे सीमा-रेखाको कदापि पार नहीं करेंगे। मै आशा करता हूँ कि यदि कभी उस तथाकथित अधिकार या प्रथाके विरुद्ध, जिसके अन्तर्गत तथाकथित अस्पृश्योको मन्दिरके आसपासकी सड़कोंका उपयोग करनेसे रोका गया है, अदालतमें मुकदमा चलानेकी जरूरत पड़ेगी तो वह मुकदमा त्रावणकोरके आम फौजदारी कानूनके अन्तर्गत ही चलाया जायेगा। किन्तु मुझे आशा है कि त्रावणकोर सरकारकी सहायतासे जनमतको इस प्रकार सुगठित किया जायेगा कि वह दुर्निवार हो जाये और दोनों पक्षों द्वारा कानूनकी शरण लिये बिना सार्वजनिक या अर्द्ध सार्वजनिक सड़कोंका उपयोग करनेसे किसी भी व्यक्तिको, फिर वह किसी भी जातिका क्यों न हो, रोका न जा सके। मैंने आपके सामने जो तीन प्रस्ताव रखे थे उनपर मैं आपसे पहले ही बातचीत कर चुका हूँ। वे प्रस्ताव हैं: चुने हुए क्षेत्रोंमें सवर्ण हिन्दुओंका मत लेकर जनमत जानना, पंच निर्णय या हिन्दू शास्त्रोंके उन प्रमाणोंकी व्याख्या और परीक्षण करना जिनको कट्टरपन्थी कुछ मन्दिरोंके आसपासकी सड़कोके उपयोगके सम्बन्धमें अपने समर्थनमें उद्धृत करते हैं। इनमें से एक या सभी सुझावोंको स्वीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

इस पत्रको समाप्त करते हुए त्रावणकोरके मेरे दौरेमें बहुत ही अच्छा प्रबन्ध करनेके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १३२६७) की माइक्रोफिल्मसे।

१८२. भाषण : परूरमें[2]

१८ मार्च, १९२५

महात्माजीने उत्तर देते हुए कहा कि आप जिस बातका निश्चय करते हैं उसका अक्षरशः पालन भी करते हैं; यह आपकी परम्परा ही है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि नगरपालिकाके सदस्योंने आजसे चरखा चलाने और खद्दर पहननेका अपना जो निश्चय व्यक्त किया है उसको वे तत्परताके साथ पूरा करेंगे। मुझे इस बातका दुःख है कि त्रावणकोरमें अस्पृश्यता और अनुपगम्यता बहुत बुरी तरहसे फैली हुई है। आप लोगोंका अपनी मातृभूमि एवं हिन्दू धर्मके प्रति यह कर्त्तव्य है कि उसे दूर कर दें। मैं देखता हूँ, आप लोगोंकी रुचि इतनी सादी है कि बहुतसे कपड़े

१. पुलिस कमिश्नरके उत्तरके लिए देखिए "तार : डब्ल्यू० एच० पिटको", २४-३-१९२५ की पाद-टिप्पणी।

२. यह भाषण परूर नगरपालिका, नागरिकों और एजवाहों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

पहनना न तो पुरुष सभ्यतापूर्ण समझते हैं और न स्त्रियाँ ही। मैं विदेशी या मिलके बने कपड़ोंको पहनना लज्जाजनक और अपमानजनक समझता हूँ। एजवाहा लोग एक समय बुनकर थे और वे अपने कपड़े स्वयं तैयार करते थे। एक ईसाई महोदयने मुझे लिखा है कि ख़द्दर पहनना असम्भव है। मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता कि कोई लाट पादरी या रोमन कैथोलिक पादरी अपने धर्मावलम्बियोंको शुद्ध हाथ बुना खद्दर न पहननेका आदेश दे सकता है। अपने खद्दर पहननेके वादेको पूरा करनेके लिए आपको संगठन तथा विशेषज्ञकी सहायताकी आवश्यकता है, इसलिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप तमिलनाडके मित्रोंकी सहायता लें।

[अंग्रजीसे]

हिन्दू, १९-३-१९२५

१८३. भाषण: अलवाईके यूनियन कालेजमें

१८ मार्च, १९२५

गांधीजीने उत्तर देते हुए एशियाके महाकवि[1] द्वारा छात्रावासके उद्घाटनपर और शानदार जगहके लिए कालेजको बधाई दी। उन्होंने कहा कि बौद्धिक ज्ञान द्वारा जीविकोपार्जन करना शिक्षाका दुरुपयोग है। मेरा खयाल है कि आप लोग हृदय, और शरीरकी संस्कृतिकी उपेक्षा कर रहे हैं। भाषण समाप्त करते हुए महात्माजीने छात्रोंसे कहा कि वे खद्दर और चरखेके सम्बन्धमें उदासीन रहनेमें ही उदारता मानकर सन्तुष्ट न हो जायें। मैं आपके सामने डा० प्रफुल्लचन्द्र रायका अनुकरणीय उदाहरण रखना चाहता हूँ जिन्होंने गरीबोंको राहत पहुँचानेके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-३-१९२५

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

१८४. भाषण: अलवाईके अद्वैताश्रममें

[१८ मार्च, १९२५][1]

आपने मुझे जो सुन्दर मानपत्र दिया है और जिसे एक अन्त्यज छात्रने पढ़ा है, मैं उसके लिए आपका आभारी हूँ। खेद है कि मैं इसका उत्तर संस्कृतमें नहीं दे सकता। फिर भी, यदि मैं संस्कृतका विद्वान् होता तो भी इसका उत्तर संस्कृतमें न देता क्योंकि हम हिन्दू आज संस्कृतके अध्ययनके प्रति उदासीन हो गये हैं। इसलिए सामान्य, वर्गकी जनतासे संस्कृत समझनेकी आशा नहीं की जा सकती। किन्तु मैं यहाँके संस्कृतमय वातावरणकी अनुकूलताका खयाल करके हिन्दीमें बोल सकता तो कदाचित् मैं हिन्दीमें बोलता। किन्तु आप उसे भी नहीं समझ पाते हैं। यह हमारी दुःखद स्थितिका सूचक है। मैं चाहता हूँ कि आश्रमके संचालक ऐसी व्यवस्था करें जिससे आश्रमका प्रत्येक छात्र हिन्दी समझ सके। यह जरूरी है कि हम अपनी मर्यादाओंको समझ लें। आज हमारे लिए अपने जीवनको इतना संस्कृतमय बना देना कि हम अपना समस्त व्यवहार संस्कृतमें चला सकें, अपनी सामर्थ्यसे बाहर है। किन्तु हमारे लिए हिन्दीमें व्यवहार चलाना कठिन नहीं है।

आपका आदर्श 'एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर' से है। चूँकि मैंने इस बारेमें नारायणगुरु स्वामीसे बातचीत की थी और आपने अपने मानपत्रमें इसका उल्लेख सबसे पहले किया है; इसलिए मैं भी इसकी चर्चा करनेके लिए बाध्य हूँ। मुझे लगता है कि इस आदर्शमें उल्लिखित उद्देश्यको प्राप्त करना भी हमारे सामर्थ्यके बाहर है। मैं 'एक ईश्वर' के सिद्धान्तको समझ सकता हूँ। हम इस एक ईश्वरकी उपासना करोड़ों रूपोंमें करते हैं, फिर भी हमारी भक्ति उसतक पहुँचती है। किन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि जबतक मानव जातिका अस्तित्व रहेगा तबतक विविध मत-मतान्तरों और धर्मोंका अस्तित्व भी रहेगा, क्योंकि यह मानव-जाति एकमति नहीं, अनेक मति है। यदि हम प्रकृतिको देखें तो हमें वह भी बेहद विविधतासे भरी दिखाई देगी। ईश्वर इस विविधताके द्वारा सहज ही बहुरूप बन जाता है। मुझे लगता है कि मानव-जातिके इतिहासमें ऐसी अवस्था आनेकी आशा रखना प्रकृति-नियमके विरुद्ध ही होगा कि जब यह समस्त जगत एक धर्मावलम्बी या एक मतावलम्बी हो सके। मैंने जो भी थोड़ा-सा श्रवण, मनन और निदिध्यासन किया है उसके फलस्वरूप मेरा मत तो यह बना है कि मानव-जातिका काम, वर्णाश्रम धर्मके बिना चल ही नहीं सकता। इसलिए मुझे विविध मत-मतान्तर और धर्म भी अनिवार्य लगते हैं। इस स्थितिमें हमारा लक्ष्य होना चाहिए सहिष्णुता। यदि हम सब एक मत हो जायेंगे तो इस उदात्त गुणको अवकाश ही कहाँ मिलेगा? किन्तु सब लोगोंका एकमत होना व्यर्थकी आशा है। इसलिए हम एक दूसरेके मतके प्रति सहिष्णु बनें, यही एक बात सम्भव

१. १९-३-१९२५ के हिन्दूके अनुसार।

जान पड़ती है। मेरे मुसलमान मित्रोंका मत है कि मैं तो जन्मजात मूर्तिपूजक हूँ और अवतारवाद और पुनर्जन्ममें विश्वास करता हूँ; इसलिए मुझे अपने भीतर मूर्ति-पूजा, अवतारवाद और पुनर्जन्ममें आस्था न रखनेवाले मुसलमानोंके प्रति सहिष्णुताका भाव विकसित करना चाहिए। मैं अवतारोंमें विश्वास रखता हूँ, अतः यह नहीं मानता कि ईसा ही एकमात्र ईश्वर अथवा ईश्वरका पुत्र है। परन्तु मुझे अपने ईसाई मित्रोंका ईसाको ईश्वर-रूप मानना सहन करना चाहिए और इसी प्रकार मेरे ईसाई और मुसलमान मित्रोंको भी मेरा कन्याकुमारी और जगन्नाथको प्रणिपात करना सहन करना चाहिए। एक-दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुताका यह भाव मैं अपने ही इस युगमें आता हुआ देख रहा हूँ, क्योंकि अहिंसा धर्मके मूलमें यह भाव निहित ही है। यही भाव सत्य धर्मके मूलमें भी निहित हैं। जैसे ईश्वर सहस्र रूप है, वैसा ही सहस्र रूप सत्य भी है। अतः सत्य क्या है, इस सम्बन्धमें मेरा मत ही सत्य है और अन्य सबका असत्य, मैं यह दुराग्रह नहीं कर सकता। इसीलिए मुझे लगता है कि एक दूसरेके प्रति सहिष्णुता और प्रेमभाव रखनेका युग समीप आता जाता है। इसलिए यदि मैं श्री नारायणगुरु स्वामीसे अपने इस सहिष्णुताके आदर्शको नहीं मनवा सकता तो उनके उपर्युक्त आदर्शकी अपनी व्याख्या करके ही सन्तोष कर लूँगा।

किन्तु हम अब इस सूक्ष्म विवेचनको छोड़कर स्थूल बातोंपर आते हैं। यदि हम अपने सम्मुख 'एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर' का आदर्श नहीं रख सकते तो अपने देशके कल्याणार्थ एक नित्य नियमित कार्यका आदर्श तो रख ही सकते हैं। हम खादी पहनना सीखकर देशके अत्यन्त निर्धन वर्गसे एकरूपता कब स्थापित करेंगे? हम इस एक मन्त्रकी साधना तो कर ही सकते हैं कि निर्धनोंका और हमारा हित समान होना चाहिए। यदि हम विश्व प्रेमकी बातें करनेके बजाय अहमदाबाद, जापान या इंग्लैंडका बना कैलिको कपड़ा पहनना बन्द करके अपने प्रान्तके इन भाइयों और बहनोंके द्वारा कात-बुनकर तैयार किया गया कपड़ा पहनकर उसमें निहित सहज प्रेमको अनुभव कर सकेंगे तो इतना पर्याप्त है। मुझे श्री नारायण गुरु स्वामीने विश्वास दिलाया है कि वे स्वयं सूत कातेंगे और अपने खादी न पहन कर आनेवाले अनुयायियोंसे मिलना बन्द कर देंगे।

हमें अहिंसा-धर्म और प्रेम-धर्मका पालन एक दूसरे मामलेमें भी करना है। हम अपने भाइयोंको अस्पृश्य मानते हैं और दुरदुराते हैं, हमें अपने देशको इस पापसे मुक्त करना ही होगा। एक सवर्ण हिन्दू मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझे बताया कि एजवाहा अपनेसे निम्न वर्गके अन्त्यजोंको अस्पृश्य मानते हैं। यह दोष दूर किया जाना चाहिए। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि एजवाहा और पुलाया मद्यपान करना त्याग दें तो अस्पृश्यताकी समस्या स्वतः ही हल हो जायेगी। मैं इस तर्कसे अस्पृश्यता-का समर्थन करना उचित नहीं मानता। किन्तु हमें उनकी इस सलाहका लाभ उठा-कर जो-कुछ करना चाहिए वह तो करना ही होगा। हम इसका यह उत्तर अवश्य ही नहीं दे सकते कि सवर्ण हिन्दू भी लुक-छिपकर मद्यपान करते हैं। हम तो अपने दोष देखें और दूर करें, हमारे लिए इतना पर्याप्त है। आशा है, इस संस्कृतमय वातावरणमें आपने अभी संक्षेपमें जो-कुछ कहा है, उसे अपने हृदयमें बिठा लेंगे और

श्री नारायण गुरु स्वामीने धर्मका जो आदर्श सम्मुख रखा है, उसकी ओर द्रुत गतिसे अग्रसर होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५ (परिशिष्टांक)

१८५. भाषण: त्रिचूरमें[1]

१८ मार्च, १९२५

मुझे इस रमणीय प्रदेशमें और अधिक न ठहर सकनेका दुःख है। अब मुझे इसे छोड़कर जाना पड़ेगा। नही जानता फिर अब यहाँ कब आ सकूँगा। मुझे यहाँ जो अगाध प्रेम मिला है उसके बीचसे जाना मेरे लिए कठिन हो रहा है। यहाँ चारों तरफ़ मैंने जो मनोरम दृश्य देखे है उन सबकी याद मेरे मनमें सदा बनी रहेगी; किन्तु इन सभी सुखद अनुभवोंके साथ एक कटु अनुभव भी मेरे मन में खटकता रहेगा। मैंने देखा कि यह सुन्दर प्रदेश अस्पृश्यता और अनुपगम्यताके अभिशापसे ग्रस्त है। किन्तु एक बातकी ओर मेरा ध्यान अभी दिलाया गया है कि इन दो बातोंके अतिरिक्त इस प्रदेशमें "अदृश्यता" का शाप भी है; यहाँ लोगोंको देखनेसे भी पाप लगता है। यदि इसीको हिन्दू धर्म कहते हैं तो मैं आज ही उसे छोड़नेको तैयार हूँ। लेकिन मैं अपनेको सनातन हिन्दू मानता हूँ, और मेरा पालन-पोषण रूढ़िवादी परिवारमें हुआ है, इसलिए मैं जानता हूँ कि आज अस्पृश्यता, अनुपगम्यता तथा अदृश्यताको जिस रूपमें माना जा रहा है वह हिन्दू धर्मका अंग नहीं है। लेकिन मैं यह आशा लेकर इस प्रदेशसे जा रहा हूँ कि वे सभी लोग, जो इस प्रकारकी सभाओंमें शामिल हुए है और अभिनन्दन-पत्रोंमें जाति-प्रथाके विरुद्ध व्यक्त की गई भावनाओंसे सहमत हैं, इस कलंकको त्रावणकोर और कोचीनसे दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

मैंने त्रावणकोर और कोचीनमें हजारों बहनोंको देखा है। उन्हें सुन्दर श्वेत वेशभूषामें देखना मेरे लिए एक लुभावना और भव्य दृश्य रहा है। किन्तु मुझे यह देखकर उतना ही दुःख भी हुआ कि वे खद्दरके स्थानपर मिलके बने कपड़े पहनती है। यदि आप खद्दर पहनना चाहते है तो आप सभी स्त्री-पुरुष बिना किसी कठिनाई और विलम्बके ऐसा कर सकते हैं। यह बहुत दिनोंकी बात नहीं है जबकि मलाबारके प्रत्येक घरमें चरखा होता था। मै आपसे कहता हूँ कि आप प्रत्येक घरमें फिरसे चरखेकी स्थापना करें। आपके पास अब भी हजारों एजवाहा बुनकर हैं, जो सुन्दर कपड़ा बुनते हैं। आप कताई करें और वे आपके काते सूतसे आपके लिए कपड़ा बुनेंगे। यदि आप केवल इतना ही करें तो आपको मालूम हो जायेगा कि आपने अपने देशके लिए लाखों रुपये बचा लिये है। त्रावणकोर और कोचीन दोनोंको मिला-

१. यह भाषण नगरपालिका, नम्बूद्री योग-क्षेम सभा तथा त्रिचूरके छात्रों द्वारा तेक्किन्काड मैदानमें आयोजित सभामें अभिनन्दन-पत्र भेंट किये जानेपर दिया गया था।

कर यहाँकी जनसंख्या लगभग ७० लाख है। यदि मैं कातने और बुननेकी लागतका हिसाब लगाऊँ तो यह औसतन प्रति व्यक्ति ३ रुपया आयेगी। इसका मतलब है लगभग २ करोड़ १० लाख रुपये। जरा सोचिए तो सही कि इस देशके लिए इसका क्या महत्त्व हो सकता है; और फिर खद्दर पहननेके लिए आपको कोई मेहनत भी नहीं करनी पड़ती।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-३-१९२५

१८६. टिप्पणियाँ

वाइकोम सत्याग्रह

मैं यहाँ त्रावणकोरके दीवान द्वारा वहाँकी जनसभामें दिये गये भाषणका वाइ-कोम सत्याग्रह सम्बन्धी पूरा अंश[1] देना चाहता हूँ। वाइकोम सत्याग्रहको अधिक स्थान देनेके लिए मुझे पाठकोंसे क्षमायाचना करनेकी आवश्यकता नहीं है। इससे पाठक गण सत्याग्रहियोंके एक दल द्वारा चलाये जा रहे उस वीरतापूर्ण संघर्षको समझने और उसका मूल्यांकन करनेमें समर्थ हो जायेंगे। साथ ही इससे पाठक उस उद्देश्यके महत्त्वको भी समझ सकेंगे जिसके लिए सत्याग्रह चलाया जा रहा है। जहाँतक त्रावण-कोर और इसी तरह जहाँतक मलाबारका सम्बन्ध है, वाइकोम सत्याग्रह एक कसौटी है। इस सत्याग्रहका असर त्रावणकोरकी जनसंख्याके छठे भागके आम अधिकारोंपर पड़ता है। इसलिए जो लोग अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेमें रुचि रखते हैं वे दीवानके भाषणको दिलचस्पीके साथ पढ़े बिना नहीं रह सकते। इस सप्ताह इसपर टिप्पणी करनेका मेरा इरादा नहीं है; क्योंकि इसके प्रकाशनसे पहले ही मुझे उनसे मिलनेका अवसर मिलेगा और साथ ही चूंकि मैंने लिखनेके समयतक अपनी जाँच-पड़ताल पूरी नहीं की है, मेरे लिए इसपर कुछ कहना अनुचित होगा। किन्तु मैं दीवान बहादुर टी० राघवय्याके इस मन्तव्यकी पुष्टि किये बिना नहीं रह सकता कि:

> सत्याग्रहका उपयोग शिक्षाके साधनके रूपमें तथा सरकारपर या सरकारके जरिये कट्टरपन्थी हिन्दुओंपर दबाव डालनेके साधनके रूपमें करनेमें एक बहुत बड़ा अन्तर है। सत्याग्रहियोंका लक्ष्य यह होना चाहिए कि वे उन कट्टरपन्थियोंका हृदय-परिवर्तन करें जिनके लेखे अस्पृश्यता धर्मका ही एक अंग है।

मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि वाइकोमके सत्याग्रहका प्रारम्भसे ही यह उद्देश्य रहा है कि उसका शिक्षाके साधनके रूपमें उपयोग किया जाये। उसका उद्देश्य कट्टरपन्थियोंपर दबाव डालना कभी नहीं रहा। इसीलिए कट्टरपन्थियोंके विरुद्ध किया जानेवाला उपवास त्याग दिया गया। इस विषयमें सावधानी बरती गई है कि नाके-

१. देखिए परिशिष्ट १।

वन्दियोंको न लाँघा जाये जिससे सरकारपर अनुचित दबाव न पड़े। इसी कारणसे तो पुलिसको चकमा देनेकी कोशिश नहीं की गई। यह बात स्वीकार कर ली गई है कि सुधारकोंके लिए जो चीज स्पष्टतः एक पापपूर्ण अन्धविश्वास है वही कट्टरपन्थियों-के लिए उनके धर्मका एक अंग है। इसलिए सत्याग्रहियोंकी अपील कट्टरपन्थियोंकी विवेक-भावनासे है। किन्तु अनुभव यह है कि जिनकी अपनी सुनिश्चित धारणाएँ हैं उनकी विवेक-भावनाके प्रति अपील करनेसे उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी समझकी आँखें दलीलोंसे नहीं बल्कि सत्याग्रहियोंके कष्ट सहनसे खुलती हैं। सत्याग्रही हृदयके मार्गसे विवेक भावनातक पहुँचनेकी कोशिश करता है। हृदयतक पहुँचनेका तरीका जनमतको जागृत करना है। व्यक्तियोंको जनमतकी परवाह होती है, इसलिए जनमत बारूदसे भी अधिक शक्तिशाली होता है। वाइकोम सत्याग्रहने अपने आपको न्यायसंगत साबित कर दिखाया है, क्योंकि उसने सारे भारतका ध्यान अपने उद्देश्य-की ओर आकर्षित किया है, और उसीके कारण त्रावणकोर विधान सभामें उस याचित सुधारके पक्षमें एक असाधारण वाद-विवादके समय एक प्रस्तावपर विचार किया गया और अन्तमें इसीके कारण त्रावणकोरके दीवानने अपना सुविचारित उत्तर दिया। यदि सत्याग्रही केवल धैर्य धारण करें और कष्ट सहनकी भावनाको बनाये रखें तो मुझे विश्वास है कि विजय निश्चित है।

मनुष्यकी मनुष्यके प्रति बर्बरता

ताड़ वृक्षोंकी इस भूमि (त्रावणकोर) में, जहाँसे मैं इन टिप्पणियोंको लिख रहा हूँ, अपने लगातार किये जानेवाले इस दौरेमें मैं एक अविस्मरणीय दृश्यका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता, जो मुझे कोचीनमें देखना पड़ा था। कोचीनमें जापानसे बहुत-सी रिक्शाएँ मँगाई गई हैं जिनका उपयोग यहाँके समृद्ध नागरिक अपनी सुविधाके लिए करते हैं। इन रिक्शाओंको पशु नहीं, मनुष्य खींचते हैं। मेरे पाससे जितने रिक्शाचालक निकले मैंने उन सबको बहुत ध्यानसे देखा। मुझे उनमें से किसीकी भी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं लगी। उनकी पिण्डलियाँ या छाती या बाहें ऐसी सुगठित नहीं थीं कि वे इस तेज धूपमें और पसीना-पसीना कर देनेवाली गर्मीमें इस भारी बोझको खींचनेका कठिन काम कर सकें। ये रिक्शाएँ केवल एक यात्रीको ले जानेके लिए बनाई जाती हैं। मेरी रायमें किसी स्वस्थ और पूरे अंगवाले मनुष्यके लिए यह बहुत बुरा है कि उसे कोई मनुष्य खींचकर ले जाये, लेकिन जब मैंने कुछ रिक्शाओंमें दो-दो या तीन-तीन यात्री लदे देखे तो मुझे अपने इन भाइयोंपर शर्म आई और बेहद दुःख हुआ। रिक्शा-चालकने एकसे ज्यादा व्यक्तियोंको ले जानेसे इनकार नहीं किया, यह निःसन्देह उसकी गलती थी। लेकिन उन लोगोंके लिए क्या कहा जाये जो अपने थोड़ेसे पैसे बचानेके लिए एक साथ दो या तीन एक ही रिक्शामें चढ़ जाते हैं, जब कि रिक्शा-चालक उनमें से एकको भी खींचनेके लायक नहीं है। मुझे आशा है कि कोचीनमें ऐसा कोई कानून होगा जिसके अनुसार इन रिक्शाओंमें एकसे अधिक सवारीका बैठना निषिद्ध है और यदि ऐसा कानून है तो मैं आशा करता हूँ कि कृपालु नागरिक उसका पूरा-पूरा पालन करनेका ध्यान रखेंगे। यदि वहाँ कोई ऐसा

कानून नहीं है तो मैं आशा करता हूँ कि ऐसा कानून बना दिया जायेगा जिससे इन रिक्शाओंमें एकसे अधिक सवारी न बैठाई जा सकेगी। यदि मेरे हाथमें सत्ता होती तो मैं रिक्शाओंको बन्द कर देता। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी यह आशा केवल कोरी आशा ही रहेगी। लेकिन क्या यह भी नहीं हो सकता कि जो लोग इन रिक्शाओंको चलाते हैं उनकी कड़ी डाक्टरी परीक्षा की जाये और यह देखा जाये कि वे इस भारी कामको करनेके योग्य हैं या नहीं?

सहभोज

एक सज्जन मुझे लिखते हैं: "क्या विभिन्न जातियोंके बच्चोंको जो एक ही छात्रावासमें रहते हों, एक ही भोजन-कक्षमें साथ-साथ बैठाकर भोजन कराना चाहिए?" यह प्रश्न ठीक तरहसे नहीं रखा गया, लेकिन जैसा यह प्रश्न है उसका उत्तर तो यही होगा कि बच्चोंको साथ-साथ बैठाकर भोजन नहीं कराया जा सकता। किन्तु यदि यह कहा जाये कि किसी भी छात्रावासका मालिक ऐसे नियम बना सकता है जिनके अनुसार उसमें रहनेवाले लड़कोंके लिए एक साथ बैठकर भोजन करना आवश्यक हो, तो यह माँग भी उतनी ही अनुचित होगी जितनी एक साथ बैठकर भोजन करनेकी शर्त किये बिना भरती किये गये बच्चोंको दूसरी जातियोंके बच्चोंके साथ बैठकर भोजन करनेके लिए विवश करना। जबतक इसके विरुद्ध कोई नियम नहीं बनाया जाता तबतक मेरा खयाल है, यही माना जायेगा कि अलग-अलग भोजनकी व्यवस्थाके सामान्य नियम लागू रहेंगे। एक साथ बैठकर भोजन करनेका यह प्रश्न एक टेढ़ा प्रश्न है और मेरी रायमें इस बारेमें कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। मुझे स्वयं इस बातका विश्वास नहीं है कि एक साथ बैठकर भोजन करना कोई आवश्यक सुधार है; किन्तु साथ ही मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस प्रतिबन्धको बिलकुल तोड़ देनेकी ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। मैं इस प्रतिबन्धके पक्षमें और विपक्षमें प्रमाण दे सकता हूँ। मैं कोई उतावली करना नहीं चाहता। यदि कोई आदमी किसी दूसरेके साथ बैठकर खाना नहीं खाता तो मैं इसे पाप नहीं समझता और यदि कोई एक साथ बैठकर खाना खानेका समर्थन करता है और खाना खाता है तो मैं इसे भी पाप नहीं मानता। लेकिन यदि इसमें किसीको आपत्ति हो तो उसकी उपेक्षा करके इस प्रतिबन्धको तोड़नेके प्रयत्नका मैं विरोध करूँगा। बल्कि मैं तो उनके द्वारा उठाई गई आपत्तियोंका आदर करूँगा।

अवधके किसान

फैजाबादके श्री मणिलाल डाक्टरने मेरे पास प्रकाशनार्थ यह पत्र भेजा है:

> मैं हजारों किसानोंके प्रार्थना करनेपर गयासे फैजाबाद लाया गया हूँ।
>
> बिहारमें — चम्पारनमें मेरा भ्रम टूट चुका है। खेतोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके लिए भारतमें कोई सुखकी सेज नहीं है। कुलियोंको असम, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद, बर्मा और दूर-दूरके उपनिवेश अपनी ओर खींच सकते हैं, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। अवधकी हालत तो और भी खराब है।

यहाँ माँग है कि "हमें विदेशी शासनसे मुक्त होने दो तब मजदूरोंको अपना प्राप्य मिल जायेगा।" मुझे विश्वास नहीं होता कि ब्रिटिश सरकारकी जगह जिन लोगोंके आनेकी सम्भावना है, वे मजदूरों और किसानोंके साथ न्याय करेंगे।

कुछ भी हो, जिस स्थितिमें मैं काम करनेके लिए तैयार हुआ हूँ वह इस प्रकार है: मजदूरों और किसानोंको भारतीय पूँजीवादियों या ब्रिटिश सरकारके हाथोंका खिलौना नहीं बनना चाहिए। उन्हें अपने हितोंकी देखभाल स्वयं करनी चाहिए और जहांतक उनके हितोंमें हो केवल वहींतक उनको 'सहयोग' या 'असहयोग' करना चाहिए। उन लोगोंमें चरखेका प्रचार अवश्य किया जाना चाहिए और यदि वे सालके खाली महीनोंमें मुकदमेबाजी करनेके बजाय अपने कपड़े बनानेके लिए सूत कातें तो ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि उनकी आजीविका तो वर्षाके ४ महीनोंपर पूरी तरह निर्भर है। उष्ण कटिबन्धके उपनिवेशोंकी तरह नहीं जहाँ साल-भर वर्षा होती है।

भारत एक अच्छा देश है, लेकिन उसे देशी और विदेशी लोगोंने मिलकर नरक बना दिया है! हे भगवान, यह दशा कबतक रहेगी!

मुझे आशा है कि श्री मणिलाल डाक्टरको गाँवोंमें किसानोंके हर घरमें चरखा पहुँचाने और ऐसा करते हुए उन्हें इन लोगोंकी आर्थिक स्थितिकी पूरी-पूरी जाँच करनेमें सफलता मिलेगी। हमें जरूरत इस बातकी है कि हम भारतके कुछ गाँवोंको चुनकर उनका धैर्यपूर्वक और ठीक-ठीक अध्ययन करें। जैसा कि डाक्टर मैननें[1] दक्षिणके कुछ गाँवोंके सम्बन्धमें कुछ साल पहले किया था और उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-३-१९२५

१८७. कठिन समस्या

आन्ध्रके एक पत्र-लेखकने अपनी मुश्किलोंका इस प्रकार वर्णन किया है:

गत सप्ताहके 'यंग इंडिया' में एक बंगाली सज्जनके अस्पृश्यता-विषयक पत्रके जवाबमें आपने कहा है, "जब हम शूद्रोंके हाथका पानी पी लेते हैं तब हमें अस्पृश्योंके हाथका पानी लेलेनेमें संकोच नहीं होना चाहिए। 'हम' से मतलब सवर्ण हिन्दुओंसे है। मैं उत्तर भारतमें प्रचलित रिवाजोंको नहीं जानता। लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि आन्ध्रमें और हिन्दुस्तानके दक्षिणके दूसरे भागोंमें केवल इतना ही नहीं कि ब्राह्मण लोग अब्राह्मणों (दूसरे तीन वर्णों)के हाथका पानी नहीं पीते बल्कि जो लोग अधिक कट्टर हैं वे तो अब्राह्मणोंके साथ एकदम अछूतोंका-सा व्यवहार करते हैं।

१. सर हैरोल्ड एच० मैन, सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री, तथा समाज-सेवी। बम्बई प्रान्तके कृषिसंचालक।

> आपने अक्सर यह बात कही है कि आप जातिगत ऊँच-नीचके मिथ्या भावको दूर करनेके लिए रोटी-व्यवहार रखनेकी आवश्यकताको जरूरी नहीं मानते हैं। एक बार आपने इस बातको साबित करनेके लिए मालवीयजीका उदाहरण भी पेश किया था और कहा था कि परस्पर आदर और सद्भाव होनेपर भी यदि मालवीयजी आपके हाथका पानी या दूसरी कोई चीज पीने या खानेसे इनकार कर दें तो आपके खयालसे यह आपका तिरस्कार न होगा। मैं यह मानता हूँ कि उनके ऐसा करनेके पीछे तिरस्कारकी भावना न होगी, लेकिन क्या आप जानते हैं कि इस प्रान्तके ब्राह्मण, १०० गजके फासलेसे भी यदि कोई अब्राह्मण उनका खाना देख ले तो उसे न खायेंगे –– खाना छू जानेकी बात तो दूर रही। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि राह चलता कोई शूद्र यदि एक-आध शब्द भी कह दे तो भोजन करते हुए ब्राह्मणको उतनेसे ही गुस्सा आ जायेगा और फिर वह दिन-भर कुछ न खायेगा। यदि यह तिरस्कार नहीं तो फिर क्या है? क्या यह ब्राह्मणोंकी अहंमन्यता नहीं है? क्या आप इस विषयपर प्रकाश डालेंगे? मैं स्वयं एक ब्राह्मण युवक हूँ और इसलिए अपने अनुभवसे ही ये बातें लिख रहा हूँ।

अस्पृश्यता बहुमुखी दानव है। यह धर्म और नीतिकी दृष्टिसे बड़ा ही गम्भीर प्रश्न है। मेरी दृष्टिमें रोटी व्यवहार एक सामाजिक प्रश्न है। निश्चय ही वर्तमान अस्पृश्यताकी ओटमें मनुष्य-जातिके कुछ लोगोंके प्रति तिरस्कार भाव छिपा हुआ है। यह एक घुन है जो समाजको अन्दर-ही-अन्दरसे खोखला कर रहा है। मनुष्यको अछूत मानना उसके बुनियादी हकोंसे इनकार करना है। रोटी व्यवहार न रखना और अस्पृश्यता एक ही चीज नहीं है। समाज सुधारकोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इन दोनोंको एक-जैसा न मानें। यदि वे ऐसा करेंगे तो वे "अस्पृश्यों और अनुपगम्यों" के हितको हानि पहुँचायेंगे। इस ब्राह्मण पत्र-लेखककी कठिनाई सच्ची कठिनाई है। इससे मालूम होता है कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है। ब्राह्मण शब्द तो नम्रता, अहंविस्मृति, त्याग, पवित्रता, साहस, क्षमा, और सत्यज्ञानका पर्यायवाची होना चाहिए, जैसा वह एक समय था। लेकिन आज तो यह पवित्रभूमि ब्राह्मण-अब्राह्मणके आपसी वैमनस्यसे अभिशप्त है। बहुत बातोंमें ब्राह्मणोंने अपनी उस श्रेष्ठताको खो दिया है जिसका उन्होंने दावा कभी नहीं किया था; लेकिन जो उन्हें सेवाके बलपर प्राप्त थी। ब्राह्मण लोग जिसका आज दावा नहीं कर सकते; वे उसी श्रेष्ठताको फिरसे पानेके लिए जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं और इससे हिन्दुस्तानके कुछ भागोंमें अब्राह्मणोंको उनके प्रति ईर्ष्या हो गई है। हिन्दू धर्म और देशके सद्भाग्यसे पत्र लेखक-जैसे ब्राह्मण भी हैं जो इस भयंकर कुप्रवृत्तिके खिलाफ अपनी पूरी ताकतके साथ लड़ रहे हैं और अब्राह्मणोंकी निस्वार्थ भाव और लगनसे बराबर सेवा कर रहे हैं। यह उनकी महान् परम्पराके अनुरूप है। जहाँ-कहीं देखें आज ब्राह्मण ही सबसे आगे आकर अस्पृश्यताके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं और अपने पक्षके समर्थनमें शास्त्रोंकी साक्षी देते हैं। पत्र-लेखकने दक्षिण-

के जिन ब्राह्मणोंका जिक्र किया है, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे समयको पहचानें और ऊँच-नीचकी गलत धारणाको मनसे निकाल दें तथा इस वहमको भी छोड़ दें कि अ-ब्राह्मणको देखने-मात्रसे पाप लगता है और उनकी आवाज सुनकर उनका भोजन अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मणोंने ही ब्रह्मको सर्वत्र देखनेकी संसारको शिक्षा दी है तो फिर बाहर अपवित्रता कहाँसे आयेगी। वह तो मनका विकार है। आज ब्राह्मण यह सन्देश फिर दोहराये कि अस्पृश्यताका विचार, कुविचार है। उसीने संसारको यह शिक्षा दी है "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धारक है और स्वयं अपना शत्रु तथा नाशक भी वही है।

इस आन्ध्र पत्र-लेखकने जिन बातोंका उल्लेख किया है, उनसे अब्राह्मणोंको क्षुब्ध नहीं होना चाहिए। इस पत्र-लेखक-जैसे कितने ही ब्राह्मण उनके संघर्षमें उसी तरह भाग लेंगे जिस तरह वे खुद ले रहे हैं। कुछ लोगोंके पापोंके कारण ब्राह्मणोंकी सारी जातिको ही नहीं धिक्कारना चाहिए। मुझे डर है कि यह वृत्ति बढ़ रही है। अब्राह्मण इतने उदार बनें कि अभद्र व्यवहार करनेवालोंसे अच्छे व्यवहारकी आशा ही न करें। कोई राहगीर यदि मेरी तरफ नहीं देखता है अथवा वह मेरे छूनेसे या मेरी उपस्थितिसे या मेरी आवाजसे अपनेको अपवित्र हुआ समझता है तो इसको मैं अपना अपमान नहीं मानूंगा। इतना ही काफी है कि उसके कहनेसे मैं अपने रास्तेसे न हटूं, या वह सुन लेगा इस डरसे बोलना बन्द न करूँ। जो अपनेको उच्च मानता है उसके अज्ञान और अन्धविश्वासपर मुझे दया आ सकती है लेकिन मैं उसपर क्रोध और उसका तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि यदि मेरा तिरस्कार किया जायेगा तो मुझे भी बुरा लगेगा। संयम खो देनेसे तो अब्राह्मणोंका मामला ही बिगड़ जायेगा। सबसे महत्त्वकी बात तो यह है कि कहीं हदसे आगे बढ़कर वे अपने ब्राह्मण समर्थकोंको दिक्कतमें न डाल दें। ब्राह्मण तो हिन्दू धर्म और मानवताका सबसे अधिक महकता-दमकता प्रसून है। मैं ऐसा एक भी काम न करूँगा जिससे वह मुरझा जाये। मैं यह जानता हूँ कि वह अपनी रक्षा करनेमें समर्थ है। वह पहले भी बहुत-सी आँधियोंका सामना कर चुका है। लेकिन अब्राह्मण यह कहनेका मौका न दें कि उन्होंने इस प्रसूनकी सुवास और सौन्दर्यको मसल देनेका प्रयत्न किया है। मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणोंको बरबाद करके अब्राह्मण ऊँचे उठें। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि वे उस ऊँचाईको पहुँच जायें जहाँ अबतक ब्राह्मण पहुँचे हुए थे। ब्राह्मण जन्मसे होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्मसे नहीं होता। यह तो वह गुण है जिसको हममें से छोटेसे-छोटा आदमी भी अपनेमें विकसित कर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-३-१९२५

१८८. टिप्पणियाँ

"पागल या महात्मा"

एक मित्रने निम्नलिखित उद्धरण "माई मेगजीन" से नकल करके मेरे पास भेजा है। उनका कहना है कि यह बच्चोंके लिए लिखा गया है और उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं इसका उत्तर दूँ:

> १९१८ में उसकी आत्माको कुछ हो गया, जो उसकी शक्तिके लिए घातक सिद्ध हुआ। वह न तो महात्मा बना और न राजनीतिज्ञ ही; बल्कि वह एक हठधर्मी बन गया. . . ब्रिटेनके वचनमें आस्था खोनेके साथ-साथ गांधीने अपना मानसिक सन्तुलन भी खो दिया है।
>
> यूरोपीय सभ्यताके प्रति अपने रोषके कारण वह सम्पूर्ण विज्ञान और सम्पूर्ण संस्कृतिकी निन्दा करनेकी चरम सीमातक पहुँच गया है। उसके विचारसे न अध्यापक, न डाक्टर तथा न इंजीनियरकी जरूरत है। यह रोगाणु शास्त्री तथा निर्माता दोनोंको उपयोगी नहीं मानता है। किसीको कुछ सीखना नहीं है। आदमीके शरीरको अनन्त कर्मण्यतामें रहना होगा और आत्माको ईश्वरकी आवाज सुननेके सिवा और कुछ नहीं करना होगा।
>
> हम उसकी बात उचित ठहरानेकी कोशिश कर सकते हैं, और कह सकते हैं कि यूरोपीय सभ्यता एक बीमारी है। हम बीमारी और हड़ताल, गन्दी बस्ती और गरीबी, पापाचरण और निर्लज्ज विषयभोगकी आलोचना भले ही कर सकते हैं। लेकिन तथ्य तो यही है कि इंजीनियरोंने ही भारतके रेगिस्तानोंको सींचा है, डाक्टरोंने ही प्लेगसे संघर्ष किया है और स्कूलके अध्यापकोंने ही भारतीयोंके मस्तिष्कको जागरूक बनाया है। वैज्ञानिकके निरन्तर परिश्रम किये बिना बीमारियोंके कारण भारत नष्ट हो जायेगा और बिना ब्रिटेनकी सुरक्षाके वह जापानका गुलाम बन जायेगा।
>
> गांधीका विश्वास है कि मानवोंको अतीतकी उसी स्थितिमें वापस जाना चाहिए जब शान्ति और प्रेमका ही राज्य था। हमारा विश्वास है कि बर्बरता और अकर्मण्यताको छोड़कर आत्माको ज्ञान, शक्ति और प्रभुत्वकी ओर आगे बढ़ना चाहिए। गांधीके विचारमें हम गलत रास्तेपर हैं; हम सोचते हैं कि हमारा रास्ता कठिन होते हुए भी वह हमें श्रेष्ठतर जीवनकी ओर ले जाता है। गांधीका विचार है कि मनुष्यको उसकी आत्मा ही ऊँचा उठाती है और हमारा विचार है कि कभी सन्तुष्ट न होनेवाला मस्तिष्क ही सर्वोत्कृष्ट ढंगसे आत्माको ऊँचा उठा सकता है। हम कर्म, ज्ञान और ऐश्वर्यमें विश्वास करते हैं। गांधी अप्रतिरोध, अज्ञान और अकर्मण्यतामें विश्वास करता है।

यूरोपीय सभ्यताके खिलाफ लगाये गये आरोपोंमें कुछ दम जरूर है, लेकिन हमें यही नहीं मानना चाहिए कि भारत सौन्दर्य, शान्ति और सौजन्यकी भूमि है और यहांके लोग ईश्वर प्रेममें मग्न रहते हैं। भारतमें कुछ ऐसी भयानक चीजें हैं कि जिनका नाम भी नहीं लेना चाहिए। यहां ऐसी गन्दी बस्तियां हैं, जैसी यूरोपमें कहीं नहीं मिलेंगी। यदि हमारी सभ्यता आध्यात्मिक जीवनके लिए खतरनाक है तो भारतीय सभ्यता उसके लिए घातक है। आदमीके मस्तिष्कको निद्रालु होने दिया जाये तो वह नष्ट हो जायेगा।

यह सोचना अशिष्टता नहीं है कि यदि गांधी हमारी सभ्यतामें जो बुराइयां हैं उन्हें नहीं बल्कि जो अच्छाइयां हैं उन्हें जाननेकी शिष्टता-मात्र दिखाये तो हम उसकी सहायता कर सकते हैं।

एक निन्दात्मक लेख

ऐसा माना गया है कि जिस लेखसे ये उद्धरण लिये गये हैं वे मेरे तथाकथित उद्देश्यके आलोचनात्मक विवेचनके लिए लिखा गया है और उसका शीर्षक है "एक असाधारण व्यक्ति—क्या वह पागल है या महात्मा?" मैंने अकसर कहा है कि सत्यकी खोजके पीछे पागल हुए व्यक्तिको ही असाधारण कहना ठीक नहीं है और मैं असाधारण मानव होनेका दावा नहीं करता। जिस अर्थमें प्रत्येक ईमानदार आदमीको पागल होना चाहिए उस अर्थमें, सचमुच मैं पागल हूँ। मैंने महात्माकी पदवीको अस्वीकार किया है, क्योंकि मैं अपनी सीमाओंको और अपूर्णताओंको जानता हूँ। मैं भारतका सेवक होनेका और उसके जरिये मानवताका सेवक होनेका दावा करता हूँ।

उक्त लेखका लेखक ईमानदार है, लेकिन साथ ही अनभिज्ञ भी है। फिर भी वह ऐसे विश्वासके साथ लिखता है जो आश्चर्यजनक है। तरस इस बातपर आता है कि आधुनिक साहित्यमें इस प्रकारका लेख लिखना कोई नई बात नहीं है। यदि समकालीन पुरुषों और महिलाओंके बारेमें जो स्पष्ट ही असत्य है उसे जनताके सामने रखा जा सकता है तो यह सोचकर मन कांप जाता है कि उन व्यक्तियोंके मरनेके वर्षों बाद वह असत्य किस प्रकार विकृत हो कर लोगोंके सामने आयेगा।

अब हम देखते हैं कि इस लेखके लेखकके हाथों सत्यकी कितनी छीछालेदर हुई है। लेखक कहता है, "यूरोपीय सभ्यताके प्रति अपने रोषके कारण वह सम्पूर्ण विज्ञान और उसकी सम्पूर्ण संस्कृतिकी निन्दा करनेकी चरम सीमातक पहुँच गया है।" यद्यपि मैंने निःसन्देह यूरोपीय सभ्यताके खिलाफ जोरदार शब्दोंमें कहा और लिखा है, फिर भी मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी "सम्पूर्ण विज्ञान और उसकी सम्पूर्ण संस्कृति" की निन्दा की हो। इस अपमानजनक लेखके खिलाफ मेरा सारा जीवन एक जीवन्त उदाहरण है। इसके बादका प्रत्येक वाक्य सत्यके बिलकुल विपरीत है। लेखकने यह निष्कर्ष कहांसे निकाला है, यह मैं नहीं जानता। कि मैं स्कूलके अध्यापकों और इंजीनियरोंको बिलकुल समाप्त कर देना चाहता हूँ कोई भी व्यक्ति जिसे मेरे बारेमें जरा भी जानकारी है, जानता है कि मैं शारीरिक अकर्मण्यतासे घृणा करता हूँ।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे चारों ओर प्रकृति निरन्तर गतिशील है और उससे सहयोग करनेके लिए मैं अपनेको तथा अपने साथी कार्यकर्त्ताओंको निरन्तर ऐसे शारीरिक कार्योंमें लगाये रखता हूँ, जिन्हें मैं लाभदायक मानता हूँ। लेखकका कहना है कि "ब्रिटेनके संरक्षणके बिना भारत जापानका गुलाम बन जायेगा।" यदि किसी स्कूलके छात्रसे कहा जाये कि वह बताये कि उक्त वक्तव्यमें गलती कहाँ है तो वह भी यही कहेगा कि ब्रिटेनकी गुलामी न रहनेपर भारत ,एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जायेगा और वह जापान तथा अपने दूसरे एशियाई पड़ोसियोंके साथ शान्ति और मेलसे रहेगा। लेखकका विचार है कि भारतीय सभ्यता आध्यात्मिक जीवनके लिए घातक है। जहाँतक मैं जानता हूँ किसी यूरोपीय विद्वान्ने ऐसा वक्तव्य नहीं दिया। चाहे भारतमें और कुछ न हो लेकिन उसमें एक बात अवश्य है। वह आध्यात्मिक ज्ञानका सबसे बड़ा भण्डार है। वह आध्यात्मिक जीवनका सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि है। वह अपने मस्तिष्कको एक क्षणके लिए भी निद्रालु नहीं होने देता।

"कैसे रहना चाहिए"

'यंग इंडिया'में श्री एन्ड्रयूजका लेख पढ़कर एक व्यक्तिने निम्नलिखित समस्या उन्हें लिखकर भेजी थी और उन्होंने उत्तर देनेके लिए कुछ मास पूर्व उसे मुझे दे दिया था।

> मैं गाँवमें पैदा हुआ और पाला-पोसा गया। मेरे पिता जब अपने मित्रोंके साथ धार्मिक विषयोंपर बातचीत करते थे तब वे अक्सर कहा करते थे, 'अहिंसा परमोधर्मः'। जैसा कि आप कहते हैं कि अहिंसा मूल सत्य अद्वैतका ही फलितार्थ है, मैं इस सत्यको वास्तविक रूपमें स्वीकार करता हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि अद्वैत सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवनकी एकतातक ही सीमित नहीं है। जैसा कि आपका विचार मालूम होता है अद्वैतका मतलब है विश्वकी सभी वस्तुओंकी एकता। इसमें किसी तरहका कोई अपवाद नहीं है।
>
> जिस क्षण आदमी अद्वैतको अपना मार्गदर्शक स्वीकार करनेके योग्य बन जाता है उसी क्षण उसकी प्रगति निश्चित हो जाती है। सभी भेदभाव दूर हो जाने चाहिए। हम सब एक हैं। यदि मैं उसे जो कि स्वयं मेरा ही अंग है आघात पहुँचाऊँ तो मुझे कैसे उचित ठहराया जा सकता है। किन्तु यहाँपर सन्देह सिर उठाने लगता है। क्या अहिंसाको तर्कसिद्ध अन्तिम सीमा तक व्यवहारमें लाया जाये? यदि ऐसा किया जाये तो क्या तब भी वह सद्‌गुण रहेगी?
>
> मेरे पिता 'अहिंसा परमोधर्मः' कहा करते थे। फिर भी जब हमारे परिवारकी भैंस दूध देनेके लिए सीधे खड़े नहीं रहती थी तब वे डण्डा लेकर उसे खूब पीटते थे। वे ऐसा अपने बच्चोंके लिए दूध प्राप्त करनेके लिए करते थे। क्या उनका यह कार्य उचित था?

हिन्दू रामको धर्मावतार कहते हैं। रामने रावणको मारा। क्या यह अनुचित कार्य था? रामने बालिको मारा और बालिके विरोध करनेपर रामने कहा:

> अनुजवधू भगिनी सुतनारी।
> सुन सठ ये कन्या सम चारी।।
> इनहिं कुदृष्टि बिलोकहिं जोई।
> तेहि बधे कछु पाप न होई।।[1]

यहाँपर यह सिद्धान्त कि 'मारना, हत्या करना नहीं है' धर्मके साक्षात् अवतारके मुँहसे कहलाया गया है।

उसके बाद हम भगवान् कृष्णके समयमें आयें। उस कालकी हमारे पास 'भगवद्गीता' है। आखिर अर्जुनके जो-जो सम्बन्धी हैं, उन्हें वह मारनेके लिए तैयार नहीं। भगवान् कृष्ण उसे लड़ने और मारनेके लिए विवश करते हैं। इसलिए यहाँ अहिंसाका सिद्धान्त ताकमें रख दिया गया है।

इसलिए मनुष्यको यह पूछना ही पड़ता है कि अहिंसापर अमल करनेके लिए क्या कोई सीमा है। एक लड़कीपर बलात्कार हो रहा है। क्या यह उसके लिए सही नहीं है कि वह उस राक्षसको मारकर अपनेको उसके पंजेसे छुड़ा ले? क्या उसे अहिंसाका पालन करना चाहिए?

मछली पकड़ना हिंसा है, सब्जीके रूपमें उपयोग करनेके लिए पौधोंको उखाड़ना हिंसा है। बीमारीके कीटाणुओंको मारनेके लिए कीटाणुनाशक औषधियोंका उपयोग करना हिंसा है, फिर किस प्रकार जीवित रहा जाये?

एक ब्राह्मण

यदि पिता उस भैंसका दूध न निकालते तो दुनियाकी कोई हानि नहीं होती। तुलसीदासने रामके मुँहसे बहुत-सी बातें कहलाई हैं, जो मेरी समझमें नहीं आती। बालिका सारा उपाख्यान भी इसी प्रकार है। जो पंक्तियाँ रामके मुँहसे कहलाई गई हैं उनके शाब्दिक अर्थको माननेवाला आदमी फाँसीपर भले ही न चढ़ाया जाये, वह मुसीबतमें तो पड़ ही जायेगा। 'रामायण' या 'महाभारत' में किसी नायकसे जो-कुछ कहलाया गया है मैं उसे शाब्दिक अर्थमें नहीं लेता और न मैं यह समझता कि ये पुस्तकें ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। वे विविध ढंगसे हमें मूलभूत सत्यका साक्षात्कार कराती हैं। जैसा इन दो महाकाव्योंमें वर्णित है, मैं यह नहीं मानता कि राम और कृष्ण दोषोंसे परे हैं। वे अपने युगके विचारों और महत्वाकांक्षाओंको व्यक्त करते हैं। केवल एक दोषाक्षम व्यक्ति ही दोषाक्षम व्यक्तियोंका सही चित्रण कर सकता है। इसलिए आदमीको केवल इन महान् रचनाओंमें निहित भावनाको ही पथ-प्रदर्शकके रूपमें ग्रहण करना चाहिए। शब्द तो आदमीका गला घोंट देंगे और सारी

१. किष्किन्धा काण्ड, तुलसीकृत रामचरित मानस।

प्रगतिको बन्द कर देंगे। जहाँतक 'गीता'का सम्बन्ध है मैं इसे ऐतिहासिक विवरण नहीं मानता। यह आध्यात्मिक सत्यको हृदयमें बैठानेके लिए भौतिक उदाहरणका आश्रय लेती है। यह चचेरे भाइयोंके बीच होनेवाली लड़ाईका नहीं बल्कि हममें रहनेवाली दो प्रकृतियों — अच्छाई और बुराई — के बीच होनेवाली लड़ाईका वर्णन है। मैं 'ब्राह्मण' को सुझाव देता हूँ कि वह उन घटनाओंको जो उसने उद्धृत की हैं, एक ओर रख-कर स्वयं अहिंसाके सिद्धान्तका परीक्षण करे। 'अहिंसा परमोधर्मः' यह जीवनके सर्वोच्च सत्योंमें से है। उसके पालनसे तनिक भी चूकना पतन मानना चाहिए। हो सकता है यूक्लिड द्वारा परिभाषित सीधी लकीरें खींची न जा सकें। किन्तु कार्य न होनेसे परि-भाषाको नहीं बदला जा सकता। यदि इस कसौटीपर कसा जाये तो पौधोंको उखा-ड़ना भी एक बुराई है। और कौन ऐसा है जो सुन्दर गुलाबके फूलको तोड़नेमें पीड़ा अनुभव नहीं करता? हम घासपातको उखाड़नेमें पीड़ा महसूस नहीं करते किन्तु इससे सिद्धान्तपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे मालूम होता है कि हम यह नहीं जानते कि घासपातका प्रकृतिमें क्या स्थान है। किसी भी तरहका आघात पहुँचाना अहिंसाके सिद्धान्तका उल्लंघन करना है। अहिंसाके पूर्ण उपयोगसे जरूर जीवन असम्भव हो जाता है। तब सत्यको ही कायम रहने दिया जाये, चाहे हम सब न रहें। प्राचीन शिक्षक इस सिद्धान्तको आखिरी तर्कसिद्ध सीमातक ले गये हैं और उन्होंने लिखा है कि भौतिक जीवन एक पाप है, एक उलझन है। इसलिए मोक्ष भौतिक जीवनसे ऊपरकी स्थिति है, जिसमें शरीरका अस्तित्व नहीं होता। उसमें न तो खाना होता है, न पीना और इसीलिए न भैंसका दूध निकालना होता है और न घासपातका उखाड़ना ही। हो सकता है कि हमारे लिए सत्यको ग्रहण करना या उसका मूल्यांकन करना कठिन हो। बिलकुल उसके अनुसार आचरण करना असम्भव हो सकता है; और है भी। फिर भी मुझे सन्देह नहीं कि यही सत्य है। हम इसके अनुरूप अपने जीवनको ढालने-का भरसक प्रयत्न करें यही ठीक है। सच्चे ज्ञानका मतलब है, आधी विजय। जिस सीमातक हम इस महान् सिद्धान्तको अपने वास्तविक जीवनमें उतारते हैं उसी सीमा-तक वह जीने और प्रेम करने योग्य बनता है। तब हम शरीरके शाश्वत गुलाम बने रहनेकी अपेक्षा शरीरको ही अपना गुलाम बना कर रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-३-१९२५

१८९. कोहाटकी जाँच[1]

तिरुपुर
१९ मार्च, १९२५

कोहाटकी दुर्घटनाके सम्बन्धमें मैं अपना और मौलाना शौकत अलीका वक्तव्य अब प्रकाशित कर पा रहा हूँ। इससे पहले उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं हुआ; क्योंकि मैं और मौलाना दोनों सफरमें रहे और हम दोनोंकी ठहरनेकी जगह भी हमेशा एक नहीं होती थी। मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि इस अवसर-पर इन वक्तव्योंको प्रकाशित करनेसे सिवा इसके कि इससे मेरा वादा पूरा होगा और कोई बड़ा लाभ होगा या नहीं। लेकिन इनके प्रकाशनसे एक फायदा जरूर होगा। एक-से ही तथ्योंसे हम लोगोंने जो अनुमान लगाये हैं, उनमें भारी भेद है। गवाहोंकी गवाहीपर भी किसने कितना विश्वास किया इसमें भी फर्क है। जब हमने इस मतभेदको महसूस किया तो हमें दुःख हुआ और इस मतभेदको जितना भी हो सके दूर करनेकी हम दोनोंने कोशिश की। अपने इस मतभेदको हमने हकीम साहब और डा० अंसारीके सामने भी पेश किया और उनकी सलाह माँगी। सौभाग्यसे जब हम इसपर विचार कर रहे थे, पण्डित मोतीलालजी भी वहाँ मौजूद थे। इस विचार-विमर्शमें हमें कोई बात ऐसी न मिली जिससे हमारे दृष्टिकोणमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आता। यह बहस दिल्लीमें हुई थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ घंटे हम दोनों साथ-साथ सफर करें और अपने हृदयकी इस दृष्टिसे परीक्षा करें कि हम अपने वक्तव्योंको बदल सकते हैं या नहीं। कुछ बातोंको हम लोगोंने बदला जरूर लेकिन हमारे मतभेद दूर नहीं हो सके। हम लोगोंने हकीम साहबके इस सुझाव-पर भी, जिसका कुछ अंशमें पण्डित मोतीलालजीने भी समर्थन किया था, विचार किया है कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित ही न किया जाये। लेकिन हम, कमसे-कम मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जनताको जो मुझे और अली भाइयोंको कुछ सार्व-जनिक प्रश्नोंपर हमेशा एक मानती थी, यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ प्रश्नों-पर हममें भी मतभेद हो सकता है। इस मतभेदके बावजूद हमारे मनमें यह शंका नहीं आई कि हममें से किसीने जानबूझकर पक्षपात किया है या सत्य प्रमाणोंको तोड़-मरोड़कर उससे अपना मतलब निकाला है और न इससे हमारे आपसी प्रेममें कोई फर्क ही आया है। हम यदि खुले तौरसे अपने मतभेदोंको स्वीकार कर लेंगे तो वह जनताके लिए आपसी सहनशीलताका एक पदार्थपाठ बन सकेगा। मैं यह कह देना चाहता हूँ कि इस मतभेदको दूर करनेके प्रयत्नमें मैंने या मौलाना साहबने कोई बात उठा नहीं रखी है। लेकिन अपनी रायको छिपानेकी भी हम लोगोंकी कोई

१. इसका मसविदा (एस० एन० १०६७६ आर०) गांधीजीने रावलपिण्डीसे लौटते हुए तैयार किया था। देखिए "कोहाटके हिन्दू", ९-२-१९२५।

मंशा नहीं थी। अपने मूल वक्तव्यमें हमने कुछ रद्दोबदल किया है लेकिन दोनों अपने-अपने निश्चित मतपर कायम ही रहे। किसीको बुरा न मालूम हो इसलिए हम दोनोंने कुछ जगहोंमें भाषा नरम कर दी है, लेकिन इसके सिवा मूल वक्तव्योंमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया है।

मो० क० गांधी

श्री गांधीका वक्तव्य

तिरुपुर
१९ मार्च, १९२५

मौलाना शौकत अली और मैं कोहाटके हिन्दू आश्रितों और कुछ मुसलमानोंसे मिलनेके लिए ४ तारीखको रावलपिंडी पहुँचे। इन मुसलमानोंको मौलानाने पत्र लिख कर निमंत्रित किया था और ये लोग रावलपिंडी आनेवाले थे। एक दिन बाद लाला लाजपतराय भी आ पहुँचे। लेकिन दुर्भाग्यसे वे बुखार ले कर ही आये थे और जब-तक हम लोग रावलपिंडीमें रहे उन्हें बिस्तरपर ही रहना पड़ा।

जिन मुसलमानोंकी हमने गवाही ली उनमें मौलवी अहमद गुल और पीर साहब कमाल मुख्य थे। हिन्दुओंके पास तो लिखा और छपा हुआ वक्तव्य था। उन्हें उससे अधिक कुछ नहीं कहना था। कोहाटमें जो मुस्लिम कार्यवाहक समिति काम कर रही है वह न तो गवाही देना चाहती थी और न उसने दी। उसने मौलाना साहबको इस मतलबका तार भेजा:

> हिन्दू और मुसलमानोंमें पहले ही समझौता हो गया है। हमारी रायमें इस सवालको फिर छेड़ना उचित नहीं है। इसलिए यदि मुसलमान लोग अपने प्रतिनिधि रावलपिंडी न भेजें तो उन्हें आप क्षमा करेंगे।

मौलवी अहमद गुल और जो दूसरे सज्जन उनके साथ रावलपिंडी आये थे वे इस कार्यवाहक समितिके सदस्य थे। लेकिन उन्होंने कहा कि वे खिलाफत समितिके सदस्यकी हैसियतसे आये हैं, कार्यवाहक समितिके सदस्यकी हैसियतसे नहीं।

ऐसी स्थितिमें मौकेपर जाकर पूरा निरीक्षण किये बिना और अन्य दूसरे गवाहोंकी गवाही लिये बिना, छोटी-छोटी तफसीलोंके सम्बन्धमें निष्कर्षपर पहुँचना बड़ा ही मुश्किल था। हम लोग यह नहीं कर सके, न हम कोहाट ही जा सके। हमारा यह इरादा भी नहीं था कि छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देकर गड़े मुर्दे उखाड़ें। हमारा मकसद तो यही था कि यदि मुमकिन हो तो दोनों दलोंमें समझौता करा दें। इसलिए हमने जितना बन सका मुख्य-मुख्य बातोंको ही स्पष्ट करनेकी कोशिश की।

मौलाना साहबके साथ इन सब बातोंके बारेमें मशविरा किये बिना ही मैं यह लिख रहा हूँ इसलिए इसमें सिर्फ मैंने अपना ही निर्णय दिया है। मौलाना ठीक समझें तो इसका समर्थन करें अथवा अपना वक्तव्य अलग प्रकाशित करायें।

९ सितम्बर और उसके बाद जो घटनाएँ हुईं उनके कई कारण थे। उनमें एक यह भी था कि हिन्दू पुरुष और विवाहित स्त्रियोंके धर्मान्तर (मेरी रायमें ऐसे

धर्मान्तरको वास्तविक धर्मान्तर नहीं कह सकते) से हिन्दू लोग बिगड़े और उन्होंने उसके विरुद्ध जो कारंवाई की उससे मुसलमान लोग उससे भी ज्यादा बिगड़ उठे। दूसरा कारण था कोहाटके हिन्दू व्यापारियोंको निकाल देनेकी पराचाओं (मुसलमान व्यापारी) की इच्छा।[1] और तीसरा कारण मुसलमानोंका इस अफवाहसे उत्तेजित होना था कि सरदार माखनसिंहजीके पुत्रने किसी विवाहित मुसलमान लड़कीका हरण किया है।[2]

इन सब कारणोंका परिणाम यह हुआ कि दोनों कौमोंके बीच बड़ा तनाव आ गया। इस आगके एकदम भड़क उठनेका कारण हुई सनातन धर्म सभाके मन्त्री श्री जीवनदासकी मशहूर पत्रिकाकी एक कविता। यह पत्रिका रावलपिंडीमें प्रकाशित होकर कोहाटमें पहुँची। उसमें श्रीकृष्ण और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी तारीफमें कितनी ही कविताएँ और भजन थे। लेकिन उसमें वह अपमानजनक कविता भी थी, जो जानबूझ कर मुसलमानोंके दिलोंको दुखानेके लिए लिखी गई थी। वह श्री जीवनदासकी लिखी हुई नहीं थी और न वे उस पत्रिकाको मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए कोहाट लाये थे। जैसे ही सनातन धर्म सभाका इस बातकी ओर ध्यान खींचा गया, उसने उस कविताके लिए लिखित माफी माँगी और बची हुई प्रतियोंमें से उसे निकलवा दिया। उससे मुसलमानोंको सन्तोष हो जाना चाहिए था लेकिन उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। बची हुई प्रतियाँ जो मुसलमानोंके मुताबिक ५०० से कुछ अधिक और हिन्दुओंके मुताबिक ९०० से कुछ अधिक थीं टाउन हालमें लाई गईं और डिप्टी कमिश्नर और मुसलमानोंकी एक बड़ी भीड़के सामने सार्वजनिक तौरपर जला दी गईं। पत्रिकाके मुख्य पृष्ठपर श्रीकृष्णकी तस्वीर भी थी। श्री जीवनदासको गिरफ्तार किया गया। यह घटना ३ सितम्बर, १९२४को हुई। ११ तारीखको वे अदालतमें पेश किये जानेवाले थे। हिन्दुओंने अदालतसे बाहर ही आपसमें निपटारा करनेकी कोशिश की। इसके लिए पेशावरसे खिलाफतवालोंका एक शिष्टमण्डल भी आया था। मुसलमान लोग शरीयतके मुताबिक जीवनदासका इन्साफ करना चाहते थे। हिन्दुओंने इससे इनकार किया लेकिन खिलाफतवालोंके निर्णयको माननेके लिए वे राजी हो गये। लेकिन सब कोशिशें बेकार गईं। इसलिए हिन्दुओंने श्री जीवनदासको रिहा करनेके लिए अर्जी दी। ८ सितम्बरको जमानत लेकर और इस शर्तपर कि वे कोहाट छोड़कर चले जायेंगे, उन्हें छोड़ दिया गया। उन्होंने तो कोहाट एकदम छोड़ दिया। लेकिन मुकदमेसे पहले उनके इस प्रकार छूट जानेके कारण मुसलमानोंका क्रोध भड़क उठा। ८ सितम्बरकी रातमें उनकी एक सभा हुई जिसमें बड़े जोशीले व्याख्यान हुए। उसमें यह निर्णय हुआ कि वे सब मिलकर डिप्टी कमिश्नरके पास जायें और जीवनदासको फिर गिरफ्तार करनेके लिए और सनातन धर्म सभाके कुछ और सदस्योंको भी गिरफ्तार करनेकी माँग करें। और डिप्टी कमिश्नरके यह बात न माननेपर हिन्दुओंसे पूरा-पूरा बदला लेनेकी धमकी

१. मूल मसविदेमें वाक्य इस प्रकार है: "(३) टर्कीके विजय सम्बन्धी समारोहोंमें हिन्दुओंके भाग न लेनेके कारण मुसलमान नाराज थे।"

२. मूल मसविदेमें यह वाक्य भी है: "यह मामला झूठा साबित हुआ है।"

भी दी गई थी। आसपासके गाँवोंको सन्देश भेजे गये कि लोग सुबह इस सभामें आ कर शामिल हों। पीर कमाल साहबके मुताबिक दूसरे दिन गुस्सेसे भरे हुए कोई दो हजार मुसलमान टाउन हालकी तरफ रवाना हुए। डिप्टी कमिश्नरने उनसे प्रार्थना की कि उनमें से कुछ थोड़े लोग आकर उनसे मिलें। लेकिन लोग न माने और उन्हें मजबूरन बाहर आकर इतनी बड़ी भीड़का सामना करना पड़ा। उन्होंने उनकी माँग स्वीकार कर ली, और अपनी जीतपर खुश भीड़ तितर-बितर हो गई।

पिछले हफ्तेमें हिन्दू लोग डरके मारे घबड़ा गये थे। उन्होंने ६ सितम्बरको एक पत्र लिखकर मुसलमानोंमें फैले हुए जोशकी डिप्टी कमिश्नरको खबर दी। लेकिन उनकी हिफाजतके लिए डिप्टी कमिश्नरने कोई कदम नहीं उठाये। ८ तारीखको रातमें जो सभा हुई थी उसकी उन्हें खबर थी। उन्होंने ९ तारीखकी सुबह अपना भय अधिकारियोंपर प्रकट करनेके लिए, कितने ही तार भेजे और श्री जीवनदासको फिर गिरफ्तार न करनेका अनुरोध किया। अधिकारियोंने फिर भी कुछ ध्यान न दिया। टाउन हालसे वापस आकर भीड़ने क्या किया इसपर बड़ा ही मतभेद है। मुसलमान कहते हैं कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलाई थी। उससे एक मुसलमान लड़का मर गया और दूसरा घायल हो गया। इससे उस भीड़का गुस्सा भड़क उठा जिसके फलस्वरूप लूटमार और आगजनी आदि वारदातें हुईं। हिन्दुओंका कहना है कि मुसलमानोंने ही पहले गोली चलाई थी और हिन्दुओंने बादमें आत्मरक्षा करनेके लिए गोलियाँ चलाईं। वे कहते हैं कि यह लूटना, आग लगाना इत्यादि कार्रवाइयाँ पहले ही से निश्चित योजनाके अनुसार और इशारेपर की गई थीं।

इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता है इसलिए मैं कोई निश्चित निर्णयपर नहीं पहुँच सका हूँ। मुसलमानोंका कहना है कि यदि हिन्दुओंने पहले गोली न चलाई होती तो कुछ भी नुकसान न होता। मैं इसे नहीं मान सकता। मेरा खयाल तो यह है कि हिन्दुओंने गोलियाँ चलाई होतीं या न चलाई होतीं, कुछ नुकसान तो जरूर ही होना था।

किसीने भी पहले गोली क्यों न चलाई हो, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि गोली चलनेके पहले ही भीड़ने सरदार माखनसिंहका बाग उजाड़ दिया था और उनके मकानमें आग लगा दी थी। इसमें भी कोई शक नहीं कि हिन्दुओंने किसी समय गोलियाँ जरूर चलाई थीं। जिनसे कुछ मुसलमान मारे गये और कुछ जख्मी हुए थे। मेरा खयाल यह है कि अपनी विजयपर इतराती हुई वह भीड़ जब चारों तरफ बिखरने लगी तब जाते-जाते उसने हिन्दुओंके घरों और दुकानोंके सामने कुछ उत्तेजनात्मक प्रदर्शन जरूर ही किये होंगे। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ हिन्दू घबड़ा ही रहे थे और उन्हें हरदम उपद्रव मचनेका डर लगा हुआ था। इसलिए कोई आश्चयकी बात नहीं यदि वे उनके प्रदर्शनोंको देखकर काँप उठे हों और उनमें से किसीने गोली चलाकर भीड़को भगा देना चाहा हो। लेकिन मुसलमानोंका गुस्सा तो इससे जरूर ही बढ़ता, क्योंकि उन्हें हिन्दुओंकी तरफसे मुकाबलेकी आदत ही न थी। जैसा कि पीर साहब कहते हैं कि सीमा प्रान्तके मुसलमान अपनेको 'नायक' (रक्षक) और हिन्दुओंको

'हमसाया' (रक्षित) मानते हैं। इसलिए हिन्दुओंने जितना अधिक डटकर मुकाबला किया उतना ही अधिक उस भीड़का क्रोध बढ़ता गया।

इसलिए इस घटनाके लिए कौन कितना जिम्मेदार है इसका निर्णय करते समय मेरी दृष्टिमें पहले गोली किसने चलाई, इस प्रश्नका कुछ अधिक महत्त्व नहीं है। इसमें शक नहीं कि यदि हिन्दुओंने आत्मरक्षाके लिए भी उनका सामना न किया होता अथवा उन्होंने पहले गोली न चलाई होती — यदि मान लें कि उन्होंने चलाई ही थी — तो मुसलमानोंका उपद्रव जल्दी ही शान्त हो गया होता। लेकिन जिन हिन्दुओंके पास हथियार थे और जो उनको थोड़ा-बहुत चलाना भी जानते थे उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे मुसलमानोंका सामना न करते। मुसलमान गवाहोंको इस बातमें भी शंका है कि ९ तारीखको कुछ हिन्दू मारे गये या जख्मी हुए। लेकिन मैं यह निश्चय मानता हूँ कि उस रोज मुसलमानोंके हाथ कुछ हिन्दू जरूर मारे गये या जख्मी हुए थे। हताहतोंकी कुल संख्या देना मुश्किल है। मुझे यह लिखते समय खुशी है कि कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंके दोस्त बनकर उन्हें आश्रय दिया था।

यह तो आमतौरपर स्वीकार कर लिया गया है कि १० सितम्बरको मुसलमानोंके क्रोधकी कुछ सीमा न थी। निःसन्देह हिन्दुओंके हाथों बहुतसे मुसलमानोंके मारे जानेकी अफवाहें बढ़ा-चढ़ाकर फैलाई गईं और आसपासके कबाइली मुसलमान दीवारें तोड़कर या दूसरे रास्तोंसे कोहाटमें घुस आये। सारे शहरमें कत्ल और लूट शुरू हो गई, पुलिसने भी इसमें खुलकर हिस्सा लिया और अधिकारी जो इसे रोक सकते थे, खड़े तमाशा देखते रहे। अगर हिन्दुओंको उनके घरोंसे हटाकर छावनीमें न पहुँचाया गया होता तो उनमें से शायद ही कोई बच पाता। इस बातपर भी बड़ा जोर दिया जा रहा है कि मुसलमानोंका भी नुकसान हुआ है। कबाइली मुसलमानोंपर तो जब एक मर-तबा लूटनेका भूत सवार हो गया फिर उन्होंने यह नहीं देखा कि यह हिन्दूका माल है या मुसलमानका। हालाँकि यह बात सच है, फिर भी मैं यह नहीं मानता कि हिन्दुओंके मुकाबलेमें मुसलमानोंको कुछ भी नुकसान पहुँचा है। और मैं सादर यह भी कहना चाहता हूँ कि खिलाफतके कुछ स्वयंसेवकोंने, जिनका कर्त्तव्य ऐसे समयमें हिन्दुओंको अपना भाई मानकर उनकी रक्षा करना था, अपना फर्ज अदा नहीं किया। वे सिर्फ लूटमें ही शामिल नहीं हुए बल्कि लोगोंको शुरूमें उकसानेमें भी उन्होंने हिस्सा लिया।

लेकिन सबसे ज्यादा बुरी बात तो अभी कहनी बाकी ही है। झगड़ेके दिनोंमें मन्दिरोंको भी, जिनमें एक गुरुद्वारा भी शामिल था, नुकसान पहुँचाया गया था और मूर्तियाँ तोड़ दी गई थीं। बहुतसे लोगोंने जबरन धर्मपरिवर्तन या कहनेको धर्मपरि-वर्तन किया अर्थात् अपनी जान बचानेके लिए इस्लाम अपनानेका दिखावा किया।[1] दो

१. २६-३-१९२५ के यंग इंडियामें प्रकाशित वक्तव्यमें शौकत अलीने लिखा था : जहाँतक दंगोंके दिनोंमें हुए इन तथाकथित बलात् धर्मपरिवर्तनोंका सवाल है, मेरी स्थिति स्पष्ट है। मुझे बलात् धर्मपरिवर्तनसे सख्त नफरत है। ऐसा करना इस्लामकी भावनाके खिलाफ है। यदि ऐसा किया गया हो तो वह घोर निन्दाके लायक है; पर सचमुचमें ऐसा हुआ है इसका मुझे विश्वास नहीं है।

हिन्दुओंको सिर्फ इसलिए बुरी तरहसे कत्ल किया गया था क्योंकि उन्होंने (एकने निश्चय ही, दूसरेने अनुमानतः) इस्लामको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया था। ऐसे धर्मपरिवर्तनका एक मुसलमान गवाह इस प्रकार वर्णन करता है:

> हिन्दू मुसलमानोंके पास आये और उनसे अपनी शिखा काट लेने और जनेऊ तोड़ डालनेके लिए कहा। अथवा जिन मुसलमानोंके पास आश्रय पानेके लिए गये उन्होंने उनसे कहा, "यदि तुम अपनेको मुसलमान घोषित कर दो और हिन्दू धर्मके चिह्न निकाल फेंको तो तुम्हारी रक्षा की जायेगी।"

यदि हिन्दुओंके कहनेपर विश्वास किया जाये तो सत्य इससे भी अधिक कटु है। इन मुसलमान मित्रके साथ न्याय करनेके लिए मुझे यहाँ यह कह देना चाहिए कि उन्होंने ऐसे कार्योंको धर्मपरिवर्तन नहीं माना। इसके बारेमें कमसे-कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हिन्दू-मुसलमान दोनोंके लिए शर्मकी बात है। मुसलमानोंने यदि उन नामर्द हिन्दुओंको हिम्मत दी होती और हिन्दू बने रहने और हिन्दू धर्मके चिह्न रखनेपर भी उनकी रक्षा की होती तभी मैं उन्हें काबिले-तारीफ मानता। हिन्दुओंने भी यदि सिर्फ जिन्दा रहनेके लिए, चाहे वह ऊपरी दिखावेके लिए ही क्यों न हो, अपने धर्मका परित्याग करनेके बजाय मर जाना अधिक पसन्द किया होता तो सिर्फ हिन्दू ही नहीं सारी मानव-जातिकी भावी पीढ़ियाँ उन्हें वीर और शहीद मानकर पूजतीं और उनपर गर्व करतीं।

मुझे अब सरकारके बारेमें भी कुछ कहना है। स्थानीय अधिकारियोंने अपने कर्त्तव्यके प्रति शर्मनाक उदासीनता, अयोग्यता और कमजोरी दिखाई है।

उस अपमानजनक कविताके निकाल देनेके बाद पत्रिकाका जलाना भूल थी।

श्री जीवनदासको गिरफ्तार कर लेना ठीक था लेकिन उन्हें ११ तारीखके पहले छोड़ देना एक भूल थी।

छोड़ देनेके बाद उन्हें फिर गिरफ्तार करना एक जुर्म था।

६ सितम्बरको और फिर ९ तारीखको हिन्दुओंकी इस चेतावनीपर कि उनकी जान व माल खतरेमें है, ध्यान न देना जुर्म था।

आखिरकार जब दंगा हुआ उस समय उनकी रक्षा न करना भी बड़ा जुर्म था।

आश्रितोंको वहाँसे हटानेके बाद उनके खानेकी व्यवस्था न करना और रावलपिंडी पहुँचानेके बाद उनको अपने ही भरोसे छोड़ देना एक अमानवीय काम था।

भारत सरकारने इस मामलेकी, और इससे सम्बन्धित अधिकारियोंकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोग नियुक्त न करके अपने कर्त्तव्यके प्रति बड़ी लापरवाही दिखाई है।

अब रही भविष्यकी बात। मुझे अफसोस है कि वह भी कुछ अधिक उजला नहीं दिखाई देता। यह बड़े दुःखकी बात है कि मुस्लिम कार्यवाहक समितिने हमारी जाँचके समय अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा। जिस समझौतेका जिक्र किया गया है वह समझौता दोनों कौमोंके खिलाफ मुकदमे चलानेकी धमकी देकर करवाया गया है। यह समझमें नहीं आता कि ऐसी शक्तिशाली सरकारने ऐसा समझौता करानेमें भाग

कैसे लिया। यदि इस डरसे कि कबाइली मुसलमान फिर दंगा मचायेंगे, सरकार मुकदमे नहीं चलाना चाहती थी तो उसे यह बात साफ-साफ कह देनी चाहिए थी और मुकदमे चलानेसे इनकार कर देना था; और बादमें सरकारको दोनों कौमोंमें बाइज्जत सुलह व मैत्री करानेका प्रयत्न करना चाहिए था।

यह समझौता मूलतः गलत है, क्योंकि इसमें खोये और नष्ट मालकी क्षतिपूर्तिका कोई उल्लेख नहीं है। और यह इसलिए भी बुरा है कि इसके अनुसार श्री जीवनदासपर, जिन्हें बेकार ही बलिका बकरा बनाया जा रहा है, अभी मुकदमा चलाया जानेवाला है।

इसलिए यदि सचमुच दिलोंसे द्वेष दूर करना है और सच्ची सुलह करनी है तो यह आवश्यक है कि मुसलमान हिन्दू आश्रितोंको बुलाकर उन्हें उनकी हिफाजतका यकीन दिलायें और उनके मन्दिरों और गुरुद्वारोंको फिरसे बनानेमें मदद करनेका वचन दें।

लेकिन सबसे बड़ा आश्वासन तो उन्हें इस बातका देना होगा कि जबरदस्ती किसीका भी धर्म परिवर्तन नहीं किया जायेगा और दोनों कौमें ऐसे धर्म परिवर्तनोंको कबूल भी न करेंगी। सिर्फ वही धर्म परिवर्तन माना जायेगा जिसके साक्षी दोनों कौमके अगुआ रहेंगे और जिसका धर्म परिवर्तन हो रहा हो वह यह अच्छी तरह समझता हो कि वह क्या कर रहा है। मैं स्वयं तो यही पसन्द करूँगा कि धर्मान्तर और शुद्धि सब, पूरी तरह बन्द कर दिये जायें। हर व्यक्तिका धर्म उसका अपना निजी मामला है। बालिग स्त्री या पुरुष जब या जितनी दफा चाहें अपना धर्म बदल सकते हैं। किन्तु यदि मेरा बस चलता तो मैं मनुष्यके अपने व्यक्तिगत आचरणसे दूसरेको प्रभावित करनेके अलावा और सभी प्रकारके प्रचार-कार्य बन्द कर देता। सीमा प्रान्तमें किसी सच्चे धर्म परिवर्तनके होनेकी बात भी मैं सोच नहीं सकता। हिन्दू लोग वहाँ सिर्फ ऐसे व्यापारकी गरजसे रहते हैं, संख्यामें बहुत ही कम और हथियार चलाना न आने पर भी वे ऐसे बहुसंख्यक लोगोंके साथ रहते है जो शारीरिक शक्तिमें और हथियार चलानेमें उनसे कही बढ़कर हैं। ऐसी परिस्थितिमें दुर्बल हृदयके मनुष्यका सांसारिक लाभके लिए इस्लामको अंगीकार करनेके लोभसे बचना कठिन होता है।

ऐसा आश्वासन उनकी ओरसे मिले या न मिले, हृदयका सच्चा परिवर्तन सम्भव हो या न हो, मुझे तो जो रास्ता अपनाना चाहिए वह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जबतक यह विदेशी सत्ता कायम रहेगी उसके साथ कहीं-न-कहीं सम्बन्ध रखना भी अनिवार्य होगा। लेकिन जहाँ मुमकिन हो वहाँ उससे सब प्रकारके ऐच्छिक सम्बन्ध तोड़ देने चाहिए, यही एक रास्ता है जिससे कि हम लोग आजादी महसूस कर सकते हैं और उसका विकास कर सकते हैं। जब एक बहुत बड़ी संख्यामें लोग आजादी महसूस करने लगेंगे, हम स्वराज्यके लिए तैयार हो जायेंगे। स्वराज्यके सन्दर्भमें ही मैं ऐसे सवालोंके जवाब सुझा सकता हूँ। इसलिए मैं भविष्य के राष्ट्रीय लाभकी वेदीपर वर्तमान व्यक्तिगत लाभोंका बलिदान करना चाहूँगा। यदि मुसलमान हिन्दुओंकी ओर मित्रताका हाथ बढ़ानेसे इनकार करें और कोहाटके हिन्दुओंको सब-कुछ खोना पड़े,

तो भी मैं यही कहूँगा कि जबतक उनमें और मुसलमानोंमें पूरी तरह सुलह नहीं हो जाती और वे यह महसूस नहीं करते कि वे ब्रिटिश संगीनोंकी मददके बिना उनके साथ चैनसे रह सकेंगे तबतक, उन्हें कोहाट वापस लौटनेका विचार भी न करना चाहिए। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि यह तो आदर्शकी बात है और यह सम्भव नहीं कि हिन्दू उसके अनुसार चल सकें। फिर भी मैं कोई दूसरी सलाह नहीं दे सकता। मैं तो सिर्फ यही एक व्यावहारिक सलाह दे सकता हूँ। यदि वे इसकी कद्र नहीं कर सकते तो उन्हें अपने ही मनके अनुसार काम करना चाहिए। वे ही अपनी शक्तिको अच्छी तरह जानते हैं। वे देशभक्त या देशसेवककी हैसियतसे तो कोहाट नहीं गये थे और न ही वे अब देशसेवककी हैसियतसे वहाँ वापस लौटना चाहते हैं। वे तो अपने माल-पर फिर कब्जा पानेके लिए ही वहाँ जाना चाहते हैं। इसलिए वे वही काम करेंगे जो उन्हें लाभदायी और सम्भव मालूम होगा। उन्हें सिर्फ दो बातें एक साथ नहीं करनी चाहिए, अर्थात् एक ओर मेरी सलाहपर अमल करनेकी कोशिश करना और साथ-ही-साथ सरकारसे सुलहकी शर्तोंके लिए लिखा-पढ़ी करना। मैं जानता हूँ कि वे असहयोगी नहीं हैं। उन्होंने अंग्रेजोंकी मददपर हमेशा भरोसा रखा है। मैं तो उन्हें परिणाम-भर बता सकता हूँ। आगे अपना रास्ता वे खुद पसन्द करें।

मुसलमानोंके लिए भी मेरी सलाह वैसी ही सीधी-सादी है।

जबरदस्ती किये गये या ऐसे ही नाम-मात्रके धर्म परिवर्तनसे हिन्दुओंको उद्वेग हो या कुछ हिन्दू अपनी खोई हुई पत्नियोंको वापस लानेका प्रयत्न करें तो इसमें मुसलमानोंके नाराज होनेकी कोई बात नहीं है।

मैं यह जानता हूँ कि सरदार माखनसिंहका पुत्र अदालतसे अपहरणके दोषसे बरी होकर छूट गया तो भी बहुतसे मुसलमान उसे दोषी ही मानते हैं। लेकिन यदि यह मान भी लें कि उसने यह कसूर किया था तो भी उस एकके दोषके कारण सारी जातिसे ऐसा भयंकर बदला लेना उचित नहीं है।

उस पत्रिकाको, जिसमें वह अपमान करनेवाली कविता छपी थी, मँगाना, खासकर कोहाट जैसी जगहमें बेशक बुरा था। परन्तु सनातन धर्म सभाने लिखित माफी माँगकर उसका काफी प्रायश्चित्त कर लिया था। मुसलमानोंको उससे सन्तोष न हुआ और उन्होंने उस पत्रिकाको श्रीकृष्णकी तस्वीरके साथ ही जला देनेपर सभाको मजबूर किया। उसके बाद उन्होंने जो-कुछ भी हिन्दुओंके साथ किया वह जरूरतसे कहीं ज्यादा था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि पहले गोली किसने चलाई थी। लेकिन यदि यह मान भी लें कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलाई थी तो उन्होंने डरकर, घबराकर आत्मरक्षाके लिए ही गोली चलाई थी। इसलिए यद्यपि इसे उचित नहीं कह सकते तो भी वह क्षम्य तो अवश्य था। उसके बाद जो ज्यादतियाँ की गईं, सब अनुचित और अनावश्यक थीं। मुसलमानोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि इस स्थितिमें वे जितना बन पड़े हिन्दुओंके नुकसानकी भरपाई करें। मुसलमानोंको हिन्दुओंसे अपनी हिफाजतके लिए सरकारी मददकी कोई जरूरत नहीं है। यदि हिन्दू चाहें तो भी उन्हें कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकते। लेकिन यहाँ भी मेरी

स्थिति मजबूत नहीं है। मुझे अभीतक कोहाटके उन मुसलमानोंसे परिचय करनेका भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है जो मुसलमान-जनताके सलाहकार हैं। इसलिए इस बातका तो वे अच्छी तरह निर्णय कर सकेंगे कि मुसलमानोंके लिए और हिन्दुस्तानके लिए क्या हितकर होगा।

यदि दोनों पक्ष सरकारका बीच-बचाव चाहते हैं तो मेरी सेवाएँ व्यर्थ हैं; क्योंकि मुझे ऐसे बीच-बचावकी आवश्यकतामें विश्वास ही नहीं है, और सरकारके साथ समझौतेके लिए जो बातचीत की जायेगी उसमें मैं कोई भी भाग न ले सकूँगा। यह सच है कि मुसलमानोंसे अच्छा व्यवहार पाने और माँगनेका हिन्दुओंको हक है। लेकिन दोनों कौमोंको सरकारसे बचकर रहना चाहिए क्योंकि उसकी तो नीति ही यही है कि एकको दूसरेसे भिड़ा दे। सीमाप्रान्तकी हुकूमत खुदमुख्तार है। अधिकारीकी इच्छा ही वहाँ कानून है। इस स्थितिमें दोनों कौमोंको मिलकर प्रतिनिधि सरकार बनानेका प्रयत्न करना चाहिए और उसमें अपना गौरव मानना चाहिए। लेकिन जबतक दोनों कौमें एक-दूसरेपर विश्वास नहीं करतीं और प्रतिनिधि सरकार बनानेकी इच्छा दोनोंकी महत्वाकांक्षा नहीं बन जाती तबतक यह सम्भव नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-३-१९२५

१९०. भाषण : पोदनूरमें[1]

१९ मार्च, १९२५

महात्माजीने उत्तर देते हुए कहा कि मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई है कि यहाँ सभी जातियोंके लोग परस्पर शान्ति और सद्भावसे रहते हैं और यहाँ अस्पृश्यता या हिन्दुओं और मुसलमानोंका कोई झगड़ा नहीं है। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप देशके लिए प्रतिदिन आधा घंटा चरखा कातें और खद्दर पहनें। यदि मौलाना शौकत अली मेरे साथ होते तो वे यह सुनकर खुश होते कि मजदूरोंमें कोई साम्प्रदायिक द्वेष नहीं है। अन्तमें मैं आप लोगोंको यही सलाह देता हूँ कि आप शराबकी लत छोड़ दें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-३-१९२५

१. यह भाषण पोदनूरके रेलवे मजदूरों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

१९१. भाषण : तिरुपुरमें[1]

१९ मार्च, १९२५

भाइयो,

इन सब अभिनन्दन-पत्रोंके लिए मैं आप सबका बहुत आभार मानता हूँ। मुझे दुःख है कि मुसलमान मित्रों द्वारा दिये गये अन्तिम अभिनन्दन-पत्रका अनुवाद न होनेके कारण मैं उसे समझ नहीं सका। किन्तु मेरा खयाल है कि इसमें भी अधिकतर वही भावनाएँ होंगी जो कि अन्य अभिनन्दन-पत्रोंमें व्यक्त की गई हैं। मेरे साथ आपको भी इस बातसे दुःख होगा कि इस बार दोनों अलीभाई या उनमें से कोई एक भी मेरे साथ नहीं है। दिल्ली और बम्बईमें पहलेसे ही व्यस्त रहनेके कारण दोनोंमें से एक भी मेरे साथ नहीं आ सका।

नगरपालिकाके अभिनन्दन-पत्रमें इस नगरको खद्दरकी राजधानी और मुझे खद्दर-का बादशाह कहा गया है। ऐसा कहकर आपने मेरी बहुत बड़ी प्रशंसा की है। मुझे लगता है कि यदि कोई स्थान खद्दरकी राजधानीके योग्य है तो वह तिरुपुर ही हो सकता है। किन्तु मैं अपनी सीमाओंको भलीभाँति जानता हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं खद्दरका कितना गरीब बादशाह हूँ। (हँसी)। क्योंकि इस खद्दरकी राजधानीमें १० हजारसे अधिक चरखे और हजारसे अधिक करघे नहीं हैं। बिक्री भी तीन, साढ़े तीन लाखके आसपास है। जब आपको मालूम होगा कि खद्दरके बादशाहकी क्या महत्वा-कांक्षा है तब आप समझ सकेंगे कि इन आँकड़ोंको सुनकर वह कितनी हीनताका अनुभव करता है। मुझे बताया गया है कि यद्यपि इस जिलेमें प्रतिवर्ष ५० लाख रुपयेकी कीमतका खद्दर बनाया जा सकता है फिर भी यहाँ उसकी १० प्रतिशत-से अधिककी खपत नहीं हो सकती। जब मैं इस सभामें अपने चारों ओर आप सब लोगोंको, स्त्री और पुरुषों दोनोंको देखता हूँ तो मुझे लगता है कि उक्त कथन कितना सत्य है।

जब मैं इस नगरके कुछ खद्दर भंडारोंको देखनेके लिए गया तब खादी मण्डल भंडारने मुझे नमूनोंकी यह पुस्तक दी। मैं नहीं जानता कि आप सबको यह बात मालूम है या नहीं कि तिरुपुरमें आपको कितना अच्छा खद्दर मिल सकता है। यहाँ आपके पास कपड़ेमें विभिन्न प्रकारके चौखानोंके नमूने हैं। कपड़ोंमें रंग भी कई मिलते हैं। यहाँ मिलनेवाला सभी प्रकारका खद्दर इतना मोटा भी नहीं होता। इस जलवायुमें बारीक सूत भी बुना जा सकता है। यहाँ ऐसी महिलाएँ हैं जो बीस अंकका या उससे भी महीन सूत कात सकती हैं। आपको यहाँ कई प्रकारकी छींट और उजला सफेद खद्दर भी मिल सकता है। जो लोग किनारी पसन्द करते हैं उन्हें कई किस्मकी किनारियाँ मिल सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खद्दरका मूल्य प्रति गज मैनचेस्टर, जापान या

१. नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

बम्बई तथा अहमदाबादके कपड़ेसे अधिक है। किन्तु जब आप इस खद्दरकी मजबूतीकी तुलना मैनचेस्टरके मालसे करेंगे, तब मुझे विश्वास है कि आपको यह खद्दर उस कपड़ेसे सस्ता लगेगा। मैं आपको सदा खद्दर पहननेवालोंका सामान्य अनुभव बता सकता हूँ। उनकी रुचि इतनी सुसंस्कृत और इतनी सादी हो गई है कि जबसे उन्होंने खद्दर पहनना शुरू किया है तबसे कम कपड़ोंसे ही उनका काम चलने लगा है। इसके अतिरिक्त क्या इस जिलेमें रहनेवाले गरीब स्त्री-पुरुषोंके प्रति आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आप उनका कपड़ा मैनचेस्टर या जापान और यहाँतक कि बम्बई और अहमदाबादके बने कपड़ेसे कुछ महँगा होनेपर भी खरीदें। आपको विदेशी मालके बजाय अपने देशका माल खरीदना चाहिए। यद्यपि सभी आपके पड़ोसी हैं, फिर भी यदि आप दूरस्थ पंजाबके लिए, चाहे पंजाब भारतमें ही क्यों न हो अपने निकटतम पड़ोसियोंकी उपेक्षा करते हैं तो आपको देशसे सच्चा प्रेम नहीं है। यदि आप सब अपने-अपने पड़ोसियोंका ध्यान रखें तो आप पायेंगे कि देशकी सभी समस्याएँ और कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। आप सब इस बातसे सहमत हैं कि खद्दरका यह सन्देश महान् सन्देश है। इसलिए मैं आप सबसे कहता हूँ कि यदि आपने अभीतक खद्दरको न अपनाया हो तो आप उसे तुरन्त अपना लें। मैं आपसे यह भी कहता हूँ कि आप प्रत्येक घरमें चरखेकी पुनः स्थापना करें, क्योंकि जबतक सैकड़ों, हजारों लोग स्वेच्छया कताईको नहीं अपनाते तबतक उतना महीन सूत नहीं काता जा सकता और न ही खद्दरको उतना सस्ता बनाया जा सकता है जितना कि हम चाहते हैं। चरखेकी अनन्त सम्भावनाओंके कारण ही मैंने प्रत्येक कांग्रेसीको यह सुझाव देनेका साहस किया कि मताधिकारमें कताई-परीक्षाको शामिल किया जाये। आज बहुत-सी बहनोंको चरखा कातते देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैं आदर्श गाँवके बुनकरोंके पास भी गया। यदि आपने इन महिलाओंको चरखा कातते देखा हो और यदि आपने देखा हो कि चरखा उनके घरोंमें कैसी खुशी ले आया है तो आप खद्दरके सन्देशपर जल्दी ही अमल करने लगेंगे। मुझे मालूम हुआ कि आपका संरक्षण न मिलनेके कारण ही खादी मण्डल हजारों कातनेवाली महिलाओंको काम देनेमें असमर्थ है। नगरपालिकाके सदस्यों और यहाँके नागरिकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इन केन्द्रोंमें जायें और जो-कुछ मैं कह रहा हूँ उसकी सचाई स्वयं देखें।

मुझे इस बातकी खुशी हुई है कि आप लोगोंके सामने अस्पृश्यता या अनुपगम्यताकी समस्या नहीं है, जैसे कि दक्षिणके कुछ भागोंमें है। किन्तु मुझे आशा है कि यदि अब भी कहीं अस्पृश्यता या अनुपम्यताकी समस्या है तो उसे निःसंकोच दूर कर दिया जायेगा। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि वह हिन्दू धर्मका अंग नहीं है।

तीसरी जिस बातका उल्लेख मैंने बार-बार किया है, वह है हिन्दू-मुस्लिम एकता। जबतक हम अपने देशकी सभी जातियोंमें एकता स्थापित करनेके महत्त्वको नहीं समझते तबतक विकासकी उस चरम स्थितितक नहीं पहुँच सकते जहाँतक पहुँचनेकी हममें सामर्थ्य है। चौथी बात है, नशाबन्दी। त्रावणकोर और कोचीनकी सम्पूर्ण यात्रामें मुझसे जोर देकर यह कहा गया कि शराबकी लतसे बहुतसे घर बरबाद होते जा रहे

हैं। यदि यहाँ की जनताको शराबकी लत है तो मैं आशा करता हूँ कि आप उस समस्याको भी हल करेंगे। (जोरोंसे और देरतक हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २०-३-१९२५

१९२. भाषण: पुडुपालयमकी ग्रामीण सभामें

२१ मार्च, १९२५

भाइयो,

जहाँ पहुँचना मुश्किल है ऐसे स्थानपर पहुँचकर और आप सबसे मिलकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब मेरी नजर आपके वाद्योंपर पड़ी तब मेरी इच्छा हुई कि मैं स्वाभाविक रूपमें गाये हुए आपके कुछ गीत सुनूं। मैं जानता हूँ कि राष्ट्रीय जीवनके विकासमें गीतोंका महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। गीत-गीतमें अन्तर होता है और विभिन्न प्रकारके गीतोंमें जमीन-आसमानका फर्क होता है। ऐसे भी गीत होते हैं जो मनुष्यको ऊँचा उठाते हैं और ऐसे भी गीत होते हैं जो उसे गिराते हैं। जब आपको सचमुचमें कोई अच्छा गीत मिले, जो भक्ति और ओजसे भरपूर हो, तब वह आपको ऊँचा उठाता है। हमारे कुछ प्राचीन गीत इसी प्रकारके हैं। वे सारे भारतमें पाये जाते हैं। प्राचीन कालमें हमारे अपने तारवाले वाद्य होते थे, किन्तु आज हारमोनियमने उन श्रेष्ठ वाद्योंका स्थान ग्रहण कर लिया है। मैं चाहता हूँ कि हम उन तारवाले वाद्योंको फिरसे अपना लें। उनका संगीत अधिक मधुर होता है। हारमोनियमकी अपेक्षा मुझे उनके संगीतसे अधिक शान्ति प्राप्त होती है।

जब मैं आप सबपर और यहाँ उपस्थित सभी बहनोंपर निगाह डालता हूँ तब मैं देखता हूँ कि आपमें से अधिकांश विदेशी वस्त्र पहने हुए हैं। मैं चाहूँगा कि आप थोड़ी देरके लिए इस बातपर विचार करें कि विदेशी वस्त्र पहननेका मतलब क्या है। एक सौ वर्षोंसे अधिक समय नहीं बीता जबकि आपके पूर्वजों — स्त्री और पुरुषों — के घरोंमें चरखे थे। जिस प्रकार आज हर घरमें रसोईघर और चूल्हा रहता है उसी प्रकार हर घरमें चरखा भी होता था, जिसपर महिलाएँ सूत काता करती थीं। जो सूत हमारी बहनें कातती थीं उसे गाँवके बुनकर बुनते थे और वही कपड़ा हम पहनते थे। मान लीजिए हममें से प्रत्येक साल-भरके लिए अपने कपड़ोंपर ८ रु० खर्च करता है और इस गाँवकी आबादी ५,००० है तो हम प्रतिवर्ष ४०,००० रु० की बचत करते। आज हम अपने गाँवसे करीब ४०,००० रु० मैनचेस्टर, जापान या बम्बईको भेज रहे हैं। किसी भी हालतमें यह ठीक नहीं है।

प्राचीन कालमें हम वही काम करते थे जो उचित थे, जिनसे देशका हित होता था और भुखमरी दूर रहती थी। अब हम ऐसा नहीं करते हैं; इसलिए जब यहाँ दुर्भिक्ष पड़ता है तब हमारी समझमें नहीं आता कि हमें क्या करना चाहिए। इसलिए मैं

चाहूँगा कि आपमें से हर व्यक्ति आजसे हाथकती और हाथबुनी खादीके सिवा और कुछ न पहननेका वादा करे।

मैं आपसे यह भी कहना चाहूँगा कि जिनके घरमें अभीतक चरखा न आया हो वे चरखा खरीदें। चरखा हमारे लिए कामधेनु होगा। यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि हमारे मित्र रत्नसभापति गौंडरने[1] अपने परिवारके लिए एक नहीं बल्कि कई चरखे लिए हैं। मुझे जब कल उनके घर जानेका अवसर मिला तब घरकी महिलाओंको कातते हुए देखना मुझे बहुत अच्छा लगा। श्री गौंडरने उनके द्वारा कते हुए सूतसे बुने कपड़े पहन रखे थे। वे और उनका सारा परिवार सिर्फ खद्दरके ही कपड़े पहने हुए था। ईश्वरकी कृपासे उनके पास खूब धन है; लेकिन उन्होंने धनके लिए चरखे और खद्दरको नहीं अपनाया बल्कि देशके लिए, धर्मके लिए ऐसा किया है, किन्तु हम लोगोंको, जो गरीब हैं, खुद अपने लिए ऐसा करना चाहिए।

मुझे एक सज्जनने कुछ रुपये दिये हैं कि मैं भोजन खरीदकर गरीबोंमें बाँटूं। गरीबसे-गरीब व्यक्तिमें भी अपनी रोटी कमानेकी सामर्थ्य है। मैं मुफ्त रोटी देनेमें विश्वास नहीं करता। और न मैं इस बातपर विश्वास करता हूँ कि जो लोग कमा सकते हैं उन्हें वस्त्र दिये जायें। मेरे विचारमें जब धनी लोग बिना सोचे-समझे गरीबोंको पैसा देते हैं तब वे गलत ढंगसे दान करते हैं। ऐसा वे केवल अपने सन्तोषके लिए करते हैं। इस प्रकारका दान तो केवल उन्हीं लोगोंको देना चाहिए जो कि अपंग हैं, लंगड़े या अन्धे हैं या किसी और कारणसे काम करनेमें असमर्थ हैं।

इसलिए श्रीयुत च० राजगोपालाचारीके साथ विचार-विमर्श करके मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि इस धनसे कपड़ा खरीदकर उसे इस गाँवके या यहाँ बैठे हुए गरीबोंको बाजार भावसे कुछ सस्ते दामोंपर बेच दिया जाये। साधारण तौरपर मुझे स्वीकार करना होगा कि प्रति गजके हिसाबसे देखा जाये तो बाजारमें बेचे जानेवाले कपड़ेसे खद्दर महँगा है, और बहुतसे गरीब लोगोंने मुझसे कहा है कि यदि खद्दर बाजारके कपड़ेके भावसे बेचा जाये तो वे खुशी-खुशी उसे पहनेंगे। इसलिए मैं आपके सामने यह प्रस्ताव रखता हूँ कि आप लोगोंमें जो सचमुच गरीब हैं और जो अधिक पैसा खर्च नहीं कर सकते वे अपना नाम दर्ज करायें और वादा करें कि इसके बाद वे केवल खद्दर पहनेंगे। ऐसे लोगोंको बाजारके मुकाबले सस्ते दामोंपर खद्दर मुहैया किया जायेगा। और यदि यहाँ गरीबोंकी संख्या इतनी ज्यादा है कि सबको इस दानसे खद्दर मुहैया न किया जा सके तो मैं अधिक दाम प्राप्त करनेका प्रबन्ध करूँगा, बशर्ते कि आप लोग जो यहाँ मौजूद हैं, केवल खद्दर पहननेका वादा करें। इस अच्छी वस्तुका हमने त्याग कर दिया था। इसे हमें अब फिरसे अपनाना चाहिए। अब मैं आपसे उस बुरी बातके बारेमें कहना चाहता हूँ जिसे छोड़नेसे हम इनकार करते हैं।

वह बुरी चीज है अस्पृश्यता। यह एक घोर अभिशाप है जो हमारे देश और हमारे धर्मका सर्वनाश कर रहा है। सनातनी हिन्दू होनेके नाते मैं आपको बता सकता हूँ कि जिस रूपमें अस्पृश्यताका व्यवहार आज हो रहा है, हमारा धर्म उसकी पुष्टि

१. पुदुपालयमके जमींदार।

नहीं करता। यदि 'भगवद्गीता' हमारा धर्मग्रन्थ है तो मेरे विचारमें अस्पृश्यता एक पाप है। वर्ण केवल चार होते हैं, पाँच नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि स्मृतियोंमें कुछ ऐसे श्लोक हैं जिनमें अस्पृश्यताका उल्लेख है, लेकिन आज-जैसी अस्पृश्यताका नहीं। वह अस्पृश्यता कुछ व्यवसायों और कुछ अवस्थाओं — अस्थायी अवस्थाओं — तक सीमित है। हो सकता है कि मासिक धर्मके दिनोंमें अपनी माँ, बहन अथवा पत्नीको मैं न छुऊँ। जब मेरी माँ अपने दूसरे छोटे बच्चोंको साफ करती है तब वह स्नान कर लेने तक अछूत रहती है। इसी प्रकार वह भंगी भी जो मेरी टट्टी साफ करता है तबतक अछूत है जबतक कि वह टट्टी साफ करनेके बाद अपनेको साफ नहीं कर लेता। अस्पृश्यता एक अस्थायी अवस्था है जिसका व्यवहार केवल ऐसे व्यवसायोंके साथ किया जाता है जो गन्दे कामसे सम्बद्ध हैं। किन्तु किसी व्यक्तिको इसलिए अछूत समझना पाप और अपराध है कि वह किसी विशेष जातिमें पैदा हुआ है। आखिर शास्त्र भी हमें क्या आदेश देते हैं; यही कि किसी खास आदमीको छूनेपर हम स्नान करें। किन्तु आजकी अस्पृश्यताने हिन्दू जातिके एक पंचमांशको नीच बना दिया है। इसके कारण हम अपने देशके लोगोंको दलित कर रहे हैं। इससे ऊँच-नीचके भेदभाववाली व्यवस्था खड़ी हो गई है। तथाकथित सवर्ण हिन्दू, ब्राह्मण और अब्राह्मण अछूतों और पंचम जातिके साथ घृणा और अवज्ञाका व्यवहार करते हैं। वे उन्हें बुरा और गन्दा खाना देकर पाप करते हैं। वे सार्वजनिक सड़कोंका उपयोग करनसे उन्हें मना करके पाप करते हैं। वे हर तरहसे उनका अपमान करते हैं। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि अपने बन्धुओं-के साथ इस प्रकारके अमानवीय व्यवहार करनेका हमारे शास्त्रोंने हमें कोई अधिकार नहीं दिया है। यह कहना कि सवर्ण हिन्दुओंको साँप या बिच्छू द्वारा काटे गये अछूत-की सेवा नहीं करनी चाहिए, मानवीयता और उस धर्म, अहिंसा धर्मके विरुद्ध है जिसके अनुयायी होनेका हम दम भरते हैं। इसके विपरीत मेरा धर्म, हिन्दू धर्म, मुझे सिखाता है कि यदि मेरे अपने पुत्र और एक अछूतको साँपने काटा हो और मेरे सामने सवाल यह हो कि दोनोंमें से पहले किसको बचाना चाहिए तो उस स्थितिमें अपने पुत्रको छोड़-कर अछूतको बचाना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। यदि मैं उस अछूत बालकको छोड़ दूँगा तो ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। सम्पूर्ण रूपसे आत्मोत्सर्गके सिवा आत्मज्ञानका और कोई मार्ग नहीं है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि यह बुरी प्रथा कितने वर्षोंसे चली आ रही है इसका खयाल किये बिना आप इसे छोड़ दें।

तीसरी चीज है मद्यपानका अभिशाप। मैं जानता हूँ कि इस दक्षिणी प्रदेशमें बहुतसे लोगोंको मद्यपानकी लत है। मैं आशा करता हूँ कि इस सभामें बैठा प्रत्येक व्यक्ति, जिसे मद्यपानकी लत है, उसे एकदम छोड़ देगा। मद्यपानसे मनुष्य अपनेको भूल जाता है। वह कुछ समयके लिए मानव नहीं रहता। वह जानवरसे भी बदतर हो जाता है। उसका अपनी जुबान और अपने हाथ-पैरोंपर कोई नियन्त्रण नहीं रहता। मद्यपानसे कभी किसीका भला नहीं होता। इसलिए मुझे आशा है कि आप मद्यपानकी इस बुराईके विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगाकर संघर्ष करेंगे।

अस्पृश्यता तथा मद्यपानकी बीमारीके विरुद्ध संघर्ष करने एवं लोगोंमें खद्दर तथा चरखेको लोकप्रिय बनानेके लिए श्रीयुत च० राजगोपालाचारी आपके बीच डटकर काम कर रहे हैं।

उनके पास सहायताके लिए ऐसे नवयुवक हैं जो योग्य, बुद्धिमान तथा आत्मत्यागी हैं। श्री गोंडरने अपना सुन्दर बाग उनको दे दिया है। वे सभी अपने लाभप्रद व्यवसायों को छोड़कर, आपके बीच, आपकी सेवा करने आये हैं। इन कुछ ही महीनोंके अन्दर सैकड़ों चरखे पुनः स्थापित किये जा चुके हैं। प्रति सप्ताह सैकड़ों महिलाओंको रुई दी जा रही है। वे उसका सूत कातकर प्रति सप्ताह लाती है और सूतका मूल्य ले जाती हैं। इसी सूतको बुना जाता है; और उससे बुनी खादी आप खरीद सकते हैं। किन्तु जबतक आप उनसे सहयोग नहीं करते तबतक वे और उनके थोड़ेसे कार्यकर्त्ता आपकी ज्यादा सहायता नही कर सकते। यह एक गरीब जिला है जिसमें गत तीन चार सालसे दुर्भिक्ष पड़ रहा है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि दुर्भिक्षके विरुद्ध कोई भी उपाय इतना प्रभावशाली नहीं, जितना चरखा है।

और आप कई प्रकारसे उन्हें सहायता दे सकते है। आपमें से जो अच्छे खाते-पीते लोग है लेकिन ज्यादा पैसा नहीं दे सकते, वे प्रतिदिन आधा घंटा कताई कर सकते हैं। आप यहाँ आश्रममें कातना और धुनना सीखें और प्रति सप्ताह रुई लाकर उसका सूत कातकर उसे मुफ्त आश्रमको दें। इससे श्रीयुत राजगोपालाचारी खादीको आजकी अपेक्षा सस्ते दामोंपर बेच सकेंगे। आपमें से जो लोग रुई नही दे सकते, वे नकद दें। आश्रम सार्वजनिक सम्पत्ति है। आप जब चाहें तब उसे जाकर देख सकते हैं। वह आपके पासमें है। जबतक आप समझते हैं कि आश्रमके कार्यकलाप उपयोगी हैं और आपके जिलेके लिए लाभकारी हैं तबतक हर प्रकारसे उसकी सहायता करना आपका परम कर्त्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

१९३. भाषण : पुदुपालयमके आश्रममें[1]

२१ मार्च, १९२५

मैंने अभिनन्दन-पत्रका अनुवाद बड़े ध्यानसे पढ़ा है। स्वभावतः आप लोगोंसे मेरी पूरी सहानुभूति है। मैं सबसे पहले कोकोनाडामें, इन लोगोंके[2] सम्पर्कमें आया और तबसे उनकी समस्याओं और कठिनाइयोंमें मेरी गहरी दिलचस्पी हो गई है। धर्मके नामपर जो-कुछ हम रोजाना कर रहे है, वह एक अत्यन्त भयंकर चीज है। मैं इससे सहमत हूँ कि जबतक ऐसे आदमी है जो स्त्रियोंके सतीत्वके साथ खिलवाड़ करते है और जबतक ऐसी स्त्रियाँ हैं जो पैसेके लिए अपना सतीत्व बेचनेको तैयार रहती हैं. तबतक इस समस्याको सुलझाना बड़ा कठिन है। जबतक ऐसे लोग रहेंगे तबतक यह चलता ही

१. कोयम्बटूर जिला सेनगुन्थर महाजन संगमके सदस्यों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

२. अभिप्राय देवदासियोंसे है।

रहेगा। किन्तु एक काम हम कर सकते हैं, वह यह कि इस पेशेको गर्हित घोषित कर दें और उसकी जो प्रतिष्ठा इस समय है उसे नष्ट कर दें। उसकी प्रतिष्ठाके प्रत्येक चिह्नको मिटा दें। ऐसा करनेके लिए हम इस प्रथाकी घोर निन्दा करें।

मैं आपको सलाह दूँगा कि आप ऐसे प्रत्येक परिवारकी गणना करें जहाँ एक लड़कीको वेश्यावृत्तिके लिए अलग रखनेकी प्रथा है। हमें लोगोंको समझाना होगा कि उनका ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। दूसरी बात यह है कि हमें इन अभागी स्त्रियोंके मामलेको अपने हाथमें लेना होगा और उनके लिए उपयुक्त रोजगार ढूँढ़ने होंगे। मैंने बंगालमें बारीसालकी ऐसी स्त्रियोंके साथ इस मामलेपर दो घंटेसे अधिक समयतक बातचीत की थी। इन स्त्रियोंकी काफी आय है। हम उनसे यह वादा नहीं कर सकते कि दूसरे किसी रोजगारसे उनको उतनी ही आय होगी, जितनी कि इस पापपूर्ण पेशेसे होती है। यदि वे अपना जीवन सुधार लेती हैं तो उन्हें उतनी आयकी आवश्यकता भी नहीं होगी। कताईसे उनकी आजीविका नहीं चल सकती। वे इसे केवल मन बहलाने और आत्मत्यागकी भावनासे अपनायें। कताई करनेका मेरा यह सुझाव केवल उनकी आत्मशुद्धिके लिए है। किन्तु उनके लिए धन्धे भी ढूँढ़े जा सकते हैं, जिन्हें कि वे आसानीसे सीखकर अपना काम चला सकती हैं। वे धन्धे हैं, बुनाई, सिलाई या खद्दरपर किया जानेवाला कशीदेका काम। कुछ पारसी महिलाएँ रंग-बिरंगी सुन्दर बुनाईका काम कर रही हैं। गोटेका काम, कशीदाकारी और ऐसी दूसरी दस्तकारियाँ भी हैं, जिनसे वे सरलतापूर्वक १२ आनेसे लेकर डेढ़ रुपयातक प्रतिदिन कमा सकती हैं। देवदासियोंकी संख्या ज्यादा नहीं है। इस कारण उनके लिए ५-६ दस्तकारियोंको ढूंढ़ निकालना कठिन नहीं होगा। हमें ऐसे स्त्री-पुरुषों, विशेषकर स्त्रियोंकी आवश्यकता है जो इन दस्तकारियोंमें प्रशिक्षित हों और जो पवित्र जीवन बिताती हों, वे अपनी इन पतित बहनोंके सुधारका कार्य अपने हाथमें लें। आप ऐसे ही उद्देश्यसे स्थापित अन्य संस्थाओंका अध्ययन करके उनका अनुकरण भी कर सकते हैं। उद्धारके इस पुण्य कार्यके लिए एक जानकारकी आवश्यकता है जो इसके लिए अपना जीवन अर्पित कर सके।

भाषण समाप्त होनेपर जब महात्माजीने लोगोंसे प्रार्थना की तब सार्वजनिक कार्यके लिए उन्हें लक्ष्मण मुदलियरने कानोंके बुन्दे और अँगूठी दी। उन्होंने उन्हें श्री लक्ष्मण मुदलियरको वापस देकर कहा कि देवदासियोंके सुधारके लिए हम जो कोष इकट्ठा करनेवाले हैं उसके लिए इसे प्रथम दान माना जाये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

१९४. भाषण : तिरुच्चंगोड़में[1]

२१ मार्च, १९२५

भाइयो,

मैं इन अभिनन्दन-पत्रोंके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं देखता हूँ कि खद्दरसे सम्बन्धित मेरी गतिविधियोंका आप समर्थन करते हैं। जितना अधिक चरखे और खादीकी सम्भावनाओंके बारेमें मैं विचार करता हूँ उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हमारे देशमें फैले व्यापक संकटका यही एकमात्र हल है। और जैसा कि मैंने आज सुबह देखा, बूढ़े स्त्री-पुरुष एकके-बाद-एक आश्रममें आ रहे थे और बूढ़ी स्त्रियोंको रुई दी जा रही थी; यह देखकर मुझे लगा कि उनके समान लाखों अन्य स्त्री-पुरुषोंके लिए चरखेके सिवा कोई दूसरा पेशा न तो है, न हो सकता है। यदि हम अपने जीवनको सुखी मानकर उससे संतुष्ट न रहते और भारतकी कंगालीका ध्यान करते तो हमारे लिए जीवन असह्य भार हो जाता। यदि कल्पना करें कि भारतकी आबादीके दसवें भागको केवल एक जून खाना नसीब होता है, वह सूखी रोटी और चुटकी-भर नमकपर जी रहा है, तब आप भारतमें फैली गरीबीका कुछ अन्दाज लगा सकेंगे। यह तसवीर, मेरी कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि यह उन तथ्योंपर आधारित है जिन्हें भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीने अपने अटूट प्रयत्नोंसे एकत्र किया था। उन्होंने ही सबसे पहले अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा तैयार किये गये आँकड़े हमारे सामने रखे और इन आँकड़ोंसे हमें यह अहसास कराया कि भारत दिन-प्रतिदिन दरिद्र होता जा रहा है।

अब इस कष्टको दूर करनेका उपाय हमारे अपने हाथमें है। इस कष्टके लिए हम जिम्मेवार हैं। हमने वह कपड़ा पहनना छोड़ दिया जिसे हमारी अपनी लाखों बहनों द्वारा काते गये सूतसे हमारे अपने बुनकर तैयार करते थे। हमने मैनचेस्टर, और जापान और हालमें ही बम्बई तथा अहमदाबादकी मिलोंके बने कपड़ोंको अपनाया है। और ऐसा करते हुए हमने इस बातकी जरा भी परवाह नहीं की कि हमारे अपने पड़ोसियोंपर क्या गुजरी है। हमने यह भी नहीं सोचा कि मिलके बने कपड़ेके उपयोगसे चाहे वह मिल कहींकी भी क्यों न हो, हम गरीब खेतिहर मजदूरोंको उस आयसे वंचित कर रहे हैं जो उन्हें अपने खाली समयमें काम करके मिलती थी। अपने इस अपराधके लिए हमें भारी हर्जाना भरना पड़ा है और अब भी हम उसे भर रहे हैं। किन्तु खुशकिस्मतीसे अब भी ज्यादा देर नहीं हुई। यदि हम अपने देशके स्त्री-पुरुषोंके कष्टोंके प्रति क्रूर और उदासीन होना छोड़ दें तो हम आज ही इसका उपाय कर सकते हैं और अपने देशसे गरीबी दूर कर सकते हैं।

१. तिरुच्चंगोड संघ, स्थानीय कांग्रेस कमेटी तथा वलीबा स्वराज्य संगमके सदस्यों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें। डा० टी० एस० एस० राजन्ने भाषणका अनुवाद किया।

मैं दक्षिणके खद्दर केन्द्रोंमें गया हूँ। वहाँ मुझे बताया गया है कि यदि इस प्रदेशके लोग खद्दर खरीदकर लोगोंको संरक्षण दें या कहिये कि उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करें तो इन हजारों स्त्री और पुरुषोंको दो चार पैसे और मिल जायेंगे। हर जगह वे लोग शिकायत करते हैं कि उन्हें बहुत-सी स्त्रियोंको जो रुई लेनेके लिए उनके पास आती हैं, खाली हाथ वापस भेजना पड़ता है, क्योंकि वे उनके बनाये सारे खद्दरको बेच नहीं पाते। इसलिए मैं प्रत्येक स्त्री और पुरुषसे जो मेरी पुकार सुन सकते हैं, अपील करता हूँ कि आप जो मिलके कपड़े पहने हुए हैं, उन्हें जल्दी त्याग दें और खद्दर पहनें। उससे आपकी गरीब बहनों और भाइयोंको सहायता मिलेगी। आप अपनी मातृभूमिकी यही सबसे बड़ी सेवा कर सकते हैं। यदि आप केवल यहाँ बननेवाले खद्दरको पहनकर सन्तुष्ट रहेंगे तो आप देशकी सेवा करेंगे। महीन खद्दर बनाने लायक महीन सूत प्राप्त करनेके लिए तथा उस खद्दरको गरीब और अमीर सभीको मैनचेस्टरके कपड़ोंके बराबर ही सस्ते भावोंपर मुहैया करनेके लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप प्रतिदिन आधा घंटा कातनेमें लगायें। यही उस समस्याका जिसमें हमारे देशके सर्वश्रेष्ठ लोग एक अरसेसे उलझे हुए हैं, बहुत ही सरल और निश्चित समाधान है। अब आप यह शिकायत नहीं कर सकते कि कताई सीखने और खद्दर प्राप्त करनेके लिए कोई साधन नहीं है। आप लोगोंके बीच एक आश्रम स्थापित कर दिया गया है। इस आश्रममें रहकर देशके कुछ सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाशाली नवयुवक अपनी सारी शक्ति खद्दरके प्रचार और प्रसारमें लगा रहे हैं। आपको केवल वहाँ जाना होगा। आप वहाँ मुफ्त कताई सीख सकते हैं, अच्छे चरखे उपलब्ध कर सकते हैं और अपनी इच्छानुसार खद्दर आपको मिल सकता है।

यदि हमें अपने धर्मकी सेवा करनी है तो अस्पृश्यताका प्रश्न भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। मैं तो बार-बार कहूँगा कि अस्पृश्यता एक अभिशाप है। आज हम इसपर जिस रूपमें अमल करते हैं, उसके लिए हमारे शास्त्रोंमें कोई प्रमाण नहीं है। यह मानवीयता और विवेक दोनोंके प्रतिकूल है। ऐसा करना ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करना है। ईश्वरने मनुष्यको इसलिए नहीं बनाया कि वह दूसरे मनुष्यको अछूत समझे। मैं आपको किसी भी व्यक्तिके साथ खानेके लिए नहीं कहता। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप अपनी लड़कियोंका विवाह ऐसे व्यक्तियोंसे करें जो आपको इस योग्य नहीं लगते। किन्तु मैं आपसे यह जरूर कहूँगा कि आप किसी व्यक्तिके साथ केवल इसलिए अस्पृश्यताका व्यवहार न करें कि वह किसी एक खास जातिमें पैदा हुआ है। क्या ईश्वर किसीके मस्तकपर 'नीच' लिखकर जन्म देता है? जिस दिन वह ऐसा करेगा उस दिन वह ईश्वर नहीं रहेगा। आप आश्रममें जायें और आप उन पंचम बालकोंको देखें जिनका कि पालन-पोषण वहाँ हुआ है और मैं दावेके साथ कहता हूँ कि आप पंचम बालकों और ब्राह्मण या सवर्ण हिन्दू बालकोंके बीच भेद नहीं कर सकेंगे। थोड़ी-सी करुणा, थोड़ी-सी मानवता और प्रेमके स्पर्शने उन्हें आश्रममें रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति-जैसा बना दिया है। वे उसी प्रकार प्रतिभाशाली, शिष्ट और प्रिय हैं, जैसा कि आश्रममें रहनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति। वे उसी प्रकार साफ़-

सुथरे रहते हैं और ईश्वरसे डरते हैं जैसे कि आश्रमका सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण। इसलिए हम समयपर सचेत हों और अपना अहंकार छोड़कर हिन्दू धर्मको उस विपत्तिसे बचायें जो कि उसके सिरपर मंडरा रही है।

मद्यपान एक और समस्या है जिसे तुरन्त सुलझाना होगा। यह बहुतसे घरोंको नष्ट कर रही है और मुझे आशा है कि आपमें जो लोग देशभक्त हैं, जो अपनेको देशका सेवक समझते हैं, वे उन लोगोंके बीच जायेंगे जिन्हें कि पीनेकी लत है और उन्हें राहपर लानेकी कोशिश करेंगे। आप श्री रत्नसभापति गोंडरके शानदार उदाहरणका अनुकरण करें और मद्यपानके अभिशापसे नष्ट हो रहे देशको बचानेके लिए, वे जो-कुछ कर रहे हैं वही आप भी करें। जब कुछ ही मास पूर्व उनके चचेरे भाईने मेरे सामने यह पवित्र प्रतिज्ञा की कि वे शराबबन्दी तथा खद्दरके कार्यमें जी-जानसे लग जायेंगे तो मुझे बहुत संतोष हुआ और खुशी भी। उनकी पत्नीको चरखा कातते हुए देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। उन्हें पैसेकी आवश्यकता नहीं है। वे अपने देशके लिए कताई करती हैं। मैं प्रत्येक स्त्री-पुरुषसे आजसे ही कातना शुरू कर देनेके लिए कहता हूँ।

मैं आपके अभिनन्दन-पत्रके लिए एक बार फिर आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि जो-कुछ मैंने कहनेका साहस किया है आप उसे याद रखेंगे और इन तीन कामोंको करनेके लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

१९५. जहाँ मद्यपान हो, वहाँ क्या करें?

एक भाईने दुःखित हृदयसे यह पूछा है:[1]

उद्यान-भोजमें शराब दी गई थी, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। किन्तु यदि मुझे यह पता चल जाता कि उसमें शराब दी जायेगी, तो भी मैं उसमें जाता। जिस दिन यह उद्यान-भोज था उसी दिन मुख्य दावत भी थी। इस दावतमें शराब दी गई थी; फिर भी मैं उसमें बैठा रहा। मुझे तो इन दोनोंमें से कुछ खाना ही नहीं था। दावतमें मेरे एक ओर एक महिला बैठी थी और दूसरी ओर एक भद्रपुरुष। महिलाके शराब लेनेके बाद बोतल मेरे पास आती और मैं उसे उक्त सज्जनको दे देता। उन सज्जनको बोतल देना मेरा कर्त्तव्य था। मैंने सोच-समझकर इस कर्त्तव्य-का पालन किया। यह हो सकता था कि मैं इस बोतलको नहीं छू सकता, यों कहकर मैं उसे आगे न बढ़ाता, किन्तु ऐसा करना मैंने अनुचित समझा।

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें राजकोटके ठाकुर साहब द्वारा १७ फरवरीको दिये गये एक उद्यान-भोजका जिक्र किया गया है। इसमें अतिथियोंको शराब दी गई थी।

अब प्रश्न दो रहते हैं। जहाँ शराब दी जाती हो, क्या वहाँ मेरे-जैसे लोगोंका जाना उचित है? यदि जाना उचित भी हो तो क्या शराबकी बोतलको एकसे लेकर दूसरेको देना उचित है? जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, दोनों प्रश्नोंका मेरा उत्तर यह है कि मेरे लिए वहाँ जाना और शराबकी बोतल पहुँचाना — दोनों ही बातें उचित थीं। लेकिन किसी दूसरेके लिए यही बात अनुचित हो सकती है। ऐसे मामलोंमें राजमार्ग क्या हो सकता है सो मुझे नहीं मालूम। यदि कोई राजमार्ग हो तो वह यही हो सकता है कि हम ऐसे आयोजनों और दावतोंमें बिलकुल न जायें। यदि हम शराबपर बन्धन लगाते हैं तो माँसपर बन्धन क्यों न लगायें? यदि हम माँसपर बन्धन लगायें तो फिर अन्य अभक्ष्य पदार्थोंपर बन्धन क्यों न लगायें? इसलिए यदि हम कुछ परिस्थितियोंमें ऐसे समारोहोंमें जाना अनिष्टकर मानते हों, तो मुझे सर्वोत्तम मार्ग यही जान पड़ता है कि हम किसी भी समारोहमें न जायें।

तब मैं वहाँ क्यों गया था? मैं वहाँ इसीलिए गया था कि मैं ऐसे समारोहोंमें बरसोंसे जा रहा हूँ और इस अवसरपर न जानेका मेरे लिए कोई विशेष कारण नहीं था। मैं स्वयं ऐसे समारोहोंमें कुछ खाता नहीं, खाता ही हूँ तो केवल फल। मैं इससे अपने मनको समझा सकता हूँ कि जिस प्रकार मैं इनमें भाग लेता हूँ उसमें कुछ अनुचित नहीं है। मैं जानता हूँ कि मेरे इस प्रकार भाग लेनेसे कुछ लोगोंने मद्यपान और कुछ लोगोंने माँसाहार छोड़ दिया है। किन्तु इन समारोहोंमें जानेके पक्षमें यह तर्क नहीं दिया जा सकता। मैं यह बताता हूँ कि मैंने स्वयं अपने मनको कैसे समझाया। यदि जैसा मैं करता हूँ वैसा ही सब करें तो मुझे लेशमात्र भी चिन्ता न हो। किन्तु मैं जानता हूँ कि मेरा अनुकरण करके उसमें दूसरे लोग उपस्थित होंगे, इतना ही नहीं बल्कि भय यह भी है कि वे खाद्य-अखाद्य और पेय-अपेयका विवेक भी छोड़ बैठेंगे। मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा हुआ है। अब तीसरा प्रश्न यह उठता है कि तब हम इस भयसे कबतक अपने ऊपर रोक लगाये रखें? ऐसे प्रश्न सदा ही धर्म संकट उपस्थित करते हैं। और उनका निर्णय सबको अपने-अपने विवेकके अनुसार कर लेना चाहिए। इस सम्बन्धमें मेरी सलाह यह है कि जब कोई ऐसे मामलोंमें किसी निश्चित मार्गका निर्णय न कर सके और मेरे व्यवहारसे विरुद्ध व्यवहार करना उचित मालूम होनेके बावजूद वह मेरी सलाहपर चलना चाहता हो तो मेरा अपना व्यवहार चाहे कैसा भी क्यों न हो, उसे जैसा मैं कहूँ वैसा व्यवहार करना चाहिए। मैं जैसा करता हूँ, वैसा करनेमें जोखिम है। इसलिए जहाँ मद्य और मांस परोसे जाते हैं वहाँ मैं भले ही जाता होऊँ, लोगोंके लिए वहाँ न जाना ही उचित है।

मेरे खादीके आग्रहमें और मद्यपानके उदाहरणमें कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन जगहोंमें खादी नहीं पहनी जाती वहाँ मैं नहीं जाता होऊँ सो बात भी नहीं है। जिन सभा संस्थाओंपर मेरा अंकुश होता है, उनमें अथवा जहाँ मेरी खादी सम्बन्धी दृढ़ताका अर्थ विपरीत नहीं समझा जा सकता, वहाँ मैं खादीके व्यवहारके सम्बन्धमें दृढ़ रहता हूँ। राजकोटके दरबारमें सभी लोग खादीधारी नहीं थे; फिर भी मैं वहाँ गया था। विवाह और ऐसे ही अन्य उत्सवोंमें जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। इस-

लिए यदि कोई मुझसे उनमें आनेका आग्रह करता है और मैं खादीके कपड़ोंकी शर्त मनवा सकता हूँ तो मनवा लेता हूँ।

इन सभी प्रश्नोंमें विवेक और प्रेमकी बात आती है। जो बात एक अवसरपर उचित होती है वही दूसरे अवसरपर अनुचित हो सकती है। मनुष्य तो चेतन प्राणी है, यन्त्रवत् जड़ नहीं। इसी कारण हर मनुष्यके कार्यमें भिन्नता, नवीनता और विरोधाभास आदि होते ही हैं। किन्तु जहाँ सत्य और प्रेमरूपी दो दिव्य मार्गदर्शक हों, वहाँ सूक्ष्मदर्शी पुरुष भिन्नतामें अभिन्नता, विरोधमें अविरोध और अनेकतामें एकताके दर्शन किये बिना नहीं रहता। जिस प्रेममें सहिष्णुता नहीं है, वह प्रेम ही नहीं है। मेरे लिए पूजनीय गौको मारनेवाले मुसलमानके गोवधको मैं सहन कर लेता हूँ; इसीसे मुझे उससे गोवध न करनेका विनयपूर्वक अनुरोध करनेका अधिकार प्राप्त होता है। माननीय ठाकुर साहबके समारोहमें शराबके दिये जानेको सहन करके ही मुझे उनसे विनयपूर्वक मद्यपान निषेधकी बात कहनेका अधिकार प्राप्त होता है। कोई पूछे कि यदि आप उनके भोजमें न जाते तो क्या माननीय ठाकुर साहब आपको मद्य-निषेधकी बात कहनेसे रोक सकते थे? इसका उत्तर यह है कि ठाकुर साहब शिष्टतावश सुनेंगे अवश्य, किन्तु वे उसे सुनकर भी उसपर ध्यान नहीं देंगे। किन्तु यदि मैं उनके समारोहमें भाग लेनेपर भी उनसे मद्य-निषेधकी बात कहूँ तो वे उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे और मेरी सहिष्णुताको निष्फल नहीं जाने देंगे।

अन्तमें मुझे इस विषयको समाप्त करते हुए कहना चाहिए कि इस सम्बन्धमें मेरा अनुकरण करना हानिकर हो सकता है। इसलिए मेरे साथ रहनेवाले लोगोंको ऐसा अनुकरण करते हुए सावधान रहना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-३-१९२५

१९६. एक शिक्षककी उलझन

जो शालाएँ खादी-प्रचारको स्वराज्य प्राप्तिके लिए आवश्यक मानती हैं उनमें खादी अनिवार्य करनेके विरुद्ध एक शिक्षक नीचे लिखी दलीलें देते हैं:[1]

> १. आसपासके कुटुम्बियों और पड़ोसियोंके रंग-बिरंगे विलायती कपड़ोंसे मोहित होकर नासमझ बच्चे खादीको आफत समझकर ही अपना पाले हैं और इस तरह बचपनसे ही ढोंगी बनना सीखते हैं। अगर आपका यह कहना है कि जिस स्कूलमें अधिकांश विद्यार्थी खादी पहनते हों, वहाँ ऐसे बच्चे भी स्वयं खादी पहनना ही पसन्द करेंगे, तो नासमझ बच्चोंके लिए खादी पहनना अनिवार्य बना कर उसे अप्रिय बनानेके बजाय स्कूलमें भरती होनेके बाद उन्हें स्वतः खादी पसन्द करने दी जाये। और इसके लिए थोड़े दिन धीरज रखना पड़े तो वह ज्यादा अच्छा रहेगा।

१. इन्हें संक्षिप्त रूपमें दिया जा रहा है।

अनिवार्य शब्दका यहाँ अनर्थ हुआ है। अगर राष्ट्रीय स्कूलमें आना अनिवार्य हो और उसके लिए खादी पहननेका नियम भी अनिवार्य हो, तो खादीका इस्तेमाल शायद बेजा तौरपर 'अनिवार्य' बनाया हुआ माना जा सकता है। मैं यहाँ 'शायद' शब्दका उपयोग इसलिए करता हूँ कि अनिवार्य शिक्षा होनेपर भी स्कूलमें भरती होनेकी कुछ शर्तें तो होंगी। उन शर्तोंको बेजा कहना मुश्किल है। वहाँ बच्चोंको कुछ खास विषय पढ़ने होंगे। साथ ही उनका साफ होकर आना, मैले कपड़े न पहनना, नंगे न आना, रंग-बिरंगे हास्यजनक कपड़े पहनकर न आना भी अनिवार्य होगा। ये सभी नियम होंगे, अतः उन्हें कोई अनुचित कहनेकी हिम्मत नहीं कर सकता।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि खादीकी आवश्यकताके बारेमें जिन्हें पूरा यकीन नहीं हुआ है, उन्हींके सामने मर्जी-बेमर्जीका सवाल खड़ा होता है। माँ-बापको अच्छा लगे या न लगे, पड़ोसियोंका वर्ताव अनुकूल हो या प्रतिकूल, कुछ बातें ऐसी हैं जिनके बारेमें बच्चोंपर पाबन्दी लगाये बिना काम नहीं चलेगा। जैसे, जंगलसे आया हुआ बच्चा बिलकुल नंगा होगा तो हमें उसे कपड़े पहनाने पड़ेंगे, भले ही वह अपने घर जाकर फिर कपड़े उतार दे। बच्चा गन्दी भाषाका उपयोग करेगा तो हमें उसे रोकना ही होगा। हरएक शिक्षक ऐसे कई अनिवार्य प्रतिबन्ध ठीक समझकर लगा सकता है और उनके विरुद्ध ऊपरके शिक्षककी एक भी दलील काम नहीं आयेगी। यानी जो नियम समाजमें घर कर चुके हैं, वे अनिवार्य होनेपर भी अनिवार्य नहीं माने जाते।

बात यह नहीं है कि लोगोंको स्वेच्छासे खादी पहनानेका हमारा प्रयत्न विफल हो गया है इसलिए खादीको अनिवार्य बनाया जा रहा है। बल्कि मुझे और अन्य कुछ लोगोंको लगता है कि अब खादीको अनिवार्य बनाने लायक वातावरण तैयार हो गया है, इसलिए राष्ट्रीय पाठशालाओंमें खादी और कताईको अनिवार्य बनाया जा रहा है। अकसर समाजका मन तैयार हो जाता है, पर शरीर तैयार नहीं होता, इसलिए समाज अनिवार्य बन्धनोंको स्वीकार कर लेता है। इस तरह हम अनिवार्य शब्दका अर्थ समझ लें तो बहुत-सी परेशानियाँ हल हो जायें। 'अनिवार्य' प्रतिबन्ध तो वे हैं जो सत्ता या हुकूमत बलपूर्वक प्रजापर लगाती है और अगर प्रजा उन्हें नहीं मानती तो उसे सजा दी जाती है। अगर यह व्याख्या मान ली जाये तो अनिवार्य प्रतिबन्धोंके बारेमें उपरोक्त शिक्षकने जो चर्चा की है उसका कोई आधार नहीं रह जाता।

> **२. समझानेसे, प्रेमसे और होड़से पहनी हुई खादी ज्यादा दिन पहनी जायेगी . . .। क्या पहले ही दिनसे खादी अनिवार्य करनेके बजाय थोड़े दिन धीरज रखना मूल उद्देश्यके लिए कम सहायक है?**

खादी अनिवार्य बना देनेमें समझाना, प्रेम और होड़ वगैरा तो हैं ही। खादीको अनिवार्य बनानेका भार शिक्षकोंपर है, बच्चोंपर नहीं। शिक्षकको सिपाहीकी तरह हुक्म नहीं देना है, बल्कि जिस प्रकार भी हो उसे बच्चोंका मन जीतनेका प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ प्रश्न 'पहले ही दिन' खादी पहनानेका नहीं है पर चार बरस

बाद खादी पहनानेका है। "अनिवार्य" शब्दकी पाबन्दी शिक्षकपर है। वह शिक्षकको उसके कर्त्तव्यकी याद दिलाता है। इस तरह "धीरज रखना" मूल उद्देश्यके लिए कम सहायक है या ज्यादा, यह सवाल ही खड़ा नहीं होता। धीरज तो शिक्षकका गुण है ही या होना ही चाहिए।

३. खादीको अनिवार्य बनाना क्या इस बातका ढिंढोरा नहीं है कि लोगोंने उसे स्वेच्छासे नहीं अपनाया है? . . .

इस शंकाका जवाब ऊपर दे दिया गया है।

४. क्या अनिवार्य खादीके नियमसे पाठशालामें प्रवेश पानेके लिए ही खादी पहननेवाले ढोंगियोंकी तादाद नहीं बढ़ेगी? . . .

अगर ढोंगका डर बच्चोंके बारेमें हो तो उसे मैं नहीं मानता। बच्चे ढोंग नहीं कर सकते। शिक्षकके बारेमें ऐसा अन्देशा हो सकता है। लेकिन जहाँ थोड़ा बहुत नियम-पालन होता है, वहाँ ढोंग तो आ ही जाता है। उसका उपाय वातावरणको शुद्ध बनाना है, नियमोंको आसान बनाना नहीं।

५. . . . अनिवार्य खादीके खयालसे तो राष्ट्रीय शालाएँ उनके लिए हैं जिन्होंने स्वराज्यकी शर्तें पूरी की हों; तो फिर जिन्हें अभी उसकी शिक्षा देनी है, उनके लिए कौन-सी पाठशाला है?

राष्ट्रीय स्कूलोंके अस्तित्वके दो कारण हैं: एक तो जिनपर राष्ट्रीयताका रंग चढ़ा है उनके लिए सुविधाएँ प्रदान करना; और दूसरा, जिनपर रंग नहीं चढ़ा उनके लिए खुद उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हें प्रभावित करना। जिनपर रंग नहीं चढ़ा, उनके लिए नियमोंको आसान बनाकर उन्हें लुभानेका हमारा उद्देश्य नहीं है। जैसे-जैसे राष्ट्रीय स्कूलोंके शिक्षकों और लड़कोंके चरित्रका विकास होगा और लोग उन्हें देखेंगे वैसे-वैसे वे इन शालाओंमें प्रवेश पानेके लिए उत्सुक हो उठेंगे।

६. नियम जालके समान बन जाते हैं। . . .

नियमोंका जाल बनना या न बनना, नियम चलानेवालेपर निर्भर है। उनका सहज पालन कराना भी नियामकपर निर्भर है। प्राथमिक पाठशालाएँ कोमल डालियाँ हैं। उन्हें जिधर मोड़िये उधर ही मुड़ जायेंगी। हमारे हाथसे वे सीधी दिशामें मुड़नी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-३-१९२५

१९७. टिप्पणियाँ

निर्दयता

मैं इन टिप्पणियोंको कोचीन त्रावणकोरमें लिख रहा हूँ। वाइकोमके स्टीमरमें सवार होनेको जाते समय रास्तेमें, बहुत सुन्दर दृश्योंके बीच वाइकोममें मैंने जो एक असह्य दृश्य देखा उसकी स्मृति मनसे नहीं जाती। कोचीनके लोग घोड़ागाड़ियों और मोटरोंका उपयोग बहुत कम करते हैं; वे गाड़ी खींचनेमें मनुष्यका उपयोग करते हैं। वहाँ जापानी ढंगकी रिक्शा सर्वत्र दिखाई देती है। रिक्शाओंको देखकर तो मुझे अधिक आघात नहीं लगा, क्योंकि वे तो मैंने डर्बनमें बहुत देखी थीं। किन्तु जब मैंने देखा कि तीन-चार लोग एक साथ रिक्शामें लदे हुए हैं तो मेरी इच्छा हुई कि मैं अपनी गाड़ीमें से उतर कर रिक्शा कुलीकी सहायता करूँ। मुझे अपने रास्तेपर आगे बढ़ना था और मेरा इस प्रकार उतर कर सहायता करना सम्भव नहीं था। किन्तु मनमें इसका घाव रह गया है। यह रिक्शा एक ही मनुष्यके बैठनेके लायक बनाई गई है। हो सकता है कि यदि रिक्शा कुली इनकार करे तो उसमें इतने लोग न चढ़ें। किन्तु इससे सवारियोंके मनमें दयाभाव नहीं है, मेरा यह विचार नहीं कटता। जरूरतमन्द आदमी न करने योग्य हजारों काम करता है। वह पेटके बल रेंगता है और जाने क्या-क्या काम करता है। किन्तु जो इन कामोंको अविचलित भावसे देखते रहते हैं, उनके सम्बन्धमें क्या कहा जाये? जो उन्हें ऐसा करनेके लिए विवश करते हैं, उनके बारेमें तो कहना ही क्या है? हो सकता है कोचीनमें रिक्शामें एकसे अधिक सवारी न बैठानेका नियम भी हो। यदि ऐसा हो तो सवारियाँ दोहरा अपराध करती हैं। कोचीनमें गुजराती बहुत रहते हैं। वे प्रभावशाली लोग हैं। मैंने रिक्शामें जो लोग बैठे देखे, वे लोग मलाबारी थे। गुजराती भी ऐसा करते हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता। किन्तु मुझे आशा है कि गुजराती इतनी निर्दयता न करते होंगे। मैं तो उनको कोचीनकी सेवाका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वे कोचीनमें ऐसा लोकमत तैयार करें कि कोई भी मनुष्य रिक्शेका दुरुपयोग कदापि न करे। मैं तो उनको रिक्शेका उपयोग बन्द करनेकी सलाह भी दूँगा। रिक्शेका उपयोग बन्द करनेसे उन्हें जो थोड़ा बहुत श्रम करना होगा, उससे उनका स्वास्थ्य भी सुधरेगा। जबतक कोई मनुष्य रोगी या अशक्त न हो तबतक उसका दूसरे मनुष्यपर चढ़कर चलना पाप है। हम मनुष्यका उपयोग पशुकी तरह कैसे कर सकते हैं? जिस कामको स्वयं हम करनेके लिए तैयार न हों उसे किसी दूसरेसे कैसे करा सकते हैं?

पतिका कर्त्तव्य

एक भाई प्रश्न करते हैं कि यदि पत्नी संयम-धर्मके पालनमें पतिकी सहायता न करे तो पतिको क्या करना चाहिए? मेरा अनुभव तो यह कहता है कि संयमके पालनमें एकोक दूसरेकी अनुमतिकी जरूरत नहीं। भोगके लिए दोनोंकी रजामन्दी

होनी चाहिए। त्याग तो प्रत्येकका खास क्षेत्र है। परन्तु ऐसी बातोंमें विवेककी बहुत आवश्यकता रहती है। संयमको सच्चा संयम होना चाहिए। पुरुषको चाहिए कि वह अपने मनको खूब जाँच ले। विवेक और शुद्ध प्रेमसे पति पत्नीको अपने संकल्पसे सहमत कर सकता है। हाँ, यह सम्भव है कि पतिने जितना ज्ञान प्राप्त किया है उतना पत्नीने न किया हो। अतः पतिका धर्म है कि वह पत्नीको भी अपने ज्ञानमें भागी बनाये। इस तरह जहाँ गृहस्थी विवेकपूर्वक चलती हो वहाँ संयमके पालनमें कठिनाई नही पड़ती। मेरा यह अनुभव है कि संयमके पालनमें स्त्री ही आगे रहती है। पति ही उसमें बाधा डालता है। इस कारण यह प्रश्न मुझे बेतुका मालूम होता है। फिर भी जवाब देना उचित समझकर यहाँ कुछ संकोचके साथ ही लिखा है।

पिता-पुत्र भेद

पिता धनवान् है और भोगी है। पुत्र त्यागी है और सादा जीवन बिताना चाहता है। पिता रोकता है। पुत्रको क्या करना चाहिए? अपनी अल्पमतिके अनुसार मुझे तो यही लगता है कि पुत्र अपने त्यागभावको न छोड़े। वह विनयके साथ पिता-को समझाये। मैं मानता हूँ कि जहाँ पुत्रमें विवेक और दृढ़ता दोनों गुण होते हैं वहाँ पिता बाधक नहीं होता। बहुत बार पुत्रके उद्धत होनेके कारण त्याग भी स्वच्छ-न्दताका रूप ले लेता है, जिससे पिता चिढ़ जाता है। मैं ऐसे त्यागको त्याग नहीं मानता। शुद्ध त्यागमें इतनी नम्रता होती है कि पिताको वह दिखाई भी नही देगा। त्यागको बड़ा स्वरूप देनेकी आवश्यकता नही होती। जब मनुष्यके जीवनमें सच्चा त्याग प्रवेश करता है तब पहले उसका ढोल नहीं पीटा जाता। वह चुपचाप आता है और किसीको उसकी खबरतक नहीं होती। ऐसा त्याग ही शोभा पाता है और अन्ततक टिकता है। ऐसा त्याग किसीको भार नही लगता और दूसरोंको प्रभावित भी करता है।

अन्त्यजोंका शिक्षक

इस प्रश्नका[1] उत्तर सुगम है। यदि अन्य वर्णोंके लिए ६० रुपयेसे ७५ रुपये तक पर शिक्षक रखा जा सकता है तो वह उतने वेतनपर अन्त्यजोंके लिए भी रखा जा सकता है। किन्तु बहुत-कुछ तो शिक्षकके चरित्रपर निर्भर है। कोई विद्यापीठका स्नातक हो जानेसे ही इतने वेतनका पात्र हो जाता है, ऐसा मैं नहीं मानता। मैं चाहता हूँ कि सभी स्नातक चरित्रवान हों। किन्तु ऐसा नहीं होता, यह मैं जानता हूँ। अन्त्यजोंको बुनाईके अतिरिक्त बढ़ई आदिका काम भी सिखाया जा सकता है। किन्तु मैं यथासम्भव बुनाईके धन्धेको ही अधिक विकसित करना चाहता हूँ। अधिकांश अन्त्यज बुनाईका काम करते हैं। अन्त्यज बालकोंको इस धन्धेमें पूरी तरह निपुण बनानेमें बहुत समय लग सकता है। अन्त्यज बुनकर बारीक सूत अधिक नहीं बुनते। वे बड़ा पना भी नहीं बुन पाते। डिजाइन तो शायद ही बुनते हैं। हमारा काम अन्त्यजोंको बुनाईकी समस्त कला सिखाना है। किन्तु हम ऐसा नही कर सकते, क्योंकि

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

हम स्वयं इतना नहीं सीख पाये हैं। हम अपनी ही इस अपूर्णताको दूर करें। क्योंकि वही हमारी सच्ची कठिनाई है। क्या सिखाना चाहिए, यह हमें मालूम हो गया है। किन्तु हममें उसे सिखानेकी योग्यता अभी नहीं आई है।

राष्ट्रीय शालाओंमें कितने विद्यार्थियोंके लिए कितने शिक्षक होने चाहिए इस सम्बन्धमें कोई नियम आज बनाना कठिन है। आदर्श शालाओंमें छात्र कम तो होंगे ही। इन शालाओंको बालकोंसे भरनेमें समय लगेगा। तबतक हम कोई निश्चित संख्या तय नहीं कर सकते।

हमारी मर्यादा

वही शिक्षक लिखता है :[1]

यदि राजा लोग अपने शिक्षा विभाग हमें सौंपते हैं तो हमें उनको अवश्य हाथमें लेना चाहिए। पर उसके लिए हमारी शर्तें तो होंगी ही। खादी, सूत आदिके सम्बन्धमें हमारे नियम उन्हें स्वीकार होने चाहिए। जिस शिक्षा-विभागमें अन्त्यजोंके प्रवेशपर रोक हो वह हमारे लिए अस्पृश्य ही होना चाहिए। यदि हम धीरे-धीरे सुधार कर पानेकी आशासे उन्हें हाथमें लेंगे तो हम उनमें ही खप जायेंगे। किसी कामको हाथमें लेनेके बाद उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। हम जिन नियमोंको आवश्यक मानते हैं उनके पालनके सम्बन्धमें हमें एक क्षण भी उदासीन नहीं रहना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-३-१९२५

१९८. पत्र : कुँवरजी खेतसीको

फाल्गुन वदी १३ [२२ मार्च, १९२५][2]

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। चि० रामीको[3] तुम्हारे हाथमें सौंप देनेके बाद मैंने उसकी चिन्ता छोड़ दी है। तुमपर मुझे पूरा विश्वास है। रोग तो देहके साथ जुड़े हैं। वे तो आयेंगे और जायेंगे। तुम्हारे पत्रके बाद चि० बलीका[4] पत्र मिला। उसमें रामीकी अवस्थामें सुधार होनेका समाचार था। रामीसे उसकी शक्तिके अनुसार काम लेना। इससे उसका शरीर ठीक रहेगा। मैं २७ तारीखको आश्रम पहुँचूँगा। रामीसे कहना कि वह मुझे पत्र लिखे।

बापूके आशीर्वाद

१. इसे उद्धृत नहीं किया जा रहा है।
२. गांधीजी वाइकोम, मद्रास अन्य स्थानोंका दौरा करके आश्रममें २७ मार्च, १९२५ को पहुँचे थे।
३. हरिलाल गांधीकी पुत्री।
४. हरिलाल गांधीकी साली।

चि० कुंवरजी
द्वारा
पारेख गोकलदास त्रिभुवन
मोरवी, काठियावाड़

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६७८) से।
सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

१९९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

फाल्गुन कृष्ण १३ [२२ मार्च, १९२५][1]

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मीले हैं।

मुस्लीम युनिवरसिटीके बारेमें आपने मुझको निश्चित कर दीया है। मैं यह तो हरगीज नहिं चाहता हुं कि आपके दामसे आप भाइयोंमें कुछ भी विखवाद हो। आपका नाम मैं प्रकट नहिं करूंगा।

आपने जो जमीन छोटा नागपुरमें ली है उसको नौकरोंके मृत्युके कारण छोड़नेकी सलाह मैं नहीं दुंगा। धातुरूप और जमीन रूप द्रव्य मैं बड़ा फरक नही है। द्रव्यके कारण झगड़ा होना, खुन भी होना अनिवार्य है। आपके धर्म संकटका एक ही इलाज है। मीलकीयत छोड़ देना। यह तो आप इस समय करना नहिं चाहते हैं। हां, एक बात तो मैंने कही है। क्योंकि मिलकीयत फसादोंका कारण बनती है औ[र] हमारे पास अकर्त्तव्य भी करवाती है उसे छोड़ देना और जबतक उसको हम सम्पूर्णतया छोड़नेके लिये तैयार नहीं हैं तबतक उसका व्यय पारमार्थिक भावसे — ट्रस्टीकी हैसियतसे — करना और अपने भागोंके लिये उसका कमसे-कम· व्यय करना। एक बात और संभवित है। जो सज्जन झगड़ा करता है उसको मीलनेकी कुछ कोशीश हुई है? उसकी अशांतिका कारण क्या है? क्या उसकी मूर्खता भले हो परन्तु उसकी जमीन पानीके दामसे तो नहिं मीली है? दुष्ट पुरुष भी अपनी मीलकत फेंक देना नहिं चाहता है। यह तो दूसरा तात्विक प्रश्न मैंने छेड़ा है।

आपकी धर्मपत्नीका स्वास्थ्य कुछ ठीक है क्या?

मैं मद्रास २४ तारीखको छोडुंगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र : (सी० डब्ल्यू० ६१०७) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. २१ फरवरी, १९२५ को लिखे अपने पत्रमें गांधीजीने श्री बिड़लासे ५०,००० रुपये अलीगढ़ यूनिवर्सिटीको दान देनेका अनुरोध किया था।

२००. भाषण : मद्रासमें[1]

२२ मार्च, १९२५

मद्रास अहातेमें अपने दौरेके इस हिस्सेकी शुरूआत इस समारोहके साथ करते हुए मुझे बड़ी ही खुशी हो रही है। अभी एक मानपत्र पढ़ा गया। आपने उसमें यहाँ आनेकी दावत मंजूर करनेपर मेरा शुक्रिया अदा किया है। लेकिन शुक्रिया तो आपको मेरा, एक कैदीका नहीं, बल्कि मुझे कैद करनेवाले, मेरे जेलर, श्री एस० श्रीनिवास आयंगरका अदा करना चाहिए। (हँसी)। यहाँ मेरे सारे वक्तके बँटवारेका काम उन्हींके हाथमें था। अस्पृश्यता-निवारणकी लगन उनमें उतनी ही है जितनी हममें से किसीमें भी हो सकती है। आपने समाज-सेवाके प्रति नई पीढ़ीके लोगोंके उपेक्षा भावका जिक्र किया है। मैं एक हदतक इसकी ताईद करता हूँ। यह सच है कि नई पीढ़ीके लोग काम नहीं चाहते, जोश चाहते हैं। पर मैं आपको यह भी बतला दूँ कि अभी ऐसे सैकड़ों लोग पड़े हैं जिनको दुनिया नहीं जानती और जिनकी कहीं भी शोहरत नहीं, परन्तु जिन्होंने इस तरहकी समाजसेवामें अपनी योग्यता सिद्ध कर दी है, जो अभी-अभी आपकी बताई समाज-सेवासे भी बहुत कठिन है। यहाँ मद्रासमें आपको उस व्यवस्थाकी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, जो सभ्यता कही जाती है। (हँसी)। मैं आपसे जिन युवकोंकी बात कर रहा हूँ और जिनके नाम मेरे दिमागमें हैं, उन्होंने अपना सारा समय गाँवोंमें रहकर समाज-सेवा करनेमें लगाया है। बाहरकी दुनियासे उनका कोई सम्पर्क नहीं। वे अखबार नहीं पढ़ते। उनकी किताबमें जोश नामका कोई शब्द नहीं। वे जनताके बीचमें रहे हैं। और उनका जीवन बिलकुल जनताकी तरह है। मैं चाहता हूँ कि आप उनकी मौन सेवाओंपर ध्यान दें। इतने मनोयोग और इतने आत्म-त्यागपूर्ण ढंगसे की गई उनकी इस सेवाको आप अन्य नवयुवकों द्वारा की जानेवाली उपेक्षाका प्रायश्चित्त मानें और शेष नवयुवक जो वास्तविक सेवाका अर्थ नहीं जानते, उनकी इस आत्म-त्यागपूर्ण सेवासे प्रेरणा लें।

मेरी रायमें तो यह सेवा ही हमारी शिक्षाका सबसे अच्छा अंश है। हमारे बेशुमार स्कूलोंमें जो शिक्षा दी जा रही है, मैं उसका विरोधी नहीं हूँ। लेकिन मैं जिस तौर-तरीकेके जीवनका हामी हूँ, उसमें इस प्रकारकी शिक्षा दोयम दर्जेपर आती है। यदि यह शिक्षा हमें राष्ट्रका सेवक नहीं बना सकती तो मैं इसकी उपयोगिताको नहीं मान सकता। मुझे तो लगता है कि हमारे नगरोंमें आमतौरपर जिस ढंगकी समाज-सेवा की जाती है वह गोखलेके[2] मतानुसार मनोरंजनका रूप ले लेती है। यदि हमें समाज-सेवाको जिन लोगोंकी हम सेवा करते हैं, उनके लिए और राष्ट्रके लिए प्रभावकारी और उपयोगी

१. सोशल सर्विस लीग द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

२. गोपाल कृष्ण गोखले।

बनाना है तो हमारे रोजानाके कामकाजमें उसका मुख्य स्थान होना चाहिए। जिस समाज-सेवामें सरपरस्तीका भाव हो, वह सेवा नही होती।

आप जिस महान कार्यमें लगे हुए है, मैं उसके लिए आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। हाँ, मुझे लगता है कि वह अपने-आपमें अधूरा है और उसमें बहुत सुधार किया जा सकता है। मेरी रायमें तो इस देशकी दशाको देखते हुए, कोई भी सेवा तबतक पूर्ण नहीं है जबतक उसकी नींव चरखे और खद्दरपर न रखी गई हो। आप चाहें तो इसपर हँस सकते है; पर समय आ रहा है जब यह बात समाज-सेवाका आधारभूत सूत्र बन जायेगी कि कोई भी समाज-सेवी तबतक समाज-सेवी नही माना जाये जबतक वह ऊपरसे नीचेतक केवल खद्दर न पहने हो और कातना न जानता हो। मैं आपको इसका कारण बतलाता हूँ। समाजके सबसे निचले वर्गके लोगोंकी सेवाका काम शुरू करके आपने उचित ही किया है। तब क्या इसके सम्बन्धमें मैं आपको एक तथ्यकी, एक ऐसे तथ्यकी याद दिलाऊँ जिसकी सचाईमें शंका नहीं की जा सकती? वह तथ्य यह है कि हमारे समाजके सबसे निचले वर्गके लोग शहरोंमें नहीं, देहातोंमें रहते है। मैं आपको एक दूसरा तथ्य भी बता दूँ, जिसे मेरे जैसे मनुष्यने नही इतिहासज्ञोंने प्रस्तुत किया है। तथ्य यह है कि भारतमें जनसंख्याका दसवाँ भाग आधे पेट खाकर रहता है। साथमें यह भी स्वीकार किया जाता है कि उनको आधे पेट इसलिए रहना पड़ता है कि सालमें लगभग चार महीने उनके पास कोई काम नही रहता। इसलिए एक ऐसा सार्वत्रिक धन्धा होना चाहिए जिसे देशका हर आदमी अपना सके। चरखा चलाना ही ऐसा एकमात्र धन्धा है।

मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इसपर व्यक्तिकी दृष्टिसे नहीं, समूचे राष्ट्रकी दृष्टिसे विचार करें। तब आपके सामने तुरन्त स्पष्ट हो जायेगा कि इससे राष्ट्रको केवल कुछ लाख रुपयोंकी नहीं, बल्कि करीब १२० करोड़ रुपयोंकी बचत होगी। जिस सेवाका पुरस्कार उसके साथ जुड़ा हुआ रहता है, ऐसी असन्दिग्ध यही एक सेवा है। यदि हम सरपरस्तीका भाव लेकर जनताके बीच सेवा करने जायें, तो यह सेवा असम्भव है। हम जब स्वयं उनके बीच खद्दर पहनकर जायें, तभी उनसे खद्दर पहननेके लिए कह सकते हैं और तभी उनकी ऐसी सेवा कर सकते हैं। यदि हम खुद आज ही कताई शुरू नही करते तो जनता चरखेकी ओर आकर्षित नहीं होगी। और चूंकि हमने चरखा चलानेकी कला भुला दी है, इसलिए हम जबतक चरखे-जैसे सीधे-सादे यन्त्रकी सभी बारीकियोंको समझ नहीं लेते और चरखेकी सँभाल और मरम्मतमें सिद्धहस्त नही बन जाते, तबतक मनुष्यके लिए जनतातक चरखेका सन्देश पहुँचाना असम्भव है। केवल यही एक सेवा ऐसी है जिसमें हमारा एक भी प्रयत्न बेकार नही जाता। इसमें निराशाकी गुंजाइश ही नहीं है। जैसे किसान द्वारा उपजाई हुई छोटीसे-छोटी चीज भी देशकी सम्पदाकी अभिवृद्धि करती है, वैसे ही देशकी खातिर काता हुआ एक-एक गज सूत देशकी सम्पदाकी अभिवृद्धि करता है। उससे चाहे एक पाई भी मिले, वह करोड़ोंकी तादादमें भूखों मरती जनताकी जेबमें ही पहुँचती है। इसीलिए मैं विनम्रतापूर्वक आशा करता हूँ कि आप (श्री टी० वी० शेषगिरि अय्यरकी ओर

मुड़कर) कार्यकर्त्ताओंकी इस टोलीके नेताकी हैसियतसे इस समस्याके सभी पहलुओंका अध्ययन करेंगे और अपनी सारी सूझ-बूझ और बुद्धि इसे हल करनेमें लगायेंगे। मुझे यह भी पक्का भरोसा है कि इस अध्ययनके फलस्वरूप आप भी महान् प्रफुल्लचन्द्र रायकी तरह इसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि भारतकी मेहनतकश जनताका उद्धार केवल चरखेसे ही हो सकता है।

आज मेरे पास काम बहुत और समय थोड़ा है। मेरे जेलरने मुझपर एक बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम लाद दिया है। ये जेलर तो यरवदाके जेलरसे भी अधिक कठोर काम लेनेवाले हैं। (हँसी)। मैं आपके सम्मुख समाज-सेवाकी कई और शाखाओंकी भी चर्चा करना चाहता था। पर मैं चरखेके इस सन्देशपर ही बस करता हूँ। आशा है कि मुझे अगली बार जब आपसे मिलनेका अवसर मिलेगा तब आप सभी सिरसे पैर-तक खद्दर पहने दिखाई पड़ेंगे। मैं आपको अपनी लीग द्वारा किये गये कार्यके लिए फिर बधाई देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०१. भाषण: मद्रासकी महिला सभामें[1]

२२ मार्च, १९२५

बहनो और मित्रो,

इस सुन्दर अभिनन्दन-पत्रके लिए मैं आपका आभारी हूँ। इस कताई-प्रतियोगिता-के सिलसिलेमें यहाँ आकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। लेकिन एक बातसे मुझे दुःख पहुँचा है और उसे मैं आपसे छिपा नहीं सकता। वह यह है कि यहाँ बहुत-सी बहनें ऐसी हैं जो खद्दर नहीं पहने हैं। भारतकी स्त्रियोंकी मुट्ठीमें ही इस देशका भाग्य है। जबतक भारतीय स्त्रियाँ, पुरुषोंके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर पूरी शक्तिसे काम नहीं करतीं, तबतक वह स्वराज्य स्थापित नहीं किया जा सकता, जिसका मैं स्वप्न देखता हूँ। स्त्रियोंकी सभाओंमें मैंने स्वराज्यको रामराज्य कहा है और देशमें जबतक हजारों सीता पैदा नहीं होतीं, तबतक रामराज्य होना असम्भव है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि राम और सीताके जमानेमें हाथ कते और हाथ बुने वस्त्र खद्दरके अतिरिक्त दूसरा कोई वस्त्र ही नहीं होता था। सीता आपकी तरह विदेशी वस्त्रोंमें सजकर देश-भरमें नहीं घूमी थीं। सीताके लिए तो अपनी सज्जाके लिए अपने देशमें तैयार वस्त्र पर्याप्त था। यह तो भारतकी आधुनिक स्त्रियाँ ही हैं, जो मुझसे कहती हैं कि खद्दर इतना मोटा-झोंटा और खुरदरा है कि वे उसे नहीं पहन सकतीं। लेकिन क्या आप जानती हैं कि आपके खद्दर पहनना बन्द कर देनेसे हमारे सैकड़ों भाई-बहिन गरीब हो गये हैं। आप

१. श्रीमती चिन्नास्वामी आयंगार द्वारा भेंट किये गये मूल तमिल अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें गांधीजीने अंग्रेजीमें भाषण दिया था। उसका वाक्यशः तमिल अनुवाद श्री एस० श्रीनिवास आयंगरने किया था।

खाते-पीते घरोंकी हैं, इसलिए १८ हाथकी साड़ियाँ पहनकर मजेमें सामाजिक समारोहोंमें और इधर-उधर आ-जा सकती हैं। पर आप यह भी याद रखें कि गाँवोंमें रहनेवाली आपकी बहनोंको साड़ियाँ तो क्या, पेट-भर भोजनतक नहीं मिलता। यह मैं आपसे बिलकुल सच कह रहा हूँ, मैंने खुद अपनी आँखोंसे ऐसी हजारों नहीं तो सैकड़ों बहनें तो देखी ही हैं, जो वस्त्रोंके अभावमें चिथड़ोंसे अपना तन ढकती हैं।

इसलिए मैं उन बहनोंके तथा धर्म और ईश्वरके नामपर आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप जिन विदेशी वस्त्रोंको काममें ला रही हैं उन्हें त्याग दें और खद्दरकी साड़ियाँ, जैसी भी मिल सकें पहनें। खद्दरको सस्ते दामोंमें सुलभ बनाने और अपनी पसन्द-लायक महीन साड़ियाँ प्राप्त करनेके लिए आप रोज कमसे-कम आधा घण्टा कताई करें और अपना कता हुआ सूत देशको दें। इससे खद्दर सस्ते दामोंमें सुलभ हो सकेगा। आप सबने पिछवाड़ेके बड़े कमरेमें बहनोंको सूत कातते देखा ही होगा। यदि न देखा हो, तो मैं अनुरोध करता हूँ कि आप दस-दसकी टोलियाँ बनाकर सूतकी कताई देखें। इसे अभी कोई बड़ा जमाना नहीं गुजरा है जब हमारे यहाँ हर घरमें जैसे आज चूल्हा रहता है वैसे ही एक चरखा भी रहता था। चरखेको अपने घरोंसे निकालकर हमने अपनी कमसे-कम एक-चौथाई आमदनीका रास्ता बन्द कर लिया है। मैं फिर आपसे आग्रह करता हूँ कि आप चरखेको पुनः उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करें। आपके यहाँ आनेसे मुझे बहुत खुशी हुई है। लेकिन यदि आप इन सभाओंमें विदेशी वस्त्र पहनकर आती रहीं तो वह मेरे लिए अत्यन्त पीड़ाजनक और असहनीय बन जायेगा। अपनी ही आवाज सुननेकी मेरी कोई इच्छा नहीं। मैं सभाओंमें आकर भाषण इसलिए करता हूँ कि मुझे अब भी यह आशा बनी हुई है कि मेरे कुछ शब्द तो श्रोताओंके हृदयोंमें उतर ही जायेंगे। ईश्वर करे, आज शाम यहाँ कहे गये मेरे शब्द आपके मनपर ऐसा ही प्रभाव डालें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०२. भाषण : 'हिन्दू' कार्यालयमें[1]

२२ मार्च, १९२५

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

मुझे जब इस चित्रका अनावरण करनेके लिए आमन्त्रित किया गया था तब मैंने उत्तर देते हुए कहा था कि इसे मैं अपना सम्मान मानूँगा। अब मुझे दुहरा सम्मान महसूस हो रहा है। एक तो इसलिए कि आपने मुझे स्वर्गीय श्री कस्तूरी रंगा आयंगरके चित्रका अनावरण करनेका सौभाग्य प्रदान किया है; और दूसरे इसलिए कि यह अनावरण मैं एक ऐसे व्यक्तिकी अध्यक्षतामें कर रहा हूँ जिसके प्रति मेरा

१. एस० कस्तूरी रंगा आयंगरके चित्रके अनावरणके अवसरपर वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीकी अध्यक्षतामें दिया गया।

प्रेमभाव है और जिनका मैं सम्मान करता हूँ। आमन्त्रणकर्त्ताओंने इस समारोहमें किसी दल विशेपको नहीं, बल्कि सभी दलोंको आमन्त्रित करके बहुत बुद्धिमानीका परिचय दिया है।

मेरा खयाल है कि श्री कस्तूरी रंगा आयंगरसे मेरा परिचय पहले-पहल १९१५ में हुआ था। मैं कह सकता हूँ कि उन दिनों मैं अखबार बहुत-कुछ नियमित रूपसे पढ़ता था। आज मैं उतने नियमसे नहीं पढ़ता (हँसी)। इन अखबारोंमें से एक 'हिन्दू' भी था; और उसका महत्व मैं तभीसे समझने लगा था। मैं मानता हूँ कि श्री कस्तूरी-रंगा आयंगर भारतीय पत्रकारिताके कुछ श्रेष्ठ गुणोंके प्रतिनिधि थे। मैं जानता हूँ कि उनकी अपनी एक अलग ही शैली थी। उनकी व्यंगोक्तियाँ भी अपने ढंगकी अनूठी होती थीं। वे चाहे मित्रके रूपमें लिखते, चाहे विरोधीके रूपमें — उनकी शैलीकी प्रशंसा सभीको करनी पड़ती थी। वे कभी-कभी अपने प्रतिपक्षियोंपर बड़े तीखे और सीधे प्रहार करते थे। ये प्रहार यद्यपि उनको उस समय कटु लगते थे; लेकिन उनमें सदा ही बहुत-कुछ सचाई दिखाई पड़ती थी, क्योंकि श्री आयंगरकी शैली अत्यधिक विवेकयुक्त लगती थी। मैं समझता हूँ कि उनके बारेमें बहुत-कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अपने देशके प्रति उनकी आस्था अडिग थी। हालांकि उनकी आलोचना सदा ही विनम्रतापूर्ण रहती थी, फिर भी वे सरकारके अत्यन्त निर्भय आलोचक थे।

मुझे कई मौकोंपर उनसे मतभेद भी रखना पड़ता था पर मैं उनके निर्णयकी हमेशा कद्र करता था, क्योंकि उससे मैं इतना जरूर समझ जाता था कि मेरे तर्क या दृष्टिकोणमें कहाँ कमजोरी है। मुझे ऐसा कोई भी मौका याद नहीं आता जब उनकी दलीलमें कुछ-न-कुछ सार न रहा हो। और तुलना की जाये तो मैं कहूँगा कि अक्सर मुझे लगता था कि मद्रास अहातेमें उनका स्थान वही है जो इंग्लैंडमें 'लन्दन टाइम्स' के सम्पादक का है। (तालियाँ) और बात ऐसी है कि मैंने श्री कस्तूरी रंगा आयंगर-को निरा सुधारक तो कभी नहीं माना। उन्होंने पत्रकारिताका जो उद्देश्य समझा, उसकी सेवामें अपनी सारी प्रतिभा लगा दी। (हर्ष ध्वनि)। तदनुसार वे महसूस करते थे कि यदि उन्हें इसी रूपमें काम करना है, तो उनको देशके नेतृत्वकी, कमसे-कम हर मामलेमें नेतृत्व करनेकी कोशिश तो नहीं करनी चाहिए; उन्हें तो देशकी जनताकी रायको ही हमेशा सही रूपमें पेश करना चाहिए।

'हिन्दू' के नियमित पाठकोंने अवश्य ही महसूस किया होगा कि उन्हें जब भी उसकी सम्पादकीय नीतिमें कोई परिवर्तन हुआ दिखा, तो वह इसलिए हुआ कि देश किस तरफ जा रहा है, या हवाका क्या रुख है इसको रंगा अच्छी तरह पहचान पाते थे। लोग कह सकते हैं कि यह उनकी खामी थी, पर मैं इसे खामी नहीं मानता। (श्री सी० आर० रेड्डी द्वारा हर्षध्वनि)। अगर उन्होंने सुधारकका काम अपने ऊपर ले लिया होता, जैसा कि मैंने किया है, तो उनको जनताके सामने अपनी निजी राय रखनी पड़ती। फिर सारा देश उसके बारेमें भले ही कुछ भी क्यों न सोचता। मैं समझता हूँ कि देशके जीवनमें एक दौर ऐसा भी आता है; लेकिन यह पत्रकारका खास काम नहीं है। पत्रकारका खास काम तो देशकी जनताके मनोभावको समझना और उसे निश्च-यात्मक शब्दोंमें निर्भयताके साथ व्यक्त करना ही है। और मेरा खयाल है कि जहाँ-

तक इस गुणकी बात है, श्री कस्तूरी रंगा आयंगर अपना कोई सानी नहीं रखते थे (तालियाँ)।

इतना ही नहीं। मैंने 'हिन्दू' में एक और भी विशेषता देखी है। पूरा समाचार पानेके उत्सुक पाठक भी उसके समाचारोंसे संतुष्ट हो जाते हैं (हर्षध्वनि), क्योंकि श्री कस्तूरी रंगा आयंगर देशमें होनेवाली घटनाओंके विषयमें पाठकोंको जो-कुछ दिया जाना चाहिए, वह सभी कुछ दे देते थे। और उन्होने काट-छाँटकी कला भी सीख ली थी। मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ कि काट-छाँट करना भी एक कला है। उनके संक्षिप्त समाचार सचमुच प्रशंसनीय होते थे। और चूँकि उनकी रुचि अत्यन्त व्यापक थी, इसलिए 'हिन्दू' के पाठकोंको, जहाँतक संसारके समाचारोंका सम्बन्ध है, फिर कोई दूसरा अखबार पढ़नेकी जरूरत नहीं रहती थी। वे संसार-भरके समाचारपत्रोंको छान डालते, सभी पत्रों और पत्रिकाओंमें से सर्वोत्तम अंशोंके उद्धरण लेते और उनको अपने पाठकोंके सामने आकर्षक ढंगसे पेश कर देते थे। इसलिए यदि मद्रास अहातेमें रहनेवाला कोई भी मनुष्य 'हिन्दू'को पढ़ लेता और उसके जवाबमें निकलनेवाले 'मद्रास मेल' को भी देख लेता तो फिर उसे किसी भी प्रश्नके दोनों पहलुओंकी पूरी जानकारी मिल जाती। मेरी समझसे तो श्री कस्तूरी रंगा आयंगरकी पत्रकारिताकी सारी विशेषता इसीमें आ जाती है। और यह कहनेके बाद मुझे लगता है कि मैं उनकी पत्रकारिताकी जितनी प्रशंसा कर सकता था, उतनी मैंने कर दी है।

मैं 'हिन्दू' को उन गिने-चुने समाचारपत्रों — उन थोड़ेसे दैनिक पत्रों — में गिनता हूँ जिसके बिना सचमुच काम नहीं चल सकता; (तालियाँ) अतः श्री कस्तूरी रंगाकी मृत्युसे जो उसकी क्षति हुई है, वह दक्षिण भारतमें ही नहीं उत्तर भारतमें भी अनुभव की जायेगी। क्योंकि मद्रास अहातेमें तो पत्रोंके पाठकोंपर श्री कस्तूरी रंगाका प्रभाव अनुपम था ही तथापि समस्त भारतके सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंपर भी उनका प्रभाव कुछ कम नहीं था। वे हमेशा यह जानना चाहते थे कि किसी भी प्रश्न-विशेषके बारेमें 'हिन्दू' का मत क्या है। इसलिए मुझे जेलमें यह जानकर बड़ा सदमा पहुँचा कि श्री कस्तूरी रंगा आयंगर अब नहीं हैं। मैं सदा अनुभव करता था कि उचित सार्वजनिक अवसर मिले तो मैं उसमें सार्वजनिक रूपसे अपना दुःख प्रकट करूँ। इसलिए मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मुझे एक ऐसे व्यक्तिके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनेका गौरव दिया गया है जिसका मैं अत्यधिक सम्मान करता था। यद्यपि उनसे बहुत बार मेरा मतभेद हो जाता था और वे कर्त्तव्यभावसे जब भी जरूरत पड़ती थी अपना मतभेद प्रकट करनेमें जरा भी हिचक नहीं दिखाते थे। उनको जब भी लगता था कि देशके हितकी दृष्टिसे उनके लिए अपना विचार जोरदार शब्दोंमें व्यक्त करना जरूरी हो गया है, और उसके बिना कोई चारा नहीं है, तब वे व्यक्तियों और उनकी भावनाओंको अपने आड़े नहीं आने देते थे। ऐसे थे श्री कस्तूरी रंगा आयंगर।

मैं आपको बतला चुका हूँ कि इधर कई वर्षोंसे मैं अखबारोंको नियमित रूपसे नहीं पढ़ पाता। पर मैंने सुना है कि 'हिन्दू' के वर्तमान सम्पादक और श्री कस्तूरी रंगा आयंगरके सुपुत्र अपने प्रख्यात प्रधान सम्पादककी नीति और परम्पराओंका ही सावधानीसे अनुगमन कर रहे हैं। आशा है कि 'हिन्दू' फले-फूलेगा और ठीक उसी

प्रकार देशकी सेवा करता रहेगा जिस प्रकार श्री आयंगरके सम्पादकत्वमें लम्बे अर्सेसे करता आ रहा है। लोकमतको व्यक्त और प्रचारित करनेमें पत्रकारिताका एक अपना विशिष्ट स्थान है। हम अभी अपने देशमें पत्रकारिताकी सर्वोत्तम परम्पराएँ बना रहे हैं या कहना चाहिए कि हमें अभी बनानी हैं। हमारे यहाँ कई अत्यन्त सुयोग्य पत्रकार हैं। हम उनका अनुसरण कर सकते हैं। हमारे देशमें बहुत पहले क्रिस्टोदास पाल[1] जैसे देशभक्त भी हो चुके हैं। जिन दिनों निर्भयताके साथ अपने विचार व्यक्त करना या लिखना बहुत ही कठिन था, उन दिनों उन्होंने लोकमतका नेतृत्व किया था और उन्होंने खुद जो भी महसूस किया तथा देशने जो-कुछ कहा उसे व्यक्त करनेमें कभी कोई हिचक नहीं दिखाई थी। इसलिए हमारे सामने इतनी श्रेष्ठ परम्पराएँ हैं, जिनका हमें अनुसरण करना है। फिर भी मुझे पत्रकारिताका जो-थोड़ा-बहुत अनुभव है उसके आधारपर मैं खयाल करता हूँ कि अभी हमें बहुत-कुछ करना है। मैं जानता हूँ कि हम अपने ध्येयकी ओर जैसे-जैसे आगे बढ़ते जायेंगे, पत्रकारिता हमारे देशके भाग्यके निर्माणमें तैसे-तैसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती जायेगी।

मैं इसीलिए अपने परिचित पत्रकारोंसे हर अवसरपर यही बात कहता रहता हूँ कि अपने स्वार्थ साधन करने या केवल अपने जीविकोपार्जन करने या उससे भी बुरी बात धन-संचय करनेके लिए पत्रकारिताका दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए। पत्र-कारिता देशके लिए तभी उपयोगी और कारगर होगी और अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी जब वह निःस्वार्थ भावसे चलाई जायेगी, जब उसकी अधिकांश शक्ति सम्पादकों या स्वयं पत्र-पत्रिकाओंपर आनेवाली किसी भी विपत्तिका विचार किये बिना देशकी सेवामें लगेगी और जब सम्पादक परिणामोंकी परवाह छोड़कर देशकी जनताके विचारोंको व्यक्त करेंगे। मैं समझता हूँ कि हमारे देशमें इस तरहकी पत्रकारिता पनप रही है। 'हिन्दू' भी उन चन्द समाचारपत्रोंमें से एक है, जो इसे अंजाम दे सकते हैं। उसने अपनी एक विशेष प्रतिष्ठा बना ली है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि 'हिन्दू' के वर्तमान प्रबन्धक और सम्पादक अपनी सर्वोत्तम परम्पराओंका अनुसरण करते रहेंगे और यहाँ मैं यह भी कह दूँ कि अपनी विरासतको और शानदार बनानेका तरीका उसे ज्योंकी-त्यों बनाये रखना नहीं, बल्कि उसे अधिक समृद्ध बनाना है।

मेरा खयाल है कि इजाफा करनेकी, नये विचारोंकी हमेशा गुंजाइश रहती है और इसीलिए मुझे उम्मीद रखनी चाहिए कि सम्पादक मण्डल इस बातको स्वीकार करेगा कि भारतमें तेजीसे पाठकोंका एक नया वर्ग ऐसा पैदा हो रहा है जो बिलकुल ही भिन्न प्रकारके विचार, कार्य और कदाचित् समाचार भी चाहता है। यह नया वर्ग जनतामें से खड़ा हुआ है। आपको शायद मेरी बातपर विश्वास हो जायेगा। मैंने देश-भरमें घूम-घूमकर खुद देखा है कि भारतकी जनतामें अधिक अच्छी व्यवस्थाके लिए एक स्पष्ट आकांक्षा पैदा हो गई है। वह अपने लिए एक अधिक अच्छी व्यवस्था चाहती है। पत्रकार अभीतक भारतकी महान् जनताकी सेवा नहीं कर पाये हैं; अतः यदि वे उसके हृदयमें सचमुच बैठना चाहते हैं — तो उन्हें एक बिलकुल

१. (१८३४-१८८४); प्रमुख राजनीतिज्ञ; हिन्दू पैट्रियटके सम्पादक।

दूसरा ही मार्ग ढूंढ़ना होगा, दूसरी ही नीति अपनानी होगी। आप मुझसे यह उम्मीद तो अवश्य ही नही करेंगे कि मैं यह भी बताऊँ कि वह नीति क्या होनी चाहिए। अगर इसका निर्णय मुझपर छोड़ दिया जाये तो आप जानते ही हैं कि वह नीति क्या होगी या क्या होनी चाहिए। मै इन विचारोंको सिर्फ आपपर छोड़ता हूँ।

मैं इन शब्दोंके साथ सम्पादक महोदय और श्री कस्तूरी रंगा आयंगरके सुपुत्रोंको इस विशिष्ट सम्मानके लिए एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ, विशिष्ट इसलिए कि मुझे इस चित्रका अनावरण करनेका सौभाग्य मिला। (जोरसे देरतक तालियाँ)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०३. भाषण : मद्रासकी सार्वजनिक सभामें[1]

२२ मार्च, १९२५

सभापति महोदय और मित्रो,

जिन महानुभावों और संस्थाओंने मुझे ये अभिनन्दन-पत्र दिये है, मै उन सभीका आभारी हूँ। सभापति महोदय,[2] आपने हिन्दू-मुसलमान एकताके प्रश्नकी चर्चा कुछ विस्तारसे की है। मैं आपके द्वारा व्यक्त किये गये भावोंकी पुष्टि करता हूँ। अगर हिन्दू और मुसलमान समझदारीके साथ अपने बीच स्वयं एकता कायम नहीं करेंगे तो उनको ऐसा मजबूरन करना होगा, क्योंकि कोई भी एक दल इस देशका नेतृत्व नही कर सकता। जबतक देशमें थोड़ेसे भी हिन्दू और मुसलमान ऐसे हैं जो सभी जातियों-की एकतामें सर्वोपरि आस्था रखते है, तबतक मुझे पूरी आशा है कि हम सबमें एकता, हार्दिक एकता होगी। कांग्रेसको समाजसेवी संस्था या कताई-संस्था माना जाये तो मुझे खुद अपनी तरफसे इसमें कोई आपत्ति नही है, क्योंकि यदि हम सामाजिक और आर्थिक कहे जानेवाले मसलोंकी उपेक्षा करेंगे तो कोई भी यह देख ले सकता है कि स्वराज्य हासिल करना नामुमकिन है। लेकिन साथ ही कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था भी है, क्योंकि स्वराज्य दल कांग्रेस संगठनका एक अविभाज्य अंग है; और कांग्रेस राजनीतिक महत्वाकांक्षाकी पूर्तिकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक कांग्रेसीको स्वराज्य दलके जरिये उसकी चरम पूर्तिका अवसर देती है। लेकिन जहाँतक मेरा सवाल है, कमसे-कम फिलहाल मेरी राजनीति चरखेसे आगे नहीं जाती। उसका चक्र इतनी तेजीसे और ऐसे निश्चित भावसे घूमता है कि उसकी गतिमें अन्य सभी गतिविधियाँ आ जाती हैं। चरखेका काम सभी जातियोंके बीच एकता स्थापित करने और अस्पृश्यता-निवारणके कामके साथ मिलकर एक ऐसी आधारशिला प्रस्तुत कर देता है जिसपर

१. यह भाषण गुजराती सेवक मन्दिर, अमरबाला विलासिनी सभा और तिलक घाट (ट्रिप्लीकेन बीच) स्थित नौरोजी-गोखले संघ द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

२. याकूब हसन।

आप किसी भी राजनीतिक या राष्ट्रीय भवनका निर्माण कर सकते हैं। अस्पृश्यता-निवारणके बिना तो आप जिस भवनका भी निर्माण करेंगे, वह रेतपर बने मकानकी तरह ढह जायेगा। इसलिए आपका ध्यान कुछ देरतक वाइकोम सत्याग्रहकी ओर आकर्षित करनेके लिए मुझे कोई सफाई देनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

आपमें से जो लोग अखबार पढ़ते हैं, उन्होंने शायद मेरे त्रावणकोरके दौरेके बारेमें सब-कुछ पढ़ा होगा। मुझे पूरी-पूरी उम्मीद है कि कट्टरपन्थी हिन्दुओंके पूर्वग्रहकी दीवार सुदृढ़ और संगठित लोकमतके आगे ढह जायेगी। मेरी अपनी राय यह है कि त्रावणकोर-सरकार सुधारके खिलाफ नहीं है। अस्पृश्यता एक ऐसा अभिशाप है जिसे शीघ्रसे-शीघ्र दूर करना हर हिन्दूका कर्त्तव्य है। मैंने अस्पृश्यताका बुरेसे-बुरा स्वरूप देखा है। अन्त्यजोंका सवर्णोके पास आना ही नहीं, उनकी निगाहके सामने आना भी अनुचित माना जाता है। धर्मान्ध लोग, कुछ लोगोंको देखनातक पाप समझते हैं नयाडी लोगोंके लिए तो यह आवश्यक होता है कि वे सवर्णोकी नजरके सामने भी न आयें। मैंने त्रिचूरमें इस जातिके दो मनुष्य देखे थे जिनकी देह तो मनुष्यकी थी और फिर भी वे मनुष्य नहीं थे। (हँसी) भाइयो, यह हँसनेकी बात नहीं, बल्कि खूनके आँसू बहानेकी बात है। आँखोंके नामपर वहाँ मात्र दो गड्ढे थे। अगर उनके साथ मानवीयताका बर्ताव किया जाता तो उनके आँखें हो सकती थीं। आप लोगोंकी आँखोंमें जैसी चमक दिखाई देती है, वैसी चमक उनकी आँखोंमें नहीं थी। उनको आकर मुझे मानपत्र भेंट करने थे। लेकिन उनको गाड़ीतक हाथोंमें उठाकर लाना पड़ा था और वे अपने काँपते हुए हाथोंसे मानपत्र पकड़े हुए थे। मैंने उनको चेतन करनेकी और उनके चेहरोंपर थोड़ी खुशी लानेकी कोशिश की। लेकिन मैं कतई कामयाब नहीं हो सका। वे मानपत्रोंको मुझे पकड़ा नहीं पाये। मुझे स्वयं आगे बढ़कर उनके हाथोंसे उन्हें लेना पड़ा। फिर उन लोगोंको, जैसे वे लाये गये थे वैसे ही, उठाकर वापस ले जाना पड़ा। अगर हममें पर्याप्त विचारशक्ति हो और अगर हमारे दिलोंमें अपने देश या धर्मके लिए पर्याप्त प्रेम हो, तो हम जबतक देशको इस अभिशापसे मुक्त नहीं कर लेते तबतक चैनसे न बैठें। यदि कोई मुझसे कहे कि शास्त्रोंमें किसी ऐसी बुराईका समर्थन है तो मुझे ऐसे शास्त्रोंकी जरूरत नहीं, लेकिन जिस प्रकार सभामें हमारी उपस्थितिकी बात निश्चित है उसी प्रकार मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि शास्त्रोंमें ऐसी किसी पैशाचिकताका प्रतिपादन या आदेश नहीं है। यह कहना कि जन्मके कारण कोई भी मनुष्य अस्पृश्य, अनुपगम्य या अदर्शनीय हो जाता है, ईश्वरकी सत्ता माननेसे इन्कार करना है। मैं इसीलिए आपसे कहता हूँ कि त्रावणकोरके सत्याग्रही जो साहसिक संघर्ष चला रहे हैं, आप सार्वजनिक सभाओं और अन्य सभी वैध तरीकोंके जरिये लोकमत जगाकर उसका समर्थन करें। मैं पंजाबसे कन्याकुमारीतक और असमसे सिन्धतकके हिन्दुओंको इस एक बातपर एकमत कर सकूँ तो अवश्य करूँगा।

अभी-अभी एक सज्जनने मुझे एक पर्चेमें इस विषयमें कुछ प्रश्न लिखकर भेजे हैं।

मैं बड़ी खुशीसे उनके उत्तर देता हूँ। उन्होंने पूछा है कि यदि अछूतोंको सड़कोंका इस्तेमाल करनेकी इजाजत दे दी जाये तो क्या आप उसके बाद सभी हिन्दुओं-

की तरह हिन्दू मन्दिरोंमें प्रवेशकी उनकी माँगका समर्थन करेंगे? मुझे तो इस समय इस प्रश्नके पूछे जानेपर आश्चर्य हो रहा है। मैं इसके उत्तरमें जोर देकर कहता हूँ — हाँ। मैं तो कहता हूँ कि अछूतोंके लिए सब सार्वजनिक सड़कें ही नहीं खुली होनी चाहिए, बल्कि ब्राह्मणोंके लिए खुले सब मन्दिर भी उनके लिए खुले रहने चाहिए; और वे सभी सार्वजनिक स्कूल, जिनमें अब्राह्मण और अन्य लोगोंके बच्चे दाखिल किये जाते हैं और सभी सार्वजनिक स्थान, जैसे कुएँ या यात्रियोंके बंगले या आम लोगोंके लिए अन्य सभी स्थान अछूतोंके लिए भी उसी तरह खुले रहने चाहिए जैसे कि हम सबके लिए खुले रहते हैं। जबतक ईश्वरकी धरतीके इस खण्डपर यह एक सीधा-सा और बुनियादी मानवीय अधिकार हर मनुष्यके लिए सुनिश्चित नहीं बना दिया जाता तबतक मैं समझता हूँ कि अस्पृश्यताके बारेमें मेरी माँग अपूर्ण ही है। यह जितना अछूतोंका अपना हक है, उससे ज्यादा हम सवर्ण हिन्दुओंका उनके प्रति कर्त्तव्य है। अस्पृश्यों और समस्त संसारके प्रति हमने जो पाप किये है उनका यह कमसे-कम प्रायश्चित्त है। किन्तु आप मेरी बातका अर्थ गलत न लगाएँ। मैं इस अधिकारको सत्याग्रहके बलपर इसी समय प्राप्त करना नहीं चाहता। वाइकोम सत्याग्रह तो अस्पृश्योंके लिए खास-खास सड़कोंके खुलते ही बन्द हो जायेगा। मैं महसूस करता हूँ कि मन्दिरोंके प्रश्नपर हमारे खिलाफ पूर्वग्रहकी एक भारी और ठोस दीवार खड़ी हुई है, हालाँकि यह अनुचित है। यह बुराई हिन्दू जातिको सत्वहीन बनाती जा रही है, फिर भी मैं इसका उन्मूलन करनेके लिए किसी भी रूपमें हिंसाका प्रयोग करनेके पक्षमें नहीं हूँ। लेकिन यह बात भी बिलकुल निश्चित है कि जबतक अछूतोंके लिए यह पूरा अधिकार सुनिश्चित नहीं कर दिया जाता और जबतक अस्पृश्य और अदर्शनीय शब्द ही कोषसे नहीं निकाल दिये जाते, तबतक प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है कि वह दम न ले।

इस भाईने दूसरे प्रश्नमें मुझसे पूछा है कि सनातनी हिन्दूकी परिभाषा क्या है; और क्या सनातनी हिन्दू ब्राह्मण किसी माँसाहारी अब्राह्मण हिन्दूके साथ बैठकर भोजन कर सकता है? मेरी परिभाषाके अनुसार सनातनी हिन्दू वह है जो हिन्दू धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोंमें विश्वास करे और हिन्दू धर्मके मूलभूत सिद्धान्त है — सत्य और अहिंसामें पूर्ण आस्था। 'उपनिषदों' ने कहा है और 'महाभारत' ने ऊँचे स्वरमें घोषित किया है कि "यदि तुम अपने सारे राजसूय और अश्वमेघ यज्ञोंको और अपने सारे सुकृतोंको तराजूके एक पलड़ेमें और सत्यको दूसरे पलड़ेमें रखो तो सत्यका पलड़ा भारी बैठेगा।" इसलिए जो भी चीज सत्य रूपी निहाईपर रखी जाने और अहिंसारूपी घनसे पीटी जानेपर टूट जाये और उस कसौटीपर खरी न उतरे, उसे अहिन्दू मानकर त्याग दो। इस भाईको और इसी प्रकारकी शंकाएँ रखनेवाले दूसरे भाइयोंको सनातनी हिन्दूकी अधिक विस्तृत परिभाषाके लिए 'यंग इंडिया' के पृष्ठ देखने चाहिए। मैंने बार-बार कहा है कि अन्तर्जातीय भोजों और अन्तर्जातीय विवाहोंका अस्पृश्यता-निवारणसे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि अन्तर्जातीय भोज या विवाह तो अपनी-अपनी पसन्दकी बात है और हर मनुष्यको उसे इसी रूपमें लेना भी चाहिए। यह

तो विलास या रुचिकी तृप्ति है; परन्तु अस्पृश्यताका मतलब तो अपने भाइयोंकी सेवासे पराङ्मुख होना है; जबकि सत्य और अहिंसाकी अपेक्षा है कि कोई भी मनुष्य किसी भी दूसरे मनुष्यको, चाहे वह कैसा ही पापी हो, अपनी सेवासे वंचित न करे।

इस भाईने वर्णाश्रम धर्मके बारेमें मेरे विचार पूछे हैं। मैं चार वर्णों और चार आश्रमोंमें विश्वास करता हूँ। हमने इन चारों वर्णोंकी व्यवस्थाको बिगाड़ दिया है और उनको उचित रूपमें न मानकर एकको दूसरेसे ऊँचा मान लिया है। हमने अपने तीन आश्रम तो बिलकुल समाप्त कर दिये हैं और चौथा गृहस्थाश्रम, बस नाम-मात्रका ही रह गया है। हमारी गिरावट और दुर्दशाका कारण यही है। ऋषियोंने हिन्दू धर्ममें अनुशासन और संयम लानेके लिए मनुष्यके जीवनको इन चार अवस्थाओंमें या आश्रमों-में बाँटा था। गृहस्थाश्रम बहुत वर्षोंके ब्रह्मचर्य-पालनका पूर्ण परिपाक है। हमारी आदत-सी बन गई है कि हम छोटी-छोटी बातोंको लेकर बेचैन हो जाते हैं और बड़ी-बड़ी बुराइयोंको पचा जाते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रमसे ही हिन्दू-धर्मको स्थिरता मिली है। यहाँतक कि वह युगोंसे चला आता है। अनेक सभ्यताएँ समाप्त हो गई हैं, किन्तु वह अबतक सुरक्षित है। अगर हम वानप्रस्थ और संन्यास दो अन्य आश्रमोंको भी पुनर्जीवित करते, अपना पूरा समय और मन राष्ट्रकी सेवामें लगाते और पूरे तौरपर राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बन जाते तो हमें यह विडम्बना न देखनी पड़ती, हमारा इतना पतन न होता और न हमारे सम्मुख बाल-विवाहों और बाल-विधवाओंके दुःखद प्रसंग ही आते। हम वर्णाश्रम धर्मका पालन केवल उनके सही अर्थोमें करें तो हम इतने कापुरुष न रहें। तब हम केवल ईश्वरका ही भय मानेंगे और किसी भी मनुष्यसे कभी न डरेंगे। आज हम एक-दूसरेसे डरते हैं, मुसलमानोंसे डरते हैं और अंग्रेजोंसे भी डरते हैं। हमने पूर्वजोंसे जो पौरुष पाया था, वह अब हममें नहीं रहा है और अब हम हाड़-माँसके पुतले-मात्र रह गये हैं।

उक्त भाईने आखिरी प्रश्न, जो असलमें पहला ही प्रश्न है, यह पूछा है कि "विधान परिषदोंके आगामी चुनावोंमें मतदाताओंका क्या कर्त्तव्य है? क्या आप मुझे मतदान न करनेकी सलाह देते हैं?" यह तो आसमानसे धरतीपर आ गिरने जैसा है। यदि मैं मतदाता होऊँ और इस अधिकारका प्रयोग करूँ तो मैं क्या करूँगा — यह मैं आपको बताता हूँ। मैं सबसे पहले उम्मीदवारोंकी भली-भाँति जाँच-पड़ताल करूँगा और यदि देखूँगा कि कोई भी उम्मीदवार सिरसे पैरतक खद्दर नहीं पहने है तो मैं किसीको भी मत न दूँगा; मतदान पत्रको हिफाजतसे अपनी जेबमें ही रखे रहूँगा। किन्तु यदि मुझे यह इत्मीनान हो जायेगा कि उनमें से कमसे-कम एक सज्जन ऊपरसे नीचेतक खद्दरधारी हैं तो मैं उनके पास जाकर उनसे पूरी विनम्रतासे पूछूँगा कि उन्होंने इसी अवसरके लिए खद्दर पहन रखा है या वे आदतन घर और बाहर सर्वत्र हाथकता और हाथबुना खद्दर पहनते हैं। अगर उनका उत्तर 'नहीं' में होगा तो भी मैं अपना मतदान पत्र जेबमें ही रखे रहूँगा। उनसे मैं फिर यह कहूँगा, "आप सदा खद्दर पहनते हैं, यह तो बहुत ही अच्छी बात है। लेकिन क्या आप जनताके लिए रोजाना कमसे-कम आधा घंटा कताई करते हैं?" उनके उत्तरसे बिलकुल पूर्ण

सन्तुष्ट हो जानेपर उनसे मेरा अगला प्रश्न यह होगा, "क्या आप हिन्दू-मुसलमान-पारसी-ईसाई-यहूदी एकतामें विश्वास करते हैं?" इस प्रश्नका उत्तर भी सन्तोपजनक मिले तो मैं पूछूँगा, "क्या आप हिन्दू है और क्या यह सभी जातियोंका सम्मिलित निर्वाचन-क्षेत्र है, जिसमें मैं हिन्दुओं, मुसलमानों और अन्य जातियोंके लोगोंको भी मत दे सकूँगा? कृपया यह भी बताएँ कि क्या आप उस अर्थमें अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास करते हैं, जिस अर्थमें मैंने उसे आपके सामने रखा है?" मैं एक बहुत ही महत्वाकांक्षी और उत्साही मतदाता हूँ। इसलिए मैं उनसे एक प्रश्न और पूछूँगा, "क्या आप मद्यपान-निषेध सम्बन्धी सुधारके पक्षमें हैं और क्या आप तुरन्त पूरी शराबबन्दी करानेके पक्षमें हैं, भले फिर उसके फलस्वरूप राजस्वमें कमी होनेके कारण सभी स्कूल बन्द क्यों न कर देने पड़ें?" अगर उनका उत्तर होगा — "हाँ," तो मैं आश्वस्त हो जाऊँगा और उनसे तुरन्त ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्यापर एक-दो अन्य प्रश्न पूछकर यह देख लूँगा कि उनके इस बारेमें भी ठीक विचार हैं तो मैं उनको मत दूँगा। मैं तो बस यही करूँगा। आप और भी पचासों प्रश्न पूछ सकते हैं। लेकिन मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप जबतक ये सब और कुछ अन्य प्रश्न भी पूछ न लें तबतक सन्तोष न करें।

अब मैं उस बातके बारेमें कुछ शब्द कहूँ जो मेरे मनमें सर्वोपरि है। इस समय तिरुपुरमें १०,००० चरखे और १,००० करघे चल रहे हैं। वहाँ बुनकर बहनोंमें तीन लाखसे कुछ ऊपर रुपये बाँटे जाते हैं। तमिलनाडके मन्त्री, श्री सन्तानमको शिकायत है कि आप लोगोंको जो खद्दर दिया जाता है, आप उसे नहीं खरीदते, और इसलिए उन्हें, चन्द पैसोंपर आठ घंटे रोज खुशीसे कताई करनेके लिए तैयार, कई बुनकर बहनोंको बिना काम दिये लौटा देना पड़ता है। उन्होंने मुझे बताया है कि एक उसी जिलेमें साल-भरमें लगभग ५० लाख रुपयेतक का खद्दर तैयार किया जा सकता है। इस अहातेके कई अन्य स्थानोंमें भी ऐसी ही स्थिति है। यहाँ यदि कुछ शंकालु अब्राह्मण लोग हों, तो मैं उनको बताये देता हूँ कि ये बुनकर और कतैये अब्राह्मण ही हैं। अकेले तिरुपुरमें ही ७५,००० रुपयेकी खादी संचित है। आपके यहाँके महा-मन्त्री श्री भरूचा आज आपसे कहने आये हैं कि आपको अपने देशभाइयोंकी खातिर सूत कातना और खद्दर पहनना चाहिए। वे अपने कन्धोंपर खद्दरकी गठरी लेकर जगह-जगह और घर-घर जायेंगे और आपसे कहेंगे कि आप अपने देशवासियोंकी ओर देखें। भगवानके लिए समय बर्बाद न करें, इसपर बहस न करें कि क्या खद्दर भारत-की नित्य बढ़ती हुई गरीबीकी भारी समस्याको हल कर सकता है या नहीं। मेरी बातपर विश्वास करें कि यदि हम इस एक समस्याको ही उचित रूपसे और पूरी तरह हल कर लें तो उससे हमारी वर्तमान हजारों असाध्य समस्याओंके हलका रास्ता खुल जायेगा। जन साधारणको खद्दर सस्ता मिले इसके लिए रोज कमसे-कम आप आधा घंटा सूत कातनेमें संकोच न करें। ईश्वरने चाहा तो मैं तीन महीने बाद यहाँ फिर आऊँगा। (हर्षध्वनि) जब मैं यहाँ आऊँ तब मुझे यह दुःखद स्थिति तो न देखनी पड़े कि आप तीन महीने बाद भी जहाँके-तहाँ ही खड़े हैं। मेरी प्रार्थना है

कि आप ऐसे प्रयत्न करें कि विभिन्न राष्ट्रीय भण्डारोंमें पड़ा सारा खद्दर खत्म हो जाये और इन तीन महीनोंमें आप ऐसे ढंगसे संगठित हो जायें कि खद्दरके उत्पादनमें लगे हुए कार्यकर्त्ता फिर कभी यह शिकायत न कर पायें कि वे खद्दरके खरीदार न मिलनके कारण अनेक बुनकरों और कतैयोंकी भूख नहीं मिटा सकते। मुझे आशा है कि आप ऐसा ही करेंगे। आप इस महानगरके बारेमें यह कहनेका अवसर न दें कि वह इस कसौटीपर कच्चा उतरा।

आपने धैर्य और शान्तिके साथ मेरा भाषण सुना; इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

कृपया जबतक मैं मुख्य सड़कपर न पहुँच जाऊँ तबतक आप सभास्थलको न छोड़ें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०४. भाषण: विद्यार्थियोंकी सभामें[1]

२२ मार्च, १९२५

मैं इस सुन्दर मानपत्रके लिए आपका आभारी हूँ। मैं अपने भ्रमणमें विभिन्न मतोंके हजारों विद्यार्थियोंसे मिला हूँ। मैंने उनके साथ राजनीतिपर ही नहीं, सभी तरहके मामलोंपर बातचीत की है। मैं आज भी उनके साथ पत्र-व्यवहार करता रहता हूँ, इसलिए मैं विद्यार्थी समाजकी महती आकांक्षाओंसे परिचित हूँ। मैं उनकी कठिनाइयोंका अनुभव करता हूँ और उनकी उमंगें क्या हैं यह जानता हूँ। आपने कहा है कि मुझे विद्यार्थी समाजकी ओरसे निराश नहीं होना चाहिए। मैं हो भी कैसे सकता हूँ? मैं खुद भी विद्यार्थी रह चुका हूँ और जहाँतक मेरा खयाल है मैंने मद्रासमें ही एक सभामें आपको "साथी विद्यार्थी" कहकर सम्बोधित किया था, लेकिन वह एक दूसरे अर्थमें था। यह सही है कि मैं अपनेको विद्यार्थी मानता हूँ और इसलिए मैं आपके साथ अपनी एकात्मता अनुभव कर सकता हूँ। विद्यार्थी सत्यशोधी होता है। मैं यहाँ विद्यार्थी शब्दका प्रयोग उसके संकुचित अर्थमें नहीं कर रहा हूँ। मैं विद्यार्थीका सिर्फ इतना अर्थ नहीं लगा रहा हूँ कि वह कुछ पुस्तकोंका अध्ययन करके, उनमें से कुछको याद करता है और कक्षाओंमें शिक्षकोंके व्याख्यान सुनकर परीक्षाएँ पास करता है। मैं समझता हूँ कि यह तो विद्यार्थियोंके कार्य या कर्त्तव्यका न्यूनतम भाग है। विद्यार्थी तो असलमें वह है जो अपनी अवलोकन-शक्तिका निरन्तर उपयोग करता है, उससे संसारके बारेमें सही निष्कर्ष निकालता है और जीवनमें अपने लिए एक मार्ग बनाता है। उसे जीवनमें अपने कर्त्तव्यकी बात पहले सोचनी चाहिए और अधिकार प्राप्तिकी बात पीछे। अगर आप अपना कर्त्तव्य पूरा करें, तो

१. 'गोखले हॉल' में मद्रास अन्तर्छात्रावास वाद-विवाद समितिकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

आपके अधिकार आपको मिलना उतना ही निश्चित है, जितना रातके बाद दिनका होना। विद्यार्थियोंको जीवनके अन्य पहलुओंकी अपेक्षा इस पहलूपर अधिक ध्यान देना चाहिए। मैं देशभरमें विद्यार्थियोंसे यही अनुरोध करता आ रहा हूँ कि वे स्कूलों और कालेजोंमें कुछ भी करें, पर यह बात हमेशा याद रखें कि वे देशके चुने हुए प्रतिनिधि हैं, और स्कूल-कालेजोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी देशके युवक समाजका एक बहुत ही छोटा-सा अंश है और वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थाके कारण हमारे देहातोंके लोग विद्यार्थी समाजके सम्पर्कमें बिलकुल ही नहीं आते। जबतक शिक्षाकी स्थिति ऐसी बनी रहेगी, तबतक मेरा विश्वास है कि विद्यार्थियोंका यही कर्त्तव्य बना रहेगा कि वे जनताके दिमागको समझें और जनताकी सेवा करें। जनताकी सेवा करने और उसके लिए अपने-आपको तैयार करनेके लिए आपको क्या करना चाहिए — इस सिलसिलेमें मैं आपको एक बड़ी सुन्दर बात सुनाता हूँ। यह बात श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने शान्ति-निकेतनके विद्यार्थियोंके बारेमें 'यंग इंडिया' के लिए लिखी थी।

महात्माजीने इस बातको सुनाते हुए बतलाया कि शान्तिनिकेतन आश्रमके कुछ छात्र जनताकी सेवा करनेके लिए पासके कुछ गाँवोंमें गये थे। लेकिन वे वहाँ सरपरस्तोंके रूपमें गये थे, सेवकोंके रूपमें नहीं। गाँवोंके लोगोंने उनकी बातोंके प्रति उत्साह नहीं दिखाया, इसलिए उन्हें शुरूमें तो निराशा हुई। उन्होंने गाँवोंके लोगोंसे कुछ काम करनेके लिए कहा था; किन्तु जब वे दूसरे दिन यह पता लगाने गये कि कितना काम हो चुका है तब उन्हें मालूम हुआ कि काम बिलकुल ही नहीं किया गया है। लेकिन छात्र जब खुद फावड़े और कुदाल लेकर काममें जुट पड़े, तब उन्होंने तुरन्त फर्क देखा। महात्माजीने आगे बताया कि छात्रोंने कैसे उन देहातोंमें चरखे चालू करवाये और गाँवोंके लोगोंने फिर कैसे उनके साथ हर सेवा-कार्यमें हाथ बँटाया। इसके बाद उन्होंने भारत सेवक समाजके डा० देवका उल्लेख किया। उनको चिकित्सा सम्बन्धी सेवाकार्यके लिए चम्पारनके पासके कुछ गाँवोंमें भेजा गया था। महात्माजी उन दिनों स्वयं भी वहाँ ग्रामीण जनताकी कुछ शिकायतें दूर करानेके लिए कार्य कर रहे थे। उन्होंने बताया कि डा० देव गाँवोंकी सफाई व्यवस्था और गन्दगी तथा रोग दूर करनेसे सम्बन्धित कुछ सुधार करके आदर्श गाँव तैयार करनेकी कोशिश कर रहे थे। उन्होंने आगे बताया कि डा० देवने कैसे गाँवोंकी जनताका सहयोग प्राप्त किया और कैसे खुद कुओंकी सफाई करके और घरोंकी गन्दगी दूर करके उन्हें सफाईके सिद्धान्तोंका पालन करना सिखाया। डा० देव और उनके सहयोगियोंको गाँवोंके लोगोंसे इस प्रकारके सेवाकार्योंमें तत्परतापूर्ण सहयोग मिला और गाँवोंके लोग शर्मिन्दा होकर डा० देव और उनके साथियोंकी सहायता करनेके लिए ही नहीं निकल पड़े, बल्कि यह भी जानना चाहा कि वे उन कामोंको खुद कैसे कर सकते हैं।

महात्माजीने छात्रोंको इन शब्दोंमें समाज सेवाकी तैयारी करनेका उपदेश दिया :

आपकी वास्तविक शिक्षा तो स्कूल-कालेज छोड़नेके बाद ही शुरू होती है। आप दिन-प्रतिदिन कक्षाओंमें कुछ बातें सीखते हैं; लेकिन उनको अमलमें लाना भी तो

आपको सीखना चाहिए। अक्सर होता यह है कि आपने वहाँ जो भी कुछ सीखा है वह आपको भुलाना पड़ता है, जैसे कि वे गलत-सलत अर्थशास्त्रीय विचार जो आपके दिमागोंमें ठूँसे गये हैं और इतिहासके झूठे तथ्य पढ़ाये गये हैं। इसलिए आपको अपनी अवलोकन-शक्तिका उपयोग करना है और उनकी तहमें जाकर असलियत समझनी है। राष्ट्र-सेवा और आपकी शिक्षाकी आधार-शिला शैक्सपियर, मिल्टन और अंग्रेजीके अन्य कवियों या कालिदास, भवभूति या अन्य संस्कृत कवियोंके अध्ययनपर नहीं रखी जा सकती। वह आधार-शिला तो सूत कातने और खद्दर बुननेपर ही रखी जा सकती है। मैं यह क्यों कहता हूँ? इसलिए कि आपको करोड़ों लोगोंके बीच काम करना है और आपको खेतीमें एक दानेकी जगह दो दाने पैदा करवाने हैं। यदि आप देशकी सम्पदा और उसके उत्पादनमें वृद्धि करना चाहते हैं तो विश्वास करें कि उसका एकमात्र उपाय चरखा ही है। कालिदास या रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कृतियाँ उच्च वर्गोंमें ही पढ़ी जाती हैं। मैं बंगालके जीवनसे परिचित हूँ और कह सकता हूँ कि वहाँ ये केवल उच्च वर्गोंमें ही पढ़ी जाती हैं। और सबसे बड़ी समस्या यही है कि उच्च वर्गों और जनसाधारणके बीच कड़ी कैसे कायम की जाये? गुजरात विद्यापीठमें हजारों विद्यार्थी हैं। उनके कल्याणका दायित्व मुझपर भी माना जाता है। मेरे लिए यह एक जटिल समस्या है। लेकिन मेरा खयाल है कि विद्यार्थियोंका वास्तविक कार्य उन बड़े-बड़े शहरोंमें नहीं है जहाँ वे शिक्षा पाते हैं, बल्कि गाँवोंमें है, जहाँ उन्हें अपनी शिक्षा समाप्त करके जाना चाहिए और अपनी शिक्षा द्वारा उपलब्ध सन्देशको वहाँ पहुँचाना चाहिए, जिससे गाँववालोंके साथ एक जीवन्त सम्पर्क स्थापित किया जा सके। मैं ऐसे किसी भी व्यक्तिकी बात नहीं मान सकता जो कहता है कि यह सम्पर्क उनकी अपनी शर्तोंपर ही स्थापित किया जा सकता है। गाँवोंके लोग रूखी-सूखी रोटी-भर चाहते हैं, वे एक व्यवस्थित ढंगका काम चाहते हैं, ऐसा काम जिसे वे खेतीके कामोंसे बचे हुए समयमें कर सकें, क्योंकि खेतीका काम बारहों महीने नहीं चलता। दोस्तो, आप अगर अपने जीवनके मुख्य कार्यके बारेमें गम्भीरतासे सोचें तो आप उसकी आधार-शिला इसी विचारपर रखें। मुझे भरोसा है कि आप ऐसा ही करेंगे (तुमुल हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०५. भाषण: मद्रासके मजदूरोंकी सभामें[1]

२२ मार्च, १९२५

मित्रो और साथी मजदूरो,

मैं आपके मानपत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं मद्रास साहित्य अकादमीके मानपत्रके लिए भी आभार प्रकट करता हूँ। आपको साथी मजदूर कहनेसे मेरा तात्पर्य यह है कि मैं भी अपने-आपको मजदूर मानता हूँ। मुझे अपने आपको कतैया, बुनकर, किसान और भंगी कहनेमें गर्वका अनुभव होता है। मेरे जैसे मनुष्यके लिए जहाँतक सम्भव है, वहाँतक मैंने अपना भाग्य आपके साथ जोड़ दिया है। मैंने ऐसा इसलिए किया है कि मेरा विश्वास है, भारतकी मुक्ति आपके जरिये ही होगी। मैंने ऐसा इसलिए भी किया है कि मैं महसूस करता हूँ कि भारतकी मुक्ति श्रम अर्थात् हाथ-पैरोंकी मेहनतके बलपर ही हो सकती है, किताबें पढ़नेसे या दिमागी कसरत करनेसे नहीं। मैंने महसूस किया है और दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक महसूस करता जा रहा हूँ कि मनुष्य शारीरिक श्रमसे ही अपनी शरीर-रक्षा करनेके लिए पैदा हुआ है। कतैयों, बुनकरों और अन्य मजदूरोंसे मैं जब मिलता हूँ तब उनसे यही कहता हूँ कि वे शारीरिक श्रम कभी बन्द न करें, बल्कि उसके साथ अपना बौद्धिक विकास भी करें। लेकिन मैं जानता हूँ कि श्रममें जो सुख मुझे मिलता है वह आपको नसीब नहीं है। आपमें से अधिकांशके लिए श्रम कष्टप्रद और सुखहीन है। श्रमके कष्टप्रद और सुखहीन होनेका आंशिक कारण यह है कि धनिक लोग आपके श्रमका शोषण करते हैं; लेकिन उसका मुख्य कारण यह है कि स्वयं आपमें कुछ दोष और त्रुटियाँ हैं। मेरे श्रमिक बननेका तीसरा कारण यह है कि मैं आपके ही धरातलपर रहता हुआ आपके दोषों और आपकी त्रुटियोंकी ओर आपका ध्यान आकर्षित कर सकूँ। आप जानते हैं कि मैं अहमदाबादमें व्यवहारतः हजारों मजदूरोंके साथ रह रहा हूँ। मुझे उनके रहन-सहनकी पूरी जानकारी है और मेरा खयाल है कि आप उनसे अधिक भिन्न नहीं हैं। वहाँ मैंने देखा है कि ये मजदूर, और शायद आप भी, शराब पीनेके आदी हैं। आपमें से अधिकतर लोग जुएमें अपना रुपया गँवा देते हैं। आप अपने पड़ोसीके साथ शान्तिसे नहीं रहते, बल्कि परस्पर झगड़ा करते रहते हैं। आप लोग एक-दूसरेसे जलते हैं। अक्सर आप अपना काम ईमानदारीसे पूरा नहीं करते। अकसर आप ऐसे लोगोंको अपना नेता बना लेते हैं, जो आपको सही रास्तेपर नहीं चलाते और मैं जानता हूँ कि वे आपके साथ किये जानेवाले हर अन्यायसे अधीर हो जाते हैं। आप लोग कभी-कभी सोचते हैं कि आप हिंसाका आश्रय लेकर उस अन्यायको मिटा सकते हैं। आपमें से जो भी लोग पंचम नहीं हैं, वे पंचम

१. सभामें चूलै कांग्रेस और मद्रास साहित्य अकादमीकी ओरसे मानपत्र भेंट किए गए थे। श्री एम० एस० सुब्रह्मण्यम् अय्यर गांधीजीके इस भाषणका तमिल भाषामें वाक्यशः अनुवाद करते गये थे।

भाइयोंसे नफरत करते हैं। आपके लिए रात्रिशालाएँ खोली भी जाती हैं तो आप उनमें जाते ही नहीं हैं। अगर आपके छोटे बच्चोंके लिए शालाएँ खोली जाती हैं, तो आप उनमें अपने बच्चोंको नहीं भेजते। अकसर आप समझते ही नहीं कि राष्ट्र क्या है। अक्सर आप राष्ट्रके लिए नहीं, बस अपने ही लिए जीते हैं और उसीमें सन्तोष मान लेते हैं। मैं ऐसा मजदूर न तो बनना चाहता हूँ और न कहलाना चाहता हूँ। आप अपने उन देश भाइयोंके बारेमें सोचते तक नहीं जो आपसे भी ज्यादा गरीब हैं और इसी कारण आप हाथकता और हाथबुना खद्दर इस्तेमाल नहीं करते। मैं इसीलिए मजदूरोंकी इस तरहकी सभाओंमें जब भी बोलता हूँ तब मजदूरोंका ध्यान इन त्रुटियोंकी ओर आकर्षित करते नहीं थकता।

मैं चाहता हूँ कि आप इस बातको महसूस करें और भली-भाँति समझ लें कि आप इस देशकी जनताके किसी भी वर्गसे किसी भी तरह हीन नहीं हैं; और न आपको हीन होकर रहना ही चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप अपने अन्दर राष्ट्रीय मसलोंको समझनेकी क्षमता पैदा करें। अगर आप ये सारी बातें करना चाहते हैं तो आपको शराब पीनेकी लत भी छोड़ देनी चाहिए। आपको गन्दगीमें अस्वास्थ्यकर ढंगसे रहनेकी आदतें छोड़ देनी चाहिए। आप चाहे किरायेके मकानोंमें रहते हों चाहे उन मकानोंमें रहते हों जिन्हें मालिकोंने आपके लिए बनवाया है, परन्तु यदि वे गन्दे हों और उनमें न धूप पहुँचती हो और न हवा तो आप ऐसे मकानोंमें रहनेसे साफ इनकार कर दें। आपको अपने मकानों और बाड़ोंमें किसी भी तरहकी गन्दगी और अस्वच्छता नहीं रहने देनी चाहिए। आपको हर रोज ठीक तरह स्नान करके अपने बदन साफ रखने चाहिए और जैसे आपको अपने बदन और आसपासकी जगहोंको पूर्णतः स्वच्छ रखना चाहिए वैसे ही अपना जीवन भी पवित्र रखना चाहिए। आपको जुआ कदापि नहीं खेलना चाहिए। आपके लिए जो शालाएँ खुलें या जिन्हें आप खोलें उनमें अपने बच्चे अवश्य भेजें और यह इसलिए नहीं कि आपके बच्चे आगे चलकर मजदूर न रहकर क्लर्क बन जायें, बल्कि इसलिए कि वे मजदूर बने रहकर अपनी बुद्धिका भी प्रयोग करना सीख सकें। अगर आप हिन्दू हैं, आपके पास मन्दिर नहीं है, या अगर आप मुसलमान हैं और आपके पास मस्जिद नहीं है, तो आपको कुछ पैसे इकट्ठे करके इनका निर्माण करना चाहिए। आप लोगोंमें से जो भी हिन्दू हैं, उनको किसी भी दूसरे हिन्दूको अछूत, पंचम या पेरिया नहीं मानना चाहिए। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेकी स्त्रीको बुरी नजरसे न देखे। और आखिरमें मुझे यह कहना है कि जहाँतक पोशाकका सवाल है, मैं जानता हूँ कि आपमें से बहुतेरे विदेशी कपड़ा पहने हैं, पर आप यह कपड़ा न पहनें फिर चाहे वह मैनचेस्टरसे आया हो या जापानसे, यहाँ तक कि बम्बई और अहमदाबादसे भी क्यों न आया हो। आप केवल हाथकता और हाथबुना खद्दर ही पहनें। मैं आपसे खद्दर पहननेके लिए इस कारण कह रहा हूँ कि आपके एक गज खद्दर खरीदनेका अर्थ यह होता है कि उससे आप-जैसे ही मजदूरोंको दो-तीन आने मिल जाते हैं।

मेरा भारतके प्रत्येक मजदूरसे निवेदन है कि वह अपने हाथोंसे कताई, धुनाई और अगर हो सके तो बुनाई करना सीखे और हर रोज उसका अभ्यास करे।

मजदूरोंसे ऐसा निवेदन करनेका एक विशेष कारण है। अहमदावादमें १९१८ में जब मिल मजदूरोंकी पहली-पहली हड़ताल हुई थी, तब मैंने उसका नेतृत्व जनतासे चन्दा लेकर करनेसे इनकार किया था। और अन्य स्थानोंके मजदूरोंसे कहा था कि वे स्वयं मजदूरी करके, जनतासे चन्दा उगाहे बिना, उस हड़तालको सफल बनायें। उसके बादसे अब तक मैंने इन मामलोंको ज्यादा अच्छी तरह समझ लिया है, इसलिए अब मैं मजदूरोंसे कहता हूँ कि वे कताई, बुनाई और धुनाईकी कला सीख लें ताकि हड़ताल करनेकी नौबत आये तो वे इनके सहारेसे अनिश्चित समयतक उसे जारी रख सकें। यदि आप काफी मेहनत करें तो आप अपनी जरूरतके लायक कपड़ा स्वयं बुन सकते हैं। आशा है कि मैंने आज आपसे जो बातें कही हैं, आप उनको हृदयंगम कर लेंगे। मैंने आपसे जो-जो करनेको कहा है, वह सभी आपको करनेकी कोशिश करनी चाहिए। आपको बड़े सुबह चार बजे उठकर सबसे पहले ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए, ताकि मैंने आज आपसे जो-जो काम करनेके लिए कहा है, ईश्वर वह सब करनेमें आपको सहायता दे।

इस सभामें आकर शान्तिपूर्वक मेरी बातें सुननेके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। ईश्वर आपको उत्तम, शुद्ध जीवन-यापनका सामर्थ्य दे। (देर तक जोरसे हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-३-१९२५

२०६. क्या बम्बई सुप्त है?

[मद्रास
सोमवार २३ मार्च, १९२५][1]

मेरे पास ऐसी शिकायतें आती रहती हैं कि बम्बईमें चरखे नहीं चलाये जाते; वहाँ कोई खादी भी नहीं खरीदता और लोग खादी पहने दिखाई नहीं देते; काली टोपी १९२० की तरह फिर चल पड़ी है और राष्ट्रीय शालाएँ बन्द हो रही हैं, आदि। बम्बईकी सेवा दो खादी भण्डार और अखिल भारतीय खादी बोर्ड कर रहे हैं। कुल मिलाकर इन सबकी बिक्री ३०,००० रुपये प्रतिमाससे अधिक नहीं होगी। भाई जेराजाणीने[2] चार वर्षकी बिक्रीके आँकड़े प्रकाशित किये हैं। इनसे हम बहुत-कुछ जान सकते हैं। उनकी देखरेखमें भण्डार पाँच वर्षसे काम कर रहा है। उसकी बिक्री १९२३ और १९२४ की जनवरीके महीनोंमें क्रमशः २२,२९९ रुपये और २२,५१६ रुपये थी। किन्तु पिछली जनवरीमें कुल बिक्री १४,४०१ रुपयेकी हुई। इन्हीं वर्षोंकी फरवरीमें भण्डारकी बिक्री क्रमशः १५,७४७ रुपये और २१,६६४ रुपयेकी हुई; पर इस वर्ष फरवरीमें १३,४२४

१. गांधीजीने अन्तिम अनुच्छेदमें इस तारीख और स्थानका उल्लेख किया है।

२. बम्बईके आदर्श खादी भण्डारके व्यवस्थापक तथा अ० भा० कां० के खादी विभागके बिक्री निदेशक।

रुपयेकी हुई। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि बिक्री बढ़नेके बजाय घटती जा रही है। मैंने यह भी सुना है कि जब मैं जेलमें था उस समय पूरे देशमें खादीकी जितनी खपत थी उतनी अब, मेरी रिहाईके बाद, नहीं रही है। यह बात ऐसी है जिससे मुझे शर्म मालूम होती है; किन्तु मैं इसे समझ सकता हूँ। जबतक मैं जेलमें था तबतक लोगों-को मेरी चिन्ता थी और वे मानते थे कि मुझे मेरी अवधिसे पूर्व मुक्त करानेका उपाय खादीका प्रचार है। वे यह भी मानते थे कि यदि मैं मुक्त हो जाऊँगा तो तुरन्त स्वराज्य दिला दूँगा। किन्तु मेरे लिए दुःख करना तो निरर्थक था। मैं जेलमें दुखी नहीं था, न तनसे और न मनसे। मुझे तो जेलमें रहना प्रिय था। मेरी अब भी मान्यता है कि मैं जेलमें रहकर जितनी सेवा कर रहा था, उतनी सेवा बाहर निकलनेपर मुझसे हो पाती है या नहीं, इसमें शंका है। दूसरी बात विचारणीय है। यह सम्भव था कि खादीके पूर्ण प्रचारके कारण मुझे अवधिसे पूर्व छोड़ दिया जाता। किन्तु मैं मुक्त होते ही स्वराज्य दिला दूँगा, यह विचार लोगोंके लिए लज्जाजनक है। स्वराज्य दिलाने-वाला मैं कौन हूँ? स्वराज्य तो प्राप्त करना है; उसे कौन किसे दे सकता है? मेरे मुक्त होनेपर स्वराज्य दूर जाता दिखाई देता है, किन्तु मेरे खयालसे तो वह पास आ रहा है। मैं अब भी यह मानता हूँ कि हम जितने गज सूत अधिक कातेंगे और जितने गज खद्दर अधिक पहनेंगे व तैयार करेंगे वह उतना ही अधिक पास आयेगा।

किन्तु इसका अर्थ यह तो कदापि नहीं है कि हम अपने दूसरे कर्त्तव्य छोड़ दें। पर इसका अर्थ यह तो है कि हमें दूसरे कर्त्तव्योंका पालन करनेपर भी खादीके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता और चरखेके बिना खादी नहीं मिल सकती।

इसी कारण जब मुझे यह खबर मिलती है कि बम्बईमें खादीकी खपत कम हो रही है तब मुझे दुःख होता है। कालबादेवीवाले दूसरे खादी भण्डारकी बिक्री इससे कुछ अधिक है। किन्तु इस समय उसकी पिछले सालकी बिक्रीके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। क्योंकि तब वह रहेगा भी या नहीं यही निश्चित नहीं था। अब उसकी बुनियादको मजबूत बना दिया गया है। फिर भी अगर दोनों भण्डारोंकी कुल बिक्री प्रतिमास ३०,००० रुपयेकी होती है तो वह बम्बई-जैसे शहरके लिए कुछ भी नहीं है। ऐसे दस-पाँच खादी भण्डार बम्बईमें चलें तो भी आश्चर्यकी कोई बात नहीं। बम्बईमें कोई सड़क ऐसी नहीं है जिसमें विदेशी कपड़ेकी दूकान न हो। एक सड़क पर तो पग-पगपर ऐसी दूकानें हैं। वहाँ खादीकी दूकान पराई — विदेशी-जैसी — लगती है और विदेशी वस्त्रकी दुकान स्वदेशी — अपनी — जैसी लगती है। इसपर भी इन्हीं दूकानोंके मालिक और उनके ग्राहक स्वराज्यकी आशा करते हैं। किन्तु यह स्वराज्य कैसा होगा? वह स्वराज्यके नामपर विदेशी राज्य अथवा स्वार्थका राज्य तो न होगा? करोड़ोंके व्यापारमें गरीबोंका स्थान क्या होगा? ऐसे शासनतन्त्रमें गरीबोंको राहत मिलनेकी क्या आशा हो सकती है? जबतक खादीका पूरा प्रचार नहीं होता तबतक अथवा जबतक विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार नहीं होता तबतक सब स्वराज्यकी भावनाको समझ सकते हैं यह मैं असम्भव मानता हूँ। जिसके दाँत नहीं हैं, वह चबाने-का आनन्द क्या जाने? जिसके जीभ नहीं है वह बोलनेका अर्थ क्या समझे? जिसे अपने देशके गरीबोंके काते और बुने कपड़ेको पहननेमें संकोच होता है, वह गरीबोंकी

सेवा क्या जाने? वह स्वराज्यका अर्थ क्या जाने? जिसे हिन्दुस्तानके गाँव अच्छे नहीं लगते, जिसे इस देशके रीति-रिवाज अच्छे नहीं लगते और जिसे इस देशका खाना अच्छा नहीं लगता उसके लिए देशकी आजादीका क्या अर्थ हो सकता है? उसकी स्वराज्यकी योजनासे हिन्दुस्तानके किस भागको लाभ हो सकता है?

इसलिए बम्बईके नागरिक स्वराज्य चाहते हैं या नहीं यह नापनेका मापदण्ड खादी-भण्डार है। इस मापदण्डके अनुसार बम्बईकी स्थिति निराशाजनक ही कही जा सकती है।

अब हम अन्त्यजोंकी स्थिति देखें।

अन्त्यजोंको रहनेके लिए अच्छे मकान नहीं मिलते, यह कैसी विचित्र बात है? बहुतसे अन्त्यजोंको नगरपालिकाके टूटे-फूटे मकान भी छोड़ने पड़ते हैं। जो उनमें रहते हैं वे भी कठिनाईमें ही रहते हैं। हिन्दू उनको मकान नहीं देते। ऐसी स्थितियोंमें रहते हुए अन्त्यजोंके लिए स्वराज्यका अर्थ क्या हो सकता है? मान लो, बम्बईमें हिन्दू गवर्नर हो, अस्पृश्यताको धर्म माननेवाला मुख्यमन्त्री हो और अन्त्यजोंको मकान न देनेवाले मन्त्री हों, तब ऐसे स्वराज्यमें अन्त्यजोंको स्वतन्त्रताका क्या बोध होगा? जान पड़ता है कि बम्बई इस परीक्षामें भी अनुत्तीर्ण होगा।

अब रहा हिन्दू-मुसलमानोंका प्रश्न। इस सम्बन्धमें जैसी स्थिति अन्यत्र है वैसी ही बम्बईमें है, ऐसा तो नहीं कह सकते। किन्तु यहाँ भी दोनोंमें झगड़े होते रहते हैं। स्थिति ऐसी लगती है, "ऊपरसे तो अच्छी; भीतरकी तो राम जाने" मैं यह सुनता रहता हूँ कि भीतर-भीतर आग सुलग रही है। सन् १९२१ में दोनोंके सम्बन्धोंमें जो मिठास थी वह अब नहीं रही है, उसकी जगह अब कड़ुवाहट चाहे न हो खटास जरूर आ गई है। सन्देह रूपी नासूर बना हुआ है। एक-दूसरेपरसे विश्वास उठ-सा गया है।

भारतकी प्रथम नगरी, फीरोजशाह मेहताकी राजधानी, दादाभाईकी कर्मभूमि, रानडे, बदरुद्दीन आदि प्रमुख नेताओंकी यशस्थली बम्बई आज सोई-सी लगती है।

मैं यह लेख मद्रासमें सोमवार २३ तारीखको मौनकी शान्तिमें लिख रहा हूँ। शुक्रवार २६ तारीखको मुझे बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे मिलना है। तभी मुझे वस्तुस्थितिका पता चलेगा। मैं उस भेंटके बाद बम्बईकी स्थितिपर फिर विचार करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२०७. पत्र : कृष्णदासको

२३ मार्च, १९२५

प्रिय कृष्णदास,

तुमको यह पत्र यों ही सिर्फ इतना बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि मुझे तुम्हारा और गुरुजीका ध्यान सदा बना रहता है। समझौतेके बारेमें उनके दिमागमें जो सन्देह पहले थे, क्या वे अब भी बने हैं। आशा है वे स्वस्थ होंगे।

लगता है, तुम्हारा स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा चल रहा है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम जब भी मेरे साथ यात्रामें चलना चाहो, बेधड़क चल सकते हो। मैं आनेके लिए लिखूंगा, इसकी आशा न करना; इसलिए कि तुम्हारी सेवा मेरे लिए सबसे अधिक उपयोगी वहीं हो सकेगी, जहाँ तुम सबसे अधिक खुश रहो और तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहे। मेरी अपनी कोई भी पसन्दगी या नापसन्दगी न है और न होनी चाहिए। हम सभी एक ही लड़ाईमें लड़नेवाले सैनिक हैं। मैं ऐसा सेनापति हूँ जो चाहता है कि उसके बढ़ियासे-बढ़िया सैनिक स्वयं ही यह बतायें कि सबसे अधिक उपयोगी सेवा वे कहाँ कर सकते हैं। मैं जब महसूस करूँगा कि अमुक सैनिकको अमुक कामपर लगाना ठीक होगा, तब मैं उसमें एक क्षण भी न हिचकूँगा।

इसके साथ एक कतरन वापस भेजता हूँ। यह तुमने मुझे महीनों पहले दी थी और तबसे मेरे पास थी। मैं वहाँ २७ तारीखको पहुँच रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

अंग्रजी पत्र (जी० एन० ५५९९) की फोटो-नकलसे।

२०८. तार : चित्तरंजन दासको

मद्रास
२४ मार्च, १९२५

देशबन्धु दास
रैनर रोड
कलकत्ता

विजयपर बधाई। आशा है आप पूर्ण स्वस्थ हो गये होंगे। आज अहमदाबाद जा रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२०९. तार : डब्ल्यू० एच० पिटको

मद्रास
२४ मार्च, १९२५

पुलिस कमिश्नर,
त्रिवेन्द्रम

तारके[1] लिए धन्यवाद। अठारह तारीखके अपने पत्रकी शर्तोंपर समझौता सम्पन्न होने और उसके पालनकी हिदायतका तार वाइकोम भेज रहा हूँ। विश्वास है प्रतिबन्ध वापसीके आदेशके बाद मेरे पत्रमें सुझाई अन्य कार्रवाइयाँ की जायेंगी।

गांधी

अंग्रेजीके मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२१०. तार : के० केलप्पन नायरको

मद्रास जाते हुए
२४ मार्च, १९२५

केलप्पन नायर
सत्याग्रह आश्रम
वाइकोम

अठारह तारीखके पत्रकी सरकार द्वारा स्वीकृति तारसे मिल गई। ७ अप्रैलसे आदेश वापस लिया जायेगा और बाड़ और सन्तरी हटा दिये जायेंगे। अभी जितने सत्याग्रही हैं कताई जारी रखें या अपनी-अपनी जगह जमे रहें; लेकिन बाड़ और सन्तरी हटानेके आदेशके बावजूद सीमा रेखा किसी भी सूरतमें न लाँघी जाये। आज अहमदाबाद जा रहा हूँ। आगेका हाल तारसे वहीं भेजें।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

१. २३ मार्च, १९२५ को (एस० एन० १३२६८ एम०) दिया गया डब्ल्यू० एच० पिटका तार इस प्रकार था : "१८ तारीखके आपके पत्रके सन्दर्भमें। तार द्वारा आपकी स्वीकृति मिलते ही मंगलवार, ७ अप्रैलसे प्रतिबन्धक आदेश वापस ले लिया जायेगा। कृपया वाइकोमके सत्याग्रहियोंको उसी दिनसे समझौतेके पालनका निर्देश दें।"

२११. पत्र : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको

२४ मार्च, १९२५

उपरोक्त पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशनार्थ देते हुए मेरे लिए इतना बतला देना जरूरी है कि इसमें जो समझौता दिया गया है उससे वाइकोमका वर्तमान आन्दोलन एक कदम आगे बढ़ा है। बाड़ हटाये जाने और प्रतिबन्धक आदेश वापस लिये जानेके बावजूद सत्याग्रहियोंके सीमा-रेखा पार न करनेसे एक ओर जहाँ यह प्रकट होता है कि यह संघर्ष पूर्णतः अहिंसात्मक है वहाँ दूसरी ओर उससे सरकारके इस कथनकी सचाई सिद्ध होती है कि सत्याग्रही जिस सुधारके लिए संघर्ष कर रहे हैं वह उसके पक्षमें है। मुझे आशा है कि सुधारके विरोधी सत्याग्रहियोंके इस सद्भाव-संकेतका वैसा ही सद्भावपूर्ण उत्तर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-३-१९२५

२१२. भाषण : मद्रासमें[2]

२४ मार्च, १९२५

मित्रो,

मैं आपका आभारी हूँ कि आपने मुझे यहाँ अपने बीच आनेका निमन्त्रण दिया। मैं मानपत्रके लिए भी आपका आभारी हूँ। मैं आपकी भावनाओंको समझता और उनकी कद्र करता हूँ; और इस कारण और भी अधिक कि आप चाहे आज न मानें, पर किसी दिन अवश्य ही मानेंगे कि मैं जितनी बड़ी सहकारी समितिका संचालन कर रहा हूँ, उतनी बड़ी दूसरी सहकारी समिति संसारमें आजतक नहीं बनी है। हो सकता है कि मेरा यह प्रयोग बुरी तरह असफल हो और यदि ऐसा होगा तो वह आपकी कमजोरी या सहयोगके अभावके कारण होगा। मैं आज एक ऐसी सहकारी समिति चला रहा हूँ जिसके तीस करोड़ लोग स्वेच्छासे सदस्य बन सकते हैं। इस देशके तीस करोड़ स्त्री, पुरुष और बच्चे, कोढ़ी और स्वस्थ सभी इसके सदस्य बन सकते हैं — कोढ़ी वे जो मन, शरीर और आत्मासे कोढ़ी हैं और स्वस्थ वे जो शरीरसे भले चंगे हैं। इस तरह आप देखेंगे कि यह संस्था कमसे-कम अपने क्षेत्रमें तो आपके इस सर्व-प्रचलित सिद्धान्तमें अमल करनेकी कोशिश कर रही है कि प्रत्येक व्यक्ति समाजके लिए

१. देखिए "पत्र : डब्ल्यू० एच० पिटको", १८-३-१९२५ और "तार : डब्ल्यू० एच० पिटको", २४-३-१९२५।

२. बिग स्ट्रीटस्थित ट्रिप्लिकेन नागरिक सहकारी समिति द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

और समाजके सभी लोग प्रत्येक व्यक्तिके लिए जीवित रहेंगे। यदि आप इस सिद्धान्तका मूल्य आँकनेका सचमुच उद्योग करें तो आप उस सत्यके छुपे आशयको और चरखेके गहन और गूढ़ अर्थको समझ जायेंगे। इसीलिए मैं आप सब सहकारी सदस्योंको संसारकी इस सबसे बड़ी सहकारी समितिमें शामिल होनेका निमन्त्रण देता हूँ। आप ऐसा तबतक नहीं कर सकते जबतक आप रोजाना कमसे-कम आधा घंटा कताई करनेका निश्चय न कर लें और खद्दर पहननेका व्रत न ले लें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-३-१९२५

२१३. भाषण : मद्रासकी आयुर्वेदिक फार्मेसीमें

२४ मार्च, १९२५

महात्माजीने मानपत्रका उत्तर देते हुए कहा कि आप समारोहके आयोजकोंने शायद यह महसूस नहीं किया कि यहाँ मेरी उपस्थिति बिलकुल ही अटपटी जान पड़ रही है। आप नहीं जानते कि मैंने एक मेडिकल कालेजके[1], जिससे मेरे सम्माननीय मित्र हकीम अजमल खाँ सम्बद्ध हैं, उद्घाटन-समारोहके अवसरपर भी यही बात कही थी। उस समय मैंने अध्यक्षके रूपमें बोलते हुए यह कहा था कि आजकल यूनानी, आयुर्वेदिक या यूरोपीय चिकित्सा पद्धतियोंके नामसे जो-कुछ प्रचलित है उसकी अधिकांश बातोंसे मैं सहमत नहीं हूँ। मैं दवाओंके अन्धाधुन्ध उपयोगका विरोधी हूँ। मुझे यह सुनकर कोई खुशी नहीं होती कि डा० श्री रामचारलु दो लाख या बीस लाख लोगोंको अपनी दवाएँ देते हैं। मैं उनको मकरध्वजके प्रचारमें इतनी सफलता पानेपर बधाई नहीं दे सकता। हमारे चिकित्सकोंमें थोड़ी-सी सच्ची विनम्रताकी ही जरूरत है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और यूनानी — तीनों प्रकारके चिकित्सकोंमें मेरे अनेक मित्र हैं; परन्तु वे सभी मेरे इस विचारको भलीभाँति जानते हैं कि जिस प्रकार वे दवाइयाँ देते हैं, मैं उसका समर्थन कदापि नहीं कर सकता।

मैं चाहता हूँ कि आजके सभी चिकित्सक पुराने जमानेके चिकित्सकोंकी तरह अपना सारा जीवन अनुसन्धान-कार्यमें लगायें और बिना एक कौड़ी भी लिये लोगोंको बीमारियोंसे राहत दें। परन्तु आज ऐसा नहीं होता, यह दुःखजनक है। आज जो कुछ दिखाई देता है वह तो यह है कि वैद्य लोग आयुर्वेदके प्राचीन गौरवका गुणगान करके जीविकोपार्जनका प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी रोग-निदान पद्धति आज भी बिलकुल पुराने ढंगकी है और जो पाश्चात्य पद्धतिकी रोग निदान-पद्धतिके सामने बिलकुल

१. दिल्लीका तिब्बिया कालेज।

नहीं ठहर सकती। पाश्चात्य पद्धतिके बारेमें और जो भी कहा जाये — मैंने इस विषयके बारेमें बहुत-कुछ कहा भी है — परन्तु उसके पक्षमें एक बात तो कहनी ही पड़ेगी कि उसमें विनम्रता और अनुसन्धानकी भावना है और ऐसे अनेक चिकित्सक और शल्य-चिकित्सक हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन इसी काममें लगा दिया है और जिन्हें संसार जानता तक नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हमारे वैद्य भी ऐसी ही भावनासे अनुप्राणित हों। परन्तु दुर्भाग्यसे आज देखनेमें यह आता है कि वे पैसे और प्रसिद्धिके भूखे हैं और शिखरपर पहुँचनेके लिए व्यग्र हैं। इस ढँगसे तो वे आयुर्वेदकी सेवा नहीं कर पायेंगे। मैं जानता हूँ कि आयुर्वेदमें बहुत ही कारगर और प्रभावकारी दवाएँ मौजूद हैं। लेकिन वैद्य लोग आजकल उस विद्याको भुला बैठे हैं, अतः वास्तवमें उनका उपयोग नहीं जानते। मैंने इसके बारेमें अनेक वैद्योंसे चर्चा की है और उन्होंने, मैं जो भी कहता आया हूँ, उस सबका समर्थन किया है।

यह सत्य मेरे मनमें गहराईसे जमा हुआ है। अगर मैं इसे व्यक्त न करूँ तो आप मुझे अपना मित्र नहीं कहेंगे क्योंकि आपने मुझे इसीलिए तो यहाँ आनेका निमन्त्रण दिया है। मेरा यह विचार एक दिनका अथवा उतावलीसे सोचा हुआ नहीं है। बल्कि यह मेरे लगभग चालीस वर्षोंके अवलोकन और स्वास्थ्य तथा स्वच्छता सम्बन्धी प्रयोग और परीक्षणोंका फल है। इनके फलस्वरूप मैं इस निश्चित निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि श्रेष्ठ चिकित्सक वही है जो कमसे-कम दवाएँ देता है। स्वर्गीय सम्राट् एडवर्डकी शल्य-चिकित्सा इतनी सफलतापूर्वक सम्पन्न करनेवाले शल्य-चिकित्सकने औषध-विज्ञान सम्बन्धी अपनी पुस्तिकामें लिखा है कि वे केवल दो-तीन औषधियोंका ही इस्तेमाल करते थे और शेष काम प्रकृतिपर छोड़ देते थे। मुझे विश्वास है कि हमारे वैद्य इस रहस्यको समझते हैं कि प्रकृति कोमलतासे सबसे जल्दी और सबसे अच्छा स्वास्थ्य लाभ करा सकती है। लेकिन मुझे दिखाई तो यह पड़ता है कि मनुष्यके निकृष्टतम विकारोंको उत्तेजित करनेवाले तरह-तरहके प्रयोग-परीक्षण किये जा रहे हैं। दवाओंके जो इश्तिहार निकलते हैं, उन्हें देखकर मेरे मनमें बहुत ग्लानि होती है। मुझे लगता है कि वैद्य मानव जातिकी कोई भी सेवा नहीं कर रहे हैं, उलटे वे तो हर औषधिको हर रोगके लिए रामबाण बताकर बहुत बड़ा अहित कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि वैद्य विनम्रता, सरलता और सच्चाईको अपनायें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-३-१९२५

२१४. भाषण: शराबबन्दीके बारेमें[1]

२४ मार्च, १९२५

यह मेरे लिए बड़ी खुशीकी बात है कि मुझे आज आपसे शराबबन्दीके बारेमें कुछ कहनेका मौका मिला है और यह मेरे लिए अत्यन्त सम्मानकी बात भी है; क्योंकि मैं जिनकी अध्यक्षतामें बोल रहा हूँ उनकी लम्बी, महान् और अनवरत देश-सेवाके कारण मेरे मनमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा है। शराबबन्दीके सवालको हाथमें लिये आज मुझे ज्यादा नहीं तो ३० वर्ष जरूर ही हो गये हैं। मुझे मद्यके प्रति घोर अरुचि अपनी माँसे मिली थी और वह तब मिली थी जब उन्होंने मुझे इंग्लैंड जानेकी अनुमति दी थी। आपमें से कुछ लोग शायद जानते हों कि उन्होंने मुझसे तीन प्रतिज्ञाएँ कराई थीं। इनमें से एक यह थी कि मैं मद्यपानसे बचता रहूँगा। मैं आपको बता दूँ कि वे यह नहीं जानती थीं कि मद्यपानकी बुराई कितना बड़ा अभिशाप है। उन्हें यह मालूम न था कि जनसाधारणकी दशा कैसी है और शराब पीनेकी बुराईसे उनके घरोंमें कैसी तबाही आ रही है। उस सुन्दर और छोटे-से नगर राजकोटमें जहाँ मैं पला-पुसा और पढ़ा-लिखा था, जिस वक्तकी बात आज मैं आपसे कर रहा हूँ, उस वक्त शराब बहुत कम पी जाती थी। फिर भी मैं अपनी माँको दिये वचनके कारण स्वभावतः सावधान हो गया और मैंने साथ ही यह भी सोचा कि अन्य चीजोंका निषेध करनेके बजाय उन्होंने मुझसे केवल इन्हीं तीन चीजोंसे बचनेका वचन क्यों लिया। मैं रवाना हुआ, और जहाजमें मेरा बहुतसे लोगोंसे मिलना-जुलना हुआ। मैं बिलकुल निकम्मा आदमी था और अपने सहयात्रियोंसे ज्यादा देरतक अंग्रेजीमें बात नहीं कर सकता था। उनमें से एक यात्री काठियावाड़के कच्छ जिलेका रहनेवाला था। उसने मुझसे कहा, बिस्केकी खाड़ी पार करनेके बाद तो आपको शराब पीनी ही पड़ेगी। मैंने कहा कि अच्छी बात है, तब देखूँगा। उसने मुझसे पूछा, अगर डाक्टर शराब पीनेकी सलाह दें तो आप क्या करेंगे। मैंने कहा, अगर मेरे जीवित रहनेकी वही एक शर्त हो तो अपनी माँको खूब सोच-समझकर दिये गये इस पवित्र वचनको तोड़नेकी अपेक्षा मैं मर जाना पसन्द करूँगा। मैं लन्दन पहुँचा। बड़ी-बड़ी ऊँची और शानदार इमारतोंमें जो सार्वजनिक शराबखाने हैं, जो-कुछ होता था उस सबको मैं अपनी आँखोंसे देखता था; मैं जिस शराबखानेके सामने खड़ा होता, वहीं देखता कि लोग बिलकुल होश-हवासमें अन्दर जाते हैं और नशेमें चूर होकर बाहर आते हैं। इंग्लैंडमें मेरे लिए काम करनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं थी। इस सबको देखकर हर किसीकी यही प्रबल इच्छा हो सकती है कि मद्य-निषेधका काम किया जाये और भारतीयोंको इस अभिशापसे बचाया जाये। मैं आपको यह भी बता दूँ कि मैं जिस वक्त लन्दन गया, वह ऐसा वक्त था जब

१. मद्रासके गोखले हालमें आयोजित मद्य-निषेध कार्यकर्त्ताओंकी सभामें, जिसकी अध्यक्षता श्रीमती बेसेंटने की थी।

कुछ विद्यार्थी और शिक्षक पश्चिमकी हर चीजके पीछे आँख मूँदकर पड़े हुए थे और इसलिए शराब पीते थे और शराब पीना फैशन मानते थे। अतः जब मैंने लन्दनमें यह स्थिति देखी तब अनुभव किया कि मुझे अपने देशके नौजवानोंसे शराब पीनेकी लत छुड़ानेके लिए काम करना चाहिए। उस समय मुझे क्या पता था कि मुझे भारत लौटनेपर दो वर्षके भीतर ही दक्षिण आफ्रिका जाना पड़ेगा और अपने देशके कुछ ऐसे लोगोंके बीच रहना पड़ेगा जो बहुत ही गरीब हैं। ये सभी लोग शराब पीते थे, इतना ही नहीं बल्कि हदसे ज्यादा शराब पीते थे। लेकिन इसे आप मेरा सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, मैंने नेटालके सैकड़ों लाचार गिरमिटिया औरतों और आदमियोंको शराबकी लतसे बरबाद होते देखा। उस समय मैं असहयोगी नहीं था, हालाँकि मैं दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न इलाकोंमें सरकारसे लड़ रहा था। जहाँ कहीं वह मेरा सहयोग स्वीकार करती थी वहाँ मैं उससे बहुत विनम्रताके साथ पूरी तरह सहयोग भी करता था। मैंने सरकारको इस बातके लिए राजी करनेकी कोशिश की थी कि वह भारतीयोंके लिए शराब पीना निषिद्ध कर दे। आपको यह जानकर दुःख और आश्चर्य होगा कि इसमें मुझे अपने ही देशवासियोंके विरोधका सामना करना पड़ा। उन्होंने अपने सामान्य और विशेष स्वत्वोंका प्रश्न खड़ा किया और कहा कि जब यूरोपीय लोग बे-रोकटोक शराब पी सकते हैं तब भारतीयोंको भी वैसा करनेका अधिकार होना चाहिए। (हँसी) यह बात मानना मेरे लिए सम्भव न था। मैं स्वीकार करता हूँ और इस बातपर शर्मिन्दा हूँ कि २० सालतक दक्षिण आफ्रिकामें रहनेके बाद भी मैं उनमें से अधिकांशको इस बातका विश्वास नहीं करा सका कि यह सवाल ऐसा है जिसमें स्वत्व और स्पर्धाकी बात ही नहीं उठती। अगर मेरे पास समय होता तो मैं आपको शराबके नशेमें बुरी तरह धुत जहाजी कप्तानोंका वर्णन करके सुनाता। इनकी अधीनतामें यात्रा करना सचमुच खतरनाक था। इसलिए नहीं कि वे ज्यादा शराब पी लेते थे, बल्कि इसलिए कि वे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। कुछ कप्तान मेरे मित्र बन गये थे, लेकिन जब उन्होंने बेतहाशा पीना शुरू कर दिया तब मैंने देखा कि उनके लिए मद्यपान कितना बड़ा अभिशाप सिद्ध हुआ था। पूरी तरहसे उनकी जिम्मेदारीपर यात्रा करनेवाले जन समुदायको उनसे कितना बड़ा खतरा था। मैंने अपने मित्रोंसे कहा कि इसमें अधिकारकी कोई बात नहीं है, और अगर हम कमसे-कम अपने लिए कानूनी तौरपर मद्य-निषेध करा सकें तो इससे हम इन तमाम परिवारोंको बरबादीसे बचा सकते हैं; और तभीसे मेरे और मेरा विरोध करनेवाले मित्रोंके बीच इस बातमें मतभेद चला आता है कि शराब पीनेपर कानूनी प्रतिबन्ध रहे या घर-घर जाकर लोगोंको शराब पीना छोड़नेके लिए समझाया जाये।

मैं निश्चित रूपसे इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि जन-साधारणमें केवल प्रचार करनेसे काम न चलेगा, क्योंकि वे जानते ही नहीं कि वे कर क्या रहे हैं। आपको मालूम ही है कि मैं इस अहातेमें काठियावाड़की यात्रा करके आ रहा हूँ। काठियावाड़में बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतें हैं। इन्हींमें से एक रियासतमें कुछ लोगोंको शराबकी बुरी लत थी। उनके परिवारवालोंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उन्हें उनकी इस

बुरी लतसे बचाऊँ। किन्तु जबतक दवाको छोड़कर बाकी कामोंके लिए शराबपर पूरा प्रतिबन्ध न लगाया जाये, तबतक मैं उनको उनकी इस लतसे कैसे बचा सकता हूँ? मै शराबके बारेमें भी ठीक उसी नुस्खेको लागू करना चाहता हूँ जिसे अमेरिकामें कुछ अफीम निषेध संस्थाएँ अफीमके बारेमें लागू कर रही हैं। मैं नहीं जानता कि अफीमकी बुराई ज्यादा बड़ी है अथवा शराबकी बुराई। शायद दोनों बराबरकी हों, लेकिन शुद्ध नैतिक दृष्टिसे मेरा खयाल ऐसा होता है कि अगर मुझे इस बारेमें निश्चित मत देना ही पड़े तो मैं शराबके खिलाफ मत दूंगा, क्योंकि शराब आदमीके नैतिक आधारको खोखला कर देती है। मैं ऐसे हजारों लोगोंको जानता हूँ जो अपनेको सीमाके अन्दर रहकर पीनेवाला तो समझते हैं, लेकिन उन्होंने अपनी शराब की लतको संयत रखना नहीं सीखा है। मेरे ऐसे जिगरी दोस्त हैं जिन्हें नशेमें पत्नी, माँ और बहनमें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता, और होशमें आनेके बाद भी वे यह नहीं समझ पाते कि शराब पीना कितनी बड़ी बुराई है, और वे बार-बार शराबकी ओर दौड़ते हैं। मुझे एक आस्ट्रेलियावासी अंग्रेज मित्रकी बात याद आती है। वे प्रति मास ४० पौंड कमाते थे। यह खासी आय थी। वे अच्छे इंजीनियर थे, और महोदया! मैं यह भी बता दूँ कि वे एक निष्ठावान् थियोसॉफिस्ट थे, क्योंकि वे सचमुच ही उस बुराईसे मुक्त होना चाहते थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मुझे इसका कोई उपाय मालूम है। इसका कारण यह था कि वे इस सम्बन्धमें मेरी वृत्तिको जानते थे। उनको मालूम था कि मैं आहार-शास्त्री हूँ, आहारके विषयमें सुधारोंका हामी हूँ और इस दिशामें कुछ प्रयोग कर चुका हूँ। अतः हम दोनों उस छोटी-सी थियोसॉफिकल मण्डलीके जरिये मित्र बन गये। यह मण्डली मुझे अपनी बैठकोंमें भाग लेनेके लिए अक्सर बुलाती थी। मेरे उन मित्रका नाम पैटर्सन था। मैं नहीं जानता कि आज वे क्या करते हैं। उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ा। जबतक वे मेरे मकानमें मेरे साथ रहे, तबतक उन्होंने अपने आपपर संयम रखा। लेकिन मुझसे अलग होनेके कुछ ही दिन बाद मुझे उनका एक पत्र मिला था। उन्होंने उसमें लिखा था कि "मैं जहाँ था, वहीं वापस पहुँच गया हूँ।" शराब आदमीको इस हदतक गुलाम बना लेती है। वैसा ही अफीम भी करती है। वह हमें मूढ़ और जड़ बनाती है। लेकिन शराब हमें उत्तेजित करती है, इस हदतक कि हम भगवान्‌की गोदमें से हटकर शैतानकी गोदमें जा पड़ते हैं।

इसलिए मुझे लगता है कि अगर विधायकोंको अफीम और शराबसे प्राप्त होनेवाले राजस्वको छोड़नेके लिए राजी किया जा सके तो मैं आज ही वैसा करूँ। अगर इस राजस्वके बिना हम अपने बच्चोंको शिक्षा भी न दे सकें तो मैं देशके सभी बच्चोंकी शिक्षातक का बलिदान करनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन आज मैं आपसे इस राजस्वके बारेमें, जिसे हम अपने अभागे देशभाइयोंसे प्राप्त कर रहे हैं, बात नहीं करना चाहता। अच्छा यह होगा कि मैं आपको अपने कुछ अनुभव सुनाऊँ और बताऊँ कि जनताके बीच काम करना किस तरह सम्भव है, क्योंकि कानून बनाना हम सभीके हाथमें नहीं है। यह तो विधायकोंके हाथमें है और सरकारके हाथमें है। लेकिन घर-घर जाना और थोड़ी बहुत सान्त्वना देना तो हम सबके हाथमें है। मैंने यह बात अनु-

भवसे जानी है कि उपदेश देनेसे कुछ मतलब हल नहीं होगा। हमें शराबियोंके घरोंमें जाकर उनके जीवन-क्रमका अध्ययन करना चाहिए। महोदया, मैं आपके इस कथनका पूरा समर्थन करता हूँ किन्तु हम जबतक इस समस्याके कारणोंकी जाँच नहीं करेंगे, तबतक उसका कोई हल नहीं निकल सकता। हमारे देशवासी, बल्कि मैं कहूँ तो दुनिया-भरके लोग जो शराब पीते हैं, महज पीनेके लिए ही नहीं पीते। जिन्होंने शराब पी है या चखी है, उन्होंने मुझे बताया है कि उसका स्वाद बहुत अच्छा नहीं होता। उसमें कोई बहुत बढ़िया जायका नहीं होता, अलबत्ता सौ साल या दो सौ साल पुरानी शराबमें कोई बढ़िया जायका होता हो तो भले होता हो। लेकिन करोड़ों लोग वैसी शराब नहीं पीते और न पी ही सकते हैं। मेरा तो खयाल है कि यह जायका कृत्रिम होता है। मैं तो मामूली किस्मोंकी शराबकी ही बात कर रहा हूँ। शराबी लोगोंने मुझे बताया है कि वे शराब खास तौरसे बादमें होनेवाले असरके खयालसे पीते हैं — इसलिए पीते हैं कि उन्हें उसके बाद एक अर्ध चेतनाकी अवस्था प्राप्त होती है, वे क क्षणिक सुखका अनुभव करते हैं और उसमें भूल जाते हैं कि वे कौन हैं और कहाँ हैं। शायद हम सभी, जीवनमें किसी न किसी अवसरपर अपने आपको भुला देना चाहते हैं। हम कुछ ऐसे सुख बता सकते हैं जो वस्तुतः सुख नहीं, बल्कि दुःख हैं; मैं तो इससे भी कड़ी भाषाका प्रयोग करके कहनेवाला था कि वे यम-यातनाएँ हैं। इसलिए यदि हम शराबबन्दीका काम करना चाहते हैं तो हमें अपने इन देशबन्धुओंके घरोंमें जाना चाहिए; हमें अपने आपको ऊँचा नहीं समझना चाहिए और उन्हें नफरतसे नहीं देखना चाहिए और हमें महज इसीलिए अपने आपको देव-दूत, स्वर्गका देवता नहीं मान लेना चाहिए कि हम शराब नहीं पीते और वे पीते हैं। उनके यहाँ जब हम जायें तब हमें अपने मनमें यह सोचना चाहिए कि वे जो-कुछ करते हैं, क्या हम भी बिलकुल वही न करते। क्या आप जानते हैं कि बम्बईमें मजदूर लोग क्या करते हैं? वे ऐसी सन्दूकनुमा तंग खोलियोंमें रहते हैं, जिन्हें घर कहना भी ठीक नहीं। उनमें ताजी हवा नहीं पहुँचती। एक खोलीमें एक-एक नहीं, बल्कि कई-कई परिवार रहते हैं, क्योंकि ये अभागे मजदूर किरायेदार अक्सर, और कई बार कानूनके। ाफ अपनी खोलियोंमें कई और किरायेदार रख लेते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि वे अपनी सब कमाई शराबमें उड़ा देते हैं, और उन्हें अपने भूखसे पीड़ित बच्चोंको भी खिलाना-पिलाना होता है। वे उन बच्चोंकी खातिर, अपनी खोलियोंमें दूसरे किरायेदार बसा लेते हैं, इतना ही नहीं, बल्कि जुआ खेलते हैं और हर तरहके बुरे काम भी करते हैं।

वे शराब क्यों पीते हैं? उन रोगोत्पादक गन्दी कोठरियोंमें रहते हुए उनका दम घुटता है। आप उनकी इन कोठरियोंमें नहीं जाते। वे कारखानोंमें ८ या १०' घंटे काम करते हैं। वहाँ उन्हें मुकद्दम लोग काम करनेके लिए निरन्तर कोंचते रहते हैं। किन्तु आप तो वहाँ जाते ही नहीं सो आप यह नहीं जान सकते कि उनकी कोठरियाँ एकसे-एक गन्दी होती हैं। आप इन परिस्थितियोंमें काम नहीं करते। जब आपको अच्छा और साफ चावल न मिले, आटा सड़ा-गला और दुर्गन्धयुक्त मिले और बच्चोंके लिए भी दूध न मिल सके, तब आप उनकी हालत समझेंगे। बम्बईके कुछ रईससे-रईस लोग भी

अपने घरोंमें गाय या भैंस न रखें तो शुद्ध दूध नहीं पा सकते। बम्बई भयंकर रूपसे घना बसा है और वहाँ किसी लखपतीके लिए भी गाय या भैंस रखना कठिन है। तब ये लोग क्या करें? आप देख सकते हैं कि उनके पास कोई घर नहीं है। उनके कारखाने नरक-जैसे हैं। उनको नेक सलाह देनेवाला कोई मित्र नहीं मिलता। उनका कोई ईश्वर नहीं है, क्योंकि वे ईश्वरको भूल बैठे हैं। वे ऐसा ही मानते हैं कि भगवान् है ही नहीं क्योंकि अगर भगवान् होता तो वे इतने असहाय न होते। ऐसी है उनकी दुर्दशा!

हम उनके लिए क्या कर सकते हैं? आपमें से कुछ लोग उन जगहोंपर जायें और उन दरबोंमें रहनेकी कोशिश करें और देखें कि क्या तब भी आपकी इच्छा शराब पीनेकी नहीं होती। बोअर युद्धमें हमें तपती धूपमें तेजीसे चलना पड़ता था। तब मैंने अपने हाथोंसे लोगोंको रम[1] दी है। हमें जिन घायलोंको उठाकर ले जाना पड़ा था उनमें स्वर्गीय जनरल वुडगेट भी थे। डोलीवाहकोंने बहुत पराक्रम दिखलाया था। उनमें से कुछको शराब पीनेकी लत थी। उन्होंने मुझसे कहा, "अगर आप हमसे कल काम लेना चाहते हैं तो हममें से जो लोग कड़ी मेहनत करते हैं उनके लिए कमसे-कम थोड़ी-सी रमका इन्तजाम कर दें। मैंने उन्हें समझाया, "मैं भी आप लोगोंके साथ चला हूँ। और राशनमें रम भी मिलती है। लेकिन क्या इन लोगोंके साथ जो रम नहीं चाहते, आपके लिए रम लेना बहुत जरूरी है?" उन्होंने कहा, "हाँ"। जो अफसर राशनका इन्चार्ज था, मैं उसके पास गया और मैंने डोलीवाहक दस्तेके इंचार्जके नाते अपने हस्ताक्षरसे एक आवेदन दिया। मैंने उन लोगोंको बहुत खुशीसे रम तो दी, लेकिन ध्यान रहे कि उससे मुझे कुछ मलाल भी हुआ। मजदूरोंके बीच मुझे अब भी वैसा ही लग सकता है और इन कठिन परिस्थितियोंमें मेरा मन इन लोगोंको रम, व्हिस्की, ब्रांडी कुछ भी हो, देनेका होगा ताकि वे अपना गम गलत कर सकें। इस अभिशापका मूल इसीमें है। मर्द और औरत लाचार होकर शराब पीने लगते है, और अगर आप उनका उद्धार करना चाहते हैं तो यह काम भाषणोंसे कदापि नहीं कर सकते। हम अपने ऊँचे आसनोंसे उतरकर उनके पास जायें, उन्हें अपनी बराबरीका मानें, उनकी कठिनाइयोंको समझने और दूर करनेकी कोशिश करें और इस तरह उनका दिल जीतें। हम तभी उनका उद्धार कर सकते हैं। उनकी कठिनाइयाँ दूर करनेके प्रयत्नमें आपको अपनी जगह दृढ रहना होगा और यदि आप स्वयं उन कठिनाइयोंसे अछूते और मुक्त रह सके तो इसमें आपकी भी भलाई है और उनकी भी। किसी दूसरे तरीकेसे कोई उम्मीद नहीं। मैंने सोचा था कि मैं आपको अपने कुछ अनुभव सुनाऊँगा और आपका ध्यान जीवनके बीसियों सच्चे दृष्टान्तोंकी ओर खींचूंगा; ये दृष्टान्त सबकेसब भारतके किसी एक भागके नहीं, बल्कि लगभग सभी भागोंके हैं, समाजके किसी एक स्तरके नहीं, बल्कि सभी स्तरोंके, और केवल दक्षिण आफ्रिकाके ही नहीं, बल्कि इंग्लैंडके भी होंगे। लेकिन मैं समझता हूँ कि मैं जितना बता चुका उतना आपमें से कुछ लोगोंको इस दिशामें खोजबीन करनेकी उत्कट प्रेरणा देनेके लिए पर्याप्त है। आपके

१. एक प्रकारकी शराब।

यहाँ इस मद्रासमें ही गन्दी बस्तियोंमें ऐसी औरतें और ऐसे मर्द बहुतसे हैं जो इस समस्याकी गम्भीरताका खयाल नहीं करते। अगर आप सारी समस्यापर विचार करें तो आप चकरा जायेंगे। यह किसी एक आदमीके बूतेका काम नहीं है। इस महान् कामको पूरा करना हर किसीके बसकी बात नहीं। लेकिन जैसे समुद्रकी एक बूंदमें जहाज नहीं चल सकता, पर बूंदें मिलकर समुद्र बन जायें तो उसमें चल सकता है, वैसे ही सभी लोग अपनी-अपनी जगह दृढ़ निश्चयके साथ काम करें ताकि वे इस दुःसाध्य कार्यको मिलकर पूरा कर सकें। अगर हम सब अपनेको समुद्रकी एक तुच्छ बूंद समझें और सचाईसे काम करें, तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि भारतमें वह दिन अवश्य आयेगा जब मद्यपानका अभिशाप मिट जायेगा (जोरदार तालियाँ)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-३-१९२५

२१५. भाषण: हिन्दी प्रचार कार्यालय, मद्रासमें[1]

२४ मार्च, १९२५

मित्रो,

यह जगह ऐसी है जहाँ माना जाता है कि लोग हिन्दी समझ लेंगे। फिर भी मुझे यहाँ आपके सम्मुख अंग्रेजीमें बोलना अजीब लगता है। चूंकि उपस्थित लोगोंमें से अधिकांश आज हिन्दी नहीं जानते, अतः मैं अपना भाषण अंग्रेजीमें ही दूंगा। मेरी रायमें भारतमें सच्ची राष्ट्रीयताके विकासके लिए हिन्दीका प्रचार एक जरूरी बात है; विशेष रूपसे इसलिए कि हमें उस राष्ट्रीयताको आम जनताके अनुरूप साँचेमें ढालना है। आजसे पाँच वर्षसे कुछ पहले इसकी कल्पना इन्दौरमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनमें की गई थी जिसकी अध्यक्षता मैंने की थी। उस समय ऐसा सोचा गया था कि प्रचारका सारा काम मद्रास अहातेसे बाहरके क्षेत्रोंमें इकट्ठे किये हुए धनसे चलाया जाये क्योंकि उस दिनके अधिकांश वक्ता मारवाड़ी सज्जन थे और उन्हें हिन्दीसे प्रेम है। इस बातको पाँच साल हो चुके हैं और इस प्रचार-कार्यको आत्म-निर्भर बनानेकी दिशामें कुछ काम भी किया गया है। इसलिए मैं इस अवसरपर फिर कहना चाहता हूँ कि इस अहातेको इस कामका बोझ उत्तर भारतके कन्धोंसे हटाकर अब खुद अपने कन्धोंपर लेना चाहिए। ऐसा करना उनका कर्त्तव्य ही है। बहुत थोड़ेसे नौजवान हैं जो हिन्दी सीखते और उसका अध्ययन करते हैं। जब इस योजनाको रूप दिया गया था तब मैंने सोचा था कि इन निःशुल्क हिन्दी कक्षाओंमें नौजवान कांग्रेसके नामपर बड़ी संख्यामें यथासम्भव जायेंगे। लेकिन मुझे और इन कक्षाओंको चलानेवाले लोगोंको यह देखकर बड़ी निराशा हुई है कि इनमें बहुत ही कम नौजवान आये हैं।

१. हिन्दी प्रचार समिति, मद्रास द्वारा दिये गये हिन्दी मानपत्रका उत्तर देते हुए।

लेकिन हमें हताश नहीं होना चाहिए। जबतक हिन्दी सीखनेका इच्छुक एक भी तमिल-भाषी रहेगा तबतक यह संस्था बनी रहेगी; जिन लोगोंने अपने ऊपर यह भार लिया है उन्हें अपने-आपपर पूरा भरोसा है। साथ ही तमिल लोगोंको उनके प्रान्तमें आकर हिन्दी सिखानेका काम जिन हिन्दी-प्रेमियोंने उठाया है, वे उनसे यह कहे बिना न रहेंगे कि तमिल लोगोंने पर्याप्त उत्साह नही दिखाया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-३-१९२५

२१६. भाषण : महिला क्रिश्चियन कालेज, मद्रासमें

२४ मार्च, १९२५

आप जानती ही है कि मैं भारतमें अपनी यात्राके दौरान छात्रों और छात्राओंसे मिलता रहता हूँ। लेकिन मैं जब भी दक्षिणमें आता हूँ तब मुझसे मिलनेके लिए शायद बंगालको छोड़कर अन्य सभी जगहोंकी अपेक्षा यहाँ सबसे ज्यादा लड़कियाँ आती हैं। बंगाल लड़कियोंकी शिक्षामें उत्तर भारतके अन्य सभी प्रान्तोंसे आगे बढ़ा हुआ है, लेकिन वह दक्षिण भारतसे किसी भी हालतमें आगे बढ़ा हुआ नही है। त्रावणकोरमें लड़कियोंकी शिक्षाका जितनी तेजीसे प्रसार हुआ है, उसे देखकर तो मैं सचमुच आश्चर्यचकित रह गया हूँ। इसने तो मेरी आँखें ही खोल दी हैं। यह सवाल मेरे मनमें शुरूसे ही उठता रहा है: "भारत अपनी इन आधुनिक लड़कियोंका क्या करेगा?" मैं आपको भारतकी आधुनिक लड़कियाँ कहता हूँ। इन संस्थाओंमें हम जो शिक्षा पा रहे हैं, वह मेरी रायमें हमारे चारों ओरके जीवनसे मेल नहीं खाती, और हमारे चारों ओरके जीवनसे मेरा मतलब शहरोंमें हमारे चारों ओरके जीवनसे नहीं, बल्कि गाँवोंमें हमारे चारों ओर मौजूद जीवनसे है। आप सब नहीं तो आपमें से कुछ लड़कियाँ शायद जानती हैं कि सच्चा भारत इन चन्द शहरोंमें नही, बल्कि १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े भू-भागमें बसे हुए ७ लाख गाँवोंमें ही देखा जा सकता है। सवाल यह है कि आपके पास अपनी ग्रामीण बहनोंके लिए कोई सन्देश है या नहीं। सन्देशकी इतनी जरूरत शायद पुरुषोको नहीं है जितनी स्त्रियोंको है, और मैं बहुत पहले ही इस निष्कर्षपर पहुँच चुका हूँ कि जबतक भारतकी स्त्रियाँ पुरुषोंके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर काम नहीं करती तबतक भारतको मुक्ति नही मिल सकती — मुक्ति एक अर्थमें नहीं, कई अर्थोंमें नहीं मिल सकती। मेरा मतलब व्यापकतम अर्थमें राजनीतिक मुक्ति और फिर आर्थिक और आध्यात्मिक मुक्तिसे भी है।

हम अपनेको ईसाई, हिन्दू या मुसलमान कह सकते हैं। इस अनेकताके मूलमें एक स्पष्ट एकता है, और अनेक धर्मोंके मूलमें भी एक धर्म है। जहाँतक मेरे अनुभवकी बात है, हम मुसलमान, ईसाई या हिन्दू, किसी-न-किसी अवसरपर पाते हैं कि

हममें समानता बहुत-सी बातोंमें है और भेद बहुत थोड़ी-सी बातोंमें। तब मैं चाहता हूँ कि आप अपने मनमें एक बात सोचें कि आपके पास गाँवोंके लिए, गाँवकी स्त्रियोंके लिए, वहाँकी अपनी बहनोंके लिए कोई सन्देश है या नहीं। मुझे दुःख है कि आप भी मेरी तरह इसी नतीजेपर पहुँचेंगी कि जबतक आपकी शिक्षामें कुछ और चीज जोड़ी नहीं जाती तबतक आपके पास उनको देनेके लिए कोई सन्देश न होगा। यह सच है कि आजकी शिक्षा-प्रणालीमें ग्रामीण जीवनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। दुनियाके दूसरे भागोंमें ऐसी बात नहीं है। दुनियाके दूसरे भागोंमें मैंने देखा है कि जिनके हाथमें शिक्षाका प्रबन्ध है वे उन जनसाधारणको बराबर ध्यानमें रखते हैं जिनके बीच स्कूलों और कालेजोंसे निकलनेवाले छात्रोंको जाकर रहना और फैलकर काम करना पड़ेगा। लेकिन मैं भारतमें देखता हूँ कि छात्रोंका जनसाधारणसे कोई सम्बन्ध या सम्पर्क ही नहीं है। मैं निश्चित तौरपर जानता हूँ कि आपमें से कुछ छात्राएँ गरीब माँ-बापकी सन्तान हैं और खुद भी गरीब हैं। अगर आपने यह बात खुद न समझी हो, तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप उसे अब समझ लें और अपने मनमें सोचें कि क्या आपने जो बातें यहाँ सीखी हैं उन्हें आप उनके पास ले जा सकती हैं और क्या आपके घरके जीवनमें और स्कूलके जीवनमें कोई वास्तविक अनुरूपता है। इस अनुरूपताका अभाव ही दुःख-मूलक लगता है। इसीलिए मैं भारतके सभी छात्रोंसे कहता हूँ कि वे स्कूलोंमें जो-कुछ सीख रहे हैं उसमें कुछ और भी जोड़ें तब आप देखेंगे कि कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ है, जनसाधारणको भी कुछ सन्तोष मिला है और उन लोगोंको भी सन्तोष मिला है जो जनसाधारणके हितकी बात सोचते हैं।

मैं जानता हूँ कि ईसाई लड़कियाँ और लड़के — कमसे-कम कुछ लड़के और लड़कियाँ — ऐसा मानते हैं कि उनको जनताके विशाल समुदायसे कोई वास्ता नहीं है। यह उनका निरा अज्ञान है। आजकल कोई भी भला ईसाई यह नहीं कहता और मुझे विश्वास है कि इस कालेजमें आपका कोई शिक्षक भी आपको ऐसी शिक्षा नहीं देता और आपको यह नहीं सिखाता कि आपका जनसाधारणसे कोई वास्ता नहीं है और आप जनसाधारणसे सर्वथा भिन्न और पृथक् हैं। आप किसी भी धर्मकी माननेवाली क्यों न हों, मैं कहता हूँ कि आप भारतमें पैदा हुई हैं, भारतका अन्न खाती हैं और भारतमें जीवन बिताती हैं। अगर आप जन साधारणके साथ तादात्म्य स्थापित न कर सकेंगी तो आपका जीवन बहुतसे अर्थोंमें अपूर्ण रहेगा। जनसाधारण और आपको एकमें पिरोनेवाला सूत्र कौन-सा है? आपको शायद मालूम हो जायेगा या बता दिया जायेगा कि भारतमें साक्षर लोगोंकी प्रतिशत संख्या कितनी हास्यास्पद और नाममात्रकी है। आपको शायद बताया जायेगा कि भारतमें साक्षरता बराबर घटती जा रही है, जबकि उच्च शिक्षा बढ़ रही है। कारण कुछ भी हो, जनसाधारणमें शिक्षा बराबर घट रही है। पचास साल पहले गाँव-गाँवमें स्कूल थे, लेकिन वे अब संरक्षकोंके अभावमें बन्द हो चुके हैं। सरकारने नये स्कूल खोले हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश जिनके हाथोंमें शिक्षाका प्रबन्ध था, उन्होंने इन ग्रामीण स्कूलोंकी ओर बिलकुल ध्यान

ही नहीं दिया है। आजसे ५० साल पहले भारतमें साक्षर लोगोंका जो अनुपात था उसकी अपेक्षा आज उनका अनुपात वास्तवमें कम है।

वह सन्देश क्या है? मैं कहूँगा कि चरखा; क्योंकि भारतीय जनता बहुत ही गरीब है। हममें से कुछ लोग जानते हैं कि इस देशमें, कमसे-कम जनसाधारणमें, पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियोंको भी निर्वाहके लिए काम करना पड़ता है। शायद यह देश दुनियाके उन चन्द देशोंमें से है जहाँ स्त्रियाँ कठिनसे-कठिन काम भी करती है। मैं भारतके उस हिस्सेका रहनेवाला हूँ जहाँ औरतें फावड़ा और कुदालतक चलाती हैं। वे सड़कोंपर काम करती और पत्थर तोड़ती है। आजसे सौ साल पहले वे ये सब काम नहीं करती थीं। जब कभी सामाजिक कार्यकर्त्ता जनसाधारणके बीच काम करने जाते हैं तब औरतें उन्हें घेर लेती हैं और चरखेकी माँग करती हैं ताकि वे उससे कुछ पैसे कमा सकें। आपके लिए इन कुछ पैसोंका कोई अर्थ भले ही न हो, लेकिन उनके लिए तो ये बहुत बड़ी चीज हैं। मैं चाहता हूँ कि आपकी आचार्या आपको किसी दिन आसपासके गाँवोंमें ले जायें, ताकि आप अपनी आँखोंसे देख सकें कि भारतकी स्त्रियाँ क्या-क्या काम करती हैं। तब मुझे आपसे यह बात इतना जोर देकर कहनेकी जरूरत नही रह जायेगी। आपको चरखा चलाना शुरू करना होगा। उसमें आपको और जनसाधारणको एक अटूट बन्धनमें बाँधनेकी शक्ति है। यह आपको आपके कर्त्तव्यकी याद निरन्तर दिलायेगा। अपनी शिक्षा समाप्त कर चुकनेके बाद आप सार्वजनिक जीवनसे बिलकुल ही अलग न हो जायें; आप अपनी घर-गृहस्थीमें ही पूरी तरह न डूब जायें, बल्कि इन गरीब और जरूरतमन्दोंकी तरफ अपनी सहायताका हाथ बढ़ायें, जिन्हें जितनी तरहकी सहायता सम्भव हो सकती है, उस सबकी जरूरत है। मुझे आशा है कि जिन दुःखी घरोंमें घोर निराशा और कंगालीका राज है उन घरोंमें खुशी लानेके लिए आपके हाथमें चरखा एक अमूल्य साधन सिद्ध होगा। भारतके इतिहासकार हमें बताते हैं कि इस देशमें कुल आबादीका दसवाँ हिस्सा आधे पेट खाकर रहता है। क्या आप इस बातको जानकर तनिक भी सन्तुष्ट बनी रह सकती है? क्या मै ऐसी आशा नहीं कर सकता कि आपके मनमें मेरे इस निवेदनसे उनकी सेवा करनेकी आकाक्षा पैदा हो जायेगी; मै देखता हूँ कि आपमें से अधिकांश ईसाई हैं। मै आपको ईसाके एक वचनकी याद दिलाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा था: सुईके नकुएमें से ऊँटका निकल जाना आसान है, किन्तु किसी धनवानका स्वर्गके राज्यमें प्रवेश पाना आसान नहीं है। इसे याद रखते हुए, आप जो शिक्षा प्राप्त कर रही हैं उसका उपयोग गरीबोंकी सेवामें करें।

ईश्वर आपका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९२५

२१७. भाषण : "स्वराज्य" कार्यालय, मद्रासमें[1]

२४ मार्च, १९२५

इस समय मेरी जो महत्वाकांक्षा है उसे आपने अत्यन्त ही स्पष्ट रूपमें व्यक्त कर दिया है। मैं खाते, सोते और सभी समय सूत कातने, खद्दर बुनने, अस्पृश्यता-निवारण करने और लगभग सारे वर्गों तथा जातियोंके बीच एकता पैदा करनेकी बात-के अलावा और कुछ सोच नहीं सकता। लेकिन इनमें से अन्तिम दो चीजोंके मामलेमें काम करनेकी हमारी क्षमता समिति ही है। सभी लोग न तो अस्पृश्यता-निवारण-में समान योग दे सकते हैं, और न सभी लोग विभिन्न वर्गोंको, जैसे वर्तमान समयमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको, या जैसा मुझे अभी मालूम हुआ है, अब्राह्मणों और ब्राह्मणोंको करीब लानेमें ही बराबर योग दे सकते हैं। (हँसी)। मैं कहता हूँ कि यह कोई ऐसा काम नहीं है जिसमें हर आदमी सिर्फ कुछ योग देकर या कुछ कामोंसे बचा रहकर मदद पहुँचा सके। अतः यह कार्य अनिश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेता है, जबकि सूत कातकर और खद्दर पहनकर नौजवान, बूढ़े और अपाहिज सभी यथाशक्ति योग दे सकते हैं। एक छोटा-सा पंचम बालक भी चाहे तो हाथ-कताईमें श्री प्रकाशम को मात दे सकता है; (हँसी)। और एक साधारणसे-साधारण आदमी भी खद्दर पहननेके मामलेमें श्री श्रीनिवास आयंगरसे बाजी मार ले जा सकता है।

अतः मैं इस मानपत्रमें दिये गये इस आश्वासनके लिए कृतज्ञ हूँ कि 'स्वराज्य' खद्दर और चरखेके सन्देशको न छोड़ेगा, बल्कि इस सन्देशको गाँव-गाँवमें पहुँचायेगा। मैं नहीं जानता कि वह इस सन्देशको गाँव-गाँवमें कैसे पहुँचायेगा, क्योंकि लोग अंग्रेजीमें छपनेवाले 'स्वराज्य' को तो पढ़ते नहीं। मैं मानता हूँ कि देशके सामने यही एक कार्यक्रम ऐसा है जो सबसे सरल है और जिसमें सब भाग ले सकते हैं। लेकिन सरलतम योजनाएँ ही अधिकतम महत्त्वपूर्ण होती हैं। मैं जानता हूँ कि इस समय मेरे पास देनेके लिए सिर्फ यही सन्देश है; ऐसी है हमारी दुःखजनक स्थिति। मैंने कालेजकी लड़कियोंके सामने बोलते हुए कहा था कि भारतमें घोर निरक्षरता है, और हमारे कुछ प्रतिशत देशवासी ही पढ़-लिख सकते हैं। वे इस सन्देशको अखबारोंसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? इसलिए मैंने श्री प्रकाशमसे पूनामें कहा था कि वे चलते-फिरते अखबार बन जायें। मैंने सबको यही सलाह दी है। अगर हम कम बातें करें या केवल चरखेकी ही बात करें, तो चरखेका सन्देश फैलेगा। आप अपने हाथमें चरखा लें, गाँवमें कहीं भी जमकर बैठ जायें और केवल उसे चलायें बस, गाँववाले और उनके बच्चे उसे अपना लेंगे।

१. स्वराज्यके सम्पादक श्री टी० प्रकाशम द्वारा पत्रके कर्मचारियों और संचालकोंकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

आप जानते हैं कि युद्धके दौरान और युद्धके बाद भी यूरोपमें घर-घर केवल युद्ध-की और युद्धजनित बुराइयोंकी ही चर्चा होती थी। उसी तरह मैं वास्तवमें चाहता हूँ कि हमारे अखबार भी चरखेके अलावा और किसी चीजकी चर्चा न करें। अगर हम अच्छी तरह समझते हैं कि देशके सामने इसके अलावा कोई दूसरा जीवन्त वास्तविक कार्यक्रम नहीं है, और जहाँतक मैं जानता हूँ यही एक वास्तविक कार्यक्रम है; तो हम भी वैसा ही क्यों न करें। इसलिए आप इस सन्देशको इस कार्यालयसे कमसे-कम मद्रास अहातेके प्रत्येक गाँवमें तो ले ही जायें। (जोरसे हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९२५

२१८. भाषण : भंगियोंकी सभा, मद्रासमें

२४ मार्च, १९२५

मोनीगर चौलट्रीके निकट कुप्पत्तोट्टीके मैदानमें रहनेवाले भंगियोंने कल शाम महात्माजीका स्वागत किया। . . . एक भंगीने तेलुगुमें अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। महात्माजीने उसका उत्तर हिन्दीमें[1] संक्षेपमें दिया, और उसका श्री जी० रंगय्या नायडूने तेलुगुमें अनुवाद किया। महात्माजीने कहा कि जरूरत तो इस बातकी है कि आप अपने दैनिक जीवनमें सफाईके उसूलोंपर अमल करें। स्वच्छ रहें, साफ-सुथरे कपड़े पहनें और हर रोज सुबह स्नान करें। आपको प्रतिदिन प्रातः और सायं ईश्वरकी प्रार्थना करनी चाहिए। मुझे आप लोगोंमें से अधिकांशको गन्दे कपड़े पहने देखकर दुःख होता है। आप लोगोंको अपना काम नहीं छोड़ना चाहिए और शराब जैसी बुरी आदतोंमें अपनी कमाई नहीं गँवानी चाहिए। अन्तमें, मेरा आपसे यही कहना है कि आप चरखा चलायें और खद्दर पहनें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९२५

१. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

२१९. भाषण : अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें[1]

२४ मार्च, १९२५

मित्रो,

आपने जो अभिनन्दन-पत्र दिया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने स्वराज्य प्राप्त करनेका जो उपाय बताया है, उसे आप जानते ही हैं। सबसे पहली बात यह है कि हम सभीको देशके लिए कमसे-कम आधा घंटा रोज सूत कातना चाहिए। हम सभीको हाथकता और हाथबुना खद्दर पहनना चाहिए। आपसे जो-कुछ कहा जा रहा है अगर आप उसे सुनेंगे नहीं, मानेंगे नहीं, तो ऐसी सभाओंमें हजारोंकी संख्यामें भीड़ करनेसे आपको कोई लाभ न होगा। इसलिए आपमें से हरएकको विदेशी वस्त्रोंका त्याग करना और खद्दर पहनना चाहिए। हिन्दुओंको चाहिए कि वे अस्पृश्यताको अपराध और पाप समझें। हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों, सभीको मिलजुलकर शान्तिपूर्वक और भाई-भाईकी तरह रहना चाहिए। हमको जुआ खेलना और शराब पीना छोड़ देना चाहिए और अपनी-अपनी पद्धतिके अनुसार विनम्र भावसे ईश्वरकी पूजा करनी चाहिए। हम सभीको सुबह तड़के मुँह धोकर, दाँत साफ करके और अपने आपको पूरी तरह स्थिर चित्त बनाकर ईश्वरका नाम लेना चाहिए। हमें ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें नेक बनने और नेक रहनेमें सहायता दे। हमें उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें अपने देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें सहायता दे। हमें किसीका अहित करने या किसीको आघात पहुँचानेका विचार मनमें नहीं लाना चाहिए। अगर हम ये सब काम कर सकें, तो मुझे साफ दिखाई पड़ता है कि हम बहुत ही कम समयमें स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। अगर हमें ये सब काम करने हैं तो हमें अनुशासन-पालन सीखना होगा। मेरा या किसी अन्य देश-सेवीका जयके नारे लगाना और शोर करना बिलकुल बेकार है।

अगर हम उपयुक्त अवसरोंपर कुछ राष्ट्रीय नारे लगाना चाहते हैं, तो वे नारे एक आवाजमें लगाये जाने चाहिए, लेकिन हर मौकेपर और हर समय नहीं। इनके लिए कुछ निश्चित अवसर होने चाहिए। पहले नेताको नारा लगाना चाहिए उसके बाद दूसरे लोगोंको। जब सभा आरम्भ हुई, उस समय बड़ा शोर-गुल हो रहा था। अगर हमें देशका सैनिक बनना है, तो हमें सैनिकोंकी तरह ही आचरण करना चाहिए। अतः हमारा चलना-फिरना और उठना-बैठना सब व्यवस्थित होना चाहिए। हम सभाएँ करें, तो इस ढंगसे करें कि उनमें हजारों लोग बिना किसी असुविधा और शोर-शराबेके भाग ले सकें। मेरे पैर छूनेसे या मुझपर फूल बरसानेसे कुछ लाभ न होगा। ऐसा अन्धा प्रेम और भक्ति-भाव स्वराज्यको निकट नहीं ला सकता।

१. यह अभिनन्दन-पत्र मद्रासकी कांग्रेस सभा द्वारा दिया गया था। गांधीजीके भाषणका तेलुगुमें अनुवाद श्री एम० एस० सुब्रह्मण्यम् अय्यरने किया था।

अब मैं अभी आपकी इस बातकी परीक्षा लेना चाहता हूँ कि मैंने जो-कुछ कहा है उसे आपने समझा है या नही, और आपके दिमागमें उसकी सचाई स्पष्ट हुई है या नहीं। मैं अपना भाषण समाप्त करनेवाला हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप नारे न लगायें, कोई मेरे पैर छूनेकी कोशिश न करे और मेरे लिए रास्ता छोड़ दें, ताकि मैं जल्दीसे बाहर जा सकूँ। स्वयंसेवकोंको आपके परेशान करनेवाले प्रेमसे मेरी रक्षा करनेके लिए हाथसे-हाथ मिलाकर दोनों ओर कतारें बनाकर खड़े होनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। लेकिन आपकी परीक्षा लेनेसे पहले मैं अपनी बात पूरी कर देना चाहता हूँ। मुझे इसके बाद मद्रासमें किसी दूसरी सभामें नहीं बोलना है। मै आपके बीच से उठकर सीधा स्टेशन जा रहा हूँ। मैंने आपके सामने जो कार्यक्रम मोटे रूपमें रखा है, वह देशके सामने १९२० से मौजूद है। मैं तीन महीने पूरे होनेसे पहले ही यहाँ फिर आनेकी उम्मीद करता हूँ और यह भी उम्मीद करता हूँ कि मै तब आपको सिरसे पैरतक हाथकते सूतका खद्दर पहने देखूँगा। मै आशा करता हूँ कि आप कताई करनेके लिए रुई और पूनियाँ या चरखे पानेके लिए कांग्रेस-कार्यालयोंमें भीड़ लगा देंगे। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि मैं आपसे जो-कुछ करनेके लिए कहता रहा हूँ आप उसे करनेकी जरूरत समझ सकें और उसे करनेकी शक्ति प्राप्त कर सकें। आपने जिस धीरजसे और शान्तिसे मेरी बातें सुनीं उसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। और अब परीक्षा शुरू होती है। मैं सभामें बैठे हुए लोगोंसे आशा करता हूँ कि वे मुझे जानेके लिए रास्ता दे देंगे और जबतक मै मोटरमें बैठ न जाऊँ तबतक अपनी-अपनी जगहोंपर ही बैठे रहेंगे। अगर आप यह एक छोटा-सा काम कर सकेंगे तो मैं अपने मनमें आपके और भारतके उत्थानकी सहज आशा लेकर जा सकूँगा। ईश्वर आपका कल्याण करे। (जोरकी तालियाँ)।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९२५

२२०. त्रावणकोरके बारेमें

रमणीक प्रदेश

मेरी त्रावणकोरकी और उसी प्रसंगमें कोचीनकी यात्रा बड़ी ही आनन्दपूर्ण रही। यह एक अत्यन्त सुन्दर प्रदेश है। मेरे त्रावणकोर-वासके थोड़ेसे दिन बराबर यात्रा करने और लोगोंकी भारी-भारी भीड़ोंसे मिलनेमें बीते। त्रावणकोरका जलमार्ग बहुत सुन्दर है और उसी तरह वहाँकी सड़कें भी सुन्दर हैं। उसकी ज्यादासे-ज्यादा लम्बाई १७९ मील और चौड़ाई ७५ मील है। उसका क्षेत्रफल ७,६२५ वर्गमील है और इसमें से आधेसे-अधिक भाग पहाड़ियों और जंगलोंसे ढँका है। मैंने त्रावणकोरमें उत्तरसे प्रवेश किया था। वाइकोम इस राज्यकी लगभग उत्तरी सीमापर ही स्थित है।

१. गांधीजी बिना किसी असुविधाके आसानीसे सभा-स्थलसे बाहर पहुँच गये।

मेरा रास्ता एक सुन्दर जलमार्गसे होकर पड़ता था, जिसके दोनों ओर हरे-भरे पेड़-पौधोंकी, मुख्यतः ताड़ोंकी भरमार थी। मैंने दक्षिणमें कन्याकुमारीतक यात्रा की जहाँ सागर प्रतिदिन भारत माताके पग पखारता है। यात्रा करते हुए मुझे लगता था कि मैं एक सुन्दर और सुनियोजित उद्यानके इस छोरसे उस छोरतक यात्रा कर रहा हूँ। त्रावणकोर ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ थोड़ेसे नगर और बहुत सारे गाँव हों। वह तो पूराका-पूरा एक बड़ा विशाल नगर जैसा लगता है जिसकी आबादी ४,००,००० है। और जिसमें स्त्री और पुरुषोंकी संख्या लगभग बराबर-बराबर है। सारा प्रदेश छोटे-छोटे फार्मोमें बँटा हुआ है जिनमें छोटे-छोटे सुन्दर घर बने हुए हैं। अतः यहाँ-पर भारतके अन्य गाँवों-जैसी — जहाँ खुली भूमि और खुले वातावरणके बावजूद मनुष्य और पशु थोड़ेसे स्थानमें ही ठुंसे रहते हैं — कुरूपता नहीं थी। यह कहना कठिन है कि मलाबारके लोग इन दूर-दूर स्थित छोटे-छोटे घरोंमें रहकर भी लुटेरों और वन्य-पशुओं-से अपनेको किस प्रकार सुरक्षित अनुभव करते हैं। मैंने तो यही अनुमान किया कि यहांके स्त्री और पुरुष अवश्य ही बहादुर होंगे। मैंने इस सम्बन्धमें जिनसे पूछा वे भी इस अनुमानका समर्थन करनेके अलावा और कोई कारण नहीं बता सके।

स्त्रियोंका दर्जा

भारतमें औरतोंको उतनी आजादी और कहीं नहीं है जितनी कि मलाबारमें है। स्थानीय कानून और प्रथाओंमें उन्हें समुचित संरक्षण प्राप्त है। स्त्रियोंमें त्रावणकोर जितनी शिक्षा भी और कहीं नहीं है। शिक्षाकी दृष्टिसे तो त्रावणकोर वस्तुतः भारतका सबसे उन्नत प्रदेश लगता है। वहाँ १९२२ में हजारमें २४४ लोग साक्षर थे; पुरुषोंमें ३३० और स्त्रियोंमें १५०। उनकी साक्षरोंकी यह संख्या पुरुषों और स्त्रियों दोनोंमें दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इस आश्चर्यजनक प्रगतिमें पिछड़े वर्गोंके लोग भी पूरा हिस्सा ले रहे हैं। यह प्रगति तो मुझ-जैसे शंकाशील व्यक्तिको चिन्तित कर देती है। यदि इस तमाम शिक्षाका मतलब अपने समूचे परिवेशसे असन्तोष, अतीतसे सम्बन्ध-विच्छेद और भविष्यके प्रति निराशा, और रोजगारके लिए छीना-झपटी हो तो निश्चय ही यह पूराका-पूरा सुन्दर भवन किसी भी दिन अचानक ढह जायेगा। जिसमें हृदय और हाथको समुचित प्रशिक्षण न मिले, ऐसी कोरी साक्षरता मेरी दृष्टिमें निःसार है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि जैसे-तैसे दी गई शिक्षाके बजाय ऐसी शिक्षा देनेके लिए जोरदार कदम उठाया जाये, जिसकी योजना विभिन्न धंधोंकी दृष्टिसे की गई हो और जिससे उच्च शिक्षा प्राप्त लोगोंके लिए सरकारी नौकरीकी इच्छा करना जरूरी न रह जाये, बल्कि वे अपने जीवन-यापनके लिए खेती-बारी या बुनाई-जैसा कोई काम कर सकें। जबतक विद्यार्थियोंका रुझान जीविकोपार्जनके मुख्य और स्वाभाविक साधनोंकी ओर नहीं किया जाता और जबतक उनके मस्तिष्कको भारतकी विशेष दशाओंके अनुरूप वैज्ञानिक दृष्टिसे विकसित नहीं किया जाता तबतक शिक्षित वर्ग और जन-साधारणके बीचकी खाई बढ़ती ही जायेगी और शिक्षित वर्ग जनसाधारणकी तरह जीवन-यापन करने, उनका हित-साधन करने और उनके जीवनको मधुर बनानेके बजाय उनके ऊपर भार बनकर रहेगा।

राज्य-संरक्षिका महारानी

लेकिन मैं यह टिप्पणी आलोचनाकी भावनासे नहीं लिखना चाहता, क्योंकि मेरे दिमागमें त्रावणकोरकी जो तस्वीर है वह पूरी तरह खुशगवार है। महारानीसे मिलकर तो मुझे हर्ष और आश्चर्य ही हुआ। मेरा खयाल था कि महारानी कोई बेहद सजी-धजी महिला होंगी और हीरोंसे जड़े आभूषण और कण्ठहार पहने होंगी। किन्तु वहाँ मैंने कुछ और ही देखा; मैंने देखा कि मेरे सामने एक ऐसी सुशील युवती खड़ी है, जो सौन्दर्यके लिए आभूषणों और भड़कीले वस्त्रोंपर नहीं, बल्कि अपनी सहज सुन्दर मुखाकृति और अपने मर्यादित व्यवहारपर निर्भर है। उनकी वेशभूषा जैसी सादी थी, उनके कमरेकी सजावट भी वैसी ही सादी थी। उनकी कठोर सादगी देखकर मेरे मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई। मुझे लगा कि वे उन अनेक राजाओं और लखपतियोंके सम्मुख एक पदार्थपाठकी तरह हैं, जिनकी तड़क-भड़कवाली कीमती कामदार पोशाक, भद्दे दिखनेवाले हीरे, अँगूठियाँ और नगीने और इससे भी ज्यादा आँखको गड़नेवाला और लगभग गँवारू फर्नीचर कुरुचिपूर्ण लगते हैं, और जिस जन-साधारणसे वे अपनी सम्पदाका संग्रह करते हैं, उनसे जब तुलना करते हैं तो दोनोंकी स्थितियोंमें बहुत बड़ा सन्तापकारी अन्तर मालूम होता है। मुझे तरुण महाराजा और छोटी महारानीसे मिलनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने सारे महलमें चारों ओर वही सादगी देखी। महाराजा एक हिमधवल धोती पहने थे जो उन्होंने लूँगीकी तरह लपेट रखी थी और उनके तनपर कमरसे जरा नीची बंडी थी। मेरा खयाल है कि आभूषणके नामपर उनकी अँगुलीमें एक अँगूठी भी नहीं थी। छोटी महारानीकी वेशभूषा भी उतनी ही सादी थी, जितनी राज्य-संरक्षिका बड़ी महारानीकी। मैंने देखा उन्होंने केवल एक पतला-सा मंगलसूत्र पहन रखा था। दोनों महिलाएँ हाथकी बुनी सफेद साड़ियाँ और उसी प्रकारके कपड़ेकी आधी बांहवाली कुरती पहनें थीं। कुरतीपर कोई लेस या कढ़ाईका काम नही था।

आशा है, पाठक त्रावणकोर राज-परिवारके इस सूक्ष्म चित्रणके लिए मुझे क्षमा करेंगे। इसमें हम सबके लिए एक सबक है। राज-परिवारकी सादगी इतनी स्वाभाविक इसलिए थी कि वह समूचे वातावरणसे मेल खाती थी। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुझे मलाबारकी स्त्रियाँ बहुत अच्छी लगी हैं। मैंने असमको छोड़कर इतनी सादी और फिर भी सुरुचिपूर्ण वेशभूषावाली स्त्रियाँ मलाबारके अलावा भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं देखीं। लेकिन मैं असमकी बहनोंसे कहना चाहता हूँ कि मलाबारकी स्त्रियाँ तो सम्भवतः उनसे भी ज्यादा सादी हैं। उन्हें अपनी साड़ियोंमें किनारीकी भी जरूरत नही होती और वे चार गजसे कमकी ही होती हैं। इसके विपरीत पूर्वी तटकी तमिल बहनोंको अपने लिए लगभग दस गजकी गहरे रंगोंवाली साड़ियोंकी जरूरत होती है। मुझे मलाबारकी स्त्रियोंको देखकर सीताके वनवासकी याद आई, जब उन्होंने अपने पथमें पड़नेवाले मैदानों और जंगलोंको अपने सुन्दर और नंगे चरणोसे पावन किया था। मेरे लिए उनके श्वेत वस्त्र आन्तरिक पवित्रताके चिह्न हैं। मुझे बताया गया कि पूरी स्वतन्त्रता होनेपर भी मलाबारकी स्त्रियाँ बहुत ही पवित्र आचरणकी हैं। मैं वहाँकी सुशिक्षित और प्रगतिशील लड़कियोंसे मिला। उनकी आँखोंसे भी

वही शील और सौजन्य झलकता था जो ईश्वरने भारतकी स्त्रियोंको शायद औरोंसे कहीं ज्यादा दिया है। मुझे लगा कि उनकी शिक्षा और उनकी स्वतन्त्रता उनकी इस शालीनताका अपहरण नहीं कर पाई है। मलाबारके पुरुषोंकी रुचि भी सामान्यतः वहाँकी स्त्रियोंकी रुचिकी तरह ही सादी है। लेकिन यह कहते हुए दुःख होता है कि तथाकथित उच्च शिक्षाने पुरुषोंपर खराब असर डाला है और कइयोंने अपने मूल लिबासकी सादी चीजोंमें और कई चीजें बढ़ा ली हैं, और ऐसा करके असुविधा मोल ले ली है, क्योंकि इस देशके अत्युष्ण जलवायुमें सफेद और कमसे-कम वस्त्र ही उपयुक्त हैं। लोग इसमें अस्वाभाविक और अशोभनीय कपड़े बढ़ाकर कला और स्वास्थ्य, दोनोंके ही नियमोंका उल्लंघन करते हैं।

खद्दरकी कमी

मलाबारके स्त्री-पुरुषोंका सामान्यतः ऐसा प्रशंसात्मक विवरण पढ़नेके बाद पाठक यह अपेक्षा करेंगे कि वहाँ अवश्य ही खद्दरका बहुत व्यापक प्रयोग होता होगा। लेकिन मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि बात ऐसी नहीं है। हालाँकि मलाबारमें मिलके बने कपड़े पहननेका कोई उचित कारण नहीं है, फिर भी वहाँ खद्दरकी प्रगति नहींके बराबर है। यदि वहाँ खद्दरका काम अच्छी तरह संगठित किया जाये तो लोग खद्दरको बिना किसी कठिनाईके अपना लेंगे, क्योंकि वहाँके लोगोंके पास खद्दर इस्तेमाल न करनेका वैसा कोई बहाना नहीं है, जैसा भारतके अन्य भागोंमें है। उन्हें रंग-बिरंगे कपड़े नहीं चाहिए। उन्हें ज्यादा लम्बे कपड़ोंकी जरूरत नहीं। वे सिरपर पगड़ी या और कोई चीज नहीं पहनते। इसलिए वे अपनी रुचिमें बिना कोई भारी परिवर्तन किये हुए खद्दरको अपना सकते हैं। मुझे किसी भी मलाबारीने लोगोंको खद्दर अपनानेके लिए राजी करनेमें कोई कठिनाई होनेकी बात नहीं कही। हाँ, कुछ लोगोंने खद्दरके बहुत महँगे होनेकी बात जरूर कही। लेकिन स्थानीय रूपसे बनाया गया खद्दर महँगा नहीं होगा, क्योंकि मजदूरीकी दर नीची है। लेकिन किसीने चरखे और खद्दरके कार्यको संगठित रूप देनेकी बात ही नहीं सोची है। खुशीकी बात है कि वहाँ अभी यह कला बिलकुल समाप्त नहीं हुई है। कन्याकुमारीके पास आज भी एक हाट लगती है जिसमें हाथका कता सूत बेचा जाता है। वहाँ हजारों बुनकर हैं जो मिलके बने सूतका कपड़ा बुनते हैं।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने कुछ काम किया है, लेकिन वह बहुत ही कम है। वाइकोमके सत्याग्रही इससे कहीं ज्यादा काम कर रहे हैं। लेकिन अभी बहुत-कुछ करनेकी जरूरत है।

आशा

अभी हालमें विधान परिषद्में एक प्रस्ताव पास किया गया है। इसमें सरकारसे कहा गया है कि वह राज्यके देशी भाषाके स्कूलोंमें चरखा चलवानेकी व्यवस्था करे। दीवान महोदयने श्रीमूलम जनसभामें भाषण देते हुए कहा कि इस प्रस्तावको अगले सत्रसे कार्यरूप दिया जायेगा। उसके लिए चालू वर्षके बजटमें व्यवस्था कर दी गई है

और एक योग्य कताई-शिक्षककी सेवाएँ प्राप्त करनेके लिए विज्ञापन दे दिया गया है। यदि स्थानीय सरकार निश्चयपूर्वक और ढंगसे काम करे तो हाथ-कताईको लोकप्रिय बनानेके लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है। राज्यका एक हाथ-कताई विभाग है। उसमें एक सूती कपड़ा विशेषज्ञ है। दीवान महोदयने अपने भाषणमें हाथ-कताईके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा वह उद्धृत करने योग्य है। उन्होंने कहा:

> बुनाई-विशेषज्ञको निर्देश दिया गया था कि वह सबसे पहले अपना सारा ध्यान हाथ-करघा बुनाईके सुधारकी ओर लगाये। यह उद्योग देशका सबसे महत्त्वपूर्ण कुटीर उद्योग है। बुनाई और रंगाईके उन्नत तरीकोंको लागू करने और प्रदर्शित करनेके लिए बड़े पैमानेपर एक केन्द्रीय तकनीकी संस्थाका होना जरूरी है। इसके लिए आवश्यक भवनोंका निर्माण-कार्य कला-शिक्षण शालाके अहातेमें चल रहा है। यह अहाता आसपासकी जमीनें लेकर और बड़ा कर दिया गया है। जबतक यह भवन नहीं बनता तबतक एक किरायेकी इमारत लेकर इस तकनीकी संस्थाका काम शुरू कर दिया गया है। बुनाई विशेषज्ञने इस संस्थामें हाथसे बुनाई, रंगाई और सलाईसे बुननेके कामकी शिक्षा देनेके लिए ६-६ विद्यार्थियोंको लिया है। इस संस्थामें सलाईसे बुनाईके और हाथकरघा बुनाईके उन्नत तरीकोंका और रंगाईके लिए देशी रंगोंके इस्तेमालकी सम्भावना-का व्यावहारिक प्रदर्शन किया जा रहा है। यह संस्था जनताके लिए खुली हुई है और इन चीजोंमें दिलचस्पी रखनेवाले लोग बड़ी संख्यामें वहाँ जाकर देखेंगे, ऐसी आशा की जाती है। बुनकरोंके दो सफरी दल नियुक्त किये गये हैं। इनमें से एक राज्यके दक्षिणी ताल्लुकोंमें घूम-घूमकर हाथ-करघा उद्योगमें लगे बुनकरोंमें काम कर रहा है और दूसरा उत्तरी ताल्लुकोंके बुनकरोंमें। बुनाई विशेषज्ञ अपने प्रयोगोंसे प्राप्त होनेवाले परिणामोंको इन्हीं बुनकरोंके दलों द्वारा राज्य-भरमें फैले हाथ-करघा उद्योगके बुनकरोंको बताते हैं और प्रचारित करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इन बुनकर दस्तोंने लगभग २०० घोबियोंको बसाया। बुनकरोंको करघेके पुर्जे सस्ते भावपर मुहैया करनेके लिए दो बिक्री-केन्द्र खोले गये हैं, एक त्रिवेन्द्रममें और दूसरा नागरकोयलमें। इसके अलावा ये सफरी दल इन पुर्जोंको घर-घर जाकर बुनकरोंके हाथ बेचते हैं।

अगर इस कार्यको सफल होना है तो जो व्यवस्था बुनकरोंके लिए की जा रही है वही हाथ कताईके लिए भी करनी पड़ेगी। सम्बन्धित विभाग चरखेमें सुधार कर सकता है और जो चरखे इस्तेमालमें हैं उनकी जाँच कर सकता है। वह गरीब लोगोंको चरखे उधार दे सकता है और किस्तोंपर बेच सकता है। वह सस्ती दरों-पर बुनाईका कार्य हाथमें लेकर ऐच्छिक हाथ-कताईको बढ़ावा दे सकता है। वह बुन-करोंको हाथका कता सूत इस्तेमाल करनेके लिए प्रोत्साहित कर सकता है। और इससे ज्यादा शोभाजनक या उपयुक्त क्या हो सकता है कि राजपरिवारके लोग स्वयं

हाथसे सूत कातें और इस प्रकार उसे दलित वर्गके लोगोंमें लोकप्रिय बनायें? आबादी मोटे तौरपर इस प्रकार है:

ब्राह्मण	६०,०००
सवर्ण हिन्दू	७,८५,०००
अस्पृश्य	१७,००,०००
ईसाई	११,७२,९३४
मुसलमान	२,७०,४७८
अध्यात्मवादी	१२,६३७
अन्य धर्मावलम्बी	३४९
कुल:	४०,०६,०६२[1]

इन १७ लाख अस्पृश्यों और ११ लाख ईसाइयोंमें से अधिकांश बहुत गरीब हैं। उनके लिए गृह-उद्योगके रूपमें खाली वक्तमें कताई तो वरदान ही है। जिनके पास खेती है वे कताईका काम पूरे दिन नहीं करते और न कर सकते हैं।

यदि राज्य इस महान् राष्ट्रीय उद्योगके विकासका पूरा प्रयत्न करे और खद्दरको सरकारी संरक्षण दे तो कपासको राज्यके चालीस लाख लोगोंकी जरूरतके लायक कपड़ेकी शक्लमें लानेके लिए जितना श्रम दरकार होगा उससे सिर्फ प्रति व्यक्ति तीन रुपयेके हिसाबसे भी सारी जनताकी बचतमें, दूसरे शब्दोंमें कहें तो आयमें, तुरन्त ही कमसे-कम १,२०,००,००० रुपयेकी वृद्धि हो जायेगी। त्रावणकोर-जैसा अत्यन्त ही सुव्यवस्थित राज्य हाथ-कताईके मामलेमें एक सुनियोजित वैज्ञानिक दृष्टि अपनाकर बहुत ही कम समयमें अकाल, बाढ़ और गरीबीकी अपनी समस्याको हल कर सकता है।

ईसाइयोंसे

मुझे सभी ईसाइयोंको — बिशपसे लेकर आम ईसाईतक को — विदेशी वस्त्र पहने देखकर बहुत क्षोभ हुआ। इस राज्यमें ईसाई लोग ही सबसे अधिक शिक्षित और प्रगतिशील हैं। देशके प्रति उनका कर्त्तव्य है कि वे अपनी उच्च शिक्षाको, बुद्धिको देशकी सेवामें लगायें। उनकी सबसे महती सेवा यही हो सकती है कि वे कताई और चरखेको अपनाकर अन्य सभी जातियोंके सम्मुख उदाहरण रखें। मैं अन्योंको छोड़कर सिर्फ ईसाइयोंसे ही यह अनुरोध इसलिए कर रहा हूँ कि वे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक संगठित हैं। भारतके अन्य भागोंके ईसाइयोंके मुकाबले इस राज्यके ईसाई अधिक प्रभावशाली हैं और संख्यामें भी अधिक हैं। इसलिए वे त्रावणकोरमें बड़ी आसानीसे अगुआ बन सकते हैं। देशके अन्य भागोंके ईसाइयोंसे हम ऐसी आशा नहीं कर सकते।

मद्यपानका अभिशाप

अस्पृश्यताके बाद, सबसे अधिक शोचनीय अभिशाप मद्यपानका ही है। १९२२ में राज्यको मादक-वस्तुओंके करसे ४६,९४,३०० रुपयेकी और भूमिकर या लगानसे

१. कुल संख्या ४०,०१,३९८ होती है।

केवल ३८,१८,६५२ रुपयेकी आमदमी हुई थी, जबकि राजस्वके रूपमें १,९६,७०,१३० रुपया मिला था। मैं इसे राज्यके प्रशासनपर बहुत बड़ा धब्बा मानता हूँ। मादक वस्तुओंके करसे राज्यकी आयका इतना अधिक भाग मिलना एक ऐसी बात है जिसपर गम्भीरतासे विचार करनेकी जरूरत है। विभिन्न मदोंसे मादकद्रव्य-करकी वसूली इस प्रकार हुई:

आबकारी	२६,८२,३६७ रुपये
अफीम और गाँजा	३,११,६३५ रुपये
तम्बाकू	१७,००,२९८ रुपये
कुल	४६,९४,३०० रुपये

इससे स्पष्ट है कि शराबकी आयकी रकम एक बहुत बड़ी रकम है। मुझे बताया गया है कि मद्यपानकी बुराई ईसाइयोंमें सबसे अधिक है। उनमें इसके कारण हजारों घर तबाह हो रहे हैं और ऐसे लाखों लोग जो अन्यथा योग्य और बुद्धि-सम्पन्न हैं, निर्धन और अप्रतिष्ठाके पात्र बन रहे हैं। इस सबसे स्पष्ट प्रकट होता है कि इस मदसे होनेवाली आयकी वृद्धिसे राज्यको यदि हर्ष नहीं है तो विषाद भी नहीं है। विभिन्न जातियाँ इस बुराईके खतरोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देख रही हैं और शराबबन्दीके महत्त्वको नहीं समझ पा रही हैं। इस बुराईको समय रहते जड़से उखाड़ फेंकना जरूरी है। और इसका सबसे कारगर तरीका निःसन्देह यही है कि डाक्टरी नुस्खा दिखानेपर ही शराब हासिल की जा सके, अन्यथा नहीं। लेकिन समस्या यह है कि राजस्वके इस सबसे बड़े साधनको, छोड़ा कैसे जाये। यदि मैं त्रावणकोरका एकतन्त्र शासक होता और वहाँ अपनी मर्जी चला सकता तो मैं राजस्वके इस साधनको सर्वथा समाप्त कर देता और शराबके सभी ठेकोंको बन्द करवा देता। फिर मैं शराबके व्यसनी लोगोंकी गणना करवाता और जिन लोगोको जरूरत होती, स्वस्थ किस्मके मनोरंजन तथा स्वास्थ्यवर्धक खान-पान या रोजगार देनेके साधन खोजता और उस सूरतमें मैं इस व्यसनसे छुटकारा पाये हुए लोगोंसे यह आशा रखता कि उनकी कार्यक्षमता बढ़ जानेके कारण राज्यको शराबखोरीकी आयकी अपेक्षा अधिक राजस्व मिला करेगा। परन्तु अब एकतंत्रके दिन लद चुके हैं। अब तो लोकतन्त्र ही तन्त्र है। विधान-परिषद् और जनसभा यह सब कर सकती हैं। राज्य-संरक्षिका महारानी और राज्यके दीवानपर आक्षेप करके अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेना अनुचित होगा। जनताको राज्यके प्रशासनमें दिनपर-दिन अधिकाधिक हाथ बँटानेका अवसर दिया जा रहा है। जनता बहुत ही सुशिक्षित है। वह राज्यको, यह राजस्व जबतक मिलता है तबतक उसकी समूची आय इस बुराईके उन्मूलनमें ही व्यय करनेके लिए विवश कर सकती है और इस घृणित व्यवसायको सालभरके भीतर ही बन्द करनेका आग्रह कर सकती है। परन्तु इसका उन्मूलन एक वर्षमें किया जा सकता है या इससे अधिक समयमें, इसका फैसला जनताको ही करना है। जनताको इसकी जानकारी होनी ही चाहिए कि इसमें भयंकर जोखिम छिपी है। और मैं एक बार फिर पूरे अदबके साथ

पूछता हूँ कि इस मामलेमें ईसाई लोग आगे नहीं आयेंगे तो फिर कौन आयेगा? ईसाइयोंसे ऐसा आग्रह करनेका मतलब यह नहीं है कि मेरा यह आग्रह हिन्दुओं या मुसलमानोंसे नहीं है। परन्तु ऐसे मामलोंमें सबसे पहले तो सबसे सबल पक्षसे ही अनुरोध किया जाना चाहिए।

अनुपगम्यता

मैं जिस समस्याके सिलसिलेमें त्रावणकोर आया हूँ, मैंने उसकी चर्चा अन्तमें करना सोच रखा था। मैं इस बारेमें लिखते हुए अवश्य ही झिझकता रहा हूँ। मेरी युवावस्था, सामाजिक दायित्वकी भावनाके विकासकी आयु देशसे बाहर ही बीती है। देश लौटनेपर मैं लगातार ऐसे कई कामोंमें उलझा रहा कि मुझे दूसरे किसी काम-की ओर नजर उठानेका मौका ही नहीं मिला। इसलिए मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं भारतीय जीवनकी कई ऐसी बातोंसे सर्वथा अनभिज्ञ हूँ, जिनका जानना मेरे लिए उचित था। वैसे मोटे तौरपर मैंने सुन रखा था कि त्रावणकोर एक प्रगतिशील राज्य है, परन्तु इसने कुछ दिशाओंमें जो आश्चर्यजनक प्रगति की है उसकी मुझे कोई जानकारी नहीं थी। साथ ही मैं उसके अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्यके बारेमें भी कुछ नहीं जानता था। लेकिन जब मैंने अपनी आँखोंसे यह देख लिया कि यह राज्य कैसा है, इसके शासक और दीवान कैसे सुसंस्कृत हैं, फिर भी यहाँ पंचमवर्णकी अनुपगम्यताकी समस्या मौजूद है तो यह देखकर मुझे असीम आश्चर्य हुआ और मैं हतबुद्धि-सा हो गया। जिस राज्यमें ऐसी महारानी और ऐसे दीवान और ऐसी सुशिक्षित जनता हो उस राज्यमें ऐसी अमानवीय प्रथा कैसे मौजूद है और चल रही है? मैं यह नहीं समझ सका और आज भी नहीं समझ पा रहा हूँ। यदि सत्याग्रह न छिड़ा होता, तो बाहर किसीको इसका गुमानतक न होता। लेकिन चूँकि सारी बात नग्न रूपमें सभीके सामने आ गई है, इसलिए मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं इसके निवारणके लिए अधीर हो उठा हूँ। मेरी अधीरताका कारण यह है कि मैं हिन्दू हूँ, यह राज्य एक हिन्दू राज्य है, इसका दीवान हिन्दू है, इसके लोग सुशिक्षित हैं और सभी इसे बुराई मानते हैं। यदि यहाँ ब्रिटिश सरकारका शासन होता तो वह चाहती तो कह सकती थी कि सरकार इस मामलेमें तटस्थ है। परन्तु यहाँ चूँकि हिन्दू सरकार है और जहाँतक मैं समझता हूँ वह इस मामलेमें, और ऐसे अन्य मामलोंमें भी, ब्रिटिश सर-कारके अधीन या उसके प्रभावमें नहीं है, इसलिए वह तटस्थताकी बातको न तो दलीलके रूपमें पेश कर सकती है और न उसका दावा ही कर सकती है। सर-कारको तो सुधारके पक्षका समर्थन और धर्मान्धता-भरी रूढ़िवादिता या अन्धविश्वास-का विरोध करना ही चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे वह लुटे हुए लोगोंका पक्ष लेती है और लुटेरोंको कठोरतासे दण्ड देती है। प्रत्येक हिन्दू राजा हिन्दू धर्मकी मान-प्रतिष्ठा-की रक्षाके लिए उत्तरदायी है और उसका कर्त्तव्य है कि वह उसे बाह्य आक्रमणसे और आन्तरिक भ्रष्टता और विच्छिन्नतासे बचाये। हिन्दू धर्ममें जो दोष धीरे-धीरे आ गये हैं वह उन्हें बिना किसी कठिनाईके दूर कर सकता है और यदि कठिनाई हो तो उसका सामना भी कर सकता है। इसलिए महारानी साहिबा और दीवान बहादुरने

त्रावणकोर सरकारके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे जो अत्यधिक सतर्कता बरती है उसको तो मैं समझ सका हूँ, परन्तु मेरी समझमें यह बात आ नही सकी है कि इस बुराई-को दूर करनेके परिणामोंको सोचकर वे इतने बेचैन क्यों हो उठते हैं। फिर भी मुझे यह विश्वास है कि दोनों ही इस बुराईके निवारणके लिए चिन्तित है। हालाँकि राज्यके लोगोंने मुझसे कहा है कि यदि सरकारी अधिकारी छुपे-छुपे और खुले तौरपर सुधार-विरोधियोंका समर्थन न करें तो प्रस्तावित सुधारका जो थोड़ा-बहुत विरोध है, वह भी नहीं रहेगा। परन्तु मैं इस दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हो सका हूँ। मुझे तो ज्यादा ठीक यही लगता है कि यह बात बहुत हदतक सन्देहपर आधारित है। इसलिए पिछले सप्ताह इन पृष्ठोंमें दीवानका जो वक्तव्य प्रकाशित किया गया था,[1] मैं उसे ठीक मान लेता हूँ। मेरे खयालसे दीवान पूरी ईमानदारीसे विश्वास करते हैं कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी सुधारमें वैधानिक कठिनाई है और अभी लोकमत इतना तैयार नहीं है कि कानून बनाकर सुधारको लागू किया जा सके, इसलिए वे सबकी सहमति-से ही यह सुधार करना चाहते हैं। सुधारक लोगोंका दावा है कि सवर्ण हिन्दुओंने सुधारकी हिमायत करनेवाले परिषद्के प्रस्तावके पक्षमें भारी बहुमतसे मतदान करके स्पष्ट दिखा दिया है कि सवर्ण हिन्दुओंका मत क्या है। वाइकोमसे त्रिवेन्द्रमतक सवर्ण हिन्दुओंके जत्थेकी गत वर्षकी यात्रासे भी यही बात सिद्ध होती है। वे आगे बताते हैं कि सवर्ण हिन्दुओंकी संख्या लगभग आठ लाख है और उनमें सात लाखसे ऊपर नायर लोग हैं और कमसे-कम सार्वजनिक या अर्द्ध-सार्वजनिक सड़कोंके अन्त्यजों द्वारा इस्तेमाल किये जानेके सवालपर तो लगभग सभी नायर सुधारके हामी हैं। वे यह दलील भी देते हैं कि मन्दिर सार्वजनिक सम्पत्ति है जिसकी न्यासी सरकार है। उनके ये सभी तर्क विचारणीय हैं। लेकिन इतनेपर भी मुझे लगता है कि सवर्ण हिन्दुओंका भारी बहुमत सुधारके पक्षमें है। सरकार चाहे तो इस निष्कर्षको सही माननेसे इनकार कर सकती है।

सुधार-विरोधियोंने मुझे मिलनेका समय देनेकी कृपा की थी और मैं उनसे मिल लिया हूँ।[2] उनका दावा है कि यह आन्दोलन मुट्ठीभर नवयुवकोंतक ही, जिनमें अधिकांशतः बाहरके हैं, सीमित है। सवर्ण हिन्दुओंकी बहुत बड़ी संख्या अन्त्यजोंकी माँगके विरुद्ध है और विरोधी सनातनी उसे सुधारका नाम देनेके लिए तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि वाइकोमकी तरह ही मन्दिरोंके आसपासकी सड़कोंके इस्तेमालपर सुदीर्घ कालसे ही प्रतिबन्ध चला आता है और उसका आधार स्वयं शंकराचार्यके अपने लेख हैं। उनके प्रवक्ताने कहा कि यदि इन विवादग्रस्त सड़कोंको अन्त्यजोंके इस्तेमालके लिए खोल दिया जाये तो फिर रूढ़िवादी हिन्दू पूजाके लिए मन्दिरोंमें नहीं जा सकेंगे। यह पूछनेपर कि क्या ईसाई और मुसलमान उन सड़कोंका इस्तेमाल कर सकते हैं, प्रवक्ताने उत्तर दिया कि हाँ, और साथमें कहा कि अन्त्यज लोगोंको अपने पिछले जन्मोंके दुष्कर्मोंके दण्डस्वरूप ही इस जन्ममें अन्त्यज बनना पड़ा है; अतः वे इस

१. देखिए परिशिष्ट १।
२. देखिए "वाइकोमके सवर्ण हिन्दू नेताओंके साथ बातचीत", १०-३-१९२५।

जन्ममें इस दोषसे मुक्त नहीं हो सकते, और इसी दृष्टिसे ईसाई और मुसलमान उनसे ऊँचे हैं। मुझे बताया गया है कि उनका यह प्रवक्ता विद्वान मनुष्य है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने जो भी कहा है उसपर उसका विश्वास है। मैं इसलिए उसको आदर और स्नेहके योग्य अपना मित्र मानकर उसके साथ वैसा ही बर्ताव भी करनेको तैयार हूँ, हालाँकि मैं उसके विचारोंको नितान्त भ्रान्तिपूर्ण और हिन्दू धर्म तथा मानवीयताके सर्वथा विरुद्ध मानता हूँ। सहिष्णुताका मैं यही मतलब लगाता हूँ। मैं यह नहीं समझता कि किसी एक दिन सभी चीजोंके बारेमें हम एक ही दृष्टिकोण बना सकेंगे, पर मैं यह जरूर मानता हूँ कि कोई समय आयेगा जब हम परस्पर तीव्रसे-तीव्र मतभेदके बावजूद एक-दूसरेके प्रति प्रेमभाव रख सकेंगे।

इसीसे मैंने उनके सामने ये प्रस्ताव रखे :

१. वे अपने कथनके समर्थनमें शंकराचार्यके लेखकी साक्षी प्रस्तुत करें। मैं उसके बारेमें कुछ विद्वान शास्त्रियोंसे परामर्श करूँगा। यदि ये विद्वान शास्त्री उसको प्रामाणिक बतायेंगे और उसका अर्थ ठीक वही लगायेंगे जो रूढ़िवादी हिन्दुओंने लगाया है तो मैं वाइकोम सत्याग्रहको वापस लेनेकी सलाह दे दूँगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इससे सभी स्थानोंमें सत्याग्रह वापस लेनेकी सलाह देनेके लिए बँध जाऊँगा। इसका सीधा-सा कारण यह है, यदि शंकराचार्यका मत अपने जीवन-कालमें ऐसा रहा हो तो भी जो बात मुझे धर्म और मानवीयताके विरुद्ध लगती है, मैं अपने लिए उसका पालन अनिवार्य नहीं मानता।

२. सारा मामला पंच-फैसलेके लिए पंचायतको सौंप दिया जाये। जिसमें तीन सदस्य हों। एक उनका नामजद किया हुआ विद्वान, दूसरा सत्याग्रहियोंकी ओरसे मेरे द्वारा नियुक्त व्यक्ति और तीसरे मध्यस्थ रूपमें त्रावणकोरके दीवान।

३. केवल वाइकोमके या समूचे त्रावणकोर या उसके कुछ चुने हुए क्षेत्रोंके — जैसा पंच ठीक समझें — सभी वयस्क सवर्ण हिन्दू स्त्री-पुरुषोंका मत-संग्रह कराया जाये, और मत-संग्रहकी व्यवस्थामें हाथ बँटानेके लिए सरकारको आमन्त्रित किया जाये।

यह तीसरा प्रस्ताव पहले मैंने ही रूढ़िवादी हिन्दुओंके इस दावेके जवाबमें रखा था कि सवर्ण हिन्दू सुधारके विरुद्ध हैं। लेकिन जब मैंने उनकी बातको आधार मानकर यह कहा कि मैं बड़ी खुशीसे मत-संग्रह करानेके लिए तैयार हूँ, तब यह प्रवक्ता कतरा गये। उन्होंने कहा कि धार्मिक विश्वासके मामलेमें किसी भी मनुष्यको बहुतमतका निर्णय माननेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उनकी इस बातमें वजन है, मैंने इसे स्वीकार करके अन्य दोनों प्रस्ताव रखे। यहाँ इसी सिलसिलेमें मैं यह भी बता दूँ कि मैंने मत-संग्रहका प्रस्ताव इसलिए रखा था कि वर्तमान सत्याग्रह, सवर्ण हिन्दू लोकमत सुधारके पक्षमें है, इस मान्यतापर आधारित है।

परन्तु इन सज्जनोंने इनमें से कोई भी प्रस्ताव नहीं माना और मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि हम कोई समझौता किये बिना ही एक-दूसरेसे जुदा हुए। इसके बाद मैं महारानीसे मिला और उन्होंने मेरी बात बहुत शिष्टता और धैर्यसे सुनी। वे इस बातके लिए उत्सुक थीं कि वाइकोममें सड़कें अन्त्यजोंके लिए दी जायें और उन्होंने मेरे रखे हुए प्रस्ताव पसन्द किये।

मैंने श्री नारायण स्वामी गुरुसे भी भेंट की। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलनसे पूरी सहमति प्रकट की और कहा कि हिंसा कदापि सफल नहीं होगी और अहिंसा ही एकमात्र मार्ग है। दूसरे दिन मैं दीवानसे मिला। उन्होंने भी कहा, मैं पूरे तौरपर सुधारके पक्षमें हूँ। मेरी कठिनाई सिर्फ एक ही है कि जबतक लोकमत पूरी दृढ़ता और स्पष्टताके साथ सुधारके पक्षमें न व्यक्त हो मैं तबतक एक प्रशासककी हैसियतसे ऐसा कानून नही बना सकता। मैंने उनसे कहा, आप सुधार विरोधियोंसे आग्रहपूर्वक कहें कि वे मेरे किसी भी एक प्रस्तावको मान लें। यदि कोई प्रथा मानवता और जनताकी नैतिकताके विरुद्ध हो, जैसी कि यह है, तो सुधार विरोधी लोग किसी प्राचीन प्रथाकी आड़ नहीं ले सकते।

सत्याग्रहीका कर्त्तव्य

इस समय स्थिति यही है। इसका परिणाम सत्याग्रहियोंके अपने हाथमें है। उनको थकान अनुभव किये बिना, निराश हुए बिना, क्रोध अनुभव किये बिना, झल्लाहट दिखाये बिना, विरोधियों और सरकारके प्रति सहिष्णुता दिखाते हुए अपना प्रयत्न जारी रखना चाहिए। वे अपने शालीनतापूर्ण आचरण और धैर्यपूर्वक कष्ट सहनके बलपर ही अन्धविश्वासकी दुर्भेद्य भित्ति गिरा सकेंगे और यदि तब भी कट्टरपन्थी उनके सौजन्यके सामने नहीं झुकते तो वे लोकमतको अपने पक्षमें करके सरकारको निर्णय करनेके लिए मजबूर कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-३-१९२५

२२१. एक भूल-सुधार

मैंने पिछले दिनों लिखा था कि सेवासदनमें एक कताई वर्ग खोला जा रहा है।[1] पत्र लिखनेवाली बहनका कहना है कि उन्होंने सेवासदनमें नहीं, बल्कि सारस्वत भवनमें उक्त वर्गके खोले जानेकी बात लिखी थी। मुझे इस भूलके लिए खेद है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-३-१९२५

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "मरुस्थलमें हरियाली"।

२२२. संगसारीकी सजा

अहमदिया पंथके कुछ लोगोंको जो संगसारीकी सजा[1] दी गई है, उसपर मैंने एक छोटी-सी टिप्पणी[2] लिखी थी। उसके सम्बन्धमें मुझे बहुतसे पत्र मिले हैं। मैं उन सब पत्रोंको तो प्रकाशित नहीं कर सकता; लेकिन जितनेसे उन पत्रोंमें आये हुए विचार पाठकोंको मिल जायें उनका उतना अंश यहाँ दे रहा हूँ।[3] इस विषयमें मौलाना जफरअली खाँका कहना यह है:

> . . . 'कुरान' में किसी भी गुनाहके लिए संगसारीकी सजा नहीं बताई गई है। आपने 'कुरान' में वह बात भी लिखी मान ली है जिसका कोई आधार नहीं है। . . . लेकिन आपकी नीतिकी दृष्टिसे जो सजाएँ अग्राह्य हैं, चाहे उनका विधान 'कुरान' में और दुनियाके अन्य धर्मग्रन्थोंमें भी क्यों न हो, उन्हें अमानुषिक मानकर उनकी निन्दा अवश्य की जानी चाहिए। 'कुरान' में व्यभिचारके जुर्ममें बेंत लगानेकी और चोरीके जुर्ममें अंग-विच्छेद करनेकी सजाएँ बताई गई हैं। चूँकि ये सजाएँ "अन्तरात्माको आघात" पहुँचाती हैं, इसलिए उसका अर्थ यही होता है, कि 'कुरान' को, जो इस्लामी कानूनका मूल स्रोत है, गलतियोंका जखीरा ही मान लिया जाये। इस्लामके सहानुभूतिहीन आलोचकोंने, जिनसे हम अच्छी तरह परिचित हैं, ऐसी असर्यादित बातें कही होतीं तो मैं उनकी कुछ भी परवाह न करता। लेकिन आपकी स्थिति भिन्न है। आप कांग्रेसके प्रमुख होनेके नाते तीस करोड़ भारतीयोंके नायक हैं और वे आपसे यह आशा रखते हैं कि आप उनके धार्मिक विश्वासोंका आदर करेंगे। खिलाफतके सबसे बड़े समर्थक 'महात्मा गांधी' को आज करोड़ों मुसलमान अपना मार्गदर्शक, विचारक और सच्चा मित्र मानते हैं। ऐसी हालतमें यह नितान्त अनपेक्षित था कि शरीयतमें जिस सजाका उल्लेख किया गया है, आप उसकी इस प्रकार खुली निन्दा करें। मजहबी मामलोंमें मुसलमानोंकी भावनाएँ बहुत नाजुक होती हैं। वे आपके इन विचारोंको अपनी मजहबी बातोंमें, जो उनका निजी मामला है, व्यर्थका हस्तक्षेप मानते हैं। इस्लाम अपने नियमोंको तोड़नेवाले अनुयायियोंको जो सजाएँ देता है उनके नीति-सम्मत होनेके सम्बन्धमें आप खुद जो चाहे माननेके लिए स्वतन्त्र हैं, लेकिन इस्लामी धार्मिक कानूनके निर्माताकी तरह इस प्रकार अपना अभिमत प्रकट करनेसे आपकी सम्मानपूर्ण

१. काबुलमें।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "संगसारी 'कुरान' में नहीं है।"

३. अंशतः उद्धृत।

स्थिति विषम-सी हो जाती है। इस्लामी दुनियामें आपकी जो इज्जत है उसे बनाये रखनेके खयालसे ही मैं आपको ऐसी बात लिख रहा हूँ। 'कुरान' शरीफ, पैगम्बर साहबका व्यवहार और इस्लामी दुनियाका सामूहिक निर्णय, इन तीनोंके मिलनेसे शरीयत बनती है। कोई भी सच्चा मुसलमान उसके हुक्मके खिलाफ कुछ भी न कर सकेगा। शरीयतके मुताबिक यह स्पष्ट है कि मुर्तदोंको मौतकी सजा दी जानी चाहिए। कुरान शरीफमें इस बारेमें कुछ नहीं लिखा है, फिर भी इस्लामके ऊपर बताये दूसरे दो साधनोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मौ० एम० सफदर अली स्यालकोटसे इस प्रकार लिखते हैं:

> आप सच कहते हैं कि 'कुरान' में "रजम" यानी संगसारीकी सजा कहीं भी नहीं बतई गई है। 'कुरान' में यह शब्द सिर्फ दो मरतबा आता है (सूरा हूद आयत: ९१, सूरा गुफा आयत: २०)। वहाँ पुरानी प्रथाके रूपमें उसका उल्लेख है; वह 'कुरान' की आज्ञा नहीं है। आपका यह कहना बिलकुल सही है कि आजकी दुनियामें नैतिक दृष्टिसे यह जंगली सजा असह्य है और यह कह कर आप 'कुरान' की शिक्षाके खिलाफ या मुसलमानोंकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेवाली कोई बात नहीं कहते। मेरा खयाल है कि मौ० जफरअली खाँका "रजम" को इस्लामी शरीयत मानना सही नहीं है। 'कुरान' इस बारेमें कुछ नहीं कहती और बादमें उलेमाओंने भी इसका अर्थ क्या लगाया, इस बारेमें लोगोंके विचार अलग-अलग हैं।

वोकिंगके मुस्लिम मिशनके नेता ख्वाजा कमालुद्दीन लिखते हैं:

> 'कुरान' में इस दुनियामें मुर्तदोंके लिए किसी भी प्रकारकी सजा नहीं बताई गई है। उसमें मजहबी बातोंके लिए अन्तरात्माको पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है और इस सम्बन्धमें जबरदस्तीकी मनाही की गई है। खुद पैगम्बर साहबके जमानेमें भी मुर्तदोंके अनेक दृष्टान्त पाये गये हैं। लेकिन कहीं भी सिर्फ इसी कारण उन्हें सजा नहीं दी गई थी। किसी भी प्रकारकी परम्परा 'कुरान' से अधिक नहीं हो सकती। स्वयं पैगम्बर साहबने कहा था कि मेरे नामपर बहुत-सी बातें चलेंगी, लेकिन यदि वे 'कुरान' के मुताबिक हों तो उन्हें मेरी मानना, वरना वे मेरी नहीं हैं यही समझना। "पैगम्बर साहबके व्यवहार" में से सत्यको परखनेकी यही एक कसौटी है।

मुझे यह जानकर बड़ी खुशी होती है कि 'कुरान' में संगसारीकी सजा नहीं है। यह मैंने नहीं कहा था कि निश्चय ही 'कुरान' में ऐसी सजा बताई गई है। मैंने कहा था-"मैंने सुना है कि संगसारी इत्यादि . . .।" लेकिन मौलाना जफरअली खाँ यह कहते हुए भी कि 'कुरान' में ऐसी सजा नहीं बताई गई है, बहुत उत्साहसे तर्क देकर उसका समर्थन करते हैं और इस्लाममें उसका स्थान सिद्ध करते हैं। किसी

कार्यका समर्थन चाहे "पैगम्बरके व्यवहार" से किया जाता हो, चाहे "इस्लामी दुनियाके सामूहिक निर्णय" से; लेकिन जबतक वह इस्लामी आचरणका एक अंग है तबतक मेरे-जैसे बाहरी आदमीके लिए तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता। मैं यह चाहता हूँ कि मेरे मुसलमान मित्र ऐसे कार्योंकी, जिन्हें संसारके बुद्धिमान मनुष्यताके विरुद्ध मानते हैं, बिना किसी हिचकके निन्दा करें, फिर चाहे उनका मूल स्रोत कोई भी क्यों न हो। इसलिए मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि मौलाना सफदर और ख्वाजा कमालुद्दीन संगसारीकी सजाकी और मुर्तदोंको मौतकी सजा देनेकी पूरी निन्दा करते हैं। मैं तो यह चाहता हूँ कि वे मेरी तरह ही यह भी कहें कि यदि संगसारीकी सजा पैगम्बरके व्यवहारसे अथवा "इस्लामी दुनियाके सामूहिक निर्णयसे" जायज साबित भी हो सके तो भी, चूँकि वह मानवताकी भावनाके विरुद्ध है, वे उसका समर्थन न कर सकेंगे। मौलानासे मेरा कहना है कि वे "इस्लामी दुनियामें मेरी इज्जत" की फिक्र न करें। इस्लामके नामपर जिन कार्योंका समर्थन किया जाता है, उनके बारेमें मैं अपनी प्रामाणिक राय जाहिर करूँ और उससे उनके दिलसे मेरी वह इज्जत चली जाये तो उस इज्जतकी दमड़ी-बराबर भी कीमत नहीं है। लेकिन सच बात तो यह है कि मुझे कहीं भी इज्जतकी दरकार नहीं है। वह तो राज-दरबारोंकी चीज है। मै तो जैसा सेवक हिन्दुओंका हूँ, वैसा ही मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियोंका भी हूँ। सेवकको तो प्रेम चाहिए, इज्जत नहीं। और जबतक मैं निष्ठावान् सेवक बना रहूँगा तबतक यह प्रेम तो मुझे मिलेगा ही। मैं मौलानासे कहना चाहता हूँ कि वे मेरी इज्जतके बजाय इस्लामकी इज्जतकी फिक्र करें। उसमें उनका हाथ मैं भी बटाऊँगा। मेरी रायमें तो जिस कार्यका समर्थन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता, उन्होंने उसका समर्थन करके अनजानमें उसकी इज्जत बहुत कुछ घटाई है। कितनी भी चतुराई-भरे तर्क क्यों न दिये जायें, किन्तु किसी भी अपराधमें संगसारीकी सजा देनेका कदापि समर्थन नहीं किया जा सकता और धर्मत्यागके अपराधमें तो संगसारीसे या किसी दूसरे प्रकारसे मौतकी सजा देना कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता।

मेरी स्थिति तो बिलकुल स्पष्ट है। इस्लामके सम्बन्धमें लिखते समय मैं उसकी इज्जतका खयाल उतना ही रखता हूँ, जितना हिन्दू धर्मकी इज्जतका। इस्लामकी व्याख्या करनेके लिए मैं वही पद्धति अपनाता हूँ जो हिन्दू धर्मके लिए। मैं हिन्दू धर्मग्रन्थोंके किसी भी आदेशका समर्थन केवल इस आधारपर नहीं करता कि वह शास्त्रकी आज्ञा है। इसी तरह मैं 'कुरान' की किसी बातको भी केवल इसीलिए नहीं मान सकता कि वह 'कुरान' में लिखी है। प्रत्येक बात विवेककी कसौटीपर कसी जानी चाहिए। लोगोंकी विवेकबुद्धिको इस्लाम जँचता है, तभी वह उन्हें पसन्द आता है। और कालान्तरमें यह मालूम हो जायेगा कि दूसरे किसी तरीकेसे उसका विवेचन करनेपर बहुत मुश्किलें पेश आयेंगी। संसारमें बेशक ऐसी चीजें भी हैं जो बुद्धिसे परे हैं। यह बात नहीं कि हम बुद्धिकी कसौटीपर उनकी परीक्षा नहीं करना चाहते; लेकिन वे स्वयं ही उसकी मर्यादामें नहीं आतीं। वे अपने सहज रूपके कारण ही बुद्धिसे अगम्य हैं। ईश्वरका रहस्य ऐसा ही है। वह बुद्धिसे असंगत तो नहीं है, उसके परे है। लेकिन

ईमान रखनेकी और कसम खानेकी बात जैसे बुद्धिसे परे नहीं है, वैसे ही संगसारी भी बुद्धिसे परे नहीं है। धर्मत्यागका व्यापक अर्थ लिया जाये तो उसका मतलब "स्वधर्मका त्याग होता है"। क्या यह इतना बड़ा गुनाह है कि इसकी सजा मौत हो? यदि ऐसा हो तो जो मुसलमान हिन्दू हो गया है वह फिर यदि इस्लाम स्वीकार कर ले तो उसका यह कार्य भी एक बड़ा गुनाह होगा और इसकी सजा भी मौत होनी चाहिए। मौलाना साहबका कहना है कि मैं कांग्रेसका प्रमुख हूँ और मुसलमानोंका दोस्त हूँ, इसलिए मुझे इस्लामके किसी भी कार्यकी टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए और 'कुरान' के बारेमें कुछ नहीं कहना चाहिए। लेकिन मैं समझता हूँ कि मैं इसे नहीं मान सकता। यदि मैं नाजुक वक्तपर अपना निर्णय न दूँ तो मैं इन दोनों ही सम्मानोंके अयोग्य सिद्ध हूँगा। संगसारीका मामला ऐसा है कि इसके साथ सभी सार्वजनिक विषयोंके निवेदकोंका सम्बन्ध है। यह सामाजिक नीति और सामान्य मनुष्यताका प्रश्न है, जो सभी सच्चे धर्मोंका आधार है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-३-१९२५

२२३. तार: मदनमोहन मालवीयको[1]

बम्बई
२६ मार्च, १९२५

पण्डित म० मो० मालवीय
बिड़ला मिल
दिल्ली

गोरक्षा बैठक बाईस अप्रैलको बम्बईमें बुलानेका विचार। अनुकूल हो तो साबरमती तार दें।

गांधी

[1] अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२२४. तार: प्रभाशंकर पट्टणीको

२६ मार्च, १९२५

सर प्रभाशंकर पट्टणी
भावनगर

कल आश्रम पहुँच रहा हूँ। वहाँसे मंगलको काठियावाड़ रवाना।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२२५. तार: रणछोड़लाल पटवारीको

२६ मार्च, १९२५

रणछोड़लाल पटवारी
मोरवी

कल आश्रम पहुँच रहा हूँ। वहाँसे मंगलको काठियावाड़ रवाना। क्या कहीं मिल सकते हैं। आश्रम तार दें।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२२६. तार: जयशंकर वाघजीको

२६ मार्च, १९२५

जयशंकर वाघजी
बम्बई मेलके यात्री

बम्बईमें ठहरना असम्भव। अहमदाबाद रुकें। वहाँ कल मिलें।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२२७. तार : वल्लभभाई पटेलको

२६ मार्च, १९२५

वल्लभभाई पटेल
अहमदाबाद

जामनगरके जयशंकर वाघजीको अहमदाबादमें रोकें। रातकी मेलसे बम्बई जा रहे हैं। उनसे कहें अहमदाबादमें रुकें। मुझसे कल मिलें।

गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

२२८. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

चैत्र सुदी २ २६ [मार्च, १९२५][1]

भाई घनश्यामदासजी,

यह है हकीम साहबका तार। क्या आप मुझको रु० २५००० अब भेज सकते हो? यदि भेजा जाय तो देल्हीमें हकीम साहबके यहाँ भेजोगे के मुझको मुंबईमें जमनालालजीके वहाँ भेजोगे? मुझे यदि क्रेडीट देल्हीमें मीले तो कमीशनका शायद बचाव होगा। मैं १ ली एप्रील तक आश्रममें हुंगा उसके बाद काठीयावाड़में दुबारा जाउंगा। मेइ दो तारीखको फरीदपुर पहोंचना होगा।

आपकी धर्मपत्नीकी सेहत अच्छी होगी।

गोरक्षाका कार्य मैं मेरे ही ढंगसे उठाना चाहता हूं या कहो मुझको उठाना पड़ेगा। इस कार्यमें तो आप सब भाइयोंकी सहायकी मैं आशा रखुगा बड़े संकोचसे मैंने इस कार्यको हस्तगत करनेका स्वीकार कीया है।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०८) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. गोरक्षा और काठियावाड़की यात्राके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२५ में लिखा गया होगा।

२२९. भेंट : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिको

बम्बई
२६ मार्च, १९२५

आपका अपनी वाइकोम-यात्राके बारेमें क्या विचार है? वह सफल रही या असफल?

मैं तो मानता हूँ कि वह न सफल रही, न असफल। वह सफल इसलिए नहीं रही कि जिन सड़कोंके बारेमें आन्दोलन है वे अभीतक नहीं खुली हैं और उसे असफल इसलिए नहीं समझता कि यदि सत्याग्रही अपनी आस्थापर दृढ़ रहे तो सफलता निकट है, ऐसा मेरा विश्वास है।

किन्तु क्या आपने जो प्रस्ताव रखे हैं उनसे आपने सामान्य पद्धतिके विरुद्ध मानव-जातिके सामान्य अधिकारको खतरेमें नहीं डाल दिया है? आपने उन प्रस्तावोंको रखकर अधिक महत्त्व उस वर्गकी रायको दिया है जो शायद आपके दावेका या शास्त्रोंकी आज्ञाका विरोधी है।

मैं नहीं समझता कि मैंने ऐसा कुछ भी किया है; इसलिए कि अगर मेरे सहयोगी कार्यकर्त्ताओंने मुझे सही जानकारी दी है, तो सवर्ण हिन्दुओंका भारी बहुमत इस सुधारके पक्षमें है। मूल सत्याग्रहका आधार यह मान्यता ही है कि सवर्ण हिन्दुओंका मत इस सुधारके पक्षमें है। इसलिए जब कट्टरपन्थियोंने यह कहा कि सवर्ण हिन्दुओंका मत इस सुधारके पक्षमें नहीं है और मुझे मालूम हुआ कि सरकार इस प्रश्नपर सवर्ण हिन्दुओंके मतकी स्पष्ट अभिव्यक्ति चाहती है, तो मैं ज्ञानहीन किन्तु शुद्ध-हृदय कट्टरपन्थियोंको सन्तुष्ट करनेके हेतुसे इस सुधारके सम्बन्धमें लोकमत-संग्रह करनेका सुझाव देनेके लिए बाध्य हो गया। मैं इस सवालपर विद्वान् शास्त्र-वेत्ताओंके विचार जाननेका सुझाव देनेके लिए इसलिए विवश हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि सार्वजनिक सड़कोंके उपयोगके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है जिससे कट्टरपन्थियोंके पक्षका समर्थन हो सके। यह याद रखना चाहिए कि सरकारका कहना है कि त्रावणकोरका कानून इन सुधारकोंके खिलाफ है। इसलिए अगर कट्टरपन्थी लोग इसका विरोध करें तो सरकारके लिए एक नया कानून बनाना जरूरी है। सरकारका ऐसा कहना कहाँतक सही है, सो मैं नहीं जानता, लेकिन मुझे इसका जवाब तो देना ही था।

फिर सत्याग्रहका भविष्य क्या है?

मुझे आशा है कि अब सरकार स्वभावतः जो अगला कदम उठायेगी वह यही होगा कि वह कट्टरपन्थियोंकी सहमतिसे अथवा उसके बिना मेरे किसी एक सुझावको मान लेगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-३-१९२५

२३०. भाषण: महिलाओंकी सभा, बम्बईमें[1]

२६ मार्च, १९२५

गांधीजीने कहा कि यहाँ जो सूत काता गया है वह जितना अपेक्षित था, उतना बढ़िया और महीन नहीं है। लेकिन इसमें दोष आपका अपना ही है, क्योंकि आजसे चार वर्ष पहले आपने चौपाटीमें इतनी बड़ी संख्यामें एकत्र होकर जो बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाई थीं, वे पूरी नहीं हुई हैं। अगर आपको वस्त्र-सम्बन्धी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ पूरी करनी हैं तो आपको चालीस या इससे अधिक अंकका ही सूत कातना चाहिए। मैंने तो इस देशमें ८० अंकका भी सूत कतवाया है। वह इतना बारीक था कि उससे ढाकेकी मलमल-जैसा महीन कपड़ा बनाना सम्भव है। मैंने खादी और कताईके बारेमें जो बड़ी-बड़ी आशाएँ रखी हैं, आप बम्बईकी स्त्रियाँ उन्हें पूरी करनेमें सहायता दें। मैंने अभी हालमें दक्षिण भारतकी यात्रा की थी। मैं ठेठ कन्याकुमारी तक गया था। वहाँ मैं त्रावणकोरकी महारानीसे लेकर मामूलीसे-मामूली लोगों तकसे मिला; और मुझे आपको यह बताते प्रसन्नता होती है कि महारानीने मुझसे वादा किया है कि वे सिर्फ खादी ही पहनेंगी और सूत भी कातेंगी। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि त्रावणकोरमें अभी कुछ वर्ष पहलेतक हर परिवार अपनी जरूरतका सारा कपड़ा खुद सूत कातकर तैयार कर लेता था। कोचीनमें राज-परिवारके लोग खादी पहनते थे और सूत कातते थे। लेकिन यहाँ उपस्थित बहनोंमें से कितनी बहनें खादी पहने हुए हैं? मैं यह बात भली-भाँति जानता हूँ कि बम्बईके लोग, जो आँख मूँदकर पैसा खर्च करते हैं, चरखेके महत्त्वको अच्छी तरह नहीं समझ सकते। लेकिन उड़ीसाके अकाल-पीड़ित अस्थिपंजर-मात्र दिखनेवाले स्त्री-पुरुष खादी और चरखेके महत्त्वको अवश्य समझते हैं। जब मैं तिलक स्वराज्य कोषके लिए चन्दा इकट्ठा करने उड़ीसा गया था, तब इन भूखे मरते हुए लोगोंने भी अपना हिस्सा देकर मुझे सहायता दी थी। बम्बईकी स्त्रियोंकी अपेक्षा, ऐसे भूखों मरते लोगोंके लिए चरखा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीमती नायडूने मुझे बताया है कि भोपालकी बेगम साहिबाने अपने उपयोगके लिए बहुत-सी खादी मँगवाई है। मेरा बेगमों और धनीमानी स्त्री-पुरुषोंसे अपना थोड़ा-सा समय कताईमें लगानेका अनुरोध करनेका हेतु यह है कि वे इस तरहसे अपने-आपको गरीब लोगोंके स्तरपर ला सकें और कमसे-कम कुछ हद तक उनकी भारी मुश्किलों और मुसीबतोंको समझ सकें। जो गरीबोंके लिए सदाव्रत लगाते हैं वे दरअसल पाप करते हैं; यद्यपि वे जानबूझ कर ऐसा नहीं करते। क्या

१. राष्ट्रीय स्त्री सभाके तत्वावधानमें कांग्रेस हाउस, गिरगाँवमें हुई इस सभाकी अध्यक्षता सरोजिनी नायडूने की थी।

कारण है कि इस देशमें ऐसे लाखों हट्टे-कट्टे लोग जो ईमानदारीसे अपनी रोजी अच्छी तरह कमा सकते हैं, भूखों मर रहे हैं और मारे-मारे फिर रहे हैं? कारण यह है कि उनके पास कोई काम नहीं है और उन्हें कोई काम मिलता भी नहीं है। भारतके कारखानोंमें ज्यादासे-ज्यादा कुछ लाख लोगोंको काम मिल सकता है, लेकिन उनमें देशके करोड़ों भूखों मरते हुए बेरोजगार लोगोंको तो काम नहीं मिल सकता। मैं आप लोगोंसे इन गरीबोंके लिए पैसा देनेकी बात नहीं कहता, बल्कि भूखों मरते जन-साधारणके लिए प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटे सूत कातनेका अनुरोध अवश्य करता हूँ। आप इन गरीब स्त्री-पुरुषोंकी खातिर खादी पहनें; आप सभी विदेशी वस्त्रोंका, बल्कि देशी मिलोंके वस्त्रोंका भी त्याग कर दें। जबतक आप ऐसा न करेंगी तबतक आपको स्वराज्य और रामराज्य नहीं मिल सकता। मैं बम्बईकी आप सभी बहनोंको आमन्त्रित करता हूँ कि आप कांग्रेस भवनमें होनेवाले राष्ट्रीय समारोहोंमें भाग लिया करें। यह भवन अब इस नगरीमें सारी राष्ट्रीय गतिविधियोंका केन्द्र रहेगा। आप बम्बईकी बहनोंने मुझे बहुत-कुछ दिया है, लेकिन मैं आपसे देशके लिए कुछ और माँगता हूँ और वह है चरखेपर प्रतिदिन आधा घंटा कताई करना।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-३-१९२५

२३१. भाषण: दलित वर्गवालोंकी सभा, बम्बईमें[1]

२६ मार्च, १९२५

महात्माजीने कहा कि मैं इस देशमें अस्पृश्यताके निवारणार्थ जो-कुछ करना चाहता हूँ और अबतक जो-कुछ कर चुका हूँ, वह सब आपको बतानेकी कोई जरूरत नहीं है; और यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतसे अस्पृश्यता तेजीसे मिटती जा रही है, फिर भी दुखके साथ कहना पड़ता है कि यह रफ्तार मेरे खयालसे काफी तेज नहीं है। आपको मालूम है कि दक्षिणमें त्रावणकोर राज्यमें वाइकोम नामक स्थानमें अस्पृश्य लोग मन्दिरके पासकी सड़कपर चलनेके अपने अधिकारको प्राप्त करनेके लिए सत्याग्रह कर रहे हैं। ये अस्पृश्य उन हिन्दुओंसे एक विवेक-सम्मत बात मनवानेके लिए सत्याग्रह कर रहे हैं जो धर्मान्धताके कारण आज हिन्दू धर्मके सभी सच्चे सिद्धान्तोंकी ओरसे अपनी आँखें बन्द किये हुए हैं। इन सवर्ण हिन्दुओंकी आँखें खोलनेके लिए ही अस्पृश्य लोग वाइकोममें सत्याग्रह कर रहे हैं। मुझे आशा है कि अन्तमें

१. इस सभामें गांधीजीको उनकी अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए एक मानपत्र भेंट किया गया था। एस० बी० पुणताम्बेकरने हिन्दी भाषणका मराठीमें अनुवाद किया था। मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

उनके प्रयास सफल होकर रहेंगे। ये लोग सवर्ण हिन्दुओंको उनकी भ्रान्त धारणाओं-की प्रतीति करानेके लिए तपश्चर्या-बलिदान कर रहे हैं। इन अस्पृश्योंके एक महान आध्यात्मिक नेता हैं — नारायण गुरु। उन्होंने मुझसे वादा किया है कि वे किसी भी अनुयायीको खादी पहने बिना अपने पास न आने देंगे। सभामें उपस्थित बच्चे अगर मेरे हिन्दी भाषणको नहीं समझ पा रहे हों, तो मैं उन्हें सिर्फ आशीर्वाद दे सकता हूँ और यही कामना कर सकता हूँ कि वे दीर्घजीवी हों, और मुझे आशा है कि वे अपनी दीर्घ आयुको देशकी सेवा करनेमें, सत् कार्य करनेमें, निर्भीक आचरण करनेमें और सत्यका पालन करनेमें लगायेंगे। आपको किसीसे डरना नहीं चाहिए और पूर्ण निर्भीकतासे देशकी सेवा करनी चाहिए। आपको शराबखोरीकी लत भी छोड़ देनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-३-१९२५

२३२. भाषण : कांग्रेस भवनके उद्घाटनपर, बम्बईमें

२६ मार्च, १९२५

गांधीजीने पदक[1] पानेवालोंको बधाई देनेके बाद कहा कि आप लोग जिस कार्यके लिए यहाँ एकत्र हुए हैं, वह एक शुभ कार्य है। लेकिन इस भवनके उद्घाटनसे पहले आपको अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। राष्ट्रीय झण्डा तो खादीका एक टुकड़ा-मात्र है जिसपर चरखेका निशान बना हुआ है, फिर भी आप उससे बहुत अधिक प्रेम करते हैं और वह आपकी आकांक्षाओंका और आपके अभि-मानका प्रतीक है। ध्वजारोहणका अर्थ उसकी कोरी रस्म अदायगीसे कुछ ज्यादा गहरी है। आज इस देशमें विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच एक दूसरेके प्रति सन्देह फैला हुआ है। दक्षिणमें हिन्दू आपसमें एक दूसरेसे लड़ रहे हैं। यहाँ विभिन्न जातियोंके प्रति-निधियोंने जो प्रार्थनाएँ गाई हैं, आप देखेंगे कि उनमें सर्वव्यापी ईश्वरके सम्बन्धमें एक ही चिरन्तन सत्यकी अभिव्यक्ति है। अगर आप केवल इतना ही समझ लें कि सभी धर्म महान हैं इसलिए आपको उन सभीका आदर सम्मान करना चाहिए और एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुता बरतनी चाहिए, तो ऐसे समारोहका उद्देश्य फलीभूत हो जायेगा। राष्ट्रीय झण्डा जब एक बार फहरा दिया जाये तब उसे झुकने नहीं देना चाहिए, भले ही सबको अपने उसके निमित्त प्राण भी देने पड़ें। यदि राष्ट्रीय झण्डेको उठानेवाला मनुष्य धराशायी हो जाये, तो उसे तत्काल दूसरा मनुष्य थाम ले

१. समारोहसे पूर्व बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा आयोजित कताई-प्रतियोगिताके विजेताओंको प्रदत्त।

और उसे कभी जमीनपर न गिरने दे। यह झण्डा आपकी समस्त प्रिय और समादृत भावनाओंका प्रतीक है। गांधीजीने कहा कि इस झण्डेको फहरानेके साथ भवनका उद्घाटन हो जायेगा। यह भवन तिलक स्वराज्य कोषमें प्राप्त धनसे खरीदा गया है और इस कोषमें सबसे ज्यादा योगदान बम्बईका ही है। भवन कांग्रेसके कार्यके लिए समर्पित कर दिया गया है। इससे आप सभी अधिकाधिक लाभ उठायें। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि वह हम सबका हृदय शुद्ध बनाये, हम एक-दूसरेके प्रति कोई दुर्भाव न रखें, अपने देशकी सेवा करें, आज हमने जो राष्ट्रीय झण्डा फहराया है उसे कभी न झुकने दें, और कांग्रेसके सदस्य अपने देशभाइयोंके प्रति कोई दुर्भाव न रखें।

इसके बाद, गांधीजीने ध्वज-स्तम्भके पास जाकर वन्देमातरम्‌के तुमुल नादके बीच धीरे-धीरे झण्डा फहरा दिया।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-३-१९२५

२३३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२७ मार्च, १९२५

प्रिय चार्ली,

गुरुदेवकी तबीयतके बारेमें पढ़कर बहुत दुःख हुआ। आशा है कि वे इतने बीमार नहीं होंगे जितना तुम्हारे पत्रसे मालूम पड़ता है।

मैं संतति-नियमनके बारेमें तुम्हारी बातें समझता हूँ। मैं अब तो इस बहसमें पड़ ही गया हूँ। इसलिए तुम 'यंग इंडिया' के अंकोंमें इस विषयकी विवेचना देखोगे।

मेरा तो निश्चित मत है कि बनारसीदासके[1] पूर्वी आफ्रिका जानेसे लाभ नहीं होगा; हाँ, अगर वे वहाँ कुछ दिन ठहर सकेंगे तो होगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९६३) की फोटो-नकलसे।

१. बनारसीदास चतुर्वेदी।

२३४. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रके अंश

चैत्र सुदी ३ [२८ मार्च, १९२५][1]

तुम किस बातके आधारपर कहते हो कि मेरी रिपोर्ट लँगड़ी पड़ गई है। क्या मैंने उसमें कोई बात छोड़ दी है? मैंने पहले जो लिखा था वह तुमने देखा था न? किन्तु यदि मैं कमजोर पड़ जाऊँ तो भी तुम सब लोग, जिन्होंने सब बातें समझी हैं, अपने-अपने विचारोंपर दृढ़ रहते हुए न्यायबुद्धि और अहिंसावृत्तिका त्याग नहीं करोगे, तो मुझे सन्तोष होगा।[2]

इस बार आनन्दसे[3] मिलने नहीं आ सका, इससे मेरा मन दुःखी हुआ है। किन्तु मैं मजबूर था। अबकी बार आऊँगा तो उससे जरूर मिलूँगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२३५. तार: 'इंग्लिशमैन'को[4]

साबरमती

[२९ मार्च, १९२५ के पश्चात्]

देशबन्धु दाससे परामर्श किये बिना और फलितार्थोंको समझे बिना, कोई वक्तव्य देते हुए झिझकता हूँ। हाँ, सामान्यतः इतना कहनेमें हर्ज नहीं कि सम्मानपूर्ण शर्तोंपर सभी दलोंसे किसी भी समय सहयोग सम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-४-१९२५

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. इसके बादकी पंक्तियाँ साधन-सूत्रमें अलग दी गई हैं। सम्भवतः ये इसी पत्रसे उद्धृत की गई हैं।

३. गांधीजीकी भानजी।

४. यह तार इंग्लिशमैनके उस तारके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें गांधीजीसे चित्तरंजन दासके २९ मार्चको प्रकाशित किये गये घोषणापत्रपर अपने विचार प्रकट करनेका अनुरोध किया गया था। श्री दासने घोषणापत्रमें कहा था: "...भारत और ब्रिटेनमें रहनेवाले यूरोपीयोंके मनमें यह शंका बहुत-कुछ घर कर गई है कि स्वराज्य दलने राजनीतिक हत्याओं और भय-संचारको प्रोत्साहित किया है, और अब भी कर रहा है।...मैं तो सिद्धान्ततः किसी भी शक्लमें और किसी भी तरहकी राजनीतिक हत्याओं और हिंसाके खिलाफ हूँ। मैं और मेरा दल दोनों ही इनको बिलकुल नापसन्द करते हैं। मैं मानता हूँ कि इससे हमारी राजनीतिक प्रगतिमें बाधा पड़ती है।...मैं सरकार द्वारा किये जानेवाले किसी प्रकारके दमनके भी उतना ही खिलाफ हूँ और उसे भी उतना ही नापसन्द करता हूँ।...हम स्वराज्य प्राप्त करने और साम्राज्यके अन्दर समानता और सम्मानपूर्ण भागीदारीकी शर्तोंपर भारतको राजनीतिक समानताका दर्जा दिलानेके लिए कृतसंकल्प हैं।"

२३६. कन्याकुमारीके दर्शन

हिन्दुस्तान कश्मीरसे कन्याकुमारी और कराचीसे असमतक फैला हुआ है। यही उसकी सीमाओंके चार छोर हैं। ऊपर हिन्दुकुश पर्वतशिखर भारत-माँको सुरक्षित और सुशोभित करते हैं। नीचे अरब सागर और बंगालका उपसागर अपने शुद्ध जलसे भारत-माँके पद पखारते हैं। कन्याकुमारी अर्थात् शंकरके समान अवधूत परन्तु साक्षात् देवस्वरूप विभूतिके साथ विवाह करनेके लिए तपश्चर्या करती हुई पार्वती। हिन्दुस्तानका यह एक छोर है इसलिए इसकी तीन दिशाओंमें हमें समुद्र ही समुद्र दिखाई पड़ता है। दो प्रकारके जल यहाँ मिलते हैं। कदाचित् इसीलिए यहाँ दो रंगोंका भी कुछ आभास होता है। यदि हम दक्षिणकी तरफ मुख करके खड़े हों तो एक ही स्थानपर खड़े रहकर बायीं ओर सूर्योदय और दायीं ओर सूर्यास्त दोनों देख सकते हैं। यह दृश्य देखनेका हमें समय न था। लेकिन हम प्रातःकाल तारोंको निस्तेज कर बंगालके महोदधिमें स्नान करके उदय होते हुए और शामको सुवर्णमय आकाशमें से नीचे उतरकर पश्चिमके रत्नाकरमें शयन करनेके लिए जाते हुए सूर्यकी कल्पना कर सकते हैं। रियासतके अतिथिगृहके चौकीदारने सूर्यास्तके भव्य दृश्यको ही देखनेके लिए रुक जानेको हमें बहुत कहा। लेकिन हम तो घोड़ेपर चढ़कर — मोटरपर चढ़कर — आये थे, इस आनन्दको लूटनेके लिए कैसे रुक सकते थे? मैंने तो भारत-माँके पैर पखार कर पवित्र हुए समुद्रके जलसे अपने पैरोंको पवित्र करके ही सन्तोष मान लिया।

कैसी अद्‌भुत है ऋषियोंकी रचना और हमारे पूर्वजोंका सौन्दर्य-बोध। यहाँ हिन्दुस्तानकी सीमा और दुनियाके एक छोरपर ऋषियोंने कन्याकुमारीके मन्दिरकी स्थापना की है और हमारे पूर्वजोंने उसे रंगभर कर सजाया है। वहाँ मुझे सृष्टिके सौन्दर्यका रस लूटनेकी इच्छा नहीं हुई — यद्यपि वहाँ वह रस लबालब भरा हुआ था। मैंने तो वहाँ धर्मके रहस्यामृतका पान किया। जब मैं वहाँके सुन्दर घाटपर समुद्रमें पैर धो रहा था कि मेरे एक साथीने कहा, "सामनेकी पहाड़ीपर जाकर विवेकानन्द ध्यान किया करते थे।" यह बात सच हो या न हो लेकिन उनके लिए यह सम्भव था। अच्छा तैरनेवाला वहाँतक तैर कर जा सकता है। उस पहाड़ी रूपी द्वीप-पर अपार शान्ति ही होगी। समुद्रकी लहरोंका मंद और मधुर संगीत तो समाधिमें सहायक होता है। इसलिए मेरी धर्म चिन्तनकी इच्छा अधिक तीव्र हो गई। सीढ़ियोंके नजदीक ही एक चबूतरा बना हुआ है। उसपर करीब सौ आदमी आसानीसे बैठ सकते हैं। मुझे वहाँ बैठकर 'गीता' का पाठ करनेकी इच्छा हुई। लेकिन अन्तमें मैंने उस पवित्र इच्छाको भी दबा दिया और 'गीता'कार का मन-ही-मन स्मरण करके मैं शान्त बैठा रहा।

इस प्रकार पवित्र होकर हम मन्दिरमें गये। मैं तो अस्पृश्यता-निवारणका हिमायती हूँ और अपना परिचय भंगी कहकर देता हूँ, इसलिए उसमें मैं प्रवेश कर सकूँगा या

नही इसपर मुझे कुछ शंका थी। मैंने मन्दिरके अधिकारीसे कह दिया कि उसकी दृष्टिमें जहाँ मुझे जानेका अधिकार न हो वहाँ वह मुझे न ले जाये। मै उस प्रतिवन्धका आदर करूँगा। उन्होंने कहा कि देवीके दर्शन तो साढ़े पाँच वजेके वाद ही हो सकते हैं और आप लोग चार वजे आये हैं। लेकिन और सब-कुछ मै आपको दिखा दूँगा। देवी जहाँ विराजती है सिर्फ वहीं जानेके लिए आपपर प्रतिवन्ध होगा, लेकिन यह प्रतिवन्ध तो विलायत जानेवाले सब लोगोंके लिए है। मैंने कहा, "म इस प्रतिबन्धका खुशीसे पालन करूँगा।" बातचीतके बाद वह अधिकारी मुझे अन्दर ले गया और मुझसे अन्दरकी प्रदक्षिणा करवाई।

उस समय मुझे मूर्तिपूजक हिन्दूके अज्ञानपर दया न आई बल्कि उसके ज्ञानकी विशेष प्रतीति हुई। मूर्तिपूजाका मार्ग दिखाकर उसने एक ईश्वरको अनेक नहीं बनाया है लेकिन मनुष्य एक ईश्वरके अनेकानेक रूपोंकी पूजा कर सकते हैं और करेंगे, उसने इस सत्यको खोजा है और संसारको बताया है। ईसाई और मुसलमान अपनेको मूर्तिपूजक भले ही न मानें लेकिन अपनी धारणाओंकी पूजा करनेवाले भी तो मूर्तिपूजक ही हैं। मस्जिद और गिरजाघर भी एक प्रकारकी मूर्तिपूजा हैं। वहाँ जाकर मैं अधिक पवित्र हो सकूँगा इस कल्पनामें भी मूर्तिपूजा है। और उसमें कोई दोष नहीं है। 'कुरान' में या 'बाइबिल' में ही ईश्वरका सक्षात्कार होता है इस कल्पनामें भी मूर्तिपूजा है और वह निर्दोष है। हिन्दू उससे भी आगे वढ़कर यह कहते हैं कि जिसे जो रूप पसन्द आये उसी रूपमें वह ईश्वरकी पूजा करे। पत्थर या सोने-चाँदीकी मूर्तिमें ईश्वरको मानकर उसका ध्यान करके जो मनुष्य अपनी चित्तशुद्धि करेगा उसको भी मोक्ष प्राप्त करनेका पूर्ण अधिकार है। प्रदक्षिणा करते समय यह सब मुझे अधिक स्पष्ट दिखाई दिया।

लेकिन वहाँ भी मुझे सुखमें दुःख तो था ही। मुझे प्रदक्षिणा तो करने दी गई, पर देवीके आसनतक नहीं जाने दिया गया। उसका कारण यह था कि मैं विलायत हो आया था। लेकिन अस्पृश्योंको तो उनके जन्मके कारण वहाँ जानेकी मनाई थी। यह कैसे सहा जा सकता है? क्या कन्याकुमारी अपवित्र हो जायेंगी? क्या पुरातन कालसे ऐसा होता चला आ रहा है? मेरे अन्तस्से यही आवाज आई कि ऐसा हो ही नहीं सकता। और ऐसा ही होता चला आ रहा हो तो पुरातन होते हुए भी यह पाप है। पुरातन होनेसे पाप बदलकर पुण्य नही बनता। इसलिए मेरे दिलमें यह वात और भी अधिक दृढ़ हुई कि इस कलंकको दूर करनेके लिए भरसक प्रयत्न करना प्रत्येक हिन्दूका धर्म है।

[गुजरातीमे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२३७. आगामी सप्ताह

हम भला ६ अप्रैल और १३ अप्रैलको भूल सकते हैं? सन् १९१९ की ६ अप्रैलको प्रजामें नवजीवनका संचार हुआ था। १३ अप्रैलको प्रजाने नरमेध किया था और उसमें सैकड़ोंने अपनी आहुतियाँ दी थीं। यह सच है कि यह बलिदान जबर्दस्ती और अनायास हुआ था। फिर भी वह बलिदान तो था ही। जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंका खून एक साथ बहा था। जन्मसे जो अलग-अलग मालूम होते थे, वे मृत्युके समय एक हो गये थे। हिन्दू और मुसलमान लड़ें, भिड़ें, मरें और मारें; मगर ऐसे झगड़े भुला दिये जायेंगे; परन्तु जलियाँवाला बागकी घटना क्या कभी भुलाई जा सकती है? वह तो जबतक हिन्दुस्तान है सदा ताजी ही बनी रहेगी। इसलिए ये दोनों दिन भुलाए नहीं जा सकते।

इस साल हम लोगोंको क्या करना चाहिए? हड़तालोंके दिन चले गये। अब उनकी कुछ कीमत नहीं रही है और प्रजामें भी उतना उत्साह नहीं है। जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिलोंमें परस्पर वैमनस्य बना रहेगा तबतक ऐसी हड़तालें हमें कुछ भी शोभा न देंगी। लेकिन जो लोग देश-सेवाको धर्मका अंग मानते हैं और शान्त और शुद्ध साधनों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, वे उस रोज आधे दिनका उपवास अथवा रोजा अवश्य रखें। वे उस रोज विशेष रूपसे मनन करते हुए ईश्वरकी आराधना करें और अपनी चित्तशुद्धि करें। वे कांग्रेसके वर्तमान कार्य-क्रमको आगे बढ़ानेका भी प्रयत्न करें।

ये तीन कार्य मुख्य हैं, लेकिन ये तीनों एक साथ न हो सकेंगे। इसलिए मेरा सुझाव तो यह है कि कातनेवालोंको इस सप्ताहमें अधिक सूत कातना चाहिए, जिन्होंने अबतक विदेशी कपड़ोंका त्याग नहीं किया है उन्हें उनका त्याग करना चाहिए और दूसरोंसे उनका त्याग करनेके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। इसके अलावा उन्हें इस सप्ताहमें खादीका प्रचार इतना करना चाहिए कि कांग्रेसके किसी भी खादी भण्डारमें खादी न बचे। सब लोगोंको एक-दूसरेके प्रति अपने-अपने दिल साफ कर लेने चाहिए और प्रत्येक हिन्दूको इस सप्ताह अन्त्यजोंकी भी कुछ-न-कुछ सेवा करनी चाहिए। अन्तमें जिनसे कुछ भी न बन पड़े वे अन्त्यज सेवाके लिए कुछ-न-कुछ धन अवश्य दें।

यदि कोई पूछे कि ऐसे हलके कार्यक्रमसे स्वराज्यका क्या काम होगा? तो मैं कहूँगा कि इसपर प्रश्नकर्त्ताने पूर्ण विचार नहीं किया है। उसे विचार करनेपर मालूम होगा कि आज इसके सिवा स्वराज्यके लिए दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं है। हो सकता है कि इतना ही कार्य करनेसे स्वराज्य न मिले; लेकिन इसपर अमल किये बिना तो स्वराज्य नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा। यदि कोई अश्रद्धालु विनोद करनेके लिए कहे कि तीन बार 'नहीं' लिखनेसे क्या सिद्ध हुआ? तो उसको मेरा उत्तर यह है कि तीन बार 'नहीं' लिखकर मैं साधनकी योग्यता सिद्ध करना नहीं चाहता हूँ; बल्कि मैं 'नहीं' को इस प्रकार तीन बार कहकर अपना दृढ़ विश्वास और निश्चय प्रकट करता हूँ।

सच पूछो तो उपरोक्त तीन चीजोंकी आवश्यकताके सम्बन्धमें ऐसा प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। इस सप्ताहमें, इसमें उत्पन्न ज्ञान और उत्साहके कारण सन् १९१९ में इन तीनों वस्तुओंने इतना महत्त्वपूर्ण रूप धारण किया था कि वे कांग्रेस कार्यक्रमका आवश्यक अंग बन गई थीं। उन दिनोंमें ही तो स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणकी प्रतिज्ञा ली गई थी। उसके बाद यह बात तुरन्त समझ ली गई कि स्वदेशीके पालनमें स्वदेशीका अर्थ चरखा और खादी है। चरखेके प्रचारके लिए नियम बनाये गये। इसलिए जिसे हम अबतक स्वराज्य-प्रवृत्तिका आवश्यक अंग मानते आये हैं, उसके सम्बन्धमें आज शंका कैसे हो सकती है?

यदि उस समय भूल हुई हो तो? तो वह हमें जरूर सुधारनी चाहिए। लेकिन कांग्रेसने उसे भूल नहीं माना है। यही नहीं उसने तो उसे प्रोत्साहन देनेके प्रस्ताव भी स्वीकृत किये हैं, इसलिए भूल की है, यह कहनेकी गुंजाइश नहीं है।

अब रही एक बात। असहयोग गया, सविनय अवज्ञा गई, अब खादी आदिका क्या करें? "नाच न आवे आंगन टेढ़ा", यह दलील कुछ ऐसी ही है। उपरोक्त वस्तुओंके बिना सविनय अवज्ञा करना असम्भव है यदि हम यह समझ गये हों तो फिर यह दलील ही कैसे दी जा सकती है? यदि मैं कहूँ कि खादी आदिकी त्रिवेणीके बिना सविनय अवज्ञा नहीं हो सकती और जनता कहे कि सविनय अवज्ञाके बिना खादी आदि नहीं हो सकती तो हमारी हालत कोल्हूके बैलकी-सी होगी। लेकिन जो स्त्री या पुरुष ऐसी दलील-के चक्करमें नहीं पड़ते और सूतके तारकी-सी सीधी गति रखते हैं वे ही आगे बढ़ सकेंगे और आगे बढ़ते हुए अपना मार्ग कभी न भूलेंगे। क्योंकि सूतका तार उनका मार्गदर्शक है। उन्हें इधर-उधर देखनेकी जरूरत नहीं, इसलिए उन्हें मार्ग भूल जाने-का डर नहीं है।

यदि उन्होंने हिन्दू-मुसलमान एकता आदिका पाथेय साथ लिया हो तो उन्हें भूख आदि कष्ट भी दुःख नहीं देंगे। लेकिन यदि यह पाथेय उनके साथ न हो तो उन्हें उपवास करके अर्थात् उसके लिए तपश्चर्या करके उसे ही अपना पाथेय बनाना होगा।

रास्ता तय करते हुए उन्हें मद्यपान-निषेधादि विहार दृष्टिगोचर होंगे। उनमें वे रमण करेंगे। शराब पीनेवालोंका दुःख भी वे उन्हें सूतके तारका सरल मार्ग दिखा कर दूर करेंगे और प्रायश्चित्त करके शुद्ध बने हुए पुराने शराबियोंको वे अपना साथी बनायेंगे।

रास्तेमें उन्हें मृतकोंके समान जीवित कंकाल मिलेंगे। वे उनके सूतके तारको देखकर नाच उठेंगे और उन्हें चरखेको चलाते देखकर स्वयं भी चरखा चलानेके लिए दौड़ेंगे और अपने अस्थि-कंकालमें रुधिरादि भर कर, मृत्युके पाशसे बचकर स्वराज्य-यज्ञमें अपना योगदान देंगे। मेरी प्रत्येक भाई-बहनसे प्रार्थना है कि वे आगामी सप्ताहमें ऐसा शुभ स्वराज्य-यज्ञ करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२३८. स्वर्णोद्यान

त्रावणकोर कोई प्रान्त नहीं है, बल्कि एक विशाल नगर जैसा है। उसके नागरिक बम्बईके नागरिकोंकी भाँति कई मंजिले और एक दूसरेसे सटे मकानोंमें नहीं रहते, बल्कि लगभग एक मील या उससे कम दूरीपर खेतों और बगीचोंसे घिरे हुए छोटे-छोटे सुन्दर छप्परदार मकानोंमें रहते हैं। मैंने ऐसा मलाबार और उसके पड़ोसी केरल प्रान्तके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देखा। समूचा त्रावणकोर एक सुन्दर उद्यान या बाड़ी है, जिसमें जहाँ-तहाँ नारियल, केले, काली मिर्च और आमके पेड़ खड़े दिखाई देते हैं। किन्तु नारियलके समूह इन सबको आच्छादित किये हुए हैं। यात्री इन्हीं कुंजोंसे होकर गुजरता है। यात्रा दो प्रकारसे की जा सकती है, एक नहरों और खाड़ियोंके मार्गसे नौका द्वारा और दूसरे सड़कोंके मार्गसे मोटरों द्वारा। रेलमार्ग भी है, किन्तु वह बहुत कम हिस्सोंमें है। जलमार्गका दृश्य बहुत ही सुन्दर है। यात्रा करते हुए दोनों किनारे दिखते हैं; और जहाँतक दृष्टि जाती है वहाँतक दोनों किनारे बारहों मास हरे-भरे और फैले हुए एक बगीचेसे दिखाई देते हैं। मैंने इसीलिए इसे स्वर्णोद्यान कहा है। यदि कोई, सूर्यास्तसे पूर्व इन नहरों और खाड़ियोंसे होकर धीरे-धीरे यात्रा करता हुआ इन बगीचोंकी ओर देखे तो उसे यही लगेगा कि पेड़ोंमें सोनेके पत्ते लगे हुए हैं। सूर्य इन पत्तोंके बीचमें से झाँकता है और एक गोलाकार चलते हुए सोनेके पहाड़-जैसा दिखता है। मनुष्य उसको देखते हुए और ईश्वरकी लीलाका बखान करते हुए थकता ही नहीं है। कोई चित्रकार उसका चित्रण नहीं कर सकता। यह दृश्य क्षण-क्षण बदलता है और क्षण-क्षण अधिकाधिक सुन्दर होता जाता है। ऐसे दृश्यका चित्रण कौनकर सकता है? प्रभुकी इस रचनाके सामने मनुष्यकी कृति तुच्छ लगती है। फिर इस दृश्यको लाखों मनुष्य नित्य ही कुछ खर्च किये बिना देख सकते हैं।

त्रावणकोर और असमके दृश्योंको देखकर मुझे तो ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तानियोंको सृष्टिके सौन्दर्यको देखनेके लिए हिन्दुस्तानसे बाहर जानेकी कोई जरूरत ही नहीं और वायु-परिवर्तनके लिए तो हिन्दुस्तानमें हिमालय, नीलगिरि और आबू जैसे पहाड़ मौजूद हैं। ऐसे सुन्दर देशमें, जहाँ सभीको अपने-अपने अनुकूल जलवायु मिल सकती है, मनुष्यको सन्तोष क्यों नहीं होता? स्वर्गीय कवि श्री मलबारीकी भाषामें कहें तो जबतक कोई मनुष्य अपने घर, अपने कूचे, अपने नगर और अपने देशके इतिहास और भूगोलके सौन्दर्यका अवलोकन नहीं करता तबतक वह किसी भी दूसरे देशको देखने या जाननेमें कैसे समर्थ हो सकता है? इसके बिना उसके पास तुलना करनेके लिए कोई मापदण्ड ही नहीं हो सकता; इसलिए वह देखनेपर भी कुछ नहीं देख सकता। जैसे दर्जी और मोचीके पास अपना नपना न हो तो वह नाप नहीं ले सकता, वैसे ही सृष्टि सौन्दर्यका प्रेमी अपने देशका ज्ञान हुए बिना दूसरे देशको देखते हुए भी नहीं देख सकता। उसकी दृष्टिमें तो वे ही वस्तुएँ सुन्दर होती हैं जिन्हें वह आँखें खोलकर

और मुँह बाये देखता है, अथवा उन देशोंके सम्बन्धमें दूसरोंने जो-कुछ लिखा है वह उसीको दोहराता है।

मुझे त्रावणकोरके प्राकृतिक दृश्य जितने सुन्दर लगे उतनी ही सुन्दर वहाँकी राज्य-व्यवस्था भी लगी। राज्य-सरकारका सूत्र है, "धर्म ही हमारा बल है।" मैंने यहाँकी जैसी अच्छी सड़कें हिन्दुस्तानमें किसी दूसरी जगह नही देखी हैं। राज्यमें कहीं अन्धा-धुन्धी होती है, मुझे ऐसा नहीं जान पड़ा। प्रशासकोंने बहुत वर्षोंसे प्रजाको कोई कष्ट नही दिया है। राज्यतंत्रमें राजा नियमोंका उल्लंघन करके कोई कार्य नही करता। त्रावणकोरके महाराजा ब्राह्मण और क्षत्रिय माता-पिताकी सन्तान होते हैं। दिवंगत महाराजा धर्म-परायण और विद्वान माने जाते थे। कई वर्षोंसे त्रावणकोरमें विधान सभा है। राज्यमें हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयोंकी आबादी बहुत है। छयालीस लाखसे ऊपरकी आबादीमें लगभग आधे लोग तो ईसाई हैं। मुझे ऐसा लगा है कि सभीको किसी प्रकारके भेदभावके बिना नौकरियाँ आदि दी जाती हैं। लोग अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त कर सकते हैं। शिक्षाका प्रचार जितना त्रावणकोरमें है उतना अन्यत्र शायद ही कहीं होगा। बालकों और बालिकाओंको समानरूपसे शिक्षा मिलती है। राज्यकी आयका खासा बड़ा हिस्सा शिक्षाकी मदमें खर्च किया जाता है। त्रावणकोरमें अशिक्षित स्त्री-पुरुष मुश्किलसे ही मिलेंगे। उसकी राजधानी त्रिवेन्द्रममें लड़कियोके लिए अलग कालेज है। सभी शालाओं और विभागोंमें अस्पृश्योंको प्रवेश करनेकी अनुमति है, इतना ही नहीं, बल्कि उनके निमित एक निश्चित रकम प्रति वर्ष खर्च की जाती है।

महारानियाँ

मैंने दोनों महारानियोंके भी दर्शन किये। इनमें से बड़ी महारानी नाबालिग महाराजाकी ओरसे राज्यका शासन चलाती है और छोटी महाराजाकी माँ है। उन दोनोंसे मिलकर और उनकी भव्य सादगीको देखकर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। दोनोने ही केवल, श्वेत वस्त्र पहन रखे थे। एक-एक हल्केसे मंगल-सूत्रके अतिरिक्त उन्होंने कोई अन्य आभूषण पहना हो ऐसा मुझे दिखाई नहीं दिया। न उनकी नाकमें कुछ आभूषण था और न कानमें। मुझे उनके हाथमें हीरे या मोतीकी अंगूठियाँ भी दिखाई नहीं दीं। मैंने इतनी सादगी तो एक मध्यम वर्गकी स्त्रीमें भी नहीं देखी। जितने सादे उनके वस्त्र थे उतना ही सादा उनका साज-सामान था। मैंने जब इनके इस सामानकी तुलना धनाढ्योंके साज सामानसे की तो मुझे अपने धनाढ्य वर्गपर बहुत तरस आया। हम इतने मोहमें क्यों पड़े है?

मुझे दोनों महारानियोंमें कोई आडम्बर दिखाई नही दिया। बाल-महाराजा मुझे अत्यन्त सरल-स्वभाव लगे। वे एक बिकच्छ धोती और कुर्तेके सिवा कुछ भी नही पहने थे। यदि महाराजा होनेका कोई खास चिह्न हो तो वह मैंने नहीं देखा। इन तीनोंने मेरा मन जीत लिया है। सम्भव है कि अधिक अनुभव होनेपर मुझे अपने इस कथनमें कुछ दोष दिखाई दे। मैंने दूसरे लोगोंसे भी पूछताछ की। किन्तु मुझसे यह किसीने नहीं कहा कि उनका मेरे ऊपर जो प्रभाव पड़ा है, वह ठीक नहीं है।

मेरे इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि इस सब सादगीके बावजूद सामान्य राज-दरबारोंमें जो झगड़े होते हैं, वे वहाँ न होंगे। किन्तु वहाँ झगड़े हैं या नहीं, इसका पता मुझे नहीं है। मेरा धर्म दोषोंकी खोज करना तो है नहीं। मैं तो गुणोंका शोधक और पुजारी हूँ। इन गुणोंको मैं जहाँ देखता हूँ वहीं हर्ष-विभोर और चकित हो जाता हूँ। इन गुणोंका गान करना मुझे आता है। संसारमें निर्दोष तो कोई है ही नहीं। जब मुझे ये दोष दिख जाते हैं तो उनको देखकर मुझे दुःख होता है और कभी-कभी प्रसंग आनेपर मैं दुःखित हृदयसे उनका वर्णन भी कर देता हूँ।

जिसे ईश्वरने कुछ धन दिया है उसको मेरी सलाह है कि वह त्रावणकोर और कोचीनकी यात्रा करे।

रैयतकी सादगी

जैसा त्रावणकोरका राजा है, वैसी ही वहाँकी प्रजा है। मैंने राजा और प्रजाकी पोशाकमें जितना साम्य यहाँ देखा उतना अन्यत्र कहीं नहीं देखा। मैंने देखा कि शासकों और रैयतकी पोशाक एक-सी है। मुझे जो-कुछ अन्तर मिला वह वहाँ रैयत अथवा उसके वर्गमें ही मिला। कुछ बहुत शिक्षित लोग अंग्रेजी पोशाक पहने मिल जाते हैं और कुछ स्त्रियाँ रेशमी साड़ियाँ पहने भी। किन्तु सामान्यतः मलाबारियोंकी पोशाक बिना लाँगकी धोती और कुर्ता है। स्त्रियाँ भी ऐसी छोटी धोती ही पहनती हैं, पर वे ऊपरसे पिछौरा या चूनरी ओढ़ती हैं और अब कुरती अथवा चोली का रिवाज चल पड़ा है।

इन प्रदेशोंमें खादीका प्रचार आसानीसे किया जा सकता है; क्योंकि यहाँकी स्त्रियोंको न रंगकी जरूरत है और न किनारीकी। उन्हें हमारी साड़ी या घाघरे जितनी लम्बाईकी भी जरूरत नहीं है। फिर भी कैलिको और नैनसुखने यहाँ भारी तबाही मचा रखी है। यहाँ खादी इस आन्दोलनके बाद आई है। फिर भी इस प्रदेशमें सूत कातनेवाले और बुननेवाले बहुत हैं। कन्याकुमारीके पास नागरकोइल कस्बा है। वहाँ हर हफ्ते हाट लगती है जिसमें हाथ-कता सूत बिकता है।

वाइकोम सत्याग्रह

जिस प्रदेशमें इतनी शिक्षा हो, जिसका राज्यतन्त्र अच्छा हो और जहाँ लोगोंको बहुतसे अधिकार प्राप्त हों, वहाँ इतने भयंकर रूपमें अस्पृश्यता कैसे चल रही है? यह पुराने रिवाजोंकी देन है। जब अज्ञानको प्राचीनताका आश्रय मिल जाता है तब वह ज्ञान माना जाने लगता है। यहाँ मुझे ऐसे लोग भी मिले हैं जो सच्चे मनसे मानते हैं कि मन्दिरोंके समीपके मार्गोंपर ईसाई जा सकते हैं, किन्तु अस्पृश्य नहीं जा सकते। उनमें से कोई वकील या बैरिस्टर हो तो भी वह वहाँसे नहीं जा सकता। यहाँके अस्पृश्योंमें एक स्वामी है जो स्नान और सन्ध्या-वन्दन आदि करते हैं। उन्हें संस्कृत अच्छी तरह आती है। वे संन्यासीके वेषमें रहते हैं। उनके हजारों शिष्य हैं। उनके पास हजारों एकड़ जमीन है और उन्होंने एक अद्वैताश्रम स्थापित किया है। ये स्वामीजी भी इन मार्गोंपर से नहीं जा सकते। ये मन्दिर कैसे हैं? इनके गिर्द छः फुट ऊँचा परकोटा

है और उसके सहारे-सहारे बाहर मार्ग हैं। इन मार्गोंपर बैलगाड़ियाँ भी चलती हैं किन्तु इनपर कोई अस्पृश्य नहीं जा सकता। इस प्रकारके अन्धेर और अन्यायके निवारणके लिए वाइकोममें सत्याग्रह किया जा रहा है। मैंने वहाँके कट्टर सनातनियोंसे जो इस प्रथाके समर्थक हैं, मिलकर विनयपूर्वक बातचीत की थी। उन्होंने इसके समर्थनमें बहुत तर्क दिये; किन्तु मुझे उनमें कोई सार दिखाई नही दिया। अन्तमें मैंने तीन सुझाव दिये और यह स्वीकार किया कि यदि वे लोग उनमें से किसी एकको मान लेंगे और उसके माननेका परिणाम चाहे सत्याग्रहियोंके उद्देश्यके विरुद्ध होगा तो भी सत्याग्रह बन्द कर दिया जायेगा। किन्तु ये भाई तो इस सुझावको भी माननेके लिए तैयार नहीं हुए। अन्तमें हमने वहाँके पुलिस कमिश्नरसे सलाह की और उसके परिणामस्वरूप हमारे बीच एक करार[1] हुआ। वह महादेव भाईके पत्रमें अन्यत्र दिया गया है।

इस प्रकार यह आन्दोलन अब यहाँ आकर रुक गया है। शासक मेरे सुझावोंको पसन्द करते हैं; इसलिए आशा है कि कुछ ही दिनोंमें इस आन्दोलनका शुभ अन्त हो जायेगा। किन्तु यह सब सत्याग्रहियोंके सच्चे अर्थात् विनययुक्त आग्रहपर निर्भर है। यदि वे स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की हुई मर्यादाओंका उल्लंघन न करेंगे तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि इसका परिणाम अवश्य ही शुभ होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२३९. मेरी जवाबदेही

अखबारोंमें मेरे भाषणोंके जो विवरण छपते हैं उनके सम्बन्धमें मुझसे कितने ही प्रश्न किये जाते हैं। ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देना मुझे असम्भव मालूम होता है। मैं अखबार नहीं पढ़ता, क्योंकि मुझे उन्हें पढ़नेका समय नही मिल पाता। मेरा बहुत-सा समय तो सफर ही में बीत जाता है। इसलिए मेरी डाक भी मुझे देरसे मिलती है और सफर करते हुए भाषण भी बहुत देने पड़ते हैं। ऐसी दयनीय स्थितिमें मैं किसे उत्तर दूँ, यह एक सवाल खड़ा हो जाता है। अपने देशमें भाषणोंको लिख सकें ऐसे लघु लिपि जाननेवाले भी बहुत कम मिलते हैं। इसलिए मैंने अखबारोंमें अपने भाषणोके जितने भी विवरण पढ़े हैं उनमें से शायद ही कोई मुझे पसन्द आया होगा। एक शब्दके फर्कसे भी वक्ताके अर्थका अनर्थ हो सकता है। इसलिए सब सज्जनोसे मेरी प्रार्थना है कि यदि वे मेरे भाषण अखबारोंमें पढ़ें और उन्हें कोई बात मेरे प्रतिष्ठित विचारोंके विरुद्ध मालूम हों तो वे यह मान लें कि मैंने ऐसा नही कहा होगा। जो भी संग्रह करने योग्य है, 'नवजीवन' में देनेका प्रयत्न किया जाता है। इसके अलावा जो-कुछ मै कहता हूँ, स्थान विशेषके श्रोताओंके लिए कहता हूँ। इसलिए उसको लिपिबद्ध कर उसका संग्रह न किया जाये तो उससे मुझे कुछ भी दुःख न होगा। लेकिन जिन्हें

१. देखिए "पत्र: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २४-३-१९२५।

मेरे विचार प्रिय हैं, उन्हें भी उससे कोई दुःख नहीं होना चाहिए। जुदे-जुदे प्रकारसे अभिव्यक्त वही विचार उन्हें मिलें तो भी क्या और न मिलें तो भी क्या? आज जिस बातकी अधिक आवश्यकात है वह तो यह है कि जो-कुछ भी सुना हो या पढ़ा हो उसे अच्छी तरह पचा लिया जाये और उसपर अमल किया जाये। ज्यादा पढ़नेसे लाभके बदले हानि भी होनी सम्भव है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२४०. टिप्पणियाँ

चार विवाह

मेरी देखरेखमें और कहें तो मेरे ही हाथसे आश्रमकी भूमिमें डा० प्राणजीवन दास मेहताके बंगलेमें जो तीन विवाह हुए थे, मैं उनके सम्बन्धमें लिखनेकी इच्छा होनेपर भी समयाभावके कारण अबतक कुछ नहीं लिख सका था। किन्तु चूँकि वे जानने योग्य हैं, इस कारण मैं उनकी चर्चा यहाँ करता हूँ। किसीके भी विवाहका प्रबन्ध करना, अथवा उसमें भाग लेना अथवा उसके लिए किसीको प्रोत्साहित करना मेरा काम नहीं है। फिर आश्रमकी भूमिमें विवाहकी क्रिया सम्पन्न करना आश्रमके आदर्शसे संगत नहीं माना जा सकता। ब्रह्मचर्यका पालन स्वयं करना और दूसरोंसे करवाना मेरा धर्म रहा है। फिर मैं इस कालको आपत्ति काल मानता हूँ। ऐसे समय में विवाह किया जाये या सन्तानवृद्धिकी जाये, मैं इसे अनिष्टकर मानता हूँ। ऐसे समयमें समझदार लोगोंका काम भोग-वृत्तिको घटाना और त्यागवृत्तिको बढ़ाना होना चाहिए।

यह तो हुआ एक पक्ष। मेरी इच्छा और आदर्श एक बात है। किन्तु जो अनिवार्य हो और साथ ही सर्वांशमें अनिष्टकर न हो वैसे कार्यमें यदि संयम-धर्म अथवा खादी-प्रचारका विशेष पालन किया जाये तो मैं उसमें भाग लेता हूँ और उसे अनुचित नही मानता और कुछ हदतक उचित भी मानता हूँ।

ये तीनों विवाह इसी कोटिके थे। मैं इस प्रकारके दो विवाह पहले ही सम्पन्न करा चुका हूँ। ये विवाह इमाम साहेबकी[1] दो पुत्रियोंके थे। इमाम साहब मेरे साथ रहते हैं और मुझे सगे भाईके समान मानते हैं। उनकी बेटियोंको मैं अपनी बेटियाँ मानता आया हूँ। एक बहन फातिमा थी जो विवाहके कुछ वर्ष बाद ही मर गई और दूसरी थी अमीना। मुझे और इमाम साहबको उन दोनोंका विवाह उनकी इच्छासे करना ही था। हमने इन विवाहोंमें ज्यादासे-ज्यादा जितनी सादगी बरती जा सकती थी उतनी सादगी बरती थी। दोनों विवाहोंमें वर और कन्या दोनोंके कपड़े खादीके ही थे। उनमें घनिष्ट मित्रोंके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं बुलाया गया था। इस समय

१. इमाम अब्दुल कादिर बावजीर।

जो विवाह किये गये इनमें से एक विवाह आश्रममें पालित एक कन्याका था। दूसरा वल्लभभाईके पुत्रका[1] और तीसरा डा० मेहताके पुत्रका[2] था। तीनों विवाह एक ही दिन किये गये थे और उसी दिन निवटा दिये गये थे। इनमें दोनों पक्ष खादीके कपड़े ही काममें लाये। विवाहोंमें ढोल, शहनाई, भोज इत्यादि कुछ भी नही था। इनके लिए न निमन्त्रण-पत्र भेजे गये थे और न बरातें ही संजाई गई थीं। साक्षियोंके रूपमें कुछ मित्र आये थे; किन्तु उनको जानबूझकर शर्बततक नहीं दिया गया था।

विवाह-विधिमें एक भी धार्मिक क्रियाका त्याग नहीं किया गया था; इतना ही नहीं, बल्कि वर और कन्याको जो प्रतिज्ञाएँ लेनी थीं वे पूरी उन दोनोंको गुजरातीमें समझा दी गई थीं। वर और कन्याने और कन्यादान करनेवाले वयोवृद्धजनोंने विधिवत् उपवास रखा था। इस प्रकार गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेवाले दम्पतीको यह समझा दिया गया कि हिन्दू धर्ममें विवाह संयमकी साधनाके निमित्त है, भोगके निमित्त नही। इसके बाद आश्रमकी ईश्वर-प्रार्थनाके साथ दोनोंको आशीर्वाद दिया गया था और विवाहकी विधि समाप्त कर दी गई थी।

इन तीनों विवाहोंमें से एक विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। श्री वल्लभभाईके पुत्र चि० डाह्याभाई और श्री काशीभाईकी पुत्री चि० यशोदाका विवाह तो उनकी अपनी इच्छासे हुआ माना जा सकता है। दोनोंने एक-दूसरेको खोजा था और फिर अपने वृद्धजनोंकी आज्ञा लेकर विवाहका निश्चय किया था। दोनोंकी इच्छा साथ-साथ रहकर देश-सेवा करनेकी है। उनकी यह युवावस्थाकी आकांक्षा कहाँतक टिकती है यह तो पीछे ही मालूम होगा। यह पाटीदारोंके लिए आदर्श विवाह कहा जा सकता है। दोनों परिवार प्रसिद्ध हैं और काशीभाई खर्च करना चाहते तो कर सकते थे। फिर भी उन्होंने विचार करके बिना किसी खर्चके विवाह करनेका निश्चय किया। इस प्रकार उन्होंने अपने बहुतसे जाति भाइयोंका रोष अपने ऊपर लिया है। मैं तो आशा करता हूँ कि दूसरे पाटीदार बन्धु और अन्य जातियोंके लोग भी ऐसे विवाह करेंगे और विवाहोंके खर्चका बहुत बड़ा बोझ उठानेसे बच जायेंगे। यदि वे ऐसा करेंगे तो इससे गरीबोंको राहत मिलेगी और धनी लोग अपने धनका उपयोग अपनी इच्छाके अनुसार देश-हितके अथवा धर्मके कार्योंमें कर सकेंगे।

चौथा विवाह श्री देवचन्दभाईकी पुत्री और गुजरात विद्यापीठके भाई त्रीकमलाल शाहका था।[3] यह तेजपुरमें सम्पन्न हुआ। उसमें भी देवचन्दभाईने मुझसे सम्मिलित होनेका आग्रह इस हेतुसे किया था कि यह बात प्रकट हो जाये कि विवाहमें वेहद सादगी बरती जायेगी और खादीके ही कपड़े काममें लाये जायेंगे, दूसरे नहीं। साथ ही उनका हेतु वर और वधूको मेरा आशीर्वाद दिलाना भी था। उनके शुद्ध आग्रहको मानकर मैं वहाँ गया था। वहाँ श्री देवचन्दभाईके परिवारके बुलाये हुए बहुतसे स्त्री-पुरुष थे। किन्तु वरकी ओरसे तो वरके अतिरिक्त अन्य कोई भी नही था। भाई

१. देखिए "भाषण: विवाहोत्सवपर", २५-२-१९२५।
२. देखिए "तार: आर्यको", २६-२-१९२५।
३. देखिए "टिप्पणियाँ", १९-४-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "भूल सुधार"।

त्रीकमलालका निश्चय था कि यदि तुलसीके पत्र देने मात्रसे योग्य कन्या मिलेगी तो ही वे विवाह करेंगे। उनका यह निश्चय पूरा हुआ। विवाह अन्त्यजोंके मुहल्लेमें कन्याके हाथसे अन्त्यज बालकोंको खादीके वस्त्र वितरित करानेके बाद समाप्त हो गया। इस विवाहमें भी बाजों और गालियों आदिका बिलकुल बहिष्कार रहा। मैं काठियावाड़के महाजनोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे विवाहोंमें इस प्रकारकी सादगीसे रोष न करें; बल्कि वे इसे स्तुत्य मानकर उसका प्रचार करें। अब बड़ी-बड़ी दावतोंका जमाना चला गया है, उन्हें ऐसा समझना चाहिए। प्रत्येक युगमें आचार-व्यवहारमें थोड़ा-बहुत अन्तर होता ही है। जैसे जाड़ेके कपड़े गर्मीमें निरुपयोगी हो जाते हैं उसी प्रकार प्रायः एक युगकी प्रथाएँ दूसरेमें निरुपयोगी और हानिकर हो जाती हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-३-१९२५

२४१. पत्र : वसुमती पण्डितको

चैत्र सुदी ६ [३० मार्च, १९२५][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। दक्षिणसे सूरतके पतेपर मैंने तुम्हें जो पत्र लिखा था, लगता है वह तुम्हें मिला नहीं है। इस यात्रामें मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ। कई दृश्योंको देखते समय और कन्याकुमारीके दर्शनके समय तो मुझे तुम्हारी बहुत याद आई।

मेरी तबीयत ठीक है। काठियावाड़में मैं आठेक दिन ठहरूँगा। अप्रैलमें मुझे एक-दो दिनके लिए बम्बई जाना होगा।

बापूके आशीर्वाद

भूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५८८) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. गांधीजी २५-३-१९२५को कन्याकुमारी गये थे। उन्होंने १-४-१९२५से ८-४-१९२५ तक काठियावाड़का दौरा किया और ११-४-१९२५ से १४-४-१९२५ तक वे बम्बई रहे।

२४२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

चैत्र सुदी ६ [३० मार्च १९२५][1]

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका खत मीला है।

आपका सूत अच्छा है। जिस पवित्र कार्यका आपने आरंभ कीया है उसको आप हरगीज न छोड़ें।

आपकी धर्मपत्नीके बारेमें आप प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि यदि उनका स्वर्गवास होगा तो आप शुद्ध एकपत्नीव्रतका सर्वथा पालन करेंगे। यदि ऐसी प्रतिज्ञा लेनेकी इच्छा और शक्ति हो तो मेरी सलाह है कि आप आपकी धर्मपत्नीके समक्ष उस प्रतिज्ञा लें।

२० हजार रुपयेके लीये मैं जमनालालजीकी दुकानसे पूछूंगा।

श्री रायचंदजीसे मेरा खूब सहवास था। मैं नहि मानता-हुं कि सत्य और अहिंसाके पालनमें वे मेरेसे बड़ते थे। परन्तु मेरा विश्वास है कि शास्त्रज्ञानमें और स्मरणशक्तिमें मेरेसे बहोत बड़ले थे। बाल्यावस्थासे उनको आत्मज्ञान और आत्मविश्वास था। मैं जानता हूं कि वे जीवनमुक्त नहि थे औ[र] वे खुद जानते थे कि नहि थे। परन्तु उनकी गति उसी दिशामें बड़े जोरसे चल रही थी। बुद्धदेव-इ० के बारेमें उनके ख्यालोंसे मैं परिचित था। जब हम मीलेंगे तब उस बारेमें बातें करेंगे। मेरा बंगालमें प्रवास मैं मासमां शुरू होता है।

अलीगढ़के बारेमें मैंने आपसे रु० २५००० की मागनी की है। हकीमजीका तार भी आपको भेजा है।

आपका,

मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१०९) से।

सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. २५,००० रुपयेके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२५ में ही लिखा गया होगा।

२४३. पत्र : रामेश्वरदास बिड़लाको

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
चैत्र शुक्ल ६ [३० मार्च, १९२५][1]

भाईश्री रामेश्वरदासजी,

आपका पत्र मीला है। रु० ५००० मीलनेमें आपकी इच्छानुसार अंत्यज सेवामें उसका व्यय करूंगा। जमनालालजीके वहांसे जबतक कुछ खत नहिं आया है। जमनालालजी आजकल खादी प्रचारके लीये राजपुतानेमें भ्रमण कर रहे हैं।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्रीयुत रामेश्वरदास बिड़ला
बिड़ला हाउस
रांची

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२२) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२४४. वाइकोम-सत्याग्रह

मुझे त्रावणकोरके पुलिस कमिश्नर श्री पिटका एक तार उस समय मिला था जब मैं 'यंग इंडिया' के पिछले अंकके लिए वाइकोमके विषयमें अन्तिम पंक्तियाँ लिख चुका था। इस कारण मैं उस अंकमें अपने और पुलिस कमिश्नरके बीचके पत्र-व्यवहारको[2] नहीं दे सका था। लेकिन पाठकोंने यह पत्रव्यवहार अन्य अखबारोंमें अवश्य देख लिया होगा। अभीष्ट सुधारकी दिशामें यह एक निश्चित प्रगति है। पत्र-व्यवहारसे साफ जाहिर है कि त्रावणकोर सरकार इस सुधारके पक्षमें है और उसे जल्दीसे-जल्दी अमलमें लानेके लिए कृतसंकल्प है। कोई यह न समझे कि मैंने इस प्रश्नके निर्णयको मत-संग्रहपर या धर्मशास्त्रियोंकी व्याख्यापर छोड़कर सुधारको ही खतरेमें डाल दिया है। वर्तमान आन्दोलनका प्रारम्भ ही इस मान्यताके आधारपर हुआ है कि इस सुधारको सवर्ण हिन्दुओंका एक बहुत बड़ा बहुमत चाहता है और दलित वर्गोंपर जो प्रतिबन्ध लगा हुआ है, मूल हिन्दू शास्त्रोंमें उसका कोई आधार नहीं

१. जमनालाल बजाज १९२५ में राजपूतानामें खादी प्रचारके लिए गये थे।
२. देखिए "पत्र : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २४-३-१९२५।

मिलता। इसलिए अगर मैं यह प्रस्ताव न रखता तो वह सूझबूझका भारी अभाव ही कहलाता। मेरे जैसे सत्याग्रहीके लिए यह बात अत्यन्त स्वाभाविक थी कि अपनी ओरसे ऐसे प्रस्ताव रखूँ जो यदि कट्टरपन्थियोंकी ओरसे रखे जाते तो मुझे ईमानदारीके साथ स्वीकार करने पड़ते। मैं तो यहाँतक कहूँगा कि कट्टरपन्थियोंमें से थोड़ेसे लोगोंको छोड़कर और सभी क्षेत्रोंसे इस सुधारको जो बहुत बड़ा समर्थन मिला है, उसका मार्ग मेरे प्रस्तावोंसे ही प्रशस्त हुआ है। यदि अधिकांश सवर्ण हिन्दू इस सुधारके वास्तविक विरोधी होते या इस विषयमें कोई ऐसा सन्देह होता कि शास्त्रोंकी व्याख्यासे इस सुधारका समर्थन शायद न हो, तो सत्याग्रहका रूप बिलकुल भिन्न ही होता। तब यह आन्दोलन एक अधर्मपूर्ण प्रथाको दूर करनेके बजाय, खुद हिन्दू-धर्ममें ही परिवर्तनका आन्दोलन होता। सच तो यह है कि जिन लोगोंका इस आन्दोलनके संचालनसे सीधा सम्बन्ध था, उन्होंने मेरे प्रस्तावके औचित्यपर कभी शंका नहीं की है। उनकी सलाह और पूरी सहमतिके बिना मैं कोई कदम उठा ही नही सकता था। यह तो वाइकोमके सत्याग्रहियोंका ही काम है कि वे इस संघर्षको शीघ्रतासे सफलतापूर्वक समाप्त करानेके लिए उक्त समझौतेके शब्दों और इसकी भावना, दोनोका पूरी तरह निर्वाह करें, इसका पालन करें और सवर्ण हिन्दुओंका काम है कि वे इस आन्दोलनका समर्थन अनेक स्थानोंपर दिये गये वचनके अनुसार करें। सत्याग्रहियोंको समझौतेका स्थूल पालन करनेके लिए यह जरूरी है कि वे सीमा-रेखाको तबतक पार न करें जबतक पूरा समझौता नहीं होता या समझौतेके उद्देश्यकी पूर्तिकी दृष्टिसे उसे पार करना मुझसे पर्याप्त पूर्व सूचना मिलनेके बाद आवश्यक नहीं हो जाता। समझौतेकी भावनाका तकाजा यह है कि सत्याग्रही पूरी शिष्टता और अधिकसे-अधिक विनम्रतासे काम लें। यदि वे सुधारके विरोधियोंके प्रति आदिसे अन्ततक शिष्टताका व्यवहार करेंगे तो विरोधकी तीव्रता कम हो जायेगी। उन्हें ऐसा मानना चाहिए कि सरकार इस सुधारके खिलाफ नहीं, बल्कि जल्दीसे-जल्दी इसे अमलमें लानेको वचनबद्ध है। कोई कारण नहीं कि मैं राज्य-संरक्षिका महारानी या दीवान साहब या पुलिस कमिश्नर द्वारा दिये गये वचनपर अविश्वास करूँ। आश्रममें भी सत्याग्रहियोंका आचरण वैसा ही रहना चाहिए जैसा सीमा-रेखापर। आश्रम एक ऐसा व्यस्त कर्मक्षेत्र होना चाहिए जहाँ हर आदमी हमेशा अपना निर्धारित काम करनेमें लगा रहे। वह सादगी और सफाईका नमूना होना चाहिए। सभी सदस्य अवकाशके पूरे समयमें चरखा चलानेके लिए वचनबद्ध हैं। कताई, धुनाई और बुनाई विभागोंमें सुधारकी बहुत-कुछ गुंजाइश है। हर सदस्य बुनाईमें नहीं तो कमसे-कम धुनाई और कताईमें तो पारंगत हो ही। हर सदस्यको इस बातका आग्रह रखना चाहिए कि वह कात-बुनकर अपनी जरूरत-भरका कपड़ा खुद तैयार कर ले। सभी सदस्योंको हिन्दी भी अच्छी तरह सीख लेनी चाहिए। वे हिन्दू धर्मकी प्रतिष्ठा और गरिमाके संरक्षक हैं और उन्हें ऐसा मानना भी चाहिए। हमारी लड़ाई मन्दिरोंके आसपासकी सड़कोंके खुलते ही खत्म हो जानेवाली लड़ाई नहीं है। हमें इसे हिन्दू धर्मके शुद्धीकरणका और उसमें जो बहुत-सी बुराइयाँ घुस गई हैं उनके निवारणके गौरवशाली संघर्षका सूत्रपात मानना चाहिए।

वे ऐसे सुधारक नहीं हैं जिन्हें विरोधी पक्षका कोई खयाल न हो या जो कट्टर-पन्थियोंकी हर भावनाको आघात पहुँचायें। उन्हें तो आचरणकी पवित्रता तथा शास्त्रोंमें मौजूद सभी भली और उच्चादर्शपूर्ण मान्यताओंपर श्रद्धाभाव रखनेके मामलेमें बड़ेसे-बड़े कट्टरपन्थीसे भी आगे ही रहना है। वे बड़ी गहराईसे विचार और मनन किये बिना शास्त्रीय प्रमाणकी अवहेलना न करें और अपने भीतर ऐसी क्षमता पैदा करनेके लिए संस्कृतका अध्ययन करें और देखें कि शास्त्रोंकी मर्यादाको पूरा ध्यानमें रखते हुए उनमें क्या-क्या सुधार करने सम्भव हैं। वे जल्दबाजी न करें बल्कि अपने सत्य और अहिंसाके धर्मके अनुकूल चलते हुए निर्भीकतासे सभी अपेक्षित कर्त्तव्योंका पालन करें। और प्राचीन ऋषियोंके समान ही धैर्य और श्रद्धाका अवलम्बन करें।

मन्दिरोंमें प्रवेश

सड़कोंका खोला जाना हमारा अन्तिम उद्देश्य नहीं, बल्कि सुधारके क्रममें पहला ही सोपान है। आम तौरपर मन्दिर, सार्वजनिक कुएँ और सार्वजनिक स्कूल सवर्ण हिन्दुओंकी तरह अस्पृश्योंके लिए भी खुले होने चाहिए। लेकिन यह सत्याग्रहियोंका तात्कालिक लक्ष्य नहीं है। हम सुधारकी गति जबर्दस्ती तेज नहीं कर सकते। स्कूल तो लगभग सबके-सब, अस्पृश्योंके लिए खुले ही हुए हैं। लेकिन मन्दिर और सार्वजनिक कुएँ या तालाब नहीं खुले हैं। इसके पक्षमें सावधानीके साथ जनमत तैयार करना चाहिए और बहुमतको पक्षमें लाना चाहिए; यह सुधार तभी सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। इस बीच इसका इलाज यह है कि ऐसे मन्दिर बनाये जायें तथा ऐसे तालाब या कुएँ खुदवाये जायें जो हिन्दुओं और अस्पृश्यों दोनोंके लिए समान-रूपसे खुले रहें। मुझे इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि अस्पृश्यता निवारणके आन्दोलनने बहुत प्रगति की है। अब हमें अविवेक या उत्साहकी अधिकताके कारण इसमें बाधा न डालनी चाहिए। ज्यों ही यह खयाल दूर हो जायेगा कि जन्मके कारण किसी मनुष्यके स्पर्शसे कोई अपवित्र हो सकता है त्यों ही शेष काम आसानीसे सफल होकर रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२४५. टिप्पणियाँ

सिखोंका बलिदान

अकालियोंकी स्थिति अब भी अनिश्चित जान पड़ती है। सरदार मंगलसिंहने 'केन्द्रीय सिख लीग' के अध्यक्षकी हैसियतसे इस आन्दोलनका संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया है, उसमें सिखोंके बलिदानका निम्न संक्षिप्त विवरण मिलता है:

> ३०,००० लोग गिरफ्तार किये गये, ४०० मर गये और मारे गये, २,००० घायल हुए और पन्द्रह लाख रुपये जुर्माना दिया गया — जिसमें अवकाश-प्राप्त सैनिकोंकी जब्त की गई पेंशनें भी शामिल हैं।

अगर ये आँकड़े सही हों तो उनसे ऐसा बलिदान व्यक्त होता है जो सिखोंके उच्च कोटिके साहस और आत्मत्यागका परिचायक है। और वह साथ ही उस सरकारके लिए भी उतनी ही अपयशकी बात है जिसने इस घोर कष्ट-सहनका कोई भी खयाल नहीं किया है।

बंगाल

मैं अगली दो मईको फरीदपुरमें होनेवाले प्रान्तीय सम्मेलनमें भाग लेनेकी उम्मीद करता हूँ। मैं मानता हूँ कि खद्दर, चरखा और अस्पृश्यता निवारणका काम कर सकनेका लोभ ही इसके पीछे मुख्य प्रेरणा है। मैं इसी लोभसे बंगालके अन्य हिस्सोंमें भी जाऊँगा इसलिए जो लोग चाहते हों कि मैं दूसरे हिस्सोंमें भी जाऊँ, वे दौरेका प्रबन्ध करनेवाले लोगोंसे पत्र-व्यवहार करें। इस दौरेका प्रबन्ध स्वभावतः तो देशबन्धु चित्तरंजन दास को ही करना उचित था। लेकिन अभी-अभी मुझे आचार्य रायका एक तार मिला है जिसमें कहा गया है, देशबन्धु अभी पटनामें हैं किन्तु मुझे आपको जिन खादी-केन्द्रोंमें ले जाना है, मैं उनकी सूची बना देना चाहता हूँ। इसलिए जिन सज्जनोंको मेरे दौरेमें दिलचस्पी हो वे कृपया प्रफुल्लचन्द्र रायसे सम्पर्क करें।

मिलकी पूनियाँ

मुझे मालूम है कि कई जगहोंमें अब भी मिलकी पूनियोंका उपयोग किया जाता है। कहनेकी जरूरत नहीं कि मिलकी पूनियोंसे कता सूत हाथकता सूत नहीं है। मिलकी पूनियाँ तो बहुत मोटे किस्मके सूतकी तरह ही होती हैं और उनके प्रयोगसे हाथ कताईका उद्देश्य, अर्थात् भारतके सात लाख गाँवोंमें हाथ-कताईका प्रचार ही विफल हो जाता है। इन गाँवोंमें मिलकी पूनियाँ भेजना असम्भव और अनुपयुक्त है। पूनियोंको गाड़ियोंमें भरकर बम्बईसे पंजाबके गाँवोंमें ले जाना तो एक ऐसा उपचार है जो अपने आपमें स्वयं रोगसे भी बुरा है। धुनाईका धन्धा अभी मिट तो नहीं गया है। पेशेवर धुनिए लगभग हर जगह मिल सकते हैं। इसके अलावा,

धुनाई एक ऐसा धन्धा है जो शहरों और गाँवों दोनोंमें आमदनीका जरिया बन सकता है। इसलिए यह एक ऐसा काम है जिसे नौजवान एक धन्धेके रूपमें भी सीख सकते हैं। जो भी हो, कोई भी कांग्रेस कार्यालय तबतक अपने नामको सार्थक सिद्ध नहीं कर सकेगा, जबतक वह धुनाईकी सुविधाएँ अपने यहाँ सुलभ न कर पाये। एक अच्छा धुनिया हर कांग्रेस-कार्यालयके लिए उतना ही जरूरी है जितना एक ईमानदार मुन्शी या मुनीम।

बंगालमें खादी

श्री शंकरलाल बैंकरने बंगालमें खादीके कामके विषयमें जो टिप्पणियाँ भेजी हैं, उनका अनुवाद नीचे दे रहा हूँ।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२४६. कुछ कठिन प्रश्न

एक मुसलमान वकीलने मुझसे कुछ प्रश्नोंके उत्तर माँगे हैं। मैं उन्हें दो प्रश्नोंमें से तर्कका अंश निकाल कर नीचे दे रहा हूँ:

> आप श्री जिन्ना और उन-जैसे विचार-सरणीके मुसलमानोंकी इस मान्यतासे कहाँतक सहमत हैं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, उसमें हिन्दुओंका बहुत बड़ा बहुमत होनेके कारण, अल्पसंख्यक मुसलमानोंके हितोंका पर्याप्त और उचित प्रतिनिधित्व और संरक्षण नहीं कर सकती; इसलिए मुस्लिम लीग-जैसी कोई एक अलग साम्प्रदायिक संस्था अत्यावश्यक है?

म नहीं मानता कि श्री जिन्नाका विचार जैसा आपने बताया वैसा है। मेरी रायमें कांग्रेस तो अपने जन्म-कालसे ही अपनी मर्यादाका खयाल छोड़कर भी मुसलमानोंका सहयोग ही नहीं बल्कि उनका कृपाभाव भी प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील रही है। इसलिए लीगके अस्तित्वका औचित्य तो अन्य आधारोंपर ही ठहराया जाना चाहिए।

> आप लाला लाजपतराय और पण्डित मदनमोहन मालवीय-जैसे प्रमुख हिन्दुओं और उन जैसी विचार-सरणीके लोगोंके इस विचारका समर्थन कहाँ तक करते हैं कि यद्यपि कांग्रेसमें हिन्दुओंका बहुत बड़ा बहुमत है फिर भी ऐसा नहीं माना जा सकता कि वह हिन्दू समाजके हितोंका प्रतिनिधित्व और संरक्षण कर सकती है, और इसलिए हिन्दू महासभा और 'संगठन' जैसी पृथक् साम्प्रदायिक संस्थाएँ हिन्दुओंके हितोंकी रक्षाके लिए नितान्त आवश्यक और अनिवार्य हैं?

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

मेरा खयाल यह नहीं है कि कांग्रेस हिन्दुओंके हितोंका, जहाँतक वे राष्ट्रीय हितोंसे अर्थात् राष्ट्रकी अंगभूत सभी जातियोंके हितोंसे मेल खाते हैं वहाँतक, प्रतिनिधित्व करनेमें विफल रही है। इसलिए हिन्दू महासभाके अस्तित्वके औचित्यका आधार भी कुछ और ही होना चाहिए। स्पष्ट है कि कांग्रेस परस्पर विरोधी हितोंका प्रतिनिधित्व तो नहीं कर सकती। हितों और प्रयत्नोंकी पारस्परिक अनुकूलता काग्रेसके अस्तित्वकी पहली शर्त है।

उत्तर भारतमें तो हिन्दुओं और मुसलमानोंके दंगे और फसाद अकसर होते रहते हैं, लेकिन वे दक्षिण भारतमें या तो होते नहीं या होते भी हैं तो बहुत कम। क्या आप बतायेंगे कि आपके सच्चे मत और विश्वासके अनुसार इसका तात्कालिक या दीर्घकालिक, वास्तविक कारण क्या है?

मैं तो सिर्फ अनुमान ही लगा सकता हूँ और मेरा अनुमान यह है कि उत्तर भारतमें दोनों सम्प्रदायोंके लोगोंके बीच ज्यादा झगड़ा-फसाद इसलिए होता है कि वहाँ दोनोंकी शक्ति लगभग समान है; दक्षिणमें ऐसा नहीं है। दंगे जहाँ होते हैं वहाँ वे इसलिए होते हैं कि दोनों जातियोंके लोग साम्प्रदायिक ढंगसे सोचते हैं और दोनों एक-दूसरेसे डरते और एक-दूसरेमें अविश्वास रखते हैं तथा दोनोंमें से किसीमें भी इतनी हिम्मत या दूरदर्शिता नहीं होती कि वह भविष्यकी खातिर वर्तमानका खयाल छोड़ दे, या राष्ट्रके हितोंके लिए साम्प्रदायिक हितोंकी परवाह न करे।

क्या आप सचमुच यह आशा करते हैं कि आप देवबन्दके मजहबी मकतबके और जमीयत-उल-उलेमा-ए-हिन्दके मौजूदा कट्टरपन्थी औलियोंकी मददका भरोसा करके, जैसा कि आप आजकल कर रहे हैं, हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्याको हल कर सकेंगे? ये आलिम तो हमेशा ही मुसलमानोंकी एक खासी बड़ी जमातको, जिसे लोग कादियानी, मिर्जाइया या ज्यादातर अहमदिया कहते हैं, काफिर, नास्तिक, धर्मच्युत और केवल संगसारीकी सजाके लायक मानकर उसकी निन्दा करते हैं। क्या आप इस विकट समस्याको हल करनेमें अहमदिया जमातको, असलमें जिनके हाथमें इस समस्याके हलकी कुंजी मालूम पड़ती है और जिन्होंने अपने लेखोंसे और आचरणसे इस समस्याको बहुत-कुछ हल भी कर लिया है, सहायता प्राप्त करनेका प्रयत्न भी करना चाहते हैं?

मुझे तो कट्टरपन्थी औलियों और अहमदिया सम्प्रदाय दोनों ही को अपने पक्षमें लेनेकी कोशिश करनी चाहिए। कट्टरपन्थी औलियोंकी उपेक्षा करना वांछनीय हो तो भी असम्भव है। फिर भी उचित यही है कि किसी एक व्यक्ति या समुदायपर बिलकुल निर्भर न रहा जाये। हमें अपने लिए एक न्यूनतम मर्यादा निश्चित कर लेनी चाहिए और फिर उससे पीछे न हटना चाहिए। इतना हो जानेपर अपनी विनयशीलताके बलपर सारे संसारको अपने पक्षमें लाया जा सकता है।

भारतके मुसलमान आम तौरपर दूसरे मुसलमान देशोंके मामलोंमें तो इतनी गहरी दिलचस्पी लेते हैं, लेकिन ऐसे मुसलमानोंकी संख्या नगण्य-सी ही

है जो अपने देशके राजनीतिक जीवन और देशकी उन्नतिके मामलेमें सक्रिय तौरपर दिलचस्पी लेते हों। यह बात मद्रास अहातेके मुसलमानोंपर विशेष रूपसे लागू होती है। क्या आपने कभी इसका कारण सोचनेकी कोशिश की है?

जहाँतक यह आरोप सही है, मैं समझता हूँ मुसलमान देशके मामलेमें कम दिलचस्पी इसलिए लेते हैं कि वे भारतको, जिसपर उन्हें गर्व होना चाहिए, आज भी अपना देश नहीं मानते। बहुतसे मुसलमान यह मानते हैं कि 'हम तो विजेता जातिके लोग हैं।' मेरी समझमें उनका यह खयाल बिलकुल गलत है। मुसलमानोंकी इस अलहदगीके लिए हम हिन्दू लोग भी एक हदतक जिम्मेदार हैं। हम अभीतक उनको इस राष्ट्रका अभिन्न अंग नहीं मान पाये हैं। हमने उनके हृदयोंपर विजय पानेकी कोशिश नहीं की है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थितिके कारण इतिहाससे सम्बन्धित हैं और ऐसे हैं जिनका तब उत्पन्न होना अनिवार्य था। इसलिए हिन्दुओंके दोषका अनुभव तो केवल इस समय ही किया जा सकता है। यह जागृति चूँकि अभी हालमें आई है, इसलिए वह सर्वत्र नहीं फैल पाई है और बहुतसे हिन्दुओंको मुसलमानोंके शरीर-बलसे जो भय है उसके कारण इस दोषको स्वीकार करके मुसलमानोंके हृदय जीतनेकी कोशिश करना उनके लिए कठिन हो गया है। लेकिन मुझे पाठकोंके सामने स्वीकार करना चाहिए कि अब मैं अपने आपको हिन्दू-मुस्लिम समस्याका विशेषज्ञ नहीं मानता। इसलिए मेरी रायका मूल्य सिर्फ तात्त्विक है। मैं अपनी रायपर इस समय भी दृढ़ हूँ; लेकिन मैं यह जरूर मानता हूँ कि मुझे किसी भी पक्षसे अपनी बात मनवाना बहुत कठिन काम मालूम हुआ है।

इस देशकी राजनीतिने इधर जो एक दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ लिया है उसका आपके पास क्या इलाज है? मोड़ यह है कि जहाँ इस देशकी राजनीतिकी और उसके राजनीतिक जीवनकी ओर शुरूसे सिर्फ थोड़ेसे धनी और साधन-सम्पन्न लोग ही आकर्षित हो पाये थे, वहाँ अब खास तौरसे पिछले चार वर्षोंसे स्थिति ऐसी हो गई है कि मध्यमवर्गीय और गरीब लोगोंके लिए इस देशमें सक्रिय और सफल राजनीतिक जीवन व्यतीत करना लगभग असम्भव हो गया है।

यहाँकी राजनीतिने कोई दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ नहीं लिया। हम एक लाजिमी मंजिलसे गुजर रहे हैं। गरीब लोगोंमें आत्म-चेतनाकी जो तीव्र भावना जाग्रत हो गई है, उसने सभी अनुमानों और बने-बनाये सूत्रोंको उलट-पुलटकर रख दिया है। हम अभी तक अपने-आपको नई अवस्थाके अनुकूल नहीं ढाल पाय हैं। मुझे तो सभी जगह सभी चीजोंमें एक नई व्यवस्था रूप लेती दिखाई पड़ रही है। इस दृष्टिसे तो हिन्दुओं और मुसलमानोंके उपद्रवोंको देखकर भी, मैं भविष्यकी ओरसे हताश नहीं होता। वर्तमान अव्यवस्थामें से एक व्यवस्था अवश्यमेव जन्मेगी। अगर हम केवल देखें, प्रतीक्षा करते हुए प्रार्थना करते रहें तो यह नई व्यवस्था जल्दी आयेगी। अगर हम ऐसा करेंगे तो जो बुराई सतहपर आ गई है, वह जल्दी दूर हो जायेगी, लेकिन अगर हम अपनी

जल्दबाजी और अधैर्यके कारण उस सतहको छोड़ देंगे तो गन्दगीको बाहर निकलने देनेके बजाय नीचे तलमें बैठा देंगे और फिर इस बुराईको दूर करनेमें ज्यादा समय लगेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२४७. राष्ट्रीय सप्ताह

६ और १३ अप्रैल भारतीयोंको सदा याद रहेंगे। ६ अप्रैल, १९१९ को राष्ट्रमें अप्रत्याशित और भारी जन-जागृति हुई थी। १३ अप्रैलको जलियाँवाला बागमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंने ऐसा बलिदान किया था, जिसमें उनके रक्तकी त्रिवेणी बह निकली थी और वे मृत्युका आलिंगन करके एक हो गये थे।

लेकिन तबसे साबरमतीका कितना ही पानी बह गया है और राष्ट्रने भी बहुत-सी धूप-छाँह देख ली है। आज हिन्दू-मुस्लिम-एकता की बात एक स्वप्न-जैसी दिखाई दे रही है। मैं देखता हूँ कि आज दोनों लड़नेकी तैयारियाँ कर रहे हैं। हरएक कौमका दावा है कि वह सिर्फ आत्मरक्षाके लिए ही तैयारी कर रही है। अंशतः दोनों कौमें सच्ची भी हैं। यदि वे यह मानें कि उन्हें लड़ना ही चाहिए तो वे बहादुरीसे लड़ें और पुलिस और अदालतसे मिल सकने वाले संरक्षणसे नफरत करें। यदि वे यह कर सकें तो १३ अप्रैलसे हमें जो सबक मिला है वह व्यर्थ न होगा। यदि हमें गुलाम नहीं बने रहना है तो हमें ब्रिटिश बन्दूकोंपर और अदालतके अनिश्चित न्यायपर भरोसा रखना भी छोड़ देना होगा। स्वराज्यके लिए उत्तम शिक्षा तो यही है कि ऐन मौके-पर भी इन दोनोंपर विश्वास न रखा जाये। सर अब्दुर्रहमानकी वरिष्ठताकी मंसूखी[1], नमकपर कर लगाना और आर्डिनेंस बिलका[2] पास कराना, इन सब कामोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्रिटिश राज्यकर्त्तागण तो हमारे विरोधके बावजूद हमपर राज्य करते रहना चाहते हैं। सच बात तो यह है कि वे अपने कार्योंके द्वारा जहाँतक मुमकिन हो सकता है, साफ-साफ हमसे यह कहते हैं कि हमारी मददके बिना ही वे हमपर राज्य करेंगे। क्या हममें भी यह हिम्मत नहीं हो सकती कि हम भी उनकी मदद लेनेसे इनकार करें और उसके बिना ही काम चला लें? हमने यह तो देख लिया है कि जब हम लड़ते-झगड़ते नहीं हैं तब तो हम उनकी मददके बिना ही काम चला

१. वाइसराय लॉर्ड रीडिंगकी भारतसे अनुपस्थितिके कालमें लॉर्ड लिटनने उनका कार्य सम्भाला था। इस बीच लॉर्ड लिटनकी जगहपर सर अब्दुर्रहमान वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के वरिष्ठ सदस्य होनेके कारण बंगालके कार्यवाहक गवर्नर बनाये जानेके अधिकारी थे; किन्तु उनकी वरिष्ठता मंसूख करके सर जॉन केर बंगालके कार्यवाहक गवर्नर बना दिये गये थे।

२. क्रान्तिकारियोंके अपराधोंको रोकनेके लिए बंगालमें सामान्य फौजदारी कानूनकी पूर्तिके लिए जारी किया गया बंगाल अध्यादेश।

लेते हैं। कुछ और अधिक हिम्मत करें तो लड़ने-झगड़नेपर भी हम उनकी मददके बिना काम चला सकेंगे। सिरको बचानेके लिए पेटके बल चलनेके बजाय तो फूटे सिरपर पट्टी बाँधकर सीधे खड़ा रहना ही अधिक अच्छा है। यदि हम सरकारी दखलके बिना मनमाना लड़ें भी तो मैं देख सकता हूँ कि उसमें से हिन्दू-मुस्लिम-एकता निष्पन्न हो सकेगी। लेकिन यदि हम ब्रिटिश सिपाहियोंकी छायामें रहकर लड़ेंगे और अदालतमें झूठी कसमें खाकर गवाही देंगे तो मैं सच्ची एकताके विषयमें निराश हो जाऊँगा। हमें स्वराज्य हासिल करनेसे पहले खुद मनुष्य बनना चाहिए।

किन्तु सत्याग्रह सप्ताह मुख्यतः आत्मशुद्धि और आत्मनिरीक्षणका सप्ताह है। मेरा दृढ़ विश्वास है, और वह दिन-प्रतिदिन दृढ़तर होता जाता है कि हम जबतक अपना आचरण शुद्ध न करेंगे, दूसरे शब्दोंमें कहें तो जबतक सत्य और अहिंसाका पालन न करेंगे तबतक हमारा यह दुखी देश सुखी न होगा। ऐसी शुद्धता प्रार्थना और उपवास-से ही आ सकती है। वर्तमान स्थितियोंमें हड़तालका तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए जिनका प्रार्थना और उपवासमें विश्वास है, उनसे मेरा अनुरोध है कि वे ६ और १३ अप्रैलके दिन प्रार्थना और उपवासके पवित्र कार्यमें लगायें। खद्दर पहनना और सूत कातना ये दो ऐसे कार्यक्रम हैं; जिनमें युवक और वृद्ध, धनी और निर्धन, स्त्री और पुरुष सभी समान रूपसे उपयोगी कार्य करते हुए भाग ले सकते हैं। जो सूत कात सकते हैं वे स्वयं यथाशक्ति सूत कातें और अपने मित्रोंको सूत कातनेके लिए कहें। जो अपने-अपने गाँवों और शहरोंमें खद्दरकी फेरी लगा सकें, वे फेरी लगायें। वे इस प्रकार इस त्याग और बलिदानके सप्ताहका उपयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यके लिए कर सकते हैं।

हिन्दुओंको अपनी अस्पृश्यताकी अशुद्धि दूर करनी है, वे अस्पृश्योंको गले लगा सकते हैं। वे संकटापन्न अस्पृश्योंके सहायतार्थ जितना धन दे सकें, दे सकते हैं और उन्हें अन्य प्रकारसे भी यह अनुभूति करा सकते हैं कि हिन्दुओंमें उनका वर्ग अब तिरस्कृत वर्ग नहीं रहा है।

मेरी दृष्टिमें एकता, खद्दर और अस्पृश्यता-निवारण स्वराज्यके आधारस्तंभ हैं। इसीपर विश्वका वह भव्यतम भवन बनाया जा सकता है, जब कि किसी दूसरी नींवपर बनाया गया भवन बालूकी बुनियादपर खड़ी की गई इमारतकी तरह कमजोर होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२४८. दो प्रश्न

अपनी दक्षिण-यात्रामें मुझे यह बात मालूम हुई कि कुछ कांग्रेस कमेटियाँ सदस्यताके चन्देके तौरपर सूतके बजाय पैसे ले रही हैं। मैंने यह भी सुना कि करीब-करीब सभी जगह ऐसा हो रहा है। एक सदस्य और सम्पादककी हैसियतसे मुझे यह कहनेमें जरा भी हिचक नहीं होती कि यह कार्रवाई बेकायदा है। वैसे यह बात दर‌असल बेकायदा है या नहीं, इसका निर्णय कार्यसमिति कर सकती है। मैं ऐसे मामलोंमें प्रमुखकी हैसियतसे अपना निर्णय बिलकुल नहीं देना चाहता। लेकिन एक सामान्य बुद्धिके मनुष्यकी तरह सामान्य बुद्धिके मनुष्योंके लिए लिखते हुए मैं कांग्रेसके सदस्योंको यह बात याद दिलाना चाहता हूँ कि सूतके बदले शुल्ककी जगह पैसे देनेके सवालपर बहस हुई थी और वह नामंजूर किया गया था। चन्देके तौरपर सूत देनेका नियम बनानेके पीछे यही विचार है कि हरएक शख्स जो कांग्रेसमें शामिल होना चाहता है, स्वयं ही अच्छे सूतको पहचानने और खरीदनेकी तकलीफ करे। कांग्रेसके बही-खातोंमें तो सिर्फ सूतके चन्देकी अदायगीका ही विवरण रहना चाहिए, रुपये पैसेके चन्देका नहीं। पैसोंके रूपमें चन्दा लेना संविधानका भंग करना है। मैं तो एक कदम आगे बढ़कर यह भी कहूँगा कि यदि समझौतेकी[1] प्रेरक भावनाको ध्यानमें रखकर विचार किया जाये तो कांग्रेस कमेटियोंको सिर्फ खुद कातनेवाले लोगोंको ही सदस्य बनाना चाहिए और उन्हींकी जरूरतें पूरी करनी चाहिए। जो खुद कातना नहीं चाहते, वे अपना चन्देका सूत तो भेज सकते हैं; लेकिन कमेटियोंको तो खुद कातनेवालोंकी ही जरूरत पूरी करनेकी भरसक कोशिश करनी चाहिए, ताकि उनके सदस्योंमें हाथ-कताईका प्रचार हो जाये। इसलिए मेरी रायमें तो कमेटियोंका यह फर्ज है कि वे चन्देका सब रुपया वापस कर दें। जो सूत खरीदना चाहें, उन्हें हाथकता सूत मुहैया करनेकी व्यवस्था निजी संस्थाओं या व्यक्तियोंको करनी चाहिए। जबतक इस मर्यादाकी रक्षा न की जाये, तबतक हम यह नहीं कह सकते कि हमने नये मताधिकारपर अमल किया है या उसे मुनासिब मौका दिया है। मैं निजी तौर-पर इसमें कोई हर्ज नहीं मानता कि कांग्रेसमें स्वयं सूत कातनेवाले कुछ सौ सदस्य ही हों, बशर्ते कि वे 'हम कांग्रेसके सदस्य हैं', सिर्फ इस अभिमानसे उत्साहित होकर ही सूत कातें, अन्य किसी प्रेरणासे नहीं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि वे कमेटियाँ जिन्होंने सूतके बजाय रुपया लिया है, सब रुपया लौटा देंगी और सदस्योंको, यदि वे सदस्य रहना चाहें तो, हाथकता सूत भेजनेकी सलाह देंगी। यदि इससे इन सदस्योंको कोई शिकायत हो तो उन्हें अधिकार है कि वे इस मामलेमें कार्य-समितिका निर्णय प्राप्त करें।

१. कलकत्ता समझौता। देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ३०७-८।

और दूसरी एकबात तो अभी बम्बई पहुँचनेपर ही मुझे मालूम हुई है। मैंने सुना है कि कुछ सज्जन ऐसे हैं जो पूरे तौरसे खादीके कपड़े पहने बिना ही कांग्रेसकी बैठकोंमें बराबर शामिल हो रहे हैं। मेरी रायमें ऐसे लोग जबतक हाथकती और हाथबुनी खादी नहीं पहनते तबतक न तो वे सदस्य माने जा सकते हैं और न कमेटीकी बैठकमें शामिल होनेका हक रखते हैं। उस दशामें न तो वे भाषण कर सकते हैं और न मत दे सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२४९. कुछ तर्कोंका विवेचन

सन्तति-नियमन सम्बन्धी मेरे लेखको[1] पढ़कर, जैसा अनुमान था, मेरे पास कृत्रिम साधनोंके पक्षमें लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ आई हैं। उनमें से मैंने सिर्फ तीन बतौर नमूनेके रूपमें चुन ली हैं।[2] एक चौथी चिट्ठीका विषय अधिकांशतः धर्मसे सम्बन्धित है, इसलिए मैंने वह छोड़ दी है। तीन चिट्ठियोंमें से एक संक्षेपमें इस प्रकार है:

> मैं मानता हूँ कि ब्रह्मचर्यही अचूक और सर्वोत्तम उपाय है। लेकिन यह संयमका विषय है, सन्तति-नियमनका नहीं। हम सन्तति-नियमनकी समस्याओं-पर दो दृष्टियोंसे विचार कर सकते हैं — व्यक्तिकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे। कामवासनाका निरोध करना और इस प्रकार अपना आत्मबल बढ़ाना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है; लेकिन उसमें सन्तति-नियमनका खयाल नहीं होता। संन्यासी मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, सन्तति-नियमनका नहीं। यह समस्या तो गृहस्थकी है। एक मनुष्य कितने बच्चोंका पालन-पोषण कर सकता है, यह सवाल है। आप मनुष्य-स्वभावको तो जानते ही हैं। कितने मनुष्य सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद सम्भोगसुखको पूर्णतः छोड़नेके लिए तैयार हो सकते हैं? स्मृतिकारोंकी तरह आप संयममें रहकर सम्भोगेच्छा पूरी करनेकी इजाजत तो देंगे ही। उससे सन्तान अधिक अच्छी होगी; लेकिन इससे सन्तति-नियमनका सवाल हल नहीं होगा, क्योंकि सशक्त लोग अशक्त लोगोंसे अधिक तीव्र गतिसे बढ़ते हैं।
>
> सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे कितने मनुष्य सम्भोग करते हैं? आप कहते हैं सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना सम्भोग करना पाप है। यह आप-जैसे संन्यासी-के लिए बहुत उपयुक्त है। आप यह कहते हैं कि सन्तति-नियमनके लिए कृत्रिम साधनोंका प्रयोग करनेसे बुराई बढ़ती है। उससे स्त्री-पुरुष उच्छृंखल

१. देखिए "सन्तति-नियमन", १२-३-१९२५।

२. मूल अंग्रेजी लेखमें उद्धृत पत्रोंको संक्षिप्त रूपमें दिया गया है।

हो जाते हैं। यह सच हो तो बहुत बड़ा आरोप है। लोकमत इतना प्रबल कभी नहीं हुआ कि उससे सम्भोगकी गति रुक सके। लोग कहते हैं कि सन्तान ईश्वरकी इच्छासे होती है, जो दाँत देता है वह अन्न भी देता है और अधिक सन्तति पौरुषका प्रमाण है। क्या निश्चय ही सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका प्रयोग करनेसे शरीर और मन निर्बल हो जाते हैं? इसके निर्दोष साधन भी हैं, जिन्हें विज्ञानने खोज निकाला है या जल्दी ही निकाल लेगा। लेकिन आप तो किसी भी अवस्थामें उसका उपयोग करने देना नहीं चाहते, क्योंकि अपने कर्मके फलसे बचना बुरा है और अनीतिमय है। इसमें आप यह मान लेते हैं कि ऐसी भूखको थोड़ा भी मिटाना अनीतिमय है। मैं पूछता हूँ कि सन्ततिके 'भय'से कौन रुका है? फिर 'भय' संयमका कारण हो तो उसका नैतिक परिणाम अच्छा न होगा। माता-पिताके पापोंकी भागी सन्ततिको किस नियमसे होना चाहिए? सच है कि प्रकृति अपने नियमोंके भंगका दण्ड अवश्य देगी। किन्तु ये कृत्रिम साधन प्रकृत्रिके नियमोंका भंग करते हैं, यह आप क्यों मान लेते हैं? बनावटी दाँतों और आँखों इत्यादिके इस्तेमालको कोई प्रकृति-विरुद्ध नहीं समझता। वही वस्तु प्रकृति-विरुद्ध है जिससे हमारी भलाई न हो। मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य स्वभावसे बुरा है और इन तरीकोंसे अधिक बुरा हो जायेगा, इस नई शक्तिका सदुपयोग होगा। साथ ही हमें स्त्रियोंको भी नहीं भूलना चाहिए। उनकी आवश्यकताओंपर हमने बहुत दिनोंतक ध्यान नहीं दिया है। वे पुरुषोंको सन्तानोत्पत्तिके निमित्त अपने शरीरोंका प्रयोग क्षेत्रके रूपमें नहीं करने देना चाहतीं। कुछ रोग भी ऐसे हैं जिनसे इन कृत्रिम साधनोंके प्रयोगसे उत्पन्न मज्जातन्तुओंकी निर्बलताकी जोखिम उठाकर भी बचना चाहिए।

मैं यह बात पहले ही साफ कर दूँ कि मैंने वह लेख संन्यासियोंके लिए या संन्यासीकी हैसियतसे नहीं लिखा है। मैं प्रचलित अर्थमें संन्यासी होनेका दावा भी नहीं करता। मैंने जो-कुछ लिखा है अपने पच्चीस वर्षके अखण्डित निजी आचरणके आधारपर लिखा है। इसमें बीचमें कहीं-कहीं थोड़ा-सा नियम-भंग हुआ है। यही नहीं इसमें मेरे उन मित्रोंका अनुभव भी शामिल है जिन्होंने इस प्रयोगमें इतने लम्बे समय तक इसलिए मेरा साथ दिया है कि उससे कुछ परिणाम निश्चित किये जा सकें। इस प्रयोगमें क्या युवक और क्या बूढ़े दोनों प्रकारके स्त्री-पुरुष सम्मिलित हैं। मैं इस प्रयोगमें कुछ अंशतक वैज्ञानिक विशुद्धताका दावा करता हूँ। यद्यपि उसका आधार बिलकुल नैतिक है, तथापि उसका आरम्भ सन्तति-नियमनकी अभिलाषासे हुआ था। मेरा स्वयं भी विशेष रूपसे यही प्रयोजन था। उसके पश्चात् कुछ बातें सूझीं जिनके भारी नैतिक परिणाम निकले — पर निकले वे बिलकुल स्वाभाविक रूपसे। मैं यह दावा करता हूँ कि यदि विवेक और सावधानीसे काम लिया जाये तो बिना अधिक कठिनाई के संयमका पालन किया जा सकता है और यह दावा केवल मेरा ही नहीं, जर्मन तथा अन्यदेशीय प्राकृतिक चिकित्सकोंका भी है। उनका तो कहना है कि जल तथा

मिट्टीके उपचारोंसे और अनुत्तेजक तथा विशेषतः फलोंके भोजनसे स्नायुको शीतलता मिलती है, एवं विषय-विकार आसानीसे वशमें आते हैं और साथ ही शरीर भी सशक्त होता है। राजयोगियोंका भी कहना है कि योगकी अन्य ऊँची विधियोंको छोड़ भी दें और केवल यथाविधि प्राणायाम ही करें तो भी यही लाभ होता है। पश्चिमी और प्राचीन भारतीय संन्यासियोंके लिए ही नहीं बल्कि मुख्यतः ये दोनों विधियाँ गृहस्थोंके लिए हैं। यदि यह कहा जाये कि जनसंख्याकी अतिवृद्धिके कारण राष्ट्रके लिए सन्तति-नियमनकी आवश्यकता है तो मैं इससे सहमत नहीं हूँ। यह बात अभीतक साबित नहीं हुई है। मेरी रायमें तो यदि धरतीका समुचित प्रबन्ध किया जाये, कृषिकी दशा सुधारी जाये और एक सहायक धन्धेकी तजवीज कर दी जाये तो हमारा यह देश अपनी आजकी आबादीसे दूनी आबादीका भरण-पोषण कर सकता है। मैंने तो देशकी मौजूदा राजनीतिक अवस्थाको देखते हुए ही सन्तति-नियमनके समर्थकोंका साथ दिया है।

मैं यह बात जरूर कहता हूँ कि सन्तानकी आवश्यकता पूरी हो जानेपर मनुष्यको कामवासनामें लिप्त नहीं होना चाहिए। आत्मसंयमके उपायको लोकप्रिय और सफल बनाया जा सकता है। शिक्षित लोगोंने कभी उसकी आजमाइश ही नहीं की। संयुक्त कुटुम्ब-प्रथाकी बदौलत शिक्षित वर्गने अभी उसकी आवश्यकता महसूस नहीं की है। जिन्होंने यह जरूरत महसूस भी की है उन्होंने उस मतमें निहित नैतिक प्रश्नोंपर विचार नहीं किया है। जहाँ-तहाँ ब्रह्मचर्यपर व्याख्यान अवश्य दिये गये हैं; इसके अलावा अभीतक सन्तति-नियमनके उद्देश्यसे आत्म संयमके प्रचारका कोई भी व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया। इसके बाद यह अंधविश्वास अब भी प्रचलित है कि कुटुम्बका बड़ा होना शुभ है और फलतः वांछनीय है। सामान्यतः धर्मोपदेशक यह उपदेश नहीं देते कि स्थिति विशेषमें सन्तति-नियमन करना भी उतना ही बड़ा धार्मिक दायित्व है जितना स्थिति-विशेषमें सन्तान उत्पन्न करना।

मुझे भय है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके हिमायती इस बातको मानकर ही चलते हैं कि विषय-भोग जीवनके लिए आवश्यक है और इसलिए अपने-आपमें भी वांछनीय है। स्त्री-जातिकी जो वकालत की गई है वह तो अत्यन्त दयनीय है। मेरी रायमें तो कृत्रिम साधनोंके द्वारा सन्तति-नियमनके समर्थनमें स्त्री-जातिका प्रश्न उठाना उसका अपमान करना है। बात यह है कि पुरुषने अपनी कामुकताके कारण उसकी बहुत-कुछ अधोगति कर दी है और अब इन कृत्रिम साधनोंसे उनके हिमायतियोंके सदुद्देश्योंके बावजूद उसकी और भी अधोगति होगी। मैं जानता हूँ कि यहाँ ऐसी आधुनिकाएँ भी हैं जो खुद ही इन साधनोंकी हिमायत करती हैं। परन्तु मुझे इस बातमें कोई शक नहीं है कि बहुसंख्यक स्त्रियाँ इन साधनोंको अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझकर कदापि नहीं अपनायेंगी। यदि पुरुष सचमुच स्त्री-जातिका हित चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह स्वयं ही संयम पाले। स्त्रियाँ पुरुषोंको प्रेरित नहीं करतीं। सच पूछें तो चूँकि पुरुष ही पहल करता है, इसलिए वही सच्चा अपराधी और प्रेरक है।

मैं कृत्रिम साधनोंके हिमायती सज्जनोंसे आग्रह करता हूँ कि वे इनके नतीजोंपर गौर करें। इन साधनोंके ज्यादा उपयोग से हो सकता है कि विवाह-बन्धन टूट जायें

और मनमाने प्रेम-सम्बन्ध बढ़ें। यदि मनुष्य सम्भोगके लिए ही विषयमें लिप्त होता है तो फिर फर्ज करें कि यदि वह बहुत लम्बे समयतक अपने घरसे दूर रहे, या दीर्घ-कालीन युद्धमें व्यस्त रहे, या विधुर हो जाये या उसकी पत्नी ऐसी बीमार हो जाये कि कृत्रिम साधनोंका प्रयोग करते हुए भी अपने स्वास्थ्यको हानि पहुँचाये बिना वासनाकी वृत्तिके अयोग्य हो, तो ऐसी अवस्थामें वह क्या करेगा?

लेकिन दूसरे पत्रलेखक[1] कहते हैं:

> सन्तति-नियमन-सम्बन्धी आपके लेखमें आप यह कहते हैं कि कृत्रिम-साधन हानिकारक हैं। जिसे सिद्ध करना है, आप उस बातको पहलेसे मानकर चलते हैं। सन्तति-नियमन सम्मेलन (लन्दन १९२२) में यह प्रस्ताव १६४ के विरुद्ध ३ मतसे स्वीकार कर लिया गया था कि गर्भ-निरोधके स्वास्थ्यकर उपाय नीति, न्याय और शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे गर्भपातसे बिलकुल ही भिन्न हैं और ऐसे उत्तम उपाय हानिकारक या वंध्यत्वके उत्पादक हों, यह बात किसी प्रमाणसे साबित नहीं हो पाई है।
>
> मेरे खयालसे ऐसे विशाल चिकित्सक समुदायका निर्णय सिर्फ कलम चला कर ही रद नहीं किया जा सकता। आप लिखते है कि बाह्य साधनोंका उपयोग करनेसे तो शरीर और मन निर्बल हो जाने चाहिए। क्यों हो जाने चाहिए? मैं कहता हूँ कि आधुनिक वैज्ञानिक तरीकोंसे निर्बलता नहीं आती; हाँ, अज्ञान-वश हानिकारक उपाय काममें लेनेसे तो जरूर आती है और इसलिए सन्तानो-त्पत्तिमें समर्थ वयस्कोंको इसके उचित उपाय सिखाना आवश्यक है। आप इन डाक्टरी उपायोंको कृत्रिम साधन कहते हैं, किन्तु यदि डाक्टर संयमके उपाय सुझायें तो वे भी तो कृत्रिम साधन ही होंगे। आप कहते हैं, सम्भोग करना सुखके लिए नहीं बताया है। किसने नहीं बताया है? ईश्वरने? तब उसने कामवासना क्यों उत्पन्न की? कुदरतके कानूनमें कार्योंका फल अच्छा या बुरा अनिवार्य है। कृत्रिम विधियोंके प्रयोगकर्त्ता भी अपने कार्योंका फल भोगते ही हैं। अतः आपकी यह दलील, जबतक आप यह साबित न करें कि कृत्रिम साधन हानिकारक हैं, किसी कामकी नहीं। कार्योंकी नैतिकता या अनैतिकताका निर्णय उनके परिणामोंसे किया जाना चाहिए।
>
> ब्रह्मचर्यके लाभोंका वर्णन करनेमें बहुत अतिशयोक्तिकी गई है। बहुतसे डाक्टर बाईस-तेईस सालकी उम्रके बाद ब्रह्मचर्यको निश्चित रूपसे हानिकर मानते हैं। आप अपने धार्मिक पूर्वग्रहके कारण सन्तानोत्पत्तिको छोड़कर किसी अन्य हेतुसे सम्भोग करना पाप मानते हैं और इससे सबपर पापका आरोपण करते हैं। शरीर-विज्ञान यह नहीं कहता। ऐसे पूर्वग्रहोंके सामने विज्ञानकी उपेक्षा करनेके दिन अब नहीं रहे।

१. अंशतः उद्धृत।

लेखक समाधान कराना नहीं, अपनी ही बातपर अड़े रहना चाहते हैं। मेरा खयाल है, मैंने यह दिखानेके लिए — कि यदि हम विवाह-बन्धनकी पवित्रताको मानते और कायम रखना चाहते हैं तो जीवनका धर्म भोग नहीं, बल्कि आत्म-संयम ही समझा जाना चाहिए — पर्याप्त उदाहरण दे दिये हैं। जिस बातको सिद्ध करना है मैं उसीको पहलेसे मानकर नहीं चला हूँ, क्योंकि मैं तो यही कहता हूँ कि कृत्रिम साधन चाहे कितने ही उचित क्यों न हों, पर वे हानिकर ही हैं। वे खुद चाहे हानिकर न हों, पर वे इस तरह हानिकर जरूर हैं कि उनके द्वारा काम-पिपासा तीव्र ही होती है और ज्यों-ज्यों उसको बुझाते हैं, त्यों-त्यों वह बढ़ती है। जिसके मनको यह माननेकी आदत पड़ गई है कि विषय-भोग केवल विधि-विहित ही नहीं बल्कि वांछनीय भी है, वह भोग ही में सदा रत रहेगा और अन्तमें इतना निर्बल हो जायेगा कि उसकी तमाम संकल्प-शक्ति नष्ट हो जायेगी। मैं मानता हूँ कि कामवासनाकी तृप्तिके प्रयत्नसे मनुष्यकी वह अनमोल शक्ति कम होती है जो पुरुष और स्त्री दोनोंके शरीर, मन और आत्माको सशक्त रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। इससे पहले मैंने इस विवादमें आत्मा शब्दको जानबूझकर छोड़ दिया था; क्योंकि लेखक महोदय उसके अस्तित्वका खयाल करते हुए नहीं दिखाई देते और इस विवादमें मुझे सिर्फ उनकी दलीलोंका जवाब देना था। भारतवर्षमें एक तो यों ही विवाहित लोगोंकी संख्या बहुत है। फिर वह निःसत्व भी बहुत अधिक हो चुका है। यदि और किसी कारणसे नहीं तो उसकी गई हुई जीवनशक्तिको वापिस लानेके ही लिए उसे कृत्रिम साधनोंके द्वारा विषय-भोगकी नहीं बल्कि पूर्ण संयमकी शिक्षाकी जरूरत है। आज दवाओंके अनीतिमूलक विज्ञापन हमारे अखबारोंका स्वरूप विकृत कर रहे हैं। सन्तति-नियमनके हिमायती उन्हें अपने लिए चेतावनी समझें। मैं इसकी चर्चा ज्यादा नहीं करता, इसका कारण झूठी शिष्टता या लज्जा नहीं; बल्कि इस संयमका कारण यह ज्ञान है कि इस देशके जीवनशक्तिसे हीन और निर्बल युवक विषयभोगके पक्षमें पेश की गई सदोष युक्तियोंके शिकार कितनी आसानीसे हो जाते हैं।

अब शायद इस बातकी जरूरत नहीं रही कि मैं दूसरे पत्रलेखकके उपस्थित किये डाक्टरी प्रमाणपत्रका जवाब दूँ। मेरे पक्षसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। मैं इस बातका न तो समर्थन करता हूँ और न खण्डन कि उचित कृत्रिम साधनोंसे जननेन्द्रियको हानि पहुँचती है या वन्ध्यत्व उत्पन्न होता है। योग्यसे-योग्य डाक्टरोंका समुदाय भी उन सैकड़ों नौजवानोंके जीवनके सर्वनाशको मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता, जो उनकी अपनी पत्नियोंके साथ ही सही अति भोगका परिणाम है और जिसे मैंने खुद देखा है।

पहले लेखककी दी हुई कृत्रिम दाँतोंकी उपमा फबती हुई नहीं जान पड़ती। बनावटी दाँत जरूर ही मनुष्य-कृत और अस्वाभाविक होते हैं; पर उनसे कमसे-कम एक आवश्यक प्रयोजनकी पूर्ति तो हो सकती है। पर इसके खिलाफ विषय-भोगके लिए कृत्रिम साधनोंका प्रयोग उस भोजनकी तरह है जो भूख मिटानेके लिए नहीं, बल्कि स्वादेन्द्रियको तृप्त करनेके लिए किया जाता है। केवल जिह्वाके सुखके लिए भोजन करना उसी तरह पाप है जिस तरह कामवासनाकी तृप्तिके लिए सम्भोग करना।

इस तीसरी और आखिरी चिट्ठीमें, एक नई ही बात मिलती है, अतः यह दिलचस्प है:

> यह प्रश्न संसारके सब राज्योंको चिन्तित कर रहा है। मैं आपके सन्तति-नियमन सम्बन्धी लेखके बारेमें लिख रहा हूँ। आप निःसन्देह यह तो जानते ही होंगे कि अमेरिकाकी सरकार इसके प्रचारके खिलाफ है। आपने यह भी सुना होगा कि एक पूर्वी देश जापानने इसकी खुले आम इजाजत दे दी है। दोनोंके सम्मुख इसके अलग-अलग कारण हैं और वे सबको विदित हैं। जापान सरकारका प्रजोत्पत्ति रोकना जरूरी है; किन्तु इसमें वह मनुष्य-स्वभावका विचार करना भी जरूरी मानती है। क्या सन्तति-नियमन इसका एकमात्र मार्ग नहीं है? आपका आत्म-संयमका नुस्खा आदर्श हो सकता है, लेकिन क्या वह व्यावहारिक भी है? क्या मनुष्य सम्भोग-सुखको छोड़ सकता है? थोड़े लोग ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं; लेकिन क्या जनतामें इसके सम्बन्धमें की गई किसी हलचलसे कुछ मतलब हल हो सकता है? भारतमें तो इसके लिए जन-साधारणमें व्यापक आन्दोलनकी ही आवश्यकता है।

मैं अवश्य ही मानता हूँ कि मुझे अमेरिका और जापानकी ये बातें मालूम न थीं। पता नहीं, जापान क्यों कृत्रिम साधनोंका पक्ष ले रहा है। यदि लेखककी बात सही है और सचमुच जापानमें कृत्रिम साधन आम हो रहे हैं तो मैं साहसके साथ कहता हूँ कि यह सुन्दर देश अपने नैतिक सर्वनाशकी ओर बढ़ रहा है।

हो सकता है कि मेरा खयाल बिलकुल गलत हो। सम्भव है मैंने ये निष्कर्ष गलत सामग्रीके आधारपर निकाले हों। लेकिन सन्तति-नियमनके हिमायतियोंको धीरजसे काम लेना चाहिए। आधुनिक उदाहरणोंके अतिरिक्त उनके पक्षमें कुछ भी सामग्री नहीं है। निश्चय ही इस नियमन प्रणालीका भविष्य क्या होगा इस विषयमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। यह तो ऊपरसे देखें तो भी मनुष्य-जातिके नैतिक भावोंके अतिशय विरुद्ध है। नौजवानीके साथ खिलवाड़ करना तो बहुत आसान है, परन्तु इस खिलवाड़के दुष्परिणामोंका परिमार्जन करना कठिन होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-४-१९२५

२५०. धोलका ताल्लुकेके कष्ट

धोलकासे एक संवाददाताने लिखा है:[1]

यदि उक्त कष्टोंकी बात सच हो तो उनको दूर करनेके तीन उपाय हैं और उन तीनोंको एक साथ काममें लाना चाहिए। जो लोग अज्ञानवश या भयके कारण अन्यायको सहन करते हैं, हमें उनका अज्ञान और भय समझाकर दूर कर देना चाहिए। सिपाहियोंको भी उनका धर्म समझाया जाना चाहिए और [आवश्यक हो जानेपर] उस विभागके अधिकारियोंके सम्मुख शिकायतें रखी जानी चाहिए। जो लोग कष्टोंको सहन करते हैं वे असहयोगी नहीं माने जा सकते; इसलिए वे आवेदनपत्र दे सकते हैं। एक चौथा उपाय मामलेको अदालतमें ले जानेका भी है। दयालु वकील लोगोंकी ओरसे मुफ्तमें पैरवी कर सकते हैं। इस उपायका आश्रय सरकार उनके कष्ट दूर न करे तब लिया जा सकता है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २-४-१९२५

२५१. भाषण: मढडामें

२ अप्रैल, १९२५

कर्त्तव्यपरायणतामें मेरा अखण्ड विश्वास है। सैनिक कभी नहीं थकता। वह तो जूझता-जूझता ही मरना चाहता है और मनमें यह विश्वास रखता है कि यदि मुझे जीते-जी जीत न मिलेगी तो मैं मरकर तो जीतूँगा ही। यदि तप करते-करते प्राण चले जायें और पूरा आश्रम ध्वस्त हो जाये तो भी आप ऐसी श्रद्धा बनाये रखें कि गांधीने आत्मविश्वासका जो मन्त्र दिया है वह सत्य है और आपने जिस वस्तुको लेनेका संकल्प किया है वह इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें अवश्य मिलेगी।

कई बार हम निःसत्व-से हो जाते हैं और हमें ऐसा लगता है मानो हमारे सभी सहारे हमसे रूठ गये हैं। तभी हमपर अचानक, अनजाने कहींसे सहारोंकी वर्षा होने लगती है। मुझे अपने जीवनमें ऐसे कड़वे-मीठे अनुभव अनेक हुए हैं और मैं ऐसी बहुत-सी घटनाएँ सुना सकता हूँ। जब मैंने एक वर्षके भीतर स्वराज्य लेनेका निश्चय किया तब ईश्वरने मुझे पराजित कर दिया। उसने मुझसे कहा, 'ऐसी अवधि निश्चित करनेवाला तू कौन होता है?' यह बात सच है कि मैंने शर्तके साथ एक वर्षकी अवधि निर्धारित की थी, किन्तु शर्त रखनेपर भी मुझे यह तो समझ लेना चाहिए था

१. यहाँ यह पत्र नहीं दिया जा रहा है। संवाददाताने ताल्लुकेके चुंगी नाकेपर नियुक्त अधिकारियों और सिपाहियों द्वारा ग्रामीणोंको बहुत कष्ट देनेकी शिकायत की थी।

कि हिन्दुस्तानमें कितनी शक्ति है। मैंने इस शक्तिका अनुमान लगानेमें भूल की। यह तो मेरा ही दोष था। यह किसी दूसरेका दोष नहीं माना जा सकता। फिर भी मुझमें सन् १९२०–२१ में जितनी श्रद्धा और विश्वास था आज उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक है। उन्हींसे मुझे शान्ति और सुख मिल रहा है। जो लोग मेरे शान्ति और सुखमें भाग लेना चाहते हों वे मेरी-जैसी श्रद्धा प्राप्त करें। आपने मुझे शान्तिका सरदार कहा है। किन्तु मेरे मित्र श्री शास्त्री और सरकार तो मुझे अशान्तिका सरदार मानते हैं। अहिंसा मेरा मन्त्र है। फिर भी बहुतसे लोग मेरे नामपर खून करें और लोगोंको गालियाँ दें तो मेरी अहिंसाका क्या अर्थ रह जाता है? मैं देखता हूँ कि मैं जिस बातको कहता या करता आया हूँ, उसका प्रभाव ऐसा पड़ा है कि उस बातका रूप ही विकृत दिखने लगा है। इसलिए मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि मेरी अहिंसा कैसी है? ऐसे विघ्नोंके बावजूद मैं अहिंसा मन्त्रसे पागलोंकी तरह चिपटा हुआ हूँ। मैं समझ गया हूँ कि दूसरे लोग क्या कहेंगे; पर मुझे यह विचार करना छोड़ देना चाहिए और अपना काम करते जाना चाहिए। इसीलिए मैं पागल होनेका भय छोड़कर अपना काम करता चला जाता हूँ।

इसके बाद गांधीजीने आश्रमोंके विभिन्न नामोंके विषयमें कहा:

उद्योगाश्रम कैसा अच्छा नाम है। उद्योगमें सभी वस्तुएँ आ जाती हैं। जहाँ ज्ञान, सेवा और कर्म ये तीनों अभीष्ट हों वहाँ उद्योगाश्रम और सेवाश्रम ये दो अलग-अलग नाम रखना विचार-दोष है। हमें इन तीनोंके सुसंगम या समन्वयको अपना उद्देश्य बना लेना चाहिए और इसके लिए योगाभ्यासीको कहना चाहिए कि वह एक घड़ी-भरके लिए भी ईश्वरपर अविश्वास न करे, उसके साथ खिलवाड़ न करे। ऐसा न मान ले कि हिन्दुस्तानके लोग पाखण्डी हैं। वे पाखण्डी नहीं हैं। यदि हम उनसे एक बनकर रहें तो वे तैंतीस कोटि देवता हैं, अन्यथा वे हमें राक्षस भी लग सकते हैं। पार्वतीको शिव-जैसा पति सहस्र वर्षतक तप करनेपर ही मिला था, फिर अब तो कलियुग है। यदि आपका खयाल यह हो कि आप कुछ समयमें ही ज्ञान, सेवा और कर्मका समन्वय कर लेंगे तो यह मिथ्या है। शंकराचार्यने बताया है कि मुमुक्षुमें एक तिनका लेकर समुद्रको उलीचनेवाले व्यक्तिसे अधिक धीरज होना चाहिए, उसे मोक्ष केवल तभी मिल सकता है। यहाँ पण्डित लालन[1] और शिवजीभाई[2] धन-प्राप्तिकी इच्छा करके बैठे हैं। इन्हें तो मुमुक्षुकी अपेक्षा भी अधिक धैर्य रखना चाहिए। यदि वे यह चाहते हैं कि रुपया बरसने लग जाये तो मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि रुपया तो हाथका मैल है। सद्भाव आत्माका उत्तम गुण है और सद्भाव प्राप्त करना कठिन है। जब शिवजीभाई या लालनको यह लगे कि लोग रुपया नहीं देते तो उन्हें मानना चाहिए कि उनमें दृढ़ताकी और आत्मदर्शनकी कमी है। उन्हें यह नहीं मानना चाहिए कि उनको आत्माका दर्शन हो गया है, बल्कि यह मानना चाहिए कि उन्हें तो उसके आभास-मात्रका दर्शन हुआ है। यदि हम ब्रह्मचर्यका थोड़ा-सा पालन करके

१. एक खादी कार्यकर्ता।

२. शिवजी देवशीभाई, खादी कार्यकर्ता।

शेखी मारने लगें और अपरिग्रहका थोड़ा-सा पालन करके ही संसारको उपदेश देनेके लिए निकल पड़ें तो कैसा अन्याय होगा। मुझे तो लगता है कि ब्रह्मचर्यकी परिभाषा और क्षेत्र क्षण-क्षण बढ़ता ही जा रहा है और मैं आज वैसा ब्रह्मचारी नहीं हूँ कि ब्रह्मचर्यकी पूर्ण परिभाषा कर सकूँ। सत्यकी परिभाषाके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। मैं अभी इतना सत्यशील नहीं हुआ कि सत्यकी भी पूर्ण परिभाषा कर सकूँ। अहिंसा भी एक ऐसा ही तत्त्व है। जिस शास्त्रकारने इस तत्त्वकी खोज की उसको भी इस भावको व्यक्त करनेके लिए विधेयात्मक शब्द नहीं मिला, क्योंकि उसने कहा कि गुणकी कोई सीमा नहीं है, अतः उसने अहिंसा शब्दकी योजना की। उसकी स्थिति 'नेति नेति' कह उठनेवाले ऋषियोंकी-सी हुई थी। जो लोग किसी तत्त्वकी साधना करना चाहते हैं उन्हें इस तत्त्वको समझकर ही उसकी साधना करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-४-१९२५

२५२. भाषण : ढसामें

२ अप्रैल, १९२५

दरबार साहबको[1] सरकारने पदच्युत किया। इसकी वजह यह है कि उन्होंने कौमकी सेवा की थी। पर क्या वे पदभ्रष्ट हुए हैं? उनसे ढसाका राज्य छिना तो उन्हें बोरसदका राज्य मिला। आज उन्हें संसार जानता है; और वे बोरसदके लोगोंके हृदयोंपर राज्य कर रहे हैं। बहुतेरे लोगोंने भारतके स्वराज्य-यज्ञमें बहुत बलिदान किया है, परन्तु राजाओंमें से तो वे अकेले ही निकले हैं। क्या उनका ढसाका राज्य चला गया है। वह तो तभी जा सकता है जब आप उन्हें निकाल दें और कहें, आप चले जाइए; आपके लिए हमारे हृदयोंमें स्थान नहीं है। परन्तु मुझे लगता है कि उन्हें आपने ही पदच्युत किया है। आपने उन्हें जो वचन दिया था, वह तोड़ डाला है। अन्त्यजोंने संकल्प किया था कि वे विदेशी सूत नहीं बुनेंगे; उन्होंने उसको पूरा नहीं किया; और शराब तथा मांस छोड़ देनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, वह भी तोड़ दी। पृथ्वी चाहे रसातलमें चली जाये, परन्तु वचन कहीं टूट सकता है? फिर जो मनुष्य राजाको दिया गया वचन तोड़ता है उसका तो सिर ही काटा जाना चाहिए। पर आज न तो वचनके लिए बिकनेवाले हरिश्चन्द्र रहे, और न सिर काट लेनेका हक रखनेवाले राजा ही। अपना वचन अन्त्यजोंने तोड़ा और आपने भी तोड़ा। यदि आपको दरबार साहबकी सचमुच जरूरत होती तो क्या आपकी ऐसी हालत होती? कितनी बहनों-ने खादी पहनी है? कितनी बहनें सूत कातती हैं? सरकार दरबारकी सत्ता भले ही छीन ले; परन्तु आप तो ढसामें रहते हुए उन्हींका हुक्म बजायें। यदि आप सरकारको

१. दरबार गोपालदास, सौराष्ट्रकी रियासत ढसाके शासक, जो कांग्रेसमें शरीक हो गये थे।

लगान देते हुए भी दूसरे हुक्म दरबारके ही मानें तो क्या दरबार पदच्युत हो सकते हैं ? राम जब बनवासको निकले थे तब सारी प्रजाने उनके साथ जानेकी जिद की थी, तपस्या की थी। भरत जैसे भाईने नन्दीग्राममें तप किया था और रामचन्द्रजीकी चरणपादुका सिंहासनपर रखकर उन्हींका ध्यान किया था। आप बताएँ तो आपने क्या किया है ? यदि आदेश बोरसदसे दिये जायें और आप उनका पालन करें तो दरबार साहब आपको फिर मिल जायेंगे। यह कैसे हो उसे आप सुनें।

हर पुरुष और स्त्री खादी पहने, चरखा चलाये, अन्त्यज हाथकता सूत ही बुनें और खादी पहनें, महाजन अन्त्यजोंपर रोष न करें, उनकी पानी आदिकी असुविधाएँ दूर करें। और उन्हें अस्पृश्य न मानें — आप पहले इतना करें, फिर मुझसे पूछें कि दरबार साहब कहाँ हैं ? आपके दरबार आयें या न आयें, परन्तु मैं तो हिन्दुस्तानके स्वराज्य संग्रामको छोड़कर आपके पास आ जाऊँगा और आपके साथ तपस्या करूँगा।

आप हाथपर-हाथ धरे किसकी राह देख रहे हैं ? आपने एक बार मेरे पास आकर दरबार साहबके प्रति जो प्रेमभाव व्यक्त किया था, वह सब कहाँ गया ? आप कहते हैं कि काठी लोग हमारे खेतोंको जानवरोंसे चरवा देते हैं। क्या दरबारने आपसे यह नहीं कहा था कि आप अपने खेतोंकी हिफाजत रखें। ब्रिटिश सरकार भी इस बातकी इजाजत देती है कि आप अपने खेतोंको नुकसान पहुँचानेवाले चोरों-डाकुओं और जानवरोंको मारकर बाहर निकल दे। आप ऐसे अपंग क्यों हो गये है ? आपने अपनी सभी प्रतिज्ञाएँ क्यों तोड़ डाली हैं ?

खैर जो हुआ सो हुआ। आज भी क्या आप लोग जहाँसे भूले हैं, वहाँ लौटनेके लिए तैयार हैं ? आपने तो दरबारको पगड़ी और जर्क-बर्क पोशाक पहने देखा था। आज तो वे मोटी खादीका कुरता पहनते है, टोपी तो लगाते ही नहीं और मोटी खादीकी लुंगी बाँधते है। आप बतायें कि आप क्या करेंगे ? क्या आपने अपनी पगड़ी छोड़ी है ? क्या पगड़ी छोड़ देनेसे आपकी मर्दानगी चली जायेगी। आपने ऐसा कौन-सा काम किया है जिससे मैं आपको इस लायक समझूँ कि आपके दरबार साहब आपके पास वापस बुलाये जायें ? फिर भी आज एक वर्षकी आप प्रतिज्ञा करें। अन्त्यज शराब और मांस छोड़ दें, विदेशी सूत बुनना छोड़ दें, विदेशी कपड़ेका त्याग करें। सब लोग सूत कातें और हाथ कते सूतका बुना कपड़ा पहनें, विदेशी कपड़े जलाएँ नही तो बाँध कर रख लें और यदि इस तरह एक साल बीतनेपर मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन न करूँ तो आप मेरा सिर काट लें और अपने उन्हीं कपड़ोंको फिर पहनना शुरू कर दें। आप लोगोंमें से हर एकके घरमें चरखा जरूर हो। आपको पूरे कपड़े न मिलें तो आप लंगोटी ही पहनें, वह भी न हो तो खादीका एक टुकड़ा ही कमरमें बाँधें, अन्त्यजोंको अपनायें, जो पानी ईश्वरने आपको दिया है वही उन्हें भी सुलभ करें; नहीं तो यह समझ लें कि पृथ्वी रसातलमें चली जायेगी। जिन गड्ढोंका पानी, आप स्वयं पीनेके लिए तैयार नहीं हैं, उनका पानी उन्हें पिलानेकी बात न करें।

इतना सीधा और अपने स्वार्थका काम करके देखें। और यदि दरबार साहब फिर भी न आयें तो मुझे लिखें। मैं असहयोगी हूँ — फिर भी मैं सरकारसे प्रार्थना करूँगा कि वह ढसाके दरबार साहबको ढसामें वापस भेज दे। अगर वे फिर भी न भेजे गये

तो मैं आपके साथ रहकर तपस्या करूँगा। ईश्वर आपको और मुझे अपनी-अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका बल दे। अच्छा अब मैं अपना दुखड़ा आपके सामने रो चुका और अपनी आशा भी आपको बता चुका। अब आप जो करना हो सो करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-४-१९२५

२५३. भाषण: बगसरामें

२ अप्रैल, १९२५

बगसराके प्रति मेरे मनमें पक्षपात तो है। मुझे १९०८ में करघे और चरखेका भेद नहीं मालूम था। यद्यपि मैंने उस समय 'हिन्द स्वराज्य'[1] में चरखेकी चर्चा की थी। मैं जब हिन्दुस्तानमें आया तो मुझे हाथसे कपड़ा बुननेका काम शुरू करनेमें बगसराने सबसे पहले सहायता दी थी। जब मैं यह खोज रहा था कि कोई मुझे एक करघा देनेवाला मिल जाये तब मैंने श्री रणछोड़दास पटवारीको[2] लिखा; उन्होंने मुझे बताया कि मुझे करघा दरबार श्री बाजसुरवालासे मिलेगा और पहला करघा मुझे उन्हींसे मिला। फिर एक करघा और एक आदमी नवाब साहब पालनपुरने दिया। करघा मिलनेके बाद जब यह कठिनाई सामने आई कि अब बुनाईका काम कैसे आरम्भ किया जाये; और तब भी मुझे सहायता देनेके लिए बगसराके बुनकर ही तैयार हुए। बगसरा बुनाईका केन्द्र है और यदि बगसराके बुनकर और व्यापारी इस सम्बन्धमें पर्याप्त उत्साह दिखायें तो वे समस्त काठियावाड़के लिए पर्याप्त खादी तैयार कर सकते हैं।

इसके बाद गांधीजीने काठियावाड़ राजनैतिक परिषद्की २०,००० रुपये इकट्ठा करनेकी योजना समझाई और कहा:

मैं कन्या-विक्रयकी निन्दा किन शब्दोंमें करूँ यह मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है। कन्या तो सीधी गायकी तरह है। जो मनुष्य उसका शुद्ध दान करनेके बजाय उसे धन-प्राप्तिका साधन बनाता और बेचता है वह गोहत्यासे भी बड़ा महापाप करता है। जब मैं यह विचार करता हूँ कि चांडाल और अन्त्यज-जैसी जातियाँ किस प्रकार उत्पन्न हुई होंगी तब मुझे लगता है कि अवश्य ही समाजने कन्या-विक्रय करनेवाले लोगोंको बहिष्कृत करके अन्त्यज बना दिया होगा। मैं यह मानता हूँ कि यदि कोई अन्त्यज बनानेके योग्य हो सकता है तो वह कन्या-विक्रय करनेवाला ही हो सकता है; हालाँकि कोई भी मनुष्य और उसके वंशज किसी भी स्थितिमें सदाके लिए अस्पृश्य नहीं बन सकते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-४-१९२५

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १०५ और १०७।

२५४. भाषण : पालीताणामें[1]

३ अप्रैल, १९२५

माननीय ठाकुर साहब, भाइयो और बहनो,

मैं इस अभिनन्दन-पत्रके लिए आप सबका आभार मानता हूँ। यह अभिनन्दन-पत्र मुझे ठाकुर साहबके हाथोंसे दिया गया है, मैं इसे अपने लिये और भी अधिक सम्मान-की बात समझता हूँ। अभिनन्दन-पत्रमें मेरी प्रशंसा अनेक प्रकारसे की गई है। लेकिन यह सब मेरे लिए अब कोई नई बात नहीं रही है। मैं जहाँ-कहीं जाता हूँ, वही देखता हूँ कि अभिनन्दन-पत्रोंमें अलग-अलग ढंगसे एक ही तरहकी बातें कही जाती हैं। जब मैं इनको सुनता हूँ तब मेरी इच्छा ईश्वरसे यही प्रार्थना करनेकी होती है कि इन अभि-नन्दन-पत्रोंमें जो-कुछ कहा गया है वह सब किसी दिन सच हो जाये।

मैं आपको एक बात और, जो बात अभिनन्दन-पत्रमें नहीं आई है, बता दूँ। अभिनन्दन-पत्रमें बातके केवल एक ही पहलूका उल्लेख किया गया है, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि उसका दूसरा पहलू भी है। मैं यह देखता हूँ कि जो लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, और ऐसे समारोहोंमें भाग लेते हैं, वे लोग उन्हीं आदर्शोंकी ओरसे उदासीन रहते हैं जिनका आरोप वे मुझमें करते हैं। मैं जहाँ-कहीं जाता हूँ, वहाँ आलोचना करना ही मेरे हिस्सेमें आता है, लेकिन मैं इससे बच नहीं सकता। मैं न जनताकी अपने प्रति अन्ध-भक्ति चाहता हूँ और न राजा-महाराजाओंकी विनययुक्त बातें। ये बातें कर्ण-प्रिय जरूर लग सकती हैं, लेकिन मैं तो राजा और प्रजाके बीचकी कड़ी बनना चाहता हूँ। यदि मैं उन दोनोंको एक-दूसरेके निकट ला सकूँ और उन्हें एक-दूसरेके विचार समझा सकूँ तो मैं मानूँगा कि मेरा कर्त्तव्य पूरा हो गया। मैंने अंग्रेजोंके साथ भी ऐसा ही सम्बन्ध रखा है। मेरा हेतु यह है कि मैं अंग्रेजों और भारतीयोंको एक-दूसरेके निकट लाऊँ। यदि मुझे प्रजाका पूरा सहयोग नहीं मिलेगा तो मैं इस कार्यको पूरा न कर सकूँगा। मैं "राजाका" सहयोग मिलनेकी बात नहीं कहता, क्योंकि मैं स्वयं प्रजा हूँ। और प्रजा ही रहना चाहता हूँ। इसी कारण मैं जनताके कष्टों और विचारों को अधिक अच्छी तरह समझ सकता हूँ और उससे अधिक सहयोग की भी अपेक्षा कर सकता हूँ। इसलिए मैं लोगोंसे कहता हूँ कि वे मेरी जिस बातकी प्रशंसा करते हैं, उसपर आचरण करें।

मैंने अक्सर कहा है कि "यथा राजा तथा प्रजा" की उक्ति जिस प्रकार सच है उसी प्रकार "यथा प्रजा तथा राजा" की उक्ति भी सच है। अगर प्रजा सत्यनिष्ठ हो तो राजाके प्रति असम्मानका भाव होना सम्भव नहीं। राजा बुरा नहीं होता; किन्तु अगर प्रजा आलसी और अनियन्त्रित हो तो अच्छेसे-अच्छा राजा भी क्या कर

१. अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें।

सकता है, आप इसपर विचार करें। हमारे ऋषि-मुनियोंने जिस अच्छेसे-अच्छे राजाकी कल्पना की है वह है जनक। राम तो अवतारी पुरुष होनेके कारण ईश्वर माने गये हैं। इसलिए वे राजाके रूपमें आदर्श नहीं माने जा सकते। लेकिन कवि कालि[1]-दासने जनकमें सभी राजोचित गुण बताये हैं। किन्तु जनककी प्रजा जनककी वृत्तिके अनुरूप न होती तो राजा जनक क्या कर सकते थे? इसी प्रकार यदि आज जनता राजासे सहयोग न करे तो राजा क्या कर सकता है? मैंने त्रावणकोरमें देखा है कि अगर प्रजा अपना कर्त्तव्य पूरा करे तो महारानी भी अपने कर्त्तव्यका निर्वाह कर लेंगी। लेकिन यदि प्रजा विरुद्ध हो तो महारानी कितनी भी इच्छुक क्यों न हों, कोई सुधार नहीं कर सकतीं। अगर आज मैं अकेला ही अस्पृश्यताको त्यागनेकी प्रतिज्ञा करूँ तो उससे कोई लाभ न हो सकेगा। मैं आपको ये सब बातें ठाकुर साहबकी उपस्थितिमें बता रहा हूँ। इसमें मेरा थोड़ा-सा स्वार्थ है। आज आपने मेरी प्रशंसा की है, लेकिन अगर आप कल इसे कार्य रूप देनेके लिए कुछ न करें और मैं आपको उसके लिए उलाहना दूँ तो आप मुझे बरदाश्त नहीं करेंगे। मैं ऐसे मामलोंमें राजाकी अपेक्षा प्रजासे अधिककी अपेक्षा करता हूँ। आलसी और शराबी प्रजासे कोई राजा क्या करा सकता है? मैंने ठाकुर साहबसे शराब-खोरीके बारेमें बातचीत की थी। उन्होंने मुझे कहा कि यहाँ शराबका ठेका तो दूर, चायकी दूकान भी नहीं है; लेकिन फिर भी ऐसे लोग हैं जो चोरीसे शराब मँगाकर पीते हैं। जहाँ ऐसी स्थिति हो वहाँ राजा क्या कर सकता है? क्या कोई राजा किसी मनुष्यकी बुरी लत छुड़ा सकता है? उससे तो इतनी ही अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपनी जनताको भ्रष्ट करनेमें योग न दे।

इसलिए जबतक काठियावाड़के लोग अपने कर्त्तव्यका पालन न करेंगे तबतक कुछ नहीं किया जा सकता। इसके बिना, हम जिस समृद्धिकी आकांक्षा करते हैं उसे प्राप्त करना असम्भव है। काठियावाड़में समृद्धि लानेके लिए मैं प्रजासे अधिक अपेक्षा रखता हूँ। अगर हम जनताकी सहायता पा सकें तो हमें राजाकी भी सहायता मिल जायेगी। मैं आपसे भिक्षामें यही माँगता हूँ। एक समय था जब मैं धन माँगता था और लोग खुशी-खुशी धन देते थे। मुझे बहनोंने अपने गहने उतार-उतार कर दिये हैं और लोगोंने हीरे और मोती। लेकिन आज मैं दूसरी ही चीज माँगता हूँ और वह है आचारमें परिवर्तन। मैं चाहता हूँ कि हमारे आचार-दोष दूर हो जायें; लेकिन मुझे यह चीज नहीं मिलती। धन आप दे सकते हैं। मैं यह थैली देनेके लिए आपका आभारी हूँ। इसका उपयोग तो किया ही जायेगा; लेकिन मुझे इससे सन्तोष अवश्य ही न होगा।

आपमें दयाकी भावना होनी चाहिए। पालीताणा जैन तीर्थस्थलोंमें एक पवित्र और महान तीर्थ है, लेकिन यहाँके लोगोंने दूसरोंको वह पाठ अभी नहीं सिखाया है जो उन्हें सिखाना चाहिए था। यहाँकी बहनोंको देखकर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई, उलटे दुःख हुआ। ये बहनें दया-जैसे सामान्य धर्मको भी नहीं समझतीं। काठियावाड़-

१. यहाँ वाल्मीकि होना चाहिए।

के गरीब लोगोंको दो या चार आने जैसी तुच्छ रकम कमानेके लिए राज्य छोड़कर बाहर जाना पड़ता है; इसमें किसकी बदनामी है? मुझे यह कहते खेद होता है कि इसमें राजा और प्रजा दोनोंकी बदनामी है। अगर मेरे वशकी बात हो तो मैं किसीको राज्य छोड़नेकी अनुमति न दूँ। और इस सम्बन्धमें कानून भी बना दूँ। लोग साहसिक उद्देश्यसे भूमण्डलके एक छोरसे-दूसरे छोरतक जाना चाहें तो जायें। आज दुनियाका ऐसा कोई भी कोना नहीं है, जहाँ कोई न कोई काठियावाड़ी न पहुँचा हो। इनमें कुलीन लोग हैं, वाघेले हैं और राजपूत हैं। कर्नल टाडने लिखा है कि राजपूतानेमें कितनी ही थर्मापोलियाँ हैं। किन्तु हम यहाँ काठियावाड़में कितनी थर्मा-पोलियाँ देखते हैं? लोग लखपति बननेके उद्देश्यसे, भाग्य आजमाने बाहर जाना चाहें तो खुशीसे जायें। वे विद्योपार्जनके उद्देश्यसे विदेश जाना चाहें तो भले ही जायें लेकिन जब कोई काठियावाड़ी यह कहता है कि वे बाहर इसलिए जाते हैं कि उनको यहाँ रोटी नहीं मिलती, तब मुझे दुःख होता है। काठियावाड़में पानीकी कमी है। पानी-की कमी तो दक्षिण आफ्रिकामें भी है; लेकिन वहाँ तो साहसी बोअरोंने पाताल-तोड़ कुएँ खोदकर पानी निकाल लिया है। मैं एक ऐसे कृषिफार्मका[1] सदस्य था जहाँ एक बूँद भी पानी नहीं मिलता था। हमने कठिन प्रयत्न किया और एक कुआँ खोदा जिसमें पानीका छोटा सा सोता निकला और हम उससे १,१०० एकड़ भूमिकी सिंचाई करनेमें सफल हुए। पानी बहुत गहराईतक खुदाई करनेसे मिलता है। हम जितना गहरा खोदेंगे, पानी उतना ही अधिक मिलेगा। खनिज पदार्थोंकी तरह ही पानी धरतीके गर्भमें मिलता है। लेकिन यह तो पानीके घोर अभावकी परिस्थिति है।

यदि काठियावाड़के १०० वर्ष पुराने उद्योग-धन्धे फिर जीवित न किये जायेंगे-तो इसका अर्थ काठियावाड़के गरीब लोगोंके लिए देश-त्याग ही है। इस स्थितिसे बचनेके लिए यह जरूरी है कि लोग खादी पहनें। हम जबतक खादी, चाहे वह मोटी हो या महीन, न पहनेंगे तबतक हमारा उद्धार न होगा। मैं राजा और प्रजा दोनोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे इस साधारण धर्मका पालन करें। ऐसा करनेमें कोई नुकसान नहीं है। हमें कोई भी इस धर्मके पालनसे रोक नहीं सकता, और इसमें यन्त्रोंकी भी कोई जरूरत नहीं। यह धर्म हमसे आत्मत्याग या तपस्याकी अपेक्षा नहीं करता। इसके लिए केवल हृदय-परिवर्तनकी आवश्यकता है। एक विशेष प्रकारका वस्त्र पहनने-मात्रसे एक बड़े धर्मका पालन हो जाता है। मैं यह देखकर हैरानीमें पड़ जाता हूँ कि हालाँकि मुझे ऐसे अभिनन्दन-पत्र दिये जाते हैं, लेकिन मैं राजा या प्रजाको इस छोटी-सी बातके लिए भी राजी नहीं कर पाता। मैं अन्तरात्माकी आवाज सुनता हूँ और इसलिए मानता हूँ कि मेरी तपश्चर्यामें कोई कमी है। फिर भी मैं आशा नहीं छोड़ता। अगर मेरी साधना सच्ची है तो एक समय आयेगा जब सारा भारत खादी पहनेगा।

मैंने जो बात लार्ड रीडिंग और लार्ड विलिंग्डनसे कही थी, उसे मैं फिर दुहराता हूँ। जबतक राजा, रानी, दरबान, अधिकारी, प्रजा और भंगी खद्दर नहीं

१. डर्बनके समीप फीनिक्समें, जिसे गांधीजीने १९०४ में स्थापित किया था, देखिए आत्मकथा, भाग ४, अध्याय १९।

पहनते तबतक मेरी आत्माको शान्ति न मिलेगी, क्योंकि गरीबीके उन्मूलनका इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है। चूँकि चरखेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है; इसलिए मैं चरखेको कामधेनु कहता हूँ और उसे तलवारसे अधिक मानता हूँ। रामने अपने धनुष-बाणका त्याग नहीं किया, लेकिन विश्वामित्रके लिए समिधाएँ लाकर दीं। उन्होंने ऐसे काम किये जिसे साधारण लोग करते थे। राजा जबतक प्रजाके हृदयको जीत नहीं लेता तबतक उसके समस्त अंगोंको अच्छी तरह नहीं समझ सकता। जो प्रजाके लिए नितान्त आवश्यक हो वह काम राजाको अवश्य करना चाहिए। यही कारण है कि इंग्लैंडके राजाओंके लिए नौसेनामें प्रशिक्षण लेना अनिवार्य रखा गया है। राजा जॉर्जने नौसेनामें काली काफी पी है और पनीर खाया है। इंग्लैंडका राजा प्रजाके गुणोंको ग्रहण करता है। चूँकि इंग्लैंडके लोगोंमें ऐसे गुण हैं इसलिए उनका राजा सुख भोगता है। उनमें जो दुर्गुण हैं वे निकल जायें तो उनका राजा चिर सुखी हो जाये। हम नहीं कह सकते कि वे इन दुर्गुणोंका त्याग कब कर सकेंगे। लेकिन जब वे ऐसा करेंगे तब सारी दुनिया उनके गुणोंको देखेगी; और उनकी कद्र करेगी। मैं चाहता हूँ कि हमारे राजा भी उन लोगोंके गुणों और साहसका अनुकरण करें। मैं चाहता हूँ कि हम अपनी न्यूनताओंपर विजय पायें। उनके वकील और प्राध्यापक युद्धके दिनोंमें अपने हाथमें सुई धागे लेकर गाऊन सिया करते थे। मेरी भरती आहतोंकी शुश्रूषाके लिए की गई थी। जो लोग बेल्जियम और फ्रांसके मोर्चों-पर नहीं जा सकते थे उनके जिम्मे कमसे-कम यह काम तो था ही। उन्होंने इस कामको इतना आसान बना दिया था कि एक अनाड़ी आदमी भी उतने ही गाऊन सी सकता था जितने कोई काम सीखा हुआ आदमी। मैं ऐसे बहुतसे उदाहरण दे सकता हूँ। यदि आपने अभिनन्दन-पत्रमें जो कहा है वह सब सही हो तो आपको स्वयं भी इन गुणोंको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

आप लोग इतने सुस्त क्यों हो गये हैं? अन्त्यज बस्तीमें मिलके सूतका उपयोग क्यों किया जाता है? क्या पालीताणामें इतना सूत नहीं काता जा सकता? मैं नहीं चाहता कि आप अहमदाबादकी मिलोंको प्रोत्साहन दें। मैं तो चाहता हूँ कि आप अच्छीसे-अच्छी खादी खुद तैयार करें।

मैंने अन्त्यज शाला देखी और उसे देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। पूरी शालाके लिए एक भी अच्छा अन्त्यजेतर शिक्षक नहीं मिला। यह किसका दोष है? क्या ठाकुर साहबका? आप अपनी जातिको धर्मनिष्ठ मानते हैं। लेकिन क्या आपमें ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो इस कामको करनेके लिए तैयार हो? मैं तो यही आशा करता हूँ कि ब्राह्मण और वैश्य वहाँ जायेंगे और कहेंगे कि इस शालामें पढ़ानेके लिए हम तैयार हैं। उस शालामें पीनेका पानी भी नहीं मिलता। ठाकुर साहब, यह काम भी आपका है। आपकी प्रजाको पानी क्यों नहीं मिलता? ये लोग नदीके सूखे पाटमें गड्ढे खोद-खोदकर बड़ी ही कठिनाईसे पानी निकालते हैं। धर्मशालाओंमें भी कुएँ हैं। लेकिन अन्त्यज उनसे पानी नहीं भर सकते। यह कहाँका धर्म है कि राहगीरोंको तो पानी मिल सकता है; लेकिन अन्त्यजोंको नहीं? उनकी फिक्र कौन करता है? उनके प्रति दया रखनेका दावा कौन करता है? आप लोग अपने-आपको हिन्दू कैसे कह सकते हैं?

आजकल जैसी अस्पृश्यता बरती जा रही है उसके लिए धर्ममें कोई स्थान नहीं है। मैंने शास्त्रोंपर विचार किया है और मैं शुद्ध मनसे अपने अन्तरमें काफी सोच-विचार करनेके बाद इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि आज हम हिन्दू धर्मका व्यवहारत: जिस रूपमें पालन करते हैं उसका वही रूप उसके विनाशका कारण साबित होगा। मैं इसीलिए कहता हूँ कि आप सब चेत जायें। हिन्दू धर्मकी रक्षा करना राजा और प्रजा दोनोंका काम है। हिन्दू धर्मको सुधारनेका एक-मात्र उपाय अन्त्यजोंकी सेवा करना है। हम आत्मशुद्धि किये बिना अपने पापोंका प्रक्षालन नहीं कर सकते। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप अन्त्यजोंको अपने साथ रखें, जैसे साफ-सुथरे होकर आप यहाँ आये हैं, आप उन्हें भी वैसे ही साफ-सुथरे रहनेके साधन दें और वे इसके बाद भी साफ-सुथरे न रहें तब कहें कि अन्त्यज स्वच्छ नहीं हैं, इसलिए अस्पृश्य हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि ऐसे हजारों अन्त्यज हैं जो उतनी ही सफाईसे रहते हैं जितनी सफाईसे मैं रहता हूँ। उनमें सभी शक्तियाँ हैं और कोई त्रुटि नहीं है। हम उनमें जो त्रुटि देखते हैं उसका पाप हमपर ही है। इसी कारण मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस प्रश्नको अपने हाथमें लें और इस शालामें सेवा करनेके लिए अर्जी दें। एक व्यक्तिने १५० रुपया वेतन माँगा है। लेकिन इतना ज्यादा वेतन कैसे दिया जा सकता है? आप जीवनयापनके लिए जितना जरूरी हो उतना माँगें और कलसे ही अन्त्यज शाला चालू कर दें। अपनी गन्दगी धोकर उसे अपने पड़ोसमें फेंक देना अनुचित है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

२५५. पालीताणामें जैन मुनिसे बातचीत[1]

३ अप्रैल, १९२५

गांधीजीने पूछा :

क्या इसका अर्थ यह है कि लालन चरम अहिंसाके पालनका दावा छोड़े बिना चरखा नहीं चला सकते? उसमें अहिंसा धर्मका त्याग किस प्रकार होता है, यह बात मैं नहीं समझ सका हूँ। यह बात समझमें आ सकती है कि साधुका गृहस्थकी भाँति अपने स्वार्थके लिए कोई काम करना उचित नहीं है, किन्तु वह दूसरोंकी भलाईके लिए तो चरखा अवश्य चला सकता है। उदाहरणके लिए साधु रातमें बाहर नहीं आता। किन्तु कल्पना करें कि किसी पड़ोसीके घरमें आग लग जाती है, तब साधु घरमें ही

१. गांधीजी मुनिश्री कपूर विजयजीसे पालीताणामें मिले थे। पण्डित लालन गांधीजीके साथ गये थे। उन्होंने मुनिश्रीसे पूछा था, कोई जैन मुनि चरखा चलाये, क्या इसमें कोई आपत्तिकी बात है? मुनिश्रीने उत्तर दिया, हाँ है। जो मुनि परम अहिंसाका पालन करता है, वह चरखा नहीं चला सकता। इसपर उनसे गांधीजीने बातचीत आरम्भ की। यह बातचीत महादेव देसाईके लेख "काठियावाड़में तीसरी बार" से उद्धृत की गई है।

बैठा रहे और पड़ोसीको पानीकी सहायता न दे तो मैं मानूँगा कि यह अहिंसाका पालन नहीं है; बल्कि यह हिंसा है। इसी प्रकार अकालके दिनोंमें यदि अकाल-पीड़ितोंको किसी कार्य-विशेषको करनेसे ही खाना मिलता हो तो उनका यह कार्य स्वयं करके दिखाना धर्म है। यदि लोग पानीके बिना प्यासे मर रहे हों; किन्तु कोई भी कुदाली और फावड़ा लेकर कुँआ खोदना न चाहता हो तो साधु कुदाली और फावड़ा लेकर उनका मार्गदर्शन करे। उसके सामने इसके अतिरिक्त कोई और रास्ता नहीं रहता। दूसरोंसे खोदनेको कह देना काफी नहीं है। आप चाहे पानीकी एक बूंद भी न पीना चाहते हों, फिर भी यदि आप कुदाली और फावड़ा लेकर तैयार हो जायें और लोगोंको पानी पिलानेके बाद ही दम लें तो यह अहिंसा होगी। उससे पहले पानी पीनेकी आपकी तनिक भी इच्छा भले ही न हो, किन्तु यदि आप लोगोंको पानी पिलानेके बाद स्वयं पानी पी लें तो कोई हर्ज नहीं है। इस प्रकार साधु परहितकी दृष्टिसे कई काम कर सकता है। ऐसा करना उसका धर्म है। इसी प्रकार आज जब हिन्दुस्तानमें भुखमरी फैली है, जब चरखा चलानेसे गरीबोंके पेटमें रोटी जा सकती है और जब प्रत्येक निरुद्यमी मनुष्यके लिए सूत कातना धर्म हो गया है तब साधु सूत न काते और दूसरोंको सूत कातनेका उपदेश दे तो इससे काम कैसे चल सकता है? फिर जो काम उसे स्वयं करने योग्य नहीं लगता उसको लोग भी क्यों करेंगे? इसलिए साधु-का तो यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह चुपचाप चरखा लेकर बैठ जाये और उसको चलाता रहे। कोई उससे उपदेश लेने आये तो वह उत्तर ही न दे। दुबारा पूछनेपर भी न बोले। अन्तमें मौन भंग करके कह दे, भाई आप भी ऐसा ही करें, मेरे पास देनेके लिए कोई दूसरा उपदेश नहीं है। इसलिए सावधान और जाग्रत साधुका धर्म यही है सम्भव है, कोई साधु इससे अपना स्वार्थ साधने लगे। उस अवस्थामें तो उसका पतन होना उचित ही है। वह निरुद्यमी रहकर संसारमें भार बननेके बजाय उद्यमी बनकर स्वयं अपनी आजीविकाके लिए श्रम करे।

मैं चरम अहिंसाकी बात मानता हूँ। किन्तु यह चरम अहिंसा कैसी है? आज तो साधु गृहस्थोंकी भाँति खाते-पीते और कपड़े पहनते हैं और लोग उनके लिए जो अपासरा[1] बना देते हैं उनमें रहते हैं। इसलिए उन्हें लोगोंके जीवनमें अवश्य ही भाग लेना चाहिए। आज जिस कामको करना देशकी सबसे बड़ी सेवा है उसमें उनको भाग जरूर लेना चाहिए।

मुनिश्री: तब तो यह आपद्धर्म हुआ।

नहीं; यह आपद्धर्म नहीं है, यह तो युगधर्म है। इस युगका धर्म सूत कातना है और जबतक मुनि अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए समाजपर निर्भर रहता है तबतक उसे अपने आचार द्वारा इस युगधर्मका प्रचार करना ही चाहिए। आज तो आप लोगोंका उत्पन्न किया हुआ धान और उनका पकाया भात खाते हैं और उनके बनाये हुए कपड़े पहनते हैं। जो इधर-उधरसे अनायास उपलब्ध अन्न खा लेता है, जिसे कपड़ेकी जरूरत न रहती हो और जो समाजका सम्पर्क त्यागकर

१. जैन मुनियोंके रहनेके स्थान; उपाश्रय।

मानवकी दृष्टिसे दूर किसी गुफामें पड़ा रहता हो, उसकी बात दूसरी है। वह चाहे तो युगधर्मका पालन न करे। उसके अतिरिक्त जो साधु-संन्यासी समाजमें रहते हैं और उनके बीच अपना निर्वाह करते हैं उनसे तो मैं यही कहूँगा कि मैंने त्रावणकोरमें थियाओंके[1] संन्यासी गुरुसे[2] यह कहा कि वे जो खादी पहने बिना आये उसे शिष्य न बनायें। इससे उनके पास भीड़भाड़ भी कम हो जायेगी। मैं आपसे भी यही चाहता हूँ। इससे ढोंगियोंको प्रोत्साहन मिल सकता है; किन्तु इस प्रकार क्या श्रीमद् राजचन्द्रके आसपास भी ढोंगी लोग दिखाई नहीं देते थे? लोग ढोंगी बन जायें तो इससे हमारी कोई हानि न होगी। उससे उन्हींकी हानि होगी।

मुनिश्री: मैंने इस सम्बन्धमें इतने सूक्ष्म रूपसे विचार नहीं किया है। मैं विचार करनेके पश्चात् इस सम्बन्धमें आपसे चर्चा करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-४-१९२५

२५६. कातनेवालोंकी कठिनाइयाँ

बम्बईके एक चरखा प्रेमीने चरखा प्राप्त करनेमें होनेवाली कठिनाइयोंके बारेमें लिखा है। वे कहते हैं कि बड़ी कठिनाईसे उन्हें चरखेकी एक दुकानका पता चला। वहाँ ढाई घंटा बरबाद करनेके बाद उन्हें एक चरखा मिला। उसकी कीमत साढ़े चार रुपये चुकाई; पर घर जाकर देखा कि उसका भी तकुआ टेढ़ा है। उसे चलानेकी कोशिश करें तो वह उछलता, चलनेका नाम नहीं लेता। वह अब भी ठीक तरह नहीं चलता है और अब ये भाई पूछते हैं कि क्या किया जाना चाहिए। दूसरे भाई लिखते हैं कि एक जगह स्थायी रूपसे रहता हूँ तो कताई अच्छी तरह कर लेता हूँ; लेकिन जब इधर-उधर जाना होता है तब कताई नहीं कर पाता, क्योंकि चरखा हर जगह नहीं मिलता।

दोनोंकी कठिनाई वास्तविक है, और नहीं भी है। जिन्हें चरखेका पूरा ज्ञान है उन्हें तो बम्बईवाले उक्त भाईकी तरह कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि वे खराब चरखेको ठीक कर सकते हैं। तकुआ तो वे अपने साथ भी रख सकते हैं। लेकिन जिस प्रकार प्रत्येक कातनेवालेको इस विषयमें पूरी निपुणता प्राप्त कर लेनी चाहिए, उसी प्रकार हरेक कांग्रेस कमेटीके कार्यालयमें चरखे और चरखेका सारा सामान ठीक हालतमें रहना चाहिए। अगर वह ऐसा नहीं करती तो जिन भाइयोंको चरखेके प्रति उत्साह है लेकिन जिन्हें उसको सुधारना नहीं आता है, वे तो बैठे ही रह जायेंगे। दूसरे भाईकी कठिनाई भी कांग्रेसके पदाधिकारी लोग दूर कर सकते हैं। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जो लोग कातना चाहें, वे कांग्रेस कमेटीमें जाकर कात सकें। पाँच-सात चरखे तो कांग्रेसके छोटे-छोटे कार्यालयोंमें भी चलने चाहिए।

१. मद्रासकी एक अस्पृश्य मानी जानेवाली जाति।

२. नारायण स्वामी।

लेकिन इन तमाम कठिनाइयोंका निवारण तकली कर सकती है। जिन्हें तकली पर कातना आता हो, वे तो एक तरहसे अपने चरखेको अपनी जेबमें रखे हुए चाहे जहाँ जा सकते हैं। मुझे अपनी त्रावणकोर यात्रामें तकली एक अमूल्य चीज लगी। उसे मैं बाँसकी एक नलीमें रखकर, जहाँ जाता हूँ, साथ ले जाता हूँ। उसकी कीमत तो कुछ भी नहीं है, लेकिन इसकी उपयोगिता असीम है। इसलिए हर कातनेवालेको मेरी सलाह है कि वह अपने साथ तकली तो रखे ही। उसपर भले ही एक घंटेमें पच्चीस गज ही सूत काता जा सके, लेकिन चूंकि उसका इस्तेमाल चाहे जहाँ और जब चाहे तब किया जा सकता है, इसलिए उसकी उपयोगिता बहुत बड़ी है। यही कारण है कि यद्यपि इसपर प्रति घंटे कम सूत तैयार हो पाता है, फिर भी यह चरखेसे होड़ करती है। और गरीबोंके लिए तो यह सौभाग्यवती बहन-जैसी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५

२५७. दो वार्तालाप

बहुतसे विद्यार्थी मुझसे तरह-तरहकी बातें पूछते हैं। कुछ तो मुझे परेशान भी करते हैं; कुछ शान्तभावसे पूछपाछ कर चले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंमें दोनों तरहके वार्तालाप हुए हैं। वे देने योग्य हैं, इसलिए यहाँ दे रहा हूँ:

पहला वार्तालाप[1]

मैं रेलमें बैठा था। मद्राससे लौट रहा था और थका हुआ था। बहुतसा लिखनेका काम पड़ा हुआ था; उसे पूरा कर रहा था। इतनेमें गाड़ी एक स्टेशनपर खड़ी हुई। एक विद्यार्थी इजाजत लेकर डिब्बेमें आया; उसने अपनी पढ़ाई हाल हीमें खतम की थी। उसने अन्दर आकर मुझसे पूछा:

'आप वाइकोमसे आ रहे हैं?'

'हाँ।'

'वाइकोममें क्या हुआ?'

मुझे यह सवाल ठीक नहीं लगा; अतः मैंने पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं?'

'मैं मलाबारका हूँ।'

उसके हाथमें दो अखबार थे। मैंने पूछा, 'आप अखबार पढ़ते हैं?'

'मुझे सफर करना पड़ता है। कैसे पढ़ सकता हूँ?'

'आपके हाथमें 'हिन्दू' जो है। उसमें वाइकोमके समाचार मिलेंगे।'

'परन्तु मैं तो आपसे जानना चाहता हूँ।'

'आपकी तरह यदि सब लोग मुझसे पूछें और सभीको जवाब देना पड़े तो मेरे पास दूसरे काम करनेके लिए समय ही न बचे। क्या आपने इस बातपर विचार किया है?'

'पर आप मुझे तो वहाँका हाल बता ही सकते हैं।'

१. यह वार्तालाप २५ मार्च, १९२५ को, जब गांधीजी बम्बई जा रहे थे, गुण्टकल स्टेशनपर हुआ था।

'आप 'यंग इंडिया' पढ़ते हैं?'

'नहीं, मुझे इसे पढ़नेका समय ही नही मिलता। मैं 'टाइम्स' पढ़ता हूँ, क्योंकि मुझे वह मिल जाता है।'

'तब मैं आपको अपना समय नहीं दे सकता। आप न 'हिन्दू' पढ़ते हैं और न 'यंग इंडिया'। तब भला मैं दस मिनिटमें अचानक हुई इस भेंटमें आपको क्या हाल बताऊँ? आप मुझे माफ करें।'

'तब क्या आप मुझे नहीं बतायेंगे?'

'मुझे माफ करें। आप खादी भी नही पहनते; और मुझे व्यर्थ परेशान करते हैं।'

'परन्तु मुझे हाल बताना आपका कर्त्तव्य है।'

'खादी पहनना आपका कर्त्तव्य है।'

'मेरे पास रुपया नहीं है।'

'आप तो सोनेके बटन पहने हुए हैं। इन्हें मुझे दे दें, मै आपके लिए खादीकी व्यवस्था कर दूँगा।

'बटन तो मैं शौकिया पहनता हूँ। उन्हें मैं क्यों दे दूँ?'

'तब आप मुझे माफ करें।'

'अच्छा यदि मैं खादी न पहनूँ तो आप मुझे हाल न बतायेंगे?'

'आप खुशीसे ऐसा मान लें, पर अब मेरा पीछा छोड़ें।'

'आप यही क्यों नही कहते कि आप मुझे नही बताना चाहते।'

'अच्छा ऐसा ही सही।'

'पर आपके इस व्यवहारको मैं अखबारोंमें प्रकाशित करूँगा।'

'खुशीसे करें; पर अब आप मुझे अपना काम करने दें।'

'मुझसे जितना होता है, मैं उतना करता हूँ। मैंने मलाबार कोषके लिए कोई सौ-एक रुपये भी एकत्र किये थे।'

'क्या फिर भी आपका जी गरीब लोगोंकी बुनी खादी पहननेके लिए नहीं होता?'

'क्या यह मुझे ज्ञात नही है कि जब वहाँ लोग भूखों मर रहे हैं तब आपको कातनेकी सूझी है?'

'यह चर्चा हमें यहाँ नहीं छेड़नी चाहिए।'

'तब मैं जाऊँ?'

'हाँ जरूर। अब तो जायें।'

मुझे अन्देशा है कि मैं इस भाईको यह नहीं समझा सका कि जिस बातको वह आसानीसे अखबारोंमें पढ़ सकता है उसे जाननेके लिए मुझसे सवाल पूछकर उसे मेरा अर्थात् देशका समय नहीं लेना चाहिए। उसके जानेके बाद मेरे मनमें विचार आया कि यदि मैंने उसके साथ गंभीरतासे पेश आनेके बजाय विनोदसे काम लिया होता तो मै उसे खुश कर सकता था। हाँ, मेरा वक्त जरूर कुछ ज्यादा जाया होता। मुझे लगता है कि अपनी गंभीरता तथा उससे उत्पन्न हुई कठोरताके कारण मैंने एक सेवक गँवा दिया। अहिंसा धर्म कितना कठिन है? हम चाहे कितने ही कार्य-व्यस्त हों, फिर भी हमें सावधान रहना चाहिए। हमें प्रतिक्षण अपनी बातें सुननेवाले या देखने-

वालेके हृदयमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अहिंसा धर्मके पालनके लिए समय और सुविधाका क्या प्रश्न? सुविधा हो या न हो, समय हो या न हो, अहिंसावादी तो दास है, सेवक है और सेवाके लिए तो वह संसारके हाथ बिक चुका होता है। मैंने अपना समय बचाया, अपनी सुविधाका खयाल किया, शिक्षक बननेका प्रयत्न किया और शिक्षा देते हुए शिष्यको खो दिया। मैं कैसा शिक्षक हूँ? विवेकहीन मनुष्य पशुके बराबर है। तुलसीदास तथा सब संतोंका यही मत है।

दूसरा संवाद

जिसका मैं शिक्षक बनने गया वह मेरा शिक्षक बना। इस घटनाने मुझे सावधान बना दिया। मैं दूसरे सेवकको गँवाना नहीं चाहता था और सावधान था। यह विद्यार्थी पंजाबी था। पंजाबी जितने मिले हैं, सब विनयी ही मिले हैं। इस विद्यार्थीके विनयकी सीमा न थी। इसलिए मुझे अपनी सावधानी काममें भी नहीं लानी पड़ी।

'कोई पाँच सालसे मैं आपके दर्शन करनेकी कोशिश कर रहा था। आज मनोरथ पूरा हुआ।'

'भले आये। कुछ खास बात पूछनी है?'

'यदि इजाजत हो तो एक दो बातें अपने चिन्तनके लिए पूछना चाहता हूँ।'

'शौकसे पूछें।'

'क्या आप मानते हैं कि मैं चरखेके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर सकता हूँ?'

'नहीं। मैंने आप-जैसोंके लिए आजीविकाके साधनके तौरपर चरखेकी सिफारिश नहीं की है। आप-जैसोंके लिए तो सूत कातना बतौर एक यज्ञके है।'

'तब मुझे क्या करना चाहिए?'

'यदि मैं आपको समझा सकूँ तो मैं जरूर कहूँगा कि आप निर्वाहके लिए रुई धुनने और कपड़ा बुननेका काम करें। इन्हें आप सीख भी आसानीसे सकते हैं।'

'पर उनसे मैं अपने कुटुम्बका पालन कर सकूँगा?'

'हाँ, यदि सब लोग उस काममें हाथ बँटावें।'

'यह मुझ-जैसेके कुटुम्बके लिए असंभव है। आप देखते ही हैं कि मैं खादी पहनता हूँ। कातता भी हूँ। मैं उसका कायल भी हूँ। पर अपने कुटुम्बियोंमें उसके प्रति विश्वास कैसे पैदा कर सकता हूँ? और विश्वास हो जाये तो भी वे इस कामको करनेके लिए तैयार न होंगे।'

'आपकी इस कठिनाईको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। फिर भी आप और मुझ-जैसे अनेक लोगोंको अपना रहन-सहन बदलना होगा। नहीं तो हमारे देशके सात लाख गाँवोंके नसीबमें निराशा ही बदी है।'

'मैं इस नीतिको समझता हूँ; पर उसके ग्रहण करनेकी शक्ति मुझमें आज नहीं है। ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि वह मुझमें आ जाये। परन्तु तबतक मुझे क्या करना चाहिए?'

'इसकी खोज करना आपका और आपके बड़ोंका काम है। मैंने अपना आदर्श आपके सामने रख दिया है।'

'मैं यदि 'पॉटरी' (कुम्हारगीरी) सीखूं तो?'

'यह है तो उपयोगी। उससे आपको आजीविका मिलेगी और यदि पूंजी होगी और कारखाना खड़ा करोगे तो उससे औरोंकी भी गुजर होगी। पर आप स्वीकार करेंगे कि उसमें आपको कितने ही मजदूरोंका दुरुपयोग करना पड़ेगा, क्योंकि उन्हें कम मजदूरी देकर अपने लिए ज्यादा रुपया बचाना होगा।'

'हाँ, यह तो है ही। पर मैं ठहरा एक शहरी। फिलहाल तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं और कुछ न कर सकूंगा। फिर भी आपकी बातको मैं कभी न भूलूंगा। मुझे आपका आशीर्वाद तो है न?'

'हाँ, हरएक विद्यार्थीको हरएक शुभ कार्यमें मेरा आशीर्वाद है।'

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५

२५८. क्या यह असहयोग है?

एक सज्जनने लिखा है:[1]

अगर राष्ट्रीय शालाओंके किन्हीं शिक्षकों अथवा किन्हीं नेताओंने इसमें जैसा लिखा है वैसा आचरण किया हो तो यह बहुत लज्जाजनक और खेदका विषय है। अगर कोई शिक्षक असहयोग करनेके बाद सरकारी नौकरीके लिए अर्जी दे और विफल-प्रयत्न होनेपर फिर राष्ट्रीय शालामें अर्जी देकर प्रवेश करे तो वह असहयोगी तो कदापि न माना जायेगा। अगर राष्ट्रीय शालाको यह मालूम हो जाये कि उसने सरकारी नौकरीके लिए अर्जी दी थी तो वह उसे अपने यहाँ न रखे और अगर जरूरत होनेके कारण रख भी ले तो उससे वह शिक्षक असहयोगी तो नहीं कहा जा सकेगा। जिन नेताओंने अपने विदेशी कपड़े तो सँभालकर रख लिए हों और दूसरोंके विदेशी कपड़ोंकी होली जलवाई हो वे उक्त शिक्षकसे भी गये-बीते हैं। उन्होंने अपने देश भाइयोंके साथ दगा की है और फिर भी अपना नेताका पद कायम रखा है। मुझे नहीं मालूम कि शिक्षकों या उन नेताओंने ऐसा आचरण सचमुच किया है या नहीं। उक्त पत्र-प्रेषकने मुझे उनके नाम भी लिखे हैं, लेकिन उनका उपयोग करना मुझे उचित नहीं लगा। नाम लिखनेके बावजूद, हो सकता है, पत्र-लेखकको खुद ही धोखा हुआ हो और झूठी खबर मिली हो। ऐसे आरोप मेरे पास बहुत बार आये हैं और निराधार साबित हुए हैं।

लेकिन मान लें कि पत्र-लेखकने जो बातें लिखी हैं, वे सच हैं; फिर भी उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका तो कोई उचित आधार दिखाई नहीं देता। दो-एक शिक्षक

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र लेखकने कई उदाहरण देकर यह दिखाया था कि लोगोंने असहयोग आन्दोलनका साथ ईमानदारीसे नहीं दिया है। उन्होंने गांधीजीको स्वराज्य दलका कार्यक्रम स्वीकार करनेकी भी सलाह दी थी।

अथवा नेता धोखेबाज निकले तो इससे यह नहीं माना जा सकता कि सभी धोखेबाज हैं। सैकड़ों असहयोगी बड़े-बड़े प्रलोभनोंके सामने भी नहीं डिगे हैं। सैकड़ों स्नातक किसी भी सरकारी-परीक्षामें नहीं बैठे हैं और मुसीबतें झेलकर भी हिम्मत नहीं हारते। अतः मेरे पछतानेका कोई कारण नहीं है।

खादी पहननेवाले सभी ढोंगी और धोखेबाज हैं, ऐसा कहना तो विचार-शून्यताका परिचय देना है। मैं तो चाहता हूँ कि जहाँ जाऊँ, खादीकी सफेद टोपी देखूँ।[1] लेकिन मुझे ऐसा तो कहीं दिखाई देता नहीं। जो सफेद टोपियाँ देखता हूँ, उन्हें पहननेवाले सभी धूर्त हैं, यह मान लेनेका लेशमात्र भी कारण नहीं। उन्हें मैं जानता तो हूँ नहीं। सम्भव है, बहुत-सोंको जीवनमें शायद एक बार ही देख पाऊँ। ऐसे लोगोंका क्या स्वार्थ हो सकता है कि वे सिर्फ मुझे संतोष देनेके लिए खादी पहनें? शायद उनका मंशा ऐसा ही हो, फिर भी उसे ढोंग तो नहीं माना जा सकता।

असहयोगकी योजना जनताकी नब्ज टटोले बिना तैयार नहीं की गई थी। मुझे खादीका मंत्र नब्ज टटोले बिना ही नहीं मिल गया था। अगर आज कोई कार्यक्रम दृढ़ताके साथ चल रहा है तो वह है खादी और चरखेका कार्यक्रम। मुझे तो नहीं मालूम कि यहाँ आज ऐसा कोई दूसरा राष्ट्रीय कार्यक्रम चल रहा है, जिसमें इतने कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं और शुद्ध ढंगकी कमाई कर रहे हैं। ज्यादा हो या कम, इतना जरूर है कि यह कार्यक्रम प्रगति कर रहा है। गरीब लोगोंने इसे बहुत उत्साह-से आगे बढ़कर स्वीकार न किया हो, मगर वे इसे पसन्द तो करते ही हैं। वे अन्तर-प्रेरणासे ही जानते हैं कि यह कार्यक्रम सच्चा है, पोषक है और व्यापक है।

ये सज्जन लिखते हैं कि कताईका कार्यक्रम चलनेवाला नहीं है। इसलिए इसे छोड़ देना चाहिए और कताई मताधिकारकी शर्तके रूपमें भी नहीं रखनी चाहिए। मैं उक्त कारणोंसे इसे छोड़ दूँ यह नहीं हो सकता। मुझे मताधिकारकी शर्तके रूपमें इसे वापस लेनेका अधिकार ही नहीं है। अगर कांग्रेस वर्षके अन्तमें वैसा करना चाहे तो कर सकती है। लेकिन पत्र-लेखक महोदय मुझे तो तब भी खादी और चरखेका पुजारी ही देखेंगे।

पत्र-लेखकका कहना है कि सिर्फ खादीसे ही स्वराज्य मिलनेवाला नहीं है। मैंने कभी ऐसा कहा भी नहीं है कि अकेले उसीसे स्वराज्य मिल जायेगा; लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है और फिर कहता हूँ कि उसके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। यह कहना ठीक नहीं है कि हम खादीका उपयोग कर रहे थे, किन्तु फिर भी स्वराज्य खो बैठे। सचाई यह है कि हमने पहले खादी खोई और फिर स्वराज्य। यदि हम खादीको फिर अपना लें, तो स्वराज्य लानेका भी अवसर आ जायेगा। फिर, जब हमने अपना स्वराज्य गँवाया तब हम यह नहीं जानते थे कि खादीमें स्वराज्यको कायम रखनेकी खूबी है। लेकिन अब हम इस सचाईको जान गये हैं। अगर हमें यह जानकारी न हो कि मजबूत फेफड़ेवाले लोग खूब चल सकते हैं तो सम्भव है कि हम फेफड़ोंकी

१. पत्र लेखकने लिखा था कि गांधीजी जहाँ-कहीं जाते हैं वहाँ खादी टोपियाँ देखकर गलत धारणा बना लेते हैं।

ठीक सम्भाल न करें और फलतः उनके खराब हो जानेसे चलनेकी शक्तिको खो बैठें। लेकिन अगर हम इस बातकी जानकारी होनेपर भी फेफड़ोंको नीरोग करनेका प्रयत्न करके और उसमें सफल होकर चलनेकी शक्ति प्राप्त न करें तो मूर्ख ही कहे जायेंगे। खादीके सम्बन्धमें भी हम ऐसा ही कह सकते हैं।

पत्र-लेखकका आशय यह है कि सभीको स्वराज्यवादी होना चाहिए। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि कांग्रेस ऐसा नही सोचती। लेकिन खादीका कार्यक्रम किसीको भी स्वराज्य दलमें जानेसे रोकता तो नहीं है। सच्चा स्वराज्यवादी खादी-भक्त तो हो ही सकता है, और उनमें आज भी बहुतसे खादी-भक्त मौजूद हैं। कांग्रेसने जो समझौता[1] मंजूर किया है उसमें यह बात निहित है कि खादीपर दोनों पक्षोंकी श्रद्धा है, और उसमें इस श्रद्धाकी व्याख्या भी की गई है। इसलिए कोई भी मनुष्य स्त्री हो या पुरुष चरखा चलाते हुए और दूसरोंको उसकी प्रेरणा देते हुए, स्वयं खादी पहनते हुए और दूसरोंसे खादी पहननेका अनुरोध करते हुए भी स्वराज्यवादी हो सकता है तथा अन्य लोगोंको भी स्वराज्यवादी बननेके लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

इस समय कांग्रेसमें बहुत कम सदस्य रह गये हैं; लेकिन इसका मुझे बिलकुल दुःख नही है। यदि कांग्रेसमें सिर्फ दस हजार अनन्य खादी भक्त हों तो वे कांग्रेस तथा देशकी जितनी सेवा कर सकते हैं, उतनी सेवा सिर्फ चार-चार आने देकर बैठ जाने-वाले नाम-मात्रके लाखों सदस्य कभी नही कर सकते। बल्कि, बहुत सम्भव है कि अगर ऐसे सदस्य लाखोंकी सख्यामें हों तो किसी समयपर उनसे लाभके बजाय हानि ही हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५

२५९. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

जनरल स्मट्स दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी हिमायत कर रहे हैं, यह उन्हें शोभा देता है। किन्तु इससे भारतीयोंके कष्ट नही मिट सकते। वे तो बढ़ते जा रहे हैं। गोरे व्यापारी भारतीयोंके व्यापारको, उनके अस्तित्वको भी सर्वथा मिटा देना चाहते हैं। इसके लिए वे खुल्लमखुल्ला ट्रान्सवालमें बसे हुए भारतीयोंके व्यापारको हथियाना चाहते हैं। हिन्दुस्तान तो उनको सहायता देनेकी स्थितिमें है नहीं। सरकारने शर्म छोड़ दी है। वह यहाँके लोकमतकी कोई परवाह नही करती। केन्द्रीय परिषद्में मतदानका परिणाम कुछ भी हो, किन्तु सरकार जो मनमें आता है वही करती है। यहाँकी जनताका मत तो निश्चय ही दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके पक्षमें है। जो-कुछ यहाँ किया जाना चाहिए, वह अवश्य किया जायेगा। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामें और अन्य देशोंमें बसे हिन्दुस्तानियोंको यह बता देना मेरा कर्त्तव्य है कि उनको अपनी शक्तिपर

१. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५२६-२८।

ही पूरा भरोसा करना है। 'अपने मरे विना स्वर्ग नहीं मिलता', यह कहावत इस स्थितिपर पूरी तरह लागू होती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५

२६०. टिप्पणियाँ

अनजानमें अन्याय

भाई अमृतलाल ठक्करने गरीवोंकी सेवा करना अपना जीवन-कार्य वना लिया है; इसलिए उनकी नजर हमेशा गरीवोंकी ओर ही लगी रहती है — चाहे वे भील हों, चाहे भंगी हों और चाहे कोई छोटा-मोटा शुद्ध खादी-भण्डार। अपने इस धर्मके — या कहना चाहें तो अपने इस धंधेके — अनुरूप ही उन्होंने मुझे निम्न पत्र लिखा है[1]:

अगर मैंने जानवूझकर या अनजाने 'नवजीवन' का उपयोग उक्त दोनों भण्डारोंका इश्तिहार करनेमें किया हो तो मैं अमृतलालजीके इस प्रिय खादी भण्डारका इश्तिहार जानवूझकर करता हूँ, और कामना करता हूँ कि इसकी विक्री ३,००० रुपयसे ३०,००० रुपये हो जाये। यह आशा कोई वड़ी आशा नहीं है। 'महाभारत' कारने पूछा है: "पुरुषार्थ वड़ा है या भाग्य?" वे किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच पाये; निदान उन्होंने कभी पुरुषार्थको वड़ा दिखाया है तो कभी भाग्यको। अगर इस खादी भण्डारके मालिकमें आस्था, उद्योगशीलता और प्रामाणिकता है, तो वे अपने पुरुषार्थसे भाग्यको भी अपने अनुकूल वना लेंगे, और इससे स्वयं उनके भण्डारकी श्रीवृद्धिके साथ-साथ वे दूसरे दोनों भण्डारोंकी समृद्धिमें भी सहायक होंगे; क्योंकि हम खादी आन्दोलनके विषयमें यह कह सकते हैं कि अगर किसी शहरमें किसी एक सच्चे खादी भण्डारकी भी उन्नति होती है, तो उससे वहाँ चलनेवाले दूसरे सच्चे खादी भण्डारोंकी भी उन्नति अवश्य होगी। मैंने तिरुपुरमें ऐसी वात ही देखी। तिरुपुर एक छोटा-सा नगर है, लेकिन वहाँ पाँच या छः खादी-भण्डार चल रहे हैं। जव खादी लोकप्रिय थी तव सवका धंधा जोरोंसे चलता था। लेकिन जव लोग उसकी ओरसे उदासीन हो गये तव सवका काम ढीला पड़ गया।

सूतके वदले पैसा[2]

ऐसा देखनेमें आया है कि लोगोंको कांग्रेसका सदस्य वनाते समय कुछ कमेटियाँ सूतके वदले पैसा ही स्वीकार कर लेती हैं। मेरे विचारसे तो यह नियम-विरुद्ध है। ऐसा सुझाव दिया भी गया था कि जो खुद न काते और दूसरेसे भी न कतवाये, वह

१, यहाँ पत्र उद्धृत नहीं किया जा रहा है। पत्र लेखकने गांधीजीका ध्यान एक छोटे-से खादी भण्डारकी ओर आकृष्ट किया था, जिसे कोई सज्जन घाटा उठाकर निजी तौरपर चलाते थे। पत्रमें कहा गया था कि गांधीजीने अपने "क्या वम्बई सुप्त है?" शीर्षक लेखमें इसका उल्लेख न करके उसके प्रति अन्याय किया है।

२. देखिए "दो प्रश्न", २-४-१९२५।

नगद पैसा दे; लेकिन यह सुझाव अस्वीकार कर दिया गया था। कारण बताते हुए कहा गया था कि यदि सदस्य बननेकी इच्छा रखनेवाले लोग दूसरोंसे सूत प्राप्त करनेकी तकलीफ भी न उठायेंगे तो सदस्यताकी सूत-सम्बन्धी शर्तका कोई मतलब ही न रह जायेगा। लेकिन इसके बावजूद पैसा लेकर सदस्य बनाये जायें तो इसे आश्चर्य ही माना जायेगा। सच तो यह है कि अगर कताई-सदस्यताको सफल बनाना हो तो कांग्रेस कमेटियोंको केवल ऐसे लोगोंको ही सदस्य बनानेकी कोशिश करनी चाहिए जो खुद कताई करते हों। अगर कोई खरीदा हुआ सूत देकर सदस्य बनना चाहे तो उसका नाम अवश्य दर्ज किया जाये, लेकिन अगर कांग्रेस नई योजनाको सफल बनाना चाहती है तो खुद कातनेवालोंको ही बढ़ावा देनेका प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा किया जाये या न किया जाये, किन्तु पैसा लेकर सदस्य बनाना तो कांग्रेसके संविधानका उल्लंघन करना है।

खादी न पहननेवाले लोग

कांग्रेसमें मताधिकार प्राप्त करनेके लिए कांग्रेसका काम करते समय तथा इसी प्रकारके दूसरे अवसरोंपर खादी पहनना अनिवार्य है। फिर भी, ऐसा जान पड़ता है कि कुछ जगह सदस्य खादी नहीं पहनते। मेरी दृष्टिमें तो यह भी कांग्रेसके नियमके विरुद्ध है। मेरी समझमें नहीं आता कि यदि हम अपने ही बनाये नियमोंका पालन न करेंगे तो स्वराज्य किस तरह मिल सकेगा। कोई यह तर्क दे सकता है कि कांग्रेसका जो नियम पसन्द न हो, उसे न मानना ठीक ही है। लेकिन ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि यदि हर आदमी पसन्द न आनेवाले नियमोंकी अवहेलना करने लगे तब तो कोई किसी भी नियमका पालन नहीं कर पायेगा और इस प्रकार पूरा संविधान अर्थात् तन्त्र ही नष्ट हो जायेगा। नियम बन जानेसे पहले उसका भरपूर विरोध किया जा सकता है, लेकिन मंजूर होनेके बाद उसको भंग करना तो अव्यवस्था उत्पन्न करने-जैसा होगा। कोई ऐसा न समझे कि मेरी यह दलील सविनय अवज्ञाके विरुद्ध जाती है। ऐसा सोचना ठीक नहीं है; सविनय अवज्ञा तो तब की जाती है जब अवज्ञा न करना अनैतिक हो। लेकिन, यहाँ तो अनीतिकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। खादी पहनना अनीतिका विषय नहीं है। खादी पहनना अनैतिक है, ऐसी दलील तो मैंने आजतक किसीसे नहीं सुनी।

अब सवाल यह उठता है कि अगर कोई सदस्य खादी न पहने होनेपर भी सभामें आकर बैठ जाये और उसकी कार्रवाईमें भाग भी ले तो उस हालतमें क्या किया जाये। उस हालतमें अध्यक्ष उससे विनम्रतापूर्वक कह सकता है कि वे सभासे चले जायें। अगर सदस्य उसकी बात न माने तो वह उसे बोलनेसे रोक सकता है। उसका मत तो किसी भी हालतमें नहीं गिना जाना चाहिए। पूछा जा सकता है कि ये विचार मैं कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे व्यक्त कर रहा हूँ या अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे। अध्यक्षकी हैसियतसे कोई विचार व्यक्त करनेका मेरा इरादा ही नहीं है। अगर इस नियमपर कभी निर्णय देनेका अवसर आयेगा तो वह निर्णय देनेकी भी मेरी कोई इच्छा नहीं है। मेरा विचार है कि मैं इस निर्णयको तो कार्य-समितिपर

ही छोड़ दूँगा। मैंने ही मताधिकारमें परिवर्तन करनेका सुझाव दिया था और मैंने ही उस नियमका मसविदा तैयार किया था; इसलिए उस विषयमें अध्यक्षकी हैसियतसे कोई निर्णय देना मैं उचित नहीं समझता। उचित तो यही है कि उसपर कार्य-समिति निर्णय दे। लेकिन मुझे आशा है कि इतनी सीधी-सादी-सी बातपर कोई भी मनुष्य कार्य-समितिसे आधिकारिक निर्णय देनेकी माँग न करेगा।

अगला सप्ताह

यह अंक ६ अप्रैलसे पहले-पहले पाठकोंके हाथोंमें पहुँच जायेगा। राष्ट्रीय सप्ताहमें क्या करना उचित है, इतना तो मैंने बता ही दिया है। फिर भी मैं खादी और चरखेपर विशेष जोर देना चाहता हूँ। यह एक ऐसा काम है, जिसे अगर जनता चाहे तो पूरा कर सकती है। अभीतक तो हम कोई भी स्थायी राष्ट्रीय कार्य पूरा नहीं कर पाये हैं। खादीका काम एक ऐसा काम है जिसे अगर हम निश्चय ही कर लें तो पूरा कर सकते हैं। उसमें कोई धार्मिक आपत्ति नहीं हो सकती; ऐसी आपत्ति मैंने कभी नहीं सुनी। यह काम करनेमें कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि हमारे पास इसके लिए साधन तो हैं, सिर्फ इच्छाका अभाव है। और इच्छासे भी अधिक अभाव हममें कार्यशक्तिका है। हम उद्यमी नहीं हैं। भला इस संसारमें उद्यमके बिना क्या कभी कुछ हो पाया है और क्या आगे भी हो पायेगा? यदि हम इतना भी न समझ सकेंगे तो हम कौन-सा बड़ा काम कर सकेंगे? मैंने बहुत बार लोगोंको कहते सुना है सिर्फ मेरे कहनेसे क्या होगा, सब लोग करें तब न? लेकिन दूसरे क्या-क्या करते हैं, इससे हमें क्या मतलब? हम अपना कर्त्तव्य पूरा करें, यही काफी है। अतः मेरी इच्छा है कि इस बातको समझकर हर पाठक अपनी पूरी शक्ति लगाकर खादीका काम करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५

२६१. टिप्पणी

खादीकी विडम्बना

कराचीसे एक मोची भाईने पत्र लिखा है। उसकी भाषामें उसके कुछ अंश नीचे दे रहा हूँ:[1]

ऐसी उलझनें तो आती ही रहेंगी। हर सुधारकको मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है। इससे आगामी पीढ़ीका रास्ता साफ होता है। इस मोची परिवारको मैं बधाई देता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२५ (परिशिष्टांक)

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है पत्र लेखकने खादीको अपनाने और शादीके वक्त खादी ही पहननेका आग्रह करनेके कारण अपने मार्गमें आनेवाली कठिनाायोंका वर्णन किया था।

२६२. भाषण : लाठीमें

५ अप्रैल, १९२५

कलापीकी[1] लाठी रामजीभाईकी[2] लाठी कैसे हो गई? ऐसा किस कारण हुआ? रामजीभाईमें क्या हीरा जड़ा है? नहीं, बात सिर्फ इतनी ही थी कि जब कोई भी हाथसे कता सूत बुननेके लिए तैयार नहीं था तब उन्होंने इस काममें पहल की और वे तथा गंगाबहन आगे आये। इसमें उन्होंने क्या खोया? आज उन्हें सारा गुजरात जानता है। उन्होंने काशी विश्वनाथतक जाकर लोगोंको खादी बुनना सिखाया; वे मुझसे मिलने पूना भी गये थे। इन्हें इतनी प्रतिष्ठा केवल एक टेकके कारण, हाथसे कते सूतको बुननेकी टेकके कारण मिली। गंगाबहन तो अपने पतिसे अच्छी खादी बुनती है। ये अन्त्यज हैं, फिर भी मैं इनकी पूजा करता हूँ, क्योंकि ये प्रौढ़ा बहिन पवित्र है और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करती हैं। आप लोगोंने एक मन्दिर बनवानेकी माँग की है।[3] इसमें आपको इस सम्बन्धमें कोई प्रोत्साहन न दूँगा और प्रबन्धक महोदयसे भी कहूँगा कि वे आप लोगोंको बेकारकी बातोंमें बढ़ावा न दें। आज अगर आपके लिए लाख रुपयेकी माँग करूँ तो मुझे लाख रुपये मिल जायेंगे; लेकिन मैं माँगूं क्यों? मन्दिर बनवाना हो तो आप खुद ही बनवायें। मैं आपकी शारीरिक सुख-सुविधाकी व्यवस्था करूँगा; लेकिन अपनी आत्माकी भूख मिटानेका उपाय तो आपको खुद ही करना चाहिए। मैं आपके लिए मन्दिर बनवा दूं और फिर आप शराब पीकर उसमें नाचें, यही न? धोराजीमें मैं लोगोंको ऐसा ही करते देख आया हूँ। अतः अगर आपको सचमुच मन्दिरकी जरूरत हो, तो आप उसको बनवानेके लिए अपने खून-पसीनेकी कमाईमें से पैसा दें, रामजीभाईसे पैसा देनेके लिए कहें, और जब एक अच्छी खासी रकम जमा हो जाये तो प्रबन्धकसे भी उतनी ही रकम देनेकी प्रार्थना करें। अगर आप इतना करें तो आपके लिए इन दोनों रकमोंके बराबर धन-राशि जमा करके मैं आपको दे दूं। अगर आपको सचमुच ऐसे मन्दिरकी जरूरत होगी तो आप सौ बार ऐसा करेंगे। पूजारी तो ऐसे आदमीको ही रखें जो खरा वैष्णव हो। फिर मन्दिरके लिए तीन न्यासी होने चाहिए — एक तो मन्दिरके प्रबन्धक अथवा जब ठाकुर साहब गद्दीपर आ जायें तो ठाकुर साहब, दूसरा मैं और तीसरा कोई आपके द्वारा नियुक्त व्यक्ति। जबतक व्यवस्था ठीक रहेगी, तबतक मन्दिर आपके अधीन रहेगा, अन्यथा आपके हाथोंसे ले लिया जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-४-१९२५

१. सौराष्ट्रमें लाठी नामकी एक रियासत थी। वहाँके महाराजा सुरसिंहजी गोहिल एक अच्छे कवि भी थे और उनका उपनाम "कलापी" था। लाठी रियासत कलापीकी लाठीके नामसे प्रसिद्ध थी।

२. एक बुनकर; देखिए **आत्म कथा**, भाग ५, अध्याय ४०।

३. अन्त्यज स्कूलके शिक्षकोंने गांधीजीके सामने स्कूलकी रिपोर्ट पेश करते हुए अन्त्यजोंके लिए एक मन्दिर बनवानेका सुझाव रखा था।

२६३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सोमवार [६ अप्रैल, १९२५][1]

भाईश्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। मेरेसे अच्छे होनेकी बात मैंने तो विनोद नहिं समजी थी। मैं उसको सर्वथा उचित समझता हूं। हमारे वडीलसे मित्रसे हम नैतिक बलमें आगे बड़नेकी अवश्य कोशीष करें। मेरे बडीलने जो कुछ नैतिक धन मुझे दीया उसमें वृद्धि करनेकी चेष्टा करना मेरा धर्म है। मैं तो ईश्वरसे हमेशा चाहता हुं कि मेरे मित्रोंको मुझसे अधिक बल दे। इस प्रार्थनाका तात्पर्य तो यही हुआ की मेरे दोषोंसे उनको बचावे। मैं अवश्य चाहता हुं कि आप मेरेसे आत्मबलमें बढ़ें। उसीमें मेरा आपके साथका संगकी सफलता है। ऐसे हि आप चाहें की आपके बलसे मुझे अधिक मीले। यही एक पदार्थ है जिसके लीये स्पर्धा होते हुए द्वेष नहि हो सकता है।

पुनरलग्नका इशारा मैंने भविष्यमें आप सुरक्षित रहें इसलीये कीया।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११०) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२६४. भाषण : माँगरोलकी सार्वजनिक सभामें

८ अप्रैल, १९२५

किसी भी मनुष्यके धीरजकी आंखिर एक हद होती है। अब मेरा धीरज भी जाता रहा है। जब मैं देखता हूँ कि अन्त्यज बालिकाओंको वहाँ दूर खड़े होकर गाना पड़ रहा है तब मुझसे चुप नहीं रहा जा सकता। आप लोगोंने देखा होगा कि हर पाँच-पाँच मिनिटपर मेरी नजर उन दूर कोनेमें खड़े अन्त्यजोंकी ओर जा रही थी। मुझे यह गवारा नहीं हो सकता कि अन्त्यज वहाँ बैठें। यदि अन्त्यज लड़कियाँ वहाँ खड़ी-खड़ी गायें तो कांग्रेस कमेटीकी ओरसे दिया गया वह अभिनन्दन-पत्र आडम्बर-मात्र है। मैं कल कह चुका हूँ कि मैं ढेढ़ हूँ, अन्त्यज हूँ, भंगी हूँ। अपने लिए इन विशेषणोंका प्रयोग करके अपने आपको धन्य मानता हूँ,

१. ३० मार्च, १९२५को घनश्यामदास बिड़लाको लिखे पत्रके विषयसे स्पष्ट है कि यह पत्र उसके बाद लिखा गया होगा।

अपने मनमें प्रसन्न होता हूँ। मुझसे जब भी पूछा गया है कि आपका पेशा क्या है तब मैंने यही जवाब दिया है कि मै किसान हूँ और जुलाहा हूँ; परन्तु मैंने निगमके अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें इससे आगे बढ़कर कहा था, "मैं भंगी हूँ।" ऐसी अवस्थामें जिन्हें मैं अपना मानता हूँ उन्हें आप दूर खड़ा रखें और मुझे अपनी गोदमें बिठाना चाहें, यह कैसे हो सकता है? आप मेरी स्तुतिमें तो 'गीता' के श्लोक गायें और मैं उन्हें दूर खड़ा रखूं, यह कैसे हो सकता है? पर आपने मेरी जो स्तुतिकी है यदि वह सच हो और जो मेरा गुणगान किया है वह सच हो तो हम लोग जहाँ बैठे हुए हैं हमें उन बालिकाओंको भी वहीं बिठाना चाहिए। हाँ, इससे आप लोगोंके दिलको चोट पहुँचेगी, आप कहेंगे कि यह रंगमें भंग करनेके लिए कहाँसे आ गया? इसलिए जिस तरह उन्हें दूर खड़ा देखकर मेरे दिलको चोट पहुँची है उसी तरह उन्हें यहाँ आया देखकर आपके दिलको भी चोट पहुँचे तो आप मुझे वैसा कहें। अबतक हम प्रस्ताव तो बराबर पास करते जाते हैं। मैंने आपके स्वागत समारोहमें मेहराबोंपर अस्पृश्यता-निवारण सूचक सूत्र भी पढ़े हैं। ये या तो आडम्बर-मात्र हैं या आपकी कमजोरीके सूचक हैं। इस अवसरपर मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं आपकी इस कमजोरीको दूर करूँ। मैं इसीलिए कहता हूँ कि आप अपने दिये हुए इस अभिनन्दन-पत्रको वापस ले लें, या मुझे इन ढेढ़ोंके पास जाकर बैठने दें। यदि आप सच्चे दिलसे यह चाहते हों कि अन्त्यज भाई और बहन आपके साथ आकर बैठें तो ऐसा कहें। मेरा धर्म है अहिंसा और आपका धर्म भी वही है। अहिंसाका सिद्धान्त हर धर्ममें है। हाँ, व्यवहारमें उसके पालनके परिमाणमें अलबत्ता भेद है। इसलिए मैं आपको किसी भी तरह दुःखी करना नहीं चाहता। यदि आप मेरा लिहाज करके ढेढ़ोंको यहाँ आने देंगे तो इससे मेरे अहिंसा धर्मका लोप होगा। मेरा लिहाज करके नहीं, बल्कि आपको हजार बार गरज हो और आपका विश्वास हो कि मैंने जो धर्मकी रक्षा करनेकी बात आपसे कही है वह सच है, अतः आपको माननी चाहिए तो आप अन्त्यजोंको यहाँ आने दें। यदि आप उनके यहाँ आनेके खिलाफ भी हाथ ऊँचा उठायेंगे तो मुझे दुःख न होगा। तब मै लम्बी साँस लेकर अपने मनमें यही कहूँगा "हाय! लोग हिन्दू धर्मको कब और कैसे समझेंगे?" अतएव जिसकी जैसी इच्छा हो निडर होकर भी बिना किसीका लिहाज किये हाथ उठाये।

मेरे लिए अब धर्म-संकट आ खड़ा हुआ है। अन्त्यजोंको अलग रखनेके हामी सज्जनों की संख्या बहुत थोड़ी है, मैं उनसे नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि वे सभासे चले जायें। यदि मेरी बात उनकी समझमें न आती हो और उन्हें उससे दुःख होता हो तो बेहतर है कि मैं ही अन्त्यजोंमें जा बैठूं।

हम यहाँ सभाके न्यायके अनुसार व्यवहार नहीं कर सकते। बेहतर है कि आप मुझे ही अन्त्यजोंमें जाकर बैठने दें।

आपको दुःख न होना चाहिए। आपने पहलेसे तो यह सूचना निकाली ही न थी कि सभामें अन्त्यज शामिल किये जायेंगे। आपने उन सबको अलहदा बैठाया और यदि मैं न बोला होता तो वे वहीं बैठे रहते। इसलिए मैं समझता हूँ कि ऐसे समय

सभाके हकपर अमल करना उन लोगोंको दुःख पहुँचाना है। और मुझे तो जरा भी दुःख नहीं होता, उलटा उससे आपकी मर्यादाकी रक्षा होती है। आपका काम आसान हो जाता है।[1]

अन्त्यजोंके सवालने यहाँ अचानक ही बड़ा रूप धारण कर लिया। इसमें यहाँ जो दो भाग हो गये, उसे मैं शुभ लक्षण मानता हूँ। जो भाई समझदारीसे यहाँसे चले गये हैं, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। जो सज्जन यहाँ यह सोचकर बैठे रहे कि घर जाकर नहा लेंगे, मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। आप लोगोंने मुझे वहाँ जाने दिया होता तो अच्छा होता। परन्तु जो-कुछ हुआ वह भी बुरा नहीं है। यह सभाका हक है और यदि मैं आपपर दबाव डालता तो भी अहिंसाका लोप होता। जो लोग मुझसे सहमत हैं, मैं उनपर भी इतना अंकुश नहीं लगा सकता। इसलिए जिन्होंने मेरा पक्ष लिया था, मैं उनके आग्रहको समझ गया और यह समझकर कि जो हुआ सो ठीक हुआ, बैठा रहा।

अब मैं विरोध करनेवालोंसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। इतने बरसोंसे इस बातकी चर्चा हो रही है, फिर भी आप लोग नहीं चेतते। कितने पतित हो गये हैं हम। यदि कोई ढेढ़ इसी सभामें बैठा होता तो आपको कोई आपत्ति न होती; पर इस सवालको उठानेसे यह आपत्ति खड़ी हुई[2] किसी स्वयंसेवकने अन्त्यजको अन्त्यज समझकर बैठाया होता तो ठीक था, परन्तु यदि उन्हें यह कहकर वहाँ बैठाया हो कि वे अन्त्यज नहीं हैं, तो धोखा दिया है। उसने मुझे धोखा दिया है और जो लोग अस्पृश्यताको धर्म मानते हैं उन्हें भी धोखा दिया है। हम किसीसे जबरदस्ती धर्मका पालन नहीं करा सकते। धर्ममें जबरदस्ती नहीं हो सकती। यदि हो तो वह अधर्म हो जाता है। यदि किसी स्वयंसेवकने ऐसा किया हो तो उसे पश्चात्ताप करके माफी माँगनी चाहिए।

मैं जो बात कह रहा हूँ उसे ये बीचमें दखल देनेवाले सज्जन नहीं समझे हैं। आप ट्रेनमें, दफ्तरोंमें, मिलोंमें तथा दूसरी संस्थाओंमें जहाँ अन्त्यज हमारे साथ इकट्ठे होते हैं, वहाँ उनका बहिष्कार नहीं करते। हम मिलोंमें बहिष्कार तो दूर, उनसे काम लेते हैं। फिर भी जो लोग यह मानते हैं कि अस्पृश्यता पाप है और उन्हें उसका निवारण करना चाहिए, उन्हें बेवकूफ मानना और अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध लेना, यह न तो मनुष्यता है, न व्यावहारिकता और न बुद्धिमत्ता। मैं आपसे कहता हूँ कि आप थोड़े व्यवहार-कुशल बनें। वैष्णव प्रेमका दावा करते हैं। यहाँ अन्त्यजोंके प्रति वैष्णवोंने कौन-सा प्रेम प्रदर्शित किया है? मुझे कुछ अन्त्यज रास्तेमें मिले थे। उन्होंने मुझसे कहा, "हमें कुओंपर पानी नहीं भरने दिया जाता। हमें गड्ढोंमें से पानी भरना पड़ता है?" इसे दया कहते हैं? जिन गड्ढोंमें से पशु पानी पीते हैं और हम कभी नहीं पीते, उनमें से इन लोगोंको पीनेका पानी भरनेके लिए मजबूर करना क्या दया है? यह तो

१. सभामें जिस व्यक्तिने अन्त्यजोंके प्रवेशका अन्ततक विरोध किया था वह समझाने-बुझानेपर सभामें से चला गया। उसके बाद गांधीजीने आगे भाषण दिया।

२. यहाँ सभामें बैठे एक आदमीने आपत्तिकी और कहा, स्वयंसेवकोंने अन्त्यज भीतर बिठाये थे।

निरी निर्दयता है; अधर्म है, पाप और राक्षसीपन है। यह भाव न तो वैष्णव धर्ममें है और न 'भागवत' में वर्णित धर्ममें। यदि यह साबित हो कि ऐसी बात वैष्णव धर्मके धर्मग्रन्थोंमें है तो मुझे ऐसे वैष्णव धर्मकी जरूरत नहीं, इस हिन्दू धर्मकी गरज नहीं। मैंने हड़तालमें भी यही शिकायत सुनी। जिस अन्त्यजको हमारी ही तरह पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं और जो हमारी ही तरह पाप-पुण्य करता है, उसके लिए ईश्वर-प्रदत्त पानी पीनेका भी निषेध है। वह मांसाहार करता है। वह बेचारा तो खुल्लम-खुल्ला मांसाहार करता है पर जो लोग छुपे-छुपे मांसाहार करते हैं, उनका हम क्या इलाज करते हैं? हम कन्या-विक्रय करके गोहत्याके समान पाप करते हैं और अस्पृश्यता धर्मका पालन करते हैं। इन 'धर्म' पालनेवालोंके मनमें दया नहीं, उनकी नस-नसमें पाखण्ड भरा है, निर्दयता भरी है। 'मनुस्मृति' शौचका नियम इतना ही बताती है कि रजस्वला-को जबतक वह रजस्वला रहे तबतक, चाण्डालको जबतक वह अपना काम करे तबतक न छूना चाहिए। बहुत करें तो जिसे सूतक लगा हो उसे, चाण्डालको या रजस्वलाको छूकर नहा लें — यह शास्त्राज्ञा है। फिर यह इतना जुल्म किसलिए? ढेढ़ों और भंगियोंका चारों ओरसे बहिष्कार क्यों? फिर ऐसा करते हुए भी हम नरसिंह मेहताके वंशज होनेका दावा करते हैं और नवकार मन्त्र[1] जपनेका स्वांग करते हैं। जबतक आपका हृदय कोमल नहीं बनता तबतक आपका कोई दावा काम नहीं आ सकता। मुझे सारा हिन्दुस्तान कहे कि मैं झूठा हिन्दू हूँ तो भी मैं कहूँगा कि मैं सच्चा हिन्दू हूँ, झूठे तो वे हैं जो अस्पृश्यताको धर्म मानते हैं। मैं तो मरते-मरते भी इस बातको पाप कहूँगा। मुझे मोक्ष तो मिल ही नहीं सकता, क्योंकि इस विषयमें मेरा राग है। लेकिन मैं इसका उन्मूलन करनेवाला हूँ कौन? मैं तो चाहता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें से क्रूरता चली जाये, अस्पृश्यता निकल जाये, व्यभिचार हट जाये और पाप नष्ट हो जाये। यह इच्छा मुझमें बनी हुई है और मैं उसीको प्रदर्शित करता चला जाता हूँ। मैं जब विचार-मात्रसे ऐसा कर सकूँगा तब हिमालयकी गोदमें जा बैठूँगा। पर आज तो मेरा जीवन प्रवृत्ति-मय है; और इतनी प्रवृत्ति होते हुए भी मुझे जरा अशान्ति नहीं और मैं शान्तिसे सोऊँगा। आप चाहे वैष्णव हों और चाहे शैव हों, आप चाहे कैसे ही हिन्दू हों, किन्तु आपका धर्म तराजूपर तौला जा रहा है। आपको पता नहीं कि संसारके कोने-कोनेमें पारसी, ईसाई और मुसलमान जानना चाहते हैं कि कौन-सा धर्म सच्चा है, किस धर्ममें अधिक दया है, प्रेम है और किसमें एक ईश्वरकी पूजा है। ऐसे समयमें यदि आपका यह विश्वास हो कि आप हिन्दू धर्मको गन्दले गड्ढेमें रखकर उसकी रक्षा करेंगे तो वह व्यर्थ है। आपके ये तिलक-कण्ठी और ये मन्दिर सब तबतक मिथ्या हैं, जबतक आपका हृदय प्रेमसे — मानव-मात्रके प्रति प्रेमसे — सिक्त न हो। इसीसे बहनोंने अन्त्यजोंको यहाँ बुलानेके खिलाफ हाथ ऊँचे नहीं उठाये। इससे प्रकट होता है कि उनमें अभी सत बाकी है। मैंने हिन्दुस्तानमें हर जगह देखा है कि सीधे रास्ते चलने-वाली हमारी बहनें ही हैं। पर आप क्यों नहीं समझते? आपके ध्यान में यह क्यों नहीं आता कि छः करोड़ लोग अन्त्यज नहीं हो सकते? मालवीयजी और करवीरपीठके शंकरा-

१. जैनियोंका एक मन्त्र।

चार्य भी कहते हैं कि छः करोड़ लोगोंका अन्त्यज होना असम्भव है।[1] ये सज्जन मानते हैं कि मैं अज्ञानकी बातें कर रहा हूँ, किन्तु मैं मानता हूँ कि वे अज्ञानकी बातें कर रहे हैं। अब इसका फैसला कौन करे? इसका फैसला हमारी मृत्युके बाद ही हो सकता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं अपूर्ण मनुष्य हूँ। मैं सत्यकी जो व्याख्या करता हूँ उसपर स्वयं नहीं चल पाया हूँ, अन्यथा क्या मुझे इतनी बहस करनी पड़ती। यदि मुझमें पूर्ण अहिंसा व्याप्त हो तो इन भाईमें वैरभाव हो सकता है और इन्हें क्रोध आ सकता है?[2] भाई, मैं तो कहना चाहता था कि मेरी अहिंसा अधूरी है, क्योंकि आपको क्रोध आ गया है। पर यदि आपकी बात सच हो कि आपको क्रोध नहीं आया तो इससे यह सिद्ध होता है कि मुझमें थोड़ी-बहुत अहिंसा है और मैं मानता हूँ कि मुझमें थोड़ी अहिंसा जरूर है। मैं जो बातें कह रहा हूँ वे प्रेमकी बूंदें हैं, शत-प्रतिशत खरी हैं।[3] यहाँ कोई भी मर्यादा छोड़कर न बोले। मेरे हकमें राय देनेवालोंका दुहरा कर्त्तव्य है कि वे इस भाईकी बातोंको बरदाश्त करें। मैंने जो इतनी बातें कही हैं वे अपने पक्षमें मत देनेवालोंको शान्त करने तथा विरोधियोंको समझानेके लिए कही हैं। परन्तु यह काम क्या कहीं एक दिनमें हो सकता है? मैं तो इतना ही कहूँगा, जबतक हम अपने हृदयको शीशेकी तरह साफ न करें हमें तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-४-१९२५

२६५. टिप्पणियाँ

प्रान्तीय मन्त्रियोंसे

मुझे आशा है कि प्रान्तीय मन्त्री सदस्यतामें प्राप्त सूतके विवरणपत्र और जिनमें कताई सदस्यताके अमलपर प्रकाश डाला गया है, ऐसे अन्य विवरण भी कांग्रेसके महामन्त्रिके तथा 'यंग इंडिया' के कार्यालयको प्रति सप्ताह भेजते रहेंगे। कांग्रेस संगठनोंके लिए नये मताधिकारके उद्देश्यको सफल करना बहुत ही आसान है। किन्तु उनसे आशा की जाती है कि वे उसे अमलमें लाने और सफल बनानेका हार्दिक प्रयत्न करेंगे। इस कार्यका एक-मात्र या मुख्य उद्देश्य यह नहीं है कि केवल सदस्योंके नाम सूचीमें चढ़ा लिये जायें। सदस्योंकी संख्याको यथावत् बनाये रखनेके लिए निरन्तर ध्यान देने और संगठनको लगातार अधिक अच्छा बनानेकी आवश्यकता है। जो लोग अबतक कांग्रेसके दानपात्रोंमें कुछ आने या रुपये डालकर अपना मन समझाते आये हैं कि राष्ट्रके प्रति उनके कर्त्तव्यकी इतिश्री हो गई; उनके लिए दिन-प्रतिदिन राष्ट्रके बारेमें ही सोचना और उसके लिए श्रम करना, चाहे वह प्रतिदिन आधे घंटेका ही क्यों न हो,

१. यहाँ गांधीजीको सभामें बैठे एक मनुष्यने टोका।
२. उक्त व्यक्तिने यहाँ कहा, 'मुझे तो क्रोध नहीं आया है, मैं तो शान्तिसे ही बोल रहा हूँ'।
३. यहाँ आलोचकने गांधीजीको फिर टोका।

आसान काम नहीं है। इस प्रकारके दस हजार कातनेवाले हमारे राष्ट्रीय जीवनमें क्रांति उत्पन्न करेंगे, और भारतके लाखों-करोड़ों कंगालोंके ज्योतिहीन नेत्रोंमें ज्योति जगायेंगे। ये दस हजार कतैये अवश्य ही स्वेच्छया — शब्दके पूरे अर्थमें — कताई करनेवाले होने चाहिए। वे ऐसे क्षुधापीड़ित कतैये न हों जो आजीविकाके लिए सूत कातें। स्वार्थवश कातनेवाले भी शायद राष्ट्रके लिए अपना आधे घंटेका समय, बिना कुछ लिए दें। यदि वे बिना किसी अनुचित दबावके सूत कातें तो आवश्यकता मुझे उनकी भी है। किन्तु केवल खद्दरके वास्तविक वातावरणसे ही, ऐसे वातावरणसे जिसमें वाणी नहीं बल्कि कर्म हों, असहायावस्था नहीं बल्कि स्वावलम्बन हो, उक्त प्रकारके दस हजार कातनेवाले उत्पन्न होंगे और वे मध्यमवर्गके उन स्त्री-पुरुषोंमें से आयेंगे जो आज कांग्रेस संस्थामें हैं और उसे चलाते हैं।

काठियावाड़में खद्दर

काठियावाड़में राजकीय परिषद्की कार्यकारिणीने खद्दरके प्रचारके बारेमें एक महत्त्वपूर्ण निर्णय किया है। उसने निश्चय किया है कि काठियावाड़के विभिन्न जिलोंसे रुई एकत्र की जाये और उसे कातनेवालोंको बाँटकर उनसे उसका सूत तैयार कराया जाये। उसे लोगोंसे ३०० मनसे अधिक रुई देनेके वचन प्राप्त हो चुके हैं। अब उसने इस कार्यके लिए ८०० मन रुई या उसके मूल्यके रूपमें १९,२०० रु० एकत्र करनेका निश्चय किया है। काठियावाड़ एक गरीब प्रायद्वीप है और उसमें बहुत कम वर्षा होती है। कुछ स्थानोंमें तो सदा दुर्भिक्षकी अवस्था रहती है। हजारों स्त्रियाँ अपनी स्वल्प आयमें वृद्धि करनेके लिए चरखा चलानेकी इच्छुक हैं। वहाँ हजारों अछूत बुनकर भी हैं जिन्हें अपना खानदानी काम न मिलनेसे मजबूर होकर बम्बई या अन्य स्थानोंमें जाना पड़ता है और वहाँ अपनी गुजर-बसरके लिए भंगीका काम करना पड़ता है। इस समय खद्दर उतना सस्ता नहीं है, जितना हो सकता है। इसलिए यह निश्चय किया गया है कि ऐसे परिवार ढूंढ़े जायें जो सस्ती पूनियाँ और सूतको कम दाममें बुनवा लेनेकी सुविधा मिलनेपर अपने कपड़ोंके लिए खुद सूत कातना चाहें। इसलिए परिषद्ने इन परिवारोंको प्रोत्साहन देनेके लिए ६ आने प्रति पौण्ड रुई देनेकी जिम्मेदारी ली है। वह एक वर्षमें एक परिवारको १० पौंडसे अधिक रुई नहीं देगी और प्रत्येक परिवारको आधी बुनाई भी देगी। उपभोक्ताको खद्दरकी कीमत एक तिहाईसे कुछ ज्यादा अर्थात् काठियावाड़में सामान्यत: प्रचलित दर नौ आनेके बजाय सवा तीन आने प्रति गजके हिसाबसे चुकानी पड़ेगी। इस प्रकार उन्हें कताई करने और खद्दर पहननेके लिए प्रोत्साहित करनेके लिए ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता मिल जायेगी। इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि १९,००० रु० की रुईसे २,७५० परिवारोंको जिनमें से प्रत्येकमें पति, पत्नी तथा एक बच्चा शामिल हैं, कपड़ा उपलब्ध करनेकी योजना है। कपासकी लुढ़ाईसे लेकर कपड़ा बुने जानेकी अवस्थातक लोगोंको इस तरह मजदूरी मिलेगी;

ओटाई	८०० मन	१,००० रु०
धुनाई	८०० मन	४,००० रु०

कताई	७०० मन	७,००० रु०
बुनाई	६७५ मन	६,७५० रु०
	कुल योग	१८,७५० रु०

धुनाईकी प्रक्रियामें माल ८०० मनसे घटकर ७०० मन रह जायेगा और कताईमें और भी कम होकर ६७५ मन रह जायगा। उससे ३० इंच अर्जका ६७,५०० गज खद्दर तैयार होगा। सूतका अंक औसतन ८ होगा। यह एक ऐसा प्रयोग है जिसके महत्त्वपूर्ण आर्थिक परिणाम निकल सकते हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि कपास हाथसे लोढ़ी जायेगी। मुझे आशा है कि मैं समय-समयपर प्रयोगोंके परिणामोंका संक्षिप्त विवरण देता रहूँगा। मुझे यहाँपर इस बातका उल्लेख कर देना चाहिए कि हमारे लिए इस प्रकारके प्रयोगको पूरा करना इस कारण सम्भव हुआ है कि काठियावाड़में खद्दर के तीन सुव्यवस्थित केन्द्र हैं और उनमें प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता मिल जाते हैं। रुपया अभी इकट्ठा किया जाना है और वह भी २ मासकी अवधिमें। मुझे आशा है कि प्रत्येक काठियावाड़ी अपना श्रम या पैसा देकर इस कार्यमें सहायता देगा।

उपनिषदोंसे

बड़ो दादा[1] राष्ट्रीय मामलोंसे सम्बन्धित घटनाओंपर बहुत ध्यान देते हैं। उन्होंने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है:

> आपने अपने एक अत्यंत सुन्दर लेखमें ऐसे पाशविक अत्याचारोंको पापपूर्ण बताया है जिनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे हमारे धर्मशास्त्रों द्वारा अनुमोदित हैं। मैं आपके कथनके समर्थनमें सहर्ष तैत्तिरीय उपनिषद्‌का एक प्रमाण उद्धृत करता हूँ। उसमें गुरु अपने शिष्यसे कहता है:
>
> यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।
>
> यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।
>
> जो अनिन्दनीय कार्य हैं, तू उनको ही कर, दूसरोंको नहीं। हम जो भी अच्छे कार्य करते हैं, तू उन्हींका अनुसरण कर, अन्योंका नहीं।

खादी कार्यकर्त्ताओंकी कठिनाइयाँ

श्री आदिनारायण चेट्टियारको तमिलनाडमें कांग्रेसके सदस्योंको संगठित करनेका कार्य सौंपा गया है। उन्होंने मेरे पास बहुतसे प्रश्न भेजे हैं। वे चाहते हैं कि मैं उनका उत्तर दूँ। उनका पहला प्रश्न यह है:

> आप इसके बाद ग श्रेणीके सदस्योंकी भरतीको अनुत्साहित करना चाहते हैं, या आपकी सलाह यह है कि वह सर्वथा बन्द कर दी जाये?

मुझे ग श्रेणीके सदस्योंकी अर्थात् उन लोगोंकी भरतीको जो सूत खरीदते हैं निरुत्साहित करनेका कोई अधिकार नहीं। संविधानके अन्तर्गत उन लोगोंकी भी भरती

[1] द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर।

होनेका वैसा ही अधिकार है जैसा क श्रेणीके सदस्योंको अर्थात् स्वयं कातनेवालोंको। किन्तु मैं इस प्रकारकी भरतीको प्रोत्साहन नहीं दूँगा। यदि मैं अनुयाचक होता तो मैं केवल क श्रेणीके सदस्योंको भरती करनेके लिए पूरा जोर लगाता; किन्तु यदि लोग दूसरी श्रेणियोंमें भरती होनेके लिए स्वयं कहते तो उन्हें सहर्ष भरती करता।

दूसरा प्रश्न यह है:

> तिरुपुर, पुदुपालयम्, तेन्तिरुपिरेय, अधिराम पटनम्, कल्ल कुरुच्चि आदि स्थानोंमें बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपनी आजीविकाके लिए सूत कातती हैं। क्या आपके विचारसे वे कांग्रेसकी एक वर्गकी सदस्या बना ली जानी चाहिए? हाँ, इससे पहले उन्हें यह बता दिया जाये कि कांग्रेसकी सदस्या बन जानेके फलस्वरूप वे आधा घंटा अतिरिक्त कताई करके अपना श्रम केवल राष्ट्रके भिक्षा पात्रमें डालेंगी। केवल श्रमकी बात मैं इसलिए कहता हूँ कि कांग्रेस कमेटी उन्हें २,००० गज सूत कातने-भरकी मुफ्त रुई दिया करे, ऐसा मेरा प्रस्ताव है।

यदि ये बहनें यह समझ लें कि कांग्रेस क्या है और खद्दर पहनें तो मैं चाहता हूँ कि वे अवश्य सदस्य बना ली जायें।

तीसरा प्रश्न यह है:

> बेलगाँवके प्रस्तावके अनुसार हाथ-कताईको तथा हाथ-कताई करनेवालोंको कांग्रेसके सदस्य बननेको प्रोत्साहित करनेके लिए वैतनिक प्रचारकोंकी नियुक्तिके बारेमें आपकी सलाह क्या है?

जहाँ पैसा हो वहाँ वैतनिक कार्यकर्त्ताओंकी नियुक्ति अवश्य की जा सकती है। इसके लिए पैसा, रुई माँग-माँगकर एकत्र करना चाहिए।

चौथा प्रश्न यह है:

> कुछ लोग कताई शुरू करनेसे पहले यह शर्त रखते हैं कि चरखे और यहाँतक कि रुई भी बतौर कर्जके दी जाये। कर्ज तो मेरे अनुभवके अनुसार उचित हिसाब-किताबके तथा संग्रह करनेवाले अधिकरणके अभावमें उपहारका रूप ले लेता है — मुझे कहना होगा कि इनमें कुछ लोग वास्तवमें गरीब हैं। क्या आप उनकी इस प्रार्थनाको माननेकी सलाह देते हैं? यदि देते हैं तो किन शर्तोंपर?

चरखा आदि चीजें जब कभी आवश्यकता पड़े दे देनी चाहिए और उन सबकी वापसीके लिए उपयुक्त जमानत ले लेनी चाहिए। चरखा तो किस्तोंपर भी बेचा जा सकता है।

हासिल करना

एक मित्र लिखते हैं:

> आपने सदैव यह उपदेश दिया है कि स्वराज्य प्रयाससे लिया जाना चाहिए, दानके रूपमें नहीं। यह सोचकर कि आपको इसमें दिलचस्पी होगी, मैं

डैनियलकी 'लाइफ़ ऑफ वूड्रो विल्सन' पुस्तकसे इसी आशयका निम्न अनुच्छेद भेज रहा हूँ।

"उसका (विल्सनका) विचार यह है कि जनतन्त्री सरकार स्थापित करनेके लिए साधन अन्दरसे प्राप्त होता है, बाहरसे नहीं, वह नैतिक शक्तिसे मिलता है, शारीरिक बलसे नहीं।"

उसने कहा है, "मैंने जब भी संसारका इतिहास पढ़ा है यही देखा है, कि संसारमें बड़ीसे-बड़ी शक्तियाँ और स्थायी रहनेवाली शक्तियाँ नैतिक शक्तियाँ ही होती हैं।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-४-१९२५

२६६. गोरक्षा

आपको याद होगा कि स्थायी तौरपर अखिल भारतीय गोरक्षा संगठनकी संस्थापनाके लिए एक संविधान तैयार करनेके उद्देश्यसे बेलगाँवके गोरक्षा सम्मेलनमें एक समिति नियुक्त की गई थी। प्रस्तावके परिणामस्वरूप समितिकी बैठक जनवरीमें दिल्लीमें हुई और उसमें संविधानका मसविदा हिन्दीमें तैयार किया गया।[1] वह यथा समय साधारण सभाकी बैठकमें पेश किया जायेगा। उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-४-१९२५

२६७. एक क्रान्तिकारीके प्रश्न

मैंने किसी पिछले अंकमें एक क्रान्तिकारी सज्जनके प्रश्नोंका[3] उत्तर देनेकी कोशिश की थी। उन्होंने मेरे उत्तरोंसे उत्पन्न कुछ प्रश्न फिर उठाये हैं और मुझे उनका उत्तर देनेका आह्वान किया है। मैं उनका आह्वान खुशीसे मंजूर करता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि वे भी मेरी तरह प्रकाशकी खोजमें हैं। उनके तर्क उचित होते हैं और उनमें अधिक आवेश नहीं होता। जबतक वे शान्तचित्तसे अपना पक्ष प्रस्तुत करते रहेंगे तबतक मैं यह चर्चा जारी रखूँगा। उनका पहला सवाल यह है:

क्या आप वाकई यह मानते हैं कि भारतके क्रान्तिकारी स्वराज्यवादियों, नरमदलियों तथा राष्ट्रवादियोंकी अपेक्षा कम स्वार्थत्यागी, कम उदात्त या कम

१. मूल हिन्दी पाठ उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए "अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डलके संविधानका मसविदा", २४-१-१९२५।
३. देखिए "एक क्रान्तिकारीका बचाव", १२-२-१९२५।

देश-प्रेमी हैं? क्या आप कुछ ऐसे स्वराज्यवादी, नरमदली या राष्ट्रवादी लोगोंके नाम जनताके सामने रखेंगे जो अपनी मातृभूमिके लिए शहीद हुए हों? यह ऐतिहासिक तथ्य है कि क्रान्तिकारियोंने भारतकी सेवाका दम भरनेवाले किसी भी अन्य दलसे अधिक त्याग किया है। क्या आप इस तथ्यसे इनकार करनेका साहस या दुराग्रह कर सकते हैं? आप अन्य दलोंके साथ तो समझौता करनेके लिए हमेशा तैयार रहते हैं, पर हमारे दलके लोगोंसे घृणा करते हैं और उनके भावोंको 'जहर' बताते हैं। ईश्वर और मनुष्यकी निगाहमें जो हमसे निश्चय ही हीन हैं ऐसे किसी अन्य दलके लोगोंकी भावनाओंके लिए वैसे ही असहिष्णुता-भरे शब्दोंका प्रयोग करते हुए क्या आपकी छाती नहीं धड़केगी? आप उन्हें 'भ्रान्त देशभक्त' और 'जहरीले सांप' कहनेमें संकोच क्यों करते हैं?

मैं भारतके क्रान्तिकारियोंको अन्य लोगोंकी अपेक्षा कम स्वार्थत्यागी, कम उदात्त या कम देश-प्रेमी नहीं मानता। परन्तु मैं आदरपूर्वक कहता हूँ कि उनका वह त्याग, उनकी यह उदात्तता और उनका यह देश-प्रेम व्यर्थ प्रयास ही नहीं है, बल्कि अज्ञान-मूलक और भ्रान्त भी है, अतः उनसे देशकी दूसरी तमाम हलचलोंकी अपेक्षा अधिक हानि पहुँचती है और पहुँची भी है; क्रान्तिकारियोकी कार्रवाइयोंसे देशकी प्रगति रुकी हुई है। वे अपने दुश्मनोंकी जानकी बिलकुल परवाह नहीं करते। इससे ऐसे दमनका सूत्रपात हुआ है कि जिसके फलस्वरूप लड़नेके उनके तरीकेमें शरीक न होनेवाले लोग पहलेसे अधिक भीरू हो गये हैं। दमन केवल उन्हीं लोगोंको फायदा पहुँचाता है जो उसके लिए तैयार रहते हैं। परन्तु क्रान्तिकारियोंकी कार्रवाइयोंके फलस्वरूप जो दमन होता है, लोग उसके लिए तैयार नहीं हैं; और वे उस सरकारके हाथ अनजाने ही मजबूत करते हैं, जिसे क्रान्तिकारी उखाड़ फेंकना चाहते हैं। मेरा यह पक्का विश्वास है कि यदि चौरी-चौराका हत्याकाण्ड न हुआ होता तो बारडोलीमें जो प्रयोग किया जा रहा था, उससे अन्तमें स्वराज्य मिल जाता। यह मेरा अपना मत है और इसीके कारण यदि मैं क्रान्तिकारियोंको भ्रान्त और भयानक देशभक्त कहता हूँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? कल्पना करें कि कुछ वैद्य मेरा इलाज कर रहे हैं और मुझे उनके इलाजके तरीकेसे निस्सन्देह नुकसान होनेके बाद भी मुझमें इतना प्रबल संकल्प-बल और सामर्थ्य नहीं कि मैं उनका इलाज बन्द कर दूं। अब मेरा लड़का जो मेरी शुश्रूषा करता है, अपने अज्ञान और मेरे प्रति अन्धप्रेमके कारण उन चिकित्सकोंसे लड़ जाता है और अपनी जानसे हाथ धो बैठता है, अवश्य ही मैं अपने ऐसे बेटेको अपना गुमराह और खतरनाक तीमारदार कहूँगा। उसके उस व्यवहारका परिणाम यह होगा कि मैं अपने उस लड़केसे हाथ धो बैठूंगा और वैद्योंकी नाराजी मोल लूंगा सो अलग; इतना ही नहीं, सम्भव है वैद्य अपने बेटेके उक्त कार्यमें मेरा हाथ होनेका सन्देह करें और अपनी हानिकर चिकित्साको जारी रखनके साथ-साथ मुझे दण्डित करनेकी बात भी सोचें। यदि मेरा बेटा उन वैद्योंको उनकी गलतीका यकीन करा सकता या मुझे समझा सकता कि उनसे इलाज कराना मेरी कमजोरी है तो उसके

इन प्रयत्नोंसे सम्भव था कि या तो वैद्य अपने तरीकेमें सुधार कर लेते, या मैं उनका इलाज बन्द कर देता या कमसे-कम उनके रोषसे तो बच ही जाता। मैं दूसरे दलोंके लोगोंसे अवश्य ही कुछ समझौते करता हूँ; क्योंकि यद्यपि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ तथापि मैं उनकी कार्रवाइयोंको क्रान्तिकारियोंकी कार्रवाइयोंकी तरह निश्चयात्मक रूपसे हानिकर नहीं समझता। मैंने क्रान्तिकारियोंको 'जहरीले साँप' कभी नहीं कहा है। परन्तु जिस तरह मैं पूर्वोक्त उदाहरणमें बताये गये अपने गुमराह बेटेके बलिदानकी प्रशंसा नहीं करता उसी तरह क्रान्तिकारियोंके बलिदानोंकी, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों, प्रशंसा करते हुए कदापि आत्म-विस्मृत नहीं होऊँगा। मुझे इस बातका निश्चय है कि जो लोग बिना अच्छी तरह विचारे या मिथ्या भावुकतासे चोरी-छुपे या खुलेआम क्रान्तिकारियोंकी या उनके बलिदानोंकी प्रशंसा करते हैं वे उनकी और उनके प्रिय कार्यकी हानि ही करते हैं। पत्रलेखकने मुझसे ऐसे देशभक्तोंके नाम पूछे हैं जो क्रान्तिकारी नही थे, किन्तु जिन्होंने अपने देशके लिए प्राण दिये। यह टिप्पणी लिखते समय मुझे दो पूर्ण उदाहरण याद आये हैं। गोखले और तिलकने देशके लिए अपने प्राण दिये। वे देशकी सेवा करते हुए अपने स्वास्थ्यके प्रति प्रायः पूर्णतः उदासीन रहे; इस कारण वे समयसे बहुत पहले चल बसे। फाँसी चढ़नेमें कोई विशेष आकर्षण नहीं है। ऐसी मौत अस्वास्थ्यकर जगहोंमें कड़ी मेहनत मशक्कत करनेवाले आदमीकी जिन्दगीसे आसान होती हैं। मुझे पूरा निश्चय है कि स्वराज्यदलमें और अन्य दलोंमें ऐसे लोग हैं जिन्हें, यदि विश्वास हो जाये कि उनके प्राण देनेसे देशका उद्धार हो जायेगा तो वे उसी क्षण अपने प्राण दे देंगे। मैं अपने इस क्रान्तिकारी भाईसे कहता हूँ कि फाँसी चढ़नेसे देशकी सेवा तभी होती है जब फाँसी चढ़नेवाला 'निर्दोष और निष्कलंक' हो।

> **क्या आप सचमुच यह विश्वास करते हैं कि "भारतका रास्ता यूरोपका रास्ता नहीं है?" क्या इससे आपका अभिप्राय यह है कि यूरोपसे सम्पर्क होनेसे पूर्व भारतमें रण-भावना और सैन्य-संगठनका अस्तित्व नहीं था? किसी अच्छे उद्देश्यके निमित्त युद्ध करना क्या भारतकी भावनाके विरुद्ध है? "विनाशाय च दुष्कृताम्", क्या यूरोपसे आया वचन है? उसे यूरोपसे आया मान भी लें तो क्या आप हठधर्मीके कारण यूरोपकी अच्छी चीज भी न लेंगे? क्या आप यह मानते हैं कि यूरोपमें कोई भी बात अच्छी नहीं हो सकती? यदि उचित कार्य-की सिद्धिके लिए षड्यन्त्र, रक्तपात और आत्मबलिदान भारतके लिए बुरे हैं तो क्या वे यूरोपके लिए भी बुरे नहीं हैं?**

मैं यह नहीं कहता कि यूरोपसे सम्पर्कमें आनेसे पहले भारतमें सेनाएँ और युद्ध-कला आदि न थीं। पर मैं यह जरूर कहता हूँ कि वह भारतीय जीवनका साधारण क्रम कभी नहीं रहा। यूरोपके लोग युद्धकी भावनासे ओत-प्रोत रहें; किन्तु भारतका जन-साधारण उससे सर्वथा अछूता रहा। मैं पहले कह चुका हूँ कि 'गीता'का, जिससे लेखकने यह श्लोकांश उद्धृत किया है, मैं प्रचलित अर्थसे बिलकुल भिन्न अर्थ करता हूँ।

मैं नहीं मानता कि उसमें स्थूल युद्धका वर्णन या उसकी प्रेरणा है। कुछ भी हो, इस श्लोकके अनुसार तो सर्वज्ञ ईश्वर ही दुष्टोंके विनाशके लिए पृथ्वीपर अवतार लेता है। मैं हर क्रान्तिकारीको सर्वज्ञ ईश्वर या अवतार नहीं मान सकता। इसके लिए मुझे क्षमा किया जाये। मै यूरोपकी हर चीजको बुरा नहीं कहता। हाँ, मैं यह जरूर कहता हूँ कि अच्छे कामोंके लिए गुप्त हत्याओं और अनुचित विधियोंका सहारा लेना सर्वत्र और सर्वदा निन्दनीय है।

> **क्या मैं आपके श्री चरणोंमें यह निवेदन करूँ कि क्रान्तिकारी लोग भारतका कमसे-कम इतना भूगोल तो जानते ही हैं कि "भारत कलकत्ता और बम्बई नहीं है।" परन्तु हम इसी तरह यह भी मानते हैं कि मुट्ठीभर सूत कातनेवालोंसे मिलकर ही भारत राष्ट्र नहीं बन जाता है। हम देहातमें प्रवेश कर रहे हैं और सर्वत्र सफल हो रहे हैं। क्या आप यह नहीं समझ पाते कि शिवाजी, प्रताप और रणजीतसिंहके सपूत हमारी भावनाओंको किसी अन्य बालकी अपेक्षा अधिक तत्परता और गहराईसे समझ सकते हैं? क्या आपका खयाल यह नहीं है कि किसी भी राष्ट्रके लिए — विशेषतः भारतके लिए — एक राक्षसी और घृणित व्यवस्थाका सशस्त्र और षड्यन्त्रमूलक प्रतिरोध, उद्योगहीन और दार्शनिक भीरुताके प्रसारसे अधिक अच्छा है? मेरा आशय उस भीरुतासे है जो भारत-भरमें फैल रही है और जिसका कारण आपका अहिंसाके सिद्धान्तका प्रचार या उसकी गलत व्याख्या और उसका गलत प्रयोग कहें तो ज्यादा ठीक है। अहिंसा कमजोर और लाचार आदमीका नहीं, ताकतवर आदमीका सिद्धान्त है। हम देशमें ऐसे लोग पैदा करना चाहते हैं जो किसी भी समय और किसी भी रूपमें मृत्यु आये तो उससे न डरें — जो नेक काम करें और मरें। हम गाँवोंमें इसी भावनाको लेकर प्रवेश कर रहे हैं। हम परिषदों और जिला बोर्डोंके लिए मत माँगने नहीं, बल्कि देशकी खातिर ऐसे बलिदानी साथी खोजने जा रहे हैं जो अज्ञात रहकर अपने प्राण दे सकें। क्या आप मैज़िनीकी तरह यह मानते हैं कि शहीदोंके खूनसे विचार जल्दी परिपक्व होते हैं?**

कलकत्ता और रेलवे स्टेशनोंसे दूरस्थ गाँवोंका भौगोलिक अन्तर जानना ही काफी नहीं है। यदि क्रान्तिकारी इन दोनोंके बीच रहनेवाला आधारभूत अन्तर जानते होते तो वे मेरी तरह सूत कातनेवाले बन जाते। मैं स्वीकार करता हूँ कि थोड़ेसे सूत कातनेवालोंसे जो हमारे पास हैं, भारत राष्ट्र नहीं बनता, परन्तु मेरा दावा यह है कि पहलेकी तरह सारे हिन्दुस्तानसे फिर सूत कतवाना सम्भव है और जहाँतक सहानुभूतिका सम्बन्ध है, अब भी इस प्रवृत्तिके साथ लाखोंकी सहानुभूति है; और वे क्रान्तिकारियोंका साथ कभी न देंगे। मुझे क्रान्तिकारियोके इस दावेपर शक है कि वे देहातोंमें सफल हो रहे हैं, परन्तु यदि वाकई यह बात सच हो तो वह दुःखका विषय है। मैं उनके उद्योगको विफल करनेमें कुछ उठा नहीं रखूंगा। किसी शैतानी व्यवस्थाके मुकाबलेमें सशस्त्र षड्यन्त्र रचना मानो शैतानके मुकाबले शैतान खड़ा करना है।

पर चूंकि एक ही शैतान मेरे लिए बहुतसे शैतानोंके बराबर है, इसलिए मैं उसकी संख्या न बढ़ने दूंगा। मेरी प्रवृत्ति उद्योगहीन है या वह उद्योगमय है, यह तो आगे चलकर मालूम होगा। यदि तबतक उसके फलस्वरूप एक गजकी जगह दो गज सूत कते तो उससे उतना हित तो होगा ही। भीरुता चाहे दार्शनिक हो, चाहे किसी दूसरी तरहकी, मैं उससे घृणा करता हूँ। यदि मुझे यह विश्वास हो जाये कि क्रान्तिकारियोंकी कार्रवाइयोंसे भीरुता दूर हो गई है तो इससे गुप्त साधनोंके प्रति मेरी घृणा बहुत-कुछ कम हो जायेगी, चाहे सिद्धान्तकी दृष्टिसे मैं उनका कितना ही विरोधी फिर भी क्यों न बना रहूँ। लेकिन यह बात तो कोई सरसरी नजरसे देखनेवाला भी जान सकता है कि अहिंसात्मक आन्दोलनके कारण देहाती लोगोंमें ऐसा साहस आ गया है जो कुछ साल पहले उनमें नहीं था। निस्सन्देह मैं मानता हूँ कि अहिंसा मुख्यतः सबलका शस्त्र है। मैं यह भी मानता हूँ कि अकसर लोग भूलसे भीरुताको भी अहिंसा मान लेते हैं।

मेरे ये भाई जब यह कहते हैं कि क्रान्तिकारी वह है जो नेक काम करता है और प्राण गँवाता है, तब वे उसी बातको सिद्ध हुई मान लेते हैं जो उन्हें सिद्ध करनी है। मेरी आपत्ति तो इसी बातपर है। मेरी रायमें तो क्रान्तिकारी अहित करता है और मर जाता है। मैं किसीकी जान लेने, हत्या करने या किसीको आतंकित करनेको किसी भी हालतमें अच्छा नहीं मानता। हाँ, मैं यह बात मानता हूँ कि शहीदोंके खूनसे विचार बहुत जल्दी प्रौढ़ होते हैं। परन्तु जो शख्स सेवा करते हुए जंगली इलाकेमें बुखारसे तिलतिल करके मरता है उसका भी खून निश्चयपूर्वक उसी तरह बहता है जिस तरह फाँसी चढ़नेवालेका। और यदि फाँसी चढ़नेवाला दूसरेका प्राण लेनेका दोषी हो तो उसमें वे प्रौढ़ होने योग्य विचार ही नहीं होते।

> क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध आपकी एक आपत्ति यह है कि उनका आन्दोलन आन्दोलन नहीं है, इसलिए उनकी लाई हुई क्रान्तिसे लोगोंको बहुत कम लाभ पहुँचेगा। इसका अप्रत्यक्ष अर्थ यह है कि उससे सबसे ज्यादा लाभ हम क्रान्तिकारियोंको होगा। क्या आप सचमुच यही कहना चाहते हैं? क्या आप समझते हैं कि भारतके क्रान्तिकारी ये लोग, जो अपने देशके लिए मरनेके लिए सदा तैयार रहते हैं और उसके प्रेममें पागल हो रहे हैं, और जो निष्काम कर्मकी भावनासे प्रेरित हैं, अपनी मातृभूमिको धोखा देंगे और अपने जीवनके लिए, क्षण-भंगुर जीवनके लिए, विशिष्ट स्वत्व प्राप्त करेंगे? सच है, हम जनसाधारणको उसके कमजोर होनेके कारण अभी कार्यक्षेत्रमें नहीं घसीटेंगे; किन्तु तैयारियाँ पूरी हो जानेपर तो हम उन्हें खुले मैदानमें लायेंगे ही। हम मानते हैं कि हम भारतीयोंकी वर्तमान मनोवृत्तिको भलीभाँति समझते हैं; क्योंकि हमें नित्य ही अपने साथ-साथ अपने इन भाइयोंको जाननेका भी अवसर मिलता है। हम जानते हैं कि भारतके लोग आखिर भारतीय हैं। वे स्वतः दुर्बल नहीं हैं; किन्तु उन्हें कार्य-कुशल नेता नहीं मिलते। अतः सतत प्रचार

और उपदेश करनेसे हमारे पास जब पर्याप्त संख्यामें नेता और अस्त्र-शस्त्र जुट जायेंगे तब हम उन्हें मैदानमें बुलायेंगे ही नहीं, बल्कि जरूरत होगी तो घसीट-कर लायेंगे और यह सिद्ध कर देंगे कि वे शिवाजी, रणजीत, प्रताप और गोविन्दसिंहके वंशज हैं। फिर हम कहते रहे हैं कि जनसाधारण क्रान्तिके लिए नहीं है, बल्कि क्रान्ति जनसाधारणके लिए है। क्या इतना इस सम्बन्धमें आपके पूर्वग्रहको दूर करनेके लिए पर्याप्त नहीं है?

मै न तो यह कहता ही हूँ और न मेरा यह आशय ही है कि यदि जनसाधा-रणको लाभ न होगा तो क्रान्तिकारियोंको लाभ होगा। बल्कि इसके विपरीत सामान्यत: क्रान्तिकारियोंको लाभ — सामान्य अर्थमें लाभ — होता ही नहीं है। यदि क्रान्तिकारी जनताको न घसीटें, बल्कि अपनी ओर आकर्षित कर सकें, तो वे देखेंगे कि यह खूनी आन्दोलन बिलकुल अनावश्यक है। शिवाजी, रणजीतसिंह, प्रताप और गोविन्दसिंहके वंशजोंकी बात वैसे तो बहुत मीठी और उत्साहप्रद मालूम होती है। किन्तु क्या यह सच है? क्या हम सचमुच उसी अर्थमें इन वीर पुरुषोंके वंशज हैं जो इन भाईके मनमें है। हम तो उनके देशबन्धु ही हैं। उनके वंशज तो हैं क्षत्रिय लोग — सैनिक वर्ग। हम आगे चलकर चाहे भले ही जाति-व्यवस्थाको तोड़ दें, परन्तु आज तो वह मौजूद ही है और इसलिए इन भाईका यह दावा मेरी रायमें माना ही नही जा सकता।

अन्तमें मैं आपसे ये सवाल और पूछता हूँ: गुरु गोविन्दसिंह किसी अच्छे उद्देश्यके लिए युद्ध करना ठीक समझते थे, इसलिए वे क्या भ्रान्त देशभक्त थे? वाशिंग्टन, गैरीबाल्डी और लेनिनके बारेमें आप क्या कहेंगे? कमाल पाशा और डी' वेलेराके बारेमें आपका खयाल क्या है? क्या आप शिवाजी और प्रतापके सम्बन्धमें यह कहेंगे कि वे हिताकांक्षी और आत्मत्यागी वैद्य थे; किन्तु जब उन्हें अंगूरका रस देना था, तब उन्होंने उसकी जगह संखिया दे दिया था? कृष्ण 'दुष्कृतोंके विनाश' के कायल थे; क्या आप इस कारण यह कहेंगे कि उन्होंने यूरोपके लोगोंका विचार अपना लिया था?

यह एक कठिन बल्कि कुछ विषम प्रश्न है। पर मैं इसे टाल नहीं सकता। पहली बात तो यह है कि गुरु गोविन्दसिंह तथा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति गुप्त हत्याके कायल नहीं थे। दूसरे, वे अपने काम और अपने आदमियोंको खूब जानते थे; पक्षा-न्तरमें आधुनिक क्रान्तिकारी नहीं जानते कि उनका काम क्या है? इन देशभक्तोंके पास अपने आदमी थे और एक वातावरण था; किन्तु ये दोनों उनके पास नहीं हैं। यद्यपि मेरे ये विचार मेरी जीवन सम्बन्धी कल्पनासे उद्भूत हुए हैं, फिर भी मैंने वे इस आधारपर देशके सामने नहीं रखे हैं। मैं तो सिर्फ वक्तकी जरूरतका खयाल करके ही क्रान्तिकारियोंका विरोध कर रहा हूँ। इसलिए उनकी कार्रवाइयोंकी तुलना गुरु गोविन्दसिंह या वाशिंग्टन या गैरीबाल्डी या लेनिनसे करना बहुत भ्रामक और भयावह होगा। परन्तु मुझे अहिंसाके सिद्धान्तपर किये गये अपने प्रयोगसे तो यह

कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता कि यदि मैं उनके कालमें और उनके देशमें जन्म लेता तो बहुत सम्भव था कि मैं उन सबको विजयी और वीर योद्धा होनेपर भी भ्रान्त देशभक्त कहता। परन्तु मुझे उनका काजी नहीं बनना चाहिए। इतिहासमें वीरोंके कारनामोंके जैसे ब्यौरे दिये गये हैं, मैं उन्हें नहीं मानता। मैं तो इतिहासकी मोटी बातोंको ही मानता हूँ और उनसे स्वयं अपने मार्गदर्शनके लिए अपने तौरपर सबक निकाल लेता हूँ। यदि इतिहासकी ये मोटी बातें जीवनके उच्चतम नियमोंके विरुद्ध जाती हैं तो मैं उनपर आचरण करना नहीं चाहता। परन्तु हमें इतिहाससे जो अत्यल्प सामग्री उपलब्ध होती है, मुझे उसके आधार पर किसीके बारेमें निर्णय नहीं करना है। मरे हुएका तो गुण-कीर्तन ही ठीक है। मैं कमाल पाशा और डी'वेलेराके सम्बन्धमें भी निर्णय नहीं दे सकता। पर जहाँतक उनके युद्ध-सम्बन्धी विश्वासका सम्बन्ध है, वहाँतक वे मुझ-जैसे एक निष्ठावान अहिंसा-धर्मीके जीवनमें मार्गदर्शक नहीं हो सकते। कृष्णको मैं शायद इन लेखकसे भी ज्यादा मानता हूँ। पर मेरा कृष्ण जगनायक, अखिल विश्वका स्रष्टा, संरक्षक और संहारक है। वह संहार भी कर सकता है, क्योंकि वह उत्पत्ति करता है। पर मित्रोंके साथ यहाँ मैं अवश्य ही किसी दार्शनिक या धार्मिक विवादमें पड़ना नहीं चाहता। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि अपने जीवन-सम्बन्धी तत्त्वज्ञानकी शिक्षा दे सकूँ। मुझमें अपने अंगीकृत सिद्धान्तोंका पालन करनेकी योग्यता भी मुश्किलसे है। मैं तो एक अति साधारण प्रयत्नरत प्राणी हूँ और मन, वाणी और कर्मसे बिलकुल भला, सच्चा और अहिंसक बननेके लिए लालायित हूँ; किन्तु मैं जिस आदर्शको सत्य मानता हूँ उसतक पहुँचनेमें सदा विफल रहता हूँ। मैं मानता हूँ और अपने क्रान्तिकारी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यह चढ़ाई बहुत कष्टप्रद है; परन्तु यह कष्ट मेरे लिए निश्चित रूपसे सुखप्रद हो गया है। एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मेरी शक्ति बढ़ी है और मैं अब अगली सीढ़ीपर पैर रखने योग्य हूँ। पर यह तमाम कष्ट और आनन्द मेरे अपने लिए है। क्रान्तिकारी लोग चाहें तो मेरे इन सब विचारोंको खुशीसे न मानें। मैं तो उनके सम्मुख केवल एक ही उद्देश्यके लिए काम करनेवाले साथीके रूपमें अपने अनुभव उसी तरह प्रस्तुत करता हूँ, जैसे मैंने अली भाइयोंके और दूसरे कितने ही मित्रोंके सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। और मैं उसमें सफल हुआ हूँ। वे मुस्तफा कमाल पाशा और शायद डी'वेलेरा और लेनिनके कार्योंका अभिनन्दन कर सकते और करते हैं; परन्तु वे मेरी ही तरह यह भी मानते हैं कि भारतकी स्थिति टर्की, आयरलैंड या रूसकी जैसी नहीं है और उसमें, सदा नहीं तो कमसे-कम इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलनका अर्थ आत्मघात होगा; क्योंकि हमारा देश बहुत विशाल है, उसमें बहुत फूट है, लोग बेहद गरीबीमें डूबे हुए हैं और भयभीत हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-४-१९२५

२६८. सन्देश: 'देश' के नाम[1]

[१२ अप्रैल, १९२५ से पूर्व]

इस समय जो कार्य मैं कर रहा हूँ वह सत्याग्रहसे ज्यादा अच्छा है। हालांकि यह सच है; लेकिन लोगोंको इसका एहसास कराना मुश्किल है। सत्याग्रहका अर्थ आम सविनय अवज्ञासे है; लेकिन पहले हमें कानून-भंग करनेकी क्षमताको भी बढ़ाना चाहिए। इस समय मैं देशमें वही क्षमता बढ़ानेकी कोशिश कर रहा हूँ। सूत कातना और खद्दर पहनना इस प्रयासका अभिन्न अंग है। इन दोनोंके बिना सविनय अवज्ञाको आरम्भ करना हमारे लिए असम्भव है। देशके सब नेताओंसे मेरी प्रार्थना है कि वे दिनमें कमसे-कम आधा घंटा सूत कातें और खद्दर पहननेकी आदत डालें।

[अंग्रेजीसे]

आनन्द बाजार पत्रिका, १२-४-१९२५

२६९. काठियावाड़ियोंसे

इस बार काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की कार्य समितिकी बैठक अमरेलीमें हुई। उसमें छब्बीस सदस्य उपस्थित थे। बैठक दो बार हुई और कुल छः घंटे चली। उसमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए। ये इस प्रकार हैं:

१. जो व्यक्ति अथवा परिवार अपने हाथोंसे काते सूतका कपड़ा पहनना स्वीकार करे, उसे दस सेरतक पूनियाँ आधे दामपर दी जायें और वह जितना सूत काते उसे आधी बुनाईपर बुनवा कर देनेकी व्यवस्था की जाये। निम्नलिखित सदस्योंने नीचे बताई गई संख्यामें ऐसे खादीधारी तैयार करनेकी जिम्मेदारी ली है:

	खादीधारी
श्री शिवजी देवशीभाई	५००
श्री रामजीभाई हंसराज	१,०००
श्री छोटालाल त्रिभुवनदास	१००
श्री देवचन्द उत्तमचन्द पारेख	१,०००
श्री जगजीवनदास नारणजी मेहता	१००
श्री मणिलाल परमानन्ददास	५०

१. मूल सन्देश राष्ट्रवादी बंगला-साप्ताहिक 'देश' में प्रकाशित हुआ था, यहाँ इसका अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

गांधीजीको इस कामके लिए ८०० मन रुई अथवा उसकी कीमत १९,२०० रुपया इकट्ठा करके देनी चाहिए। इसमें जो रकम अबतक इकट्ठी की जा चुकी है वह अबतक खर्च किये हुए १,००० रुपये काट कर बाकी मुजरा दी जाये।

फिर, इस कामके लिए जिस भाईको महामन्त्रियोंसे जितनी रुई मिले उसका हिसाब वह उनकी इच्छाके अनुसार रखे और उनको भेजे।

मताधिकार-सम्बन्धी प्रस्ताव

२. परिषद्के सदस्य नीचे बताई गई संख्यामें अतिरिक्त सदस्य बनाना स्वीकार करते हैं:

श्री छोटालाल त्रिभुवनदास, २५१ सदस्य (प्रत्येक सदस्यके एवजमें ३ सेर रुई देंगे)
श्री शिवजीभाई देवशीभाई, १५१ सदस्य (रुई नहीं देंगे)
श्री रामजीभाई हंसराज, १०१ सदस्य (रुई नहीं देंगे)
श्री जगजीवनदास नारणजी, १५१ सदस्य (रुई नहीं देंगे)
श्री शिवानन्द, १०१ सदस्य (रुई एवजमें देंगे)

मताधिकारका काम करनेवाले भाइयोंको तैयार सूत बुनवाकर उसकी खादी लागत मूल्यपर बेचनेका अधिकार है। अगर वे उसे न बुनवा सकें तो मुख्य कार्यालयमें भेज दें।

अगर वढवान, मढडा और अमरेलीके खादी कार्यालय अपनी तैयार की हुई खादी खुद न बेच सकें तो परिषद् उसे लागत मूल्यपर (जिसमें व्यवस्था-खर्च १२½ प्रतिशतसे ज्यादा न होगा) खरीद ले।

इन प्रस्तावोंमें खादी और चरखेके प्रचारके तीन उपाय बताये गये हैं। इनमें पहला और सर्वश्रेष्ठ उपाय है खुद सूत कातकर और उसका कपड़ा बुनवाकर पहननेवाले परिवार तैयार करना; दूसरा है नियमित रूपसे रोज आधा घंटा कताई करनेवाले और बाजारसे खरीदकर खादी पहननेवाले सदस्य बनाना; और तीसरा है खुद कताई करके खादी पहननेवाले लोगोंके अलावा खादी पहननेवालोंके लिए खादी तैयार कराना।

इनमें से अन्तिम दोनों उपाय, यद्यपि वे महत्त्वपूर्ण हैं, फिर भी उनपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन पहले उपायपर विचार करना जरूरी है। यह खादी-प्रचारका सबसे अच्छा उपाय है। पर इसमें कुछ खर्च पड़ता है। "कुछ" इसलिए कह रहा हूँ कि उसका जो परिणाम प्रकट होगा उसके अनुपातमें यह रकम बहुत छोटी है। योजना यह है कि १९,२०० रुपये खर्च करके सूत कातने और खादी पहननेवाले २७५० परिवार तैयार किये जायें। इन २७५० परिवारोंमें से हर परिवारमें अनुमानतः पति-पत्नी और एक बच्चा होगा। इस प्रकार इनमें कुल ८२५० लोग होंगे। यह तो इसका प्रत्यक्ष लाभ है। दस सेर पूनियोंका जितना सूत तैयार होगा उससे इतना कपड़ा बन जायेगा कि उसे तीन प्राणियोंका एक परिवार सालभर पहन सकेगा। इस तरह एक वर्षतक खादी पहननेवालोंमें खादीके प्रति प्रेम उत्पन्न करनेकी खास जरूरत ही न रहेगी।

लेकिन इस पद्धतिका विशेष लाभ तो यह है कि इस तरह ये परिवार उद्यमी बन जायेंगे और इस तरह उद्यमी बने हुए परिवारोंको अकालका भय न रहेगा। इसीलिए देवचन्दभाई इस योजनाको अकालका बीमा कहते हैं और उनका ऐसा कहना ठीक भी है।

इस योजनामें १९,२०० रुपये खर्च होनेका अनुमान है। अर्थात् इससे कार्यकर्ताओंमें ८०० मन रुई बाँटी जायेगी; उससे वे खादी तैयार करायेंगे और उसे खपानेकी व्यवस्था भी करेंगे। व्यवस्थाका खर्च इस निश्चित रकममें से ही निकलेगा। यह प्रबन्ध केवल एक वर्षके लिए है। लुढ़ाई, धुनाई और कताई, इन सभी कामोंमें लोग इस योजनासे कमाई करेंगे। इसके परिणामस्वरूप तीस इंच अर्जकी ६७,५०० गज खादी तैयार होगी। उससे मजदूरोंको नीचे लिखे अनुसार मजदूरी मिलेगी:

	रु०
८०० मन रुईकी लुढ़ाईसे	१,०००
८०० मन रुईकी धुनाईसे	४,०००
७०० मन रुईकी कताईसे	७,०००
६७५ मन सूतकी बुनाईसे	६,७५०
कुल योग	१८,७५०

इसमें व्यवस्थाका खर्च शामिल नहीं है। व्यवस्थापर खर्च तो होगा ही; लेकिन वह इतना कम होगा कि उस १९,२०० रुपयेकी रकमसे निकल सकता है। इसकी कुंजी हमें कताईमें मिल जाती है। हमें खादीके उत्पादनमें कताईका खर्च भी तो शामिल करना ही होगा; लेकिन असलमें हमें कातनेवालोंको कुछ नहीं देना है। वे अपनी मजदूरी कपड़ेकी कीमतमें शामिल कर लेते हैं। व्यवस्थापकोंको यह रकम एक तरहसे बच ही जाती है और उसका मुआवजा वे खादी पहननेवाले कतैयोंको दे देते हैं। वह इस तरह कि यद्यपि उन्हें सेर-भर पूनियोंकी कीमत बारह आने पड़ती है, किन्तु वे उन कतैयोंको छः आने सेर ही बेचते हैं और यद्यपि वे बुनकरोंको प्रति मन दस रुपये बुनाई देते हैं, किन्तु खादी पहननेवाले कतैयोंसे प्रति मन पाँच रुपये ही लेते हैं। मतलब यह कि एक मन सूत कातनेवालेको दस रुपये और मनभर रुई मुफ्त ही मिल जाती है।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो जिस खादीकी कीमत आज बाजारमें ९½ आने गज है, वही खादी उसे, वह अपनी मजदूरी न गिने तो, ३ आने गज पड़ती है। अतः यह आशा की जा सकती है कि ऐसी सस्ती खादी पहननेवाले लोग तो बहुत बड़ी संख्यामें मिल जायेंगे।

लेकिन पैसा कहाँसे आयेगा? देवचन्दभाईने संकल्प किया है कि वे या तो एक हजार [कातनेवाले] परिवार तैयार करेंगे या पैसा अथवा रुई जुटायेंगे। मैं खुद तो काठियावाड़में रह नहीं सकूँगा। पैसा या तो देवचन्दभाईको इकट्ठा करना है या मुझे। मुझे भी तो अपना हिस्सा देना ही चाहिए; इसीलिए मैंने पैसा इकट्ठा करनेकी

जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। यह जिम्मेदारी मैंने काठियावाड़ियोंमें अपने विश्वासके कारण ही ली है। लगभग ३०० मन रुई देनेका वादा किया गया है। इस तरह १,००० रुपये मिल चुके हैं; बाकीकी रकम अभी इकट्ठी करनी है। किन्तु १,००० रुपये आये हैं तो उससे कुछ ज्यादा खर्च भी हो गये हैं; इसलिए उन्हें नहीं गिनना चाहिए। अतः मेरी माँग अब पूरे १९,२०० रुपयेकी है। यह रकम काठियावाड़ियोंको ही देनी है और पूरी रकम इन दो महीनेमें आ जानी चाहिए। ठीक फसलके महीने ये दो ही हैं। हमें ८०० मन रुईकी लुढ़ाई हाथसे करानी है। वढवानमें यह काम चल रहा है। हमें इस रुईकी कीमत चुकानी है। लुढ़ाई वैशाखके अन्ततक ही चल सकती है।

भिक्षा तो रुईकी माँगी जा रही है; लेकिन पैसा लेनेमें ज्यादा सुविधा होगी। इसके अलावा हम ओटनेके लिए जो कपास खरीदते हैं उसका अधिकांश एक ही जगह मिल जाता है और इसलिए ओटी हुई रुई नरम और पोली होती है। इससे उसकी धुनाईमें गांठवन्द दबी हुई रुईकी धुनाईसे आधी मेहनत ही लगती है। मैंने कुछ रुई तो ऐसी भी देखी है, जो बिना धुने भी काती जा सकती है।

इन सभी सुविधाओंको ध्यानमें रखकर मैं पैसेकी ही मांग करता हूँ। आशा है, मुझे निराश नहीं होना पड़ेगा। जिसे जितना देना हो, उतना भेज दे। उसकी प्राप्ति 'नवजीवन'में स्वीकार की जायेगी। जो लोग हमारे कार्यक्रममें सक्रिय भाग नहीं ले रहे, मैं मानता हूँ, उनपर उस रुपयेको देनेकी खास जिम्मेदारी है। हर काठियावाड़ी चाहे वह कहीं रहता हो, अपने सामर्थ्यके अनुसार रुपया अवश्य भेजे। मुझे यह भी बता देना चाहिए कि ऊपर जितनी रकम दी गई है, कमसे-कम उतना खर्च तो होगा ही। यदि प्रस्तावमें बताई गई संख्यामें कताई करनेवाले लोग मिल गये तो ऐसे बहुत-से और परिवार भी तैयार हो जायेंगे। उस हालतमें उन परिवारोंकी आवश्यकताओंकी भी पूर्ति करना काठियावाड़ियोंका कर्त्तव्य होगा। इसलिए वे जितना दे सकें उतना अभी दें। आशा है, 'नवजीवन' के पाठकोंने मेरी अपीलपर मलाबार कोषके सम्बन्धमें जैसी उदारता दिखाई थी, वैसी ही उदारता वे इस सम्बन्धमें भी दिखायेंगे। काठियावाड़की बहुत-सी बहनें काठियावाड़से बाहर रहती हैं। मेरी नजर उनपर तो है ही।

कहनेकी जरूरत नहीं कि परिषद् इस पैसेका पूरा हिसाब देगी और जहाँ-जहाँ रुई बाँटी जायेगी, वहाँ-वहाँ परिषद्के मन्त्रियोंकी देख-रेखमें हिसाब रखा जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-४-१९२५

२७०. विविध

न० डा० क० से

हिंसा और अहिंसाका भेद बताना आसान नहीं है। लेकिन सामान्य रूपसे इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह व्यक्तिकी भावनापर निर्भर है। प्रेमभावसे दिया गया संखिया भी कुछ लोगोंके लिए अमृतका काम करता है और लाभप्रद होता है। लेकिन वैरभावसे दिया गया संखिया शरीरको विषाक्त करता है और मनुष्यकी मृत्युका कारण बन जाता है। भगवान् बुद्ध अपनी निर्दोष रानीको छोड़कर चले गये; इससे उन्होंने अपना और जगतका कल्याण किया। उनका यह कार्य प्रेमकी पूर्ण अभिव्यक्ति था। किन्तु, कोई जुआरी अपनी पत्नीको सोती छोड़कर जुआ खेलने चला जाता है तो उसका वह कार्य हिंसा और अज्ञानका ही द्योतक होता है। इन दो दृष्टान्तोंमें तुम्हारे दिये हुए सब दृष्टान्त आ जाते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-४-१९२५

२७१. राजनीति

काठियावाड़में मेरी यह यात्रा इस वर्ष शायद अन्तिम है। मैं समझता हूँ, मैंने इस वर्ष काठियावाड़की ओर अधिकसे-अधिक, जितना सम्भव हुआ उतना, ध्यान दिया है। उसके सम्बन्धमें जितनी जानकारी प्राप्त कर सकता था मैंने उतनी जानकारी भी प्राप्त की है; लेकिन मैंने उसकी राजनीतिमें प्रत्यक्ष रूपसे कहीं हाथ नहीं डाला। किन्तु यह बात तो शेष भारतके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। सामान्य राजनीतिपर मेरी दृष्टि न हो, ऐसी बात नहीं है। लेकिन मैं मानता हूँ कि लोगोंको अभी स्वयं अपने बीच बहुत-कुछ कार्य करना रहता है।

मैं चरखेको उनके इस कार्यका केन्द्रबिन्दु अथवा आधार मानता हूँ। इसीलिए मैंने अपना सारा ध्यान उसी ओर लगा रखा है। हिन्दुओंके लिए मैं अन्त्यज सेवाको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण मानता हूँ; इसीलिए मैंने उसपर भी ध्यान दिया है। गोंडल तथा जामनगरकी राजनीतिके विषयमें मैंने जो-कुछ सुना है, मैं उसके प्रति भी जागरूक रहा हूँ। लेकिन फिलहाल यह काम किसी राजनीतिक सम्मेलनकी मार्फत न तो किया जाना चाहिए और न सम्भव ही है। मैं अपना यह मत व्यक्त कर चुका हूँ और उसपर अब भी कायम हूँ।

अन्त्यज शाला

मैंने अपनी काठियावाड़की इस यात्रामें बोटादको प्रथम स्थान दिया। उसका एक कारण तो यह था कि मैं वहाँकी अन्त्यजशालाको पिछली बार ही देखना चाहता

था, लेकिन मुझे उतना समय नहीं मिल सका था। उस शालाको श्री दूदाभाई चलाते हैं। मैं उन्हें अन्त्यजोंमें बहुत उच्च चरित्रका व्यक्ति मानता हूँ। और मैं उनकी कर्त्तव्य-परायणतापर मुग्ध ही रहा हूँ। मैं उनकी बेटीको अपनी बेटी मानता हूँ। दूदाभाईके बारेमें उनके अधिकारी जनोंने बहुत अच्छा मत प्रकट किया है। उनकी और मेरी भी बहुत इच्छा थी कि मैं उनके कामको स्वयं अपनी आँखोंसे देखूँ। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी सुना था कि अन्त्यजोंके प्रति बोटादके महाजन कुछ उपेक्षाका व्यवहार करते हैं। इसलिए मैंने अपने मनमें यह भी सोचा था कि मैं अन्त्यज शालाके निरीक्षणके अवसरका लाभ उठाकर उन महाजनोंसे भी कुछ निवेदन करूँगा।

शाला तो अच्छी थी ही। विद्यार्थी सफाई और प्रतिभामें किसीसे भी कम नहीं थे। बहुतोंने तो पूरी खादी पहन रखी थी। अन्त्यजोंमें से अधिकांश लोगोंने मांस-मदिराका त्याग कर दिया है। उनका एक मन्दिर भी है, जिसे वे बहुत-कुछ आर्थिक कष्टका सामना करते हुए चला रहे हैं। उन्हें कुएँकी दिक्कत है, और घरोंकी भी। राज्यकी तरफसे एक कुआँ बनाया जा रहा है, लेकिन उससे पूरा पानी नहीं मिलता। ऐसी ही कठिनाइयोंमें अन्त्यज गुजारा कर रहे हैं। उनमें से बहुतसे बुनकर हैं।

महाजनोंकी ओरसे एक सार्वजनिक सभा की गई थी। उसमें उपस्थिति खासी थी। किसीने मेरे विचारोंका विरोध नहीं किया। महाजनोंसे मेरी प्रार्थना है कि उनमें से जिन्हें मेरा काम पसन्द न हो, वे अपना विरोध प्रकट करें। अगर वे विनय-पूर्वक ऐसा करेंगे तो उन्हें समझानेमें मुझे सहूलियत होगी। लेकिन वे किसी भी रीतिसे और किन्हीं भी शब्दोंमें अपना विरोध प्रकट करें, तो भी मैं तो उस सबको सहन करनेके लिए बँधा ही हूँ। मुझे यह बात इसलिए कहनी पड़ती है कि मैं जानता हूँ कि कुछ लोग विरोध करते हैं; इतना ही नहीं, बल्कि उसमें कटुता और अति-शयोक्तिका प्रयोग भी बहुत करते हैं। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि अस्पृश्यता निवारणके समर्थक एसा नहीं करते। मगर अतिशयोक्ति और कटुताका होना तो सर्वत्र ही निन्द्य है।

विचार-स्वातन्त्र्य

हमें बोटादसे 'सौराष्ट्र' अखबारके प्रकाशन-स्थान रानपुर जाना था। अगर वहाँसे 'सौराष्ट्र' न निकलता होता तो हम वहाँ जाते या नहीं, इसमें मुझे शक है। भाई अमृतलाल सेठ काठियावाड़ी गीतों, रासों और भजनोंके प्रति मेरे विशेष प्रेमसे परिचित हैं। उन्होंने इनमें रुचि रखनवाली बहनोंको और एक भजन मण्डलीको निमन्त्रित किया था। उनके भजन और गीत सुनते-सुनते मेरा तो मन ही नहीं भरता था। मैं भजनोंकी मिठास, शब्दमाधुर्य और मजीरोंकी झनकारसे आनन्दविभोर हो गया।

रानपुरके लोगोंने अपना रुईका पूरा हिस्सा दे दिया है। उन्होंने एक चरखा भी देनेका वचन दिया था, लेकिन मुझे कोई अच्छा चरखा नहीं मिला। भाई अमृत-लालने एक ऐसा चरखा मेरे सामने ला रखा जो अच्छा माना जाता था। लेकिन वह कोई अखबारका अग्रलेख तो था नहीं, जिसका उन्हें सही ज्ञान होता। चरखेकी माल ऐसी थी कि एक जगह जोड़ते तो तेरह जगह टूटती। तकुएका तो कहना ही

क्या? वह तो मानो पुराने जमानेका मोटा सूआ था। उसकी गरारी बहुत मोटे खम्भे-जैसी थी। फिर भला उससे कितना सूत कत सकता?

मैं चरखेका जानकार था, इसलिए मैंने उसे जैसे-तैसे चला तो जरूर लिया, लेकिन साथ ही मनमें यह भी सोचा कि अगर मैं थोड़ा बहुत पैसा देकर 'सौराष्ट्र' में संचालक बन सकूँ तो बन जाऊँ, और फिर दूसरे संचालकोंके मत अपने पक्षमें करके भाई अमृतलालको तुरन्त इस आशयका एक छोटा-सा नोटिस दिला दूँ कि उन्हें कलमपर जैसी महारत हासिल है, अगर वैसी ही महारत अमुक अवधिके भीतर चरखेके सम्बन्धमें हासिल न हो सके तो वे 'सौराष्ट्र' का सम्पादन त्याग दें। लेकिन मेरे नसीबमें कहाँ कि ऐसा दिन मैं देख सकूँ? इसके लिए मुझे पैसा कौन देगा? कोई अमृतलालभाईका द्वेषी मनुष्य पैसा दे भी दे तो दूसरे संचालक मेरी बात मान ही लेंगे, इसका क्या भरोसा? और वे शायद मेरी बात मान भी लें तब अगर कहीं 'सौराष्ट्र' के स्थापना-नियमोंके अनुसार भाई अमृतलाल उसके संस्थापक होनेके नाते संचालकोंकी सत्तासे बाहर हुए तो मेरी क्या स्थिति होगी? इस प्रकार जब एक ओर मैं चरखा चलाते हुए मन-ही-मन इसका बदला लेनेकी अनेक योजनाएँ सोच रहा था, तब दूसरी ओर मेरी अहिंसा मुझे ऐसा करनेसे रोक रही थी और साथ ही उसी समय भजन गाये जा रहे थे, उनकी व्यवस्थाका स्मरण करके मेरी बदलेकी भावना तिरोहित हो रही थी।

इसी बीच किसीने 'सौराष्ट्र' को "आशीर्वाद" देनेकी बात कही और मुझे "महात्माजीके चरणोंमें" शीर्षक लेख थमाया। चरखेके सम्बन्धमें अयोग्यताका परिचय देनेके कारण अमृतलालको पदच्युत करनेकी बात तो दूर रही, यहाँ तो मुझसे आशीर्वाद माँगा गया। जलेपर नमक और ऊपरसे काठियावाड़ी विनय। इस जालमें से कैसे निकला जाये, यह समस्या थी। मुझे तो लगा कि मैं प्रवाहमें पड़ गया हूँ, बहा जा रहा हूँ और डूबने ही वाला हूँ। मैंने सोचा "जिसका सम्पादक न कातता है और न कतवाता है; न धुनता है और न धुनवाता है, उस 'सौराष्ट्र' को आशीर्वाद कैसे दूँ?" लेकिन भक्तप्रेमी परमात्माने मुझे उबार लिया। "महात्माजीके चरणोंमें" शीर्षक लेखमें दो-चार वाक्य ऐसे थे, जिनसे मैं आशीर्वाद दे सका, अहिंसा-धर्म निभा सका, सत्यका पालन कर सका, और 'नवजीवन' में कड़वी-मीठी कहते हुए चरखेपर एक लेख भी लिख सका। अगर मैं शुद्ध मनसे आशीर्वाद न दे सकता तो क्या अमृतलालके इन सारे दोषोंको प्रकट कर पाता?

"महात्माजीके चरणोंमें" शीर्षक उक्त लेखमें यह भी कहा गया था कि मेरे विचारोंका विरोध करनेका अधिकार सबको होना चाहिए। मैंने शान्तिपूर्वक और सच्चा विरोध करनेवालोंको तो सदा ही प्रोत्साहन दिया है। फिर मेरे साथियोंमें यह असहिष्णुता कैसे आई? आदि, आदि। ये विचार मुझे अच्छे लगे, और जहाँ मुझसे सिर्फ मुँहसे दो शब्दोंमें आशीर्वाद माँगा गया था; वहाँ मैंने उमंगसे भरकर चार-पाँच वाक्योंमें दे दिया, क्योंकि मैं मानता हूँ कि अगर हम विचार-स्वातन्त्र्यको पूरा पोषण न देंगे तो इस देशका विकास कदापि नहीं होगा। चाहे कोई मुझ-जैसा तथा-कथित महात्मा हो या चाहे साम्राज्य-भोगी जार्ज पंचम हो। लेकिन मामूलीसे-मामूली

आदमीको भी उसके प्रति अपने मनका विरोधी भाव प्रकट करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यदि महात्मा उस विरोधको शान्ति और विनयसे नहीं सुनता तो वह महात्मा नहीं, क्षुद्रात्मा है और सम्राट् उस विरोधको सहन नहीं करता तो समझना चाहिए कि उसका सिंहासन हिल गया है और उसके सिंहासनसे च्युत होनेका समय आ गया है।

सभीका मत एक नहीं हो सकता। कोई भी सर्वांगपूर्ण नहीं होता। एक ही विषयके सम्बन्धमें विभिन्न विचार विभिन्न दृष्टिकोणोंसे सही हो सकते हैं। लोगोंकी सच्ची उन्नति इसको समझ लेनेपर ही निर्भर है। इसलिए मैंने 'सौराष्ट्र' के कार्य-कर्त्ताओंके इन विचारोंको पसन्द ही नहीं किया, बल्कि प्रोत्साहन भी दिया। 'सौराष्ट्र' सच्चे व्यक्ति स्वातन्त्र्यकी शुद्ध और शान्त भावसे रक्षा करता हुआ अमर रहे, भले ही उसे इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए चरखेका और अन्य वस्तुओंका, जो मेरे जीवनमें अवलम्बरूप बन गई हैं, विरोध ही क्यों न करना पड़े। मैं उस विरोधके बावजूद उसे आशीर्वाद देता हूँ। मैंने इस प्रकार पूरे हृदयसे आशीर्वाद देकर 'सौराष्ट्र' के सभी कार्यकर्त्ताओंको और भाई अमृतलालसे चरखेके लिए आग्रह करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया है। अब उन सबको रुई धुननी चाहिए और सूत कातना चाहिए तथा दूसरोंसे भी वैसा ही करनेका अनुरोध करना चाहिए।

चरखा आश्रम

जिस आश्रमको देखनेके लिए मुझे सोनगढ़ बुलाया गया था, उसका नाम चरखा आश्रम नहीं है। उसका नाम असलमें 'महावीर रत्न आश्रम' है। लेकिन उसका मुख्य काम चरखे और खादीका प्रचार है। उसके प्रमुख और संस्थापक मुनि श्री चारित्रविजयजी हैं। वे खुद खादी ही पहनते हैं। आश्रममें बहुत-से मकान बन चुके हैं, और कुछ अभी बनने हैं। वह इस हेतुसे स्थापित किया गया है कि उसमें छात्र रखे जा सकें और शिक्षित किये जा सकें एवं जैन साधु भी रखे जा सकें। उसका हेतु जैन साधुओंको धर्मज्ञान देनेके बाद कताई सिखाना भी है। उसमें फिलहाल कुछ साधु नियमित रूपसे सूत कातते हैं। यह देखकर मुझे बहुत हर्ष और आश्चर्य हुआ। मुझे उसमें मुनिश्रीकी धार्मिक उदारता और निर्भीकता दिखाई दी।

इसलिए वहाँ मुझे जो मानपत्र भेंट किया गया, मैंने उसके उत्तरमें अपना विचार बताते हुए कहा कि साधुओंको कताईकी कलामें कुशलता प्राप्त करनेकी आवश्यकता है और उन्हें सलाह दी कि उन्हें ऐसा शुभारम्भ करनेके बाद उसपर दृढ़ रहना चाहिए। मेरा दृढ़ मत है कि आज हर साधु और संन्यासीको चरखा चलाना चाहिए। कोई भी साधु या संन्यासी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। देहके साथ कर्म तो लगा हुआ ही है। खाना, पीना, श्वास लेना, भिक्षार्थं पर्यटन करना और धर्मका व्याख्यान करना ये सब कर्म ही तो हैं। फिर भी ये कर्म साधु संन्यासियोंके लिए त्याज्य नहीं माने जाते, क्योंकि ये तो निष्काम बुद्धि और परमार्थ भावनासे ही किये जाते हैं।

उसी बुद्धि और उसी भावनासे चरखा चलाना भी आज साधु-संन्यासियोंका धर्म है। समाजसे आजीविका पानेके कारण साधु-संन्यासी समाज-सेवा करनेके लिए बाध्य हैं। प्लेगसे पीड़ित लोगोंकी सेवा साधु-संन्यासी न करेंगे तो और कौन करेगा? अगर

समाधिमें लीन साधु किसीका आर्तनाद सुनकर सहायतार्थ तुरन्त न दौड़ पड़े तो वह साधु साधु नहीं। साधुका कर्त्तव्य है कि यदि वह किसी सांपके काटे मनुष्यको देखे तो सर्प-विषसे अपनी जानका खतरा मोल लेकर भी उसके घावसे विषको चूस कर बाहर निकाल दे। इसी प्रकार उसका कर्त्तव्य यह भी है कि वह लोक-संग्रहके हेतु इस बेकार और भूखसे पीड़ित भारतको उद्यमी बनाने और उसकी भुखमरी दूर करनेके लिए चरखा चलाये। जैन साधु चाहे तो चरखा चलाते हुए एकाग्रचित होकर नवकार मन्त्रका उच्चारण कर सकते हैं और इस प्रकार समस्त जगतके साथ एकरूप हो सकते हैं। बहुतसे साधु-सन्यासी तो ध्यानमग्न रहकर मंत्रोंका जप करते हैं; लेकिन उनके मनमें इच्छा न रहते हुए भी दूसरे विचार आते रहते हैं। ऐसा होना सम्भव है। इस स्थितिमें मन्त्रका जाप निरर्थक ही होगा। लेकिन जो साधु चरखा चलाते हुए मन्त्रका उच्चारण करता है, किन्तु मन्त्रके अर्थको आत्मसात् नहीं कर पाता वह जितना सूत कातता है, उतना परोपकार तो करता ही है — उस सीमातक भारतका भूखका कष्ट कम करता है और उसकी सम्पदामें वृद्धि करता है। परमार्थ-प्रवृत्ति ही पूजा है।

इन शब्दोंमें मैंने मुनिश्रीसे अनुरोध किया कि वे अपने सोच-समझ कर किये हुए निश्चयपर उसका विरोध किया जानेपर भी दृढ़तापूर्वक डटे रहें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १२-४-१९२५

२७२. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

[बम्बई]
रविवार, चैत्र बदी ४ [१२ अप्रैल, १९२५][1]

चि० पुरुषोत्तम,[2]

तुम्हारा पत्र मुझे माणावदरमें मिला था। मेरी कामना है कि तुम दीर्घायु होओ और तुम्हारी समस्त शुभेच्छायें फलवती हों।

मैं आज बम्बईमें हूँ। चि० जमनादास मेरे साथ है। चि० प्रभुदास मुझसे मिला है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं मंगलवारको जलालपुर ताल्लुकेका दौरा करूँगा।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ८९४) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
२. गांधीजीके भतीजे नारणदास गांधीके पुत्र।

२७३. भेंट : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधसे

बम्बई
[१३ अप्रैल, १९२५ को या उससे पूर्व]

महात्मा गांधीने यह पूछनेपर कि क्या इस बातमें कोई सच्चाई है कि यद्यपि कांग्रेस अधिवेशनको हुए तीन माससे भी अधिक हो गये हैं, उन्होंने जानबूझकर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक नहीं बुलाई, उत्तर दिया :

यह आरोप निराधार है। मेरे अ० भा० कां० क० की बैठक न बुलानेका सीधा-सा और स्पष्ट कारण यह है कि देशके सामने रखनेके लिए मेरे पास कोई नई नीति या नया कार्यक्रम नहीं है। यह बात भी मेरे सुननेमें नहीं आई है कि कोई अन्य सदस्य भी कोई नया कार्यक्रम कमेटीके सामने पेश करनेवाला है। बेलगाँवमें जिस कार्यक्रमकी योजना बनाई गई थी, वह तो बिलकुल ही सीधा-सादा है। उसके लिए तो केवल यही अपेक्षित है कि प्रत्येक प्रान्त उसे कार्यान्वित करनेमें अपनी पूरी-पूरी शक्ति लगाये। किन्तु यदि किसी सदस्यकी इच्छा हो कि अ० भा० कां० क० की बैठक बुलाई जाये, तो मैं सहर्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरूसे कहूँगा कि वे उसका प्रबन्ध करें।

प्रतिनिधिने पूछा : क्या यह सच है कि कोई कमेटी सदस्योंसे चन्देके रूपमें सूतके बदले उसकी नकद कीमत ले रही है?

महात्माजीने उत्तर दिया :

मुझे मालूम है कि कुछ कमेटियाँ ऐसा कर रही हैं, और मेरी निजी राय है कि यह ठीक नहीं है।

पत्र प्रतिनिधिने कहा : मुझे मालूम हुआ है कि कुछ कमेटियोंके मन्त्री सदस्योंकी ओरसे नकद पैसा लेकर और सूत खरीदकर कमेटियोंको दे देते हैं। क्या इस प्रकारके आचरणमें किसी प्रकारका अनौचित्य है?

महात्माजीने स्पष्ट उत्तर दिया :

मन्त्री ऐसे आचरणको बढ़ावा दे, यह वांछनीय नहीं है।

यह पूछे जानेपर कि स्वराज्यवादी लोग परिषदों और विधान-सभाओंमें जनताका प्रतिनिधित्व करनेका हक नहीं रखते, क्या इस तरह की कोई बात उठाई गई है, महात्माजीने कहा :

मैं तो एक भी ऐसे अपरिवर्तनवादीको नहीं जानता जिसने किसी भी तरीके या किसी भी रूपमें इस प्रश्नको फिर उठानकी इच्छा जाहिर की हो। यदि कोई सदस्य अ० भा० कां० क०की बैठकमें अब इस प्रश्नको उठाना भी चाहे तो इस समय उसे इस प्रश्नको उठानेका अधिकार नहीं है। ऐसा केवल कांग्रेसके अगले अधिवेशनमें किया जा सकता है।

महात्माजीने दास और बर्कनहेडके वक्तव्योंके[1] बारेमें अपने विचार जाहिर करनेका अनुरोध किये जानेपर उत्तर दिया :

मुझे इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहना है; मैंने अभीतक इस चर्चामें कोई भाग नहीं लिया है।

अहिंसाके सम्बन्धमें श्री दासके घोषणापत्रका आंग्ल-भारतीयों तथा यूरोपीयोंने जो अर्थ लगाया है, क्या आप उससे सहमत हैं?

नहीं; मैं नहीं समझता कि इसमें उन्होंने इस विषयसे सम्बद्ध अपने पहलेके विचारोंका खंडन किया है। श्री दासने अपने विश्वासको अधिक स्पष्ट रूपमें तथा अधिक निश्चित शब्दोंमें दोहराया-भर है।

संवाददाताने पूछा : अर्ल विन्टरटनके[2] इस सुझावके बारेमें आप क्या कहते हैं कि भारतीयोंको अपना कोई भी प्रस्ताव साम्राज्य सरकार तथा ब्रिटिश संसदके सामने विचारार्थ पेश करनेसे पहले उसपर भारत सरकार तथा स्थानीय सरकारोंका समर्थन प्राप्त कर लेना चाहिए?

मैं तो यह समझता हूँ कि यह इस कथनका एक मीठा तरीका-भर है, इंडिया ऑफिस राष्ट्रवादियों द्वारा रखे गये किसी भी प्रस्तावपर कोई विचार न करेगा। इंडिया ऑफिसका बड़प्पन तो इसमें है कि वह भारत सरकारके समर्थनके बिना भी सभी सुझावोंपर विचार करनेके लिए तैयार रहे, फिर चाहे वे क्रान्तिकारियोंकी ओरसे ही क्यों न रखे जायें।

इस समय विभिन्न सम्प्रदायोंकी एकताकी क्या सम्भावनायें हैं? महात्माजीने कहा :

मुझे अभी जल्दी तो अधिक सफलताके लक्षण दिखाई नहीं देते। मुझे तो यही लग रहा है कि इस प्रश्नको धीरे-धीरे अपने आप सुलझने दिया जाये। कुछ ऐसी बीमारियाँ होती है जिनके बारेमें चिकित्सक कहते हैं कि उनको न छेड़ना ही सबसे अच्छा रहता है। उनकी जितनी परवाह की जाये, वे उतनी ही बढ़ती हैं। इस साम्प्रदायिक समस्याने भी, लगता है, इस समय यही शक्ल अख्तियार कर ली है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-४-१९२५

१. ३१ मार्च, १९२५ को ब्रिटिश संसद्में एक प्रश्नका उत्तर देते हुए, लॉर्ड बर्कनहेडने चित्तरंजन-दासको आमन्त्रित किया था कि वे क्रान्तिकारी गतिविधियोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ लें और भारतमें उत्तर-दायी सरकारकी स्थापनाके हेतु हिंसाको दबानेमें सरकारके साथ सहयोग करें।

चित्तरंजन दासने ३ अप्रैलको एक वक्तव्यमें इसका उत्तर देते हुए कहा था कि बंगाल अधिनियम इस बुराईको अन्तिम रूपसे दूर करनेमें सफल नहीं होगा और वे तबतक कुछ नहीं कर सकते जबतक सरकार स्वयं "अनुकूल वातावरण" नहीं तैयार कर देती; देखिए इंडिया इन १९२५-६, पृष्ठ २-३।

२. उप भारत-मन्त्री। ६ अप्रैलको उन्होंने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया था कि वाइसरायके लन्दन पहुँचनेके अवसरपर चित्तरंजन दास, गांधीजी और अन्य भारतीय नेताओंको विचार-विनिमयके लिए लन्दन बुलाया जाये।

२७४. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

सोमवार, चैत्र कृष्ण ५ [१३ अप्रैल, १९२५][1]

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मीले हैं। आपने तिथि या तारीखका देना छोड़ दीया है। देते रहीयो क्योंकि मेरे भ्रमणमें पत्र मीलते हैं इ[स] से कौनसी तारीखके कौन पत्र है उसका पता बगैर तारीख मुझे नहिं मील सकता।

हकीमजी तो यूरोप गये हैं। मैंने ख्वाजासाहेबको पुछवाया है कि द्रव्य मील गया है या नहिं। आपको कुछ पता मीले तो मुझको बताइये।

जमनालालजी दुकानसे मैंने जांच की तो पता मीला के उनको आपके तर्फसे रु० ३०००[2] अबतक मीले हैं। मुनीमने पहोंच तो दी थी, ऐसा कहते हैं। मीलनेकी तिथि अनुक्रमसे १००००की १-११-१९२४ और २०००० की ५-१-२५ है।

यदि दाक्तर लोग आशा बताते हैं तो आपकी धर्मपत्निके मृत्युका भय क्यों रहता है? विकारोंका वश करना मेरे अनुभवमें बहोत हि कठिन तो है हि, परंतु वहि हमारा कर्त्तव्य है। इस कलीकालमें मैं रामनामको बड़ी वस्तु समजता हुं। मेरे अनुभवमें ऐसे मित्र हैं जिनको रामनामसे बड़ी शांति मीली है। रामनामका अर्थ ईश्वर नाम है। [द्वा] दश मंत्र भी वही फल देता है। जिस नामका अभ्यास हो उसका स्मरण करना चाहिये। विषयासक्त संसारमें चित्तवृत्तिका निरोध कैसे हो? ऐसा प्रश्न होता हि रहता है। आजकल जनन मर्यादाके पत्रोंको पढ़कर मैं दुःखित होता हुं। मैं देखता हुं कि कई लेखक कहते हैं कि विषयभोग हमारा कर्त्तव्य है। इस वायुमें मेरा संयमधर्मका समर्थन करना विचित्र सा मालुम होता है। तथापि मेरा अनुभवको मैं कैसे भुलुं? निर्विकार बनना शक्य है इसमें मुझे कोई शक नहिं। प्रत्येक मनुष्यका इस चेष्टाका करना अपना कर्त्तव्य है। निर्विकार होनेका साधन है। साधनोंमें राजा रामनाम है। प्रातःकालमें उठते हि रामनाम लेना और रामसे कहना, 'मुझे निर्विकार कर' मनुष्यको अवश्य निर्विकार करता है। किसीको आज किसीको कल। शर्त यह है कि यह प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिए। बात यह है कि प्रतिक्षण हमारे स्मरणमें हमारी आंखोंके सामने ईश्वरकी अमूर्त मूर्ति खड़ी होनी चाहिए। अभ्याससे इस बातका होना सहल है।

मैं बंगालमें प्रथमाको पहुंचूंगा उसी रोज कलकत्ता फरीदपुरके लिये छोड़ुंगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१११) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१. पत्रमें जिन घटनाओंका उल्लेख है, उनसे स्पष्ट है कि यह पत्र १९२५ में लिखा गया होगा।
२. यहाँ रु० ३०,००० होना चाहिये था।

२७५. भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें[1]

१३ अप्रैल, १९२५

महात्माजीने कहा कि आप लोगोंने आज तीन भाषण सुने हैं। श्री पटेलने मुझसे देशके सामने ऐसा कार्यक्रम रखनेको कहा है, जिससे लोगोंमें उत्साह पैदा हो; या फिर लोग ऐसा कार्यक्रम[2] स्वयं तैयार कर लें। मेरे विचारसे लोगोंमें उचित मात्रामें उत्साह उत्पन्न करनेके लिए, तथा साथ ही उन्हें ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध संघर्षके योग्य बनानेके लिए चरखेके अलावा किसी दूसरी चीजकी आवश्यकता नहीं है। हमें असफलता इसलिए मिली है कि हममें अपने लक्ष्योंके प्रति सच्ची निष्ठा नहीं है। चरखा हमें असीम धैर्य रखना और साहसी बनना सिखाता है। वह हमें अपना काम साहस और श्रद्धासे करना सिखाता है। फिर भी लोग प्रतिदिन आधा घंटा भी कताई नहीं कर सकते। मेरा दृढ़ विचार है कि यदि हम केवल सूत कातें तो हम जो-कुछ चाहते हैं, हमें वह सब-कुछ मिल जायेगा। मैं आप लोगोंसे यह बात १९१९से कहता आ रहा हूँ; अब मैं आप लोगोंसे और क्या कहूँ? यदि आप वास्तवमें उत्साह उत्पन्न करना चाहते हैं तो आप चरखेको अपनायें, क्योंकि आप चरखेके बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। हम लोगोंमें हिन्दुओं और मुसलमानों, ब्राह्मणों और अब्राह्मणों, अवर्णों और सवर्णोंकी — मुझे इन शब्दोंकी जानकारी त्रावणकोरमें हुई — लड़ाई चलती ही रहेगी। इनके अतिरिक्त आपसमें लड़नेके लिए अन्य जातियाँ भी हैं। देशके स्वराज्य तथा सत्याग्रहकी खातिर बलिदान करने होंगे। सत्याग्रह शब्दका प्रवर्तक मैं हूँ, इसलिए इसके बारेमें कुछ जानता हूँ।

हमें सत्याग्रहके बिना स्वराज्य कभी नहीं मिलेगा। यदि हम हिन्दुओं और मुसलमानों आदिके बीच भी सत्याग्रह करें तो मैं इससे सन्तुष्ट हो जाऊँगा। किन्तु लोग तो इस छोटी-सी बाततक के लिए तैयार नहीं हैं। हाँ, वे दुराग्रहके लिए तैयार हैं और आपसमें सिर फुटौअल करनेके लिए तैयार हैं, और सिर फोड़कर भागनेका अवसर देखते रहते हैं। ये तो स्वराज्य लेनेके तरीके नहीं हैं। हमें सत्याग्रहके लिए शान्त वातावरण चाहिए और वह नदारद है। मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि

१. यह सभा जलियाँवाला बाग दिवस मनानेके लिए बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके तत्वावधानमें सरोजिनी नायडूकी अध्यक्षतामें कांग्रेस भवन, गिरगांवमें हुई थी। गांधीजीने अपना यह भाषण हिन्दी या गुजरातीमें दिया था, और अन्तमें उसका सार अंग्रेजीमें भी बताया था। यह भाषण अंग्रेजी रिपोर्टसे लिया गया है।

२. श्री पटेलने बताया था कि वर्तमान कताई सदस्यताके कारण कांग्रेस-सदस्योंकी संख्या २५ लाखसे घटकर ११ लाख रह गई है।

हमारी सभा कांग्रेस भवनके मैदानमें इसलिए की गई है कि यदि हमारी सभा चौपाटीमें होती तो वहाँ बड़ी संख्यामें लोगोंके आनेकी आशा नहीं थी। फिर भी मैंने आशा नहीं छोड़ी है; क्योंकि जबतक देशमें सत्याग्रह है तबतक हमें स्वराज्य मिलनेकी पूरी आशा है। केवल एक बात है कि देशमें शान्तिका वातावरण नहीं है, जो आवश्यक है। मेरे विचारसे अपनी सभी निराशाओंके बावजूद हमने गत पाँच वर्षोंमें कुछ गँवाया नहीं है, बल्कि कुछ-न-कुछ हासिल ही किया है। हिम्मत हारने या हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जानेसे काम न चलेगा। जरूरत इस बातकी है कि हम अपना प्रयत्न दुगुने उत्साहसे जारी रखें और यदि हम संघर्षमें जीतनेके लिए कृतसंकल्प हों तो ऐसा करना आवश्यक है। यदि कांग्रेसमें सच्चे आदमी १० भी हों तो मुझे उससे पूरा सन्तोष होगा। इसके विपरीत जिनमें कामकी लगन न हो, ऐसे लाखों आदमियोंका होना भी बेकार है। पहले कांग्रेसमें मताधिकारका शुल्क चार आना था और लाखों सदस्य थे, किन्तु तिसपर भी हमें स्वराज्य नहीं मिला। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि हमें इन साधनोंसे स्वराज्य नहीं मिलेगा। अतः मैंने मताधिकारको बदल दिया, क्योंकि मैं जानता था कि जबतक थोड़ेसे भी लोग देशके निमित्त त्याग करनेके लिए तैयार न हों, तबतक हम अन्तमें विजय प्राप्त करनेकी आशा कदापि नहीं कर सकते।

हमें मार्गकी सभी बाधाओंके बावजूद विजय प्राप्त करनेका निश्चय करना होगा। आप जानते हैं कि सरकार भारतीयोंको आपसमें लड़ाते रहनेका निश्चय कर चुकी है। किन्तु देशमें ऐसा संकल्प करनेवाले लोग कितने हैं कि चाहे कुछ भी हो जाये हम आपसमें लड़ेंगे-झगड़ेंगे नहीं? केवल चरखेसे सत्याग्रह करनेके लिए पर्याप्त उत्साह मिल सकता है। इसलिए हमें चरखा चलाकर इसकी तैयारी करना है। यदि आप सत्याग्रह करनेके इच्छुक हैं तो ऐसा अपनी ही जिम्मेदारीपर कर सकते हैं; किन्तु उससे मेरा कोई सरोकार न होगा। सत्याग्रह क्या है, यह बात मैं कुछ-कुछ जानता हूँ, क्योंकि मैं इसका प्रवर्तक हूँ। यदि मैं सत्याग्रह आरम्भ नहीं करता तो इसका कारण यह नहीं है कि मैं सत्याग्रह करना नहीं चाहता; बल्कि उसका दूसरा कारण है, और वह है मेरी यह मान्यता कि देश इसके लिए तैयार नहीं है। जब-तक आप उन तीन कामोंको पूरा नहीं करते, जिन्हें करनेके लिए आपसे कहा गया है, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि आप लोग सत्याग्रहके लिए तैयार हैं। यद्यपि व्यक्तिगत सत्याग्रह करना सदैव सम्भव है, फिर भी मेरी धारणा यह है कि देश सामूहिक सत्याग्रहके लिए तैयार नहीं है। ६ और १३ अप्रैलके बीच एक पूरा घटना-चक्र घटित हो गया। मुझे जिस दिन ऐसा लगेगा कि आप सत्याग्रहके लिए तैयार हैं, मैं उसी दिन सबसे पहले आप लोगोंको सत्याग्रह करनेकी सलाह दूँगा। किन्तु मैं सरकारको गीदड़ भभकियाँ देनेमें विश्वास नहीं करता, क्योंकि यह सरकार इस प्रकार गीदड़ भभकियोंमें आ ही नहीं सकती। इस सरकारको बेवकूफ बनाना कठिन कार्य है। अपने बारेमें तो मेरा कहना यह है कि जबतक मेरा उद्देश्य पूरा नहीं होता,

तबतक मैं संघर्ष कदापि बन्द न करूँगा। यदि आप लोग अपनेको सत्याग्रही कहना चाहते हैं तो मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप लोग आपसमें एक हो जायें, चरखेको अपनायें और अस्पृश्यताका त्याग करें। यदि आप इतना कर लें तो आपकी जीत निश्चित है।

गांधीजीने इसके बाद भाषणका सार अंग्रेजीमें बताते हुए कहा कि मेरा मत है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता, चरखा तथा अस्पृश्यता निवारणके बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा। इन तीन बातोंके बिना स्वराज्य कदापि नहीं मिल सकता। सत्याग्रहका अर्थ है सत्य, शान्ति और अहिंसापर दृढ़ रहना और इनके बिना यह सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। इन तीन बातोंके बिना एक तरहका सत्याग्रह किया तो जा सकता है; किन्तु जिस सत्याग्रहकी कल्पना मैं करता हूँ उसके लिए ये तीनों बातें अपरिहार्य हैं।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-४-१९२५

२७६. तार : हरिहर शर्माको

[१५ अप्रैल, १९२५ या उसके पश्चात्][1]

बंगाल जा रहा हूँ। बाजपेयीको फिर लिख रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२९३) की माइक्रोफिल्मसे।

२७७. भाषण : कराडीमें

१५ अप्रैल, १९२५

सभामें जो शान्ति है उसे देखकर मुझे आश्चर्य और हर्ष होता है। इस समय मेरी बोलनेकी शक्ति कुछ कम हो गई है; इसलिए मैं ऊँची आवाजमें बोलनेमें असमर्थ हूँ। ऐसी स्थितिमें आप सब इतने शान्त भावसे बैठे हैं, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। मजीरोंके साथ बच्चोंने जो हरिनाम कीर्तन किया वह मुझे अच्छा लगा है। मजीरोंकी खूबी तो वही जान सकता है जो भजन कीर्तनोंमें गया हो; मैं उनका महत्व अच्छी तरह समझता हूँ।

१. यह तार हरिहर शर्माके उस तारके उत्तरमें दिया गया था जो उन्होंने १५ अप्रैल, १९२५ को मद्राससे भेजा था। तार इस प्रकार था: "सम्मेलनका अपने नाम रुपये जमा करनेका आग्रह। इसपर मतभेद है। दूसरे मामलोंसे भी स्थिति विषम। निश्चित समझौता जल्दी। यहां तार दें, आपसे कब मिलूँ। स्थगन हानिकर।"

बहुतसे भाइयोंने सफेद टोपियाँ पहन रखी हैं; यह मुझे प्रियकर है। किन्तु उन्होंने टोपियाँ केवल आजकी सभाके लिए ही पहनी हैं, यह मैं नहीं जानता। मैं मानता हूँ कि आपने जब टोपियाँ खादीकी पहनी हैं तब आपके दूसरे कपड़े भी खादीके होंगे। यदि वे खादीके न हों तो मेरी सलाह है कि आप कपड़े भी खादीके बनवायें। आप जानते ही हैं कि अब बहुत विलम्ब हो गया है। हमें विचार करनेमें बहुत ज्यादा वक्त नहीं लगाना चाहिए। हमें न विदेशी या मिलोंके कपड़ेका मोह होना चाहिए और न खादीके कपड़े पहननेमें शर्म आनी चाहिए। खादी हमें भारी भी नहीं लगनी चाहिए। हमें अपने गरीब कतैयों और बुनकरोंके बनाये हुए कपड़े पहननेमें भारी क्यों लगते हैं? यदि हम मोटा सूत कातते हैं तो यह हमारा ही दोष है। जब रुई अच्छी मिलती है और बारीक सूत भी काता जा सकता है तब हम मोटा कपड़ा क्यों पहनें? मैं देख रहा हूँ कि बहनें खादी नहीं पहने हैं। उनको तो विदेशी या मिलोंके बने कपड़ेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मिलोंका कपड़ा पहनकर यहाँ आना अच्छा नहीं माना जा सकता। यदि आपको ऐसा ही करना हो तब तो फिर मेरा साबरमतीमें जा बैठना ही ज्यादा अच्छा होगा। मैं तो यहाँ लालच लेकर चला आया हूँ। मेरे साथी भी लालचसे प्रेरित हुए थे और उन्होंने यह सोचकर मुझे बुलाया कि शायद मेरे यहाँ आनेसे कोई अच्छा परिणाम निकले। मुझे तो स्वराज्य चाहिए। यह कैसे होगा, यह कोई भी नहीं जानता। किन्तु खादीके बिना जो स्वराज्य होगा वह किसी कामका नहीं होगा, यह आप विश्वास रखें। जबतक खादी न होगी तबतक जीवनमें जो शुद्धता और स्वतन्त्रता चाहिए वह नहीं आयेगी। मैं जानता हूँ कि कुछ खादी पहननेवाले भी पाखण्ड करते हैं और अस्वच्छ होते हैं। किन्तु हमें तो खादी विचारपूर्वक पहननी है। हम जबतक खादी नहीं पहनते तबतक हम धर्म-कर्मके योग्य नहीं बन सकते।

हम जबतक अन्त्यजोंको दूर-दूर रखेंगे तबतक हमें संसार भी दुरदुरायेगा। धर्ममें अस्पृश्यताको कोई स्थान नहीं है। शौच आदिके नियमोंके सम्बन्धमें अस्पृश्यता भले ही रहे। किन्तु किसी मनुष्यको जन्मतः अस्पृश्य मानना पाखण्ड है, अधर्म है और घोर क्रूरता है। जन्मसे मनुष्य अस्पृश्य होता है, ऐसा कहनेवाला व्यक्ति झूठा है।

तीसरी चीज है शराब। कोली और दुबले शराब पीते हैं। आप सोचिए तो कि शराब आपका कितना भयंकर शत्रु है, जो आपको छोड़ता ही नहीं। आपको इसे छोड़ ही देना चाहिए। इसका एक अच्छा उपाय यह है कि आप सुबह-सुबह राम-नाम जपें। और रो-रोकर परमात्मासे विनय करें कि वह आपको विदेशी कपड़े, मांसाहार और व्यभिचारसे बचाये। प्रह्लादकी रक्षा ईश्वरने ही की थी। यदि आप ईश्वरको किसी दूसरे नामसे भजते हों तो दूसरे नामसे ही भजें। किन्तु ईश्वरका नाम तो आपको लेना ही चाहिए, इसलिए मैंने आपसे कहा है।

हिन्दू-मुस्लिम एकताके कामको हानि पहुँची है। मैं स्वयं तो हार ही गया हूँ। कल तमाम दिन शौकत अली और शुएब साहब मेरे पास बैठे रहे। मैं उनको यहाँ नहीं ला सका हूँ, क्योंकि ये लोग बम्बईके लोगोंको खिलाफतके सम्बन्धमें जो

सन्देह हो गया है, उसके निवारणका व्रत लिये बैठे हैं। मैंने तो उससे हाथ खींच लिया है। इस समय मेरी सलाह काम नहीं दे सकती। मेरी सलाह तो मर्दोंके लिए है, कायरोंके लिए नहीं है। यदि कोई गाली दे तो मैं जबावमें गाली न दूंगा। कोई मुझे मारे तो मैं उसे बदलेमें मारूँगा नहीं। मेरा यही धर्म है। मैं इसे औरोंको समझा नहीं सकता, इसलिए मैंने यह प्रयत्न छोड़ दिया है। मुसलमान भी पागल हो गये हैं। हिन्दू भी पागल हो गये हैं। दोनों एक-दूसरेको छेड़ते हैं। यदि मैं हिन्दुस्तानकी स्थितिका विश्लेषण करता हूँ तो मुझे ज्यादा दोष मुसलमानोंका लगता है; किन्तु क्या इसके कारण मैं उनसे अपनी मित्रता छोड़ सकता हूँ। बाप अपने मनमें बेटेके दोषोंको जानता है; किन्तु क्या वह इस कारण बेटेको छोड़ सकता है? बाप उसे कोसता नहीं। मैं तो उससे यही कहूँगा कि 'तू वेश्यागामी है और शराबी है; फिर भी तू अच्छा बन। मैं उसे यह तो नहीं कहूँगा कि जाकर समुद्रमें डूब मर। इसी प्रकार मैं मुसलमानोंको नही छोड़ सकता। हिन्दू निर्दोष हों और मुसलमान उन्हें छेड़ें तो भी मैं उनके पैर दबाऊँगा। मैं उनसे यही कहता रहूँगा कि तुम जो-कुछ कर रहे हो, अधर्म है, वह इस्लाम नहीं है। मैं उनकी लातें खाकर भी यही कहता रहूँगा। मेरी इस सलाहको माननेवाला आज तो कोई है नहीं। किन्तु मैं यह कहकर बैठा हूँ कि किसी न किसी दिन दोनों अवश्य ही एक होंगे; इसके बिना छुटकारा नहीं है। यदि मैं कल मर जाऊँ तो भी जो मनुष्य ऐसा कहेगा, आप उसके पास अवश्य आयेंगे। यह जरूर है कि भय छोड़ देना चाहिए। यह आन्दोलन ही भयको छोड़नेका है। बस, मुझे जो-कुछ कहना था वह मैंने कह दिया। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि आप अन्त्यजोंको हर वक्त छूते ही रहें। हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें आप दिल साफ कर लें तो काफी है। अन्त्यजोंसे मिलना-जुलना सुगम है। खादी पहनना आपका धर्म है, यह समझना भी मुश्किल नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

२७८. टिप्पणियाँ

पत्रलेखकोंसे

मेरे सामने संसारके सभी हिस्सोंसे आये हुए बहुत सारे पत्र पड़े हैं। इनके उत्तर मुझे स्वयं ही देने हैं। जिनके उत्तर मेरे सहायक दे सकते हैं, उन्हें तो काफी जल्दी निबटा दिया जाता है; किन्तु मेरे हिस्सेके पत्रोंका ढेर दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। मुझे ही इनको पढ़कर उत्तर देने होते है। इस वर्ष मुझे अन्य वर्षोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा सफर करना पड़ा है। मै इस पत्र-व्यवहारपर केवल उस फुटकर समयमें ही ध्यान दे सकता हूँ, जो मेरे पास 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए लेख लिखनेके बाद बचता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पत्र इतने इकट्ठे हो गये हैं कि उनका उत्तर देना मेरे वशके बाहर है। यदि मैं किसी कारणसे भ्रमणके अयोग्य

हो गया तो बात अलग है; नहीं तो मुझे निश्चित किये गये कार्यक्रमके अनुसार अभी ४ से लेकर ६ मासतक भ्रमण और करना है। इसलिए यदि मैं अपने पत्र-प्रेषकोंको समयपर उत्तर न दे सकूँ या दे ही न सकूँ तो वे मुझे क्षमा करें। वे इस बातको समझ लें कि मैं पत्रोत्तर विलम्बसे देता हूँ या बिलकुल दे ही नहीं पाता तो इसका कारण यह नहीं है कि मैं उत्तर देना नहीं चाहता या मुझमें इतना सौजन्य नहीं है।

उपर्युक्त बात उन पत्रोंपर भी लागू होती है जो मुझे 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन' के सम्बन्धमें मिलते हैं। मैं चाहता हूँ कि मैं इस कार्यमें जितना समय देता हूँ उससे अधिक समय दूँ। किन्तु मैं विवश हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझे कई बार महत्वपूर्ण पत्रोंकी भी उपेक्षा करनी पड़ती है। यह व्यस्तता आधुनिक जीवनका एक दोष है। मुझ-जैसे महत्त्वाकांक्षी मनुष्यपर इसका दुगुना असर पड़ता है। मेरे कुछ अत्यन्त प्रिय मित्र मुझे अक्सर सलाह देते हैं कि मैं अपनी कुछ गतिविधियोंको छोड़कर विश्राम करूँ और सन्तोष मानूँ। किन्तु मैं इस कथनकी सचाई प्रतिदिन अनुभव करता हूँ कि मनुष्य परिस्थितियोंका दास है और उसका कुफल भोगता है। यों इस उक्तिमें सचाई आधी ही है। किन्तु यह आधी सचाई इतनी जोरदार है कि इससे विवश होकर मुझे अपने पत्र-प्रेषकोंसे क्षमा-याचना करनी पड़ रही है। किन्तु मैं उन्हें बता दूँ कि मैं अपनेको सुधारनेका और पत्र-व्यवहारके लिए अधिक समय निकालनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे इस बातका प्रयत्न करना होगा कि मैं फिर प्रति सप्ताह एक दिनका नहीं, बल्कि अधिक दिनका मौन रखूँ। मुझे बंगाली मित्रोंसे अपील करनी होगी कि सबसे पहले वे मेरे सफरके कार्यक्रमोंमें कमी करें।

बंगालका दौरा

इस असन्तोषजनक क्षमा-याचनाके बाद मैं बंगालके दौरेकी बात लेता हूँ। सामने पड़े तारोंसे मालूम होता है कि यह कार्यक्रम पाँच सप्ताह चलेगा। मुझे आशा है कि संयोजकोंने सोमवारका ध्यान रखा होगा। मुझे सोमवारको अनिवार्य रूपसे मौन रखना और सामान्यतः आना-जाना भी बन्द करना पड़ता है। किन्तु मैं चाहता हूँ कि यदि सम्भव हो तो संयोजक बुधवारको भी मेरे मौनव्रतका दिन रख लें ताकि मैं अपना लिखनेका वह सब काम कर सकूँ जो मुझे प्रति सप्ताह करना पड़ता है। मेरी आदत थी कि मैं अपना चरखा अपने साथ ले जाता था। किन्तु मैंने अब यह क्रम बदल दिया है। अतः मेरा अपने मेजबानोंसे यह अनुरोध है कि वे मेरे लिए खानेके अलावा एक ठीक चलनेवाले चरखेका इन्तजाम भी रखें। मैंने देखा है कि मैं इस नयी व्यवस्थाके फलस्वरूप स्थानीय चरखोंसे भी परिचित हो जाता हूँ। चूँकि मेरा मेजबान आम तौरपर मुझे वहाँका सबसे अच्छा चरखा मुहय्या करनेकी कोशिश करता है, इसलिए मैं उससे उस स्थानपर सूतके उत्पादनकी क्षमताका अन्दाज लगा सकता हूँ। क्योंकि जब मैं देखता हूँ कि उनका दिया हुआ अच्छेसे-अच्छा चरखा बिलकुल निकम्मा है, तब मुझे पता चल जाता है कि वहाँ सूतका उत्पादन बहुत कम है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मेरा मेजबान प्रत्येक स्थानपर मेरे लिए उपलब्ध होनेवाला सर्वोत्तम चरखा लाकर देगा और मेरे लिए कताईका समय भी

निकालेगा। तीसरी बात यह है कि मुझे आशा है कि एकत्र होनेवाली भीड़को यह हिदायत दे दी जायेगी कि वे नारे न लगायें अथवा शोरगुल न करें और मेरा मंच-पर जानेका रास्ता साफ रखें। अक्सर इन भीड़ोंके बीचसे गुजर कर मंचतक पहुँचने-में बहुत अधिक समय व्यर्थ चला जाता है। जब स्वयंसेवकोंको लोगोंको रोकनेके लिए हाथमें-हाथ मिलाकर कतारें बनानी पड़ती हैं तब मुझे मालूम हो जाता है कि लोगोंमें अभी वह अनुशासन नहीं आया है, जो भीड़ोंको नियन्त्रित रखनेके लिए जरूरी होता है। मैं जानता हूँ कि यदि लोगोंको पर्चे बाँटकर पहलेसे ही तफसीलवार हिदा-यतें दे दी जायें और सभाकी कार्रवाई आरम्भ होनेसे पहले मंचसे भी बार-बार जबानी हिदायतें दी जायें तो भीड़को अनुशासनमें रखना सम्भव है। लोगोंको यह भी हिदा-यत दे देनी चाहिए कि वे मेरे पाँव न छुएँ। मैं ऐसा सम्मान-प्रदर्शन नहीं चाहता। जो लोग मेरा सम्मान करना चाहते हैं, वे बस इतना ही करें कि वे मेरी जिन बातोंको अच्छी मानते हैं, उनपर अमल करें। यदि वे सम्मान करना ही चाहें तो सीधे खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार या सलाम करें। इतना तो काफी है। यदि मेरी चलती तो मैं इसे भी बन्द कर देता। प्रेमको आँखोंसे समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। इसके लिए किसी दूसरे इंगितकी आवश्यकता नहीं। किन्तु मै बंगालमें जो बात देखना चाहता हूँ वह यह है कि वहाँ मेरी सभाओंमें जो भी लोग इकट्ठे हों वे सभी खद्दर पहने हुए हों। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि कोई मनुष्य खद्दर न पहने हो तो वह सभामें से बाहर निकाल दिया जायेगा। जो लोग खद्दरमें विश्वास नहीं रखते, वे विदेशी वस्त्र या मिलके कते सूतके और मिलके बुने कपड़े पहनकर अवश्य आ सकते हैं। किन्तु मैं जानता हूँ कि लोग बहुत बड़ी संख्यामें खद्दरमें विश्वास रखते है और उन्हें तो अपने विश्वासपर अमल करना ही चाहिए। वे अपने विश्वासका प्रदर्शन अपने शरीरपर खद्दर पहनकर करें। अन्तिम बात यह है कि मैं इन सभाओंमें सभी दलोंके लोगोंके आनेकी आशा करता हूँ। मै चाहता हूँ कि इन सभाओमें सभी विचारोंके और सभी जातियोंके लोग और अंग्रेज भी आयें। मैं इतना निवेदन और कर दूं कि अच्छा हो यदि स्थानीय संयोजक भाषण देनेके लिए विशाल सभाएँ कम बुलायें और उसकी अपेक्षा व्यक्तिगत और खानगी (गुप्त नहीं) वार्तालापके अवसर अधिक रखें। हो सकता है कि विशाल सभाएँ बुलाना आव-श्यक हो, किन्तु इनमें कमसे-कम वक्त खर्च होना चाहिए। मैं छात्रोंसे अवश्य मिलना चाहूँगा। महिलाओंकी सभाएँ भी सभी जगह होने लगी हैं। मैं यह भी चाहता हूँ कि प्रत्येक स्थानपर अछूतोंकी सभा भी हो। यदि भारतके इन भागोंके समान बंगाल-में भी उनके लिए पृथक् मुहल्ले हों तो मैं उनमें भी जाना चाहूँगा। तात्पर्य यह है कि मेरी यह यात्रा कामकाजी यात्रा हो और शान्ति और सद्भावनाका प्रसार करना उसका मुख्य उद्देश्य हो।

अखिल भारतीय गोरक्षा मंडल

एक स्थायी अखिल भारतीय गोरक्षा सम्बन्धी संस्थाकी स्थापनाके लिए चलाया गया यह आन्दोलन एक कदम और आगे बढ़ा है। इस संस्थाके इस सम्बन्धमें विचार

करनेके लिए तथा विचार करनेके बाद वांछित समझा गया तो उसका संविधान स्वीकार करनेके लिए बम्बईमें एक सार्वजनिक सभा या सम्मेलनका आयोजन किया गया है। इसकी सार्वजनिक सूचना पाठकोंने अवश्य देखी होगी। यदि न देखी हो तो वे इसे शीघ्र ही देखेंगे। मूल संविधान हिन्दीमें है और उसका शुद्ध किन्तु अपरिमार्जित अंग्रेजी अनुवाद तैयार है। यह सभा इस मासकी २८ तारीखको ठीक ८ बजे शामको माधवबाग, बम्बईमें होगी। यह स्थान इसी तरहके आन्दोलन शुरू करनेके लिए प्रसिद्ध है और यह ठीक ही है। मुझे विश्वास है कि इस सभामें ऐसा प्रत्येक मनुष्य अवश्य आयेगा जो उक्त संविधानको ठीक समझता है और यह मानता है कि सफलतापूर्वक गोरक्षा करनेके लिए किसीके साथ संघर्षमें आये बिना और साधारणतः मनुष्यके लिए सम्भव जो उपाय इस संविधानमें समझाये गये हैं, वे सर्वथा उचित हैं। अहिन्दुओंसे जोरदार और भड़कानेवाली भाषामें अपीलें करके नहीं, बल्कि हिन्दू धर्ममें जो दोष और विकार आ गये हैं उनसे उसे मुक्त करके गोरक्षा की जा सकेगी। संविधानमें गोरक्षाके आर्थिक स्वरूपपर आग्रहपूर्वक जोर दिया गया है और यदि उसमें दी गई यह आर्थिक योजना सफल हो गई तो हमारे नगरोंको कुछ ही समयमें पूर्ववत् ही स्वच्छतम एवं शुद्ध दूध उपलब्ध होने लगेगा। इसका उद्देश्य यह भी है कि चमड़ा *बनानेवाली संस्थाएँ* इस *संगठनके अन्तर्गत बनाई गई संस्थाओंसे* जोड़ दी जायें या इससे सम्बद्ध की जायें। मैं इन सभीसे, चाहे वे छोटे हों या बड़े हों और राजा-महाराजा हों, जिनकी दृष्टि इन पंक्तियोंपर पड़े, यह अनुरोध करता हूँ कि वे इस संविधानका अध्ययन करें और यदि वे इसे सामान्यतः स्वीकार्य समझें तो वे इस सभामें अवश्य आयें और इस कार्यमें योग दें। किन्तु जो किसी अपरिहार्य कारणसे सभामें शामिल न हो सकें, वे सहानुभूति-सूचक पत्र भेजें और यदि भेज सकें तो नकद अथवा जिन्सके रूपमें चन्दा भेजकर संयोजकोंको अनुगृहीत करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-४-१९२५

२७९. मेरी स्थिति

अभीतक मैंने अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी कोई बैठक नहीं बुलाई है। इस विषयमें बम्बईमें पहली बार मैंने कुछ शिकायत सुनी। एक संवाददाताने मुझसे इस विषयपर सवाल किया और लगा कि वे उसे अत्यन्त महत्व देते हैं। उनके इस आग्रहको कुछ मिनिटतक तो मैं समझ ही न पाया; क्योंकि मुझे इस बातका बिल्कुल पता नहीं था कि इस विषयपर पत्रोंमें कुछ चर्चा चल रही हैं। मुझे लगातार सफरमें रहना पड़ता है इससे अखबारी दुनियासे मेरा ताल्लुक ही टूट गया है। जब मद्रासमें शास्त्रीजीने[1] मुझे बताया तब कहीं सर अब्दुर्रहीमके[2] हकके मन्सूख किये जानेका समाचार कई दिन बाद, मुझे मालूम हुआ। वर्तमान घटनाओंके बारेमें अपने

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।
२. देखिए "राष्ट्रीय सप्ताह", २-४-१९२५।

अज्ञानपर मुझे अफसोस नहीं है। मैं जानता हूँ कि मैं जाहिर तौरपर उनपर कुछ असर नहीं डाल सकता। सर अब्दुर्रहीमके हक मन्सूख किये जाने-जैसी बुराइयोंका कोई तात्कालिक निदान मेरे पास नहीं है। इसलिए वर्तमान घटनाओं सम्बन्धी मेरे अज्ञानसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। मुझे तो अपने-आपको ऐसे कार्यकर्त्ताओंको तैयार करनेमें लगाना है जो कार्यदक्ष हों, अहिंसापरायण हों, आत्मत्यागी हों, जो चरखे और खादीमें, हिन्दू-मुस्लिम एकतामें, और यदि वे हिन्दू हों तो अस्पृश्यता-निवारणमें भी जीवन्त विश्वास रखते हों। कमसे-कम इस सालके लिए तो राष्ट्रका यही कार्यक्रम है, दूसरा नहीं।

मुझे उस शुद्ध "राजनैतिक" कार्यक्रमकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं जिसे कांग्रेसने स्वराज्यदलको, जो कांग्रेसका ही एक अंग है, सौंप दिया है। समयकी बचत करनेवाले व्यक्तिकी हैसियतसे मेरी यह बेवकूफी होगी, अगर मैं उन बातोंके लिए अपना सिर खपाऊँ, जिन्हें मैंने खूब सोच-समझकर और पूरे विश्वासके साथ उन लोगोंको सौंप दिया है, जिन्होंने कि खुद ही अपने लिए उस क्षेत्रको विशेष रूपसे चुन लिया है और जो मुझसे ज्यादा नहीं तो कमसे-कम मेरे बराबर समर्थ हैं। मेरे लिए तो यही पर्याप्त है कि मैं दूरसे देखता रहूँ और इसकी तारीफ करूँ कि विधान परिषद्में पण्डित मोतीलाल नेहरू कैसी बहादुरीके साथ प्रयत्नशील हैं, या देश-बन्धु दासने अपनी तन्दुरुस्ती गँवाकर भी कैसी शानके साथ इस सर्व शक्तिमान सर-कारसे संघर्ष किया और जब-जब सरकारसे उनकी ठनी, वे विजयी हुए; या मध्य-प्रान्तके स्वराज्यवादियोंमें कैसी अनूठी एकता है, और श्री जयकर कैसी शिष्टताके साथ चुपचाप सरकारके घरमें अपने कदम आगे बढ़ा रहे हैं। मैं उनके कामकी अन-धिकारपूर्ण और महत्वहीन चर्चा करके इन महान् कार्यकर्त्ताओंका अपमान नहीं करूँगा। उनकी सफलताके लिए प्रार्थना करके, अनवरत प्रयासों द्वारा जिस एक-मात्र ढंगको मैं जानता हूँ उससे देशको तैयार करके मैं उनकी सहायता कर रहा हूँ।

कांग्रेसमें कोई फूट है, यह मैं नहीं जानता। मैं फूटसे अपना कोई वास्ता नहीं रखूँगा। कार्य-समितिमें अधिकांश सज्जन ऐसे हैं जो पूर्णतः मेरे विचारोंको नहीं मानते। उनका काम है मुझे सीधा रखना। इस साल मैं एक भी ऐसा काम नहीं करना चाहता, जिससे मेरे साथी सहमत न हों। कार्य-समितिकी कोई बैठक बुलाना जरूरी है या नहीं इस विषयपर मैं उन लोगोंसे लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि बिला जरूरत उनका समय नष्ट हो। अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकका आयो-जन भी मैं इन्हीं कारणोंसे नहीं कर रहा हूँ। जब कोई नये आदेश देने हों, या नया कार्यक्रम बनाना हो तभी कांग्रेसकी बैठक की जा सकती है। हमें न तो नये निर्देश देने हैं, और न नया कार्यक्रम ही बनाना है। लगभग ४०० सदस्योंको दूर-दूरसे बुलाना आसान नहीं है। उनमें से अधिकांश गरीब हैं और सब अपने-अपने कामोंमें लगे हैं; ऐसा होना भी चाहिए। इसलिए मैंने जानबूझ कर ही कांग्रेसकी बैठक नहीं बुलवाई है। पर अगर बहुतसे सदस्य यह चाहते हों कि बैठक हो और यदि वे उसका प्रयोजन मुझे लिख भेजें तो मैं अविलम्ब बैठक बुला लूँगा।

जो सबसे जरूरी बात है वह यह कि हर प्रान्त अपना-अपना संगठन करे। प्रान्तीय कमेटियाँ जल्दी-जल्दी बैठक करें। कांग्रेसमें हर प्रान्तको कामके लिए पूरी आजादी तो है ही। हर प्रान्त ईमानदारी और परिश्रमके साथ नये मताधिकारके लिए काम करे। यह मताधिकार सफल नहीं होगा, ऐसा पहलेसे ही माननेकी प्रवृत्ति मुझे दिखाई देती है, इसलिए मैं निराशावादियों और झूठमूठ डरानेवाले लोगोंको बताना चाहता हूँ कि कताईकी हलचलकी जड़ मजबूत हो रही है, कमजोर नहीं। सारे हिन्दुस्तानमें कार्यकर्त्ता चुपचाप, निश्चयपूर्वक प्रभावपूर्ण काम कर रहे हैं। खादी पहलेसे अच्छी और ज्यादा बनने लगी है। खादीको सस्ता और ज्यादा टिकाऊ बनानेके कितने ही नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। तिरुपुर शायद सबसे आगे है। लेकिन देशमें क्या हो रहा है उसका तिरुपुर तो एक नमूना-मात्र है। गुजरातमें प्रयोग अभी शुरू हुआ है। उसके द्वारा बहुत-कुछ करवानेकी सम्भावना है। खादीकी कीमतको ९ आनासे घटा कर ३ आना गज कर देने और साथ ही उसकी किस्म सुधारनेकी कोशिश हो रही है। कताई सदस्यताका अप्रत्यक्ष असर तो पहले ही काफी हो चुका है। प्रत्यक्ष परिणाम उन लोगोंकी योग्यता और ईमानदारीपर निर्भर है जो उसके लिए काम कर रहे हैं। उन्हें मेरी सलाह है:

१. आप सिर्फ उन्हीं लोगोंसे अनुरोध करें जो खुद कताई करते हों और उन सब लोगोंको सदस्य बना लें, जो अपना सूत लायें।

२. परन्तु स्वयं कातनेवालोंके प्रति तटस्थ रहें। उनकी मिन्नत-आरजू न करें। कताई सदस्यता एक विशेषाधिकार है। उन्हीं लोगोंका महत्व है जो इस विशेषाधिकारका मूल्य समझेंगे और उसे कायम रखनेके लिए काम करेंगे।

३. सच्चे सदस्य चाहे थोड़े ही बनें तो भी निराश नहीं होना चाहिए।

४. रुपया लेकर उसके बदलेमें सूत देनेके चक्करमें न पड़ें। जो सदस्य बनना चाहते हैं, उन्हींको सूत लाने दें। जिन्हें सूतकी जरूरत हो, उनके लिए चाहें तो सूतके भण्डार खोल लें। प्रान्तीय खादी मण्डल इस कामको करें।

अब यहाँ मैं अपनी स्थिति स्पष्ट किये देता हूँ। मैं इस त्रिविध कार्यक्रमको अपना चुका हूँ। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकतामें जान नहीं डाल सकता। सो उसके लिए मुझे कोई प्रत्यक्ष कार्यवाही करनेकी जरूरत नहीं। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं उन तमाम मुसलमानोंकी सेवा करूँगा जो मुझे करने देंगे। जो मेरी सलाह चाहेंगे मैं उन लोगोंको सलाह दूँगा। उन दूसरोंकी मैं चिन्ता करना छोड़ देता हूँ जिनके लिए मैं कुछ नहीं कर सकता। लेकिन मुझे अपने मनमें पूर्ण विश्वास है कि एकता जरूर होगी, चाहे वह कुछ घमासान लड़ाइयोंके बाद ही क्यों न हो; किन्तु होगी जरूर। यदि कुछ लोग लड़ना चाहते ही हैं तो दुनियाकी कोई ताकत उन्हें रोक नहीं सकती।

अस्पृश्यताका अन्त आ गया है। सम्भव है कि उसे दूर करनेमें कुछ समय लगे, पर उसे दूर करनेकी दिशामें अद्भुत प्रगति हुई है। यह प्रगति विचार जगतमें ही अधिक हुई है किन्तु व्यवहारमें भी उसका असर चारों ओर दिखाई देता है। उस

दिन माँगरोलमें[1] अछूतोंको अपने साथ बैठानेके खिलाफ एक भी औरतने हाथ ऊँचा नहीं उठाया। और उनके पास आकर बैठ जानेपर भी ये बहादुर स्त्रियाँ अपने स्थान-से नहीं हटीं। दृश्य भव्य था। ऐसा यह अकेला उदाहरण नहीं है। मैं जानता हूँ कि इस चित्रका कृष्ण पक्ष भी है। हिन्दुओंको इस सुधारके लिए अनवरत परिश्रम करना होगा। जितने ही अधिक कार्यकर्त्ता काम करेंगे उतना ही अच्छा नतीजा निकलेगा।

परन्तु कताईमें जो सफलता मिली वही सबसे ज्यादा उत्साहवर्धक है। देहातोंमें भी उसका प्रसार हो रहा है। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि देहातोंके पुनरुत्थानका यही सबसे अधिक कारगर तरीका है। हजारों स्त्रियाँ कातना चाहती हैं। ताकि वे अपने खाने-पीनेके लिए कुछ पैसे कमा सकें। कुछ गाँव ऐसे भी है जिन्हें किसी सहायक पेशेकी जरूरत नहीं है। फिलहाल मैं उनके बारेमें कुछ नहीं कहता। जिस तरह मैं सदस्यताके लिए स्वयं कातनेवालोंकी मिन्नत न करूँगा, उसी तरह मैं पैसेके लिए कातनेकी खुशामद नहीं करूँगा। यदि उन्हें गरज हो तो कातें वरना नहीं। कार्यकर्त्ताके सामने सबसे बड़ी दिक्कत है किसी न किसी कामकी जरूरत रहते हुए भी स्त्री-पुरुषोंको कातने या दूसरा काम करनेके लिए राजी करना। उन्हें लोगोंकी दयापर जीना या भूखों मरना स्वीकार है [काम करना नहीं]। हिन्दुस्तानमें लाखों लोग ऐसे हैं जिनके लिए जीवनमें कुछ रस नहीं रह गया है; हम खुद कातकर ही उनके जीवनमें कुछ उत्साह भर सकते हैं। मेरा तो मन कताईके अनुकूल वातावरण बनानेमें लगा हुआ है। जब बहुतसे लोग किसी एक विशेष कामको करते हैं तब उसका ऐसा सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष असर पड़ता है जो चारों ओर छाकर लोगोंको प्रभावित करता है। मैं ऐसा ही वातावरण चाहता हूँ जिससे वे आलसी लोग जिनका मैंने अभी वर्णन किया है बरबस चरखेकी ओर आकर्षित हो उठें। वे तभी आकर्षित होंगे जब वे देखेंगे कि जिन लोगोंको आवश्यकता नहीं है वे लोग भी चरखा कात रहे हैं। इसलिए इस कताई सदस्यताका विधान किया गया है।

परन्तु यदि कांग्रेसके कार्यकर्त्ता इस कार्यमें हाथ बटाना न चाहते हों तो वे शौकसे अगले साल कार्यक्रमको बदल दें। मैं अगले साल भी निश्चयपूर्वक लड़ाईसे दूर रहूँगा। यदि कुछ थोड़ेसे लोग भी सदस्य बननेके लिए सूत कातेंगे तब भी मैं कताई सदस्यताका समर्थन करूँगा। पर मैं कांग्रेसपर जबरदस्ती अपना अधिकार बनाये रखना नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ अपनी सीमाएँ बता देता हूँ। शक्तिके बिना मैं सुधार नहीं कर सकता। और वह शक्ति लोगोंको हिंसा या अहिंसाके लिए सुसंगठित करने ही से आ सकती है। मैं उन्हें सिर्फ अहिंसाके ही मार्गपर संगठित कर सकता हूँ, या फिर कुछ नहीं कर सकता। पर अभीतक मेरे असफल होनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। सफल होनेकी पूरी आशा है। अहिंसाके लिए संगठन करनेका अर्थ है ग्रामवासियोंको ऐसा काम देना जिससे उन्हें कुछ आमदनी हो, उन्हें अपनी कुछ बुरी आदतें छोड़नेके लिए राजी करना, अछूतोंके मनमें हिन्दुत्वका अभिमान जगाते हुए तथा एक समान उद्देश्यमें विश्वास और उसके हेतु काम करनेके लिए हिन्दू,

१. काठियावाड़में। देखिए "भाषण: माँगरोलकी सार्वजनिक सभामें", ८-४-१९२५।

मुसलमान सभी लोगोंको संयुक्त करते हुए उनमें एक राष्ट्रीयताकी भावना भरना। जबतक ये तीनों बातें पूरी न हो जायें तबतक कोई राजनैतिक काम करनेकी ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं भी हमारे दूसरे बड़े नेताओंकी ही तरह जितनी जल्दी हो सके स्वराज्य स्थापित करनेके लिए ही उत्सुक हूँ। हमपर होनेवाले अन्यायोंको मिटानेके लिए भी मैं उतना ही अधीर और आतुर हूँ जितना कि कोई दूसरा उत्साही देशभक्त। पर मैं राष्ट्रकी सीमाएँ जानता हूँ। उन्हें दूर करनेके लिए मुझे अपनी ही सूझ-बूझके अनुसार काम करना होगा। हो सकता है, यह एक लम्बा और नीरस रास्ता हो। पर मैं जानता हूँ कि यही सबसे छोटा रास्ता साबित होगा। पर लोग एक-सा नहीं सोचते; और सोचना चाहिए भी नहीं। यदि देशमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत ज्यादा हो जो इसी सालमें कांग्रेसकी कार्य-प्रणाली और सदस्यतामें परिवर्तन चाहते हों तो वे ऐसा कर सकते हैं, बशर्ते कि वे यह यकीन दिलायें कि कांग्रेसकी बैठकमें सब सदस्य उपस्थित होंगे और भारी बहुमत उनके पक्षमें होगा। यद्यपि ऐसा करना कांग्रेस संविधानके अनुकूल न होगा, फिर भी कांग्रेस कमेटीका भारी बहुमत यदि संविधानको भी बदलना चाहे तो मैं उसके रास्तेमें बाधक न होऊँगा। यदि ऐसा करनेकी जरूरत दिखलाई जा सके और भारी बहुमत उसके पक्षमें हो तो कांग्रेस कमेटी ऐसा गम्भीर कदम उठा सकती है। पर यदि ऐसे परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं है तो हम सब लोगोंको उचित है कि कांग्रेसके स्वराज्यदल सम्बन्धी काममें किसी प्रकार, किसी रूपमें हस्तक्षेप न करते हुए अपना ध्यान कताई सदस्यताकी ओर लगायें। कांग्रेसका हर सदस्य ईमानदारीके साथ आध घंटा रोज चरखा काते और जिन लोगोंकी रुचि उसमें है वे पूरा समय उसके संगठन कार्यमें लगायें। राष्ट्रसे इतना माँगना कोई बड़ी माँग नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-४-१९२५

२८०. अभागी बहनें

दक्षिण यात्रामें मुझे जितने अभिनन्दन-पत्र मिले उन सबमें अत्यन्त हृदयस्पर्शी वह था जो देवदासियोंकी ओरसे दिया गया था।[1] देवदासीको वेश्या शब्दका सौम्य पर्याय ही समझिए। वह अभिनन्दन-पत्र उस जातिके लोगोंने तैयार और समर्पण किया था जिसमें से हमारी ये अभागी बहनें देवदासी बनाई जाती हैं। जो शिष्टमण्डल मुझे अभिनन्दन-पत्र देने आया था, उससे मुझे यह मालूम हुआ कि उन लोगोंमें सुधार तो हो रहा है पर उसकी गति मन्द है। उस शिष्टमण्डलके मुखियाने मुझसे कहा कि आम जनता इस सुधारकी ओर उदासीन है। सबसे पहला आघात मुझे कोकोनाडामें पहुँचा, और मैंने इस विषयपर वहाँके लोगोंके सामने साफ-साफ शब्दोंमें अपने विचार

१. इस अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिये गये गांधीजीके भाषणके लिए देखिए "भाषण: पुदुपाल्यमके आश्रममें", २१-३-१९२५।

प्रकट किये। दूसरी चोट मुझे बारीसालमें[1] लगी। वहाँ भी इन बदकिस्मत बहनोंका एक दल मुझसे मिलने आया था। उन्हें चाहे देवदासी कहे, और चाहे कुछ और — समस्या एक ही है। यह अत्यन्त लज्जा, परिताप और ग्लानिकी बात है कि पुरुषोंकी विषय-तृप्तिके लिए कितनी ही बहनोंको अपना सतीत्व बेच देना पड़ता है। पुरुषने, विधि-विधानके इस विधाताने, अबला कही जानेवाली जातिको बरबस जो पतनकी राहपर चलाया है, उसके लिए उसे भीषण दण्डका भागी होना पड़ेगा। जब स्त्री-जाति हम पुरुषोंके जालसे मुक्त होकर अपनी आवाज बुलन्द करेगी और जब वह अपने लिए बनाये पुरुष-कृत विधि-विधानोंके खिलाफ बगावतका झण्डा खड़ा करेगी तब उसका वह बलवा — शान्तिमय होनेपर भी — किसी तरह कम कारगर न होगा। भारतके पुरुष, जिनके पापपूर्ण और अनैतिक भोग-विलासके लिए ये बहनें ऐसी शर्मनाक जिन्दगी बसर कर रही है, अपनी इन हजारों बहनोंकी जिन्दगीपर विचार करें। सबसे बढ़कर दयनीय बात तो यह है कि इन घातक और संक्रामक पापागारों पर मंडारानेवाले अधिकांश लोग विवाहित होते हैं, और इसलिए वे दुहरे पापके भागी होते हैं। वे अपनी धर्मपत्नियोंके प्रति भी पापाचार करते हैं, क्योंकि उनके प्रति एकनिष्ठ होनेके लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं और अपनी इन बहनोंके प्रति भी वे पाप करते हैं, क्योंकि उनके सतीत्वकी रक्षा करनेके लिए वे उतने ही बाध्य हैं जितने कि अपनी सगी बहनके। यदि हम, भारतवर्षके पुरुष, स्वयं अपने ही गौरवका खयाल करें तो यह पाप एक दिन भी यहाँ नहीं टिक सकता।

यदि हमारे अधिकांश गण्य-मान्य लोग इस पापमें न फँसे होते तो इस तरहका दुराचार, भूखे आदमीके द्वारा चुराये गये केलेके या एक दरिद्र गिरहकट लड़केके अपराधसे कही भारी अपराध माना जाता। किसी समाजके लिए ज्यादा बुरी और ज़्यादा हानिकर बात क्या है — रुपये-पैसेका या एक महिलाके सतीत्वका लूटा जाना। परन्तु इसपर किसीको यह न कहना चाहिए कि वेश्या तो खुद अपने सतीत्वकी बिक्रीमें भागी होती है, पर एक धनी मनुष्य जिसकी जेब गिरहकट काट लेते हैं, उस अपराधमें भागीदार नहीं होता। तो मैं पूछता हूँ कौन ज्यादा बुरा है — एक गरीब छोकरा जो जेब काट लेता है या एक बदमाश दुराचारी जो किसीको नशा पिलाकर उसके हस्ताक्षर कराकर उसकी सारी जायदाद हड़प कर लेता है? क्या पुरुष अपनी चालबाजी और हिकमत अमलीसे पहले महिलाओंकी उच्च सद्वृत्तिको नष्ट करके फिर उसे अपने पापकी भागिनी नही बनाता है? या क्या पंचमोंकी तरह कुछ स्त्रियाँ पतित जीवन व्यतीत करनेके ही लिए पैदा हुई है? मैं हर युवकसे, वह विवाहित हो या अविवाहित, जो कुछ मैंने लिखा है, उसके तात्पर्यपर विचार करनेका अनुरोध करता हूँ। इस सामाजिक रोग, इस नैतिक कुष्ठके सम्बन्धमें मैंने जो-कुछ सुना है, वह सब मैं नहीं लिख सकता। वे उसकी कल्पना करें और जो स्वयं अपराधी हैं, वे शरम और भयसे इस पापसे दूर रहें। हर शुद्ध हृदय व्यक्ति चाहे वह जहाँ भी हो अपने वातावरणको शुद्ध करनेका भरसक प्रयत्न करे। मैं जानता हूँ कि यह

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ९३।

दूसरी बात लिखना आसान है, करना बहुत कठिन है। विषय बड़ा नाजुक है। पर इसी कारण इस बातकी ज्यादा आवश्यकता है कि सभी विचारशील लोग इसकी ओर ध्यान दें। इन अभागी बहनोंके सुधारका काम केवल वही लोग करें जो इसके लिए विशेष रूपसे योग्य हों। मेरा यह सुझाव है कि उन लोगोंके बीच काम किया जाये, जो इन पापागारोंमें जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-४-१९२५

२८१. संगसारीके बारेमें

मेरा ऐसा कोई विचार नहीं था कि मैं 'यंग इंडिया' के इन पृष्ठोंमें 'कुरान शरीफ' की या उसमें वर्णित किसी भी विषयकी चर्चाको स्थान दूं। पर चूंकि मैंने स्वयं ही संगसारीकी सजाके बारेमें बहस शुरू की थी,[1] इसलिए ख्वाजा साहबके लेखको[2] स्थान देनेसे इनकार करना मेरे लिए उचित न था। इसका उद्देश्य यह है कि 'यंग इंडिया' के पाठकोंको प्रामाणिक तौरपर मालूम हो जाये कि 'कुरान शरीफ' में किसी भी स्थितिमें संगसारीकी अनुमति नहीं है और धर्म त्यागके लिए मनुष्यको उसके जीवनकालमें दण्ड देनेका विधान भी नहीं है। किन्तु 'यंग इंडिया' में संगसारीके विषयमें अब आगे कोई चर्चा नहीं की जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-४-१९२५

१. देखिए "संगसारीकी सजा", २६-३-१९२५।

२. ख्वाजा कमालुद्दीनके इस लेखका आशय इस प्रकार था :

"महात्माजीने इस्लाममें धर्म त्यागके दण्ड-सम्बन्धी विवादको आरम्भ करके इस्लामकी सेवा की है।... **कुरान शरीफ**में निःसन्देह अन्तःकरणकी स्वतन्त्रता दी गई है। वह धर्मके मामलेमें व्यक्तिकी निजी दृष्टि और विश्वासका सम्मान करता है। 'धर्मके मामलेमें किसी भी तरह जोर-जबर्दस्ती न करनेके' सर्वोत्कृष्ट नियमके प्रतिपादनका श्रेय केवल **कुरान शरीफ**को ही है। धर्म छोड़ना आखिर, 'धर्मके बारेमें विचार-परिवर्तन ही तो है। यदि इसे दण्डित किया जाये तो यह धर्मके मामलेमें जोर-जबर्दस्ती होगी और इसलिए यह **कुरान शरीफ**के खिलाफ होगी।... महात्माजी कहते हैं कि हर बातको विवेककी कसौटीपर कसना चाहिए। मैं उनसे सहमत हूँ। **कुरान शरीफ** भी अपने सत्योपदेशोंमें यही कहता है।..."

२८२. सफाई[1]

सम्पादक
'यंग इंडिया'
अहमदाबाद
महोदय,

आपके प्रतिष्ठित पत्रमें त्रावणकोरसे सम्बन्धित एक लेखमें[2] श्री मो० क० गांधी मद्यपानकी बुराईके बारेमें कुछ तथ्य और आंकड़े पेश करते हुए लिखते हैं :

"यह साफ जाहिर है कि राज्यकी सरकार इस निरन्तर बढ़ती आयसे अगर प्रसन्न नहीं है तो वह उसे एक दार्शनिककी भाँति शान्त भावसे अवश्य देखती है।"

मुझे लगता है कि उपर्युक्त कथन सर्वथा निराधार है। . . .मैं केवल तथ्य सामने रखूंगा। . . .ये तथ्य सरकारी तथा गैर-सरकारी व्यक्तियोंकी एक समितिकी गत सप्ताह प्रकाशित रिपोर्टसे लिये गये हैं। यह समिति महाराजाकी सरकारने ऐसे सुझाव देनेके लिए नियुक्त की थी जिनपर चलकर सरकार धीरे-धीरे और सुगमतासे अपनी शराबबन्दी की घोषित नीतिको सफल बना सके।. . . शराब पीनेकी लतको कम करनेके लिए किये गये उपायोंके बारेमें और अधिक विवरण जाननेके लिए ३१ मार्च, १९२५का 'टाइम्स ऑफ इंडिया' पढ़ें।

एक त्रावणकोर निवासी

यह बात नहीं कि मैं ऐसी सफाईके लिए तैयार नहीं था। लेकिन मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं हुआ है। मैंने त्रावणकोर-प्रशासनकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। किन्तु उसकी आबकारी नीतिके बारेमें ऐसी कोई सफाई नहीं दी जा सकती। उद्धत अंश ऐसे लगते हैं मानो ब्रिटिश प्रशासनकी रिपोर्टोंके अंश हों। शराबका मामला इतना कोई उपेक्षणीय मसला नहीं। इस बहुत बड़ी बुराईको दूर करनेमें नरम और शिथिल नीति कारगर नहीं हो सकती। जनताको पूर्णतः मद्य-निषेधके अतिरिक्त अन्य किसी भी उपायसे इस अभिशापसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-४-१९२५

१. अंशतः उद्धृत।
२. देखिए "त्रावणकोरके बारेमें", २६-३-१९२५।

२८३. भाषण: सूपाके गुरुकुलमें[1]

१६ अप्रैल, १९२५

पिछली बार मैं यहाँ आनेका निश्चय करके भी आ नहीं पाया था। आज आया हूँ; किन्तु आप मेरी आवाजसे अनुमान लगा सकते हैं कि मैं जोरसे और देर तक नहीं बोल सकता। मैं चार-पाँच दिनसे बीमार हूँ और भ्रमणके योग्य नहीं रहा हूँ। किन्तु मैंने बहुतसे लोगोंको आशा बँधाई थी, इसलिए मैंने यह विचार किया कि शरीर जितना काम दे सकता है, उतना करूँगा। किन्तु चूँकि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए मुझे जल्दी चले जाना पड़ेगा अन्यथा मैं कुछ समय यहाँ बिताता और आपसे अच्छा परिचय करके ही जाता।

मुझे ब्रह्मचारियोंको देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। मुझे यहाँ मानपत्र देनेकी जरूरत होनी ही नहीं चाहिए। मेरा यहाँ आना कोई आश्चर्यकी बात नही। शायद एक दो गुरुकुल ही ऐसे होंगे, जिनमें मैं नहीं गया हूँ। गुरुकुल कांगड़ी तो गुरुकुलोंका पिता है। मैं वहाँ कई बार गया हूँ। स्वामीजीके[2] साथ मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है। सन् १९०८में जब दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह चला था, तभीसे मेरा उनका सम्बन्ध रहा है। मैं उस समयतक स्वामीजीसे नहीं मिला था। किन्तु उनके ब्रह्मचारियोंने जो काम किया था उसका एक विवरण उन्होंने मेरे पास भेजा था। तब जो सम्बन्ध बना, वह आजतक चला आता है। आपने आर्य समाजके सम्बन्धमें मेरी लेखनीसे लिखी गई कोई आलोचना देखी हो तो आप उससे भ्रमित न हों, क्योंकि मेरी टीका प्रेममय होती है, यह मेरे आत्माकी साक्षी है। गुरुकुल कांगड़ीसे मेरा सम्बन्ध आध्यात्मिक है, और वह अटूट है। अब मैं आपको यह बताऊँ कि गुरुकुल कांगड़ीके ब्रह्मचारियोंने क्या किया था। वह कौनसा काम था जिससे हमारा सम्बन्ध अटूट बन गया।

जब दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रही जेल जाते थे तब भारतसे धनकी वर्षा होती थी। तब सत्याग्रह एक नई चीज थी। किसीको इस बातकी कल्पना भी न थी कि लगभग निरक्षर और थोड़ेसे दक्षिण आफ्रिकी हिन्दुस्तानी गोरोंसे लड़ेंगे और जेलोंमें जायेंगे। किन्तु वे जेलोंमें गये और यहाँ हिन्दुस्तानमें लोगोंके हृदयपर उसका आघात लगा एवं सर्वत्र धन-संग्रह शुरू किया गया। ब्रह्मचारियोंने सोचा कि 'अब हम क्या करें', उनके पास पैसा तो होता नहीं है। पैसा हो तो वे ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते। वे सब स्वामीजीके पास गये। स्वामीजीने उनको शरीर-श्रम करनेकी सलाह दी। वहाँ तब एक बाँध बनाया जा रहा था। स्वामीजीने ठेकेदारको पत्र लिखा कि वे उनके ब्रह्मचारियोंको दैनिक मजूरीपर काम दे दें। ठेकेदारने यह बात स्वीकार

१. यह भाषण मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था।

२. स्वामी श्रद्धानन्द।

कर ली और सूचित किया कि वे ब्रह्मचारियोंको सामान्य मजदूरोंसे अधिक मजूरी देंगे। इससे ब्रह्मचारियोंको बहुत प्रसन्नता हुई। उन्हें तो वह पैसा आफ्रिका भेजना था। ठेकेदारको लगा कि ब्रह्मचारियोंको दो पैसे अधिक दूँ तो अच्छा होगा। इस प्रकार एक-दो दिन निकले। ब्रह्मचारियोंने मजदूरोंसे अधिक काम किया। उनके नेता-को भी भय था कि इस प्रकार काम लम्बा न चलेगा। किन्तु ब्रह्मचारियोंने तो अन्त तक हार नहीं मानी। उन्होंने जिस शक्तिसे आरम्भ किया उसे अन्ततक कायम रखा। मैं आपसे भी अनुरोध करता हूँ कि आप भी ऐसा ही करें। आप देशकी खातिर श्रम-यज्ञ करें। यज्ञका अर्थ है परहित कार्य। उन ब्रह्मचारियोंने जैसा श्रम-यज्ञ किया था वैसा श्रम-यज्ञ देशके निमित्त आप भी करें। वृद्ध जन अधिक श्रम नहीं कर सकते तो वे कुदाली लेकर जमीन खोदें अथवा पाखाने साफ करें।

आपने गुरुकुल कांगड़ीकी कहानी सुनी होगी? (यदि आपने न सुनी हो तो आपके आचार्य पदच्युत कर दिये जाने चाहिए।) वह गंगाके किनारेपर स्थित है। वहाँ बाघ और चीते रहते थे। घना जंगल था। स्वामीजी तो पहाड़-जैसे थे। तुम्हारे-जैसे बच्चे तो एकपर-एक चढ़कर भी उनके कानतक ही पहुँच सकते थे। उन्होंने आप-जैसे बालकोंको वहाँ ले जाकर उनसे सारा काम करवाया। वहाँ बाघ-चीते अब भी रहते हैं। किन्तु वे सब चीतोंसे डरनेवाले नहीं थे। गुरुकुलकी स्थापना इस प्रकार की गई थी। गुरुकुलको सुन्दर बनानेमें स्वार्थ भी है; किन्तु उस स्वार्थमें परमार्थ निहित है। शारीरिक यज्ञके साथ मानसिक यज्ञ भी करना चाहिए। आपको पैसा इकट्ठा करनेके लिए नहीं किन्तु देशसेवा करनेके लिए मनको प्रशिक्षित करना चाहिए। आत्म-यज्ञ भी देशसेवाके लिए ही किया जाता है। आपमें जो भी प्रतिभा हो आप उस सबका उपयोग देश और धर्मके निमित्त करें। आप इस प्रकार त्रिविध यज्ञ कर सकते हैं। आप २५ वर्षकी आयुतक तो ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करें। जिस संस्थामें मनुष्यको २५ वर्षतक निर्विकार रखनेवाली शिक्षा नहीं दी जाती, वह संस्था गुरुकुल नहीं कही जा सकती। ब्रह्मचारी और संन्यासी एक ही कहे जाने चाहिए। ब्रह्मचारी स्वभावतः माताके दूधके साथ ब्रह्मचर्य या संयमका पान करते हैं। किन्तु यदि कोई ब्रह्मचर्यका पालन आजन्म न कर सके तो उसके लिए गृहस्थ आश्रम विद्यमान है। उसका पालन भी संयमसे करना चाहिए। मेरी इच्छा है कि आप संयमीका जीवन बिताना सीखें। इसके लिए आपको मेरा आशीर्वाद भी है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

२८४. गुरुकुलके लिए शुभकामनाएँ[1]

१६ अप्रैल, १९२५

ईश्वरका धन्यवाद है कि मेरी इस गुरुकुलको देखनेकी चिर अभिलाषा आज पूरी हुई। ईश्वर करे यह संस्था फले-फूले और इसमें पढ़नेवाले ब्रह्मचारी धर्म और देशके सच्चे सेवक सिद्ध हों।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३०-४-१९२५

२८५. भाषण: नवसारीके अन्त्यज आश्रममें

१६ अप्रैल, १९२५

आपका कर्त्तव्य दुहरा है। आप अन्त्यजोंपर दूसरोंकी सेवाका दायित्व है। आप सब बालक हैं और आम तौरपर बालकोंकी कोई जिम्मेदारी नहीं मानी जाती। वे जो-कुछ करते हैं शिक्षकों अथवा व्यवस्थापकोंके मार्गदर्शनमें करते हैं। किन्तु यह नियम आपपर लागू नहीं होता। आप बालक होनेपर भी बड़े हैं। मेरे साथ लक्ष्मी[2] है। मैं इससे कहता हूँ कि बहन, तुझपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। तेरे माध्यमसे ही सब अन्त्यजोंकी परीक्षा होगी। जो जगत आज अन्त्यजको दबा रहा है उसको यह बताना तुम्हारा काम है कि अन्त्यजमें और दूसरोंमें कोई भेद नहीं है। अच्छे और बुरे लोग दोनोंमें ही हैं। ये दोनों एक ही हैं; किन्तु हिन्दू समाज यह नहीं मानता। इसे मनवानेका एक साधन यह आश्रम है। ऐसा होनेपर अस्पृश्यताका प्रश्न कुछ हदतक हल हो जायेगा। बच्चोंको क्या करना चाहिए? आप अखाद्य वस्तुएँ न खायें। आप इस बातको अपने मनमें से निकाल दें कि जिनको खराब चीज खानेकी आदत पड़ जाती है, उनको अच्छी चीज मिलनेपर भी वह रुचती नहीं है। आपका धर्म है कि आप स्वच्छ रहनेका पूरा प्रयत्न करें। आप दाँत अच्छी तरह साफ करें। वे दूध-जैसे सफेद होने चाहिए। आप अपनी आँखें और नाक भी साफ रखें। बिस्तरसे उठते ही राम नाम जपें। आप अपने चारों ओरकी वायु स्वच्छ रखें। मनसे शुद्ध रहें और सत्य भाषण करें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

१. गुरुकुल सूपाकी दर्शक-पंजिकामें दर्ज शुभ कामनाएँ गुजराती या हिन्दीमें रही होंगी।

२. दूदाभाईकी कन्या।

२८६. भाषण : पारसियोंकी सभामें[1]

१६ अप्रैल, १९२५

नवसारीकी यात्राका एक रोचक प्रसंग था, पारसी भाइयोंकी सभा। गांधीजीने उनके सम्मुख अपना हृदय ही खोलकर रख दिया था। मैं कह सकता हूँ कि इसका पारसी भाइयोंपर गहरा प्रभाव पड़ा। गांधीजीने कहा कि पारसी भाइयोंसे मेरी मित्रता बहुत पुरानी है और मैं उनका बहुत दिनोंसे ऋणी हूँ। जब दक्षिण आफ्रिकाके गोरे लोगोंने मुझपर आक्रमण करते हुए मेरी जान लेनी चाही थी तब पारसी रुस्तमजीने अपने प्राणों और सम्पत्तिके लिए भारी खतरा मोल लेकर मुझे आश्रय दिया था। जब मैं पहले-पहल इंग्लैंड गया तब मैं दादा भाई नौरोजीके ही चरणोंमें बैठा था। जब मैं १८९६में दक्षिण आफ्रिकासे लौटा तब सर फीरोजशाह मेहताने मेरा मार्गदर्शन किया था। आज भी दादाभाई नौरोजीकी नातिनें और मीठूबाई पेटिट और श्री भरूचा, जिन्हें खद्दरके प्रचारके अतिरिक्त किसी दूसरी बातका कोई खयाल नहीं है, मेरे निकटतम साथियोंमेंसे हैं। तब मुझे इस जातिमें कोई दोष कैसे दिख सकता है? यदि मैं उनके साथ अपना सम्पर्क और भी बढ़ा सकूँ तो मैं अपना अहो-भाग्य समझूँगा। जब मुझे दक्षिण आफ्रिकाके लिए रुपयेकी जरूरत हुई तब मुझे श्री गोखलेने कहा कि रुपये रतन टाटासे मिल सकते हैं और उन्होंने जी खोलकर दान दिया।[2] जब स्वराज्य कोष इकट्ठा किया गया तब सबसे ज्यादा रुपया एक पारसीने ही दिया था। मानव-हितैषियोंकी सूचीमें डॉड्सने पारसियोंको सबसे ऊँचा स्थान दिया है। दानशीलता आत्माका गुण है और वह पारसियोंमें कूट-कूटकर भरा है। यदि आपने भारी दानशीलताके कारण अबतक इतना दिया है, तब क्या आप एक कदम और आगे न बढ़ेंगे? मैं रुपया नहीं माँगता, बल्कि सच्चा दान चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि पारसी बहनें अपने दिलोंमें देशके गरीबोंको स्थान दें। मैं चाहता हूँ कि वे रेशमी साड़ियाँ पहनना छोड़ दें और बिलकुल खद्दर पहनने लग जायें। श्रीमती पेरीन कैप्टेन, श्रीमती नरगिस कैप्टेन, और कुमारी मीठूबाई पेटिट लगनके साथ गरीब पारसी बहनोंसे खादीपर कसीदेका काम करवा रही हैं और उसे धनी पारसी और हिन्दू बहनोंको बेच रही हैं। क्या आप इन बहनोंसे खद्दर नहीं खरीदेंगे? किन्तु सभी लोग धनी नहीं हैं। ज्यादातर तो गरीब हैं। किन्तु एक काम तो गरीबसे-गरीब आदमी भी कर सकता है और वह है, प्रतिदिन आधा घंटा चरखा चलाना। गरीबोंसे अपने आपको एकरूप करनेका एक-मात्र तरीका यही है।

१. महादेव देसाईके "गुजरातमें गांधीजीके साथ" शीर्षक अंग्रेजी लेखसे उद्धृत।

२. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ २९५।

आपसे मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि आप शराब पीना और बेचना छोड़ दें। मैं जानता हूँ कि आपके लिए शराब छोड़ना मुश्किल काम है। मैं अपने मित्र पारसी रुस्तमजीको शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिए बहुत मुश्किलसे राजी कर सका था और साहसी होनेपर भी उन्होंने कुछ दिन बाद अपनी वह प्रतिज्ञा तोड़ दी थी। किन्तु इसके लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए और उसे हमेशाके लिए त्याग देना चाहिए। आपको यह समझ लेना चाहिए कि समाजमें टाटा और धन-कुबेरोंका प्रवाह अनन्त नहीं हो सकता और एक बार समाजको यह बुरी लत पड़ जानेपर धनका यह स्रोत निश्चय ही कभी-न-कभी सूख जायेगा। इसका अर्थ यह होगा कि आपके-जैसी यह एक छोटी जाति बरबाद ही हो जायेगी। आपके लिए शराबका व्यापार छोड़ना मुश्किल नहीं है। आप मेहनती हैं और आपको करनेके लिए दूसरे बहुतसे धन्धे मिल सकते हैं। आपके छोटे समाजके लिए हिन्दुओंके भारी-भरकम समाजकी अपेक्षा यह सुधार करना बहुत आसान है। मैं जहाँ भी जाता हूँ पारसियोंको शराबकी दूकानोंके व्यवस्थापकोंके रूपमें देखता हूँ। आपको इस रूपमें देखकर मेरा दिल तो रोता है। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरी इस सलाहपर ध्यान देंगे और जहाँतक विदेशी कपड़े और शराबबन्दीका सम्बन्ध है, मुझे निश्चिन्त कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

२८७. पत्र : डाह्याभाई पटेलको

चैत्र वदी १० [१८ अप्रैल, १९२५][1]

भाईश्री ५ डाह्याभाई,

तबीयत खराब हो जानेसे मुझे अपना धोलका ताल्लुकेका दौरा इस बार स्थगित करना पड़ा है। इससे मुझे शर्म भी मालूम होती है और दुःख भी। किन्तु मैं तो लाचार हो गया हूँ। मुझमें जितनी शक्ति बची है, उसे मैं आराम करके बंगालके लम्बे प्रवासके लिए संचित रखना चाहता हूँ। इसलिए मैं धोलकाके भाइयों और बहनोंसे आशा करता हूँ कि वे मुझे क्षमा कर देंगे। मेरा धोलकामें आनेका निश्चय तो कायम है ही और अवसर मिलते ही जल्दीसे-जल्दी वहाँ आऊँगा और लोगोंको सन्तोष दूँगा। आप मेरी ओरसे लोगोंको यह आश्वासन दे दें। तबतक मेरी इच्छा है

१. गांधीजी बंगालके दौरेपर अप्रैल, १९२५ के अन्तमें रवाना हुए थे। उन्होंने यह पत्र अवश्य ही उससे पहले लिखा होगा।

कि सभी चरखेका खूब प्रचार करें और खादीका व्यवहार बढ़ायें। वे रुई दें अथवा उसके मूल्यके बराबर पैसा दें और सभी हिन्दू अन्त्यजोंके प्रति प्रेमभाव बढ़ायें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६८९) से।
सौजन्य: डा० पटेल

२८८. तार: मथुरादास त्रिकमजीको

शनिवार [१८ अप्रैल, १९२५][1]

आनन्द जबतक चाहें हमसे सेवा लें।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

२८९. भाषण: जम्बुसरमें[2]

१८ अप्रैल, १९२५

आपने अन्त्यज भाइयोंको भुलानेकी जो भूल की है, मुझे उससे दुःख होता है। जहाँ-कहीं समाजके इस छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण अंगकी उपेक्षा होती है, वहाँकी नगर पालिका कार्य-कुशल नहीं कही जा सकती। हम अपने भाई-बन्धुओंके साथ चाहे कितने भी घुले-मिले क्यों न हों, लेकिन जहाँ सिद्धान्तकी बात हो वहाँ हमें उनका साथ तनिक भी नहीं देना चाहिए। आपने इस नियमका पालन नहीं किया। अपने मनको इस भुलावेमें डालनेके लिए कि आपने मुझे मानपत्र दिया है, आप इस सत्यको भुला बैठे है। आप जिसे मानपत्र देना चाहते हैं, उसके जीवनको इस तरह विभक्त नहीं कर सकते कि उसके एक हिस्सेको तो अपना लें और दूसरेको छोड़ दें। मैंने एक बार नहीं, अनेक बार कहा है कि मैं जीवनमें अस्पृश्यता-निवारणको अपना पहला धर्म समझता हूँ। मैं दिन-रात अस्पृश्यता निवारणकी चर्चा न करूँ तो मैं अपनेको सच्चा हिन्दू नहीं मान सकता। अगर हिन्दू धर्म अस्पृश्यताको न त्यागेगा तो २२ करोड़ हिन्दुओंका, और इसलिए सारे हिन्दुस्तानका, नाश निश्चित है। इसलिए इस मानपत्रको देनेवाले लोग अस्पृश्यता-निवारणके विरोधी या उसके प्रति उदासीन हों, तो उन्हें इस मानपत्रको देनेका अधिकार नहीं था। मानपत्रमें हृदयका भाव आना चाहिए। अगर मैं कोई सरकारी अधिकारी या सरदार होता तो शायद मेरी खुशामद

१. छपे साधन-सूत्रमें शनिवार, तारीख १९-४-१९२५ दी गई है, किन्तु शनिवार १८ तारीखको था।
२. जम्बुसर नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

कुछ ठीक होती। लेकिन मैं न तो सरकारी अधिकारी हूँ और न सरदार। मैं तो भंगी हूँ, चमार हूँ, खेतिहर हूँ और सेवक हूँ। ऐसे सेवकको भी मानपत्र दिया जा सकता है, लेकिन तभी जब आप मेरी प्रवृत्तिके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भागको ठीक समझते हों। हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता, यह सच है। लेकिन अगर वे एक-दूसरेसे लड़ते हैं तो लड़ें; क्या उससे हिन्दू धर्मका लोप हो जायेगा? लड़ते-लड़ते किसी-न-किसी दिन तो हम एक होंगे ही। खादी और चरखेका नाश होनेसे भी हिन्दू धर्मका नाश नहीं होगा। हाँ, हमें अपनी करनीका फल जरूर भोगना होगा, भूखों मरना होगा। लेकिन अगर अस्पृश्यताका निवारण न हुआ तो हम नष्ट हो जायेंगे, हिन्दू धर्म नष्ट हो जायेगा, हमें दुनियाके आगे आँखें नीची करनी पड़ेंगी, हमें दुनियाके आगे जवाब देना होगा, और सभी हमारे विश्वधर्मके उपदेशकी हँसी करेंगे।

यह मानपत्र, मानपत्र नहीं है, बल्कि मेरे लिए एक चेतावनी है। अस्पृश्यताका त्याग किये बिना आप मुझ-जैसे भंगीको कैसे स्वीकार कर सकते हैं? इससे तो अच्छा होता कि आप मुझे यह कह देते, 'हमें आपकी अस्पृश्यताकी बात स्वीकार नहीं है। फिर भी आप यहाँ आना चाहें तो भले ही आयें'। आपने खादीके सम्बन्धमें अपनी कमजोरीको स्वीकार किया है, लेकिन आप जबतक अस्पृश्यताका त्याग नहीं करते तबतक खादीकी प्रवृत्ति भी मन्द गतिसे ही चलनेवाली है। आप अपने मकानकी पाँचवीं या छठी मंजिलपर बैठकर दारुबन्दी भी कैसे करा सकते हैं? आपको सबसे निचले तल्लेपर लगी आगका पता नीचे आये बिना नहीं लग सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-४-१९२५

२९०. भाषण: भड़ौंचमें[1]

१८ अप्रैल, १९२५

आपने प्रेमवश अपने मानपत्रको असंगत विशेषणोंसे भर दिया है। मैं इनके योग्य हूँ या नहीं, यह दूसरी बात है। इसलिए उसका उत्तर देना कठिन है। आपका काम सड़कोंकी सफाई और बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था करना है। इन बच्चोंमें अन्त्यज बालक भी आ जाते हैं। ये सब काम सार्वजनिक हैं और छोटे लगनेपर भी निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु आपने मेरे लिए जिन विशेषणोंका प्रयोग किया है, उनसे इन कामोंको करनेमें आपको कोई सहायता नहीं मिलेगी। यदि आपने मानपत्रमें यह कहा होता, "आप इस कार्यमें आयें। इसमें रस लें, आपकी समाज-सुधारकी प्रवृत्ति हमें अच्छी लगती है और यदि आप इच्छा या अनिच्छासे इस राजनैतिक कार्यमें न पड़ते तो कितना अच्छा होता" तो मुझे ज्यादा खुशी होती। किन्तु आपके मानपत्रमें यह भाव निहित है, ऐसा मानकर इसका उत्तर दो शब्दोंमें देता हूँ।

१. स्थानीय निकायकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें।

मैं परिस्थितिवश राजनीतिमें पड़ा हूँ। यद्यपि मित्र कहते हैं कि मैं राजनीतिके अयोग्य हूँ, क्योंकि मैं खादी, मद्य-निषेध और ऐसी ही अन्य बातोंपर जोर देता हूँ, जिनका राजनीतिसे बहुत कम सम्बन्ध है। किन्तु क्या मुझे इसका भी ज्ञान नहीं है कि सड़कें बहुत ही अच्छी होनी चाहिए? मैं अपने मनमें जानता हूँ कि सड़कोंकी खराब हालत देखकर स्थानीय निकायको कितने लोग गालियाँ देते होंगे। जितने मन धूल मेरे हिस्सेमें आती है उतनी आपके हिस्सेमें नहीं आती होगी; फिर भी आज तो मैं यहाँकी धूलसे त्रस्त हो गया। मैंने मार्गमें ही यह निश्चय कर लिया था कि मैं आज इस बारेमें कुछ कहूँगा। किन्तु यदि मैं यह बात कहूँ तो आप उत्तर देंगे कि सरकारने हमारी तिजोरी खाली कर दी है। यदि आप कहें कि मैं सरकारसे लड़कर आपकी तिजोरीको फिर भरवा दूँ तो आपका यह कथन उचित नहीं कहा जायेगा। आपको स्वयं सरकारसे जोर देकर कहना चाहिए। यदि सड़कें अच्छी हों तो आपको, मुझे और सभीको कितना आराम मिले? आप नालियोंके सम्बन्धमें कितनी जिम्मेदारीसे काम करते हैं, यह मैं नहीं जानता। इसके अतिरिक्त अधिकांश लोग तो किसान हैं। इसलिए इनको जो शिक्षा दी जाती है वह ऐसी होनी चाहिए जो खेतीके धन्धेमें उपयोगी हो। लिखना और पढ़ना सीख लेना ही काफी नहीं हो सकता। एक व्यक्तिने मुझसे यह कहा था कि बच्चोंको जो शिक्षा दी जाती है, वह सब व्यर्थ जाती है। शिक्षाके सम्बन्धमें इन सब प्रश्नोंका विचार करना शिक्षा मन्त्रीका ही काम नहीं है। केवल मन-ही-मन विचार करके वह इनके उत्तर नहीं ढूँढ़ सकता। इस सम्बन्धमें आप जितना करें उतना कम है। आपने अपने मानपत्रमें मेरे लिए जिन टोकरी-भर विशेषणोंका उपयोग किया है, उनका यही उत्तर दिया जा सकता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ७

२९१. भाषण : भड़ौंचकी सार्वजनिक सभामें

१८ अप्रैल, १९२५

देशमें उत्साह नहीं है, इसका कारण चाहे जो हो, किन्तु यदि लोग कहते हैं कि दोष किसी दूसरेका नहीं, आपका ही है क्योंकि आपने ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, जिसे कोई कार्यान्वित नहीं कर सकता तो मैं इस बातको स्वीकार कर लूँगा। किन्तु मेरे पास तो दूसरा कोई उपाय ही न था। यदि कोई बीमार डाक्टरको बुलाये और डाक्टर सभी उचित साधनों और औजारोंके प्रयोगकी बात कहे; किन्तु बीमार उनका प्रयोग करनेसे इनकार करे तो क्या डाक्टर असफल नहीं हो जायेगा? और जैसे बीमार फिर भी उसी डाक्टरसे चिपटा रहे, ठीक ऐसा ही व्यवहार मेरे साथ किया जा रहा है। आपको मेरे साधन नहीं चाहिए; आप मुझे बुलाते हैं, मेरे भाषण सुनना चाहते हैं, किन्तु मेरे सुझाये उपाय काममें लाना नहीं चाहते। मेरी स्थिति ऐसी विषम है। चन्दूलालने बताया कि भड़ौंचके लोग स्नेही हैं। स्नेही तो वे हैं, किन्तु

मैं उसके स्नेहका क्या करूँ? भड़ौंचके लोग मुझसे प्रेम भले ही न करें, किन्तु वे मेरे ऊपर सूत फेंकते रहें, चाहे वे रोषमें ऐसा करें या यह मानकर कि मैं पागल हूँ और मुझे सन्तोष देना चाहिए इसलिए थोड़ा सूत कात कर फेंकें, तो भी मुझे सन्तोष होगा। मैं सूत-सूत इसलिए रट रहा हूँ कि उससे जो पैसा आता है वह नरकंकालोंको मिलता है। वह पैसा जिनके पास मैनचेस्टर, बम्बई और अहमदाबादके शेयर हैं, उनको नहीं मिलेगा। उनको मेरी जरूरत नहीं है, नरकंकालोंको है।[1] . . .

यह कहनेके बाद उन्होंने जगन्नाथपुरीके उन नरकंकालोंकी दयनीय दशा जिसकी चर्चा वे पहले भी कई बार कर चुके है, उल्लेख किया और कहा:

चरखा हमारी आर्थिक उन्नतिकी नींव है। उसका केन्द्र है। आज तो हम अपनी साख खो बैठे हैं; इसलिए हमें लोगोंकी अनन्य सेवा करनी चाहिए। मैं इसी-लिए गाँव-गाँव जाता हूँ। मुझे चरखेकी बात चाहे जहाँ करनेमें न तो लज्जा आती है और न मेरा उस परसे विश्वास ही कम होता है। मेरी श्रद्धा तो दिन-प्रतिदिन गहरी ही होती जाती है। मैंने कताई सदस्यता भी इसी उद्देश्यसे सुझाई थी। आज यदि सूत न कातनेवाले मनुष्य कांग्रेसमें नहीं आते तो इससे कांग्रेसका जहाज डूब नहीं जायेगा। उसमें भले ही पाँच या दस हजार लोग आयें, उनके द्वारा देशकी आर्थिक समस्याका हल निकल सकता है; किन्तु जिन्हें देशकी आर्थिक स्थितिकी परवाह नहीं है, ऐसे करोड़ों लोगोंका भी मेरे लिए कोई उपयोग नहीं है। मेरे लेखे ऐसे लोग बेकार हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-४-१९२५

२९२. टिप्पणियाँ

भूल सुधार

मैंने श्री देवचन्दभाई पारेखकी लड़कीके विवाहके सम्बन्धमें लिखते हुए कहा था[2] कि केवल भाई त्रीकमलाल ही बारातमें गये थे। लेकिन उन्होंने मुझे सूचित किया है कि वे बारातमें अपने साथ अपनी जातीय प्रथाके अनुसार, अर्थात् पच्चीससे अधिक लोगोंको ले गये थे। यह जानकर मुझे दुःख हुआ। उन्हें भी मेरी भूल सुधारते हुए दुःख हुआ। लेकिन किसीको दुःख हो या न हो, भूल तो भूल ही है और वह सुधारी ही जानी चाहिए। जो बात हुई ही नहीं, हम उसकी कल्पना करके कोई उदाहरण नहीं रख सकते। श्री त्रीकमलाल पच्चीस लोगोंको साथ न ले जाते, तो भी काम चलता। लेकिन उन्हें बहुत सारे सुधार करनेके बाद इस सुधारको करनेकी हिम्मत नहीं हुई और इसीलिए वे इतनी बड़ी बारात लेकर गये। फिर भी, उन्होंने दृढ़ता-

१. मूलमें यहाँ कुछ छूटा हुआ है।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", २९-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "चार विवाह"।

पूर्वक इस एक नियमका पालन तो किया ही कि किसी भी बारातीने कन्या-पक्षसे एक कौड़ी भी भेंट नहीं ली।

अन्त्यजोंकी कठिनाइयाँ

काठियावाड़के इस प्रवासमें मुझे अन्त्यजोंके कष्टोंका विशेष अनुभव हुआ। उन्हें गाँवोंमें कुओंसे पानी नहीं भरने दिया जाता। उन्हें पशुओंके हौदोंमें से पानी भरनेकी इजाजत है। उन्होंने बहुत-सी जगहोंमें मुझसे अपने इस कष्टके बारेमें शिकायत की। यह कष्ट कोई छोटा-मोटा कष्ट नहीं है। प्रत्येक गाँवमें उनके लिए अलग कुआँ बनवाया जाये यह लगभग असम्भव है। काठियावाड़की जमीन बहुत कड़ी है और वहाँ पानी बहुत गहराईतक खुदाई करनेपर मिलता है, इसलिए एक कुआँ बनवानेमें तीन हजार रुपयेतक लग जाते हैं। इस हालतमें नये कुएँ कितने बनवाये जा सकते हैं? पानीपर सबका हक होता है। उससे भी अन्त्यजोंको वंचित रखना तिरस्कारकी पराकाष्ठा है। यदि लोग उनके स्पर्श होनेसे अपनेको अपवित्र मानें तो वे उनके लिए पानी भरनेका अलग समय भले ही निश्चित कर दें। मैं नहीं समझ सकता कि ऐसी कठोरतामें धर्म कहाँ है?

अन्त्यजोंके दोष

जिस प्रकार मुझे इस यात्रामें अन्त्यजोंके प्रति निर्दयताका विशेष अनुभव हुआ उसी प्रकार अन्त्यजोंके दोषोंका भी कटु अनुभव हुआ। ढसा, हडाला और माँगरोलके अन्त्यजोंसे बात करनेपर मालूम हुआ कि वे मुर्दार मांस खाते हैं। इस मांसको वे घूल कहते हैं। मैंने उन्हें बहुत समझाया कि वे इस बुरी आदतको छोड़ दें, लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि यह रिवाज बहुत दिनोंसे चला आता है और छोड़ा नहीं जा सकता। मैंने उन्हें बहुत समझाया, लेकिन वे टससे-मस न हुए। उन्होंने यह तो स्वीकार किया है कि उन्हें इसे छोड़ देना चाहिए, लेकिन हममें ऐसा करनेकी ताकत नहीं है, ऐसा कहकर वह चुप हो गये। हिन्दुओंको चाहे कितना ही समझाया जाये, किन्तु उनके मनमें से मुर्दार मांस खानेवालोंके प्रति घृणा और तिरस्कारका भाव निकाल पाना बहुत मुश्किल होगा। लोग उनकी इस बुरी आदतको सहन भले ही करलें, लेकिन वे उन्हें प्रेमसे गले न लगायेंगे। कैसी भी कठिनाई क्यों न हो, अन्त्यजोंको इस बुरी आदतको छोड़नेका भारी प्रयत्न करना ही चाहिए। उनको और उनके साधुओंको एक बड़ा आन्दोलन खड़ा करके चमार बिरादरीसे इस बहुत ही गन्दी आदतको छुड़वा देना चाहिए। एक अन्त्यजने अपनी कमजोरी बताई और कहा कि यदि हमसे मरे हुए ढोर ही न उठवाये जायें तो हम उनका मांस खाना छोड़ दें। मैंने कहा, "दरबार साहब यदि ऐसा नियम बना दें कि कोई चमार मरे हुए ढोरोंको न उठाये तो क्या आपको यह स्वीकार है?" वह तुरन्त बोला: "हाँ, हम लोगोंको यह स्वीकार है।"

"तब आप गुजारेके लिए क्या करेंगे?"

"कुछ भी करेंगे। कपड़ा बुनेंगे, लेकिन शिकायत लेकर आपके पास न आयेंगे।"

इस सवाल-जवाबका अगर कोई परिणाम हुआ तो यही कि मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि हमें चमारके धन्धेका अध्ययन करके उसमें जो बुराइयाँ हैं, उन्हें दूर करना चाहिए।

अन्त्यजोंमें दूसरा दोष यह है कि बुनकर ढेढ़, चमारको नहीं छूता और चमार भंगीको नहीं छूता। इस प्रकार अस्पृश्यता उनमें भी प्रवेश कर गई है। इसका अर्थ तो यह होता है कि हमें चमारों, ढेढ़ों, भंगियों आदिके लिए अलग-अलग कुएँ, और अलग-अलग शालाएँ बनानी होंगी। देशके छः करोड़ अन्त्यजोंके विभिन्न समुदायोंको सन्तुष्ट रखना बहुत मुश्किल है। इसका तो केवल यही उपाय है कि उनमें जो जातियाँ सबसे नीची मानी जाती हैं हम उन्हींका स्पर्श और सिर्फ उन्हींके लिए वहीं काम करें जहाँ उनकी कठिनाइयाँ दूर करना सम्भव है। इससे दूसरी सब कठिनाइयाँ अपने-आप दूर हो जायेंगी।

इन दोषोंके लिए उच्च वर्णके माने जानेवाले हिन्दू लोग ही जिम्मेवार हैं। उन्होंने अन्त्यजोंका सर्वथा त्याग कर दिया और उन्हें आगे बढ़नेको अवसर नहीं दिया, जिससे वे बहुत गिर गये। हमारी उन्नति उन्हें सहारा देकर खड़ा करनेपर ही है। खुद नीचे उतरे बिना किसीको उठाया नहीं जा सकता। उन्हें उठानेसे हिन्दू जाति ऊपर उठेगी।

आदर्श गाँव

अमरेलीसे कुछ दूर स्थित चलाला गाँव है। यह बहुत अंशोंमें एक आदर्श गाँव है। उसमें सुबह-सुबह एक सभा की गई। सभामें बहुत शान्ति और सुव्यवस्था रही। चलालाके लोगोंने स्वयं अपने उद्योगसे सड़कके दोनों ओर पेड़ लगाये हैं, और सींच कर बड़े किये हैं। इसीलिए मैंने वहाँ नीमके ऐसे सुन्दर पेड़ देखे, जैसे इस इलाकेमें और कहीं नहीं देखे थे। वहाँ एक पाठशाला है, जो बहुत अच्छी तरह चल रही है। उसमें अन्त्यजोंको खुला प्रवेश प्राप्त है। इस सभामें अन्त्यज दूसरोंसे घुल-मिल कर बैठे थे। चलालामें खादी कार्यकी भी शाला चलती है। वहाँ लोग कुछ कताई-का काम भी करते हैं। खादी बहुत कम लोगोंने पहन रखी थी। लेकिन जब मैंने प्रतिज्ञा लेनेकी बात कही तो उसमें से बहुतोंने हाथ उठाये। इस सब सुधारका श्रेय सिर्फ चार-पाँच लोगोंको है। मुझे लोगोंने बताया कि इनमें हरगोविन्द मास्टर और उनकी बहन मणि मुख्यतः उल्लेखनीय हैं, क्योंकि उन्होंने इस दिशामें अनवरत परि-श्रम किया है। चलालाको देखकर ही इस बातकी प्रतीति हो सकती है कि एक-दो लोगोंके शुद्ध और सुदीर्घ प्रयत्नसे भी कितना कार्य हो सकता है।

काठियावाड़का रुई-कोष

मैंने अपने जिम्मे १९,२०० रुपये उगाहनेका जो काम लिया है, उसकी असली शुरुआत माँगरोलसे की। ऐसा माना जा सकता है कि वहाँ खासी मात्रामें उगाही हुई। मुझे सभी दानी भाइयोंके नाम तो याद नहीं हैं; लेकिन वहाँसे लगभग दो हजार रुपये मिले हैं। मुझे उम्मीद है कि माणावदरमें भी इससे कम रुपया नहीं

मिलेगा। हम लोग जब माणावदरसे रवाना हुए तबतक भी चन्दा इकट्ठा किया जा रहा था। इसलिए मैं मांगरोल और माणावदरके सम्बन्धमें अधिकृत आँकड़े अगले हफ्ते देनेकी उम्मीद रखता हूँ। जिन्होंने 'नवजीवन' पढ़कर चन्दा भेजा है, उनके नाम नीचे दे रहा हूँ:

पी० एम० पारपिया	१०० रु०
विट्ठलदास जेराजाणी	१११ रु०

मैं यह टिप्पणी यात्राके दौरान लिख रहा हूँ। इसलिए जो रकमें सीधे मेरे पास आई हैं, मैंने उन्हींको यहाँ सूचित किया है।

कमजोर नौजवान

हममें कुछ ऐसे नौजवान हैं जो सब तरहसे नाजुक हो गये हैं—शरीरसे भी नाजुक और मनसे भी नाजुक। इनमें से कुछ नौजवानोंने मेरा "क्या यह असहयोग है?" शीर्षक लेख[1] पढ़कर मुझे पत्र लिखे हैं। उनका आशय यह है कि मैंने इन असहयोगियोंसे उनकी बात नहीं सुनी और उसे समझनेकी कोशिश नहीं की और इस तरह उनके प्रति अन्याय किया है। पत्र लिखनेवाले मानते हैं कि मेरी आलोचना उनपर लागू होती है। मैं तो बिलकुल नहीं जानता कि वह किनपर लागू होती है। मैंने यह लेख किसीको लक्ष्य करके नहीं लिखा। मैंने तो सिर्फ आलोचकोंकी चिट्ठियोंको आधार बनाकर कुछ भ्रमोंका निराकरण किया है। मैंने अपनी आलोचनामें ऐसा एक भी वाक्य नहीं लिखा है जिससे यह मालूम हो कि मैंने चिट्ठियोंमें कही गई बातें मान ली हैं। मेरे पास जब भी कोई ऐसा पत्र आता है जिसमें किसी व्यक्ति-विशेषकी आलोचना हो और उसे पढ़कर मेरे मनमें शंका उठती है तब मैं आमतौरपर पहले उस व्यक्तिके सामने अपनी शंका रखता हूँ और उसके बाद मुझे जो-कुछ कहना होता है, वह कहता हूँ। इस प्रसंगमें तो मुझे एकके अलावा कोई दूसरा नाम याद भी नहीं आता। मेरा लेख बिलकुल निष्पक्ष और तटस्थ था। फिर समझमें नहीं आता कि पत्र लिखनेवालोंने यह कैसे समझ लिया कि मेरी आलोचना उन्हींके सम्बन्ध में है। वे वास्तवमें मेरी आलोचनाके पात्र हैं, तब तो उन्हें दुःखी होनेका कोई कारण ही नहीं, और पात्र न हों तो उन्हें समझना चाहिए कि वह आलोचना उन्हें लक्ष्य करके की ही नहीं गई है।

पत्र लिखनेवाले भाई ऐसा न समझें कि यह स्पष्टीकरण भी मैं उन्हींके लिए कर रहा हूँ। यह स्पष्टीकरण तो हमारी आम तुनुकमिजाजी और रूठने-मचलनेकी प्रवृत्तिको लक्ष्य करकें किया गया है। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंको यह समझना चाहिए कि उनकी आलोचना तो होगी ही। उसे शान्तिसे सहन करना लोकसेवकका एक आवश्यक गुण है। जो दूसरे लोग आलोचना करते हैं, वे भी शुद्ध मनसे ही वैसा करते हैं। उसमें अपवाद होते हैं, यह सच है; और कुछ लोग द्वेष-भावसे भी आलोचना

१. देखिए "क्या यह असहयोग है?", ५-४-१९२५।

करते हैं। लेकिन उन्हें उसे भी सहन करना चाहिए। मेरी आलोचना तो आम ढँगकी और स्थिति-विशेषके सम्बन्धमें थी और है।

प्लेग

जब मैं काठियावाड़की पिछली यात्रा समाप्त करके लौट रहा था तब रास्तेमें राजकोट आया। स्टेशनपर आये हुए भाइयोंसे मिलनेपर मालूम हुआ कि राजकोट तो प्लेगके कारण लगभग खाली हो गया है। इस तरह भयके कारण अपना स्थान छोड़ देना ठीक है या सफाईके नियमोंका पालन करके तथा दूसरे उचित उपाय करते हुए अपने स्थानपर बना रहना ठीक है, इसके विवेचनमें मैं अभी नहीं पड़ूँगा। लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि राजकोट-जैसे शहरको प्लेगसे सर्वथा मुक्त रखनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

लेकिन जिस बातको सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ वह यह थी कि लोग प्लेगके मृतकोंका दाह-संस्कार करनेसे भी डरते हैं और वह काम सेवा-समिति या राज्यको करना पड़ता है। आदमीको मौतका डर चाहे कितना ही क्यों न हो, किन्तु वह अपनोंकी सार-सँभाल करनेके लिए तो बँधा ही हुआ है। मृतकोंका दाह-कर्म करना उसका धर्म है। अगर लोग इस तरह अपने-अपने सामान्य धर्मका भी पालन न करेंगे तो समाजकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी और समाज नष्ट हो जायेगा।

मुर्दा गाड़ी

इस समय भाई छोटालाल तेजपालकी मुर्दा गाड़ीवाली बात याद आती है। वे तो अपनी गाड़ीके पीछे पागल बन गये हैं। जिस प्रकार मैं चरखेको देशकी समस्याका एक-मात्र हल समझता हूँ, उसी प्रकार वे अपनी मुर्दा गाड़ीकी योजनाको सबसे अधिक महत्त्वकी बात मानते हैं। लेकिन हम उनकी अतिरंजनाका अथवा उनके पागलपनका खयाल न करें। वे जो बात कहते हैं, उसमें जितना सत्य है, हम उसीपर विचार करें। उनकी दलील यह है कि मुर्दोंको कंधोंपर उठाकर ले जाना बहुत कष्टकर होता है, उसमें कई लोगोंकी जरूरत होती है और बहुतसे गरीब लोगोंके लिए तो वैसा करना लगभग असम्भव ही है। इसलिए उनका कहना है कि मुर्देको मुर्दा गाड़ीमें ले जाना ही ठीक है। उन्होंने उसी खयालसे राजकोटमें एक मुर्दा गाड़ी रखी है और वे उसका निःशुल्क उपयोग करने देते हैं। हर मौकेपर मुर्देको मुर्दा गाड़ीमें ही ले जाना चाहिए या नहीं, हम इस प्रश्नको अभी तो छोड़ ही दें, लेकिन, इस तरह प्लेग-जैसे महारोगके समय जब लोगोंकी बहुत कमी रहती है और मुर्देको उठानेवाले लोगोंको खतरा भी रहता है, तब जरूरत पड़नेपर मुर्दा गाड़ीका निस्संकोच उपयोग करना समझदारीकी बात है। मुर्देको कंधेपर ही ले जाना चाहिए, यह कोई शास्त्रका आदेश नहीं है। यह तो सिर्फ रिवाजकी बात है। जहाँ श्मशान बहुत दूर हो, सख्त गर्मी पड़ती हो, और कंधा देनेवालोंकी कमी हो, वहाँ मुर्दा गाड़ी बहुत मददगार होती है। भाई छोटालालने जिस मुर्दा गाड़ीका प्रबन्ध किया है, उसे आदमी ले जा सकते हैं। उसे खींचनेके लिए घोड़ा वगैरा रखनेकी जरूरत नहीं है। उसे एक-

दो आदमी ही बिना थकावट महसूस किये खींच सकते हैं। मैं सभीको यह सलाह देता हूँ कि अवसर आनेपर इस गाड़ीका उपयोग करें।

खादी बुननेवालोंसे

गुजरातमें बननेवाली खादीकी किस्म पिछले चार वर्षोंमें लगातार सुधरी है। लेकिन उसमें अब भी बहुत सुधारकी जरूरत है। उसका अर्ज बहुत छोटा होता है। जैसे-जैसे सूतकी किस्म सुधरे वैसे-वैसे खादीका अर्ज बढ़ना चाहिए। हमारा लक्ष्य यह है, और यही होना भी चाहिए कि हर प्रान्त अपनी जरूरत-भरके लिए हर किस्मका खद्दर स्वयं तैयार करे।

बाढ़-पीड़ितोंके सहायतार्थ चरखा

बाढ़के कारण जिन लोगोंको अपना सर्वस्व खोना पड़ा है, मलाबारमें उन्हें मदद देनेका काम आज भी चल रहा है। उसमें मेरी मार्फतसे जो पैसा भेजा गया उसके कुछ हिस्सेका उपयोग चरखेके द्वारा मदद देनेमें किया जा रहा है। मलाबारकी औरतोंको इसकी जानकारी न होनेके कारण उन्हें सब सिखाना पड़ता है। पंजाबमें तो इससे उलटा हुआ है। वहाँ भी कुछ हिस्सोंमें बहुत नुकसान हुआ था। ऐसे लोगोंके लिए चरखा एक नियामत हो गया है। पहले-पहल तो उन्हें मददके तौरपर आटा दिया जाता था। लेकिन बादमें किसीको उन्हें चरखेके सहारे रोजगार देनेकी बात सूझी। प्रत्येक घरमें चरखा तो था ही। बहनें कातना भी जानती ही थीं। उन्हें बाजार-भावसे अधिक मजदूरी देनेका निर्णय हुआ। यह कार्य अब अच्छी तरह चल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इसका इन्तजाम किसी चरखा-शास्त्र जाननेवालेके हाथमें होता तो आज जो नुकसान उठाना पड़ रहा है, वह न उठाना पड़ता। यदि खादीका उपयोग सभी करने लगें, तो पीड़ित लोगोंको चरखेके द्वारा सहायता देनेका काम बहुत आसान हो जाये।

अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल

बम्बईमें २८ मईको, ८ बजे शामको एक सभा माधवबागमें होगी, जिसका हेतु इस मण्डलकी स्थापना करना है। इस विचारका जन्म कैसे हुआ, यह 'नवजीवन'के पाठकोंको मालूम है। मुझे उम्मीद है कि जिन लोगोंको गोरक्षा प्रिय है और जो इसे अपना धर्म मानते हैं, वे सब उस सभामें अवश्य उपस्थित होंगे। इसका उद्देश्य तो तभी पूरा होगा जब बहुत सारे गो-सेवक उसमें योगदान करेंगे। गोरक्षा हिन्दू धर्मका सर्वसामान्य रूप है। लेकिन गोरक्षा केवल इच्छा करनेसे ही नहीं हो जायेगी। वह तो तभी होगी जब इस विषयपर विचार करनेवाले हम लोग उचित उपाय करेंगे। इसलिए इस विषयपर विचार करने और तदनुसार कार्य-योजना करनेवाली एक संस्थाका होना जरूरी है। ऐसी संस्थाकी स्थापना के उद्देश्यसे ही यह सभा बुलाई गई है। आशा है, उसमें गो-सेवक बहुत बड़ी संख्यामें उपस्थित होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-४-१९२५

२९३. पत्र : कल्याणजी वि० मेहताको

चैत्र वदी १२ [२० अप्रैल, १९२५][1]

भाई कल्याणजी,

साथमें प्रागजीका[2] पत्र है जो पार्वतीको[3] और मुझे लिखा गया है। पार्वतीका उत्तर और मेरा पत्र भी मुझे लौटा देना, ताकि मैं प्रागजीको प्राप्ति-स्वीकृति भेज सकूँ। यदि प्रागजीको कोई बात और कहनी हो तो वह भी मुझे लिखना। क्या तुम उनसे मुलाकात करने जा रहे हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २६७५) की फोटो-नकलसे।

२९४ पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

चैत्र कृष्ण १२ [२० अप्रैल, १९२५][4]

भाई ब्रजकृष्ण,

तुमारा खत मीला। मुझको वहोत अच्छा लगा। उसी खतपर से मैं दिल्हीके बारेमें कुछ लीखुंगा। तुम शांत चित्त होंगे।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० २३४९) से।

१. इन दिनों प्रागजी खण्डूभाई देसाई जेलमें थे।

२. दक्षिण आफ्रिकाके दिनोंसे गांधीजीके साथी।

३. प्रागजीकी पत्नी।

४. दिल्लीके विषयमें लिखनेके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२५में ही लिखा गया होगा। देखिए "दिल्लीमें खादी", २३-४-१९२५।

२९५. तार[1]

[२१ अप्रैल, १९२५ या उससे पूर्व]

मुझे मलेरिया हो गया था लेकिन अब पहलेसे अच्छा हूँ। आशा है नागपुर मेलसे पहली मईको कलकत्ता[2] पहुँचूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २१-४-१९२५

२९६. टिप्पणियाँ

वाइकोम

पाठकोंको यह जानकर खुशी होगी कि त्रावणकोर सरकारने श्रीयुत करूर नम्बूद्रीपादको रिहा कर दिया है और श्रीयुत रामास्वामी नायकरके विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञाको वापस ले लिया है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि त्रावणकोर सरकार मेरे और पुलिस आयुक्तके बीच हुए समझौतेको अमलमें लानेवाली है। इस सुधारके प्रति, जो कि बहुत पहले हो जाना चाहिए था, त्रावणकोर सरकार जो प्रशंसनीय उत्साह दिखा रही है उसके लिए मैं उसे बधाई देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि अस्पृश्योंको मन्दिरके आसपासके सार्वजनिक रास्तोंपर जानेकी जो मनाही है, उसे जल्दी ही समाप्त कर दिया जायेगा। मुझे सत्याग्रहियोंको यह याद दिलानेकी कोई जरूरत नहीं है कि उनके लिए समझौतेका अक्षरशः पालन करना कितना आवश्यक है।

फिर बंगाल

मैं बंगाल यात्राकी बड़ी आशाके साथ प्रतीक्षा कर रहा हूँ। बंगालकी कल्पना-शक्ति सर्वोत्कृष्ट है। बंगाली युवक कुशाग्र बुद्धि होते हैं। वे आत्मत्यागी भी होते हैं। बंगालके हर प्रान्तसे जो पत्र मुझे मिले हैं, वे बड़े लुभावने हैं। काश, मेरा स्वास्थ्य ऐसा होता कि मैं सफरकी सारी थकानको बरदाश्त कर पाता। काठियावाड़के सफरमें मुझे मियादी बुखार हो गया था जो अब ठीक हो गया है, फिर भी उसने मुझे बहुत कमजोर बना दिया है। रवाना होनेके लिए अभी ९ दिन बाकी हैं और मैं आशा करता हूँ कि इतने समयमें मुझमें काफी शक्ति आ जायेगी। परन्तु व्यवस्थापकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे मेरा रोजका कार्यक्रम यथासम्भव हल्का रखें। मैं यह फिर कहता हूँ कि मेरी इच्छा है कि यह यात्रा पूरी तरह सुव्यवस्थित हो।

१. यह साबरमतीसे कलकत्ताको दिया गया था।

२. फरीदपुरमें होनेवाले बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके सिलसिलेमें।

लोग कहते हैं बंगाली व्यवहार-कुशल नहीं होते। उन्हें चाहिए कि वे इस इल्जामको झूठा साबित कर दें। यदि कुशाग्र बुद्धि और कल्पना-शक्तिके साथ व्यवहार-कुशलताका संयोग हो जाये तो वे कुछ भी कर सकते हैं। भगवान् करे, बंगालमें यह संगम मुझे दिखाई दे। मैं उम्मीद करता हूँ कि बंगालमें हर जगह आँकड़ोंके सहित पूरी-पूरी जानकारी मिलेगी। अभिनन्दन-पत्रोंमें यदि मेरे गुणगानकी अपेक्षा अपने जिले या कस्बे-की गतिविधियोंका सच्चा विवरण हो तो इससे मुझे कितनी जानकारी हो जायेगी! जैसे, हर अभिनन्दन-पत्रमें स्वयं कातनेवाले तथा अन्य सदस्योंकी संख्या बताई जा सकती है, कितने चरखे चालू हैं, हर चरखेपर औसतन कितना सूत काता जाता है, सूत कितने अंकका होता है, हर माह कितना सूत और खादी तैयार होती है, हाथकते तथा दूसरे सूतका कपड़ा बुननेवाले करघे कितने हैं, हर जगह कितने खादी-भण्डार हैं और उनमें कितनी बिक्री होती है, आदि बातें लिखी जा सकती हैं। राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा महाविद्यालयोंकी और उनमें पढ़नेवाले लड़के-लड़कियोंकी संख्या भी उसमें दर्ज की जा सकती है। अछूतोंमें क्या-क्या काम हो रहा है, संगठित रूपसे उनके बीच काम करनेके पहले उनकी हालत क्या थी और अब क्या है, इसका उल्लेख भी कर सकते हैं। उसमें हिन्दू-मुसलमानोंके सम्बन्धमें और शराब तथा अफीमका व्यापार कैसा है, इसका उल्लेख किया जा सकता है। यदि अब इन तमाम बातोंका समावेश अभिनन्दन-पत्रमें न किया जा सकता हो तो अच्छा होगा कि अलहदा कागजपर ही यह ब्यौरा मुझे दिया जाये। एक बात और कह दूँ। मुझे कीमती मंजूषा और फ्रेममें जड़े हुए अभिनन्दन-पत्र न दिये जायें। यह ठीक नहीं है। यदि ये सिर्फ हाथसे बने कागज या एक खादीके टुकड़ेपर हाथसे लिखकर दे दिये जायें तो मुझे उससे ही सन्तोष हो जायेगा। बंगालको यह बतानेकी जरूरत नहीं कि उसपर बहुत रुपया खर्च किये बिना या उसे बहुत लम्बा-चौड़ा बनाये बिना भी अभिनन्दन-पत्र कलात्मक बनाया जा सकता है। त्रावणकोरमें कई जगह अभिनन्दन-पत्र छोटे कोमल ताड़पत्रोंपर लिखकर दिये गये थे। जैसे मैं भारतके हृदयतक पहुँचना चाहता हूँ, उसी तरह बंगालके हृदयतक भी पहुँचना चाहता हूँ और जहाँ दो हृदयोंमें सीधा सम्बन्ध हो वहाँ कीमती चीजें और सुन्दर शब्द सहायक होनेके बजाय बाधक होते हैं। मैं कामोंका भूखा हूँ, शब्दोंका नहीं। भारी सोने या चाँदीकी चीजोंकी अपेक्षा ठोस खादी-कार्य मुझे अधिक प्रिय है।

सिखोंकी दुःख कथा

सिखोंके दुःखोंका अन्त अभी नहीं आया है। अमृतसरसे एक तार है:

> शि० गु० प्र० समितिको दिल दहलानेवाली खबर मिली है कि १६ अप्रैलको नाभा कैम्प जेलमें दूसरे शहीदी जत्थेके लोग पीटे गये और उनके दाढ़ी और केश उखाड़ लिये गये। उन्हें इसलिए पीटा गया कि वे माफी नहीं माँग रहे हैं। दाढ़ी और सिरके उखाड़े गये केश भी समितिको मिले हैं। इस तरह पीटे जानेवाले ११४ लोग नाभामें हैं। उनका विवरण इस प्रकार है: सातकी

हालत गम्भीर है, दोके सिर, आठके चेहरे, दसके हाथ, सातकी जाँघ, आठकी पिंडली, आठके गुह्य स्थान, पाँचकी पीठपर गहरी चोट लगी है और कोई ५१ लोगोंको साधारण चोटें आई हैं। कृपया नाभा कैम्प जेलमें तुरन्त आनेका प्रयत्न करें।

यह वर्णन सही हो सकता है और गलत भी। यदि यह सच हो तो इसकी निष्पक्ष और खुली जाँच होनी चाहिए। सरकार इस मामलेमें तटस्थ नहीं रह सकती। क्योंकि राज्यका प्रशासन उसीका एक अफसर कर रहा है। सिख भाइयोंसे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि हर अन्यायका इलाज होता है। और यदि ये आरोप सच साबित हुए तो इस अन्यायका निदान भी जल्दी होगा। एक पत्रकार तथा कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे आज मैं इस घटनाको छापने और सिखोंके प्रति अपनी हमदर्दी जाहिर करनेके सिवा कुछ नहीं कर सकता। यदि ईश्वरने चाहा तो मैं जल्दी ही उनके लिए कुछ कर सकूँगा। निर्दोष व्यक्तिपर की गई एक-एक चोट हर कांग्रेसी और हर पत्रकारपर की गई चोट है। और ये चोटें क्या हैं? इन चोटोंसे जो घाव हुए हैं उनसे उठनेवाली कराह न केवल संसारके हर कोनेतक पहुँचती है बल्कि अन्तरिक्षको पार करके न्यायकी पुकारको प्रभुके चरणोंतक पहुँचा देती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

२९७. अभीतक कोई लक्षण नहीं

दक्षिण यात्राके समय मुझे कितने ही अभिनन्दन-पत्र दिये गये थे। एक अभिनन्दन-पत्रमें नीचे लिखा उल्लेखनीय वाक्य था :

> यद्यपि आपने बारडोलीका कार्यक्रम स्थगित कर दिया है, तथापि हमें यह आशा लगी हुई है कि आप हमें निकट भविष्यमें समर क्षेत्रमें ले जायेंगे और सब वहाँ स्वराज्य-संग्राममें जूझते हुए अपने मतभेदोंको भूल जायेंगे। उस युद्धमें हमारा हथियार होगा वही शुद्ध और स्वच्छ शान्तिमय सामूहिक सविनय अवज्ञा जिसके बिना उस राष्ट्रसे — जो महा लालची है और हमें स्वराज्य नहीं देना चाहता और जिसका साम्राज्यवाद निर्दयतापूर्ण शोषणके अतिरिक्त और कुछ नहीं — स्वराज्य लेना असम्भव-सा है।

इसमें बारडोली सम्बन्धी निर्णयपर कुछ निराशा प्रकट की गई है। हाँ, बहुतसे लोग उस समय भी ऐसा मानते थे और अब भी मानते हैं कि बारडोलीका निर्णय एक भारी राजनैतिक भूल थी और उससे यह प्रकट हो गया कि मैं राजनैतिक नेता होनेके नितान्त अयोग्य हूँ। परन्तु मेरी रायमें बारडोलीका निर्णय, मेरी देशके प्रति एक बड़ी सेवा है। उससे मेरी राजनैतिक निर्णयशक्तिका अभाव नहीं सूचित

होता, बल्कि प्रचुर राजनैतिक दूरदर्शिता ही प्रदर्शित होती है। तबसे अबतक जो-जो सबक हमने सीखे हैं वे सीखनेके ही योग्य थे। यदि हम उस समय कोई सस्ती विजय प्राप्त कर लेते तो वह हमें अन्तमें बहुत महँगी पड़ती और भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी सत्ताकी जड़ें और भी मजबूतीसे जम गई होतीं। यह बात नहीं कि वह अब भी काफी मजबूत नहीं है। पर उस अवस्थामें वह मजबूती बहुत ज्यादा असरदार होती।

आलोचक कह सकते हैं कि ये सभी तर्क सम्भावनापर आधारित हैं। यह बात ठीक है। लेकिन मेरे नजदीक तो यह सम्भावना निश्चितताके ही करीब पहुँच जाती है। कुछ भी हो; बारडोलीके इस निर्णयसे अब यह आशा बँधती है कि वह दिन दूर नहीं है जब संघर्ष छेड़ना बहुत सम्भव हो जायेगा। अब जो लड़ाई छेड़ी जायेगी वह अवश्य ही कोई फैसला करनेपर ही खतम होगी। पर आज मुझे यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार करनी पड़ती है कि भारतके क्षितिजपर आज कोई ऐसा लक्षण नहीं दिखाई देता जिससे शीघ्र ही सामुदायिक सविनय अवज्ञाकी आशा मनमें बाँधी जा सके। इसका एक कारण यह है कि संग्रामके लिए पर्याप्त कार्यकर्त्ता नहीं हैं। हमने अबतक जनतासे गहरा सम्बन्ध स्थापित करनेकी जितनी योग्यता दिखाई है, हमें उसके साथ उससे कहीं अधिक गहरा सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। हमने अबतक जनताकी जितनी सेवा करनेकी और उसके साथ जितनी एकरूपता प्राप्त करनेकी इच्छा की है, हमें उससे अधिक सहानुभूतिपूर्ण और अनवरत सेवा करने और उसके साथ एकरूप होनेकी जरूरत है। हमें उसके साथ एक-रस होकर उससे आत्मीयता अनुभव करनी चाहिए। हम तभी लोगोंका नेतृत्व सफलतापूर्वक करने और उन्हें शान्तिमय विजयके द्वारतक ले जानेकी आशा कर सकते हैं। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि जब हम उस अवस्थाको प्राप्त हो जायेंगे तब हमें सामूहिक सविनय अवज्ञा करनेकी आवश्यकता शायद ही रहेगी। पर यह विश्वास तो हमारे अन्दर होना ही चाहिए। आज तो कमसे-कम मुझमें, ऐसा विश्वास जरा भी नहीं है। आजकी हालतमें सामूहिक सविनय अवज्ञा करनेकी किसी भी कोशिशका आवश्यक परिणाम होगा — जहाँ-तहाँ अनियन्त्रित हिंसाका विस्फोट। उसे सरकार उसी दम दबा देगी। परन्तु सविनय अवज्ञामें तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरह हिंसा करनेकी या हिंसाका समर्थन करनेकी गुंजाइश ही नहीं है। चरखेकी योजना निस्सन्देह इसीलिए की गई है कि उससे वैसा वातावरण तैयार होगा। चरखा उच्चतम कोटिकी समाज-सेवाका प्रतीक है। इसमें हम राष्ट्रीय सेवकोंको जनताके साथ एक सूत्रमें बाँधनेकी शक्ति है। यह लोगोंके अन्दर ज्ञानमय पारस्परिक सहयोग उत्पन्न करनेवाला — ऐसे पैमानेपर कि जिसे दुनियाने अबतक नहीं देखा — अग्रदूत है। चरखा कार्यक्रमके असफल होनेका अर्थ यह होगा कि फिर जनतामें चारों ओर घोर निराशा छा जायेगी और भुखमरी फैल जायेगी। चरखा तथा उसके पीछे जो चीजें हैं उनके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिससे जनता इतनी जल्दी अपने पैरोंपर खड़ी हो सके। उसकी गति किसीके रोके नहीं रुक सकती। वह निर्दोषताकी तो साक्षात्

मूर्ति ही हैं। वह जनताकी दरिद्रतामें सम्मानका सुयोग करता है; क्योंकि उसके द्वारा उसकी हीनताका नाश हो जाता है। चरखा तेजीसे आगे बढ़ रहा है — अलबत्ता उतनी तेजीसे नहीं जितना हमारी प्रयोजन-सिद्धिके लिए आवश्यक है, उतनी तेजीसे भी नहीं, जितना विदेशी कपड़ेको देशसे हटानेके लिए जरूरी है।

पर निराश होनेका तो कोई कारण ही नहीं। चरखा तूफानोंका सामना करेगा और उनमें से सही सलामत निकलेगा और मेरे पास तो भारतके स्वातन्त्र्य संग्राममें जूझनेके लिए सत्य और अहिंसाके सिवा दूसरे कोई साधन ही नहीं हैं। इसलिए मैं तो चरखेपर ही अड़ा रहूँगा। अतः यद्यपि आज सामुदायिक सविनय अवज्ञा व्यावहारिक दृष्टिसे असम्भव है तथापि वैयक्तिक सविनय अवज्ञा तो किसी भी दिन की जा सकती है। पर उसका अभी समय नहीं आया है। क्षितिजपर बहुतसे काले और खतरनाक बादल छाये हैं। हमारी भीतरी कमजोरियाँ हैं, जो सिर उठा रही हैं और हमें दबा लेना चाहती हैं। चरखेमें, अस्पृश्यता-निवारणमें और हिन्दू-मुस्लिम एकतामें पूरा विश्वास करनेवालोंकी निष्ठाकी कसौटी अभी होनी है ताकि निश्चिन्त रूपसे मालूम हो सके कि कौन कितने पानीमें है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

२९८. पुनः वर्ण-व्यवस्था

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:[1]

आपने अपने हालके मद्रासके भाषणमें[2] चतुर्वर्ण-व्यवस्थामें अपना विश्वास पुनः व्यक्त किया है। किन्तु क्या वर्ण सर्वथा आनुवंशिक होने चाहिए? कुछ लोग कहते हैं कि आप आनुवंशिकताके सिद्धान्तका दृढ़तासे पालन करनेके पक्षमें हैं, कुछका खयाल है कि आप इस पक्षमें नहीं हैं। आपके लेखोंका अवलोकन करनेके बाद मुझे भी पहले पक्षका विचार ठीक लगता है। उदाहरणके लिए, आपकी उक्ति है कि अछूतोंको शूद्रोंके वर्णमें शामिल किया जाना चाहिए और उन्हें सभी अब्राह्मण सुलभ अधिकार दिये जाने चाहिए। इसका और क्या मतलब हो सकता है? ब्राह्मण और अब्राह्मणके बीचके पुराने और मनमाने भेदभावको बनाये रखनेकी बात निरन्तर क्यों दोहराई जाती है। मानो वे दोनों जैविक शास्त्रकी दृष्टिसे दो भिन्न जातियोंके प्राणी हों? यदि एक अछूत अब्राह्मण वर्गमें आ सकता है, तो क्या वह इसी जीवनमें ब्राह्मण नहीं बन जा सकता? फिर यदि एक अछूतका शूद्र बन जाना सम्भव है तो इसी जन्ममें

१. अंशतः उद्धृत।
२. देखिए "भाषण: मद्रासकी सार्वजनिक सभामें", २२-३-१९२५।

एक शूद्रका वैश्य बन जाना और वैश्यका क्षत्रिय बन जाना या क्षत्रियका ब्राह्मण बन जाना क्यों असम्भव है? जो लोग इसे सम्भव मानते हैं, आप उनके सम्मुख कर्मके सिद्धान्तकी बात क्यों उठाने लगते हैं? क्या एजवाहा जातिके श्री नारायण गुरु स्वामीसे भी बढ़कर कोई ब्राह्मण कहीं है? मैं तो बनिया गांधीसे बढ़कर ब्राह्मण किसीको भी नहीं मानता। मैं ऐसे सैकड़ों अन्य अब्राह्मणोंको भी जानता हूँ जो (ब्राह्मण शब्दके अच्छेसे-अच्छे अर्थमें) बहुतसे जन्मजात ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अधिक अच्छे हैं।

यदि आप आनुवंशिकताके सिद्धान्तको सख्तीके साथ लागू करनेके पक्षमें न होते तो आप एक ही जातिके, एक ही धर्मके और एक ही तरहके रीति-रिवाजोंको माननेवाले लोगोंके, जैसे कि तीनों द्विजातियोंके लोगोंके, बीच अन्तर्जातीय विवाहोंको वर्जित न ठहराते। और तब न आप सहभोजोंका, जैसे शाकाहारी ब्राह्मणों और शाकाहारी अब्राह्मणोंके बीच परस्पर खान-पानके सम्बन्धका, इतना उग्र विरोध करते।

यह सच है कि आनुवंशिकता जीवनका एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण नियम है, परन्तु उसकी रहस्यपूर्ण प्रक्रियाओंको नियन्त्रित करनेवाले कुछ नियम हैं, जो उससे कहीं महत्त्वपूर्ण हैं। एक नियम है जिसे जैविक शास्त्रके विकासवादी सिद्धान्तकी भाषामें विविधताका नियम कहा जाता है। आनुवंशिकता स्थिर चीज है और विविधताका नियम विश्वका एक गतिशील नियम है। ज्यादा अच्छे शब्दके अभावमें हम जिसे "प्रगति" कहते हैं, उसके पीछे मूल शक्ति या प्रेरणा इसी विविधताके नियमकी रहती है। सामाजिक व्यवस्था कोई भी हो, वह आनुवंशिकताके नियमकी अवहेलना नहीं कर सकती, यदि करेगी तो उसे हानि उठानी पड़ेगी और न ही कोई सामाजिक व्यवस्था विविधताके नियमकी ही अवहेलना कर सकती है, यदि करेगी तो उसे खतरा उठाना पड़ेगा। भारतमें वर्ण-व्यवस्थाका इतिहास इसका पर्याप्त साक्षी है।

मैं समझता हूँ कि पत्र-लेखकने वर्णाश्रम-धर्मके खिलाफ जितने भी तर्क दिये हैं, मैं उन सबका उत्तर पहले दे चुका हूँ। परन्तु पाठक स्पष्ट ही जो-कुछ पढ़ते हैं, उसे भूल जाते हैं या फिर जिन पाठकोंका उस समय जिस समाचारसे सम्बन्ध होता है, वे उसमें से अपने मतलबकी चीजको पढ़ लेते हैं। उदाहरणके लिए, मैंने इस तरह कई बार वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यतामें क्या भेद है, सो बताया है। एकको तो मैंने एक तर्क-संगत वैज्ञानिक तथ्य कहकर उसका समर्थन किया है और दूसरीको निरर्थक परिवर्धन और सर्वथा हानिकर वस्तु कहकर त्याज्य बताया है। यह हो सकता है कि मोटी अक्ल होनेके कारण मुझे वहाँ भी भेद दिखता हो जहाँ कोई भेद है ही नहीं। यह भी हो सकता है कि मैं अज्ञान या अन्धविश्वासको ही ज्ञान समझ रहा होऊँ। किन्तु मैं निश्चित रूपसे वर्ण-व्यवस्थाको जन्मके आधारपर किया गया स्वस्थ कार्य-विभाजन मानता हूँ। जातियोंके बारेमें आज जो धारणाएँ प्रचलित हैं वे सभी वर्ण-व्यवस्थाकी मूल कल्पनाकी विकृतियाँ ही हैं। किसी वर्णके उच्च या किसीके

नीच होनेका मेरे दिमागमें कोई सवाल ही नहीं उठता। यह तो शुद्ध रूपसे कर्त्तव्यका ही सवाल है। यह ठीक है कि मैंने कहा है कि वर्णका आधार जन्म है, किन्तु मैंने यह भी कहा है कि शूद्रका वर्णान्तर होना—जैसे वैश्य वन जाना, सम्भव है। किन्तु वैश्यका कर्त्तव्य पालन करनेके लिए उसे अपने-आपको वैश्य कहलाना जरूरी नही है। स्वामी नारायण गुरु संस्कृतके विद्वान माने जा सकें, वे विद्वान तो बताये ही जाते हैं, उसके लिए उनका ब्राह्मण कहा जाना आवश्यक नहीं। जो ब्राह्मणका कर्त्तव्य पालन करता है वह दूसरे जन्ममें आसानीसे ब्राह्मण बन जायेगा। किन्तु वर्तमान जन्ममें एक वर्णके बदलकर दूसरे वर्णमें जानेसे निश्चय ही एक बड़े पैमानेपर धोखेबाजी चल पड़ेगी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि वर्णोंका अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा। मुझे वर्णोंको समाप्त करनेका कोई औचित्य नजर नहीं आता। हो सकता है कि यह व्यवस्था भौतिक समृद्धिके मार्गमें बाधास्वरूप हो। मैं धार्मिक विचारोंपर आधारित किसी संस्थाको भौतिक समृद्धिकी दृष्टिसे देखनके पक्षमें नहीं हूँ। इसके लिए मैं अवश्य ही क्षमा चाहता हूँ।

पत्र-लेखकने जो उपमान चुना है वह भी अनुपयुक्त है। मैंने कहा है कि पंचमोंको शूद्र मानना चाहिए, क्योंकि मेरे विचारसे कोई पंचम भी वर्ण है, यह विश्वास करनेके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। पंचम शूद्रका ही काम करता है, और इसीलिए जब उसे पंचम न माना जाये तो फिर वह शूद्रके वर्गमें ही तो रखा जा सकता है। मेरा निश्चित विश्वास है कि अस्पृश्यता और वर्ण-व्यवस्थाके सम्बन्धमें इस तरहकी भ्रान्त धारणाओंके निरन्तर मौजूद रहने और एक ही साथ इन दोनोंपर निरन्तर आक्षेप करते जानेसे अस्पृश्यता सम्बन्धी सुधारोंकी प्रगतिमें बाधा पड़ती है।

अब इससे स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था किसी भी तरहसे विविधताके नियमके प्रतिकूल नहीं पड़ती। इतना ही नहीं वर्ण-व्यवस्थामें इस नियमके लिए गुंजाइश भी है। बात सिर्फ इतनी है कि यह विविधता कुछ वर्षों या पीढ़ियोंमें घटित नहीं होती। ब्राह्मण और परियामें कोई मूलभूत अन्तर नही है। किन्तु जो अन्तर देखना ही चाहता है, उसे वर्णके रूपमें ब्राह्मणों और परियाओंमें भारी अन्तर दिखाई पड़ता है और इसी तरह चारों वर्णोंमें भारी अन्तर दिखाई पड़ता है। मैं जिस बातमें इस पत्र-लेखकका सहयोग चाहता हूँ वह है उच्चताकी भावनाके विरुद्ध संघर्ष, फिर वह भावना ब्राह्मणोंमें हो, चाहे किसी अन्यमें। हमें स्वयं वर्ण-व्यवस्थाका नहीं, बल्कि उसके दुरुपयोगका विरोध करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

२९९. दिल्लीमें खादी

एक सज्जन दिल्लीसे अपने पत्रमें[1] लिखते हैं, पिछले सत्याग्रह सप्ताहमें[2] दिल्लीमें कुछ कार्यकर्त्ताओंने घर-घर जाकर खादी बेचनेका निश्चय किया था। उन्होंने डरते हुए और काँपते हृदयसे काम शुरू किया, क्योंकि दिल्लीमें इन दिनों फूट है और उन्हें यकीन न था कि लोग खादी खरीदेंगे। पर यह देखकर हर्ष और आश्चर्य हुआ कि लोग उनकी फेरीसे और वे फेरीके समय जो भजन गाते थे उनसे प्रभावित हुए। आमलोगोंने बड़ी खुशीसे खादी खरीदी। फेरीवालोंकी सारी खादी रोजकी-रोज जरा भी दिक्कतके बिना बिक जाती थी। इस घटनासे हमें एक अनूठी शिक्षा मिलती है। यदि यह बातें सच हों तो कहना होगा कि जनसाधारण आज भी निरामय है। पर मुझे इस विवरणकी सत्यतापर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं दिखता। क्या वहाँके कांग्रेस-कार्यकर्त्ता आगे और अधिक विश्वासपूर्वक और व्यवस्थित रूपसे कांग्रेसके सदस्य बनानेका प्रयत्न करेंगे? यदि दिल्ली अपनी आजकी हालतसे उठ सके और फिर तीन साल पुरानी हालतपर पहुँच सके तो हकीम साहबकी गैरहाजिरीमें उनके लिए इससे ज्यादा तारीफकी बात और क्या होगी?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

३००. कतैयोंको इनाम

मेरठसे मिला यह पत्र प्रकाशित करते हुए मुझे खुशी होती है:[3]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

१. देखिए "पत्र: ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको", २०-४-१९२५।

२. राष्ट्रीय सप्ताह जो ६ अप्रैलसे १३ अप्रैलतक मनाया गया था।

३. यह यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें नौचन्दीके मेलेमें चरखा-दंगलमें इनाम पाने वालोंके नाम दिये गये थे।

३०१. आन्ध्रमें खद्दर

मैंने अपने पिछले लेखोंमें बताया है कि खद्दर आन्दोलन धीरे-धीरे किन्तु निश्चित गतिसे गाँवोंमें प्रवेश कर रहा है। मैं नैलोर जिला खादी-मण्डलकी रिपोर्टके निम्न उद्धरण देता हूँ :[1]

कातनेवालोंको ध्यान देना चाहिए कि नैलोरकी स्त्रियाँ कितनी सावधानीसे पूनियाँ तैयार करती हैं। अच्छी धुनाई करना और फिर अच्छी पूनियाँ तैयार कर लेना कताईका आधा मैदान मार लेना है।

ओंगोलसे प्राप्त निम्नलिखित अंश भी इतना ही दिलचस्प है :[2]

ऊपर जो दिया गया है वह कम्पनी द्वारा[3] चुने गये पाँच गाँवोंमें किये जानेवाले कार्यकी ब्यौरेवार रिपोर्टका केवल एक अंश है। समीक्षित अवधिके[4] बीच कुल उत्पादन १८,५२२ गज हुआ और बिक्री १३,४५२-१२-१ रु० की हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-४-१९२५

३०२. पत्र : अब्बास तैयबजीको

तिथल

२३ अप्रैल, १९२५

प्रिय भुर्र्र,

हाँ, मुझे ५ दिनतक बुखार रहा, लेकिन मैं अब स्वस्थ हूँ। अभी कुछ कमजोर हूँ, इसलिए मैं आज सुबह ठण्डी हवा खाने पाँच दिनके लिए यहाँ तिथल आ गया हूँ। २८को मैं बम्बई पहुँचूँगा, और २९को ५ सप्ताहके दौरेपर बंगाल जाऊँगा। हाँ, उस घटनाके बारेमें मैंने वल्लभभाईसे सुना था। जीवनमें ऐसी घटनाएँ घटती ही रहेंगी। यह देवासुर संग्राम, मनुष्यकी सद्प्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्तिका द्वन्द्व शाश्वत रूपसे चलता ही रहता है।

तुम सबको प्यार

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५५२) की फोटो-नकलसे।

१ व २. यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं।

३. खद्दरके उत्पादन और बिक्रीके कामके लिए।

४. जुलाई, १९२४ से दिसम्बर, १९२४ तक।

३०३. पत्र : वसुमती पण्डितको

तियल

वैशाख सुदी १ [२३ अप्रैल, १९२५][1]

चि० वसुमती,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ मौसम तो अच्छा है। तुम यहाँ होतीं तो कैसा अच्छा होता? यदि मुझे यहाँ ज्यादा दिन ठहरना होता तो तुम्हें जरूर बुला लेता। पर कुल चार दिन ही तो रहना है। किन्तु मेरी सलाह है कि यदि तुम हजीरा न जा सको तो यहाँ आ कर अवश्य रहो। यहाँ मौसम बहुत ठण्डा है और यहाँका पानी भी अच्छा माना जाता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं २८ तारीखको बम्बई पहुँचूंगा और २९को कलकत्ताके लिए रवाना होऊँगा। कलकत्ताका पता है: १४८, रसा रोड, कलकत्ता।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९२१२) तथा सी० डब्ल्यू० ४६१ की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

३०४. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

तियल

वैशाख सुदी १ [२३ अप्रैल, १९२५][2]

आशा है आनन्दका चित्त शान्त होगा। उसके मनमें मृत्युका तनिक भी भय हो तो उसे निर्भय रहनेको कहना।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१. डाकखानेकी मुहर २४ अप्रैल, १९२५की है।
२. इन दिनों गांधीजी तियलमें थे।

३०५. पत्र : मगनलाल गांधीको

वैशाख सुदी १ [२३ अप्रैल, १९२५][1]

चि० मगनलाल,

चि० छोटेलालको यहाँ शान्ति नहीं मिल सकती। वह तो तुरन्त आश्रममें लौट आना चाहता है। उसका कहना है कि जैसा तुम चाहो, वह वैसा करनेके लिए तैयार है। किन्तु उसे हर समय कोई काम चाहिए। मुझे तो लगता है कि चि० छोटेलालको या तो पिंजाईके काममें लगाना चाहिए या बुनाईके काममें। फिर वह चाहे तो तमाम दिन पींजता या बुनता रहे। हमें ऐसे कारीगर भी चाहिए। इससे चि० छोटेलालको किसीके सम्पर्कमें बार-बार न आना पड़ेगा और वह प्रसन्नचित्त रह सकेगा। फिर भी यदि तुमको उसके योग्य कोई दूसरा काम सूझे तो तुम उसे वह काम जरूर दे देना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०९३) से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

३०६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

तियल
२५ अप्रैल, १९२५

प्रिय चार्ली,

मैंने अपने पत्र-लेखकोंकी, जिनमें तुम भी शामिल हो, बुरी तरह उपेक्षा की है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्रोंतक का उत्तर नहीं दिया है। किन्तु ऐसा बिलकुल लाचारीसे हुआ है। मैं एक जगहसे दूसरी जगहका दौरा ही करता रहा हूँ। और सांसतक नहीं ले पाया हूँ। बंगालकी आगामी कठिन परीक्षाकी[2] तैयारीके खयालसे मैं चार दिन तिथलमें रहकर कुछ शक्ति संचित कर रहा हूँ। इसके फलस्वरूप पत्रोंका जो ढेर इकट्ठा हो गया है, कमसे-कम उसे थोड़ा-बहुत निबटा सकूँगा।

१. इस पत्रपर "आश्रमकी फाइल" लिखा हुआ है और साथ २७-४-१९२५ की तारीख दी गई है। अनुमानतः पत्र इस तारीखको मिला होगा।

२. बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन, फरीदपुरके सिलसिलेमें बंगालकी यात्रा और उसके बादका दौरा।

मेरे विचारमें राष्ट्रीय झण्डेको सलामी देना आपत्तिजनक नहीं है। मैं इसमें स्वतः कोई बुराई नहीं देखता। राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए राष्ट्रीय भावना आवश्यक है। इस प्रकारकी भावनाको विकसित करनेमें झण्डेसे काफी मदद मिलती है।

मेरे विचारमें विश्वविद्यालयोंमें दिया जानेवाला सैनिक प्रशिक्षण अपरिहार्य है। मैं नहीं समझता कि भारत जोर-जबरदस्ती सहन करेगा। मैं ऐसी उम्मीद नहीं करता कि हमारी वर्तमान पीढ़ीमें ही युद्धकी भावनाका पूर्णतः अन्त हो जायेगा, अर्थात् मैं तो समझता हूँ कि डाकुओं और आक्रमणकारियोंको सजा देनेकी भावनातक का लोप हो जाना सम्भव नहीं है। मेरा लक्ष्य इतना ही है कि अहिंसा द्वारा राष्ट्रीय आजादी प्राप्त की जाये और यदि सम्भव हो सके तो उसके स्वाभाविक या आवश्यक परिणाम-के रूपमें राष्ट्रोंके बीच होनेवाले युद्ध बन्द हो जायें। इससे आगे बढ़कर कुछ कहने लायक हिम्मत मैं अपने अन्दर नहीं पाता।

मैं सन्तति-नियमनके बारेमें हॉलैंडके आँकड़े और वहाँकी परिस्थिति जानना पसन्द करूँगा। किन्तु यह मान लेनेपर भी कि जो आँकड़े दिये गये हैं वे, बिलकुल ठीक हैं, जो शंकाएँ मैंने उठाई हैं उनका समाधान उनसे नहीं होता। भोग-विलासको यदि सद्‌गुण या आवश्यकता भी मान लिया जाये, तो उससे विवाहके बन्धनमें धीरे-धीरे ढिलाई अवश्यम्भावी है। या फिर हमें विवाहके सम्बन्धमें अपने विचार कुछ इस ढंगसे बदलने पड़ें तो फिर उसमें शरीर-सम्बन्धकी विशुद्धताका कोई खयाल ही नहीं रह जायेगा। और मैंने सन्तति-नियमनके हिमायतियोंको यह कहते सुना है कि शरीर-सम्बन्धकी विशुद्धता कोई सद्‌गुण है ही नहीं। मेरा अपना खयाल तो यह है कि यदि मुझे भोग-विलासको भी एक सद्‌गुण ही मान लेना पड़े, तो फिर यह मेरी समझमें नहीं आता कि हम उसके इस सहज निष्कर्षसे भी कैसे इनकार कर सकते हैं कि मुक्त प्रेम भी एक सद्‌गुण ही है। मेरे सामने यही कठिनाई है। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-नियमन करनेका विचार भारतीय तरुणों-के दिमागोंपर इस कदर छा गया है।

आशा है कि फरीदपुरमें तुमसे मिलूँगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

[पुनश्च :]

मुझे तुम्हारा तार मिल गया है। हाँ, हल्का-सा मलेरिया जरूर हो गया था। पर खास कुछ नहीं था। बुखार आनेके बाद मैंने ३० ग्रेन कुनैन ले ली है। चिन्ताकी कोई बात नहीं। मैंने तार द्वारा उत्तर दे दिया है। सस्नेह।

मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९६४) की फोटो-नकलसे।

३०७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

तिथल
२५ अप्रैल, १९२५

प्रिय जवाहरलाल,

मैं तिथलमें हूँ। यह जगह कुछ-कुछ जूहु-जैसी है। यहाँ मैं बंगालकी अग्नि-परीक्षाकी तैयारीके लिए चार दिनसे आराम कर रहा हूँ। मैं यहाँ अपना पत्र-व्यवहार निपटानेकी कोशिशमें लगा हूँ। उसमें तुम्हारा वह खत भी है, जिसमें "कांग्रेस और ईश्वर" शीर्षक लेखका जिक्र है। तुम्हारी कठिनाइयोंमें मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। चूंकि सच्चा धर्म जीवनमें और संसारमें सबसे बड़ी चीज है, इसलिए इसीका सबसे अधिक दुरुपयोग किया गया है, और जिन लोगोंने इन शोषकों और शोषणोंको तो देखा और वास्तविकताको नहीं देखा, उन्हें स्वभावतः इस वस्तुसे ही अरुचि हो गई। पर धर्म तो आखिर व्यक्तिगत वस्तु और वह भी हृदयकी वस्तु है; फिर चाहे हम उसे किसी नामसे पुकारें। जो चीज मनुष्यको घोर ज्वालाओंके बीच अधिकसे-अधिक सान्त्वना देती है वही ईश्वर है। कुछ भी हो, तुम सही रास्तेपर हो। बुद्धि ही एक-मात्र कसौटी हो तो भी मुझे परवाह नहीं, हालांकि उससे अक्सर मनुष्य गुमराह हो जाता है और ऐसी गलतियाँ कर बैठता है जो लगभग अन्धविश्वासके निकट पहुँच जाती हैं। गोरक्षा मेरे लिए केवल गायको बचानेसे कहीं बड़ी चीज है। गाय तो प्राणि-मात्रका सिर्फ प्रतीक है। गोरक्षाका अर्थ है दुर्बलों, असहायों, गूंगों और बहरोंकी रक्षा। फिर तो मनुष्य सारी सृष्टिका प्रभु और स्वामी न रहकर सेवक बन जाता है। मेरी दृष्टिमें गाय दयाका जीता-जागता उपदेश है। फिर भी हम तो गोरक्षाके साथ निरा खिलवाड़ करते हैं; परन्तु हमें शीघ्र ही वस्तुस्थितिके साथ जूझना पड़ेगा।

आशा है, मेरे पिछले सब पत्र तुम्हें मिल गये होंगे। डा० सत्यपालका[1] मुझे एक दुःखभरा पत्र मिला है। काश तुम, कुछ ही दिनके लिए सही, पंजाब जा सको। तुम्हारे जानेसे उनका उत्साह बढ़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे पिताजी दो महीने किसी शान्त और ठंडे स्थानपर रहें, और तुम हफ्ते-दस दिनके लिए अलमोड़ा क्यों नहीं चल जाते, ताकि कामके साथ-साथ ठंडी हवामें भी सांस ले सको?

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

१. पंजाबके एक कांग्रेसी नेता।

३०८. गुजरातकी सड़कें

स्थानीय निकायोंका इन्तजाम धीरे-धीरे कांग्रेसजनोंके हाथोंमें आता जा रहा है। उसका सुफल लोगोंको मिलना चाहिए। यह दो तरहसे मिल सकता है। एक तो सड़कोंके सुधारके रूपमें और दूसरे, बच्चोंकी शिक्षाके रूपमें। सभी मानेंगे कि मैं गुजरातकी सड़कोंपर बहुत चला हूँ। मैं खेड़ा, भड़ौंच, सूरत, पंचमहाल और अहमदाबाद, इन तमाम जिलोंकी अधिकांश सड़कोंपर यात्रा कर चुका हूँ। लेकिन ये सभी सड़कें कमोबेश खराब ही मानी जायेंगी। उनपर बेहद धूल होती है। कह सकते हैं कि गाँवोंमें तो सड़कें होती ही नहीं। इससे आदमी और जानवर, दोनोंको बहुत तकलीफ होती है। मैंने यह शिकायत सुनी है कि स्थानीय निकायोंके पास पैसा नहीं होता। इस शिकायतमें बहुत-कुछ सच्चाई हो सकती है। पैसा कैसे आ सकता है, मैंने इस बातपर तो विचार नहीं किया है। लेकिन जिनका काम ही सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत कराना हो, उनके पास उसके लिए साधन न हों और जुटाये भी न जा सकते हों तो उन्हें त्यागपत्र दे देना चाहिए।

यही बात शिक्षाकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। हमें शिक्षाका नया रास्ता ढूँढ़ना ही होगा। खेतिहरोंके लड़कोंको तो मुख्यतः गाँवोंकी शालाओंमें ही जाना चाहिए। उन्हें बाबू या मुन्शी नहीं होना है, और न उन्हें कोशिश ही करनी चाहिए। इसलिए उन्हें उनके धन्धेके अनुरूप ही शिक्षा दी जानी चाहिए। जबतक बालकोंकी शिक्षाका सम्बन्ध उनके वातावरणसे नहीं जुड़ेगा तबतक समाजपर शिक्षाका पूरा अथवा अच्छा असर न पड़ेगा। जहाँ समुद्र न हो, ऐसे प्रदेशमें रहने वाले लोगोंको समुद्र-सम्बन्धी शिक्षा दी जाये तो उस प्रदेशको उसका कोई लाभ न मिलेगा, और इस कारण वह व्यर्थ जायेगी। कुछ ऐसी ही बात हमारे बालकोंकी शिक्षाके विषयमें भी कही जा सकती है। शहरके बालकोंकी शिक्षा व्यर्थ हो तो उससे मुख्य हानि शहरोंकी ही होगी, लेकिन करोड़ों खेतिहरोंके बालकोंकी शिक्षा व्यर्थ होगी तो सारा भारत तबाह हो जायेगा। ये करोड़ों बालक, बाबू या मुन्शी नहीं बन सकते और यदि ये खेतीके कामके न रहें तो खेती कौन करेगा? इसलिए स्थानीय निकायोंके लिए यह सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-४-१९२५

३०९. टिप्पणियाँ

मेरा बोझ

एक काठियावाड़ी भाई लिखते हैं:[1]

मुझे तो इस सुझावमें मोहके अलावा और कुछ नहीं दिखता। मुझे नहीं लगता कि मैं अपना सूत भेंट करूँ तो उससे बहुतसे लोग सूत कातने लग जायेंगे या इस सम्बन्धमें उनमें अधिक दृढ़ता आ जायेगी। फिर भी, अगर इन भाईका अनुमान सही हो तो मैं कार्यकर्त्ताओंके लिए अधिक सूत कातनेके लिए तैयार हूँ। कुछ लच्छियाँ भेंट करना मेरे लिए आसान है। लेकिन जो नियमित रूपसे कातेंगे, मैं सिर्फ उन्हींको अपनी लच्छियाँ दूँगा, हालाँकि मेरी इच्छा तो यह है कि लोग कातनेके लिए ही कातें। मेरा कता सूत मिलेगा, वे इसलिए ही सूत कातें, इसमें क्या लाभ है, सो मुझे तो दिखाई नहीं देता। उचित तो यह है कि लोग कताई धर्म मानकर करें।

"दुखी मनसे"

एक काठियावाड़ी भाई लिखते हैं:[2]

मैं कैसे समझूँ कि जो मनुष्य खुशी-खुशी पैसा देता है और दूसरोंसे दिलाता है, वह दुखी मनसे पैसा देता है? पत्र-लेखकको दूसरोंके मनका हाल कैसे मालूम हुआ? व्यापारी वर्गको फुसलानेकी क्या बात है? क्या फुसलाया भी जा सकता है? अगर यह वर्ग पैसा न दे या हम इस वर्गसे पैसा न लें तो पैसा अन्य किस वर्गसे मिल सकता या लिया जा सकता है? देशकी आर्थिक स्थितिको व्यापारी न सुधारेंगे तो दूसरा कौन सुधारेगा? यह उन्हींके हाथोंसे बिगड़ी है; इस बातको अच्छे व्यापारी स्वीकार करते हैं, और इसीलिए वे प्रायश्चित्तके रूपमें भी धन देते हैं। फिर, गरीबोंमें खादी बाँटनेका प्रयोग तो अभी बाकी ही है। इसलिए यह कैसे कहा जा सकता है कि यह पैसा गरीबोंके पास नहीं पहुँचा? मेरा दृढ़ मत है कि जिन हाथोंमें परिषद्की व्यवस्था है, वे निःस्वार्थ लोग हैं। मेरा विश्वास है कि जो व्यवस्था उनके हाथों या उनकी देख-रेखमें होगी, वे उसमें निश्चय ही सावधानी और ईमानदारी बरतेंगे। वे अवश्य ही जानबूझकर तो कोई अनुचित काम न करेंगे। अन्तमें हम पत्रमें उठाये गये इस सवालको लें: "नहीं तो जो लोग सेवा करनेका दावा करते

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीको सुझाव दिया था कि वे जिन खादी-कार्यकर्त्ताओंके कामसे सन्तुष्ट हों उन्हें अपने हाथके कते सूतकी लच्छियाँ भेंट करें, क्योंकि इससे उनमें अधिक निष्ठा आयेगी और खादीके प्रचारमें सहायता मिलेगी।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे कहा था कि लोग आपको चन्देमें जो-कुछ दे रहे हैं, बहुत ही अनिच्छापूर्वक दे रहे हैं।

हैं, क्या वे ७५ रुपये मासिक वेतन ले सकते हैं?" इस वाक्यका इस प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है कि गरीबोंके पास यह पैसा पहुँचता है या नहीं। लाखोंकी व्यवस्था वेतन-भोगी लोग करें, क्या यह अचरजकी बात नहीं है? फिर मैं नहीं जानता कि सेवा करनेवालेको ७५ रुपये मासिक वेतन मिलता है या कितना वेतन मिलता है। लेकिन मुझे इतना मालूम है कि कुछ सेवकोंको इतना वेतन मिलता है जरूर। किन्तु हमें इस कारण ईर्ष्या क्यों हो? सभी सेवक धनी नहीं होते। जो अपना सारा वक्त जनताको देते हैं, उन्हें वेतन लेनेका अधिकार है। प्रश्न सिर्फ यही पूछने लायक है कि उन्हें जितना मिलता है, क्या उन्हें उतनेकी जरूरत है? साधारण आदमीको इतने रुपयेकी जरूरत हो सकती है या नहीं? वही आदमी क्या अन्यत्र इतना रुपया कमा सकेगा? और अन्तमें, वह आदमी ईमानदार है या नहीं और जनताको उसकी सेवाकी जरूरत है या नहीं, यदि इन सारे प्रश्नोंके उत्तर सन्तोषजनक हों तो सेवा करनेवालेको हर मास ७५ रुपये मिलें, यह कोई गुनाह नहीं। जनताको तो हजारों सेवक चाहिए। ये सबके-सब अवैतनिक तो नहीं हो सकते।

"लालच"

वही भाई आगे लिखते हैं:[1]

प्रथम तो "लालच" शब्दका प्रयोग अच्छे अर्थमें किया गया था। कम कीमत-पर पूनियाँ देकर गरीबोंको खादी पहननेका लालच देनेमें मुझे तो कोई दोष नहीं दिखता। मैं स्वराज्यका सौदागर हूँ; खादीका भक्त हूँ; लोगोंको खादी पहननेके लिए सभी तरहके उचित लालच देना मेरा धर्म है। मेरी दृष्टिसे, यही चीज हमें स्वराज्य दिला सकती है। कुछ देशोंमें राज्योंने कुछ विशेष वस्तुओंकी खपत बढ़ानेके लिए लोगोंको आर्थिक सहायता दी है। क्या उन्होंने ऐसा करके कुछ अनुचित किया है? जर्मनीकी सरकारने दूसरे देशोंमें अपनी चीनीकी खपत बढ़ानेके लिए अपने चीनीके उद्योगको बहुत सहायता दी है। उससे उसे लाभ ही तो हुआ। अतः हमारे देशके नये उद्योगोंको या तो सरकारसे मदद मिलनी चाहिए या जनतासे। जनता खादीकी जो मदद कर रही है, वह कोई बहुत बड़ी मदद है, ऐसा मैं नहीं मानता। अभी तो यह मदद आरम्भ ही हुई है। इसका परिणाम शुभ ही होगा। खादीको लागत मूल्यसे कम दामपर बेचनेमें भी कोई बुराई नहीं। फिर ऐसी खादी ज्यादा नहीं है। हमें तो लाखोंकी नहीं, बल्कि करोड़ोंकी खादी तैयार करनी है। अब यह सवाल बेशक पूछा जा सकता है कि तब खादीके व्यापारियोंका क्या होगा। लेकिन ऐसे व्यापारियोंकी संख्या तो उँगलियोंपर गिनने लायक भी नहीं है। अन्तमें, सम्भव है, खादीका व्यापार परिषद्के ही हाथोंमें चला जाये। अभी तो ऐसा समय आया नहीं। परिषद्की योजनाके अनुसार तो सिर्फ कातनेवालोंको ही लाभ होगा। इसलिए फिलहाल यह सवाल नहीं उठता कि व्यापारियोंका क्या होगा।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि क्या अपने भाषणमें आपने लोगोंको खादी पहननेके लिए लालच देनेका समर्थन करके ठीक किया है।

चरखेका अभाव

यही भाई यह भी लिखते हैं:[1]

मैं नहीं मानता कि लोग खादी कार्यालयोमें पैसेके खयालसे काम करते हैं। अमरेली कार्यालयके व्यवस्थापक लाभ नहीं कमाते, बल्कि उन्होंने तो उसमें अपनी और अपने साथियोंकी भी पूंजी लगा रखी है। वढवानके खादी कार्यके संचालक शुद्ध निःस्वार्थ भावसे काम करते हैं। मढडाके खादी कार्यालयके सम्बन्धमें कुछ आरोप है। मन्त्रीको उसके हिसाब-किताबकी पूरी जांच करनेके लिए मढडा जाना है। भाई शिवजीने पूरा हिसाब देना स्वीकार किया है। मैं उस जाँचका जो परिणाम होगा उसे अवश्य प्रकाशित करूँगा। ऐसे लोग भी हैं जो आधी कीमतपर मिलनेपर भी चरखेको प्रश्रय देनेके लिए तैयार नहीं हैं। इस अश्रद्धाका उपचार यही है कि चरखेमें जिनकी श्रद्धा हो, वे उसे और भी पुष्ट करें। अगर श्रद्धा दृढ़ रहती है तो अश्रद्धा स्वय ही दूर हो जाती है। श्रद्धा सूर्य है, अश्रद्धा अन्धकार। सूर्यके उदय होते ही अन्धकारका लोप हो जाता है। यह दुःखकी बात हैं कि सुखी-सम्पन्न परिवारोंमें चरखा नही होता। इसीको यज्ञकी भावनाका अभाव कहते हैं। चरखा निःस्वार्थ श्रम सीखनेका एक-मात्र साधन है। इसलिए मैं युवकोंको उससे अच्छा यज्ञ और उससे अच्छा सेवा-कार्य और क्या बता सकता हूँ? वे इसके बाद अथवा इसके साथ-साथ चाहे और जो भी सेवा करें, लेकिन चरखा तो आधार-स्तम्भ है।

श्री जयकरका चरखा

इस प्रसंगमें पाठकोंको यह जानकर खुशी होगी कि बैरिस्टर जयकरने नियमपूर्वक सूत कातना शुरू कर दिया है। उन्होंने अपने सूतकी दूसरी किस्त मुझे भेजी है। अब वे अच्छे चरखेकी माँग कर रहे हैं। अभी तो उनके पास एक बहुत ही खराब चरखा है। फिर भी वे उससे नियमपूर्वक सूत कात रहे हैं। मैं श्री जयकरको बधाई देता हूँ, और कामना करता हूँ कि उनका निश्चय सदा कायम रहे।

टेढ़ा तकुआ

एक शालाके बालकोंका निरीक्षण करते हुए मैंने देखा कि वे सब चरखा चलानेके लिए तो बहुत उत्सुक है, लेकिन उनका तकुआ बार-बार टेढ़ा हो जाता है। मैंने शिक्षकसे पूछा: "आप तकुआ सीधा नहीं कर सकते क्या?" उन्होंने बड़ा साफ-सा उत्तर दिया: "मैं कातना तो जानता हूँ; लेकिन चरखेकी खामियोंको दूर नहीं कर सकता और टेढ़े तकुएको सीधा तो अवश्य ही नही कर सकता।" मेरी मान्यता है कि राष्ट्रीय शालाके हर शिक्षकको चरखा-शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिए। हर शालाके लिए अलग चरखा-शिक्षक नहीं रखा जा सकता है। इसलिए अगर हमें प्रत्येक राष्ट्रीय शालामें चरखा चलाना ही हो तो शिक्षकोंको चरखेकी कलाको सीखनेके लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इस कलाको सीखनेका मतलब है माल बनाना, माल

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उनका आरोप था कि वास्तवमें चरखेमें लोगोंकी रुचि नहीं है।

चढ़ाना, चमरखोंकी जाँच करना और जरूरत पड़नेपर चमड़े या मूंज वगैराकी चमरखें बनाना, साड़ी चढ़ाना और तकुआ सीधा करना, यह सब सीखना। जिस प्रकार उस बढ़ईको बढ़ई नहीं माना जायेगा जो अपने औजार ठीक करना न जानता हो, उसी प्रकार जो कातनेवाला अपने चरखेकी खामियाँ नहीं जानता या उन्हें दूर नहीं कर सकता उसे कातनेवाला नहीं माना जा सकता। अब तो चरखा-शास्त्रके ज्ञान और अनुभवके बिना किसी भी शिक्षकको शिक्षक नहीं मानना चाहिए। जिसे चिन्ता और चाव हो, वह इन कुछ-एक बातोंका ज्ञान बहुत कम समयमें थोड़े ही परिश्रमसे प्राप्त कर सकता है।

गन्दे कपड़े

मैंने अपनी इस बारकी गुजरात यात्रामें राष्ट्रीय शालाओंमें पर्याप्त बालकोंको देखा। उनमें से बहुतसे बालक भोंडे और गन्दे थे। किसी-किसीकी टोपी बहुत मैली-कुचैली थी और इतनी बदबू दे रही थी कि उसे छूना मुश्किल था। कुछकी पोशाक भी विचित्र थी। किसी-किसीने इतने कपड़े लाद रखे थे कि वे इस मौसमके देखते हुए असहनीय थे। कोई पतलून पहन आया था तो उसमें बटन लगा कर नहीं आया था। किसी-किसीके कपड़े फटे हुए भी थे। मुझे तो लगता है कि जिस तरह छूत रोगसे पीड़ित बालकोंको शालामें आनेकी मनाही होनी चाहिए, उसी तरह जो लड़के मैले-कुचैले हों अथवा जिनके कपड़े गन्दे या फटे हुए हों, उनका भी शालामें आना निषिद्ध होना चाहिए। अगर इसपर कोई यह कहे कि ऐसा करें तो बालक स्वच्छता-सुघड़ता कहाँ और कब सीखेंगे तो इसका जवाब आसान है। जो बालक ऐसी स्थितिमें आयें उन्हें प्रथम तो शालाके पासकी नहानेकी जगहपर भेजकर नहलाया जाये, उनके कपड़े उन्हींके हाथों धुलवाये जायें, और जबतक उनके कपड़े सूखें तबतक शालाकी ओरसे दिये गये कपड़े पहनाये जायें। जब उनके कपड़े सूख जायें तब वे उन्हें पहनकर शालाके कपड़े धोकर, सुखाकर और तह करके वापस कर दें। अगर इसमें खर्च बढ़नेका भय हो तो बालकोंको चिट्ठी देकर उन्हें घर भेज देना चाहिए और फिर जब वे साफ-सुथरे होकर आयें तब उन्हें शालामें आने दिया जाये। बाहरी स्वच्छता और सुघड़ता तो पहला पाठ होना चाहिए। अगर सभी बालकोंके लिए शालामें एक-सी पोशाक पहनकर आना अनिवार्य करनेमें कठिनाई हो तो अवश्य ही यह बात भी तो बर्दाश्त करने लायक नहीं है कि वे शालामें चाहे जैसे कपड़े पहन कर आयें।

जो बात स्वच्छ कपड़ेके सम्बन्धमें कही, वही कवायदके विषयमें भी कही जा सकती है। बालकोंको उठने-बैठने, चलने-फिरने और हजारोंकी संख्यामें समूह बनाकर आने-जानेका तरीका भी मालूम होना चाहिए। अभी तो हम देखते हैं कि कोई कमर झुकाकर बैठता है तो कोई पैर पसारकर, कोई आलस्यसे जमुहाइयाँ लेता है तो कोई बैठा-बैठा रोता है। और कदम मिलाकर चलना तो उन्हें भला आ ही कैसे सकता है? इन बातोंकी शिक्षा भी बालकोंको आरम्भमें मिलनी चाहिए। इससे स्वयं बालक अच्छे लगेंगे, उनकी शालाकी शोभा बढ़ेगी और उनके भीतर एक प्रकारका उत्साह आयेगा। फिर, इस प्रकारसे कवायद सीखे बालकोंको बिना किसी कठिनाई या कोला-

हलके चाहे जहाँ ले जाया जा सकता है। इस समय मुझे ऐसी एक-दो शालाओंकी याद आ रही है जिनमें सीटी बजते ही तीन मिनटके भीतर नौ-नौ सौ लड़के बिना किसी शोर-गुलके इकट्ठे हो गये और अपना काम पूरा करके फिर तीन मिनटमें ही अपनी-अपनी कक्षाओंमें इस तरह वापस चले गये मानो वे उनमें से निकल कर आये ही न थे।

मेरे विचारसे पोशाकमें खादीका निकर या धोती, कुरता और टोपी हों तो काफी है। अगर ये धुले हुए हों और इन्हें हजारों बालक पहने हों, तो एक भव्य दृश्य उपस्थित होता है। बहुत-से बालक इस पोशाकके अलावा वास्कट या आधा अथवा पूरा कोट पहन लेते हैं। इस तरह वे दूसरे लड़कोंके बीच बिलकुल अलग-थलग दिखने लगते हैं। उन्हें इस दयनीय स्थितिसे उबारना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि स्वच्छता, सुघड़ता, कवायद आदिकी शिक्षासे ही बालकोंकी सारी शिक्षा पूरी नहीं हो जाती। उन्हें चारित्र्य बल मिलना चाहिए; उन्हें अक्षर-ज्ञान होना चाहिए। लेकिन हम उनकी शिक्षाके किसी भी अंगकी उपेक्षा नहीं कर सकते। हमें उनकी शिक्षाके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक, तीनों अंगोंको सम्भालना चाहिए। इनमें से जो भी अंग कच्चा रह जायेगा, वह बालकके लिए भविष्यमें दुःख-दायी होगा और उसके कारण बालक जब बड़ा होकर त्रुटियोंका अनुभव करेगा, तो सन्ताप करेगा। इतना ही नहीं, समाजपर भी उसका बहुत बुरा असर होगा। आज भी हम अपनी शिक्षाकी खामियोंका फल भोग रहे हैं। हममें गन्दगी इतनी अधिक है कि उसीके कारण हम प्लेग आदि रोगोंको जड़-मूलसे नष्ट नहीं कर पा रहे हैं। शहरोंमें तो स्वच्छ जीवन बिताना लगभग असम्भव हो गया है। हम नागरिक जीवनके बुनियादी तत्त्वोंको भी नहीं जानते और जो जानते हैं, वे उनका पालन नहीं करते।

एक ऋषिकुल

एक ऋषिकुलके आचार्य अस्पृश्यतामें विश्वास नहीं रखते। लेकिन उन्हें भय है कि यदि वे अपनी संस्थामें से अस्पृश्यताको निकाल देंगे तो संस्था बन्द हो जायेगी, क्योंकि उस हालतमें कोई भी उनकी सहायता नहीं करेगा। इसलिए वे अस्पृश्यताको दोष मानते हुए भी प्रश्रय देते हैं। मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो ऐसा ऋषिकुल अस्तित्वमें ही न आये और आये तो उसका नाश हो जाये, यही श्रेयस्कर है। अस्पृश्यता पाप है, यह जानते हुए भी कोई मनुष्य उससे चिपटा रहकर ऋषिकुल चलाये, यह कैसे हो सकता है? जहाँ आचार्यके आचार और विचारमें ही इतनी विसंगति हो, वहाँ बालकोंपर बुरा असर न पड़े, यह कैसे सम्भव है? जो शिक्षक अपने विचारके अनुसार चलनेके लिए तैयार न हो, अगर शिक्षकका धन्धा छोड़कर किसी और साधनसे अपनी आजीविका कमाये तो अच्छा हो। फिर भी हम तो अक्सर यही देखते हैं कि जो मनुष्य और किसी धन्धेके लायक नहीं होता वह शिक्षक बन बैठता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-४-१९२५

३१०. पत्र : वसुमती पण्डितको

तिथल

वैशाख सुदी ३ [२६ अप्रैल, १९२५][1]

चि० वसुमती,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। अब तो महादेव तुमसे मिल चुका होगा। उसने मुझसे कोई बात नहीं की है। किन्तु तुमने अपने व्यापारके सम्बन्धमें जो कहा था उससे मैं कुछ समझ गया। अब तुम्हारे पत्रसे सब बात स्पष्ट हो जाती है। तुम्हारे व्यापारका चाहे जो हो, इससे तुम्हें तनिक भी घबरानेकी जरूरत नहीं है। पैसा तो आज है, कल नहीं है। तुमने तो बहुत धन दिया है। अब यदि काल उस धनको ले जाये तो क्या हुआ? जिसके पास होता है वह देता है और उसीका जाता भी है। तुम्हारा स्थान मेरे साथ तो है ही। तुम अपने चरित्रके बलसे मेरी पुत्री बनी हो। चरित्र-जैसी वस्तु न दी जा सकती है, न ली जा सकती है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम बिलकुल निर्भय और निश्चिन्त रहो। जब मेरी सलाहकी जरूरत हो तो लेना। मैं बाहर होऊँ और महादेव भी बाहर हो और तुम्हें कुछ पूछना हो तो पत्र लिखकर अवश्य पूछ लेना। देवदाससे तो मिल ही सकती हो। वह समझदार है और ठीक सलाह दे सकता है। आशा है मुझे कुछ भी लिखनेमें तुम संकोच नहीं करोगी।

अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रखना। जरूरत जान पड़े तो मैं जबतक बम्बईमें हूँ, इस बीच वहाँ आ जाना। यह पत्र कल सोमवारको तो पहुँच ही जायेगा। मैं मंगल और बुधको बम्बईमें रहूँगा। मैं सवारी गाड़ीसे बम्बई जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५४६) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

1. गांधीजी तिथलमें २४ से २७ तक रहे, वे २८ और २९ को बम्बईमें थे। फिर वे बंगालके लिए रवाना हो गये थे।

३११. तार: मथुरादास त्रिकमजीको

[२७ अप्रैल, १९२५][1]

माताका स्वर्गवासिनी होना ही ठीक था। उन्हें कष्टसे छुटकारा पानेकी जरूरत थी।

[गुजरातीसे]

बापुनो प्रसादी

३१२. पत्र: फूलचन्द शाहको

वैशाख सुदी ४ [२७ अप्रैल, १९२५][2]

भाई फूलचन्द,

अमरेलीसे शिकायत आई है कि वहाँसे जो रुई भेजी जाती है उसमें पत्थर होते हैं। उनका वजन रुईके वजनमें गिना जाता होगा।

वहाँ रुई जल्दी बिक जाती है, इसलिए तुम तुरन्त खरीद लेना और उसमें कोई गड़बड़ी न हो, यह ध्यान रखना।

आशा है तुम्हारी माताजी ठीक होंगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मैं २८ और २९को बम्बईमें रहूँगा और फिर कलकत्तेमें।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२७) से।

सौजन्य: शारदाबहन शाह

१. प्रकाशित साधन-सूत्रके अनुसार। मूल अंग्रेजी तार उपलब्ध नहीं है, यहाँ इसका अनुवाद गुजरातीसे किया गया है।

२. पत्रपर वलसाड डाकखानेकी इस तारीखकी मुहर लगी है।

३१३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

बम्बई
२८ अप्रैल, १९२५

महात्मा गांधीका ध्यान कताई सदस्यताके सम्बन्धमें कुछ लोगों द्वारा उठाई गई एक आपत्तिकी ओर आकर्षित किया गया। आपत्तिका आधार यह था कि इससे कांग्रेसके प्रातिनिधिक रूपमें गम्भीर बाधा आती है और वह धीरे-धीरे केवल कुछ सौ कतैयोंको जमात-भर रह जायेगी। उसके उत्तरमें गांधीजीने कहा:

कताई-सदस्यताके बारेमें मेरी राय अब भी वही है जो बेलगाँवमें थी। यह बात बिलकुल सही है कि कांग्रेसमें सदस्योंकी संख्या घट गई है, पर जनता अब भी उसके पीछे है। किन्तु मैं वही बात फिर दोहराता हूँ जो मैंने 'यंग इंडिया'के[1] पृष्ठोंमें लिखी थी कि यदि सदस्य इस मताधिकारको पसन्द नहीं करते तो इसको बदलना उनके ही हाथमें है, भले ही मैं ऐसे परिवर्तनको कितना ही शोचनीय क्यों न मानूँ।

यह पूछे जानेपर कि क्या वे डा० एनी बेसेंट द्वारा प्रस्तावित भारत राष्ट्र-मण्डल विधेयक ('कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल')[2] की योजनाको इस काबिल समझते हैं कि स्वराज्यवादियों सहित सभी दलोंके एक गोलमेज सम्मेलनमें उसपर विचार किया जाये, महात्मा गांधीने कहा:

मैंने विधेयकका अध्ययन करनेका और उसके बारेमें डा० बेसेंटको अपनी राय देनेका वचन दिया है। वे जो भी कुछ कहें, उसपर पूरे सम्मानके साथ ध्यान दिया जाना चाहिए। आज लोग किसी स्वराज्यकी योजनापर विचार करनेके लिए तैयार हैं या नहीं, यह प्रश्न अलग है। . . .

१. देखिए "मेरी स्थिति", १६-४-१९२५।

२. श्रीमती एनी बेसेंटका विधेयक कुछ विज्ञप्तियोंके साथ जनवरी, १९२५के प्रारम्भमें प्रकाशित किया गया। उसमें निम्न प्रस्ताव शामिल थे:

१. गाँवसे लेकर केन्द्रीय सरकारतक प्रशासनकी इकाइयोंका पाँच श्रेणियोंमें वर्गीकरण।

२. मतदाताओंकी अर्हताओंकी परिभाषा।

३. मूलभूत अधिकारोंकी घोषणा।

४. जबतक भारतीय संसदको नियन्त्रण नहीं सौंपा जाता तबतक सैनिक शक्ति तथा वैदेशिक सम्बन्धोंपर सम्राटके प्रतिनिधिके रूपमें वाइसरायका नियन्त्रण।

५. केन्द्रीय विधान सभा भारतीय रियासतोंके सम्बन्धमें कोई कदम उठानेसे पहले वाइसरायसे उसका अनुमोदन कराये।

यह योजना अप्रैलके प्रारम्भमें कानपुरमें सर तेज बहादुर सप्रूकी अध्यक्षतामें हुए सम्मेलनमें अन्तिम रूपसे स्वीकार कर ली गई थी। देखिए इंडिया इन १९२४-२५, पृष्ठ ३४१।

यह पूछनेपर कि आपका स्वास्थ्य कैसा है, महात्माजीने कहा कि अहमदाबादकी अपेक्षा मैं अब अच्छा हूँ। यह बात सही नहीं है कि मैं स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनमें भाग नहीं ले रहा हूँ। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा कि बंगाल जानेके लिए बिलकुल स्वस्थ हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-४-१९२५

३१४. भाषण : अखिल भारतीय गोरक्षा सभा, बम्बईमें[1]

२८ अप्रैल, १९२५

मैंने अपनी जिन्दगीमें बहुतसे काम हाथमें लिये हैं, परन्तु मुझे याद नहीं आता कि उनमें से किसी भी कामको हाथमें लेते समय मुझे वैसा भय और रोमांच हुआ हो जैसा आज इस कामको हाथमें लेते समय हो रहा है। मैं ऐसा आदमी माना जाता हूँ जो आम तौरपर जोखिमोंको उठाते हुए नहीं डरता। मैंने अपनी जिन्दगीमें भयंकर जान पड़नेवाले काम भी किये हैं। मैं गोरक्षाके कार्यमें लड़कपनसे ही दिलचस्पी लेता आया हूँ और मैंने ३० सालसे तो उसका एकान्त अध्ययन किया है। मैंने इसके सम्बन्धमें कभी-कभी कुछ लिखा भी है। फिर भी मैंने यह नहीं माना कि मैं गोरक्षाके कामको करनेकी शक्ति रखता हूँ। आज भी मैं ऐसा नही मानता। इसका यह अर्थ नहीं कि यह काम कैसे होगा, मै यह नहीं जानता। जानता तो हूँ; परन्तु यह केवल बुद्धिके प्रयोगसे नहीं हो सकता। इसके लिए बहुत संयम और तपोबलकी आवश्यकता है। इसके लिए आज मुझमें जितना संयम और तपोबल है उससे अधिककी आवश्यकता है। यदि सम्भव हो तो मैं आगे बढ़कर कामोंको हाथमें लेना चाहता हूँ। परन्तु असलमें मेरा भाग्य ही ऐसा है कि मैंने अपने जीवनमें आजतक जिन-जिन कामोंको हाथमें लिया है वे सब अनायास ही मेरे पास आये हैं। मैं जबसे इंग्लैंडसे यहाँ आया हूँ तभीसे मैं इसका अनुभव कर रहा हूँ। मैंने खयाल भी नहीं किया था कि मुझे बेलगाँवमें गोरक्षा परिषद्का सभापति बनना होगा। मैंने वह पद वहाँके कार्यकर्त्ताओंके प्रेमवश ही स्वीकार किया था। किन्तु उस समय मुझे यह खयाल सपनेमें भी नहीं था कि स्थायी संस्था भी मेरे ही हाथसे बनेगी। परन्तु वहाँके कार्यकर्त्ताओंने तो तमाम बातोंकी व्यवस्था कर रखी थी, इसलिए मुझे इसमें स्वभावतः ही हाथ डालना पड़ा और कार्यकारिणी समिति नियुक्त कर दी गई। फिर उसकी बैठक दिल्लीमें करनी पड़ी। वहाँ बहुत-कुछ चर्चा हुई। चर्चाके बाद भी मेरे मनमें आया कि मैं यह भारी काम अपने ऊपर क्यों उठा रहा हूँ। पर चौंडे महाराज मुझे छोड़नेवाले न थे। वे तो मुझसे आग्रह करते ही रहे। तब मैंने सोचा कि जितनी

१. यह भाषण अ० भा० गोरक्षा मंडलके संविधानको प्रस्तुत करते समय दिया गया था। संविधानके लिए देखिए "अ० भा० गोरक्षा मंडलके संविधानका मसविदा", २४-१-१९२५।

गो-सेवा मुझसे हो सकती है, मुझे उतनी कर देनी चाहिए। अतः मैंने यह संविधान बनाया और वहाँ जो नेता उपस्थित थे उनके सम्मुख रखा। फिर लालाजी, मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानन्दजी, डा० मुंजे आदि समस्त नेताओंने उसे पढ़ा और पसन्द किया। मैं उस समय भी झिझका। मैंने सोचा कि मुझे इतने थोड़े लोगोंसे नहीं, बल्कि दिल्लीमें बड़ी सभा करके उसमें इस संविधानको सर्व साधारणसे स्वीकार कराना चाहिए। अतः वह दिल्लीकी सभा आज यहाँ हो रही है। मैं इस समय दिल्ली नहीं जा सकता था और मुझे अपने कामका खयाल करके चलना पड़ता है, इसलिए हम यहाँ अनायास ही एकत्रित हुए हैं। यह संविधान तमाम अग्रगण्य नेताओंने देखा है और पसन्द किया है, इतना ही नहीं, बल्कि कुछ सदस्योंकी काम-चलाऊ समितिने भी, जिसकी बैठक गामदेवीमें हुई थी, उसे साधारण फेरफारके बाद स्वीकार किया है; वह यों ही नहीं, बहुत विचार और छानबीनके बाद एक-दो सुधार करके स्वीकार किया गया है।

आज मैं जिस कामके लिए आपकी सहमति और सहायता चाहता हूँ वह एक भारी काम है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि स्वराज्यका काम इससे सहल है। इसका कारण यह है कि यह धार्मिक कार्य है, और यदि धार्मिक कार्यमें भूल हो तो मैं उसे महापाप मानता हूँ। स्वराज्यके काममें मैंने भूलें कीं, उनके लिए पश्चात्ताप किया, उन्हें सुधारा और मैं पार हो गया। परन्तु यदि इसमें भूल हो तो उसका सुधार करना कठिन होगा। गो-माताकी सेवा करना ऐसा ही कठिन है। ढेढ़ोंको दुःख हो तो वे कह सकते हैं, ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेमें अब्राह्मणोंको दुःख हो तो वे कह सकते है, हिन्दू और मुसलमान भी अपना दुःख बता सकते हैं और एक-दूसरेके सिर फोड़ सकते हैं। परन्तु गो-माता तो गूँगी है, बोलती नहीं, उसे वाणी नहीं मिली। आप उसपर जितना बोझ डाल देंगे, वह उतना उठा लेगी, उसे आस्ट्रेलिया भेज देंगे तो वहाँ भी चली जायेगी, अपने स्वार्थके लिए उसके बछड़ोंको आरसे छेदेंगे तो वह उसे भी सह लेगी, और धूपमें बोझ लादकर चलायेंगे तो भी चलेगी। उसकी सेवा करना बहुत मुश्किल काम है। परन्तु मैंने इस कामका भार केवल कर्त्तव्य-भावसे उठाया है।

परन्तु इसमें मेरी शक्तिकी कई मर्यादाएँ हैं। पहली व्यावहारिक मर्यादा यह है कि मैं इस कामके लिए घर-घर जाकर रुपया इकट्ठा नहीं कर सकूँगा। मैं चन्दा इकट्ठा करना जानता हूँ। जब-जब मैंने धन माँगा है तब-तब मुझे देशने अत्यन्त उदारतासे धन दिया है। परन्तु इस समय मुझे न इतनी फुरसत है और न मुझमें शक्ति है कि मैं घर-घर जा सकूँ। इसलिए द्रव्य एकत्र करके ईमानदारीसे उसका विनियोग करनेका जिम्मा आपका है। यदि हम ऐसे धर्म-कार्यमें असत्य और पाखण्डको स्थान देंगे तो वह भयंकर बात होगी। हम काम बुरा करेंगे तो गाय हमें सींगोंसे मारने आयेगी, और इस युगमें इस बातकी परवाह तो किसीको भी नहीं है कि उन्हें अपने कर्मका फल भविष्यमें क्या भोगना पड़ेगा और अगले जन्ममें क्या होगा? इसलिए आप दम्भ और पाखण्डसे जितने बच सकें उतने बचें। यह सब करना आपका काम है। ये मेरी मर्यादाएँ हैं।

मैंने अपने बेलगाँवके भाषणमें[1] गो-रक्षाका पूरा अर्थ बताया था। गायकी रक्षा-का अर्थ केवल गाय नामके पशुकी रक्षा नहीं, बल्कि जीव-मात्रकी — प्राणि-मात्रकी रक्षा है। प्राणि-मात्रमें मनुष्य तो आ ही जाते हैं। अतः गायकी रक्षाके लिए मुसलमानों या अंग्रेजोंको मारना भी अधर्म है। मैं जिस जगह खड़ा होकर यह कह रहा हूँ उसका मुझे खयाल है, परन्तु फिर भी मैं कहता हूँ कि मैं सनातन धर्मका पालन करनेका दावा करता हूँ और वह धर्म मुझे सिखाता है कि मैं गायकी रक्षाके लिए अंग्रेज या मुसलमानकी हत्या नहीं कर सकता। अतः गोरक्षाका अर्थ है प्राणि-मात्रकी रक्षा। परन्तु प्राणि-मात्रकी रक्षा करना पामर मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है। इसीलिए इस संविधानमें केवल गायकी रक्षा करना ही उद्देश्य रखा गया है। यदि हम इतना भी करेंगे तो बहुत होगा। और इतना काम कर लेंगे तो अन्य बहुतसे काम भी कर सकेंगे। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' यह उक्ति व्यवहारमें अक्षरशः सत्य है। एक अंग्रेज ऋषिने कहा है — मैं मानता हूँ कि अंग्रेजोंमें भी ऋषि हुए हैं — कि मनुष्य अपने आपको पहचान ले तो बहुत है। इसलिए यदि हम सब विवेक, विचार, बुद्धि और मनसे अपना-अपना काम करेंगे तो हमारी सफलता निश्चित है। गायकी रक्षाका अर्थ यह नहीं है कि हम उन्हें कसाइयोंसे छीन लें; बल्कि हम खुद ही उनका जो संहार कर रहे हैं, उसे बन्द कर दें। गोरक्षाकी समस्त कल्पना इतनी ही है कि हिन्दू स्वयं सोचें कि उनका अपने प्रति और गायके प्रति क्या कर्त्तव्य है।

यदि हमने गोरक्षाका अर्थशास्त्र समझा होता तो हम आज जितनी गोहत्या होने देते हैं, उतनी न होने देते। इस देशमें फी आदमी गायोंका औसत जितना कम है, उतना दूसरे किसी देशमें नहीं। हिन्दुस्तानकी गायें जितना कम दूध देती है, उतना कम दूध किसी दूसरे देशकी गायें नहीं देती। हमारे यहाँ गायें जितनी दुबली-पतली मिलती हैं, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं हैं। इन बातोंमें जरा भी अत्युक्ति नहीं; यह वस्तुस्थिति है। मैं आपको जोश दिलानेके लिए यह बात नहीं कह रहा हूँ। मुझे निश्चय है, कि हिन्दुस्तानमें हिन्दू गायोंपर जितना अत्याचार करते हैं, उनपर उतना अत्याचार अन्यत्र कहीं नहीं किया जाता। इसलिए उसकी रक्षा करनेकी जिम्मे-वारी भी हिन्दुओंकी ही होनी चाहिए। मैं खिलाफतकी तहरीकमें शरीक हुआ था, सो मुसलमानोंकी सेवा करनेके लिए — उनका पद-चुम्बन करनेके लिए — क्योंकि मुझे उनसे गायोंकी सच्ची रक्षा मनसे करानी है। हमारे शहरोंमें गायोंको दुहनेमें ऐसी क्रिया अपनाई जाती है जिससे उनके थनोंमें एक बूंद भी दूध नहीं बचता। इसका फल यह होता है कि गायें तीन सालमें ही दूध देना बन्द कर देती हैं और तब वे कसाइयोंको बेच दी जाती हैं। चौंडे महाराज-जैसे कुछ गो-सेवक ऐसी गायोंको बचाते हैं, परन्तु यह तो समुद्रको अंजलियोंसे उलीचनेमें सन्तोष माननेके बराबर है।

मैं इस संविधानको समझानेके लिए आपके सामने दो बातें रखना चाहता हूँ। पहली तो यह है कि हमें दूध-व्यवसाय और चमड़ेके उद्योगपर पूरा-पूरा नियन्त्रण प्राप्त करना चाहिए। यह बात आपको बहुत व्यावहारिक मालूम होगी। परन्तु वह

१. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५४९-५५५।

बात, जिसमें व्यावहारिकता नहीं है, धर्म नहीं है। हमें राजा जनकके जीवनसे यही शिक्षा मिलती है कि जिस धर्मको हम व्यवहारका रूप न दे सकें वह धर्म नहीं, अधर्म ही हो सकता है। इसलिए मैं यह धार्मिक प्रश्न आपके सामने व्यावहारिक रूपमें प्रस्तुत कर रहा हूँ। हमें दूध निकालनेकी क्रिया अपने हाथमें लेनी होगी। इसलिए कानून बनानेकी आवश्यकता नहीं। हमारे लिए इतना ही काफी है कि हम शुद्धसे-शुद्ध घी और दूध देनेका निश्चय करें। पर हमें मरे हुए पशुओंका क्या उपयोग करना चाहिए? हमें उनकी खाल उतारकर उसका उपयोग करना चाहिए। आप कहेंगे कि यह आदमी तो विलायत होकर आया है, इसलिए ऐसी बातें करता है; परन्तु आपका यह तर्क ठीक नहीं है। मेरे इस सुझावसे हमारे चमारोंकी भी रक्षा होती है। हमारे चमार क्या करते हैं? वे मरे हुए ढोरोंकी खाल इस तरह निकालते है कि हम देख नहीं सकते। मुझे यह बात चमारोंने ही बताई है। और अपनी सफ़ाईमें कहा है, जब हमारी जिन्दगी इस तरह खाल उतारनेमें जाती है तब हम स्वभावत: मुर्दार मांस भी खाते हैं। मैंने उनसे मुर्दार मांस न खानेका आग्रह किया। किन्तु किसीने कहा, 'आदत पड़ गई है, कैसे छूट सकती है'? किसीने कहा, 'हमारा पेशा छुड़वा दें तो यह छूट जायेगी'। उनमें से कुछने कहा, 'हम इसे छोड़नेकी कोशिश तो करेंगे, परन्तु है मुश्किल'। यह सब देख कर मैं समझता हूँ कि हमें इस व्यवसायको अपने हाथमें लेना पड़ेगा। मैं तो गायका इस हदतक पूजक हूँ कि मैंने जब दक्षिण आफ्रिकामें सुना कि गायोंको दुहनेमें बहुत जबर्दस्ती की जाती है तभीसे गायों और भैंसोंका दूध पीना छोड़ दिया। परन्तु मैं यह भी मानता हूँ कि मरे हुए जानवरोंके चमड़ेका उपयोग जूते आदि बनानेके लिए करना अधर्म नहीं है। आज हमारे देशमें तो जीवित गायोंका चमड़ा, चर्बी और मांस लेनेवाले मौजूद हैं। यहाँ ऐसे-ऐसे वैष्णव हैं जो 'बीफ टी' (उबले गोमांसका रस) पीते हैं। मैं जब उनसे पूछता हूँ कि आप 'ली बेग'का 'गोमांस सत्त्व' क्यों खाते हैं, तब वे मुझे यह उत्तर देते हैं कि विश्वामित्रने भी तो गोमांस खाया था। जब मैं बताता हूँ कि विश्वामित्रने तो धर्म-संकट समझकर गोमांस सिर्फ हाथमें लिया था, खाया नहीं था, तब वे डाक्टरी सलाहकी बात कहते हैं। हम अपनी गायें आस्ट्रेलियामें भेजकर वहाँसे आनेवाली इन चीजोंको खाने लगे हैं। यदि हमें इससे बचना हो तो हमें चमड़ा इकट्ठा करके उसे अच्छी तरह कमाना सीखना पड़ेगा। हम यहाँसे गोमांसतक बाहर भेजते हैं। हम गोमांस सुखाकर ब्रर्मा भेजते हैं, क्योंकि बर्मी लोग गोवध नहीं करते, हाँ, गाय खाते अलबत्ता हैं। इसलिए मुझे चर्मालयकी बात संविधानमें रखनी पड़ी है। हम जबतक अपने चमारोंको चमड़ा कमानेकी शास्त्रीय पद्धति न सिखायेंगे तबतक वे मुर्दार मांस बराबर खाते रहेंगे।

इसके अलावा जो बातें निर्विवाद हैं, मैं उनकी चर्चा यहाँ नहीं करता। हमारा तात्कालिक काम है अच्छी दुग्धशालाएँ खोलना। यदि मुझे इसमें वैष्णव महाराजाओं और रामानुजाचार्य आदिकी मदद मिलेगी तो मुसलमानोंकी मदद तो मेरी जेबमें ही है। (तालियाँ) इसमें ताली बजानेकी कोई बात नहीं, क्योंकि आज तो आपकी मदद मेरी जबमें नहीं है।

इस प्रकार मेरा उद्देश्य है — शुद्ध दूध देना, अच्छे बैलोंसे खेती करवाना, और आपको मुर्दार चमड़ेके जूते पहनाना। मैं यह भी कह दूँ कि मै दुग्धशालाओंके काममें सरकारी अधिकारियोंकी सहायता भी लेना चाहता हूँ, क्योंकि उनके पास इस कार्यमें निष्णात लोग है और गायोंको कष्ट दिये बिना उनसे अधिक दूध लेनेके तरीके जानते हैं।

खजांचीकी जगह मुझे ऐसे आदमीकी जरूरत है जो हर जगहसे रुपया ला सके, उसका हिसाब रखे और रुपया कोषमें न हो तो खुद अपने घरसे भी लाकर दे दे। मैं सर पुरुषोत्तमदाससे बातचीत कर रहा हूँ। पर वे कुबूल करें तब न। इस कार्यमें मन्त्री भी आदर्श होना चाहिए। वह ब्रह्मचारी हो, देशी भाषाएँ जानता हो, और अंग्रेजीका ज्ञाता हो। सब जगह जा कर सबसे मिल सके और बात कर सके, वह ऐसा होना चाहिए। पवित्र कामके लिए पवित्र ब्रह्मचारीकी बहुत आवश्यकता है, हालाँकि आज ऐसा शुद्ध ब्रह्मचारी मिलना कठिन है। ब्रह्मचारी तो हमारे पास हैं। पर वे क्रोधी हैं, पाँचों इन्द्रियोंपर अधिकार रखनेवाले नहीं हैं। हमें तो चाहिए पाँचों इन्द्रियोंपर कब्जा रखनेवाला ब्रह्मचारी। उसके अभावमें किसी भी शुद्ध सदाचारी हिन्दूसे काम चल सकता है। मुझे तो मदद देनेवाले मुसलमान भी हैं। परन्तु मैं उनके नाम नही देता; क्योंकि यह काम ही विशेषतः हिन्दुओंका है। इसलिए मैं उन्हीकी सेवा विशेष रूपसे चाहता हूँ।

अन्तमें मैं यह कहता हूँ कि यह संस्था प्रेमसे भरी हुई है और आशा करता हूँ कि इसमें किसी के प्रति विरोध तो दूर, विरोधका आभास भी नहीं होगा। मैं अन्तमें ईश्वरसे यह प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें यह सेवा करनेका बल दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-५-१९२५

३१५. भेंट : पत्र प्रतिनिधिसे

बम्बई

[२९ अप्रैल, १९२५][1]

बंगालके लिए रवाना होनेसे पहले महात्मा गांधीसे एक पत्र-प्रतिनिधिने भेंट की और पूछा, 'मद्रास मेल' में प्रकाशित इस समाचारके बारेमें आपका क्या कहना है कि आप और श्री दास बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके अवसरपर असहयोगको त्याग देनेकी घोषणा करेंगे और सरकारके साथ सहयोग करनेकी अपनी शर्तें बतायेंगे। महात्मा गांधीने इसपर कहा: "मैं इस बारेमें कुछ भी नहीं जानता।"

महात्मा गांधीने कहा कि मेरा श्री दाससे इस विषयपर कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। मैं तो बहुत पहले दिया गया अपना वचन पूरा करनेके लिए ही बंगाल जा रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०-४-१९२५

१. गांधीजी बम्बईसे बंगालके लिए इसी दिन रवाना हुए थे।

३१६. भेंट: 'न्यू इंडिया' के प्रतिनिधिसे

बम्बई
२९ अप्रैल, १९२५

'न्यू इंडिया' के विशेष संवाददाताके भारत राष्ट्रमण्डल विधेयक (कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल) के सम्बन्धमें भेंट करनेपर गांधीजीने कहा:

मैं चाहता था कि डा० एनी बेसेंटका 'भारत राष्ट्रमण्डल विधेयक' उचित सावधानी और ध्यानसे देख पाता। किन्तु उसका जैसा कुछ अध्ययन मैं कर सका हूँ उससे मैंने निम्न परिणाम निकाले हैं। लगता है उसमें सम्राट्को राष्ट्रमण्डलके सर्वोच्च अधिकारी तथा संरक्षकके रूपमें स्वीकार करना एक अनिवार्य शर्त मान ली गई है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ।

मैं इस बातको मानता हूँ कि यदि पारस्परिक सहमतिसे कोई विधेयक पास किया जाये तो इसमें कुछ इसी प्रकारका उपबन्ध रखना आवश्यक है; किन्तु मैं लोगोंको यह उपदेश नहीं दे सकता कि ब्रिटेनके साथ हमारे सम्बन्ध अविच्छेद्य हैं। विधेयकमें इस प्रकारका कोई उपबन्ध होना चाहिए जिससे संसद राष्ट्रमण्डलको बनाये रखनेकी दिशामें तत्काल कुछ कर सके। विधेयकके अन्तर्गत भारत सरकारके वर्तमान आर्थिक तथा दूसरे दायित्व भी अपने ऊपर ले लिए गये हैं। मैं इस व्यवस्थासे सहमत नहीं हो सकता। एक निष्पक्ष आयोग द्वारा वर्तमान सरकारके प्रत्येक दायित्व और करारके नैतिक औचित्यकी जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए। इस आयोगमें एक नुमायन्दा तो राष्ट्रपतिका हो और एक ब्रिटिश सम्राट्का। ये दोनों मिलकर एक निर्णायकका चुनाव करें। सम्राट्की न्याय समितिका क्षेत्राधिकार रद कर दिया जाना चाहिए। एक स्थानीय न्याय समितिकी स्थापना की जानी चाहिए और प्रत्येक दीवानी मुकदमेमें अनिवार्य पंच-निर्णयका सिद्धान्त लागू किया जाना चाहिए। राष्ट्र-मण्डलका यह अधिकार स्पष्ट रूपसे मान्य होना चाहिए कि वह सभी आयातित वस्तुओंपर, चाहे वे ब्रिटिश हों चाहे अन्य, देशीय संरक्षण कर लगा सकें। हाँ, उसमें ब्रिटेनको सबसे अधिक विशिष्ट, राष्ट्र-जैसा व्यवहार प्राप्त रहे। राज्यकी भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी हो। मतदाताओं और विधानसभाओंके सदस्योंकी योग्यता मुझे अत्यन्त जटिल लगती है। मैं वर्गीकृत मताधिकारको नापसन्द करता हूँ। गाँवोंके लिए मताधिकार आवश्यकतासे अधिक विस्तृत है। उदाहरणके लिए पागल भी मतदाता हो सकता है। श्रमिकोंके लिए कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है। मेरा सूत्र तो यह है कि जो श्रम न करे उसे मताधिकार न मिले, इसीलिए कताई सदस्यता रखी गई है।

यदि विधेयकमें उक्त संशोधन कर दिये जायें और उसमें मुसलमानोंका सहयोग प्राप्त हो, तो मुझे वह स्वीकार होगा। मेरा अपना विचार यह है कि इस विधेयक-पर विचार करनेके लिए अभी आवश्यक वातावरण नहीं है। मैं विधेयकमें अपने बताये

परिवर्तनोंके कर दिये जानेपर भी सर्वदलीय सम्मेलनके आयोजनका भार अपने ऊपर नहीं ले सकता, किन्तु इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आयोजित किसी भी सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ। मैं वर्तमान स्थितिपर जितना ही अधिक विचार करता हूँ, मेरा यह विश्वास उतना ही दृढ होता जाता है कि सत्ता प्राप्त करनेके लिए मेरा काम तो अन्दरसे उद्योग करना ही है। श्री जमनादास द्वारकादास[1] मुझे बताते हैं कि मौजूदा मसविदा अन्तिम नहीं है। एक दूसरा मसविदा तैयार किया जा रहा है। उसमें मेरे बहुतसे अथवा कमसे-कम कुछ सुझाव शामिल कर लिये जायेंगे। मुझे मालूम हुआ है कि यह अन्तिम मसविदा हालमें ही कानपुरमें किये गये निर्णयोंके आधारपर तैयार किया जा रहा है। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि डा० बेसेंटकी योजना जनताके सामने प्रस्तुत कुछ योजनाओंमें से एक है। इसलिए प्रत्येक भारत-प्रेमीको उसका सावधानीसे अध्ययन करना चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि राष्ट्रीय जीवनके लिए स्वराज्य आवश्यक है। इसलिए हम जिस प्रयत्नसे स्वराज्यके समीप पहुँचते हैं, वैसा प्रत्येक प्रयत्न पसंद ही किया जायेगा। अन्तमें मैं अपनी यह सम्मति प्रकट किये बिना नहीं रह सकता कि विधेयक अत्यन्त व्यापक है और बहुत ही सावधानीसे तैयार किया गया है। कुछ बातोंमें तो यह बिलकुल मौलिक है।[2]

[अंग्रेजीसे]

न्यू इंडिया, २९-४-१९२५

३१७. टिप्पणियाँ

स्पर्धाके योग्य

बारडोली तहसीलकी एक राष्ट्रीय शालाके एक शिक्षक लिखते हैं कि मैंने पिछले चार महीनोंमें कोई सात मन कपासके बोंडे तोड़े; उनमेंसे कपास निकालकर लोढ़ी, रुई धुनी, और उस रुईसे अठारह पौंड सूत काता जिसकी लम्बाई ३ लाख गज थी। पढ़ानेका काम करते हुए भी चार महीनेतक सूत कातना जारी रखना एक बड़ा कार्य है। फिर भी वे कहते हैं, मैं वर्षके शेष दिनोंमें न केवल कातना जारी रखूँगा, बल्कि इससे भी अधिक सूत कातूँगा। इस उद्योगका क्या अर्थ है, यह अमरेलीके एक कार्यकर्त्ताकी भेजी रिपोर्टसे अधिक अच्छी तरह मालूम हो जाता है। उन्होंने एक साठ बरसकी वृद्धा स्त्रीकी बात लिखी है। वह चार मील पैदल चलकर अपने लिए पूनियाँ लेने आई थी। उसके मनोभाव सुनिए — "आप लोगोंने हमपर यह

१. होमरूलके नेता और सर्वदलीय सम्मेलनकी हिन्दू-मुस्लिम एकता उपसमितिके सदस्य।

२. इस लेखको न्यू इंडियामें देते हुए श्रीमती एनी बेसेंटने नीचे यह टिप्पणी दी थी:

कानपुरमें अन्तिम मसविदेपर विचार हुआ और वह पारित कर दिया गया। वह इस समय छप रहा है और छपते ही गांधीजीको भेजा जायेगा। किन्तु मेरे खयालसे उसमें गांधीजीके सुझाव आ जाते हैं, यह नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उनके ये विचार बहुत विलक्षण हैं और वे सम्मेलनके सामने आये ही नहीं।

एक महान् उपकार किया है। हमारे यहाँ लगातार तीन सालसे अकाल था। हमारे पास कोई काम नहीं था। और बिना काम किसीका गुजारा कैसे हो सकता है? अब मुझे यह काम मिल गया है और अब मैं प्रसन्न रहूँगी।" किन्तु उक्त शिक्षकके पास तो काम था। उन्होंने जो कठिन श्रम करना शुरू किया उन्हें उसकी जरूरत नहीं थी। परन्तु उसका उदाहरण अन्ततः दूसरोंको भी तेजीसे अपने रंगमें रंगेगा और उन लोगोंको जो कि काहिल बने बैठे हैं, इस उत्पादक एवं आवश्यक राष्ट्रीय उद्योगमें संलग्न करेगा। फिर भी इस वृद्धा स्त्रीका उदाहरण एक दूसरी बातका नमूना है। ऐसे हजारों, लाखों स्त्री-पुरुष कामके अभावमें भूखों मर रहे हैं। बहुतसे लोगोंकी, जैसे कि उड़ीसामें, काम करने लायक हालत ही नहीं रही है और काहिली उनकी आदतमें शामिल हो गई है। विपत्तिको दूर करने तथा इस देशके लाखों दुखी घरोंको सुखी करनेका एक-मात्र उपाय हाथसे सूत कातना ही है।

क्या मेरे पास धन-सम्पत्ति है?

लोग मुझसे बहुतसे अजीब प्रश्न पूछते हैं। ऐसे ही कुछ प्रश्न गुन्तूर जिलेके एक सज्जनने पूछे हैं:

> लोग कहते हैं कि गांधीजी जैसा कहते हैं, वैसा करते नहीं। वे गरीब बननेका उपदेश देते हैं, परन्तु स्वयं सम्पत्ति रखते हैं। वे औरोंको गरीब बनाना चाहते हैं, परन्तु खुद गरीब नहीं हैं। वे सादा और कम खर्चीला जीवन बितानेका उपदेश देते हैं, परन्तु उनका खुदका जीवन बहुत खर्चीला है। इसलिए आप इन सवालोंका जवाब दें। क्या आप अपने गुजारेके लिए तथा अपने सफरके लिए अ० भा० कां० कमेटी या गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे कुछ लेते हैं? यदि लेते हों तो कितना? यदि नहीं लेते तो फिर आप अपने लम्बे सफरोंका तथा खाने और कपड़ेका खर्च किस तरह चलाते हैं, क्योंकि जैसा लोग समझते हैं, आपके पास तो सम्पत्ति नहीं है?

उनके पत्रमें ऐसी बातें और भी हैं, लेकिन मैंने उनमें से मुख्य-मुख्य बातें चुन ली हैं।

मेरा यह दावा जरूर है कि मैं जैसा कहता हूँ वैसा ही करनेकी कोशिश करता हूँ। मैं फिर भी यह कुबूल करता हूँ कि मेरा खर्च उतना कम नहीं है जितना कम मैं रखना चाहता हूँ। बीमारीके बादसे मेरा खानेका खर्च जितना होना चाहिए उससे ज्यादा हो गया है। मैं उसे गरीब आदमीका खाना किसी तरह नहीं कह सकता। सफरमें भी बीमारीके पहलेसे अब ज्यादा खर्च होता है। मैं अब लम्बे सफर तीसरे दरजेमें भी नहीं कर पाता हूँ। और अब पहलेकी तरह बिना किसी साथीके अकेला यात्रा नहीं करता। ये सब चिह्न सादगी और गरीबीसे रहनेके नहीं, बल्कि उसके विपरीत हैं। मैं अ० भा० कां० कमेटी या गुजरात कमेटीसे कुछ नहीं लेता। मेरी यात्राका तथा खाने-कपड़ेका खर्च मेरे मित्रगण चलाते हैं। यात्रामें रेल किराया अक्सर वे लोग दे देते हैं, जो लोग मुझे निमन्त्रित करते हैं। सभी जगह जो सज्जन मुझे अपने घर ठहराते हैं, मेरी जरूरतोंका इतना ज्यादा ध्यान रखते हैं, कि मैं अस-

मंजसमें पड़ जाता हूँ। लोग मुझे यात्रामें मेरी जरूरतसे बहुत ज्यादा खादी दे देते हैं। इसमें से जो खादी बच जाती वह जरूरतमंद लोगोंको दे दी जाती है या आश्रमके, जो लोकहितके लिए चलाया जाता है, सामान्य भण्डारमें जमा कर दी जाती है। मेरे पास कोई सम्पत्ति नहीं है, किन्तु फिर भी मैं समझता हूँ कि मैं दुनियामें सबसे धनी आदमी हूँ, क्योंकि मुझे कभी रुपये-पैसेकी कमी नहीं रही है—न खुद अपने लिए और न अपने सार्वजनिक कामोंके लिए। परमात्माने मुझे हर अवसरपर सामयिक मदद भेजी है। ऐसे कई मौके मुझे याद हैं जब मेरे सार्वजनिक कामोके लिए मेरे पास एक पैसा भी नही रह गया था। पर उस समय ऐसी जगहोंसे रुपया आ पहुँचा जहाँसे रुपया मिलनेकी मुझे कोई आशा न थी। ऐसे अवसरोंने मुझे बहुत नम्र बना दिया है और मेरे हृदयमें ईश्वर तथा उसकी दयालुताके प्रति ऐसी अटल श्रद्धा उत्पन्न कर दी है जो यदि कभी मेरे जीवनमें बहुत बड़ी मुसीबतकी घड़ी आयेगी तब भी अडिग रहेगी। इसलिए संसार खुशीसे इस बातपर हँस सकता है कि मैंने अपनी सब सम्पत्ति त्याग दी है। मेरे लिए तो यह सम्पत्ति-त्याग एक निश्चित लाभ साबित हुआ है। मैं चाहता हूँ कि लोग मेरे इस सन्तोषमें मुझसे प्रतिस्पर्धा करें। यह मेरा सबसे बड़ा खजाना है। इसलिए शायद यह कहना ठीक ही है कि यद्यपि मैं गरीबी अपनानेका उपदेश देता हूँ तो भी स्वयं धनवान् हूँ।

हिन्दी और अंग्रेजी

एक तमिल वकीलका सुझाव है कि मैं 'यंग इंडिया' में एक कालममें अंग्रेजी और उसके सामने दूसरे कालममें उसका हिन्दी अनुवाद दिया करूँ। इससे तमिल लोग बिना कठिनाईके हिन्दी सीख सकेंगे। यह हेतु तो सराहनीय है। किन्तु मुझे दुःख है कि मैं इस सुझावको स्वीकार नहीं कर सकता। 'यंग इंडिया'का अपना निश्चित उद्देश्य है। मैं इसके माध्यमसे उन आदर्शोंको, जिनका मैं प्रतिनिधित्व करनेकी कोशिश करता हूँ, उस विशाल जन-समुदायमें सर्वप्रिय बनाना चाहता हूँ जो केवल अंग्रेजी ही जानता है, हिन्दी और गुजराती नहीं। पत्रकी परिधि विस्तृत नहीं करनी है। किन्तु जो तमिल भाषी हिन्दी सीखना चाहते हैं, और उन्हें सीखना चाहिए भी, उनके सम्मुख मैं इसके लिए ट्रिप्लिकेन, मद्रासमें स्थित हिन्दी प्रचार कार्यालयका नाम सुझाता हूँ। यह संस्था एक पत्र भी प्रकाशित करती है, जो हिन्दी, तमिल, तेलगू और अंग्रेजीमें छपता है। इस संस्थाका एकमात्र कार्य यह है कि यह दक्षिणके उन लोगोंमें, जो अपनी देशभक्तिसे प्रेरित होकर हिन्दी सीखना चाहते है, हिन्दीका प्रचार करें। ये उत्साह दिखानेवाले सज्जन चाहें तो 'हिन्दी नवजीवन'का भी उपयोग कर सकते है, क्योंकि उसमें 'यंग इंडिया' और गुजराती 'नवजीवन'के मुख्य-मुख्य लेख तथा टिप्पणियाँ अनुवादित रहते हैं।

बिहारियोंके लिए

मेरी आगामी बंगाल यात्रासे बिहारमें जोरदार आशाएँ पैदा हो गई हैं और पत्र-लेखकोंने मुझसे अनुरोध भी किया है कि मैं अपने बिहारके दौरेमें उनके स्थानोंको

भी शामिल करूँ। उनको व्यक्तिशः उत्तर भेजनेके बजाय मैं उन्हें इसके द्वारा सूचित कर देना चाहता हूँ कि मेरे बिहारके दौरेकी तारीख अभी निश्चित नहीं हुई है। यदि बंगालके दौरेके बाद मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा (मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि मुझे अभी हालमें मलेरिया हो गया था और मैं उसके बाद पहले जैसा स्वस्थ नहीं हो सका हूँ) तो मैं बिहारके मित्रोंकी इच्छाकी पूर्ति करनेका प्रयत्न करूँगा। किन्तु जबतक मैं बंगालका दौरा काफी कुछ खत्म नहीं कर लेता तबतक कोई तारीख तय नहीं की जा सकती। कुछ भी हो, बिहारके जो मित्र चाहते हैं कि मैं उनके स्थानोंमें आऊँ वे राजेन्द्रबाबूसे पत्र-व्यवहार करें। मेरे कार्यक्रमका निर्धारण उन्हींके हाथमें रहेगा और वे उसमें मौन दिवस आदिके बारेमें मेरी उन शर्तोंका पूरा ध्यान रखेंगे जिनपर मैंने अपनी बंगाल-यात्राके सिलसिलेमें जोर दिया है।[1]

ट्रान्सवालके भारतीय

जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री द्वारा भेजा गया तार नीचे दिया जाता है:

> श्री कॉलिन्स, विरोधी सदस्य एर्मेलो, ने विधान सभामें एक विधेयक पेश किया है जिसके अन्तर्गत ट्रान्सवाल नगरपालिकाके या नगरके क्षेत्रमें ६ मीलके घेरेमें किसी भी ऐसे एशियाईको, जिसकी वहाँ अचल सम्पत्ति न हो और साथ ही किसी भी एशियाई कम्पनीको, वह पंजीकृत हो या न हो, व्यापार या व्यवसाय करनेका अनुमतिपत्र देना या उसका नवीनीकरण करना निषिद्ध होगा। विधेयक पास हो जायेगा तो स्मट्स-गांधी समझौता निहित स्वार्थोंके सम्बन्धमें पूर्णतः भंग हो जायेगा और भारतीयोंका पूर्ण विनाश तथा अन्तिम रूपसे उच्छेद हो जायेगा। संघ इसे पास करनेका जबरदस्त विरोध करता है और आपसे इसकी वापसीके उपाय करनेका अनुरोध करता है। परमश्रेष्ठ वाइसरायको तार दे दिया है।

यह तार यहाँ कुछ दिन पहले मिला था, किन्तु मेरे निरन्तर दौरेपर रहनेके कारण अभीतक इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा सका। मैं संघसे क्षमा-याचना करता हूँ। किन्तु यह मामला न तो पुराना पड़ा है और न ऐसा है कि इसमें सहायता न की जा सके। यह विधेयक वैसा ही है जैसा जनरल हर्टजोगने पेश किया था और जनरल स्मट्सने जिसका तीव्र विरोध किया था।[2] संघने ऐसे आदमीसे अपील की है जो इस मामलेमें बिलकुल असमर्थ है। मैं इस शिकायतको अब लोगोंके सामने रखनेके सिवा और कुछ नहीं कर सकता। आशा है वाइसरायसे की गई अपील निरर्थक न जायेगी। परमश्रेष्ठ यदि कुछ और नहीं कर सकते तो कमसे-कम इतना तो कर ही सकते हैं कि वे विदेशोंमें बसे भारतीय प्रवासियोंके पक्षका समर्थन करें। प्रस्तावित विधेयक १९१४के स्मट्स-गांधी समझौतेका स्पष्ट उल्लंघन है। ट्रान्सवालमें अचल

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १६-४-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "बंगालका दौरा"।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्ध"।

सम्पत्ति रखनेवाले एशियाइयोंका उल्लेख करना ढोंग है, क्योंकि सभी जानते हैं कि वे तो वहाँ बस्तियोंके सिवा अन्यत्र अचल सम्पत्ति रख ही नहीं सकते और बस्तियोंमें भी कहीं-कहीं उन्हें अचल सम्पत्ति नहीं रखने दी जाती। इसके अतिरिक्त यह बात भी सभी जानते हैं कि एशियाई व्यापारको बस्तियोंतक ही सीमित करना उसे नष्ट कर देना है। यदि एशियाइयोंका वहाँसे उच्छेद करना ही लक्ष्य है तो ईमानदारीका रास्ता यह होगा कि वह एक निर्वासन विधेयक पेश करें और भारत सरकारको चुनौती दे कि वह उसके जवाबमें अपना पूरा जोर लगा कर देख लें।

यह है कहाँ?

एक पत्र लेखक लिखते हैं:

> आपके इस मासकी १२ तारीखके अंकमें एक मुसलमानने 'लोहानी' की किसी मस्जिदके बारेमें शिकायत की है। यह नाम ब्रिटिश भारत तथा रियासतोंकी भारतीय डाकखानोंकी निर्देशिकामें कहीं भी नहीं मिलता। इसलिए उचित यह होगा कि ऐसे मामलोंमें आप जब भी किसी छोटे स्थानका नाम प्रकाशित करें तब उसके डाकखानेका या कमसे-कम उसके जिलेका नाम भी अवश्य दिया करें, जिससे कार्यकर्ताओंको उस स्थानका पता लगानेमें और शिकायतकी जाँच करनेमें मदद मिले। क्या लोहानी कहीं है भी?

मैंने शिकायत भेजनेवालेसे पूछा था कि लोहानी कहाँ है। उसने मुझे लिखा, दिल्ली खिलाफत समितिसे पूछताछ करनी चाहिए। मैंने उसे पत्र लिखा है। किन्तु मैं समय बचानेके विचारसे सभी सम्बन्धित लोगोंसे निवेदन करता हूँ कि वे मुझे इस सम्बन्धमें सूचना दें। मुझे स्वीकार करना होगा कि लोहानी कहाँ है, यह मैं स्वयं नहीं जानता।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३१८. गुण बनाम गिनती

इन दिनों देशमें कांग्रेसके सदस्योंकी संख्याके बारेमें निराशाजनक बातें सुनाई पड़ती हैं। शिकायत यह है कि कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या जितनी कम आज है उतनी कम पहले कभी नहीं रही। यदि मताधिकारकी शर्तें वही रहतीं और तब संख्या कम होती तो यह शिकायत वाजिब होती। और यदि कांग्रेसके प्रभावका माप सदस्योंकी संख्यासे करना हो तब भी। इस बातमें तो मतभेद अवश्य हो सकता है कि कांग्रेसके प्रभावका अनुमान किस बातसे किया जाये। मेरे नजदीक उसका माप एक ही है। मैं तो गुण को ही सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ — मैं प्रायः संख्याका खयाल नहीं करता। और अपने देशकी स्थितियोंको देखते हुए तो और भी ज्यादा। आज हमारे अन्दर सन्देह, मतभेद, हित-विरोध, अन्धविश्वास, भय, अविश्वास आदि दोष विद्यमान हैं। ऐसी अवस्थामें संख्या-बलमें न केवल सुरक्षाका अभाव है, बल्कि खतरेका अन्देशा

भी हो सकता है। कौन नहीं जानता कि इन पिछले चार सालोंसे संख्या-बलके प्रश्नको लेकर हम कितनी बार परेशान हुए हैं? हाँ, उस अवस्थामें संख्याकी शक्ति अजेय हो सकती है, जब सब लोग अनुशासन-बद्ध होकर एकतासे काम करें। पर जब एक आदमी इस ओर खींचता हो और दूसरा उस ओर या यह भी न जानता हो कि उसे किधर खींचना चाहिए, तब संख्या-बल आत्मविनाशक शक्ति बन जाती है।

मैं इस बातका पूरा कायल हो चुका हूँ कि जबतक हममें एकदिली, यथोचित व्यवहार, सविवेक सहयोग और अपेक्षित कार्य करनेकी तैयारी, ये गुण विकसित न होंगे, तबतक कांग्रेस सदस्योंकी संख्या कम रहनेमें हमारी भलाई है। सौ कपूतोंसे एक सपूत अच्छा होता है। सौ कौरवोंके लिए पाँच पाण्डव भारी सिद्ध हुए थे। ऐसा कितनी ही बार हुआ है कि जब चुने हुए कुछ सौ सुनियन्त्रित सैनिकोंकी सेनाने असंख्य अनियन्त्रित लोगोंके समुदायोंको पराजित कर दिया है। सदस्य चाहे थोड़े हों, पर वे कांग्रेसकी शर्तोंका पूरा पालन करनेवाले हों तो अच्छा काम करके दिखा सकते हैं। इसके विपरीत, सम्भवतः नाम-मात्रके १० लाख सदस्य भी किसी कामके न होंगे। मैं यह कहकर यह नहीं जताना चाह रहा हूँ कि अब जो सदस्य हमारे रजिस्टरमें दर्ज हैं वे पक्के हैं या कमसे-कम पहले सदस्योंसे पक्के हैं। इसकी तसदीक तो इस सालके अन्तमें हो सकेगी।

पर मैं जो बात आपके मनमें बैठाना चाहता हूँ वह यह है कि हम अपनी आवश्यकताको समझ लें। हम सचमुच चरखेके स्थायी महत्त्वको मानते हैं या नहीं? यदि हाँ, तो हमें उसे अपना लेना चाहिए; फिर चाहे, हमारी संख्या कम हो या अधिक। स्वराज्यके लिए हम अस्पृश्यता निवारणकी आवश्यकताके कायल हैं या नहीं? यदि हैं, तो फिर हमें हार नहीं माननी चाहिए — भले ही हम पिस जायें। हमारा इस बातपर विश्वास है या नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्वराज्य प्राप्तिके लिए परम आवश्यक है? यदि ऐसा हो तो फिर हमें उसे प्राप्त करनेके लिए बहुत-कुछ गँवानेके लिए तैयार होना होगा। हम बराय नामकी एकतासे सन्तुष्ट न हों — हमें एकता स्थापित करनी है तो वह सच्ची एकता ही होनी चाहिए।

पर कुछ मित्र कहते हैं: "इसमें राजनैतिक बात तो कुछ भी नहीं है। इसमें सरकारसे टक्कर लेनेका कोई कार्यक्रम नहीं है।" इसपर मेरा कहना है कि जबतक हम इन बातोंको हासिल न कर लें तबतक हम सरकारसे कारगर लड़ाई नहीं लड़ सकते। इसपर कुछ लोग कहते हैं, "पर स्वराज्य प्राप्त होनेतक तो हम इनमें से किसी भी कामको पूरा न कर सकेंगे।" इसपर मेरा उत्तर यह है, — सरकारके खुले या छिपे विरोध या उदासीनताके होते हुए भी हमें इन बातोंको पूरा करनेकी योग्यता प्राप्त करनी ही होगी। मेरे नजदीक तो इन कामोंको पूरा करनेका अर्थ आधी लड़ाई जीत लेना है।

वे पूछते हैं, "तब आप स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रमके बारेमें क्या कहते हैं।" हमें अपनी भीतरी शक्ति बढ़ानेके इस कार्यक्रमके साथ-साथ उस कार्यक्रमको भी जरूर चालू रखना चाहिए। स्वराज्यवादी कांग्रेसके अभिन्न अंग हैं। वे सुयोग्य हैं, जागरूक हैं और समयकी आवश्यकताके अनुसार अपनी नीति-रीति बदलते रहेंगे। उस कार्य-

क्रममें जिन लोगोंकी अभिरुचि हो, उन्हें उसको भी चलाना चाहिए। पर वे भीतरी कामको न भूल जायें। यदि १२,००० नहीं, तो २००० स्त्री-पुरुष भी इस रचनात्मक कार्यक्रममें उत्साहपूर्वक लग जानेके लिए तैयार कर लिये जायें तो हालत तुरन्त बदल जायेगी। मैंने अपनी तमाम यात्राओंमें देखा है कि अच्छे साहसी, ईमानदार, स्वार्थ-त्यागी, स्वावलम्बी और स्वयं अपनेमें और अपने काममें विश्वास रखनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी बड़ी कमी है। फसल तो निश्चय ही तैयार है, पर काटनेवाले मजदूर ही कम हैं।

मद्रासकी बात है। श्रीयुत श्रीनिवास आयंगार तथा मैं एक सभामें गये थे। लोगोंमें अथाह उत्साह था। हम दूसरी सभामें वक्तपर पहुँचनेके लिए जल्दी कर रहे थे। परन्तु मेरे ये 'प्रशंसक' मुझे एक गलीमें ले जानेका आग्रह कर रहे थे; वह स्थान मेरे कार्यक्रममें न था। श्री आयंगारने और मैंने कहा, समय नहीं है। श्री आयंगारने मेरी अस्वस्थताकी बात भी सामने रखी, परन्तु सब व्यर्थ। यही कहना ठीक होगा कि वे हमारी गाड़ी घसीटे लिये जा रहे थे। हम दोनोंन उस समय इस बातको अनुभव किया कि ये लोग हमारे उद्देश्यमें सहायक नहीं, बल्कि निश्चय ही बाधक हैं। बात तभी बनी, जब मैंने अपनी मर्जी चलाई, आगे बढ़नेसे इनकार किया, मोटरसे उतर ही पड़ा और लोगोंसे कहा कि आप मुझे बलात् उठाकर ले जाना चाहें तो भले ही ले जायें। संख्या-बलके खतरेका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। मैं अपने अनुभवसे ऐसे बीसियों उदाहरण दे सकता हूँ। लोगोंका हेतु अच्छा था; परन्तु वे विवेकहीन और विचारहीन थे। संसारमें ऐसी कितनी ही माताएँ हैं जो सद्हेतु और सद्भाव होते हुए भी अपने बच्चोंको नशीली चीजें खिला-पिला देती हैं, जिनसे वे चल बसते हैं।

हमें आजकी हालतमें उत्तेजना और जोशकी जरूरत नहीं है; बल्कि शान्तिके साथ चुपचाप रचनात्मक काम करनेकी जरूरत है। हाँ, यह सच है कि यह काम श्रम-साध्य है, बहुत कठिन है। परन्तु वह हमारी शक्तिके बाहर नहीं है। इसके लिए ज्यादा वक्तकी जरूरत नहीं है। यदि हमारी प्रगतिमें कोई बात बाधक है तो वह है हमारी अनिश्चितता। परेशानीकी बात यह है कि हम केवल- हाँ कर देते हैं, काम नहीं करते। इसीलिए मैं तो गुणका और अकेले गुणका ही समर्थक हूँ। ऐसी अवस्थामें जबतक अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठककी माँग न की जाये, तबतक मैं उसका आयोजन न करूँगा। मौजूदा कार्यक्रम इसीलिए तैयार किया गया है कि वे गुण हममें आयें, और जबतक यह कार्यक्रम मौजूद है तबतक मैं तो कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको यही सलाह दूँगा कि वे अपनी सारी शक्ति उसीको सफल बनानेमें लगायें, जिससे यदि सम्भव हो तो सालके अन्तमें हमारे पास आवश्यक गुणोंसे युक्त स्त्री-पुरुषोंका एक ठोस दल हो जाये, फिर उनकी संख्या चाहे कितनी ही कम क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३१९. पी० एन० पी० (त्रिवेन्द्रम्) को

आप बिलकुल गलतीपर हैं। मैंने ईसाइयोंके मद्यपानके बारेमें जो-कुछ लिखा है[1] वह स्वयं ईसाइयों द्वारा दी गई सूचनापर आधारित है और उन्हींके अनुरोध करनेपर लिखा गया है। यदि वह सूचना सही न हो तो मुझे इससे प्रसन्नता होगी। आपकी भूलका और आपके दुःखका कारण यह है कि आप अपनेको दूसरे भारतीयोंसे अलग रख रहे हैं। आप मेरी तरह यह क्यों नहीं सोचते कि यदि कोई ईसाई भारतीय या मुसलमान भारतीय अथवा हिन्दू भारतीय शराब पीता है या अन्य प्रकारसे गिरता है, तो यह आपके लिए उतनी ही शर्मकी बात है जितनी मेरे लिए। हम सभी एक ही समाजके अंग हैं। और यदि उसका कोई अंग क्षतिग्रस्त होता है तो मानो सारा समाज क्षतिग्रस्त होता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया ३०-४-१९२५

३२०. 'क्रान्तिकारी बननेके आकांक्षी' से

माफ करें, मैं आपका पत्र प्रकाशित नहीं कर सका। यदि वह इस योग्य होता तो मैं उसे जरूर दे देता। यह बात नहीं कि आपका पत्र कुरुचिपूर्ण है या हिंसाभावसे युक्त है। बल्कि इसके विपरीत आपने अपना पक्ष समुचित रूपमें और शान्त भावसे प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है; परन्तु आपने अपनी दलीलें जिस ढंगसे पेश की हैं उससे वे लचर मालूम होती हैं और कायल नहीं कर पातीं। आपके कहनेका आशय यह है कि क्रान्तिकारी कभी हिंसा नहीं करता, क्योंकि वह जब अपने शत्रुके प्राण लेता है तब उसका उद्देश्य उसे या उसकी आत्माको लाभ पहुँचाना होता है — ऐसे ही जैसे एक सर्जन रोगीके भलेके लिए उसके शरीरमें तकलीफदेह नश्तर लगाता है। आपका कहना है कि शत्रुका शरीर घृणित होता है। वह उसकी आत्माको दूषित करता है, इसलिए वह जितनी जल्दी नष्ट कर दिया जाये उसके लिए उतना ही अच्छा है।

पर आपकी यह सर्जनकी उपमा फबती नहीं, क्योंकि सर्जनका सम्बन्ध तो सिर्फ शरीरसे होता है। वह शरीरके लाभके लिए शरीरमें नश्तर लगाता है। उसके विज्ञानमें आत्माके लिए जगह नहीं है। कौन कह सकता है कि सर्जनोंने आत्माको हानि पहुँचाकर कितने शरीरोंकी रक्षा की है? परन्तु क्रान्तिकारी तो शत्रुके शरीरका नाश इसलिए करता है कि वह मानता है कि ऐसा करनेसे उसकी आत्माको लाभ पहुँचेगा।

१. देखिए "त्रावणकोरके बारेमें", २६-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "मद्यपानका अभिशाप"

अव्वल तो मैं ऐसे एक भी क्रान्तिकारीको नहीं जानता जिसने अपने शत्रुकी आत्माका कभी विचार किया हो। क्रान्तिकारीका एकमात्र उद्देश्य यही रहा है कि उसके देशको लाभ पहुँचे, चाहे शत्रुके शरीर और आत्मा दोनों नष्ट हो जायें। दूसरे, आप कर्म-सिद्धान्तके कायल हैं। इसलिए जबरदस्ती प्राण ले लेनेसे उसका उसी किस्मका, उससे भी सबल दूसरा शरीर बननेका रास्ता तैयार होता है, क्योंकि जिस आदमीका शरीर इस तरह नष्ट किया जाता है वह अपनी लालसाके अनुसार ही शरीर ग्रहण करेगा। हमारे चारों ओर जो पापकृत्य और अपराध निरन्तर हो रहे हैं, मेरी समझमें उसका कारण यही है। हम जितना ही अधिक दण्ड देते हैं, वे उतने ही अधिक बढ़ते हैं। उनका रूप-रंग भले ही बदल जाये, पर भीतरी वस्तु वही होती है। शत्रुकी आत्माका हित साधन करनेका उपाय है, उसकी आत्माको जाग्रत करना। उसका नाश तो होता ही नहीं; परन्तु उसको जाग्रत करनेके योग्य उपायोंका उसपर असर होता है। आत्माकी आत्मापर प्रतिक्रिया अवश्य होती है। और चूँकि अहिंसा मुख्यतः आत्माका ही एक गुण है, इसलिए आत्माको जाग्रत करनेका प्रभावकारी साधन केवल अहिंसा ही है। और अपने शत्रुओंको दण्ड देनेकी चेष्टा करनेका अर्थ क्या अपनेको भूल-चूकसे नितान्त परे मानना नहीं है। हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि हम उन्हें समाजके लिए जितना हानिकर मानते हैं वे भी हमें समाजके लिए उतना ही हानिकर समझते हैं। श्रीकृष्णके नामको बीचमें घसीटना फिजूल है। यदि हम उन्हें मानते हों तो उन्हें साक्षात् ईश्वर मानें अथवा फिर बिलकुल न मानें। यदि मानते हैं तो फिर हम उनमें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता होना मानते हैं। ऐसी शक्ति अवश्य संहार कर सकती है। पर हम तो ठहरे पामर मर्त्य। हम हमेशा भूलें करते रहते हैं और अपने विचार और रायें बदलते रहते हैं। यदि हम 'गीता'के गायक कृष्णकी नकल करेंगे तो हम घोर विपत्तिमें पड़ेंगे। आपको यह भी याद रखना चाहिए कि मध्ययुगके कथित ईसाई भी वैसा ही सोचते थे, जैसा आप क्रान्तिकारी लोगोंके बारेमें कहते हैं। नास्तिकोंको वे उनकी आत्माके कल्याणार्थ जला देते थे। आज हम उन अज्ञानी कथित ईसाइयोंकी मूर्खताओं और अत्याचारोंपर हँसते हैं। अब हम जानते हैं कि वे अपराधी नितान्त निर्दोष थे और उनके धार्मिक न्यायकर्त्ता गलतीपर थे।

खुशीकी बात है कि आप चरखा चला रहे हैं। उसकी मौन गतिसे आपके चित्तको शान्ति मिलेगी और स्वाधीनता, जो आपको इतनी प्रिय है, आपके अन्दाजसे भी ज्यादा नजदीक आ जायेगी। आप उन अस्थिर-चित्त मित्रोंका कुछ खयाल न करें जो आपको खराब पूनियाँ दे गये हैं। यदि आपकी जगह मैं होता तो मैं उन पूनियोंकी रुईको फिर धुन लेता। आप शायद धुनना नहीं जानते। यदि न जानते हों, तो आप नजदीकके किसी धुनना जाननेवालेके पास जायें और उससे धुनाईकी यह सुन्दर कला सीख लें। जो धुनना नहीं जानता वह अच्छा कतैया नहीं है। आप इस बातसे न घबराएँ कि अहिंसाकी रीति बहुत धीमी और देरसे सफल होनेवाली क्रिया है। यह तो इतनी तेज, वेगवती है जितनी दुनियाने आजतक दूसरी न देखी होगी; क्योंकि वह अचूक है। आप देखेंगे कि हम इससे उन क्रान्तिकारियोंसे आगे निकल जायेंगे जिन्हें कि आपका खयाल है समझनेमें मैंने पूरी तरह भूल की है।

किसीकी गलती बताना उसे समझनेमें भूल करना नहीं है। मैं क्रान्तिकारियोंके लिए इतनी जगह इसी हेतुसे दे रहा हूँ कि मैं उनकी अथक-कार्य शक्तिको सही रास्तेपर लगाना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३२१. पुनः अन्तर्जातीय भोज

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:

> आपने एक अंग्रेजकी अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी मामलेकी 'पहेली' का विस्तारसे उत्तर दिया है।[1] किन्तु अन्तर्जातीय भोजके बारेमें आप क्या कहते हैं? यद्यपि यह प्रश्न अपेक्षाकृत बहुत कम महत्त्वपूर्ण है, फिर भी वह जीवनमें प्रायः बार-बार आता है। मान लो कि कुछ सद्भावी लोग सभी वर्गोंमें सद्भाव स्थापित करनेके लिए ऐसे अन्तर्जातीय अन्तर्समाजीय और अन्तर्राष्ट्रीय भोजका आयोजन करते हैं जिसमें मांस और मदिराका व्यवहार न हो। यदि कुछ हिन्दू उदाहरणार्थ आपकी जातिके या अपने परिवारके कुछ लोग निमन्त्रित किये जानेपर (जबरदस्ती नहीं) उस भोजमें शामिल होना चाहते हैं और आपकी राय लेते हैं तो क्या आप अपने सनातन धर्मके दृष्टिकोणसे उसपर आपत्ति उठायेंगे? इसी प्रकार यदि कोई ब्राह्मण, जो आपकी तरह सनातन धर्म या मर्यादा धर्ममें विश्वास रखता हो, किसी निर्जन वन-बीहड़में थका-माँदा, भूखा और प्यासा पड़ा है और बेहोश हो जानेके करीब है, उसे कोई चाण्डाल, मुसलमान या ईसाई थालीमें स्वच्छ भात और गिलासमें शुद्ध जल देता है (और निश्चय ही उन्हें लेनेके लिए उससे जबरदस्ती नहीं करता) तो क्या वह ब्राह्मण उसे स्वीकार कर सकता है? संक्षेपमें प्रश्न इस प्रकार है: क्या "सर्वजातीय" सहभोज अथवा एक कथित अछूत द्वारा स्पृश्य-हिन्दूको भोजन और जलके दिये जानेपर उसकी स्वीकृति — दोनों आपके सनातन धर्म, वर्णाश्रम-धर्म या मर्यादा-धर्मसे मेल खाती है या नहीं?

यदि कोई ब्राह्मण संकटमें है और अपनी प्राण-रक्षा करना चाहता है तो वह शुद्ध भोजन, चाहे उसे कोई भी दे, स्वीकार कर लेगा। मैं अन्तर्राष्ट्रीय या सार्वजनीन सहभोजमें हिस्सा लेनेपर न तो ऐतराज करूँगा और न उसकी हिमायत ही करूँगा। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि इस प्रकारके आयोजनोंसे न तो मैत्रीभाव बढ़ता है और न सद्भाव। आज हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच इस प्रकारके भोजका

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-३-१९२५ के अन्तर्गत उपशीर्षक "मैं राजनीतिज्ञ?"।

आयोजन करना सम्भव है, किन्तु मैं यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जिस प्रकार सहभोजका अभाव दोनों जातियोंकी पृथकताका कारण नहीं है इसी प्रकार उसका आयोजन दोनोंको समीप नहीं ला सकता। मै ऐसे व्यक्तियोंको जानता हूँ जो घोर शत्रु होनेपर भी साथ-साथ बैठकर भोजन करते हैं और दिल खोलकर बातें करते हैं, किन्तु फिर भी शत्रु बने हुए हैं। पत्र-लेखक दोनोंके बीचकी विभाजक रेखा कहाँ खींचेगा? वे मांस और मद्यरहित भोजनकी बात कहकर ही क्यों रुक जाते है? जो आदमी यह मानता है कि मांस खाना एक सद्गुण है और शराबकी चुस्की हानि-रहित एवं सुखदायक ताजगी देनेवाली चीज है, वह तो यही समझेगा कि दुनियाके साथ गो-मांसको बाँटकर खाने और मद्यपात्रोंके आदन-प्रदानसे सद्भाव ही बढ़ता है। पत्र-लेखकके प्रश्नके पीछे जो तर्क है उसकी मर्यादाकी कोई कल्पना नही की जा सकती। इसलिए मै अन्तर्जातीय सहभोजको सद्भाव वृद्धिका साधन नही मानता। जहाँ मै स्वयं इन प्रतिबन्धोंका पालन नही करता और किसी भी मनुष्यका दिया ऐसा भोजन खा लेता हूँ, जिसे मैं निषिद्ध नही समझता और जो शुद्धताके साथ तैयार किया गया हो, वहाँ मैं उन लोगोंकी आपत्तिका भी आदर करता हूँ जो प्रतिबन्धोंका पालन करते हैं। मैं दूसरे लोगोंकी 'संकीर्णता' से तुलना करके अपने 'उदार' आचरणकी श्लाघा भी नहीं करता। ऊपरसे उदार दिखनेवाले अपने आचरणके बावजूद मैं संकीर्ण और स्वार्थी हो सकता हूँ और मेरा मित्र ऊपरसे संकीर्ण दिखनेवाले अपने आचरणके बावजूद उदार और निःस्वार्थ हो सकता है। गुण या अवगुण तो हेतुपर निर्भर है। मेरे खयालमें अन्तर्जातीय भोजको भाई-चारा बढ़ानेके कार्यक्रमका एक अंग मानने और उसपर जोर देनेसे भ्रांत प्रश्न उठेंगे और झूठी आशा भी उत्पन्न होगी और उसके फलस्वरूप सद्भावका प्रसार रुकेगा। मैं लोगोंके हृदयोंमें से दो बातें निकालनेका प्रयत्न कर रहा हूँ; एक यह कि किसीके स्पर्शसे कोई भ्रष्ट हो सकता है और दूसरा यह कि एक मनुष्य दूसरेसे ऊँचा है। स्वयं लगाये गये प्रतिबन्धोंका स्वच्छता तथा आध्यात्मिकताकी दृष्टिसे अपना मूल्य है। किन्तु इनका पालन न करनेसे आदमी न तो नरकमें चला जाता है और न इनका पालन करनेसे स्वर्गमें पहुँच जाता है। जो मनुष्य अत्यन्त सावधानी और निष्ठासे इन प्रतिबन्धोंका पालन करता है, सम्भव है, वह निपट धूर्त और समाजकी घृणाके योग्य हो और एक मानवधर्मी सर्वभक्षी मनुष्य ऐसा हो जिसे सदा ईश्वरका भय रहता हो और जिसकी संगतिमें रहना सौभाग्य माना जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३२२. क्या ईश्वर है?

सेवामें,

सम्पादक

'यंग इंडिया'

महोदय,

आपके 'कांग्रेस और ईश्वर' शीर्षक लेखके संदर्भमें कहना चाहता हूँ कि जहाँ चार्वाकका मत सर्वथा भौतिकवादी है वहाँ ईश्वरके या किसी अन्य अलौकिक सत्ताके (जो ईश्वरके समकक्ष मानी जा सके) बारेमें बौद्ध धर्म मौन है और जैन धर्म उसके अस्तित्वमें ही सन्देह करता है, यद्यपि ये दोनों ही धर्म हिन्दू धर्मके समान ही पुनर्जन्म और कर्मके सिद्धान्तको मानते हैं। (आप इस सम्बन्धमें अपने मित्र प्रो० धर्मानन्द कोसाम्बीसे, जिनका मैंने आपसे जिक्र किया था, विचार-विमर्श कर सकते हैं।) यह कहा जा सकता है कि धार्मिक अनुष्ठानोंमें बौद्ध धर्ममें कर्मके साथ बुद्धको और जैन धर्ममें कर्मके साथ जिनको ईश्वरके स्थानपर आसीन किया गया है।

आधुनिक धार्मिक मामलोंमें पंजाबका देव समाज मानववादी और समाजसेवी एक संस्था है और उसमें अहिंसापर बहुत जोर दिया गया है। मेरा विश्वास है कि वह धर्मकी दृष्टिसे निश्चित रूपसे एक नास्तिक सम्प्रदाय है; किन्तु वह भौतिकवादी नहीं है। मैंने पढ़ा है कि वह न तो ईश्वरमें विश्वास करता है और न देवी-देवताओंमें। इस खयालसे उसका देव समाज नाम निरोधात्मक लगता है। वह तो 'वदतो व्याघात'का उदाहरण है।

ब्रैडलाके बारेमें आपका कथन है कि उन्होंने उस ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करनेसे इनकार किया था जिसका चित्र उसके मनमें, विविध विवरणोंसे बना था। आपका कहना यह भी है कि यदि हम ईश्वरकी अपनी-अपनी परिभाषाएँ कर सकें तो हमारी परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न होंगी। किन्तु उस भिन्नतामें 'एक तरहकी निर्भ्रान्त एकरूपता' होगी। ब्रैडला जिस ईश्वरको माननेसे इनकार करते थे उसमें यह एकरूपता आती है या नहीं? उसमें वह न आती हो यह बात तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि ब्रैडला बहुत विद्वान् और मनीषी मनुष्य थे। किन्तु यदि आती हो तो ब्रैडलाने उस 'निर्भ्रान्त एकरूपता'के सम्बन्धमें भी ईश्वरके अस्तित्वसे क्यों इनकार किया?

मुझे सन्देह नहीं कि इस सन्दर्भमें निम्न उद्धरण आपको कुछ रोचक प्रतीत होगा:

"बौद्ध धर्मकी विचारधारामें जो संसारको रचता हो या उसपर किसी तरहका नियन्त्रण रखता हो ऐसे ईश्वरकी कल्पनाका ही सर्वथा अभाव है। उसमें ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करना तो दूर, उसका कतई जिक्रतक नहीं मिलता। एक समय था जब यह विश्वास सर्व सामान्य था कि किसी भी समूचे राष्ट्रके लोग कभी नास्तिक नहीं रहे। किन्तु अब इसके विपरीत इस बातसे कोई इनकार नहीं करता कि बौद्ध राष्ट्रोंके लोग मुख्यतः नास्तिक हैं, क्योंकि वे किसी भी ऐसी दिव्य शक्ति-सम्पन्न सत्तासे अपरिचित हैं जिसे मानव-प्राणी धर्माचरण, तप और उच्च ज्ञानसे प्राप्त न कर सके। इस चौंकानेवाले तथ्यका एक अच्छा प्रमाण इस बातसे मिलता है कि कमसे-कम कुछ बौद्ध राष्ट्रोंको, जैसे चीनियों, मंगोलों और तिब्बतियोंकी, भाषाओंमें ईश्वरकी कल्पना-का बोधक कोई शब्द ही नहीं है। इसके अतिरिक्त बौद्धोंकी भावी दशा—जन्मान्तर या मोक्ष—का निर्धारण संसारका नियन्ता नहीं करता। उसका निर्धारण तो उनके कर्मोंसे होता है जो अपनी सहज शक्तिसे अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्धकी अन्धी और निर्ज्ञान परम्पराके अनुसार (फल प्राप्त करानेमें) प्रवृत्त होते हैं।"

—चैम्बर्सके विश्व कोषसे

अब मैं भर्तृहरिके 'नीति शतक'का निम्न श्लोक देकर यह पत्र समाप्त करता हूँ:

नमस्यामो देवान् ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति।

हम देवताओंको नमस्कार करते हैं; किन्तु खेद, वे भी अवश्य ही भाग्याधीन हैं। तब हमें विधाताको नमस्कार करना चाहिए, किन्तु वह भी नियत कर्मफल देनेवाला है। जब फल कर्माधीन है, तब हमें देवताओंसे क्या और विधातासे भी क्या! अतः हमारा उन कर्मोंको ही नमस्कार है जिनसे विधाता भी नहीं जीत पाता।

करवार
(उ० कन्नड़)
१० मार्च, १९२५

आपका,
एस० डी० नाडकर्णी

श्री नाडकर्णीके इस चातुर्ययुक्त पत्रको स्थान न देना कठिन है। फिर भी मैं अपने इस मतपर कायम हूँ कि न तो बौद्ध धर्म नास्तिक धर्म है और न जैन-धर्म। मैं श्री नाडकर्णीके सामने ईश्वरकी ये परिभाषाएँ रखता हूँ: ईश्वर कर्मका सम्पूर्ण

योग फल है। जो मनुष्यको उचित कर्मकी प्रेरणा देता है, वह ईश्वर है। जो-कुछ भी जीवित है उसका सम्पूर्ण योगफल ईश्वर है। जो मनुष्यको भाग्यकी कठपुतली-मात्र बनाता है, वह ईश्वर है। जिसने ब्रैडलाको सभी विपत्तियोंमें दृढ़ रखा वह ईश्वर है। वह नास्तिकका निषेध है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३२३. सत्यान्वेषी

एक सज्जनने जो अपनेको सत्यान्वेषी कहते हैं, क्रान्तिकारी विचारोंके सम्बन्धमें मेरे विवेचनपर अपने कुछ विचार मुझे भेजे हैं। वे मुझे बताते हैं कि वे पहले असहयोगी थे, परन्तु बादमें उनको लगने लगा कि असहयोग तो मात्र एक सामाजिक आन्दोलन है और क्रान्तिकारी आन्दोलन ही सच्चा राजनीतिक आन्दोलन हो सकता है। इसके बाद उन्होंने बेलगाँव कांग्रेसके अवसरपर इस सम्बन्धमें नये सिरेसे विचार करना शुरू किया। मैं नीचे उनके विचारोंको संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत करता हूँ। मैंने इस संक्षिप्तीकरणमें उनके भावों और उनकी भाषाको ज्योंका-त्यों कायम रखा है:

> क्रान्तिकारी निश्चय ही देशभक्त होता है। वह पराक्रमी होता है। वह मातृभूमिकी खातिर अपना जीवन उत्सर्ग करनेके लिए तैयार रहता है। परन्तु उसका उद्देश्य ही गलत है।
>
> क्रान्तिकारी चाहता क्या है? देशकी स्वतन्त्रता। यहाँतक तो बात बिलकुल ठीक है। स्वतन्त्रता किसलिए चाहिए? ताकि जनता सुखी हो सके। यह भी ठीक है। जनता सुखी कैसे हो सकती है? शासन-व्यवस्थाको बदलकर।
>
> अब यहाँ असल सवाल उठता है।
>
> हम जरा अपनी स्थितिपर गौर करें। माना कि हम भारतीयोंमें बहुत सारे सद्‌गुण हैं; लेकिन हममें अवगुण भी तो हैं? हम बुजदिल बन गये हैं। हममें कई बुराइयोंने घर कर लिया है। हम हिन्दुओंमें अछूत भी हैं। हम जमीन जोतते हैं और गल्ला, सब्जियाँ और ऐसी ही दूसरी चीजें पैदा करते हैं, जिनसे हम सबका आसानीसे गुजारा हो सकता है। फिर भी तथ्य यह है कि हमारी जनसंख्याका अधिकांश अधपेट खाकर रहता है। हम कारखानोंमें कपड़ा बुनते हैं और काम करते हैं। फिर भी हम अध-नंगे बने रहते हैं। हमारे पास मिट्टीकी कमी नहीं। हम ईंटें पकाना और सुन्दर मकान बनाना भी जानते हैं; फिर भी हममें से अनेक लोग ऐसे हैं जिनको पेड़ोंके नीचे ही बसर करनी पड़ती है।
>
> निस्सन्देह, हमारी इन परेशानियोंके लिए विदेशी लोग एक बड़ी हद तक जिम्मेदार हैं। हम ईमानदारीसे यही मानते हैं; भले ही हमारी यह

मान्यता गलत हो। लेकिन इसमें हमारी अपनी जिम्मेदारी कितनी है? क्या इसमें हमारा अपना कोई दोष नहीं है?

फिर मान भी लें कि हम तमंचों या ऐसे ही अन्य शस्त्रोंके बलपर विदेशियोंको देशसे बाहर खदेड़ देते हैं। तब क्या यह मुमकिन नहीं है कि इन विदेशियोंकी जगह कोई अन्य विदेशी आ कर बैठ जाये, क्योंकि युद्ध तो आखिर एक तरहका जुआ ही होता है?

मैं अहिंसा, सैनिक शक्ति और ऐसी ही अन्य चीजोंकी उपयोगिता या अनुपयोगिताके बारेमें यहाँ कुछ नहीं कहना चाहता। मैं अपने-आपको इस विषयकी चर्चा करनेके लिए सर्वथा अयोग्य मानता हूँ। इतना ही कहना काफी है कि मैं इस विषयमें गांधीजीके विचारोंको कुछ-कुछ समझने लगा हूँ और मुझे वे सही लगते हैं।

आम तौरपर कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिकाकी शासन-व्यवस्था ही बहुत अच्छी शासन-व्यवस्था है। लेकिन फिर भी वहाँ इतनी साजिशें, हत्यायें, डकैतियाँ और धोखेबाजी वगैरा क्यों होती रहती हैं? बोल्शेविक प्रणाली अच्छी मानी जाती है। लेकिन तब रूसमें भी उत्तरोत्तर बढ़ती संख्यामें लोगोंको फाँसियाँ क्यों दी जा रही हैं और दंगे वगैरा क्यों होते हैं? ऐसे उदाहरण कितने ही गिनाये जा सकते हैं।

गांधीजीके विचारोंको मात्र-आदर्शवादी और अव्यावहारिक कह कर टाल देना अनुचित है और एक क्रान्तिकारीके लिए तो ऐसा करना और भी अधिक अनुचित है, क्योंकि वह तो हृदयसे जनताका कल्याण ही चाहता है।

ऐसी स्थिति पैदा करना बिलकुल असम्भव नहीं है जिसमें संसारमें सुख ही सुख हो। सबसे अच्छा काम तो बेशक यही है कि दूसरोंका भला किया जाये। लेकिन अभी आपको इस हदतक जानेकी जरूरत नहीं, आप अभी स्वयं अपना ही भला करें।

क्या आप अपना काफी समय यों ही बर्बाद नहीं कर देते? क्या आप विदेशी वस्त्र खरीद कर अपने करोड़ों रुपये दूसरे देशोंको नहीं भेज देते? आप सूत कातें और अपने समयका सदुपयोग करें। अपना कपड़ा आप बुनें उसीको इस्तेमाल करें और अपने करोड़ों रुपये बचायें।

मैं कताईका अर्थ केवल सूतकी कताई नहीं समझता। मैं इसे गृह-उद्योगका प्रतीक मानता हूँ। यह गृह-उद्योग भारतकी और उतना ही अन्य देशोंकी भी समस्याका हल है।

अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू-मुसलमान-एकता और ऐसी ही अन्य बातोंका सम्बन्ध देशकी भीतरी व्यवस्थासे है। यह तो आत्मशुद्धि है। हरएकको अपनी गन्दगी खुद ही साफ करनी पड़ती है। हिन्दुओंमें अस्पृश्यता है और भारतीयोंमें

हिन्दू-मुसलमानका वैमनस्य। इस प्रकार तो हर देशके माथे कोई-न-कोई कलंक होता है, जिसे उसे धोना पड़ता है।

इस प्रकार क्रान्तिकारी अनुभव करेगा कि वह संसारव्यापी व्याधिके इस आश्चर्यजनक उपचारका प्रचार करके कहीं अधिक उपयोगी काम कर सकता है। इस प्रकार वह अपनी और अपने देशभाइयोंकी ही सेवा नहीं करता बल्कि सारे संसारकी सेवा करता है।

आत्मशुद्धि कर लेनेके बाद और स्वयं आत्मनिर्भर बन जानेके बाद, फिर कौन-सी शक्ति है जो आपपर कोई कर लगा सके या अन्य प्रकारसे आपकी इच्छाके विरुद्ध आपसे धन वसूल कर सके? शासित जनता सहयोग न करे तो उसपर कोई भी शासन नहीं कर सकता। अभी हम शासित लोगोंमें शुद्धता नहीं है और आत्मनिर्भरता नहीं है। लेकिन हम जल्दी ही शुद्ध और आत्मनिर्भर हो जायेंगे। अहिंसात्मक असहयोगका वास्तविक अर्थ यही है। आप अपने अन्तरात्माके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी न डरें। आप विदेशियोंपर लुक-छिपकर बम क्यों फेंकते हैं? आप बाहर आइए और उनसे साहसपूर्वक कहिये कि हम आपको बड़ी हदतक अपनी दुर्बलताओंके लिए जिम्मेदार मानते हैं। यदि आप जेल भी भेज दिये जायें तो डरें नहीं। आप उनसे यह भी कह दें कि आप उन्हें जितना दोषी ठहराते हैं, उतना ही अपने-आपको भी। इस तरह आप अपना खुदका और जिसे आप अपना शत्रु मानते हैं उसका भी भला करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-४-१९२५

३२४. भाषण : नागपुरमें

नागपुर
३० अप्रैल, १९२५

जिस गाड़ीमें महात्माजी कलकत्ता जा रहे हैं, वह गाड़ी सुबह ठीक ९.२५ बजे 'महात्मा गांधीकी जय'के उच्चघोषके बीच यहाँ पहुँची। सिख स्वयंसेवक हाथोंमें नंगी तलवारें लिए महात्माजीको मंचतक पहुँचा गये। महात्माजीने श्रोताओंसे मौन रहनेकी प्रार्थना करनेके बाद एक छोटा-सा भाषण दिया। उन्होंने कहा कि यद्यपि मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, फिर भी यह देखकर मेरा हृदय अन्दर-ही-अन्दर जल रहा है कि आपमें से बहुत कम लोग शुद्ध खद्दर पहने हैं। जबतक आप लोग खद्दर नहीं पहनते, जबतक सभी वर्गके लोग अर्थात् सिख, पारसी, हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी मिलकर दृढ़ताके साथ एक नहीं हो जाते और जबतक अस्पृश्यताका अभिशाप

मिटा नहीं दिया जाता, तबतक स्वराज्य मिलना असम्भव है। मैं नागपुरके लोगोंसे अपील करता हूँ कि वे वास्तविक हिन्दू-मुस्लिम एकता पैदा करें और कताईको अपनायें।

इस भाषणके बाद, नगर कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीने महात्माजीके सम्मुख नगरके कार्यकी रिपोर्ट रखी। महात्माजीने १० बजेके करीब नागपुरसे प्रस्थान किया।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १-५-१९२५

३२५. वस्तुस्थिति सूचित करनेवाले आँकड़े

[३० अप्रैल, १९२५][1]

ये टिप्पणियाँ कलकत्ताकी कष्टकर यात्राके दौरान लिखी जा रही हैं। चूँकि जेलसे रिहा होनेके बाद मैं पहली बार मध्य प्रान्तमें होकर निकल रहा हूँ, इसलिए हर स्टेशनपर जो उत्सुक जनसमुदाय मुझे देखने आता है उससे मुझे परेशानी होती है और मेरे थके-माँदे शरीरको विश्राम नहीं मिलता। साफ दिखता है कि लोगोंने खद्दर त्याग दिया है। सर्वत्र खादीकी सफेद टोपियाँ दिखाई दें, इसके बजाय मुझे सर्वत्र लगभग सभीके सिरोंपर काली विदेशी टोपियाँ ही दिखाई देती हैं, जिन्हें देखकर संताप होता है। एक मित्रने दुःखके साथ मुझसे कहा कि हजारमें मुश्किलसे एक आदमी होगा जो आदतन खादी पहनता हो। मैं इस रास्तेमें सर्वत्र यह खटकनेवाली बात देख रहा हूँ। तब वह हजारमें एक मनुष्य सराहनीय है जो भारी विघ्न-बाधाओंके होते हुए भी खादीके प्रति निष्ठावान् बना हुआ है। यह खादीके प्रति विद्रोह नहीं तो उदासीनता अवश्य है। इसे देखकर खादीके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ जाती है।

इस दुःखद सत्यका पूरा प्रमाण भी मिला नागपुरमें; प्रान्तके उस केन्द्रमें जहाँ कलकत्तेके अहिंसात्मक असहयोगके प्रस्तावकी पुनः पुष्टि की गई थी। स्टेशनपर विशाल भीड़ थी। कांग्रेसके अधिकारियोंने स्टेशनके बाहर एक सभाका आयोजन भी किया था। तेज धूप पड़ रही थी। भयंकर कोलाहल हो रहा था। किसीको किसीकी बात समझमें आना तो दूर, सुनाई भी नही देती थी। स्वयंसेवक तो थे, परन्तु उनमें नियम-निष्ठा बिलकुल नहीं थी। मेरे लिए जानेका कोई रास्ता नहीं रखा गया था। मैंने आग्रह किया कि इस आध घंटेमें जबतक गाड़ी स्टेशनपर खड़ी होगी, मुझे सभा स्थानमें जाना है तो मेरे लिए रास्ता बनाया जाये। रास्ता मुश्किलसे बनाया गया। मैं किसी तरह, बचते-बचाते, उसमें से गुज़रा। मुझे सभा-मंचपर पहुँचनेमें पाँच मिनिट लगे। यदि भीड़ सब तरफसे मेरी ओर न बढ़ती आती तो मैं वहाँ आधे मिनिटमें

१. इसमें कलकत्ताकी यात्राका उल्लेख होनेसे पता चलता है कि यह नागपुरमें रुकनेके बाद ३० अप्रैलको लिखा गया होगा। गांधीजी १ मईको सुबह कलकत्ता पहुँचे थे।

पहुँच सकता था। मुझे अपना सन्देश सुनानेमें एक मिनिटसे ज्यादा वक्त नहीं लगा। लौटनेमें जानेसे भी ज्यादह वक्त लगा; क्योंकि अब तो भीड़ विलकुल विवेकशून्य हो गई थी। अब वे मेरे प्रति अपने प्रेमके कारण अन्धे हो रहे थे। लोगोंने जयके नारोंसे आकाश गुंजा दिया। मेरी हालत उस कोलाहल, धूल और घुटनको सह सकने लायक नहीं थी। मैं अपने हृदयमें उस जगन्नियंतासे यह प्रार्थना कर रहा था—हे भगवन्, मुझे इस प्रेमसे मुक्त करो! मैं सही सलामत गाड़ीमें पहुँच गया। गाड़ी इतनी लेट चल रही थी कि मनमें झुँझलाहट पैदा होती थी। मैं गाड़ीके दरवाजेमें खड़ा हो गया, इस आकांक्षा और आशासे कि लोग एक क्षणके लिए गुल-गपाड़ा बन्द कर देंगे तो मैं उनसे कुछ कहूँगा। कांग्रेसके अधिकारियोंने और एक डील-डौलवाले अकालीने भीड़को शान्त करनेका प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ। लोग मेरी बात सुनने नहीं आये थे। वे तो मेरे दर्शन करने आये थे। वे मेरे दर्शन हर्षविह्वल होकर कर रहे थे। परन्तु उनका यह हर्ष मेरे लिए व्यथा ही था। जबानपर तो मेरा नाम और सिरपर काली टोपी। कैसा भीषण विरोध? कितना असत्य? इस भीड़को साथ लेकर मैं स्वराज्यकी लड़ाई नहीं लड़ सकता। फिर भी, मैं जानता हूँ कि मौलाना शौकत अली कहेंगे—जबतक उनमें आपके प्रति ऐसा प्रेम है, तबतक आशा है, भले ही वह प्रेम अन्धा हो। मुझे ऐसा यकीन नहीं है और इसलिए मेरा हृदय वेदनासे भरा हुआ था।

आखिरकार लोगोंने मेरी बात सुनी। मैंने उनसे उनकी काली टोपियाँ माँगी। उन्होंने इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त दिखाई, परन्तु वह उदार न थी। मेरा खयाल है कि उस विशाल जन-समुदायमें से १०० से अधिक लोगोंने अपनी टोपियाँ न फेंकी होंगी। उनमें से चार टोपियाँ ऐसी थीं जिन्होंने उन्हें स्वयं नहीं फेंका था। उन लोगोंने उन्हें वापस माँगा, और वे उन्हें तत्काल दे दी गईं। इस दृश्यसे मुझे दो शिक्षाएँ मिलीं; एक यह कि यदि कार्यकी उचित व्यवस्था हो तो लोगोंसे विदेशी कपड़ा या मिलोंका कपड़ा छुड़वाया जा सकता है। और दूसरी यह कि ऐसे लोग भी हैं जो अब भी दूसरोंकी टोपियाँ उतारकर फेंक देते हैं। इसे कोई साधारण जबरदस्ती कह सकता है। लेकिन खादी पहननेके मामलेमें या दूसरी बातोंमें भी जबरदस्तीसे काम नहीं लिया जाना चाहिए। जो लोग खादी पहनते हैं वे उसे या तो स्वेच्छासे पहनें या कतई न पहनें।

परन्तु स्थितिपर सबसे अधिक प्रकाश डालनेवाली बातें तो मुझे उन आँकड़ोंसे मालूम हुईं जो वहाँके कामकाजी कांग्रेस अधिकारियोंने मुझे देनेके लिए तैयार किये थे। वे आँकड़े वहाँकी कांग्रेसके कार्यकी सच्ची, सीधी और बिना रंगी कहानी कहते हैं। एक जगह प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके कामोंकी जानकारी दी गई है। पिछले मार्चमें उसके सदस्योंकी संख्या २०४ थी; जिनमें से ११४ स्वयं कातनेवाले थे और ९० ने औरोंका काता सूत दिया था। अप्रैलमें सदस्योंकी संख्या घटकर १३२ तक रह गई जिनमें से स्वयं कातनेवाले ८० थे और दूसरे ५२। इस तरह एक ही महीनेमें दोनों प्रकारके सदस्योंमें भारी कमी हो गई। अब देखना चाहिए कि आगे क्या होता है। कमेटीकी रिपोर्ट है कि प्रान्तमें ४ राष्ट्रीय पाठशालाएँ चल रही हैं और अछूतोंके

लिए स्व० हरिशंकर व्यासके[1] न्यासियोंकी ओरसे ५,०००) दान मिला है। अछूतोद्धारकी योजना तैयार करनेके लिए एक उपसमिति बनाई गई है। यह भी कहा गया था कि पण्डित मोतीलाल नेहरू और मौ० अबुल कलाम आजादकी कोशिशोंसे अब वहांके हिन्दू और मुसलमान परस्पर बहुत ही शान्तिपूर्वक रह रहे हैं।

दूसरी जगह नागपुर नगर कांग्रेस कमेटीके कामोंका संक्षिप्त ब्यौरा है। उसमें लिखा है कि अगस्त १९२४ में १,१३३ सदस्य थे। मार्च १९२५ में संख्या इस प्रकार थी:

क	ख	कुल
३७	७०	१०७

अप्रैलमें इतनी रह गई:

क	ख	कुल
२९	३०	५९

सिर्फ एक ही महीनेमें सूत भेजनेमें नागा करनेवालोंकी संख्या ४८ रही।

चालू चरखोंकी संख्या 'करीब' ४० है। सूत कोई ६०-७० हजार गज हर माह निकलता है। सूतका औसत अंक १० से १४ है। हाथ-कते सूतका इस्तेमाल एक भी करघा नहीं करता।

एक खादी-भण्डार है जिसमें कोई २००) की खादी प्रति मास बिकती है।

रिपोर्टमें लिखा है, 'अफीम और शराबके बारेमें कोई जानकारी नहीं दी जा सकती।' उसके बाद यह बहुत ही संक्षिप्त और सच्चा विवरण इस प्रकार समाप्त किया गया है:

> पूर्वोक्त अंकोंसे कताई-सदस्यताका भविष्य अच्छी तरह मालूम हो जाता है। खुद कातनेवाले अधिकांश सदस्य अपरिवर्तनवादी हैं। 'ख' श्रेणीके अधिकांश सदस्य स्वराज्यदलीय हैं। एक भी स्वराज्यदलीय स्वयं सूत नहीं कातता। इस नगरमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके पांच सदस्योंमें सिर्फ एक सदस्य स्वयं सूत कातता है; एकने खरीदा सूत नियमपूर्वक भेजा है; दोने सूत भेजनेमें नागा किया है और एकने मार्चका भी सूत नहीं दिया है और इसलिए वह अब कांग्रेसका सदस्य नहीं है। प्रान्तीय कमेटियोंके कुछ सदस्योंके नाम भी नागा करनेवालोंमें हैं और उनमें से कुछ तो प्रान्तीय कमेटीमें जिम्मेदार पदोंपर हैं। इससे ज्ञात हो जायेगा कि यह मताधिकार कहांतक चल सकेगा। अपरिवर्तनवादियोंकी, जिन्हें कताई और खादीमें श्रद्धा है, संख्या क्रमशः कम हो रही है और वे अब इने-गिने रह गये हैं। नागपुरके स्वराज्यवादी तो इस मताधिकारको छोड़नेके लिए उत्सुक हैं और यही हाल मध्यममार्गी या स्वतन्त्र दलवालोंका है, जिनके हाथमें इन दिनों प्रान्तीय कमेटी है।
>
> आशाकी किरण: आम तौरपर लोग उन लोगोंको प्रेम और आदरकी निगाहसे देखते हैं जो नियमपूर्वक कातते हैं और जिन्होंने कांग्रेसके कामके सामने बड़ी-बड़ी नौकरियों और वकालत आदिका मोह छोड़ दिया है।

1. बैतूल जिलेके राष्ट्रीय कार्यकर्ता।

कामकी ढिलाईके कुछ कारण ये हैं:

(क) कताई-सदस्यतामें विश्वास रखनेवाले कार्यकर्त्ताओंमें संगठनका अभाव।

(ख) बड़े-बड़े कांग्रेस नेताओंके मनमें इस मताधिकारके प्रति सहानुभूति-का अभाव और मताधिकारके प्रवर्त्तकमें तमाम विघ्न-बाधाओंके रहते हुए भी मताधिकारपर अटल रहनेकी दृढ़ता की कमी। अपरिवर्तनवादी भी यह मानने लगे हैं कि यह मताधिकार तो आगामी कांग्रेस अधिवेशनमें बदल ही दिया जाने-वाला है और इससे उनका नियमित और कारगर ढंगसे काम करनेका सारा उत्साह नष्ट हो गया है।

विरोधी प्रचार: कांग्रेस-वक्ता तथा दूसरे अधिकांश सार्वजनिक वक्ता दीगर बातोंपर जोर देते रहते हैं, इस मताधिकारके दोष बताते रहते हैं और उसके पक्षमें कुछ कहनेसे बहुत सावधानीसे बचते रहते हैं। और उनके इस रवैयेके खिलाफ कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि यह डर है कि कहीं वाद-विवाद न छिड़ जाये। उससे वायुमण्डल बिगड़ेगा और महात्मा गांधी इस तरहके विवादमें पड़नेका समर्थन करेंगे, इसकी कोई आशा नहीं।

मुझे इसमें एक मुलायम फटकार बताई गई है, कहा गया है कि हर तरहकी विघ्न-बाधाओंके रहते हुए इस मताधिकारको कायम रखनेकी दृढ़ता मुझमें नहीं है। पर मैं इस रिपोर्टके लेखकोंसे कहता हूँ कि जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं स्वयं तो इस मताधिकारपर हर हालतमें कायम रहूँगा। पर यदि मेरे अन्दर प्रजासत्ताके भावोंकी एक चिनगारी भी होगी तो मैं अकेला उसे कांग्रेसके लिए कायम नहीं रख सकता। वह काम तो है कांग्रेसके सदस्योंका। उसकी जिम्मेवारी संयुक्त और अलग-अलग होनी चाहिए। पर जो इस मताधिकारके — राष्ट्रके लिए चरखा कातनेके — कायल हैं वे अनमने और उदासीन लोगोंके मुकाबलेमें और ज्यादा दृढ़ क्यों नहीं रहते? और मान लें कि कांग्रेस अगले साल इस मताधिकारको बदल देगी, तो भी उसमें विश्वास रखनेवाले लोग क्या करेंगे? क्या वे चरखा कातना छोड़ देंगे? या वे खुद अपने लिए तो कातेंगे ही, दूसरोंके लिए भी कातेंगे?

हाँ, रिपोर्टके लेखकोंका यह कहना ठीक है कि मैं उस झगड़े और चर्चाका समर्थन न करूँगा 'जिससे बुरा वातावरण तैयार हो।' पर यदि कोई अनमना या उदासीन है, तो इसका उपाय यह नहीं है कि उसके खिलाफ या उसके सम्बन्धमें कुछ कहा या लिखा जाये, बल्कि यह है कि हम अपने रास्तेपर चलें और जिस बातको हम मानते हैं उसका संगठन करें। जो लोग कताईमें विश्वास रखते हैं उन्हें उसका संगठन करनेसे कौन रोक सकता है? रिपोर्टके लेखकोंको मैं बताये देता हूँ कि देशमें ऐसे मौन रहकर काम करनेवाले पैदा हो गये हैं जो कारगर तौरपर बिना आडम्बर-के खादी और चरखेका सन्देश देशमें फैला रहे हैं।

अभी मुझे नागपुरमें दिये गये दो और विवरणोंका जिक्र करना बाकी है। तीसरा विवरण है तिलक विद्यालयकी रिपोर्ट। यह संख्या १९२१में १,००० विद्यार्थियों और

४०से ऊपर शिक्षकोंको लेकर खड़ी हुई थी। यह भारी संख्या घटकर १९२३-२४में १५० रह गई। जुलाई १९२४में वह ५५ तक नीची आ गई अब वह ४५ है और उसमें ८ शिक्षक हैं। कताई निकाल दी गई थी, किन्तु अब वह फिर जारी की गई है। बढ़ईगिरी, जिल्द बंधाई और सिलाई आदि सिखाई जाती है। उसका मासिक खर्च ३५५ रु० है और मासिक आमदनी फीसको मिलाकर १८० रु० है। उसे बैतूलके स्व० हरिशंकर व्यासकी सम्पत्तिसे दानके रूपमें ५,०००) अकस्मात् मिल गये थे।

कहते हैं, उसमें धार्मिक और शारीरिक शिक्षा भी दी जाती है।

संस्थाको अपनी तकनीकी विभागके लिए बतौर पूँजीके १,०००) और पाठशालाको छः सालतक चलानेके लिए १०,०००) चाहिए।

इस विद्यालयकी दशा भी वैसी ही हुई है जैसी देशके प्रायः अन्य राष्ट्रीय शिक्षालयोंकी हुई है। यद्यपि इसकी राम-कहानी अनुत्साह बढ़ानेवाली मालूम होती है, फिर भी हतोत्साह होनेका कोई कारण नहीं। यदि शिक्षक दृढ़ निश्चयी, सुयोग्य और आत्मत्यागी हैं तो वे अपनी छोटी-सी संस्थाको राष्ट्रीय दृष्टिसे उपयोगी और कारगर बना सकते हैं। आवश्यक शर्तोंका, फिर वे कुछ भी क्यों न हों, पालन न करनेवाले शिक्षकोंकी संख्या अधिक होनेका कुछ महत्त्व नही है। कुछ भी हो, यदि नागपुर तिलक विद्यालयके शिक्षकोंमें जीवट हो और वे कांग्रेसकी शर्तोंका पालन कर सकें तो मैं समझता हूँ कि उसे आर्थिक सहायता मिलनेमें कोई कठिनाई न होगी। मैं ऐसी किसी संस्थाको नहीं जानता जो धनके अभावमें बन्द हो गई हो; किन्तु मैं ऐसी अनेक संस्थाओंको जानता हूँ जो शिक्षकोंमें आवश्यक गुण न होनेके कारण बन्द हो गईं।

मैंने अभी उस विवरणका तो जिक्र ही नहीं किया है, जिसको पढ़कर बहुत अधिक आशा बँधती है। यह उन लोगोंके नामोंकी सूची है जिन्होंने मुझे भेंट करनेके लिए सूत काता है। यह सूत सदस्यताके चन्देके सूतके अलावा है। इस सूचीमें ४१ नाम हैं जिनमें से दो नाम संस्थाओंके हैं। इसलिए कातनेवाले व्यक्ति ४१से अधिक हैं। उनमें मारवाड़ी भी हैं और महाराष्ट्रीय भी। ४ पारसी भी हैं। एक मुसलमान और ४ स्त्रियाँ हैं। नामोंकी सूचीमें सूतके अंक, वजन, और गजोंमें लम्बाई हर नामके सामने उल्लिखित हैं। सूतकी कुल लम्बाई ७,५३,९७४ गज है। अंक ९६ से ६ तक हैं। अभी मैंने सूतकी जाँच नहीं की है; पर यदि यह सारा बुनने लायक है, तो यह इतना है कि जिसपर गर्व हो सके। और यदि वे तमाम सदस्य चरखेमें सजीव और स्वतन्त्र श्रद्धा रखते हों तो मुझे उचित समयमें सफलता मिलनेके बारेमें निराश होनेका कोई कारण नही दिखाई देता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-५-१९२५

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

वाइकोम सत्याग्रहपर त्रावणकोरके दीवानके भाषणका अंश

तीसरी बातका सम्बन्ध श्री एन० कुमारन् द्वारा पेश किये गये उस प्रस्तावसे है, जिसमें यह सिफारिश की गई है कि सरकार वाइकोम मन्दिरके आसपास और उसके अहातेके अन्दरकी तमाम सड़कें सभी वर्गोंके लिए खोल दे। मैं इस प्रस्तावपर कुछ विस्तारसे कहना चाहता हूँ और सरकारकी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूँ। वाइकोम सत्याग्रहका कारण वह प्रथा है जिसके अनुसार कुछ जातियोंके लिए कुछ सड़कोंका उपयोग निषिद्ध है और इस प्रथाकी त्रावणकोरके अन्दर और बाहर भी काफी आलोचना की गई है। कुछ ऐसे हिन्दू समुदाय हैं, जो केरलमें चारों वर्णोंके अन्तर्गत नहीं आते और दुर्भाग्यवश जिनके संसर्ग और स्पर्शको बहुत पुराने जमानेसे सवर्ण हिन्दू-जातियोंके सदस्यों और इन मन्दिरोंके देवताओंको अपवित्र करनेवाला माना जाता है जिनमें ये सवर्ण हिन्दू लोग प्रवेश कर सकते हैं। नतीजा यह है कि अवर्ण हिन्दू समुदायोंको कुछ हिन्दू मन्दिरोंके आसपास कुछ दूरतक की सड़कोंका इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता, यद्यपि ये सड़कें इस अर्थमें सार्वजनिक हैं कि जनताके कुछ वर्गोंके लोगोंके लिए ये खुली हुई हैं। इस प्रथाका अस्तित्व अवर्ण हिन्दू लोग भी स्वीकार करते हैं। जहाँतक त्रावणकोरका सम्बन्ध है, अवर्ण हिन्दू समुदायोंमें सबसे प्रमुख एजवाहा लोग हैं। ये पूरी आबादीके षष्ठांश हैं और हालमें इन्होंने शिक्षा तथा आर्थिक दृष्टिसे बहुत तेजीसे प्रगति की है। इस समुदायके लोगोंको स्वभावतः ऐसा लगता है कि यह निषेध उनके आत्म-सम्मानकी अवमानना है और यह एक ऐसी भावना है जिससे सभी विचारवान लोगोंकी सहानुभूति होगी। सच तो यह है कि एजवाहों और अन्य अवर्णोंके पक्षको उन समुदायोंके सदस्योंकी भी कुछ सहानुभूति प्राप्त हो गई है, जो इन लोगोंसे अच्छी स्थितिमें हैं।

इसी निर्योग्यताको दूर करानेके लिए एजवाहों और उनके हमदर्द लोगोंके एक दलने लगभग एक वर्ष पूर्व वाइकोममें सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलनमें अपनाया गया तरीका निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करके उपर्युक्त प्राचीन प्रथाको तोड़नेका था। यद्यपि ऐसा करनेका मतलब था सवर्ण हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाओंको ठेस पहुँचाना, और स्थानीय मजिस्ट्रेट द्वारा निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश न करनेके उन आदेशोंकी अवहेलना करना, जो अवर्ण हिन्दुओंकी कार्रवाईसे सार्वजनिक शांतिके लिए उत्पन्न खतरेसे बचनेके लिए जारी किये गये थे। सत्याग्रहियोंका उद्देश्य सरकारको इस बातके लिए मजबूर करना है कि वह प्रशासनिक आदेश जारी करके

उस पुरानी और प्रतिष्ठित प्रथाको भंग करनेका अधिकार दे दे, जिसे त्रावणकोरके उच्च न्यायालयने अपने कई निर्णयोंमें, जिनमें से पहला ५ टी० एल० आर० के मामलेसे सम्बद्ध था, स्वीकृति दी है और जो इस कारणसे इस राज्यके कानूनमे शामिल है।

सरकारका इरादा इस प्रथाके अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेका नहीं है। कोई इसे पूर्वग्रह कह सकता है, कोई अन्धविश्वास। लेकिन इसे जो भी संज्ञा दी जाये, यह प्रथा मौजूद है और हमें इसका ध्यान रखना है। जैसा कि मैंने पहले कहा है, यह धार्मिक विश्वासपर आधारित है, और जैसा कि आप जानते हैं, ऐसे विश्वासोंसे उन लोगोंको बड़ा मोह होता है जो ऐसे विश्वास रखते हैं। भारतके अन्य हिस्सोमें भी धार्मिक विश्वासोंपर आधारित ऐसी प्रथाएँ मौजूद हैं। उदाहरणके लिए, मद्रास प्रान्तमें अवर्ण हिन्दुओंको उन कुछ एक गलियों और सड़कोंपरसे नहीं गुजरने दिया जाता है, जहाँ सवर्ण हिन्दू लोग रहते हैं। सेलम जिलेमें इस प्रथाको तोड़नेकी कोशिश की गई तो दंगा भड़क उठा, जिसमें लोगोंकी जानें गईं और मलाबार जिलेमें भी इसके फलस्वरूप सार्वजनिक शान्ति भंग हुई। अवर्ण हिन्दुओंमें भी ऐसी प्रथा है कि एक वर्गके अवर्ण हिन्दू अगर किसी कुएँका स्पर्श कर देते है तो दूसरे वर्गके अवर्ण हिन्दू उसका पानी नही पीते। उत्तर भारतमें भी ऐसी प्रथाएँ हैं। जबतक कोई धार्मिक विश्वास या धार्मिक विश्वासोपर आधारित प्रथा घोर रूपसे अमानवीय न हो तबतक उसमें हस्तक्षेप न करना हरएक सरकारका परम कर्त्तव्य है। सार्वजनिक शान्तिकी रक्षा करना और स्थितिको यथापूर्व कायम रखना भी सरकारका कर्त्तव्य है। हरएक सरकारकी कार्यपालिकाका यह कर्त्तव्य है कि वह कोई कानून जिस रूपमें प्रचलित है और जिस रूपमें अदालतें उसकी व्याख्या करती हैं, उस रूपमें उसे कायम रखे और उसका पालन कराये। जैसा कि अतिरिक्त हेड सरकारी वकीलने विधान परिषद्में इस प्रस्तावपर बहसके दौरान कहा है, त्रावणकोर सरकारने यही काम किया है और भारतकी अन्य सरकारें भी इसी नीतिका अनुसरण करती हैं।

अब हम वाइकोमकी स्थितिपर किंचित् विस्तारसे विचार करें। मन्दिरके ठीक आसपासकी सड़कें मन्दिरकी निजी सम्पत्ति हैं; वे सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं हैं। इसके विपरीत, जो सड़कें मन्दिरकी ओरको जाती हैं, वे सार्वजनिक सड़कें हैं। लेकिन, एक सर्वमान्य और अत्यन्त पुरानी प्रथाके अनुसार मन्दिरसे एक खास दूरीतक ये सड़कें सीमित अर्थमें ही सार्वजनिक हैं; अर्थात् ये कुछ एक वर्गोंके ही लोगोंके लिए खुली हुई हैं, राजमार्गकी तरह सभीके लिए नहीं। आसपास कोई ऐसी सार्वजनिक संस्था भी नही है जिसके लिए सभी वर्गोंके लोगोंके लिए इन सड़कोंपर से गुजरना जरूरी हो। इस क्षेत्रमें प्रवेश करनेपर निषेध लगा रहनेसे वास्तवमें जो एकमात्र असुविधा होती है वह यह कि वाइकोमके एक छोरसे दूसरे छोरतक जानेके लिए उन लोगोंको, जिनपर यह प्रतिबन्ध लगा हुआ है, लम्बे और चक्करदार रास्तेसे गुजरना पड़ता है। सरकारने निषिद्ध क्षेत्रकी बगलसे आम जनताके उपयोगके लिए नई सड़कें बनवा

कर इस असुविधाको दूर करनेका वचन दिया लेकिन यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। इस प्रकार यह सिद्ध है कि इस प्रतिबन्धको हटानेकी माँगका एकमात्र आधार आत्मसम्मान, अर्थात् एक भावना है। मैं मानता हूँ कि इस भावनाका आदर करना चाहिए; लेकिन तब मैं आपसे यह पूछता हूँ कि अगर ऐसा करनेके लिए किसी सरकारको सुमान्य और सुस्थापित कानूनी स्थितिके खिलाफ जाना पड़े और दूसरे समुदायकी धार्मिक श्रद्धाको चोट पहुँचानी पड़े तो क्या उसके लिए ऐसा कर सकना सम्भव है?

इस प्रस्तावपर बहसके दौरान ऐसा कहा गया है कि जब सरकारने सार्वजनिक संस्थाओं, सरकारी कार्यालयों और सरकारी नौकरियोंमें प्रवेशके सम्बन्धमें इन समुदायोंपर लगे सारे प्रतिबन्ध हटा दिये हैं तब वह उस निषेधको हटानेसे इनकार नहीं कर सकती जो इनके आत्मसम्मानको चोट पहुँचाता है। यह सच है कि ये समुदाय अबतक जिन निषेधों और प्रतिबन्धोंको सहते आये हैं उनमें से कईको दूर करनेके लिए सरकारने अपने तईं कुछ उठा नहीं रखा है और उसने इन्हें यथासम्भव अन्य समुदायोंके बराबरके अवसर देनेकी पूरी कोशिश की है; लेकिन उन क्षेत्रोंमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना, जिन क्षेत्रोंको हिन्दू समाजके कुछ वर्ग पवित्र मानते हैं, बिलकुल अलग ढंगकी चीज है, क्योंकि इससे धार्मिक विश्वासपर आधारित प्रतिष्ठित पुराने अधिकार भंग होंगे।

यह बड़े दुःखकी बात है कि एजवाहा और त्रावणकोरके अन्य अवर्ण हिन्दुओंने ऐसे तरीके अपनाये जिससे बहुत-से लोग उनके खिलाफ हो गये हैं। अगर सरकार उनकी माँगोंको सवर्ण हिन्दुओंसे जबर्दस्ती मनवानेकी नीतिपर चले तो वह नीति न टिकाऊ होगी और न उसके परिणाम ही दूरगामी होंगे। शक्ति-प्रयोगके बलपर किया गया कोई भी निबटारा टिकाऊ नही हो सकता। अगर एजवाहा लोगोंने अपनी शक्तिका उपयोग सवर्ण हिन्दुओंको शान्तिपूर्वक समझा-बुझाकर और सही बात बताकर उन्हें यह महसूस करानेके तरीकेमें किया होता कि अस्पृश्यताकी प्रथा एजवाहोंके प्रति जितनी अन्यायपूर्ण है, सवर्ण हिन्दुओंके लिए भी उतनी ही पतनकारी है, तो यह बहुत अच्छा होता। उस सत्याग्रहमें जिसका उद्देश्य लोगोंको उचित बात बताकर उन्हें उसकी प्रतीति कराना हो और उस सत्याग्रहमें, जिसका उपयोग सरकारको और इस तरह सनातनी हिन्दुओंको कोई खास बात माननेपर मजबूर करना हो, बड़ा अन्तर है। सत्याग्रहियोंका उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे सवर्ण हिन्दुओंको, जो अस्पृश्यताको धर्मका अंग मानते हैं, अपने मतसे कायल करें। इस तरीकेका परिणाम, निस्सन्देह, धीरे-धीरे प्रकट होगा, लेकिन चूँकि वह स्वेच्छापर आधारित होगा, इसलिए स्थायी होगा।

इस समस्याका सन्तोषजनक हल तो यही होगा कि दोनों समुदाय आपसमें बातचीत करके कोई स्वीकार्य समझौता करें। जबतक कानून वैसा बना रहता है जैसा

कि आज है तबतक यद्यपि सरकार सवर्ण हिन्दुओंके इस कानूनी अधिकारको स्वीकार करती है कि इस प्रतिबन्धको कायम रखा जाये, फिर भी उसकी भावना तो यही हो सकती है कि अगर ये समुदाय अपने कानूनी अधिकारोंपर बहुत आग्रह न रखकर समयकी नब्जको पहचानें और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी उन धार्मिक विश्वासों और पूर्वग्रहोंको त्याग दें, जो साम्प्रदायिक मेल-जोलके खिलाफ हैं और उस चीजको स्वीकार लें जिसे आज सारी दुनिया आवश्यक और अनिवार्य मानती है तो यह अधिक समझदारीका काम होगा। अपनी शक्तिभर सरकार वैसा हर उपाय करनेको तैयार है जिस उपायसे इस उद्देश्यकी प्राप्ति के लिए दोनों समुदायोंके बीच बातचीत हो सके और वह मेल-जोल स्थापित हो सके जिसकी इतनी आवश्यकता है। सरकारसे इससे अधिक कुछ करनेकी अपेक्षा करना अनुचित है और अगर दोनों समुदाय अपने दृष्टिकोणोंमें परिवर्तन किये बिना आगे भी इसी तरह दुराग्रह करते रहे तो इससे वर्ग-संघर्ष बढ़ेगा और सार्वजनिक शान्ति खतरेमें पड़ जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-३-१९२५

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजात-का केन्द्रीय संग्रहालय एवं पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'आनन्द बाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित बंगला दैनिक।

'नवजीवन' (१९१९–१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'न्यू इंडिया': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' (१९१८–१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रजी साप्ताहिक।

'स्वदेशमित्रन्': मद्राससे प्रकाशित तमिल दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

एपिक ऑफ त्रावणकोर (अंग्रेजी): महादेव देसाई, नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद, १९३७।

'बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी): जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'महादेवभाईनी डायरी', खण्ड ७ (गुजराती): चन्दूलाल दलाल, साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास, अहमदाबाद १३, १९६५।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१६ जनवरीसे ३० अप्रैल, १९२५)

१६ जनवरी: गांधीजीने सोजित्रामें महिला परिषद्, बारिया क्षत्रिय परिषद् और अन्त्यज परिषद्में भाषण दिये। बारडोलीके लिए रवाना हुए।

१७ जनवरी: वारडोलीकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

१८ जनवरी: वेडछीकी कालीपरज परिषद्में भाषण।

१९ जनवरी: सूरतसे अहमदाबादके लिए रवाना हुए।

२० जनवरी: अहमदाबाद पहुँचे।

२३ जनवरी: दिल्लीमें सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी बैठककी अध्यक्षता की। इस बैठकमें हिन्दू मुसलमानोंके बीच समझौतेकी रूपरेखा तथा स्वराज्यकी योजना बनानेके लिए एक उपसमिति नियुक्त करनेके सुझावपर विचार किया गया।

२४ जनवरी: सर्वदलीय सम्मेलन समितिने एक उपसमिति नियुक्त की जिसके अध्यक्ष गांधीजी और महासचिव मोतीलाल नेहरू निर्वाचित हुए।

२६ जनवरी: मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत बंगाल अध्यादेशको रद करनेसे सम्वन्धित विधेयक वाइसराय द्वारा अस्वीकृत।

२७ जनवरी: वाइसरायके अध्यादेश सम्बन्धी भाषणपर टीका करते हुए गांधीजीने समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंसे कहा कि भारतीय एकमतसे अध्यादेशकी निन्दा करते हैं।

३ फरवरी: दिल्लीसे रावलपिंडीके लिए रवाना हुए।

४ फरवरी: कोहाटके दंगोंकी जाँच करनेके लिए शौकत अलीके साथ रावलपिंडी पहुँचे।

५ फरवरी: रावलपिंडीमें कोहाटसे आये हिन्दुओंके समक्ष भाषण। केन्द्रीय विधान-सभामें बंगाल अध्यादेशके स्थानपर अधिनियम बनानेका प्रस्ताव पास किया गया।

६ फरवरी: रावलपिंडीमें गांधीजीने कोहाटके दंगोंके बारेमें खिलाफत समितिके मन्त्री अहमद गुल और जमींदार कमाल जिलानीसे जिरह की और बयान दर्ज किये।

७ फरवरी: रावलपिंडीसे रवाना हुए।

८ फरवरी: दिल्ली पहुँचे; नेताओंसे मिले।

९ फरवरी: अहमदाबाद पहुँचे।

वाइसरायसे तार द्वारा मार्चके शुरूमें कोहाट जानेकी अनुमति माँगी।

१० फरवरी: सत्याग्रह आश्रमके निवासियोंके समक्ष कोहाटके हिन्दुओंके धर्मपरिवर्तनके विषयमें अपने विचार व्यक्त किये।

११ फरवरी: अंकलाव, बोरसद और भादरन गये, वहाँ भाषण दिये।

१२ फरवरी: भादरनके सेवा मण्डल द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें भाषण दिया। बोरसदमें भाषण।

१३ फरवरी: पालेजमें भाषण।

अहमदाबाद पहुँचे।

वाइसरायने गांधीजीको उनकी प्रस्तावित कोहाट-यात्राकी अनुमति न देनेका तार भेजा।

१५ फरवरी: काठियावाड़का दौरा प्रारम्भ। गांधीजीके स्वागतार्थ राजकोटमें विशेष दरबारका आयोजन किया गया।

राजकोटमें राष्ट्रीयशाला और जैन छात्रावासका उद्‌घाटन किया।

१९ फरवरी: राजकोटसे पोरबन्दर पहुँचे।

सरकारकी मदद करनेके उद्देश्यसे कोहाट जानेकी फिरसे अनुमति माँगते हुए वाइसरायको तार भेजा।

पोरबन्दरके निवासियों द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रका उत्तर दिया।

अन्त्यजोंकी सभामें भाषण।

२० फरवरी: वाँकानेर पहुँचे।

२१ फरवरी: वढवान पहुँचे।

अन्त्यज बाड़ेमें गये। सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

बाल मन्दिरका उद्‌घाटन किया।

२२ फरवरी: अहमदाबाद पहुँचे।

'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें काठियावाड़के राज्योंमें मद्यनिषेधकी आवश्यकतापर जोर दिया।

वाइसरायने पुनः तार दिया कि वे गांधीजीको कोहाट जानेकी अनुमति न देनेके अपने निर्णयपर दृढ़ हैं।

२३ फरवरी: गांधीजीने आचार्य गिडवानीको जेलसे रिहा होनेपर बधाईका तार भेजा। कोहाटके दंगोंके सम्बन्धमें शौकत अली तथा अपने मतभेदके बारेमें शौकत अलीको पत्र लिखा और सुझाव दिया कि हकीम अजमल खाँ या डा० अन्सारी पूरे मामलेकी जाँच करें।

२५ फरवरी: आश्रममें डाह्याभाई पटेलके विवाहके अवसरपर वर-वधूको आशीर्वाद दिया।

२६ फरवरी: 'यंग इंडिया' के लेखमें कोहाटमें हुए समझौतेकी आलोचना की, परन्तु वहाँ सविनय अवज्ञा करना उचित नहीं समझा।

२७ फरवरी: दिल्ली पहुँचे।

१ मार्च: दिल्लीमें सर्वदलीय सम्मेलन समितिकी हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी उप-समितिकी बैठककी अध्यक्षता की। उपसमिति अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दी गई।

२ मार्च: सर्वदलीय सम्मेलन उपसमितिकी बैठकके स्थगनपर गांधीजी और मोतीलाल नेहरूका संयुक्त वक्तव्य।

नॉर्वेके भारतीय संस्कृतिशास्त्री श्री स्टेनकोनोवके प्रश्नोंके उत्तर दिये।

४ मार्च: भारत-मन्त्रीके साथ परामर्श करनेके लिए वाइसराय लॉर्ड रीडिंगकी लन्दन-यात्राकी घोषणा।

५ मार्च: वाइकोम जाते हुए बम्बई रुके।

पत्र प्रतिनिधियोंके साथ हुई भेंटमें हिन्दू-मुस्लिम एकताको अपरिहार्य माना।

७ मार्च: मद्रास पहुँचे।

'स्वदेशमित्रन्', 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' तथा 'स्वराज्य' के प्रतिनिधियोंसे भेंट की।

मद्रास नगरनिगमने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

तिलकघाटपर आयोजित सार्वजनिक सभामें अपनी वाइकोम-यात्राका उद्देश्य बताया। वाइकोमके लिए रवाना हुए।

८ मार्च: एर्नाकुलम् पहुँचे।

एर्नाकुलम् नगरनिगमने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

कोचीन पहुँचे।

कोचीन समुद्र तटपर आयोजित आम सभामें भाषण दिया।

१० मार्च: वाइकोममें सत्याग्रहियोंके साथ सुबहकी प्रार्थनामें भाग लिया।

त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नर, तमिल गुरुकुलके वी० वी० एस० अय्यर, तथा सवर्ण हिन्दू नेताओंके साथ बातचीत की।

वाइकोम सत्याग्रहके सम्बन्धमें सार्वजनिक सभामें भाषण।

अंबलपुज़ाके एज़ुवाहोंने मानपत्र भेंट किया।

११ मार्च: वाइकोमके सत्याग्रह आश्रमके निवासियोंके समक्ष सत्याग्रहियोंके कर्त्तव्यपर भाषण दिया।

वाइकोमसे रवाना हुए।

अलप्पी पहुँचे।

१२ मार्च: क्विलोन पहुँचे।

क्विलोन नगरनिगम द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें वाइकोम सत्याग्रह-पर भाषण दिया।

रोमाँ रोलाँ द्वारा की गई स्वदेशीकी आलोचनाका 'यंग इंडिया' में उत्तर दिया।

१३ मार्च: वर्कलाके शिवगिरि हॉलमें एजवाहों तथा अन्य अन्त्यजोंने अभिनन्दन-पत्र भेंट किये।

त्रिवेन्द्रम पहुँचे।

त्रिवेन्द्रमके महाराजा कालेजमें विद्यार्थियों द्वारा भेंट किये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण दिया।

राजपरिवारके सदस्यों तथा त्रावणकोरके दीवानसे मिले।

त्रिवेन्द्रमके छावनी मैदानकी विशाल सभामें कई संस्थाओंने अभिनन्दन-पत्र भेंट किये।

१४ मार्च: विक्टोरिया जुबली टाउन हॉलमें त्रिवेन्द्रम नगरपालिकाने मानपत्र दिया।

गांधीजीने नगरपालिकाको सूत कातनेके पक्षमें प्रस्ताव पास करनेके लिए बधाई दी।

त्रिवेन्द्रमके लॉ कालेजमें भाषण।

कन्याकुमारी और नागरकोइल गये।

१५ मार्च: त्रिवेन्द्रमसे वाइकोमके लिए रवाना हुए।

कोट्टयम पहुँचे। कोट्टयम नगरपालिका और हिन्दी छात्रोंने अभिनन्दन-पत्र दिये।

१६ मार्च: वाइकोम पहुँचे।

१७ मार्च: सवर्ण हिन्दुओंके एक प्रवक्ता इंडनतुरित्ति नम्बूद्रीने 'शंकर स्मृति' की एक प्रति गांधीजीको दी। गांधीजीने केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके साथ सत्याग्रहके भविष्यके बारेमें विचार विमर्श किया।

सत्याग्रह आश्रमके पुलयाओंके समक्ष भाषण।

वाइकोमसे रवाना हुए।

१८ मार्च: परूर पहुँचे।

परूरके नागरिकों, एजवाहों तथा नगरपालिकाने अभिनन्दन-पत्र भेंट किये।

अलवाईके यूनियन कालेज तथा अद्वैताश्रममें भाषण।

दो बजे मध्याह्नमें त्रिचूर पहुँचे।

त्रिचूर नगरपालिका, नम्बूद्री योगक्षेम-सभा तथा छात्रोंने मानपत्र भेंट किये।

भूतपूर्व महाराजासे भेंट की।

त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नरको नाकेबन्दी हटाने और निषेधात्मक आदेश वापस लेनेके बारेमें पत्र लिखा।

१९ मार्च: पोदनूर पहुँचे।

रेलवे मजदूरोंने मानपत्र भेंट किया।

तिरुपुर नगरपालिकाने मानपत्र भेंट किया।

२१ मार्च: पुदुपालयम पहुँचे।

ग्रामीणोंकी सभामें भाषण। कोयम्बटूर जिला सेन्गुन्थर महाजन संगम द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण दिया। तिरुच्चंगोडमें तिरुच्चंगोड संघ, स्थानीय कांग्रेस कमेटी तथा वलीवा स्वराज्य संगमने अभिनन्दनपत्र भेंट किये।

२२ मार्च: मद्रास पहुँचे।

सोशल सर्विस लीगने मानपत्र भेंट किया।

ट्रिप्लिकेनमें कताई प्रदर्शन देखा और महिलाओंकी सभामें भाषण दिया। 'हिन्दू' के कार्यालयमें कस्तूरी रंगा आयंगारके चित्रका अनावरण किया। मद्रासमें विविध संस्थाओं द्वारा दिये गये मानपत्रोंके उत्तरमें सार्वजनिक सभामें भाषण।

छात्रों तथा मजदूरोंकी सभामें भाषण।

२३ मार्च: त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नरने गांधीजीको तार द्वारा सूचित किया कि ७ अप्रैलसे निषेधात्मक आदेश वापस ले लिया जायेगा।

२४ मार्च: गांधीजीने पुलिस कमिश्नरको आदेश वापस लेनेके विषयमें धन्यवादका तार भेजा तथा अपना और पुलिस कमिश्नरका पत्रव्यवहार प्रेसको प्रकाशनार्थ दिया।

मद्रासमें ट्रिप्लिकेन नागरिक सहकारी समिति, मद्रास आयुर्वेदिक फार्मेसी तथा हिन्दी प्रचार समितिने मानपत्र भेंट किये।

गोखले हॉलमें मद्यनिषेध कार्यकर्ताओंकी सभामें तथा महिला क्रिश्चियन कालेजमें भाषण दिये।

'स्वराज्य' कार्यालयमें सम्पादक और पत्र कर्मचारियोंने मानपत्र भेंट किया।

२६ मार्च: बम्बई पहुँचे।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिके साथ हुई भेंटमें अपनी वाइकोम-यात्राकी सफलताका विश्लेषण किया।

महिलाओं तथा दलित वर्गवालोंकी सभाओंमें भाषण दिये।

बम्बई कांग्रेस कमेटी द्वारा आयोजित कताई प्रतियोगिताका निरीक्षण किया तथा गिरगाँवमें कांग्रेस भवनका उद्घाटन किया।

अहमदाबादके लिए रवाना हुए।

कोहाट दुर्घटनाके सम्बन्धमें गांधीजी और मौलाना शौकत अलीका वक्तव्य 'यंग इंडिया' में प्रकाशित।

२९ मार्च: चित्तरंजन दासने एक घोषणापत्रमें स्वराज्य दलकी दमन और हिंसा विरोधी तथा सरकारके साथ सहयोग सम्बन्धी नीतिका स्पष्टीकरण किया।

'नवजीवन' के लेखमें गांधीजीने राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान लोगोंसे उपवास रखने, कातने और खादीका प्रचार करनेकी अपील की।

१ अप्रैल: काठियावाड़की यात्राके लिए, अहमदाबादसे बोटादके लिए रवाना हुए।

२ अप्रैल: मढडा, ढसा और बगसराकी सभाओंमें भाषण दिये।

३ अप्रैल: पालीताणाके जैन मन्दिरोंमें गये; मानपत्रका उत्तर दिया।

मुनिश्री कर्पूरविजयजीके साथ साधुओंद्वारा चरखा चलानेके विषयपर विचार-विमर्श किया।

५ अप्रैल: लाठीमें भाषण।

६ अप्रैल: माँगरोलकी सार्वजनिक सभामें जिन लोगोंको अन्त्यजोंके साथ बैठनेमें आपत्ति थी, उन्हें समझाया।

६ से १३ अप्रैल: राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया।

९ अप्रैल: एक क्रान्तिकारीके प्रश्नोंके 'यंग इंडिया' में उत्तर दिये।

१० अप्रैल: लॉर्ड लिटनने चार महीनेके लिए स्थानापन्न वाइसरायका पद ग्रहण किया।

११ अप्रैल: काठियावाड़की यात्राके पश्चात् गांधीजी बम्बई पहुँचे।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे भेंट की।

१३ अप्रैल: बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा जलियाँवाला बाग दिवसके उपलक्ष्यमें आयोजित सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१५ अप्रैल: कराडी, गामदेवी और अमलसदमें भाषण।

१६ अप्रैल: सूपा गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंके समक्ष भाषण दिया।

नवसारी पहुँचे। अन्त्यज आश्रम तथा पारसियोंकी सभामें भाषण दिये।
'यंग इंडिया' में गांधीजीने लिखा कि वे कांग्रेसके बहुमतकी इच्छाके अनुसार काम करेंगे।

१८ अप्रैल: जम्बुसर नगरपालिकाने मानपत्र भेंट किया।
भड़ौंचके स्थानीय निकायने मानपत्र भेंट किया। तथा गांधीजीने एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

२३ अप्रैल: मलेरिया बुखारके बाद स्वास्थ्य-लाभके लिए तिथल पहुँचे।

२७ अप्रैल: तिथलसे बम्बईके लिए रवाना हुए।
फरीदपुरके बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके लिए कलकत्ता जाते हुए बम्बई रुके।

२८ अप्रैल: माधवबागमें अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलका संविधान प्रस्तुत करते हुए अ० भा० गोरक्षा सभामें भाषण दिया।

२९ अप्रैल: 'न्यू इंडिया' के प्रतिनिधिसे भारत राष्ट्रमण्डल विधेयकके सम्बन्धमें भेंट की।

३० अप्रैल: कलकत्ता जाते हुए नागपुर पहुँचे।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ए

ऐ

ओ

क

ख

ग

घ

च

छ

ज

ब

भ

म

य

र

ल

व

श